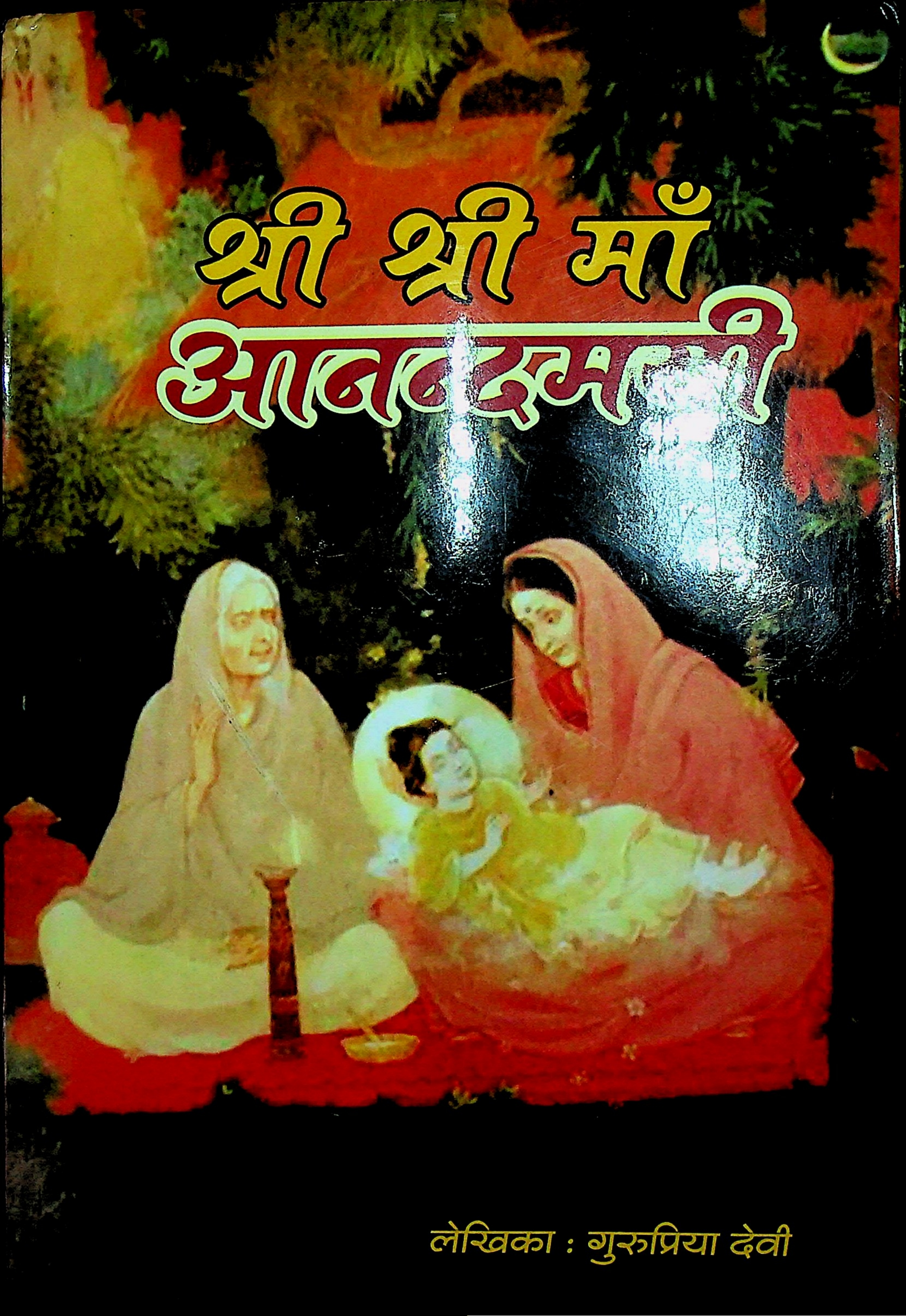

श्री श्री माँ आनन्दमयी

लेखिका : गुरुप्रिया देवी

श्री श्री माँ आनन्दमयी

भाग-1

लेखिका :
गुरुप्रिया देवी

श्री श्री आनन्द मयी संघ
ॐ माँ
मातृ शरणं

श्री श्री माँ
आनन्दमयी

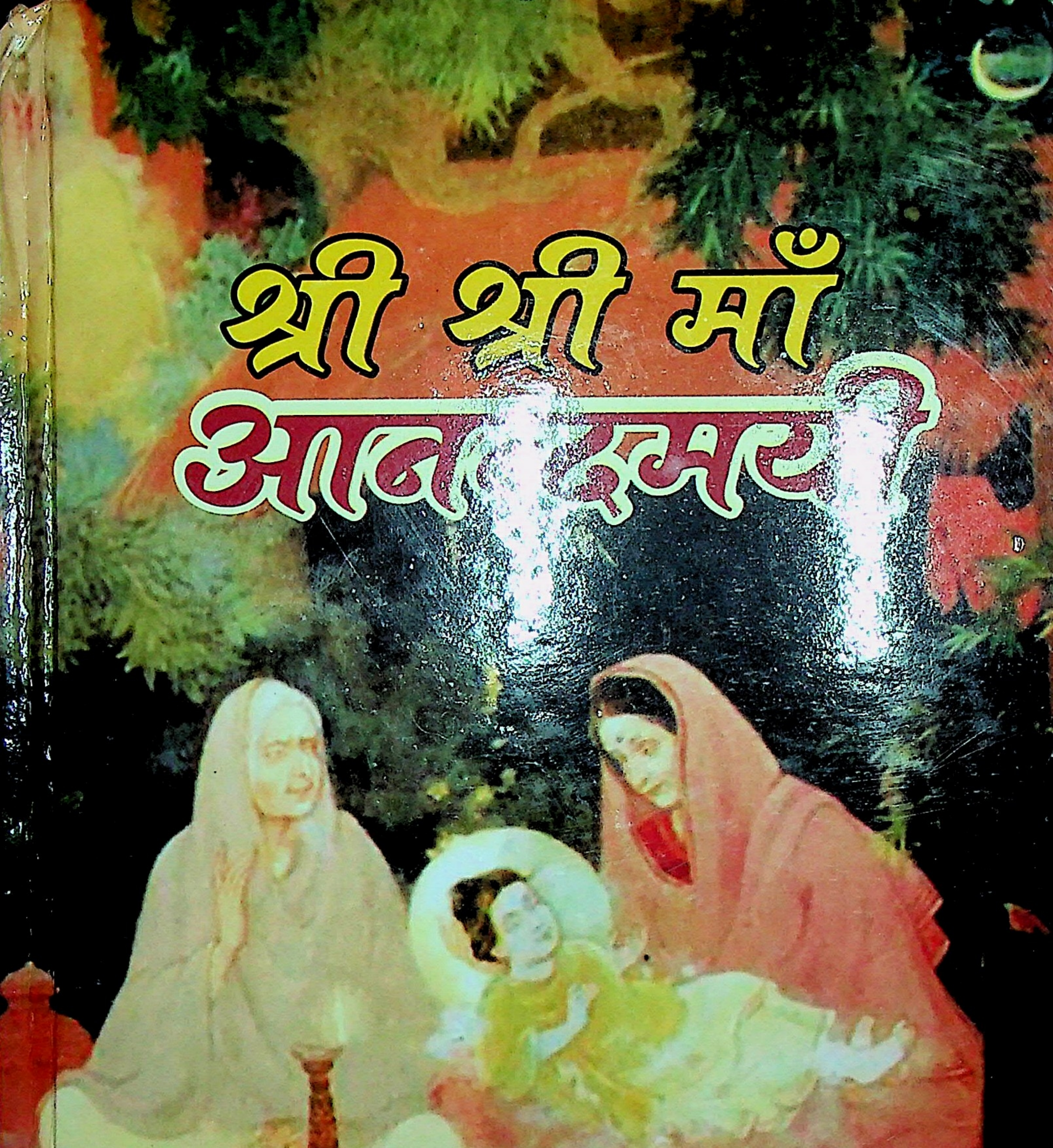

लेखिका : गुरुप्रिया देवी

श्री श्री माँ आनन्दमयी

(मातृलीला–ई.स. 1896 से ई.स. 1937 तक)
(कैलास–यात्रा के पूर्वाभास तक)

श्री श्री आनन्द मयी संघ
ॐ माँ
मातृ शरणं

लेखिका :

गुरुप्रिया देवी

प्रकाशक :
श्री श्री आनन्दमयी संघ
कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

संस्करण : **चतुर्थ–2019** (भाग–1)

प्रतियाँ : **1100/-**

सहयोग राशि : **₹– 100/-**

मुद्रक :
प्रिंटिंग सेन्टर
चुरुकों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर– 302003
फोन : 0141-4112757, 97845 06600

✻ पुस्तक प्राप्ति स्थान ✻

1. **श्री श्री आनन्दमयी संघ**
श्री श्री माँ आनन्दमयी मार्ग, कनखल, हरिद्वार–249408, (उत्तराखण्ड)

2. **श्री श्री माँ आनन्दमयी स्मृति संग्रहालय**
मातृ निलयम्, आनन्द ज्योति पीठम् के सामने, श्री श्री माँ आनन्दमयी मार्ग,
कनखल, हरिद्वार–249408, भारत मो. : 09412158799

3. **प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र**
ए–3, आर्य नगर, मुरलीपुरा, जयपुर–302039 (राज.)
दूरभाष : 9829547773, 0141–2233765
E-mail : pragya7sadhna@yahoo.co.in

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ संख्या**

समर्पण xxxiii

निवेदन xxxiv-xxxvi

प्रस्तावना xxxvii- xxxviii

भूमिका xxxix-Iv

दिव्य जीवन परिक्रमा Iii-Iiii

(ग्रन्थ रचयित्री के श्री श्री माँ से मिलने से पूर्व-जन्म वर्ष 1896 से 1925 तक)

श्री श्री माँ का संक्षिप्त पूर्व चरित **1-18**

✻ श्री श्री माँ का आविर्भाव ✻ कीर्तन में भाव ✻ विवाह और उसके बाद का विवरण (1909-1918 ई.स.) ✻ कुलवधू ✻ अष्टग्राम सन् 1914 ई.-भाव के पहले रूप ✻ एक दिन सारा संसार तुझे माँ कहेगा ✻ लोगों के सामने पहले-पहल भावावेश ✻ बाजितपुर में (1918-1924 ई.स.) ✻ गृहस्थी और साधन ✻ माँ की दीक्षा-श्रावण पूर्णिमा (1922) ✻ पूर्णब्रह्म नारायण ✻ मौन ✻ भैरवजी का प्रसाद ✻ ढाका शाहबाग में (1924-1928)

पहला अध्याय **19-50**

✻ प्रथम मिलन ✻ हम लोगों के मकान में माँ का भोग ✻ सूर्यग्रहणोत्सव ✻ कीर्तन में माँ का भावावेश ✻ एक घटना ✻ शाहबाग में नियमित रूप से कीर्तन का आदेश ✻ माँ का भोग ✻ भिखारियों का भोजन और दरिद्रनारायणों की सेवा ✻ अनाथ का वृत्तान्त ✻ माँ का स्ववर्णित पूर्वावस्था का इतिहास ✻ दूसरे के रोग का आकर्षण ✻ मौन-ग्रहण और मौन तोड़ने की प्रक्रिया ✻ सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त ✻ सिद्धेश्वरी का इतिहास ✻ भोग में बाधा ✻ अमावस्या और पूर्णिमा को माँ का भोग ✻ भोग की वस्तु में लोभ होने पर भोग नहीं होता

दूसरा अध्याय 51–77

✽ अमावस्या के भोग और कीर्तन काल में विचित्र भाव–पैरों पर फूल चढ़ाने का परिणाम ✽ अपने हाथ से खाना बन्द ✽ काली पूजा का इतिहास ✽ माँ की भावावस्था की स्थिति ✽ बाजितपुर में अरब देश के फकीरों के दर्शन ✽ पूर्व अवस्था का विवरण ✽ भावावस्था में सिद्धेश्वरी में गृह–निर्माण का आदेश ✽ वासन्ती पूजा का अनुष्ठान ✽ माँ के प्रति सीतानाथ कुशारीजी का देवी–भाव ✽ मरणी को आश्रय–प्रदान ✽ ज्योतिष बाबू और निरंजन बाबू का वृत्तान्त ✽ भोलानाथजी की अस्वस्थता ✽ माँ के जन्म और बाल्यजीवन की बात ✽ बुआजी का खीर का भोग ✽ प्रणाम बन्द होना ✽ भोजन के विविध प्रकार के नियम ✽ बोलने का नियम

तीसरा अध्याय 78–95

✽ माँ की वैद्यनाथ–धाम यात्रा ✽ लौटते समय कलकत्ते में ✽ ढाका लौटना ✽ सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त ✽ बगीचे में लोगों के आने की निषेधाज्ञा का परिहार ✽ कीर्तन में सबकी चरण–धूलि लेने की चेष्टा करना ✽ अन्य के रोग को आरोग्य करने का इतिहास ✽ योगेश राय की घटना ✽ भक्तजनों का आगमन ✽ नाना प्रकार के प्रश्न और उनकी मीमांसा ✽ शारदीय पूजा (सं. 1983)

चौथा अध्याय 96–114

✽ काली–पूजा का इतिहास (सं. 1983) ✽ काली–पूजा का हवन ✽ यज्ञाग्नि का रक्षण ✽ प्रतिमा का रक्षण ✽ कमलाकान्त ✽ कई एक घटनाएँ ✽ ज्वरावस्था में मेरे शरीर पर माँ का हाथ फेरना ✽ माँ के फोटो में ज्योतिष दादा का आभास ✽ आशु की माँ की और वीरेन्द्र दादा की काली–पूजा ✽ कालीजी का स्थान परिवर्तन ✽ कीर्तन में धूप की बात ✽ माँ की अवस्था का परिवर्तन ✽ ढाका–पारुलदिया गमन✽ राजदिया तथा अन्यान्य गाँवों में भ्रमण ✽ रायबहादुर की माता का श्राद्ध ✽ निर्मल बाबू को सरस्वती के रूप में मातृ–दर्शन ✽ कुलदा बन्द्योपाध्याय का वृत्तान्त ✽ यज्ञाग्नि रक्षा तथा काली–पूजा की व्यवस्था

पाँचवाँ अध्याय 115–140

✽ महाकुम्भ के दर्शन के लिए हरिद्वार–यात्रा ✽ माँ के भाव में परिवर्तन ✽ काशी कुंज बाबू के मकान में ✽ हरिद्वार में कुम्भ स्नान तथा मथुरा, वृन्दावन होते हुए ढाका प्रत्यावर्तन ✽ एक लक्ष्य होने का माहात्म्य ✽ कीर्तन में बाउल बाबू और चिन्ताहरण बाबू की स्त्री का भाव ✽ बहुत दिनों तक जल–त्याग ✽ कई पुरानी घटनाएँ–बीच बीच में अलौकिक शक्ति का प्रकाश ✽ माँ का उपदेश ✽ माँ का ढाका त्याग ✽ माँ के लिए आश्रम–निर्माण का प्रथम उद्योग ✽ माँ की कृपा से कुञ्जबाबू के पंचम पुत्र का सर्पदंश से परित्राण ✽ ज्योतिष बाबू का चुनार और गिरिडीह निवास ✽ माँ का विद्याकूट पितृगृह गमन ✽ खेओड़ा गमन–जन्म स्थान दर्शन ✽ विद्याकूट से ढाका को प्रस्थान ✽ नौका के मार्ग में सर्परूपी महापुरुष के दर्शन ✽ निरञ्जन बाबू के मकान में माँ का सर्प–दर्शन ✽ प्यारीबानू के पुत्र और कन्या के विवाह में माँ का कलकत्ता गमन ✽ प्यारीबानू का ढाका आगमन ✽ कामाक्षा–यात्रा ✽ फिरोजपुर में माँ ✽ बाइसारी में माँ ✽ सलकिया और राजशाही होकर ढाका लौटना

छठा अध्याय 141–169

✽ भोजन के नूतन नियम ✽ प्रमथ बाबू और उनके चपरासी को अलौकिक दिव्यरूप–प्रदर्शन ✽ माँ नित्यसिद्धा है ✽ सिद्धेश्वरी में माँ की गुप्त लीला ✽ टिकाटूली के मकान में पिताजी की पैतृक दुर्गापूजा ✽ सिद्धेश्वरी के बड़े कमरे का निर्माण ✽ माँ का ढाका त्याग–गिरिडीह, चुनार और विन्ध्याचल गमन ✽ बोलने में सावधानी की आवश्यकता ✽ काली मूर्ति का स्थान–परिवर्तन ✽ माँ का टिकाटूली वाले भाड़े के मकान में गमन ✽ सिद्धेश्वरी में माँ का प्रथम जन्मोत्सव ✽ माँ का कुरान और नमाज पढ़ना ✽ माँ का टाङ्गाइल गमन ✽ काली मूर्ति का उत्तमा कुटीर में परिवर्तन और माँ का उत्तमा कुटीर में अवस्थान ✽ बारिशाल और विक्रमपुर गमन ✽ टाङ्गाइल में दिनेश बाबू के मकान में गमन ✽ कुंजबाबू के आह्वान पर काशी गमन ✽ बाजितपुर की उषा दीदी के निकट माँ की भविष्यवाणी ✽ काशी में माँ की अवस्थिति ✽ माँ का ढाका प्रत्यागमन ✽ कुमिल्ला गमन ✽ कलकत्ते में माँ का निवास ✽ माँ की शारीरिक अवस्था में परिवर्तन ✽

माँ की बाहर जाने की सूचना ※ माँ के शरीर में अग्नि का असर ※ दीदी माँ (नानीजी) की अस्वस्थता ※ उत्तमा कुटीर त्याग ※ भोलानाथजी का एकाकी ढाका त्याग

सातवाँ अध्याय 170–179

※तारापीठ आने का पहला इतिहास ※ श्री श्री माँ का ढाका त्याग और तारापीठ को प्रस्थान ※ श्री श्री माँ का आभूषण त्याग ※ भोलानाथजी का भक्तगणों के साथ दक्षिण-यात्रा का प्रस्ताव ※ तारापीठ में आने का पूर्व इतिहास ※ तारापीठ में भोलानाथजी की अपूर्व अवस्था ※ तारापीठ में श्री श्री माँ की दिनचर्या ※ तारापीठ त्याग-वक्रेश्वर दर्शन-दक्षिण यात्रा का संकल्प त्याग और सलकिया आगमन ※ श्री श्री माँ का यज्ञोपवीत ग्रहण ※ कलकत्ता गमन ※ पुन: सलकिया आगमन ※ आगरा गमन और पुन: सलकिया आगमन ※ विद्याकूट होकर ढाका गमन

आठवाँ अध्याय 180–189

※ रमना आश्रम का सूत्रपात-स्थान लेने का इतिहास ※ सिद्धेश्वरी में जन्मोत्सव (वैशाख सं. 1986 वि.) ※ रमना आश्रम में श्री श्री माँ का प्रथम पदार्पण ※ बाउल बाबू का वृत्तान्त ※ फूलों के साज-सामान से श्री श्री माँ की अपूर्व शोभामयी देवीमूर्ति ※ विविध मधुर लीलाएँ ※ ढाका त्याग का उपक्रम ※ श्री श्री माँ के मुँह से स्वत: विनिर्गत स्तोत्रादि ※ सहसा ढाका त्याग का संकल्प ※ नानाजी के साथ ढाका त्याग ※ स्टेशन पर श्री श्री माँ, सीतानाथ का माँ के साथ गमन ※ ज्योतिष दादा का माँ के साथ गमन ※ आदिनाथ यात्रा ※ भोलानाथजी का आदिनाथ जाना और माँ को साथ लेकर चन्द्रनाथ होते हुए कलकत्ता लौटना ※ श्री श्री माँ की हरिद्वार यात्रा और देहरादून में सहस्रधारा दर्शन ※ अयोध्या गमन और हरिद्वार प्रत्यावर्तन ※ हरिद्वार त्याग, काशीधाम और विन्ध्याचल गमन ※ विन्ध्याचल से पुन: काशी आगमन ※ चाँदपुर में भोलानाथजी की अस्वस्थता-श्री श्री माँ का कलकत्ता गमन

नवाँ अध्याय 190–203

※ नवद्वीप गमन और पुन: कलकत्ता आगमन ※ 'आखूना' में गिरीन्द्र

बाबू के मकान में एकान्तवास ✼ कलकत्ते में श्री श्री माँ और भोलानाथजी ✼ नानाजी की पुरी-यात्रा ✼ सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी की माता और स्त्री के हाथ से श्री श्री माँ का भोग ग्रहण ✼ भोलानाथजी के साथ श्री श्री माँ का चाँदपुर गमन ✼ श्री श्री माँ का ढाका वापस आना और सिद्धेश्वरी में निवास ✼ श्री श्री माँ को आमिष की तरकारी देना एवं उसके सम्बन्ध में उनकी उक्ति ✼ ढाका सिद्धेश्वरी में भोलानाथजी की अस्वस्थता (सं. 1986 वि. आषाढ़ या श्रावण) ✼ सिद्धेश्वरी में भावावस्था में उठकर दरवाजा खोलने से गिर पड़ने के कारण श्री श्री माँ के सिर पर चोट आने से रक्तपात ✼ भोलानाथजी का आरोग्य लाभ और सुरेन्द्र मुखोपाध्याय की वृद्धा माता की बात ✼ श्री श्री माँ की अस्वस्थता (सं. 1986 वि. श्रावण) तथा उसी अवस्था में सिद्धेश्वरी में गमनागमन ✼ अस्वस्थावस्था में श्री श्री माँ का सिद्धेश्वरी में निवास ✼ उक्त अस्वस्थता और उसके अद्‌भुत लक्षणों का वृत्तान्त ✼ हमारे कातर निवेदन पर श्री श्री माँ का अपनी इच्छा से आरोग्यता की ओर अग्रसर होना ✼ श्री श्री माँ का अद्‌भुत चिकित्सा का अवलम्बन ✼ श्री श्री माँ के भाव में रुकावट डालने से भोलानाथजी पर विपत्ति ✼ श्री श्री माँ के निकट रोग का आगमन भी दर्शनार्थी लोगों के तुल्य ही है ✼ मेरे और नन्दू के बचपन का वृत्तान्त ✼ हमारे प्रति श्री श्री माँ की विशेष स्नेहसनी करुणा ✼ अतुल ब्रह्मचारी का सिद्धेश्वरी में प्रथम मातृ-दर्शन ✼ रमना आश्रम में श्री काली-मूर्ति के लिए श्री श्री माँ के द्वारा स्थान का निर्देश ✼ अस्वस्थ श्री श्री माँ के निकट बहुत भक्तों का समागम ✼ श्री श्री माँ स्वस्थता और अस्वस्थता के परे

दसवाँ अध्याय 204–210

✼ श्री श्री माँ का रमना आश्रम में निवास (संवत् 1986 वि. आश्विन महालया के दिन) ✼ श्री दुर्गापूजा के समय रमना आश्रम की काली मूर्ति की विशेषरूप से पूजा की व्यवस्था का सूत्रपात ✼ विनय बाबू की कन्या उमा की मृत्यु एवं उसके स्मारक रूप में आश्रम में कीर्तन-गृह का निर्माण ✼ भुआल संन्यासी का श्री श्री माँ के समीप आगमन ✼ श्री श्री माँ का सोना, बैठना या चलना सब-कुछ मन की मौज के अनुसार ✼ लगातार दो-तीन दिन तक श्री श्री माँ का शयन, नाम-कीर्तन से उसका भंग और भाव का परिवर्तन ✼ श्री श्री माँ का भावावस्था में भक्तों के प्रति कर्त्तव्य

का आदेश ❊ रमना आश्रम में भक्तों के प्रति शनिवार–व्रत पालन का उपदेश ❊ श्री श्री माँ की भावावस्था का वृत्तान्त समदर्शिनी माँ ❊ पुरीधाम में श्री श्री माँ की अनुरूप उक्ति ❊ रमना आश्रम में श्री श्री माँ के दैनिक जीवन का संक्षिप्त परिचय ❊ जाति भेद के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का मनोभाव ❊ सिद्धेश्वरी आश्रम में भोलानाथजी की साधना एवं उनके द्वारा दीक्षा प्रदान करने का सूत्रपात (सं.1986 वि. फाल्गुन)

ग्यारहवाँ अध्याय 211–222

❊ रमना आश्रम में भोलानाथजी का श्री काली–पूजन और पंचवटी स्थापन (सं. 1987 वि. वैशाख) ❊ पंचवटी के सम्बन्ध में एक विशेष घटना ❊ संवत् 1987 वि. में श्री श्री माँ का जन्मोत्सव ❊ संवत् 1987 वि. के जन्मोत्सव के अवसर पर रमना आश्रम में सर्पदर्शन होने पर श्री श्री माँ की उक्ति ❊ सिद्धेश्वरी के सर्प की कथा ❊ सं. 1987 वि. की श्री श्री माँ की जन्मतिथि के दिन पंचवटी की वेदी के ऊपर भोलानाथजी द्वारा श्री श्री माँ का पूजन ❊ ढाका में हिन्दू–मुसलमानों के संघर्ष का पूर्वाभास ❊ जयदेवपुर में श्री श्री माँ का गमन, प्रफुल्ल बाबू के घर निवास तथा ढाका लौटना ❊ श्री श्री माँ का कलकत्ते होकर राजशाही और तारापीठ गमन और पुन: कलकत्ता आगमन ❊ श्री श्री माँ का दक्षिण भारत–पर्यटन ❊ इस अंचल के नाना स्थानों पर भ्रमण कर कन्याकुमारी में स्थिति ❊ कन्याकुमारी त्याग (सं. 1987 वि.) त्रिवेन्द्रम गमन और पद्मनाभ मन्दिर के दर्शन ❊ द्वारका गमन एवं श्री श्री माँ का श्रीकृष्ण विग्रह को स्नान कराना सबकी दृष्टि में अगोचर ❊ द्वारका से विन्ध्याचल आगमन और वहाँ से काशी और गया होकर जमशेदपुर गमन ❊ जमशेदपुर निवास का वृत्तान्त ❊ श्री श्री माँ का कलकत्ता आगमन ❊ श्री श्री माँ और पशुपति बाबू ❊ श्री श्री माँ और एक साधु

बारहवाँ अध्याय 223–228

❊ श्री श्री माँ का पाबना गमन और प्राणकुमार बाबू के मकान में निवास ❊ कलकत्ते लौटकर श्री श्री माँ का काक्स बाजार गमन ❊ पाबना के संन्यासी की मृत्यु का पूर्वाभास ❊ रमना की काली–मूर्ति के हाथ के आभूषणों की चोरी का पूर्वाभास ❊ काक्स बाजार में नानीजी की अवस्था

का विवरण ✻ श्री श्री माँ का आदिनाथ गमन ✻ भोलानाथजी के क्रोध से श्री श्री माँ का बाह्यावस्था भेद ✻ श्री श्री माँ का चटगाँव होकर चन्द्रनाथ आदि स्थानों पर भ्रमण करने के उपरान्त ढाका गमन एवं श्री श्री माँ के वर्तमान जागतिक जन्म का विवरण ✻ श्री श्री माँ का कलकत्ता आगमन तथा भोलानाथजी के भाई रेवरेण्ड चक्रवर्ती के साथ बहुत वर्षों के बाद मिलन

तेरहवाँ अध्याय **229–242**

✻ श्री श्री माँ का कलकत्ते से ढाका गमन एवं ढाका आश्रम की भूमि में प्राचीन साधकों की समाधियों की बात ✻ रायबहादुर योगेशचन्द्र घोष जी का वृत्तान्त ✻ दूर से भी श्री श्री माँ भक्त की विनती जान जाती हैं ✻ कीर्तन के समय श्री श्री माँ की अद्भुत-अद्भुत बाह्य अवस्थाएँ ✻ श्रीयुत् रामठाकुर महाशय का श्री श्री माँ के दर्शन करना ✻ श्री श्री माँ के साथ माधवी माँ का मिलन ✻ शरीर की बाह्य अवस्था में भेद रहने पर भी भीतर श्री श्री माँ की सदैव एक ही अवस्था है ✻ 'साधन समर' आश्रम के अतुल ठाकुर महाशय द्वारा माँ की अर्चना ✻ उषा दीदी की बात ✻ ढाका में दार्शनिक पण्डितों के प्रश्न पर श्री श्री माँ का आत्मपरिचय प्रदान ✻ उषा दीदी के निकट उस प्रकार का आत्मपरिचय प्रदान ✻ श्री श्री माँ के श्रीमुख से उनके आत्मपरिचय का विवरण ✻ मुझे एक बार उस तरह के आत्मपरिचय का प्रदान ✻ ढाका के आश्रम के मन्दिर का इतिहास ✻ सं. 1988 वि. का श्री श्री माँ का जन्मोत्सव तथा मन्दिर में विविध देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा ✻ देवसेवा और भोगादि की व्यवस्था एवं योगेश ब्रह्मचारी के आश्रमवास का सूत्रपात ✻ यज्ञाग्नि रक्षा की स्वतन्त्र व्यवस्था एवं काली-मूर्ति की भूगर्भस्थ मन्दिर में स्थापना और वर्ष में एक दिन जाति-पाति के भेद-भाव के बिना सबके लिए उस मन्दिर में प्रवेश की व्यवस्था ✻ श्री श्री माँ के नेतृत्व में सारी रात महिलाओं का नाम-कीर्तन, श्री श्री माँ की जलक्रीड़ा तथा सबके साथ बालभोग ग्रहण-अपूर्व उत्सवानन्द ✻ पिताजी का और मेरा गृहत्याग

चौदहवाँ अध्याय **243–254**

✻ ढाका त्याग और बाजितपुर गमन (सं. 1988 वि. ज्येष्ठ) ✻ वहाँ

से मैमनसिंह होकर दार्जिलिंग गमन (सं. 1988 वि. ज्येष्ठ) ❊ कलकत्ता और चूँचुड़ा होकर नवद्वीप गमन (सं. 1988 वि. ज्येष्ठ) ❊ प्राणकुमार बाबू की स्त्री की आश्चर्यजनक रोग-मुक्ति ❊ नवद्वीप में मन्दिरादि दर्शन और 'ललिता' सखी का कीर्तन श्रवण ❊ नवद्वीप से कलकत्ता आगमन और यतीश दादा के मकान में अवस्थान (सं. 1988 वि. ज्येष्ठ) ❊ पुरी गमन और हरलाल बाबू के मकान में निवास एवं निर्मल बाबू के पुत्र सन्तोष की मृत्यु का पूर्वाभास ❊ पुरी में मन्दिरादि-दर्शन ❊ पुत्र सन्तोष को पुरी में छोड़कर निर्मल बाबू का काशी गमन ❊ सन्तोष की आकस्मिक मृत्यु (सं. 1988 वि. की रथयात्रा के कुछ पूर्व) ❊ उक्त मृत्यु के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति ❊ पुरी धाम त्याग की तैयारी ❊ मुगलसराय होकर विन्ध्याचल गमन ❊ विन्ध्याचल से काशी गमन ❊ पुन: विन्ध्याचल गमन तथा मिर्जापुर के उपेन्द्र बाबू और कुलदा बाबू की पहले-पहल माँ से भेंट ❊ विन्ध्याचल में श्री श्री माँ के शरीर में अद्भुत क्रियाओं का आविर्भाव-''देवी का अष्टांग योग''

पन्द्रहवाँ अध्याय 255–262

❊ विन्ध्याचल से अयोध्या, काशी और कलकत्ता होते हुए ढाका गमन ❊ श्री श्री माँ के हाथ से मुझे दण्ड और गेरुवा वस्त्र की प्राप्ति एवं उसे गुप्त रखने का आदेश ❊ श्री श्री माँ का ज्योतिष दादा को ब्राह्मण के रूप में ग्रहण तथा आगे चलकर उन्हें अपने हाथ से यज्ञोपवीत प्रदान ❊ वकील पण्डित साहब के मकान से श्री श्री माँ का कमण्डलु ग्रहण ❊ श्री श्री माँ का मेरे पिताजी को उक्त कमण्डलु प्रदान ❊ श्री श्री माँ का काक्स बाजार गमन ❊ काक्स बाजार में श्री श्री माँ का अवस्थान ❊ वहाँ की एक विचित्र घटना ❊ अन्यत्र की तद्नुरूप 2-4 घटनाएँ-काक्स बाजार त्याग

सोलहवाँ अध्याय 263–276

❊ आदिनाथ और चन्द्रनाथ गमन ❊ कलकता और तारापीठ होकर काशी गमन ❊ विन्ध्याचल से जमशेदपुर गमन ❊ जमशेदपुर में श्री श्री माँ ❊ जमशेदपुर में स्थिति ❊ वहाँ से कलकता गमन ❊ ढाका में श्री श्री माँ ❊ ज्योतिष दादा और मैं भाई-बहन ❊ पिताजी को अद्भुत दर्शन ❊ पिताजी की साधन-मार्ग में क्रमोन्नति ❊ ज्योतिष दादा का उत्तरोत्तर अधिक

मातृ-संग ✽ सिद्धेश्वरी तथा रमना आश्रम के स्थानों का वृत्तान्त ✽ अवनी दत्तजी की स्त्री का वृत्तान्त ✽ नये-नये भक्तों का समागम ✽ सम्वत् 1988 वि. में श्री श्री माँ की दोल-लीला ✽ ढाका से मैमनसिंह और राजशाही होकर कलकत्ता गमन (सं. 1988 वि. चैत्र) ✽ कलकत्ते में स्थिति-श्रीरामपुर के गोवर्धन और उसकी माता का वृत्तान्त (सं. 1989 वि. वैशाख) ✽ अन्तर्यामिनी श्री श्री माँ ✽ गोवर्द्धन की माँ के साथ श्री श्री माँ के प्रथम परिचय का विवरण ✽ चाबियों की खोज के सिलसिले में दूसरी बार दर्शन एवं तभी से उस घर में आना-जाना आरम्भ ✽ अज्ञात भाव से प्राप्त हुए कमल के फूलों द्वारा श्री श्री माँ के उद्देश्य से पूजा ✽ श्री श्री माँ नियमानुवर्तित्व के बाहर ✽ दिन का नियम भंग ✽ भक्त की आकुल प्रार्थना से श्री श्री माँ की कृपा ✽ रात्रि का नियम भंग ✽ कलकत्ते से राजशाही होकर ढाका गमन ✽ राजशाही में अटल दादा के मकान में पहले की एक घटना

सत्रहवाँ अध्याय 277–287

✽ ढाका में संवत् 1989 वि. जन्मोत्सव ✽ देवमूर्ति-प्रतिष्ठा ✽ कुमारी पूजा ✽ इक्कीस दिनों तक अखण्ड नाम-कीर्तन ✽ 108 प्रकार के दाल, तरकारी आदि से युक्त श्री अन्नपूर्णा माँ का भोग ✽ वृष्टि में अपूर्व कीर्तनानन्द ✽ जटु भाई द्वारा श्री श्री माँ की अद्भुत आरती ✽ श्री श्री माँ की सब विषयों पर सतर्क दृष्टि और परस्पर के अज्ञात भाव से व्यवस्था का निर्देश ✽ अन्तिम दिन का महोत्सव-सिन्दूर की डिबियों और रेशमी साड़ियों का वितरण ✽ चिनू के साथ मरणी के भावी विवाह का वाग्दान ✽ श्री श्री माँ के साथ भक्तों के घरों से हमारा भिक्षा-ग्रहण ✽ ज्योतिष दादा की स्त्री का वृत्तान्त ✽ भिक्षा से प्राप्त अन्नादि द्वारा आश्रम में श्री श्री माँ का भोग और भक्तों का प्रसाद-ग्रहण ✽ श्री श्री माँ का अपने हाथ से बेबी दीदी के दिए हुए भोग का वितरण ✽ सिद्धेश्वरी की वेदी में शिव-लिंग की प्रतिष्ठा ✽ रमना आश्रम के शिव-मन्दिर के ऊपर बनाये गए साँप की बात ✽ लगभग आधी रात के समय श्री श्री माँ के ढाका त्याग का आयोजन एवं उपस्थित भक्तों को यथायोग्य उपदेश ✽ श्री श्री माँ का मुझे सान्त्वना प्रदान ✽ श्री श्री माँ का मुझे यज्ञोपवीत प्रदान एवं भोलानाथजी और ज्योतिष दादा के साथ ढाका त्याग (सं. 1989 वि., 19 ज्येष्ठ)

अठारहवाँ अध्याय 288–299

❊ श्री श्री माँ का रायपुर (देहरादून) में अवस्थान ❊ उस समय की एक अलौकिक घटना ❊ देहरादून होकर रायपुर–वास का वृत्तान्त ❊ रायपुर जाने के पहले ढाका में श्री श्री माँ का विभिन्न भक्तों के प्रति विभिन्न उपदेश प्रदान ❊ रायपुर–वास कालीन निर्भीक जीवन ❊ रायपुर से तारापीठ तथा वहाँ से नलहाटी गमन ❊ श्री श्री माँ की अनुमति मिलने पर अनेक स्थानों के भक्तों का नलहाटी गमन और निवास ❊ मेरे और पिताजी के लिए विशेष उपदेश ❊ श्री श्री माँ निरामिष आहार की पक्षपातिनी ❊ नलहाटी त्याग और पुनः रायपुर गमन एवं भक्तों के प्रति उपदेश (माघ, सं. 1989 वि.) ❊ रायपुर–वास और देहरादून होकर मसूरी गमन एवं भोलानाथजी को श्री बद्रीनारायण के दर्शनों के लिए प्रेरणा (सं. 1990 वि. वैशाख) ❊ ढाका में सं. 1990 वि. का श्री श्री माँ का जन्मोत्सव ❊ उत्तरकाशी गमन और वहाँ से लौटकर नाना तीर्थ स्थानों का भ्रमण ❊ उक्त समय का विवरण (सं. 1990 वि. वैशाख–पौष) ❊ लछमन झूला और हरिद्वार वास ❊ देहरादून–वास ❊ पुनः हरिद्वार–वास ❊ पिताजी का देहरादून आह्वान (पौष, सं. 1990 वि.) ❊ देहरादून के जीवन का विवरण ❊ ज्योतिष दादा का श्री श्री माँ के धर्मपुत्र और ब्राह्मण रूप से परिचय

उन्नीसवाँ अध्याय 300–304

❊ मनोहर मंदिर में जन्माष्टमी के दिन यज्ञ ❊ उस मन्दिर के निकट श्री श्री माँ के स्मृति–मन्दिर की स्थापना का इतिहास ❊ श्री श्री माँ और कमला नेहरू–अम्बिका मंदिर में श्रीमती नेहरू का यज्ञ ❊ कश्मीरी, पंजाबी आदि महिलाओं द्वारा श्री श्री माँ की अर्चना और उनको उपदेश ❊ पिताजी, मनोरमा दीदी और मेरा नाम और वेश परिवर्तन कराकर हम लोगों को देहरादून से विदा करना (माघ, सं. 1990 वि.) ❊ स्त्रियों के यज्ञोपवीत ग्रहण की बात तथा बाद में (सं. 1992 वि. के माघ महीने में) तारापीठ में मेरा और मरणी का उपनयन

बीसवाँ अध्याय 305–315

❊ श्री श्री माँ का सोलन पहाड़ पर गमन (सं. 1990 वि. चैत्र) – पिताजी के संन्यास–ग्रहण का पूर्वाभास और तदुपरान्त हरिद्वार में उसका आयोजन

✽ पिताजी का संन्यास-ग्रहण (चैत्र संक्रान्ति सं. 1990 वि.) नाम पड़ा ''अखण्डानन्द गिरि'' ✽ श्री श्री माँ की कृपा से ज्योतिष दादा की आश्चर्यजनक स्वास्थ्योन्नति ✽ मनोरमा दीदी का संन्यास ग्रहण (1 सौर वैशाख सं. 1991 वि.) ✽ विराजमोहिनी दीदी का वृत्तान्त ✽ दूर-स्थित कमला नेहरू का आश्चर्यजनक मातृदर्शन ✽ श्री श्री माँ का हम लोगों को बद्रीनारायण जाने का आदेश एवं स्वयं मसूरी गमन (सं. 1991, वैशाख वि.) ✽ हम लोगों की बद्रीनारायण यात्रा (19 सौर वैशाख, सं. 1991 वि.) तथा प्रत्यावर्तन (आषाढ़ सं. 1991 वि.), कनखल पहुँचकर निर्मल बाबू के मृत्यु-संवाद की प्राप्ति ✽ निर्मल बाबू के सम्बन्ध में दो-एक बातें ✽ मसूरी से श्री श्री माँ का देहरादून आगमन और हम लोगों का वहाँ आह्वान ✽ काशी में तरु की मृत्यु-हमारा विन्ध्याचल गमन (श्रावण, सं. 1991 वि.) ✽ श्री श्री माँ का देहरादून से ऋषिकेश, सोलन और बैजनाथ भ्रमण ✽ विन्ध्याचल से अखण्डानन्द स्वामीजी का और मेरा ढाका रमना आश्रम में निवास (माघ या फाल्गुन सं. 1991 वि.) ✽ भोलानाथजी का उत्तरकाशी गमन और वहाँ मन्दिर निर्माण

इक्कीसवाँ अध्याय 316–328

✽ सं. 1992 वि. वैशाख-श्री श्री माँ का जन्मोत्सव (ढाका, कलकत्ता और देहरादून में)-शची बाबू का वृत्तान्त ✽ नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर विशाल भक्तजन-सेवा के साथ श्री श्री माँ की उत्तरकाशी की यात्रा (आषाढ़, सं. 1992 वि.) ✽ श्री श्री माँ का संग होने से सबका महाआनन्द के साथ पर्वतीय मार्ग में आरोहण और उत्तरकाशी में उपस्थिति ✽ उत्तरकाशी में समारोह के साथ मन्दिर-प्रतिष्ठा (आषाढ़, सं. 1992 वि.) ✽ उत्तरकाशी से भोलानाथजी का गंगोत्री गमन ✽ श्री श्री माँ के नेतृत्व में उत्तरकाशी से सबका प्रत्यावर्तन ✽ लौटती बार भीषण पर्वतीय मार्ग होने पर भी श्री श्री माँ के संग रहने से सबको अपूर्व आनन्दानुभव ✽ श्री श्री माँ का मसूरी होकर देहरादून शुभागमन ✽ देहरादून में श्री श्री माँ-मिस शारदा शर्मा, नरसिंह एवं अन्यान्य कतिपय भक्तों का वृत्तान्त-शारदा शर्मा का नारायण के साथ विवाह ✽ देहरादून में श्री श्री माँ और भोलानाथजी-आनन्द चक में भोलानाथजी का यज्ञ ✽ श्री श्री माँ का देहरादून से हरिद्वार गमन ✽ हरिद्वार से पंजाब की ओर यात्रा-श्री श्री माँ का बैजनाथ

में एवं भोलानाथजी का ज्वालामुखी में अवस्थान ✻ श्रीमती भ्रमर घोष का वृत्तान्त एवं शिव के साथ उसका विवाह ✻ श्रीमती भ्रमर घोष श्री श्री माँ की बड़ी माँ

बाईसवाँ अध्याय 329–332

✻ सं. 1992 वि. का अगहन–काशीधाम में श्री श्री माँ का विद्वद्वर बाबू भगवानदास के साथ परिचय तथा श्रीमद् विशुद्धानन्द स्वामीजी के साथ परिचय तथा श्रीमद् विशुद्धानन्द स्वामीजी के साथ श्री श्री माँ की भेंट ✻ श्री श्री माँ के मुँह के कुछ गाने ✻ कीर्तन के समय वीरेन्द्र दादा को अद्भुत दर्शन और अवस्था ✻ 'हरिबोल' 'हरिबोल' कहने के सम्बन्ध में ही श्री श्री माँ की उक्ति

तेईसवाँ अध्याय 333–340

✻ काशीधाम से श्री श्री माँ का पुनः तारापीठ आगमन ✻ तारापीठ में श्री श्री माँ द्वारा ज्योतिष दादा और मेरे बीच भाई–बहन का सम्बन्ध स्थापन ✻ उक्त सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दोनों को साथ–साथ चटगाँव जाने के लिए सहसा श्री श्री माँ का आदेश ✻ ढाका में श्री श्री माँ और ज्योतिष दादा तथा मेरा ढाका लौटना ✻ ढाका से पारुलदिया गमन ✻ वहाँ रायबहादुर योगेश बाबू के राधाकृष्ण मन्दिर की भोलानाथजी के द्वारा प्रतिष्ठा ✻ पारुलदिया से कलकत्ता आगमन ✻ बाबू यतीशचन्द्र गुहा महाशय के बालीगंज के मकान में श्री श्री माँ का पदार्पण–क्षितीशचन्द्र गुहा महाशय का वृत्तान्त ✻ क्षितीश दादा की मृत्यु एवं श्री श्री माँ का पुनः तारापीठ गमन ✻ भ्रमर की छोटी बहन के कठिन रोग के सम्बन्ध में भ्रमर के प्रति श्री श्री माँ का गुप्त उपदेश एवं उसके पालन से उसके रोग की शान्ति

चौबीसवाँ अध्याय 341–346

✻ कलकत्ते में श्री श्री माँ के भोग के सम्बन्ध में एक आश्चर्यमय घटना ✻ कलकत्ते में एक लड़के के पूर्व जन्म के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति ✻ भक्तगण के रखे हुए श्री श्री माँ के अनेक नाम ✻ श्री श्री माँ की शारीरिक क्रिया का परिचय ✻ 'साधन' और गृहस्थ' पदों का श्री श्री माँ के द्वारा किया हुआ अर्थ ✻ बाजितपुर की एक घटना–भोलानाथजी की अचरज भरी रोग–निर्मुक्ति ✻ श्री श्री माँ कृत गायत्री महामंत्र का अर्थ

✲ श्री श्री माँ के रूप और गुणों के सम्बन्ध में कतिपय प्रत्यक्षदर्शियों के मन्तव्य ✲ काशी की एक घटना ✲ श्री श्री माँ के अन्तर्यामित्व और सर्वदर्शित्व के उदाहरण दूसरे कतिपय वृत्तान्त ✲ विद्याकूट की घटना ✲ ढाका की घटना (सं. 1992 वि. अगहन) अधूरी बात पूरी करने का आदेश ✲ भगवत्कृपा और कर्मफल के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क पर घटना

पच्चीसवाँ अध्याय 347–354

✲ श्री श्री माँ का तारापीठ में पुनः आगमन ✲ श्री श्री माँ के तारापीठ में निवास-काल में तारापीठ की उन्नति ✲ चन्द्रग्रहण के दिन श्री श्री माँ के दर्शनार्थ जनता की अपार भीड़ ✲ फूलों के साज-सामान से श्रीकृष्ण वेश में और श्री रामचन्द्र के वेश में श्री श्री माँ ✲ तारापीठ की एक घटना ✲ तारापीठ में घटी एक अन्य घटना ✲ तारापीठ में घटी दूसरी एक घटना- माणिक का अकस्मात् आगमन एवं श्री श्री माँ के मुँह से उसकी पूर्व सूचना ✲ तारापीठ में यज्ञकुण्ड निर्माण एवं उसमें यज्ञारम्भ (सं. 1992 वि. पौष संक्रान्ति) ✲ उक्त यज्ञकुण्ड के सामने एक छोटे से पक्के मकान का निर्माण - श्री श्री माँ की अद्भुत कार्य-प्रणाली और कार्य-समाधान ✲ गंगासागर स्नान के उपरान्त भोलानाथजी का तारापीठ लौटना ✲ तारापीठ के मैदान में वन-भोजन और बेरोकटोक प्रसाद वितरण ✲ मरणी भोलानाथजी की दत्तक पुत्री ✲ मेरा और मरणी का उपनयन (सं. 1992 वि., माघ 19 सौर) ✲ मरणी का विवाह (सं. 1992, वि. माघ 24 सौर) ✲ श्री श्री माँ का तारापीठ त्याग (सं. 1992 वि., माघ 26 सौर)

छब्बीसवाँ अध्याय 355–360

✲ श्रीरामपुर के गौरांग-मन्दिर में श्री श्री माँ ✲ नवद्वीप में श्री श्री माँ ✲ बरहमपुर तथा टाटानगर में श्री श्री माँ ✲ विन्ध्याचल जाते समय मार्ग में हावड़ा स्टेशन पर श्री श्री माँ और वहाँ भक्तजनों की अपार भीड़ ✲ हावड़ा स्टेशन पर यतीश दादा का विशेष आदर ✲ विन्ध्याचल आश्रम में आगमन ✲ विन्ध्याचल निवास का वृत्तान्त ✲ विन्ध्याचल आश्रम में यज्ञशाला की प्रतिष्ठा (सं. 1992 वि., फाल्गुन होली पूर्णिमा के दिन) ✲ विन्ध्याचल में श्री श्री माँ के निकट श्रीयुत् महेशचन्द्र भट्टाचार्य ✲ विन्ध्याचल में गेरुवा परिधान से युक्त क्षेत्र बाबू

सत्ताईसवाँ अध्याय

361–364

❊ इलाहबाद, चित्रकूट और आगरा गमन ❊ मथुरा, वृन्दावन और जयपुर गमन ❊ दिल्ली और देहरादून गमन ❊ देहरादून में अवस्थान ❊ एक रात के लिए सहसा देहरादून त्याग और रायपुर अवस्थान ❊ देहरादून वापस आना और वहाँ श्री श्री माँ का अस्थिर भाव देखने पर विपत्ति की आशंका एवं उसके बाद ही भोलानाथजी के दूसरे भानजे की मृत्यु के समाचार की प्राप्ति ❊ देहरादून (किशनपुर) के नवीन आश्रम के उद्घाटन का आयोजन

अट्ठाईसवाँ अध्याय

365–372

❊ देहरादून आश्रम के उद्घाटन के पहले नाना स्थानों की भक्त मण्डली का अपूर्व सम्मिलन, आनन्द और यज्ञ द्वारा उद्घाटन आरंभ (सं. 1993 वि. वैशाख सौर 19) ❊ देहरादून (किशनपुर) आश्रम की प्रतिष्ठा एवं महाआनन्द की लहर प्रवाहित कर शंख, घण्टा और ऊलू ध्वनि (मंगल ध्वनि) के बीच भक्तों के साथ श्री श्री माँ का आश्रम में प्रवेश (सं. 1993 वि., वैशाख की 25वीं सौर तिथि के रात्रि शेष में) ❊ आश्रम के उद्घाटन के अवसर पर श्री श्री माँ की षोडशोपचार से पूजा और उस समय श्री श्री माँ के अपूर्व मनोहारी रूप का विकास ❊ यज्ञ की पूर्णाहूति एवं भक्तजनों का शान्ति-जल ग्रहण (स. 1993 वि., वैशाख 27 सौर) ❊ भक्तों पर अनुग्रह करने वाली श्री श्री माँ श्रान्तिशून्य-आश्चर्यजनक दृश्य ❊ श्री श्री माँ के साथ 'राममूर्ति' की भेंट और महान् आनन्द की प्राप्ति ❊ अस्वस्थ भोलानाथजी को छोड़कर श्री श्री माँ का देहरादून त्याग तथा सोलन-यात्रा ❊ सोलन गमन ❊ देव-मन्दिर से सटे हुए कमरे में निवास ❊ सोलन के राजा, राजमाता, रानी आदि द्वारा मातृचरण वन्दना ❊ नवीन-नवीन भक्तों का समागम ❊ भोलानाथजी आदि का आगमन-ज्योतिष दादा की अस्वस्थता की बात

उन्तीसवाँ अध्याय

373–379

❊ सोलन से शिमला यात्रा ❊ शिमला जाने के मार्ग में दो मृत्यु-घटनाओं का पूर्वाभास-काली-मन्दिर में अवस्थान ❊ उक्त काली-मन्दिर में साधु दयाल बाबा की मृत्यु का संवाद ❊ काली-मन्दिर के प्रधान पुरोहित की मृत्यु का संवाद ❊ शिमला में मातृ-दर्शन के लिए बहुत भक्तों का

समागम * पहाड़ी तथा बंगाली महिलाओं की व्याकुलता भरी श्री श्री माँ के चरणों में उपस्थिति-श्री श्री माँ की अद्भुत आकर्षण शक्ति * गृहस्थों के लिए सहज साधना के प्रकार के संबंध में श्री श्री माँ का उपदेश * एक पंजाबी महिला के प्रश्न पर श्री श्री माँ का उपदेश- एकांत में वास, सत्संग और सदालोचना की नितांत आवश्यकता है * मन को स्थिर करने के उपाय के संबंध में श्री श्री माँ का उपदेश * श्री श्री माँ का प्रचण्ड आकर्षण * समाधि पद का अर्थ

तीसवाँ अध्याय 380–384

* श्री श्री माँ का उपदेश-हृदय की अधीरता स्पन्दनरूप है, यह स्पन्दन भगवान् की स्वयं प्रकाशरूपता का परिचायक है * मन्त्रप्रद गुरु अभिज्ञ हो चाहे अनभिज्ञ बीजमन्त्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति * उक्त उपयोगिता की पोषक एवं शिक्षापद्र कहानी * शिमला में श्री श्री माँ के दर्शनेच्छुक भक्तों की सर्वदा ही भीड़ * 'ऋषि', 'मुनि', 'दुनिया', 'संसार', 'घर' आदि पदों का श्री श्री माँ के द्वारा किया हुआ अर्थ * सूर्यग्रहण के समय नाम-कीर्तन (सं. 1993 वि. आषाढ़) * वृक्ष और छाया के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा की व्याख्या * भक्ति-श्रद्धा के साथ नाम-जप करने से मन धीरे-धीरे द्रवीभूत होता है

इकतीसवाँ अध्याय 385–394

* शिमला में वार्षिक नाम-संकीर्तन की अधिवास आदि प्राथमिक तैयारी * शिमला में 'नाम-कीर्तन यज्ञ' (सं. 1993 वि. आषाढ़ सौर 9) श्री श्री माँ के द्वारा की गई 'तपस्या' की व्याख्या * नाम-कीर्तन यज्ञ में कीर्तन सुनकर श्री श्री माँ का अद्भुत भावावेश * सावधान रहने पर भी श्री श्री माँ का अभूतपूर्व भावावेश * श्री श्री माँ की बाहरी क्षणिक चंचलता * शिमला में महिला-कीर्तन का अद्भुत ढंग से सूत्रपात * कीर्तन सुनते-सुनते श्री श्री माँ के शरीर में अद्भुत अस्वाभाविक क्रिया * श्री श्री माँ के मुँह से स्वतः ही स्तोत्रादि का निर्गमन * कीर्तन में तरह-तरह के स्तोत्रादि का निकलना आदि सब-कुछ शरीर की केवल बाहरी क्रिया मात्र है-भीतर से श्री श्री माँ स्थिर, धीर, सदा एक ही भाव में अवस्थित * भावावस्था में श्री श्री माँ की मूर्ति की बाहर से भिन्नता * कीर्तन में भोलानाथजी की

शान्ति-विहीनता ✲ श्री श्री माँ के व्युत्थान की पूर्वावस्था ✲ व्युत्थान के पहले की अद्भुत अवस्था

बत्तीसवाँ अध्याय 395–399

✲ श्री श्री माँ के नेतृत्व में शिमला में महिला कीर्तन-महाआनन्द-अद्भुत दृश्य (सं. 1993 वि. आषाढ़ 10 सौर) ✲ श्री श्री माँ के शिमला आगमन के स्मारक रूप में वर्ष में एक दिन महिलाओं के नाम-कीर्तन की व्यवस्था ✲ श्री श्री माँ के मुँह से महिला-कीर्तन की प्रशंसा एवं ''सविकल्प समाधि'' अवस्था और काल का निर्देश ✲ महिला कीर्तन में अनुपस्थित महिलाओं का दु:ख प्रकाश एवं उनके साथ श्री श्री माँ का नाम-कीर्तन ✲ श्री श्री माँ के सोलन गमन का प्रस्ताव- श्री श्री माँ की प्रचण्ड आकर्षिणी शक्ति ✲ श्री श्री माँ के उपदेश का 'व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करना ठीक नहीं'' स्मरण अत्यावश्यक है ✲ श्री श्री माँ के साथ सोलन जा सकने की आशा में सबकी महान् आनन्द-कीर्तन की चर्चा

तैतीसवाँ अध्याय 400–404

✲ भक्तों के साथ श्री श्री माँ का सोलन गमन (सं. 1993 वि., आषाढ़ 13 सौर) ✲ सोलन में श्री श्री माँ के साथ अपार कीर्तनानन्द ✲ भक्तवांछा कल्पतरु श्री श्री माँ के संबंध में एक आश्चर्यमयी घटना ✲ राजा-प्रजा सभी का समान रूप से कीर्तन में योग प्रदान और नृत्य-अद्भुत दृश्य ✲ सोलन में वार्षिक कीर्तन का उपदेश ✲ राजा के मन में अनुरूप प्रेरणा एवं उसके कारण राजा का अनुरोध ✲ श्री श्री माँ के भाव में परिवर्तन-पहले के कठोर वैदान्तिक भाव के स्थान पर इस समय प्रेम से लबालब भाव ✲ शिमला के एक लड़के का श्री श्री माँ और भोलानाथजी का फोटो ग्रहण (सं. 1993 वि., 16 सौर आषाढ़) ✲ श्री श्री माँ की प्रेरणा से समागत उत्तर तथा पश्चिमी प्रान्त की महिलाओं द्वारा नाम-कीर्तन ✲ श्री श्री माँ की रात्रि बिताने की प्रणाली

चौंतीसवाँ अध्याय 405–412

✲ अरबी का पेड़ देखकर एकाएक अरबी का शाक खाने की इच्छा ✲ नाम-जप और कीर्तन के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का उपदेश ✲ श्री

भगवान् का स्मरण करने के लिए यथासम्भव दैनिक समय निर्दिष्ट कर रखना चाहिए ⁕ इन सब उपदेशों का मधुरतम वास्तविक फल ⁕ श्री श्री माँ के इसी प्रकार के अन्यान्य उपदेश श्री कृष्णलीला अप्राकृत लीला है, प्रकृति से परे हुए बिना यह समझ में नहीं आ सकती ⁕ श्री कृष्ण और गोपियाँ वास्तव में एक ही हैं पहले की वासना से उत्पन्न प्रारब्ध से ऋषियों का प्रादुर्भाव होना है–पूर्ण वैष्णवों का लक्षण ⁕ पहले दिन अरबी का साग खाने की इच्छा व दूसरे दिन एकाएक उसके साग का भोग ⁕ अपने शरीर की बीमारी के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति ⁕ भक्तवत्सला श्री श्री माँ हृदय की मौन अधीर प्रार्थना पूर्ण करने वाली हैं– पंजाबी महिला के हाथ से अपने आप भोग ग्रहण ⁕ सोलन छोड़ने का प्रस्ताव एवं भक्तों को विशेष दु:ख ⁕ सोलन छोड़ने के पहले श्री श्री माँ और वीरेन्द्रजी का मधुर संलाप ⁕ श्री श्री माँ स्वातन्त्र्य रहित एक प्रकार का यन्त्र हैं ⁕ श्री श्री माँ नाम–कीर्तन की उपदेशिका हैं ⁕ श्री श्री माँ निर्भर और चुप रहने वाली सन्तान के प्रति अधिक वात्सल्य रखती हैं ⁕ सोलन से देहरादून गमन

पैंतीसवाँ अध्याय 413–416

⁕ देहरादून में भक्त समागम ⁕ शिमला यात्रा ⁕ शिमला में मधुर नाम–कीर्तन ⁕ महिला कीर्तन में माँ का अद्‌भुत भाव, कथा वार्ता ⁕'माँ–माँ' कीर्तन का आरम्भ

छत्तीसवाँ अध्याय 417–423

⁕ माँ की शक्ति ⁕ मन स्थिर करने के उपाय ⁕ जप और सांस ⁕ नीति की तीन कहानियाँ–संसार और तपस्या का अर्थ

सैंतीसवाँ अध्याय 424–428

⁕ शिमला में विनय बाबू से एकान्त बात ⁕ सोलन आना ⁕ डाक्टर उपेन्द्र की बात को लक्ष्य करके भक्तों को उपदेश ⁕ सोलन में ज्योतिष दादा से भोग और त्याग की बात ⁕ राजमाता सोलन को चित्त स्थिर करने का उपाय बताना और ज्ञान उपदेश ⁕ माँ की आकर्षण शक्ति ⁕ माँ को साधारण निद्रा नहीं आती है

अड़तीसवाँ अध्याय 429–433

✻ वजीर साहब के यहाँ माँ का भोग ✻ साँप देखना ✻ भोग और त्याग सम्बन्धी बातें ✻ आनन्द प्राप्ति के लिए कैसे प्रार्थना करना ✻ जमीन तैयार करने की जरूरत ✻ नवद्वीप के मौनी साधु बाबा का हाल बताना

उन्तालीसवाँ अध्याय 434–436

✻ माँ के मुख से गाना सुनकर सबका मन कुछ उदास हो गया ✻ माँ ने कहा यही तो महासाधना है ✻ दृढ़ संकल्प की आवश्यकता ✻ ‘अशरीरी लोग मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हैं–जैसे तुम लोग ✻ मन शुद्ध रखने से स्व स्वरूप अपने आप प्रकट हो जाता है ✻ प्राणायाम का अर्थ–प्राणों का आयाम ✻ एक जगह ऐसी है जहाँ पर पहुँचने से सब भाषा बोली जा सकती हैं

चालीसवाँ अध्याय 437–442

✻ माँ कसौली देखने गई और सोलन वापस आई ✻ शरीर की नाना प्रकार की अवस्थाएँ होने पर भी माँ के अन्दर कोई परिवर्तन नहीं होता ✻ आज खाने का दिन न होने पर भी माँ ने कृपा करके राजा और रानी सोलन के हाथ से खाया ✻ माँ का रोग की मूर्ति देखना ✻ उसी रात भोलानाथजी अस्वस्थ ✻ माँ का कहना ‘जितना अधिक समय मिले उसके नाम में देना

इकतालीसवाँ अध्याय 443–449

✻ ज्योतिष बाबू को सोलन छोड़कर माँ का दिल्ली होकर विन्ध्याचल आना ✻ मिरजापुर के उपेन्द्र डॉक्टर और महेन्द्र बाबू की नातिन को उपदेश ✻ महेश भट्टाचार्य की तरफ से पंचवटी स्थापना ✻ माँ भोलानाथजी के साथ कलकत्ते की तरफ गई ✻ दीदी को विन्ध्याचल और अखण्डानन्दजी को देहरादून रहने की आज्ञा

बयालीसवाँ अध्याय 450–454

✻ माँ कलकता और राजशाही घूमकर रामपुर से अज्ञातवास चली गई ✻ ‘एक वस्त्र से ही जाऊँगी’ ✻ खबर मिली कि पुरी में जटिया बाबा के

आश्रम गई ❊ माँ से पूछा कि इस तरह सबको रुलाने से क्या लाभ है ❊ कहा इस तरह रोने से जो कुछ मैल होगा सब कुछ धुल जाएगा

तैतालीसवाँ अध्याय 455–459

❊ अज्ञातवास में माँ की खबरें–पुरी, खड़गपुर, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, फैजाबाद, लखनऊ, कानपुर आदि जगहों में जाने की मिली ❊ कमल को माँ ने मथुरा से कलकत्ते वापिस कर दिया ❊ केवल विराजमोहिनी दीदी साथ थी ❊ ढूँढ़ने को मना कर दिया था ❊ पुरी में श्यामदास बाबाजी माँ से मिलने के लिए व्याकुल हो रहे थे ❊ माँ ने अकस्मात् पहुँचकर उनकी इच्छा पूरी की ❊ किसी ने माँ से पूछा क्यों ऐसे घूमती फिरती हो ? उत्तर दिया 'इस समय बाग में घूम रही हूँ, कौन पेड़ कैसा है देख तो आऊँ

चौवालीसवाँ अध्याय 460–461

❊ अज्ञातवास में माँ की इटावा और लखनऊ, बाराबंकी, नैनीताल पहुँचने की खबर ❊ दीदी का काली पूजा के समय ढाका आना

पैंतालीसवाँ अध्याय 462–464

❊ जब किसी आश्रम या मन्दिर में माँ के ठहरने की कुछ सुविधा हो जाती थी तो उस स्थान को छोड़कर माँ दूसरी जगह चली जाती थी ❊ वहाँ भी लोगों की भीड़ हो जाती ❊ माँ ने कहा– 'इस धूप में क्यों बार–बार इतना कष्ट करके आते हो, तुम भी आदमी, मैं भी आदमी, फिर क्या देखने आते हो

छियालीसवाँ अध्याय 465–472

❊ सन् 1956 में माँ के तारापीठ रहने के समय की बातें–एक मुसलमान को पिताजी कहकर बुलाती ❊ दूसरा नाम प्रेमगोपाल रखा, उनके हाथ से खाया ❊ एक बूढ़े ब्राह्मण का अपने रचे हुए पद गाना 'सुनो, बाजीगर की लड़की' और करुणा की सागर माँ मेरी' ❊ माँ की आगरे जाने की खबर ❊ क्या बिना दीक्षा के केवल नाम से ही काम हो सकता है ❊ हरिद्वार की 'बारीक माँ' का वृत्तान्त ❊ 'बंगाल की मायाविनी किस प्रकार जादू की गोली खिलाती है।' ❊ शिमला में माँ ने हारान बाबू का कैश बॉक्स किस चीज से भरकर उनको वापिस दिया

सैंतालीसवाँ अध्याय 473–477

✻ माँ का आदर्श जीवन–पुत्री, बहु, गृहिणी, पति सेवा, घर के काम में निपुणता, 'जिस समय जो करूँगी जी जान से करूँगी, काम बड़ा हो या छोटा ✻ पूर्वकाल की दो आश्चर्यजनक घटनाएँ (1) सतीश बंदोपाध्याय के पुत्र सम्बन्धी (2) अबला की लड़की की

अड़तालीसवाँ अध्याय 478–485

✻ माँ की बीमारी और भ्रमर का माँ को सपने में देखना ✻ माँ की पहले की बातें ✻ चूंचुड़ा, नवद्वीप ✻ माँ का साँप को ढूंढ़ना ✻ सलकिया से दक्षिणेश्वर जाने की अद्‌भुत घटना

उनचासवाँ अध्याय 486–490

✻ माँ के अज्ञातवास के हाल–कलकत्ता, रामपुर, खड़गपुर, पुरी, भुवनेश्वर, मथुरा, वृन्दावन, इटावा, सुलतानपुर

पचासवाँ अध्याय 491–497

✻ अज्ञातवास के हाल–फैजाबाद, अयोध्या, लखनऊ, इटावा, नैमिषारण्य, बाराबंकी, बरेली में श्रीमती जसपाल (महारतनजी) और श्रीमती दीक्षित से मिलना और बरेली की महिलाओं के साथ लीला और आनन्द, नैनीताल

इक्यावनवाँ अध्याय 498–502

✻ अज्ञातवास के हाल–कृष्णराम पन्त की तीव्र इच्छा ही माँ को नैनीताल ले गई ✻ नैनीताल की लीलाएँ वहाँ से बरेली जाना ✻ लाहौर, गढ़ मुक्तेश्वर, सुलतानपुर, अयोध्या, फैजाबाद, देवधर में एक रोगी स्त्री पर कृपा

बावनवाँ अध्याय 503–506

✻ देवधर से तारापीठ पहुँचकर अज्ञातवास की समाप्ति ✻ फिर आसाम यात्रा ✻ गोहाटी में लीला ✻ पांडुघाट में रेल में लड़के–लड़कियों से बातचीत और उपदेश

तिरेपनवाँ अध्याय 507–510

✻आसाम यात्रा ✻ डिब्रूगढ़ में कीर्तन और महोत्सव ✻ परशुराम कुण्ड में स्नान ✻ नौगाँव गमन

चौवनवाँ अध्याय 511–515

✻ आसाम यात्रा ✻ शिलांग पहुँचना ✻ वहाँ की लीलाएँ ✻ एक लड़की का कहना–क्या जाने क्यों ये हमें अत्यन्त प्यारी लगती हैं।' ✻ उसने माँ का नाम 'नारायणी' रखा और स्वयं माँ की 'मझली माँ बनी ✻ माँ का डॉक्टर सरकार के घर जाना और वहाँ नारायण चक्र, दक्षिणावर्त शंख, एकमुखी रुद्राक्षादि देखना ✻ डॉक्टर की स्त्री को गुरुप्रिया दीदी के जीवन का और ब्रह्मचारिणी बनने का सब हाल बताना ✻ शिमला से लौटना

पचपनवाँ अध्याय 516–521

✻ पांडुघाट में उन बच्चों का व्याकुल होकर माँ की खोज करना ✻ राजशाही, नित्यानन्द बाबू के घर जाना ✻ कलकत्ता, जमेशदपुर, फुल्लयूथिका (बूनी) पर कृपा ✻ जमशेदपुर से कलकत्ता होकर नवद्वीप जाना

छप्पनवाँ अध्याय 522–526

✻ माँ का नवद्वीप में भक्तों के साथ गंगाजी पर नाव में जाना ✻ माँ के माथे पर आँख के पास चोट लगना ✻ ललिता सखी के पास माँ का जाना ✻ और उनका तरह–तरह का उपदेश ✻ एक पतिव्रता स्त्री की कहानी

सत्तावनवाँ अध्याय 527–531

✻ कृष्ण लीला प्राकृत है या अप्राकृत ✻ केवल ब्राह्मण ही क्यों ठाकुर भोग बनाने के अधिकारी हैं ✻ माँ ने अपने बचपन की बातें बताई ✻ जब जिस भाव से प्रकट होने की जरूरत होती है वह स्वतः हो जाता है ✻ माँ का सेवादासी के मठ पर जाना और सत्संग कीर्तन ✻ सेवादासी का कहना कि कृष्णजी ने उनको स्वप्न में बताया है कि वे माताजी के शरीर में रहते हैं

अट्ठावनवाँ अध्याय 532–534

✻ माँ का नवद्वीप में बंशीदास बाबाजी की कुटी पर जाना ✻ माँ क्यों गंगाजी जाती हैं और फल देती हैं... ✻ नवद्वीप में वन भोजन ✻ वैष्णवी माँ से मिलना

उनसठवाँ अध्याय 535–539

✻ शिमला की तरह स्त्रियों के साथ कीर्तन–प्रसाद जिसको दिया जाये उसी को खाना उचित है ✻ माँ वैष्णवी माताजी के साथ कीर्तन में नाचने लगी और लोग भी नाचने लगे ✻ माँ का गाना 'यह कौन नया योगी है ✻ जमशेदपुर की बातें ✻ पुलिस दारोगा के आकर्षण से माँ थाने में चली गई

साठवाँ अध्याय 540–545

✻ अपर्णा देवी के स्वप्न का वृत्तान्त ✻ जब तक नाम रूप है तब तक नाम ही सब कुछ है ✻ शान्ति तभी होगी जब अपनी इच्छा को उसकी इच्छा से मिला दिया जाय ✻ माँ का सब भक्तों को साथ लेकर मन्दिरों में जाना और कीर्तन करना ✻ माँ अपनी अच्छा से कुछ नहीं करती, जैसा भक्तों का भाव होता है वही हो जाता है

इकसठवाँ अध्याय 546–548

✻ माँ का भक्तजनों से कहना–'नाम–कीर्तन करो, खाली चुपचाप बैठना ठीक नहीं है ✻ माँ, आप किस सम्प्रदाय की हैं? ✻ नवद्वीप से कलकत्ता जाना

बासठवाँ अध्याय 549–555

✻ कलकत्ता पहुँचना ✻ माँ के छुटपन की बातें बताई ✻ माँ के शरीर में साधन के भाव और कार्य क्यों सम्पन्न हुए ✻ देवताओं को प्रणाम करने पर माँ का कैसा भाव हो जाता था ✻ ढाका–गमन, ढाका में स्त्रियों के साथ कीर्तन ✻ ढाका से कृष्णसागर होकर बरहमपुर जाना ✻ वहाँ से वापिस कलकत्ता आना ✻ रामदास बाबाजी का कीर्तन फिर विन्ध्याचल यात्रा

तिरसठवाँ अध्याय 556–557

❊ विन्ध्याचल आश्रम में कुंड संस्कार व अग्नि-स्थापना ❊ छुटपन की बातें ❊ माँ प्याली तोड़कर लाई ❊ ढाका की एक और पहले की घटना ❊ शची बाबू पर कृपा

चौंसठवाँ अध्याय 558–564

❊ काशीगमन ❊ साधन से भजन आनन्द न मिलने पर भी किये जाना, इसी को तपस्या कहते हैं, यानी ताप सहना ❊ जब कष्ट का अनुभव नहीं रहेगा तब तपस्या की समाप्ति हो जायेगी ❊ काशी के डॉक्टर दासगुप्त को स्वप्न में दर्शन ❊ 'तुलसी मस्तक तब नवे धनुष बान लो हाथ' में शंका समाधान ❊ स्वामी पूर्णानन्द के प्रश्न 'माँ आप क्या स्वप्न देखती हैं' का जवाब ❊ चटगाँव गमन ❊ यज्ञ की अग्नि-रक्षा का रहस्य

पैंसठवाँ अध्याय 565–571

❊ भगवान् पर निर्भर रहने से वे आहार देते हैं-इस सम्बन्ध में माँ की एक कहानी ❊ जैसे स्त्रियों के लिए पति सेवा बताई गई है वैसे ही पुरुषों को स्त्रियों से गृहलक्ष्मी का व्यवहार आवश्यक ❊ माँ का हस्त स्पर्श होने से अद्‌भुत भाव का जागना ❊ विश्वास अंधा होता है, कीर्तन

छियासठवाँ अध्याय 572–584

❊ सीताकुण्ड में आगमन ❊ गुरु पर श्रद्धा और धैर्य साधना के अंग हैं ❊ स्वधर्म क्या है? ❊ 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' का भावार्थ ❊ शास्त्र के निर्देशानुसार चलने से सत्य का अनुभव होता है ❊ मनुष्य खण्ड आनन्द से तृप्त नहीं होते, इसलिए अखण्ड आनन्द की खोज करते हैं, ❊ साधन भजन के लिए प्रयत्न चाहिए ❊ मन्त्र सीखने से मन्त्र-शक्ति दिखाई पड़ती है ❊ सभी काम ठीक ढंग से करना आवश्यक है ❊ माँ की मौन अवस्था की स्थिति

सड़सठवाँ अध्याय 585–594

❊ नाम भी लो और नामी के ऊपर निर्भर भी रहो-जैसे रोगी वैद्य के ऊपर निर्भर रहता है ❊ उनकी इच्छा हुए बिना कुछ नहीं होता, यह सत्य

है, किन्तु वास्तव में ऐसा कहने के सब लोग अधिकारी नहीं हैं, काम करना चाहिए ❊ परैकोड़ा आगमन ❊ परैकोड़ा भ्रमण और कीर्तन ❊ अखण्ड भाव से चिन्तन किये बिना अखण्ड की प्राप्ति नहीं हो सकती ❊ माँ की आकर्षणी शक्ति

अड़सठवाँ अध्याय 595–598

❊ मन की चंचलता अभ्यास से दूर होती है ❊ एक अनुभवी ज्योतिषी के मत में माँ अदृष्ट से ऊपर साक्षात् ब्रह्मविद्या हैं ❊ जटू कृत आरती की आध्यात्मिक व्याख्या

उनहत्तरवाँ अध्याय 599–602

❊ नाम–कीर्तन की इच्छा न होने पर भी (बुद्धिरूपी माँ और अहंकाररूपी पिता की सहायता से) नाम–कीर्तन की चेष्टा करनी चाहिए ❊ दया और कर्मफल के समाधान का सहज उदाहरण ❊ माँ एक को लेकर हैं, इसीलिए आनन्दमयी हैं ❊ संसार में शान्ति पाने की आशा व्यर्थ है

सत्तरवाँ अध्याय 603–618

❊ काक्स बाजार में अष्टमी तिथि को आगमन, पहले ही माँ ने 'अष्टमी–अष्टमी' कहा है ❊ काक्स बाजार में अवस्थिति, भाव का परिवर्तन ❊ आनन्द कभी छोड़कर नहीं जाता, चाहे स्मृति रूप में हो या सत्य रूप में, सदा ही विद्यमान रहता है ❊ किसी पर भी भार सौंपो बन्धन टूट जायेगा ❊ काक्स बाजार में किसी–किसी को शक्ति का आभास देना ❊ शास्त्र पढ़ना और सीखना तभी तक आवश्यक है जब तक ठीक कर्म आरम्भ नहीं हुआ है ❊ माँ चिर दिन की ब्राह्मिका हैं ❊ भविष्य–वक्ताओं की शक्ति और श्रेणी का निर्देश

इकहत्तरवाँ अध्याय 619–642

❊ रामकूट गमन ❊ आना–जाना क्या अच्छा है? ❊ रामकूट के मार्ग में विशेष घटना ❊ आधी रात में रामकूट के मार्ग में नाम–कीर्तन और विष्णु मन्दिर में शेष रात्रि यापन ❊ काक्स बाजार में लौटना, रास्ते का दृश्य ❊ माँ की वाणी की सत्यता ❊ समाधि का प्रकार–भेद और शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया ❊ माँ की सब धर्मों में समान श्रद्धा और स्वभावतः

यौगिक क्रिया तथा भाव-समाधि आदि का स्वतः स्फुरण; माँ द्रष्टा मात्र हैं ✻ प्रत्येक शरीरधारी ही संसारी है। सभी धर्मावलम्बियों को प्रतिष्ठा दान ✻ गोपालजी की पत्नी मीरा के साथ उसके पति का बन्धन मोचन ✻ चाँदनी में समुद्र-तट पर कीर्तन ✻ सपत्नीक जज साहब का मातृ-वन्दन ✻ जमकर कीर्तन; आनन्द की लूट; ''सभी स्त्री हैं'' ✻ माँ अन्तर्यामिनी हैं; गम्भीर रात में रामकूट के कीर्तन दल का आगमन, राखे हरि मारे के? ✻ रामकूट-दल का कीर्तन ✻ माँ की निद्राहीन रात्रि ✻ बच्चों को लेकर सच्चिदानन्द खेल, जो हारेगा उसे निर्दिष्ट संख्या में भगवान् का नाम लेना होगा, इससे शिशुओं का नाम के प्रति झुकाव ✻ चक्रभेदन का उपाय, एक ही लक्ष्य से नाम लेना ✻ मन आनन्द चाहता है, इसीलिए चंचलता है ✻ सच्चिदानन्द खेल के बहाने लड़कों से नाम-कीर्तन कराना ✻ कृपा का अनुभव करना हो तो कृपा का अधिकारी होना चाहिए ✻ ''भगवान् सब व्यवस्था करते हैं''-सम्बन्धी कहानी

बहत्तरवाँ अध्याय 643–647

✻ रामू आगमन तथा वहाँ पंचवटी स्थापन

तिहत्तरवाँ अध्याय 648–657

✻ काक्स बाजार त्याग ✻ धर्म-धर्म सब लोग कहते हैं पर वास्तविक धर्म क्या है? ✻ चटगाँव आगमन ✻ परैकोड़ा गमन ✻ परैकोड़ा त्याग ✻ चटगाँव लौटना ✻ माँ का निर्मला माँ आदि के साथ कीर्तन और निर्मला माँ का भावावेश ✻ माँ के साथ कीर्तन में मुक्तकेशी माँ और निर्मला माँ का भावावेश, चटगाँव त्याग के पहले जज साहब की माँ को दर्शन दान ✻ माँ की विदाई का करुण दृश्य ✻ कलकत्ता जाते समय चाँदपुर आगमन ✻ चाँदपुर से कलकत्ता यात्रा

चौहत्तरवाँ अध्याय 658–662

✻ रात्रि में कलकत्ता-आगमन और छिपकर घर-घर 'जय राधे-राधे कृष्ण-कृष्ण' इत्यादि नाम-कीर्तन ✻ कलकत्ते से काशी यात्रा ✻ काशी आगमन और अहोरात्र कीर्तन ✻ महेश बाबू को सान्त्वना प्रदान-चिन्ता क्या है? ✻ दिल्ली जाते समय इलाहाबाद में भक्तों द्वारा मातृ-दर्शन

पचहत्तरवाँ अध्याय

663–676

✽ दिल्ली आगमन और वहाँ भक्त–मिलन ✽ दिल्ली के होलिकोत्सव में माँ का आनन्द–दान। कर्म से ही कृपा होती है, शुभ कर्म करना भी कृपा–सापेक्ष है, प्रारब्ध कर्म कैसे कटे ? ✽ मेरे कथन पर विश्वास करो। नाम लो निश्चय फल पाओगे, नाम करने से नामी का संग होता है और 'वे' मिल जाते हैं। पति में परम पति, बाल–बच्चों में बालगोपाल, कुमारियों में देवीरूप से सेवा करने पर वह सेवा उन्हीं (भगवान्) के निकट पहुँचती है ✽ पिनाकपाणि नामक व्यक्ति की नास्तिकता विशेष भक्ति में परिवर्तित ✽ माँ का संग छोड़कर भक्त लोग ऑफिस जाना भूल गये

छिहत्तरवाँ अध्याय

677–689

✽ बरेली यात्रा ✽ माँ के द्वारा प्रश्नों के समाधान से अमेरिकन साहब को सन्तोष ✽ काक्स बाजार में माँ जिस तम्बू में सोती थी वहाँ भक्तों द्वारा कीर्तन–गृह निर्माण की व्यवस्था ✽ दिल्ली से और अन्यान्य स्थानों से आगत भक्तों का बरेली धर्मशाला में कीर्तन ✽ माँ की आकर्षणी शक्ति से सभी उनके पास रहना चाहते हैं ✽ नाना प्रकार के अपूर्व वेशों से भक्तों का माँ के निकट कीर्तन और आरती ✽ माँ की दूर दृष्टि ✽ भक्तों के साथ गंगाजी में नाव से भ्रमण और कीर्तन ✽ बरेली से नैनीताल–यात्रा, धनी परिवार की स्त्रियों का व्याकुल भाव से गाड़ी के साथ–साथ दौड़ना

सतहत्तरवाँ अध्याय

690–693

✽ नैनीताल आगमन ✽ आत्मा–आत्मा में तो बन्धन है ही। दीक्षा देकर नया बन्धन क्या करूँ? ✽ अमेरिकन साहब को स्वदेश लौटते समय माँ का उपदेश– ''तुम्हें एक अखण्ड की चिन्ता में एक ही भाव से संलग्न देखना चाहती हूँ''

अठहत्तरवाँ अध्याय

694–704

✽नैनीताल में रहते कृष्ण–नगर के भक्तों के निवेदन की अनुभूति ✽ पूर्व दिन एक बालक को शिवजी के निकट प्रार्थना करने पर अपूर्व भाव से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति ✽ भूमिया धारा नामक स्थान पर माँ की सूक्ष्म शरीरी के साथ भेंट ✽ भाव के विविध स्तरों की अवस्थाओं का विवरण

❊ रामनवमी के दिन, नयना देवी के मन्दिर के सामने ताल के किनारे माँ को सम्मुख रखकर पण्डितों का यज्ञ ❊ कलकत्ते से माँ के दर्शनों के लिए आगत एक अंग्रेज महिला ने अपने मार्ग–सहायक कुछ महात्माओं के चित्र दिखाये

उन्यासीवाँ अध्याय 705–721

❊ नैनीताल से अल्मोड़ा गमन, साथ में अंग्रेज महिला का माँ के प्रति आवेगपूर्ण श्रद्धा का निदर्शन ❊ कैलास जाने के रास्ते में स्थित गर्बियान की पाठार्थिनियों का माँ को सम्भाषण एवं कैलास ले जाने का आवेदन ❊ जड़–समाधि जड़ता की अवस्था नहीं है। चिन्ता की क्रिया भीतर रहती है ❊ ब्रह्मा, विष्णु, शिव कल्पना नहीं है, सभी हैं ❊ बंगाल की लड़कियों की तरह यहाँ की लड़कियाँ भी माँ के पास ही रहना चाहती हैं ❊ आत्मज्ञानियों की शक्ति की बात, दूसरे के मन की बात जानना विशेष कुछ नहीं है ❊ कर्म बिना किये महात्माओं की कृपा का अधिकार नहीं होता ❊ सृष्टि, स्थिति, लय उन्हीं की लीला है, इसमें पक्षपात नहीं है। कर्मफल ही लोग भोग रहे हैं ❊ माँ सब अवस्थाओं में समाधिस्थ रहती हैं ❊ माँ को थोड़े समय के लिए छोड़ देने पर भी भक्तों को कष्ट ❊ 'उत्तर–वृन्दावन' न जा सकने के कारण कालीमठ गमन और प्रत्यावर्तन ❊ सब ठीक रहे तो कैलास जाना स्वीकार है ❊ नैनीताल यात्रा। पहाड़ी लड़कियों को माँ के वियोग का कष्ट ❊ सब भूतों में ही एक अभिन्न चैतन्य है, मनुष्य में भगवान् का विशेष प्रकाश है। जिस भाव में सृष्टि, उसी भाव में लय, जैसे जिस रास्ते से नैनीताल जाना होता है उसी रास्ते से ही लौटा भी जाता है ❊ अमेरिकन महिला की माँ के निकट अन्तर में साधु होने के आशीर्वाद की प्रार्थना

अस्सीवाँ अध्याय 722–727

❊ बरेली गमन

इक्यासीवाँ अध्याय 728–732

❊ जमशेदपुर जाते हुए मार्ग में लखनऊ और काशी ❊ हावड़ा स्टेशन होते हुए जमशेदपुर गमन ❊ जमशेदपुर से कलकता आगमन

बयासीवाँ अध्याय 733–740

✲ कलकत्ते के जन्मोत्सव के अवसर पर कीर्तन और लीला का विवरण

तिरासीवाँ अध्याय 741–748

✲ कलकत्ते से बाइशारी और बरिशाल यात्रा ✲ जिस काम से आनन्द मिलता है इससे नया कर्म बना। जो काम अनिच्छा रहते करना पड़ता है समझना चाहिये कि उससे प्रारब्ध भोग होता जा रहा है ✲ बरिशाल आगमन ✲ श्री कृष्ण मूर्ति नित्य और सत्य है ✲ चाँदपुर जाकर कसबा होकर खेवड़ा गमन

चौरासीवाँ अध्याय 749–766

✲ जन्म-स्थान खेवड़ा में आगमन और बचपन की स्नेह-प्रीति की स्मृति ✲ खेवड़ा से चाँदपुर होकर ढाका यात्रा ✲ ढाका आगमन ✲ उत्सव में कीर्तन और आनन्द ✲ ढाका से कलकत्ता यात्रा ✲ कैलास यात्रा के मार्ग में कलकत्ते आगमन ✲ अखण्ड नाम-कीर्तन न होने से अखण्ड दर्शन नहीं होता ✲ माँ को गणेश-जननी के रूप में स्वप्न में दर्शन

✲ ✲ ✲

समर्पण

जो स्वरूपत: मानव बुद्धि की अगम्य हैं और पूर्णानन्द रूप स्वधाम में विराजमान होकर भी संसार-मार्ग के श्रान्त-क्लान्त कातर पथिकों को ज्योतिर्मय चिरशान्तिमय धाम का सन्देश देने के लिये करुणावश भूतल में मनुष्य देह में आविर्भूत हुई हैं, जिन्होंने कर्म-भक्ति-ज्ञानमय खण्ड भावधारा से किस प्रकार महाभाव में प्रवेश करना पड़ता है और किस प्रकार अन्त में अविराम नृत्यशील भाव-लहरियों के बाद भावातीत चिरशान्तिमय चिन्मय स्वरूप में विश्राम प्राप्त किया जाता है इसका स्वयं आचरण कर जगत् को शिक्षा दी है उन्हीं शरणागतवत्सला परमाराध्या श्री श्री माता आनन्दमयी के भुवनमंगल श्रीचरण कमलों में उन्हीं की पुनीत चरित कथारूप यह छोटी-सी पुष्पमाला भक्ति और प्रीति की अंजलि के रूप में गंगाजल से गंगा-पूजा के समान सादर समर्पित है।

–दीन ग्रन्थरचयित्री

निवेदन

लगभग बारह तेरह वर्षों की बात है जिस समय मुझे माँ के दर्शन हुए, मैं माँ को देखकर मुग्ध हुई, उस समय एक बार इच्छा हुई थी कि इन सब घटनावालियों को यदि थोड़ा बहुत लिख रखूँ तो स्वयं पाठ करने से मुझे ही आनन्द मिलेगा। उक्त इच्छा के वशीभूत होकर मैंने कुछ लिखा, यद्यपि अधिकांश समय माँ के साथ ही व्यतीत हो जाता था, लिखने के लिये, अधिक समय मिलता ही न था और यदि लिखने बैठती भी तो मुझे प्रतीत होता कि भाषा द्वारा घटनाओं और लीलावलियों पर प्रकाश डालना संभव नहीं है तथापि थोड़ा बहुत मैंने लिखा। कुछ दिन लिखने के बाद घटनावश मेरा लिखना बन्द हो गया। हम लोग जिस समय माँ के आदेश से स्थायी रूप से घर छोड़कर चले आये उस समय सब कापियाँ घर पर ही छूट गई। जब माँ हम लोगों को सिद्धेश्वरी में रखकर बाहर चली गई तब माँ के लिए हृदय तड़पता। एक दिन मैंने सोचा माँ की पुरानी लीलाकथायें यदि पढ़ूँ तो संभव है कुछ मन में चैन पड़े, किन्तु उस समय घर पर खोज कराने पर वे कापियाँ फिर मिली नहीं। मन में अत्यन्त परिताप हुआ। कुछ वर्षों के अनन्तर श्रद्धेय स्व. ज्योतिषचन्द्र रायजी ने सबसे माँ की लीला-कथायें (जिन्होंने जिस रूप से उन्हें देखा है या अनुभव किया है उनसे उसी रूप में) लिखने का अनुरोध किया। किन्तु मुझे फिर लिखने की इच्छा नहीं हुई। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अब कुछ न लिखूँगी। किन्तु न जाने क्यों, किसकी प्रेरणा से लिखने की इच्छा फिर जरा-जरा जाग उठी। ज्योतिष दादा ने भी कहा- ''तुम्हारा लिखना उचित है, क्योंकि तुमने बहुत दिन माँ के साथ बिताये हैं, छोटी बड़ी अनेक घटनाओं की तुम्हें जानकारी है।'' उनके प्रोत्साहन से हृदय के अन्त:स्तर में विद्यमान लिखने की इच्छा और भी प्रबल हो उठी। इस बीच में लिखने का सुयोग भी माँ ने कर दिया, मुझे कुछ दिन प्राय: अकेले विन्ध्याचल आश्रम में रख छोड़ा। उस निर्जन स्थान में अवकाश के समय मैंने फिर लिखना आरंभ किया। माँ की कृपा से पहले की सब घटनावलियाँ मेरे हृदय में प्रचूर मात्रा में जाग उठी। जैसे जप का एक निश्चित समय था वैसे ही माँ की लीलाकथा लिखने का भी

मैंने एक समय निश्चित कर दिया। मैं उसे अपनी साधना का ही एक अंग समझती थी। यद्यपि माँ की लीलावलियाँ लिखना मेरे जैसे व्यक्ति के लिये बौने की चाँद छूने की साध के समान ही था, फिर भी मैं लिखती और लिखना मुझे भला प्रतीत होता। मैं जानती थी कि विद्वत-समाज में इसका कोई भी मूल्य न होगा, क्योंकि पुस्तक लिखने के लिये अपेक्षित विद्या, बुद्धि मुझ में कुछ भी नहीं है। किन्तु मैं सोचती कि जो माँ के सम्पर्क में आये हैं, वे इन सब घटनावलियों को पढ़कर आनन्दित होंगे, लेखिका के भाव और भाषा की त्रुटि उनके आनन्द में बाधक न हो सकेगी। क्योंकि मैंने अनुभव किया है कि जब भी हम कतिपय लोग एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं और माँ की चर्चा छिड़ती है तब एक कथा, एक पुरानी कथा को लेकर ही पुनः-पुनः आलोचना करते-करते हम लोग कितनी रात बिता डालते हैं, किसी को भी उसमें अरुचि या श्रान्ति क्लान्ति का लेश भी ज्ञात नहीं होता। माँ की प्रत्येक कथा मानो हमें नित्य नूतन प्रतीत होती है। यह भी सोलह आने सत्य है कि माँ का भाव समझना हमारी शक्ति के सर्वथा ही बाहर की वस्तु है। मैंने जो भाव समझा है, देखा है या सुना है केवल वही लिखा है। एक अक्षर भी अतिरंजित न हो इस ओर विशेष ध्यान रखा है। फिर भी मेरे महान् दयालु भाई और बहनों को विशेषतः जिन्हें माँ का सम्पर्क प्राप्त है, मेरी अयोग्यता के यथेष्ट प्रमाण मिलेंगे। मैं उसके लिये क्षमा चाहती हूँ। जिन्होंने माँ के दर्शन नहीं किये हैं, इस पुस्तक द्वारा ही माँ का परिचय प्राप्त करेंगे, उनके निकट मेरी यह प्रार्थना है कि इस अत्यन्त अयोग्य कन्या के लेख से यदि कहीं पर माँ का स्वभाव अथवा चरित्र समझने में भूल करें तो वह त्रुटि मेरी ही है। जो माँ के सम्पर्क में आये हैं, उन्हें मेरे इस कथन की सत्यता प्रतीत होगी। दुःख का विषय है कि माँ की लीला की अनेकों घटनायें गुप्त रह गई हैं, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से माँ ने जिस किसी से भी जो विशेष बातें कही हैं अथवा माँ की जो सब विशेष घटनायें किसी-किसी के प्रकाश में आई हैं वे सब बातें अथवा घटनायें गुप्त ही रह गई हैं एवं सम्भव है सदा के लिये गुप्त रह जायें, कारण कि कोई भी उन सबको प्रकाश में लाने के लिये राजी नहीं है।

मैं एक बात और कहकर अपना वक्तव्य समाप्त करती हूँ। मैंने यह सब अस्त-व्यस्त रूप से लिखकर परम श्रद्धास्पद **महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर**

श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज, एम.ए., (भूतपूर्व अध्यक्ष, गवर्नमैन्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस) महोदय के हाथ सौंप दिया, उन्होंने पर्याप्त परिश्रम कर इसे पुस्तक का रूप दिया है एवं उन्होंने इस पुस्तक की एक भूमिका भी लिख दी है। इसके लिये मैं उनकी चिरकृतज्ञ हूँ। माँ के पुराने भक्त बालब्रह्मचारी **श्रीयुत् नेपालचन्द्र चक्रवर्तीजी*** ने भी इस काम में कविराजजी की यथासाध्य सहायता की है। उन्होंने दिन रात इसके लिये परिश्रम किया है। माँ का काम करना ही उनका आनन्द है। मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

ज्योतिष दादा आज इस संसार में नहीं हैं। उनके प्रोत्साहन से ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुई थी। आज यदि वे रहते तो माँ की इस लीला-कथा को प्रकाशित देखकर कितने प्रसन्न होते।

विविध प्रकार के अनिवार्य कारणों से कहीं-कहीं पर प्रेस वालों की असावधानी तथा अन्यान्य प्रकार की त्रुटि रह गई है। सहृदय पाठकों के निकट इसके लिये है क्षमा प्रार्थना। माँ की इस **लीला-कथा** को पढ़कर यदि किसी के भी हृदय में तनिक भी आनन्द हुआ तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल समझूँगी।

काशी
वैशाख, वि.सं.1999

निवेदिका
गुरुप्रिया देवी

---

* स्वर्गीय नेपालचन्द्र चक्रवर्ती ने बाद में नारायणानन्द तीर्थ के नाम से संन्यास लिया था।

भूमिका

(1)

प्रस्तुत पुस्तक की रचयित्री एवं मेरे कतिपय श्रद्धास्पद, मातृ-भक्त बन्धुओं ने मुझसे इस पुस्तक की एक भूमिका लिख देने का अनुरोध किया है। उनकी इच्छा है कि इस भूमिका में मैं माँ के सम्बन्ध में अपनी व्यक्तिगत जानकारी और धारणा संक्षेप में जनता के समक्ष प्रकाशित करूँ। प्रतीत होता है कि उनका विश्वास है, माँ के इस स्वरूप विषयक आलोचना के सिलसिले में जगत् के सन्मुख उनका वास्तविक परिचय अल्पाधिक मात्रा में व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होगा।

सच बात तो यह है कि अपना वक्तव्य संक्षिप्त भूमिका के रूप में लिखकर यद्यपि मैं उन लोगों के अनुरोध की रक्षा करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, तथापि इसके द्वारा उनका मनोरथ पूर्ण न होगा। मेरे सदृश स्वभाव वाले अक्षम व्यक्ति के द्वारा वह होना सर्वथा असम्भव है एवं मुझे प्रतीत होता है कि भिन्न प्रकार की प्रकृति रहने तथा अधिक सामर्थ्यशाली होने पर भी वह काम सुसाध्य नहीं है। माँ के सम्बन्ध में मेरी व्यक्तिगत धारणा और विश्वास मेरे हृदय की वस्तु है, उसे बिना विचारे और लोग ग्रहण करने के लिये बाध्य नहीं हैं। जिस विषय में दूसरे के साथ ऊहापोह नहीं हो सकता, होने पर भी जिस विषय में ऊहापोह करने की प्रवृत्ति नहीं होती, जो हृदय की गुप्त गुहा में - अन्तरतम स्तर में - गुप्तरूप से पोषणीय है, उसे हृदय से बाहर निकालकर खुली आलोचना का विषय बनाना हृदय कदापि नहीं चाहता। फिर, औरों के निकट माँ का वास्तविक परिचय देने की चेष्टा करना भी मेरे सदृश अधिकारी के लिये अक्षम्य धृष्टता नहीं तो और क्या है?

ग्रन्थकर्त्री ने ग्रन्थ में यथासम्भव कुशलतापूर्वक माँ का बाह्य चरित्र अंकित किया है और माँ के श्रीमुख से विनि:सृत मधुर उपदेशों का भी उल्लेख किया है। ''मातृदर्शन''-कार और **''श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग''** नामक ग्रन्थ के निर्माता ने भी सुन्दर ढंग से ऐसी चेष्टा की है। इन सब ग्रन्थों का

अनुशीलन कर स्थूल रूप से माँ की देहाश्रित लीलाओं का विवरण अवश्य ही प्राप्त होगा। जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से माँ के सत्संग और उपदेश-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्हें वह और भी घनिष्ठ रूप से प्राप्त होगा।

किन्तु माँ के ये बाह्य परिचय विविध प्रकार के हैं। जिनमें जैसी प्रतिभा और संस्कार है वे माँ को उसी भाव से देखते हैं और देखेंगे। क्योंकि वह बाह्य चरित है। माँ का वास्तविक परिचय पाना अत्यन्त कठिन है। यदि सौभाग्यवश किसी को स्वयं उसका आभास मिल भी गया तो वह दूसरों के सम्मुख उसे प्रकट कर सकेगा, यह आशा नितान्त दुराशा ही है, वास्तव में सन्तान होकर माँ का परिचय पाने के लिये प्रयत्न करना ही निरा पागलपन प्रतीत होता है। 'माँ कौन है', 'माँ का स्वरूप क्या है', इन सब गंभीर विषयों की मीमांसा अल्पज्ञ बच्चे से कदापि नहीं हो सकती। जिस समय बच्चे का जन्म नहीं हुआ था, उस समय भी माँ थी, जिस समय बच्चा नहीं रहेगा, उस समय भी माँ रहेंगी। माँ सनातनी हैं - बच्चे में ऐसा कौन बल है जिससे कि वह माँ का स्वरूप जानने में सफल मनोरथ हो सके? जिनकी शक्ति से शक्तिशाली होकर बच्चा जन्म ग्रहण करता है, उनकी सत्ता से ही उसकी सत्ता है, जिनका अवलम्बन लिये बिना वह अर्धक्षण भी नहीं टिक सकता, उन्हें समझ पाने की क्षमता उसमें कहाँ है? मनुष्य साधन के बल से अत्यन्त बलवान् होकर दुष्कर कर्म कर सकता है सही, किन्तु साधन के मूल में भी उन्हीं की कणमात्र शक्ति विद्यामन रहती है। महाशक्ति के अनुग्रह के लवलेश के बिना मनुष्य जड़ पिण्ड के समान अकर्मण्य रहता है - मनुष्य तो दूर रहा, स्वयं शिव भी शक्ति रहित होने पर निःस्पन्द होकर शववत् रहते हैं। सब देवताओं और सब जीवों की प्राण स्वरूप उन आद्या शक्ति को कौन पहचान सकता है, कौन जान सकता है? ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि सब साधनों की प्राणशक्ति उन्हीं का अनुग्रह है, इसलिये अपना बल किसका ऐसा है जिससे कोई उन्हें जान सके। यदि वे स्वयं अपने को प्रकाशित कर दें तो उनका कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है, किन्तु वह भी सबके लिये सुलभ नहीं है - जिसके निकट वे जितना आत्म-परिचय प्रकट करती हैं, वह उतना ही पाता है, और कुछ भी नहीं पाते।

जैसे उज्ज्वल ज्योतिर्मय सदा प्रकाशमय भगवान सूर्य के प्रकाशमान रहने

पर भी अन्धे के लिये उनकी सत्ता नहीं के बराबर रहती है, वैसे ही आद्याशक्ति के जगत् में प्रकाशमान रहने पर भी साधारण के निकट वह अप्रकाशमान-सी रह जाती हैं। यदि वे स्वयं अपना परिचय न दें तो उन्हें कोई पहचान नहीं सकता।

कहा है, एक बार देवर्षि नारद भगवान् नारायण के दर्शनों की इच्छा से श्वेतद्वीप में गये। श्वेतद्वीप अत्यन्त दुर्गम स्थान है, साधारणतः देवता और ऋषियों की पहुँच के परे है। वहाँ जाकर दिव्य विभूतिधारी नारायण के दर्शन भी उन्हें प्राप्त हुये हैं। वे अपने तपोबल से उस देव दुर्लभ रूप का दर्शन करने में समर्थ हुये थे, इस हेतु उनके मन में एक प्रकार के हर्ष और अहंभाव का संचार हुआ था। साथ ही साथ आकाशवाणी हुई, 'नारद, तुम वृथा अहंकार कर रहे हो। मेरे इस भूतगुणयुक्त रूप के दर्शन कर तुम समझ रहे हो कि मैंने भगवान् के परम रूप का दर्शन पा लिया। किन्तु तुम्हारी धारणा भ्रमपूर्ण है। क्योंकि यह भी मेरा मायिक ही रूप है, मेरे स्वरूप का दर्शन अब भी तुम्हें नहीं हुआ।' उनकी विशेष अनुकम्पा के बिना उनका स्वरूप दर्शन किसी को भी नहीं हो सकता। योगी को योगबल से सकल ब्रह्माण्डों के अतीत, अनागत और वर्तमान समस्त पदार्थों का ज्ञान एक ही समय में प्रत्यक्ष रूप से वर्तमान की तरह, हथेली में रखे आँवले के तुल्य, प्राप्त हो सकता है। किन्तु उससे भी महाशक्ति का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सम्प्रज्ञात सालम्बन समाधि में जागतिक पदार्थ-विषयक प्रज्ञा का उदय होता है। किन्तु जगत् की मूल प्रकृति या पुरुष उसके विषय नहीं होते। पुरुष और प्रकृति से परे परम ऐश्वरिक शक्ति तो और भी दूर की बात है। ज्ञानी का ज्ञानबल और भक्त का भक्तिबल माँ का चरण स्पर्श करने में समर्थ नहीं होता। वास्तव में योगबल, ज्ञानबल और भक्तिबल समस्त बल उन महाबल स्वरूपिणी के अणुमात्र के प्रतिबिम्बाभास हैं। इन क्षुद्र आभास बलों का उस मूल की ओर प्रयोग होने पर ये सत्ताहीन हो जाते हैं और किसी भी कार्य के सम्पादन में समर्थ नहीं होते। प्रदीप की सूर्य को प्रकाशित कर दिखाने की चेष्टा जैसे उपहासास्पद है वैसे ही मनुष्य की अपने आभास बलों के द्वारा महाशक्ति माँ के स्वरूप को जानने की चेष्टा भी उपहासास्पद ही है।

साधारणतः माँ सन्तान को अपना परिचय नहीं देती, सन्तान के लिये वह परिचय कोई आवश्यक भी नहीं है; माँ उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति

करती हैं, वह जो चाहता है उसे वह देकर ही भुलाये रखती हैं। वे भोगार्थी को भोग देती हैं, मोक्षार्थी को मुक्ति देती हैं, आर्त की आर्ति दूर करती हैं, भूखे को अन्न, प्यासे को जल और जिज्ञासु को ज्ञान प्रदान करती हैं। जो व्यक्ति उन्हें जिस भाव से भजता है वे उसके निकट उसी भाव से उपस्थित होती हैं। अपने-अपने भाव के अनुसार माँ का यह परिचय साधकमात्र को ही अधिकार के अनुरूप प्राप्त रहता है, किन्तु माँ के स्वरूप का परिचय नहीं है। माँ का स्वरूप भावातीत है – महाभावस्वरूपिणी माँ अनन्त प्रकारों से अनन्त भावों की संगम और उद्गम होकर भी वास्तव में समस्त भावों के परे हैं। माँ के उस तुरीयातीत स्वरूप को कौन ग्रहण कर सकता है? स्वयं खण्डभाव के अधीन रहकर महाभाव को धारण करना असम्भव है, भावातीत स्वरूप को धारण करना तो सुदूर स्वप्न मात्र है। जिस क्षुद्र मनुष्य के हृदय में खण्ड भाव का ही उदय नहीं हुआ है, वह उन्हें क्या पहचान सकेगा? माँ को पहचानना हो तो माँ में आत्मसमर्पण कर उनके साथ एकात्मता प्राप्त करनी चाहिए- माँ से पृथक् रहकर माँ का परिचय प्राप्त नहीं हो सकता। अहंभाव की निवृत्तिरूप वह आत्मसमर्पण योग माँ की पूर्ण कृपा से प्राप्त हो सकता है। उस अवस्था के प्राप्त होने पर माँ के साथ सन्तान का कोई भेद नहीं रहता, उस समय एकमात्र माँ ही चिदानन्द स्वरूप में विराजमान रहती हैं। उस समय वे स्वयं ही अपने को जानती हैं। वह आत्मपरिचय तो सदा ही उन्हें रहा है। किन्तु उससे जीव को क्या लाभ? जीव के लिये माँ को जानने की चेष्टा तो सदा विडम्बना ही रह जाती है।

जब कर्म, योग और भक्ति के प्रभाव से भी माँ को स्वरूपत: नहीं पहचाना जा सकता, तब चरित्र पढ़कर और उपदेश सुनकर उन्हें यथार्थ रूप से पहचाना जा सकता है, यह कहना व्यर्थ है। चरित्र भीतर विद्यमान भाव का द्योतक मात्र है। जो स्वयं किसी भाव के अधीन न होकर भी सब भावों का अवलम्बन कर क्रीडा कर सकती हैं एवं लीला के बहाने करती भी हैं, उन्हें चरित्र द्वारा क्या जानेंगे? लोक शिक्षा के लिये वे शास्त्र और समाज-मर्यादा का पालन कर सकती हैं एवं करती भी हैं और लोक शिक्षा के लिये ही अथवा अन्य किसी अचिन्त्य कारणवश वे उसका उल्लंघन भी कर सकती हैं, किन्तु उससे उनका गौरव ही क्या है और हानि ही क्या

है? वे तो कार्य कारण नियम के अधीन नहीं हैं- कर्म अथवा पाप-पुण्य उनका स्पर्श नहीं कर सकते। उनका आचरण सदा ही साधारण लोगों का अनुकरणीय होगा, इसका कोई अर्थ नहीं है। शिवजी हलाहल पान कर मृत्युंजय हुये पर साधारण लोगों के लिये विषपान मृत्यु का ही कारण होता है। वे देश, काल और पात्र के अनुसार व्यवहार करती हैं, पर कभी-कभी उनका आचरण समझ में नहीं आता। सन्निहित व्यक्तिगत फल की आकांक्षा, विचित्र प्राक्तन कर्मों के संस्कारों के प्रभाव और विचार-बुद्धि की प्रेरणा से साधारण मनुष्य कर्मपथ का पथिक होता है, क्योंकि उसके सम्पूर्ण जीवन की भित्ति अहंभाव पर ही निर्भर रहती है, किन्तु जो मानव देह धारण करके भी देहात्मभाव शून्य हैं, जन्म से ही जिनका ज्ञान वैभव अलुप्त रहा, अज्ञान और स्वार्थ कलुषित इच्छा जिनके हृदय का स्पर्श नहीं कर सकती, उनका आचरण व्यक्तिगत संस्कार और आदर्श से अनुप्राणित नहीं होता - एकमात्र स्वभाव की प्रेरणा से ही उनके सम्पूर्ण व्यवहार सम्पन्न होते रहते हैं। इसलिये साधारण मनुष्य के विचार के मानदण्ड से उनके चरित्र के महात्म्य आदि का निरूपण नहीं किया जा सकता। नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र कोई भी शास्त्र उन्हें बतला नहीं सकते - उनका चरत्रि वेद विधि के बहिर्भूत है। मनुष्य के चरित्र से उसके भाव का ही अनुमान किया जाता है, किन्तु जो भाव की सीमा अतिक्रमण कर विराजमान हैं और स्वयं निर्लिप्त, अभिमान शून्य होकर भी नाना भावों का अवलम्बन कर अभिनय करती हैं, उनके स्वरूप का परिचय चरित्र से तनिक भी पाने की आशा नहीं की जा सकती, यह पहले ही कहा जा चुका है।

मौलिक उपदेश के अति मधुर और लोकहितावह होने पर भी उससे उपादेष्टा के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। एक क्षुद्र बुद्धि बालक उसे दिये गये उपदेश से यदि अपने अध्यापक के पाण्डित्य का निर्णय करने की चेष्टा करता है तो वह सफल नहीं होता। उसके सिवा वैखरी वाणी का उपदेश स्वभावत: ही अपूर्ण होता है, उससे विशुद्ध ज्ञान का विकास नहीं हो सकता, विशेष करके उपदेश-ग्रहण श्रोता के अधिकार और योग्यता के ऊपर निर्भर रहता है। वैखरी के अतिरिक्त सूक्ष्मवाणी भी श्रोता की मानसिक योग्यता के तारतम्य से थोड़ी बहुत विकृत रूप से गृहीत होती है -अन्य के सम्मुख प्रकाश करते समय और भी अधिक विकार को प्राप्त हो जाती है। यह

स्वाभाविक है। ऐसी परिस्थिति में उपदेश से भी माँ का यथार्थ परिचय प्राप्त नहीं होगा।

इस ग्रन्थ से अथवा इस प्रकार के अन्य ग्रंथों से, यहाँ तक कि माँ के श्रीमुख से निविर्गत उपदेशों से भी, माँ को पहचानने की चेष्टा करना व्यर्थ है। इसलिये यथार्थ रूप से माँ का परिचय प्राप्त होना – माँ को पहचानना – कोई मखौल नहीं हैं। योग, याग, तपस्या, तन्त्र, मन्त्र कितने ही उपाय हैं, किन्तु किसी भी उपाय से वे सुलभ नहीं हैं। पूर्ण परिचय तो दूर की बात रही, उनका आंशिक परिचय ही कितने लोगों को मिला है? वे सकाम साधक को दुर्लभ हैं, निष्काम को भी दुर्लभ है। जो सकाम है उसे काम्य वस्तु की चाह है, वह भोग लोलुप है, वह तो माँ को चाहता नहीं, माँ की विभूति से मोहित होकर उस विभूति या ऐश्वर्य की ओर ही वह आकृष्ट हो जाता है, माँ भी उसे वही देती है, उसी भाव से अपने को उसके निकट प्रकाशित करती है। परन्तु जो साधक निष्काम है, जो विरक्त है, वह मुमुक्षु है – भोग की अभिलाषा उसमें न रहने पर भी मोक्ष की इच्छा उसमें रहती है, किन्तु भोग के तुल्य मोक्ष भी माँ की विभूति ही है। माँ इस प्रकार के साधक को संसाररूपी बन्धन से छुटकारा दे देती हैं। भोग और मोक्ष जिनके चरणकमल से विनि:सृत हो रहे हैं, वह महाशक्तिरूपा चिदानन्दमयी जननी शिव और जीव दोनों की माता हैं, वे पूर्ण, परात्परा, सनातनी हैं, वे रहस्यरूपा, रसमयी, प्रेमघनविग्रहा हैं, उन्हें कितने लोग चाहते हैं? अथवा कितने लोग उन्हें पहचानते हैं? भोग मार्ग का ऐश्वर्य और मुक्ति मार्ग का कैवल्य – दोनों ही माँ के चरणों में लोटे हुये हैं। दोनों की ही आकांक्षा माँ की प्राप्ति के मार्ग के कण्टक हैं। जिसे प्रेम का पता नहीं लगा उसी को भोगैश्वर्य (ऐहिक, पारलौकिक एव नित्य) तथा कैवल्य (पुरुष कैवल्य और ब्रह्म कैवल्य) पुरुषार्थ रूप से प्रतीत होते हैं। महामाया विश्वजननी उसके निकट गुप्त रहती हैं, उसको उन्हें देकर तृप्त रखती हैं। इस कारण उनका स्वरूप–परिचय भोगार्थी और मोक्षार्थी दोनों के निकट गुप्त रह जाता है, क्योंकि जिसे उसकी चाह ही नहीं है, उसके प्रति वे आत्मप्रकाश करेंगी ही क्यों?

(2)

तब क्या माँ सर्वथा ही अपना परिचय नहीं देती हैं? अवश्य यह नहीं कहा जा सकता। अति दुर्गम और अति दुर्ज्ञेय होने पर भी वे कभी–कभी आत्मप्रकाश करती हैं, क्योंकि वे वात्सल्य रस से सराबोर हैं। सन्तान की हृदयस्पर्शी माँ–माँ पुकार पर उत्तर दिये बिना रह नहीं सकती हैं। योग, ज्ञान, भक्ति, कोई उपाय, कोई तपस्या न रहने पर भी बच्चे के तुल्य सरल हृदय से मातृविहीन बालक के समान व्याकुल अन्तःकरण से माँ–माँ पुकार सकने पर माँ के स्तनों में सुधारस का संचार हुये बिना नहीं रहता। मातृ–स्नेह के भिखारी शिशु के हृदय को वे अमृत–रस से आप्लावित कर देती हैं। शिशु माँ को पाकर माँ को माँ–माँ पुकार कर और माँ की स्नेह–भरी पुचकार प्राप्त कर धन्य हो जाता है। माँ के स्वरूप का परिचय न पाने पर भी उसकी क्या क्षति है? क्योंकि वह माँ का विशेष परिचय न पाने पर भी माँ को अपनी स्नेहशालिनी आनन्दमयी जननी के रूप में पहचान सकता है। यही उसके लिये यथेष्ट है, वह उसकी अपेक्षा अधिक जानने की चेष्टा नहीं करता – क्योंकि शिशु भाव के साथ इस प्रकार की चेष्टा का कोई सामंजस्य नहीं है – और जानने का प्रयत्न करने पर भी वह माँ को खो बैठता है एवं स्वयं कृत्रिमता के गर्त में निमग्न होकर मातृ–दर्शन से वंचित रह जाता है। इसलिये यद्यपि शिशु की माँ को पहचानने की चेष्टा निष्फल है तथापि शिशुभाव ही माँ का मातृरूप में आस्वादन कराने के लिये एकमात्र सहायक है, यह बात सत्य है, क्योंकि अपने में सन्तान भाव का आश्रय न कर सकने पर मातृभाव के महात्म्य का अनुभव नहीं किया जा सकता। मातृभाव की अनन्त महिमा इस बाल भाव से ही थोड़ी बहुत प्रकट होती है। इस कारण यद्यपि माँ का परिचय पाने की आशा अत्यन्त असंभव है तथापि सन्तान–वात्यल्य के उद्रेक से माँ स्वयं जिसके निकट जितना आत्मस्वरूप प्रकट करती हैं वह उतने को ही सत्य समझता है। उनके चरित्र और उपदेश से उनके वास्तविक परिचय का आविष्कार करने की चेष्टा न कर उनमें मातृ स्नेह की लीला के विलास का दर्शन करना ही समुचित है। शुष्क युक्ति–तर्कों की परिधि के अन्दर खींचकर रसमय वस्तु के माधुर्य को नष्ट करना उचित नहीं है।

किन्तु इस प्रकार का बालभाव तो सर्वत्र सुलभ नहीं है। बालक का अज्ञान अथवा विवेक का अभाव तो सुलभ हो सकता है, किन्तु उसकी सरलता और पवित्रता अति दुर्लभ है। पर मातृदर्शन के लिये वही नितान्त आवश्यक है।

(3)

स्थूल और बाहरी परिचय लोगों के संस्कार भेद से नाना प्रकार का होता है, यह पहले ही कह आये हैं। किन्तु वह परिचय वास्तविक परिचय नहीं है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग माँ के स्थूल शरीर के इतिहास से अवगत हैं, वे जानते हैं कि भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न लोगों ने उन्हें विभिन्न दृष्टियों से देखा है। काल के परिवर्तन से अनेकों की दृष्टि में परिवर्तन नहीं हुआ, सो बात भी नहीं है। सृष्टि में सर्वत्र ही वैचित्र्य है, यहाँ भी वैचित्र्य है, उसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

जिस समय वाजितपुर में सर्वप्रथम माँ के जीवन की विशेषता लोगों को दृष्टिगोचर और कर्णगोचर होने लगी, उस समय विचारशून्य साधारण लोगों ने उस अवस्था को अज्ञतावश भूत, प्रेत या क्षुद्र देवता का आवेश समझा था। भूत हटाने के लिये अनुरूप उपाय भी काम में लाये गये थे। किन्तु इस भूत का झाड़ना ओझा की शक्ति के बाहर की बात है, यह भी थोड़े ही दिनों में सबकी समझ में आ गया था। कुछ लोग उस समय माँ को वायुरोग हिस्टिरिया अथवा उसके सजातीय रोग से आक्रान्त समझते थे। भाव के विकास से देह में जो सब असाधारण लक्षण प्रकाशित होते उन सबको वे रोग के चिह्न समझते थे। किन्तु उन्हें भी शीघ्र ही अपना भ्रम प्रतीत हो गया। भाव किसे कहते हैं यह साधारण मनुष्य नहीं जानते। भाव के स्फुरण से जो सब शारीरिक परिवर्तन होते हैं उन्हें भी वे नहीं जानते। इसलिये मोटा-मोटा बाहरी लक्षणों का कुछ सादृश्य देखकर उनमें जो विचारविभ्रम उपस्थित हुआ वह निर्मूल नहीं। **श्री चैत्तन्य महाप्रभु** और अन्यान्य महापुरुषों के सम्बन्ध में भी इस प्रकार का लोकमत स्थान-स्थान पर कुछ दिनों के लिये प्रचारित हुआ था।

अस्तु, ये दो मत इस समय प्रचलित नहीं हैं। फिर भी अन्य मत इस

समय भी हैं- एवं प्रतीत होता है कि सर्वदा ही रहेंगे।* इनमें से कोई-कोई मत तो अत्यन्त ही विचित्र हैं। विचित्र होने पर भी इनमें से कोई मत उड़ा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो जिस मत की पुष्टि करते हैं उनकी युक्ति और विश्वास उसी के अनुकूल रहता है। दूसरे के मत से उसके विचारयोग्य न होने पर भी निर्मूल कहकर उसका निराकरण नहीं किया जा सकता।

प्रथम मत में माँ एक श्रेष्ठ साधिका हैं। किन्तु पूर्वजन्म में उच्च साधना के फलस्वरूप ऊर्ध्वगति प्राप्त हुई थी। किन्तु पूर्ण ज्ञान के अभाव से फिर देहधारण करने को वे बाध्य हुई हैं। इनके मत से माँ इस देह में ज्ञान का पूर्ण विकास प्राप्त कर जीवन्मुक्ति या स्थितप्रज्ञ दशा को प्राप्त हुई हैं। इस जन्म में उन्हें बाह्य गुरु की आवश्यकता नहीं हुई- अन्त:स्थित अन्तर्यामी गुरु ही उन्हें आवश्यकतानुसार प्रेरणा दे रहे हैं। यही उनका अन्तिम जन्म है।

किन्तु इस मत को सभी स्वीकार नहीं करते, वे सोचते हैं कि माँ के जीवन में जो सब अलौकिक विभूतियाँ और व्यापार दिखाई देते हैं उनके कुछ अंशों का सिद्धि और जीवन्मुक्तिवाद द्वारा उपपादन किया जाता है सही, किन्तु उनकी जीवनधारा में ऐसे अनेक व्यापार होते दिखाई दिये हैं जिनको समझना कठिन है। वे सब व्यापार जन्मान्तर की साधना से उत्पन्न संस्कार के विकास के कारण हो सकते हैं। इस मत में माँ साधिका नहीं

---

* जिन्होंने हिन्दू, बौद्ध और ईसाई धर्म के इतिहास का अनुशीलन किया है वे इन मतों के विषय में भली-भाँति जानते हैं। श्रीकृष्ण को कोई भगवान् का अवतार कहते और कोई स्वयं भगवान् के रूप में उनका वर्णन करते थे। कोई-कोई उन्हें नारायण ऋषि का अवतार मानते थे। और कोई उन्हें साधारण मनुष्य ही समझते थे। 'अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्' (गीता)। इस भगवद्वाक्य से ज्ञात होता है कि अनेक लोग उनकी अवज्ञा भी करते थे। बुद्ध के सम्बन्ध में भी इस प्रकार के विविध मत बौद्ध साम्प्रदायिक साहित्य में दिखाई देते हैं। स्थविरवादी और महासांघिक संप्रदाय की दृष्टि में जो मूल में ही भेद था वह प्रसिद्ध है। उसके अतिरिक्त धर्मकाय या स्वभावकाय, सम्भोगकाय और निर्माणकाय की आलोचना से प्रतीत होता है कि राजा शुद्धोधन के पुत्र गौतम को अनेक लोग निर्माणकाय के रूप में मानते थे। इन त्रिकायों के परस्पर सम्बन्ध और गौतम नामक ऐतिहासिक पुरुष के तत्त्व को लेकर बहुत मतभेद रहा है। ख्रीष्ट के सम्बन्ध में भी यही बात है। ईसाई समाज में शताब्दियों तक इस मतभेद का विकास चला है। Docetism, Adoptionism, Medatism, Monarchianism, Arianism आदि मतों के इतिहास की पर्यालोचना करने पर वह स्पष्ट ही ज्ञात हो सकता है।

हैं, जीवन्मुक्त भी नहीं हैं। यदि वे जीवन्मुक्त कही जाएँ तो जन्म से ही उन्हें जीवन्मुक्त कहना चाहिये। अधिकाधिक पुरुष के समान अपना अधिकार समाप्त करने के लिये उन्होंने जन्म लिया है। यह अधिकार भी एक प्रकार का प्रारब्ध है।

कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि पूर्वोक्त मत भी ठीक नहीं है, क्योंकि माँ के जीवन में कोई अधिकार–संस्कार दिखाई नहीं देता। यहाँ तक कि जीव को ज्ञान और भक्ति प्रदान कर उद्धार करने का संस्कार भी उनमें नहीं है। उन्होंने आज तक अपने को गुरु रूप में ग्रहण नहीं करने दिया। उनके चरित्र और उपदेश जगत् के पारमार्थिक कल्याण के लिये होने पर भी इस प्रकार का कल्याण करने का संस्कार उनमें नहीं है। इस मत में माँ नित्य सिद्धा और भगवान की परिकर स्वरूपा हैं। किसी विशेष प्रयोजनवश भगवदिच्छा से कुछ दिनों के लिये जगत् में आई हैं। प्रयोजन सिद्ध होने पर अपने आप ही जहाँ से आई हैं वहीं लौट जायेंगी।

किन्तु यह मत भी सर्व–स्वीकार योग्य नहीं है। उनकी धारणा है कि माँ साक्षात् महादेवी हैं। भक्तों के आह्वान से और जगत् के मंगल के लिये उन्होंने शरीर धारण किया है। इनका कथन है कि माँ कि पितामही ने कसवा काली मन्दिर में काली माता के समीप पुत्र के 'पुत्र हो' ऐसी प्रार्थना न कर 'कन्या हो' ऐसी प्रार्थना की थी। उसी के फलस्वरूप माँ का जन्म हुआ। इन्हें विश्वास है कि भगवती काली ने ही अपने अंश से माँ होकर जन्म ग्रहण किया है।*

अन्य कहते हैं कि माँ को काली या दुर्गा न मानकर आद्याशक्ति महामाया ही मानना उचित है। किसी ने (जैसे लावण्य ने) उन्हें दशभुजा दुर्गा के रूप में देखा है, फिर किसी ने सरस्वती के रूप में (जैसे निर्मल बाबू ने), छिन्नमस्ता के रूप में (जैसे प्रमथ बाबू ने) अथवा दश महाविद्या

---

* ढाका शाहबाग रहते समय जो काली आकाश में आविर्भूत हुई और माँ के शरीर पर (गोद में) कूदने के लिए उद्यत रही, जिसके कारण ढाका में काली प्रतिष्ठा हुई वह इस मत में कुछ अंश में समझ में नहीं आ सकता है। अनेक लोगों को माँ के शरीर में काली मूर्ति का विकास दिखाई दिया है। बहुत समय तक लोग उन्हें ''मानुष काली'' भी कहते थे। कालीमूर्ति के साथ उनका तादात्म्य भी कभी–कभी देखा गया है। काक्स बाजार निवासकाल में माँ को ज्ञात हुआ था कि ढाका में कालीमूर्ति के गहनों की चोरी हो गई। अपने शरीर में पीड़ा का अनुभव भी उन्हें हुआ था।

के रूप में (जैसे प्रमथ बाबू के चपरासी ने) उनके दर्शन किये हैं। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही रूप कितने ही लोगों ने देखें हैं।

महाभावमयी राधारूपी भी कई लोग उन्हें मानते हैं अथवा कई लोग उन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण का आवेश रूप ही मानते हैं।

(4)

इस प्रकार कितने ही लोगों ने कितने ही भावों में माँ को देखा है। इनमें कौन देखना सत्य है? कौन असत्य है? यद्यपि भाव भेद से इनमें से किसी को भी सर्वथा असत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जो जिस भाव से उन्हें देखता है या जानता है उसके निकट वे उसी भाव से प्रतीत होती हैं, फिर भी हमारी समझ में संभवत: इनमें से कोई भी उनका वास्तविक परिचय नहीं है। एक बार भारत धर्म –महामण्डल के प्रचारक श्रीस्वामी दयानन्दजी ने माँ से पूछा था– माँ, तुम कौन हो? कोई कहता है तुम अवतार हो, कोई कहता है तुम आवेश हो, कोई कहता है साधक या सिद्ध जीव हो। मुझे यथार्थत: जानने की इच्छा है तुम कौन हो? माँ ने कहा– ''बाबाजी, तुम मुझे क्या समझते हो? तुम जो समझते हो मैं वही हूँ।'' माँ के इस उत्तर में ही माँ के वास्तविक परिचय का आभास गुप्त रूप से छिपा है, ऐसा मालूम पड़ता है। गीता में भगवान् ने कहा है– **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।''** माँ का पूर्वोक्त वचन भी उसी के अनुरूप है। माँ में तो व्यक्तित्व की या अभिमान की परिधि नहीं है जिससे कि वे उसके द्वारा परिच्छिन्न हों। वे स्वच्छ, शुद्ध, स्वप्रकाश और विशाल सत्ता रूप अपनी महिमा में अपने आप विराजमान हो रही हैं– किन्तु सब लोग संस्कारवश उन्हें उस स्वरूप में नहीं देख पाते। क्योंकि चित्त संस्कार के जाल से छुटकारा पाये बिना सत्य दर्शन नहीं कर सकता। जिसका चित्त जिस संस्कार से रंगा है वह उन्हें उसी भाव से देखेगा एवं संस्कार से मुक्त हुए बिना वैसा देखना ही उसके लिये स्वाभाविक है।

इस कारण विशुद्ध सत्य न होने पर भी किसी भी मत की सर्वथा उपेक्षा करना उचित नहीं है। जो जिस मत के अनुयायी हैं उनके लिये वही मत समादरणीय है, क्योंकि उन्हें अपनी विचार–बुद्धि से उसी का महत्व दिखलाई देता है।

किन्तु इन सब मतों को जानने से लाभ क्या? श्रद्धावान् साधारण मनुष्य बालोचित सरल हृदय से माँ के निकट उपस्थित होते ही माँ के वात्सल्य, करुणा और स्नेह की शीतल छाया पा सकेगा। तब क्रमशः मातृ-संग के प्रभाव से माँ की अन्तःप्रकृति उसके निकट जरा-जरा-सी प्रकट होगी। माँ वास्तव में क्या हैं? यह प्रश्न लेकर उसे फिर मस्तिष्क को चक्कर में डालने की आवश्यकता प्रतीत न होगी।

(5)

माँ चाहे जो भी हों - उनकी मनुष्य देह की लीलाओं की आलोचना से हम ऐसे अनेक सत्यों का अनुभव कर सकते हैं, जो मनुष्य दृष्टि से हम लोगों के लिये अवश्य ज्ञातव्य और स्मरण रखने योग्य हैं। किस प्रकार भगवान् को प्राप्त करना चाहिए, उन्हें पाने के लिए किस प्रकार के संयम, निष्ठा, वैराग्य, अनासक्ति और त्याग आवश्यक होते हैं। कर्म, भक्ति, योग और ज्ञान रूप साधना का स्वरूप और फल क्या है, तपस्या क्या है, पूर्ण आत्मसमर्पण या निर्भर भाव किसे कहते हैं, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के ऊपर भगवत्साक्षात्कार का क्या प्रभाव है - ये सब तथा इस प्रकार के अन्यान्य बहुत से प्रश्नों की मीमांसा माँ के बाह्य चरित्र से प्राप्त हो सकती है। ये सब कोई साधारण बातें नहीं हैं। यद्यपि शास्त्रों में अनेक विषयों की आलोचना है तथापि उनका प्रत्यक्ष उदाहरण पाये बिना सब समान रूप से उनमें दृढ़ श्रद्धा नहीं रख सकते। किन्तु जब ये सब सत्य सजीव रूप में किसी के चरित्र में प्रकट होते दिखाई देते हैं तब शास्त्र वचनों पर अटल श्रद्धा उत्पन्न होती है एवं अपने जीवन के ऊपर उनका प्रभाव व्याप्त हो उठता है। माँ का वास्तविक परिचय चाहे जो हो, उसे साधारण मनुष्य उनकी विशेष कृपा के बिना कदापि यथार्थतः लेशमात्र भी नहीं जान सकता और किसी से उसके सम्बन्ध में कोई संकेत पाने पर भी उसे हृदयंगम नहीं कर सकता। किन्तु माँ के स्थूल जीवन की धारा देखकर और उसकी आलोचना कर वह अनेक विषयों में लाभ उठा सकता है। माँ के चरित्र और उपदेशों से वह उनका तत्व भले ही न समझ सके पर चरित्रों से आत्मोन्नति के मार्ग का पता पा सकता है एवं उपदेशों से साधना और आचरणों के विषय में अनेक शिक्षायें प्राप्त कर सकता है।

माँ का चरित्र सर्वांश में अनुकरणीय नहीं है, यह सत्य है क्योंकि वे आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित हैं, भावा-भाव के परे हैं, द्वन्द्वविनिर्मुक्त हैं और हैं शास्त्रीय विधि निषेध की परिधि के बहिर्भूत। वे-वे ही हैं - वे किसी के अनुकरण के योग्य नहीं हैं। यद्यपि उस स्थिति में उनका कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है -क्योंकि उन्हें ऐसी कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं है, जिसे प्राप्त करने के लिये उन्हें कर्म करना पड़े तथापि स्वभाव की प्रेरणा से लोक शिक्षार्थ उनके देह से कभी-कभी ऐसे कई कर्मों का अनुष्ठान होता है जो सांसारिक लोगों के अनुकरणीय होते हैं। यद्यपि वे सब कर्म स्वाभाविक, अपनी पृथक् इच्छा से उत्पन्न नहीं होते एवं अज्ञान जगत् के सभी कर्म कर्त्ता की इच्छा से होते हैं, तथापि जगत् के जीवों के लिये वे सब कर्म अनुकरणीय हैं। माँ ने स्वयं आचरण करके अज्ञ जीव को दिखा दिया है कि कौन कर्म किस प्रकार करना चाहिये। माँ का उद्देश्य यह है कि इस देह का आचरण देखकर कृत्रिम रूप से होने पर भी जीव इस प्रकार के कर्म करने के लिये प्रवृत्त हो सके। ऐसी स्थिति में उनका वह आचरण अभिनय मात्र है - एवं यह विचित्र अभिनय है, क्योंकि उनके शरीर का आश्रय कर वह अभिनय अपने आप ही हो जाता है। अवश्य यह भी सत्य है कि माँ के शरीर से बहुधा ऐसे अनेक कर्मों की भी उत्पत्ति होती है, जिनका रहस्य समझना कठिन है, जो स्पष्टत: किसी भी जीव के लिए अनुकरण योग्य नहीं है। किन्तु इस तरह के कर्म भी जीव और जगत् के कल्याण के लिये ही होते हैं।*

इसलिये यदि माँ को मनुष्य भी कहें तो भी उनकी महिमा में कमी नहीं आ सकती और अवतार अथवा नित्य सिद्ध कहकर स्तुति करने पर भी उनकी उत्कृष्टता का ख्यापन नहीं होता। उनकी सत्ता और बोध साम्य-भाव पर प्रतिष्ठित हैं, उनके लिये छोटा और बड़ा, स्तुति और निंदा, दोनों

---

* माँ प्राय: कहती हैं, ''इस शरीर का सब कुछ तुम लोगों के प्रयोजनानुसार अपने आप हो जा रहा है।'' इससे प्रतीत होता है कि माँ के शरीर में जब कभी चाहे कैसा ही अभिनय क्यों न हो, वह उनकी इच्छा से नहीं होता-स्वाभाविक है। वह किसी न किसी के प्रयोजनानुसार होता है। मनुष्य अदूरदर्शी है, इसलिए सर्वदा उस प्रयोजन को देख नहीं सकता यह सही है, किन्तु प्रयोजन अवश्य ही है। व्यासदेवजी ने योगभाष्य में एक जगह ईश्वर के देह ग्रहण के सम्बन्ध में लिखा है- 'तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रह एव प्रयोजनम्।'' यह उसी प्रकार है।

ही समान हैं, उनका उत्कर्ष अथवा अपकर्ष नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण जगत् ही उनका अपना घर है, समस्त प्राणी-वर्ग ही उनके आत्मीय जन हैं। वे स्वभाव में स्थित होकर भी सर्वत्र स्वभाव का ही खेल देखती हैं। अभिमानवश क्षुद्र मनुष्य यद्यपि कर्त्ता बनकर अपने को स्वाधीन समझते हैं, पर वास्तव में जहाँ पर जो कुछ भी हो रहा है वह स्वभाव वश ही हो रहा है। अविद्या के पर्दे से वह समझ में नहीं आता इसलिये महाशक्ति की क्रीड़ा में इच्छा-शक्ति का आरोप होता है तथा उसका अवश्यम्भावी फल सुख-दुःख का भोग अनिवार्य हो जाता है।

जिस समय माँ पहले गृहस्थाश्रम में गृह-कार्य निरत थी, उस समय भी वे जिस बोध में प्रतिष्ठित थी, गृहस्थाश्रम से अलग होकर इस समय भी वे उसी में प्रतिष्ठित हैं। उनकी स्थिति अटल है। देह विभिन्न अवसरों पर नाना स्वांगों में सजता है सही- जब जिस भाव में सजा है उस समय वही अभिनय यथार्थ रूप से हो गया है- किन्तु वे जानती हैं कि वे जहाँ पर हैं वहीं पर हैं, उस स्थिति में रहकर ही साक्षिरूप से निर्विकार भाव से वे देह और देहाश्रित संसार का अभिनय देखती जा रही हैं।

यह जो क्रिया के भीतर अकर्त्ता होकर केवल दृष्टा रूप से स्थिति है, साधारण मनुष्य के लिये उसे समझना कठिन है। बोध स्वरूप में स्थिति होने पर भी शक्ति का खेल स्वभावतः जिस समय जहाँ पर जिस प्रकार से होने वाला होता है होकर ही रहता है - उससे सत्य भाव की निर्लिप्तता और निःसंगता लेश मात्र भी क्षुण्ण नहीं होती। यह साधारण बुद्धि का अगम्य रहस्य है।

मनुष्यों के सब कर्मों के मूल में इष्ट साधनता ज्ञान अथवा कर्त्तव्य ज्ञान रहता है। अर्थात् मनुष्य उसी कर्म को करने के लिये प्रवृत्त होता है जिससे सुख प्राप्ति अथवा दुःख निवृत्ति होगी ऐसा उसका विश्वास हो, अथवा कहीं-कहीं पर औचित्य बोध से भी वह कर्म में प्रवृत्त होता है। दूसरा आदर्श प्रथम की अपेक्षा अवश्य श्रेष्ठ है, पर जगत् में उसके भी उदाहरण हैं। किन्तु जो आप्तकाम और आत्माराम हैं, जो कृतकृत्य हैं, जिन्हें किसी बात की कमी नहीं है, वे सुख-दुःख में समदर्शी होने के कारण सुख के प्रलोभन अथवा दुःख की पीड़ा से विचलित नहीं होते एवं उनका कोई कर्त्तव्य नहीं रहता। किन्तु फिर भी वे कार्य करते हैं। वह कर्म

स्वभाव का कर्म है, इच्छा की प्रेरणा से अथवा अहंबुद्धि की प्रेरणा से वह कर्म उत्पन्न नहीं होता। जिस हृदय में कर्तृत्वाभिमान की कलुषता नहीं है वहाँ फलाकांक्षा रूप इच्छा और कर्त्तव्य विचार का उदय होने की सम्भावना कहाँ? वही कर्म अकर्त्ता का कर्म है, स्वाभाविक कर्म है, निर्दोष कर्म है। वह कर्म होने पर भी अकर्म है। भगवत्-शक्ति के उच्छ्वास (उफान) से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर जिस कर्म का स्वत: चलित प्रवाह बह चला है यही वह कर्म है। यह लीला रूपी है। कर्त्ता के व्यक्तिगत प्रयोजन से वह परिच्छिन्न नहीं होता। जगत् का कल्याण ही इसका एकमात्र फल है। अज्ञ जीव अपने सीमित ज्ञान से इस मंगलमय लक्ष्य को यद्यपि सदा देख नहीं पाता तथापि इसे स्वीकार किये बिना तो वह रह नहीं सकता।

माँ के अपने से अभिनीत जीवन नाटक के क्रम-विकास के मार्ग में हमें निम्नलिखित सत्यों का प्रत्यक्ष होता है :

(क) अन्त:करण की तीव्र व्याकुलता ही भगवत्प्राप्ति में प्रधान सहायक हैं। यदि भगवान् को प्राप्त करना हो तो दिन पर दिन, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष सदा के लिये सब अवस्थाओं में - सोते, जागते, उठते, बैठते सब कामों के आरम्भ और अन्त में उनके लिये एक प्रकार की वेदना जगाई रखनी चाहिये। संसार के सुख-सम्पत्ति, आराम, आडम्बर किसी से भी जिस तरह हृदय से वे भुलाये नहीं जा सकें।

(ख) इसके फलस्वरूप क्रमश: चित्त उनके ध्यान से तन्मय हो जाता है और जो कुछ उनके ध्यान में विघ्नरूप रोड़े प्रतीत होते हैं उनके प्रति निरादर उत्पन्न होता है। इस तरह भगवद् भाव के विरोधी आचरण और वृत्तियों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है तथा सांसारिक विषयों में क्रमश: अनासक्ति बद्धमूल होती है।

(ग) तब एकान्त में कुछ समय तक उनका आश्रय कर रहना चाहिये। उपदेष्टा के अभाव की प्रतीति होने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि सरसरी तौर पर हृदय ही उपदेष्टा का कार्य कर सकता है। जिसे जो रूप, जो नाम, जो भाव भला लगे उसको प्रथमावस्था में उसी का स्मरण के लिये अवलम्बन करना चाहिये। दीक्षा यदि न भी हुई हो तो इसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। क्रमश: स्मरण का समय, मात्रा, तीव्रता आदि बढ़ाने चाहियें अथवा स्वयं ही बढ़ जाते हैं। गुरु, मन्त्र, देवता आदि की आवश्यकता होने पर वे

सब समय पर अपने आप ही उपस्थित हो जाते हैं। उनमें से जिस समय जिसकी आवश्यकता पड़ती है वही उस समय आविर्भूत हो जाता है। अविच्छिन्न स्मृति ही ध्यान और उपासना है – जिससे वह स्वायत्त हो उसके लिये मनोयोग देना चाहिये। उनकी अनुकम्पा की ओर दृष्टि लगाकर, फल की आशा का त्याग कर यथाशक्ति अपने आप प्रयत्न करते जाना चाहिये। आहार–शुद्धि और संयम, वाक्–संयम, मौन, निश्चिन्तता, कर्त्तव्य–निष्ठा, सदाचार, सत्य, दया, प्रेम, क्षमा और विचार – सब सद्गुण चित्त क्षेत्र में धीरे–धीरे आवश्यकतानुसार उत्पन्न होते हैं। इस तरह क्रमशः विशुद्ध भाव का उदय होता है।

(घ) क्रम से अपना–पराया भाव घट जाता है। व्यवहार क्षेत्र में भी अपने–पराये का भाव उठ जाता है। सम्पूर्ण जगत् ही एक अविभक्त परिवार के रूप में प्रतीत होने लगता है।

(ङ) धीरे–धीरे भाव ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। नियन्त्रण शून्य शक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने लगती है। संस्कारों का जाल कट जाता है।

(च) इस तरह साधना की परिपुष्टता से खण्ड भाव में अनन्त और अखण्ड सत्ता के प्रकाश की उपलब्धि होती है, तब सदा के लिये खण्ड भाव और खण्ड कर्मों की समाप्ति हो जाती है। यह जो विच्छिन्न के भीतर अविच्छिन्न सत्ता के बोध की बात कही गई है वह साक्षात् अनुभव है – शास्त्रीय वाक्य और युक्ति से उद्भूत परोक्ष ज्ञानमात्र नहीं है। इसलिये जिनको यह ज्ञान होता है उनके चित्त में साम्प्रदायिकता का लेश भी नहीं रह सकता। जिस व्यक्ति को अनन्त विभिन्न भावों के अन्दर भी एक ही परम सत्ता की प्रतीति होती है वह किसी विशेष भाव में बद्ध न होकर भी उसके खेल का अनुभव कर सकता है।

(छ) इस तरह भाव का खेल देखते–देखते भाव राज्य का त्याग कर आगे बढ़ सकने पर निर्मल ज्ञान के आलोक से अन्तराकाश उज्ज्वल हो उठता है। उस समय साधक को नित्य और पूर्ण सत्य का प्रकाश होता है तथा उसमें उसका आत्मसमर्पण पूर्णता प्राप्त करता है। उसी समय अहंबुद्धि की चरम आहुति सम्पन्न हो जाती है। उस समय अपनी इच्छा या अनिच्छा का फिर कुछ अवशेष नहीं रहता। सर्वत्र सब कर्मों में एक स्वभाव का खेल ही दृष्टिगोचर होता है।

माँ कहती हैं– ''असीम को यदि पाना हो तो पहले सीमा के भीतर अपने को आबद्ध कर चलना चाहिये–इसके अनन्तर अनन्त के आभास से सीमा का बन्धन खुल जाता है।'' माँ के अपने जीवनाभिनय में हम इस सत्य को स्पष्ट देख सकते हैं।

(6)

ग्रन्थकर्त्री श्रीमती **गुरुप्रिया** देवी के सम्बन्ध में यहाँ पर दो–एक शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। गुरुप्रिया माँ के एकनिष्ठ भक्त और सेवक अवकाश प्राप्त सिविल सर्जन **श्रीयुत् शशांकमोहन मुखोपाध्यायजी** की (इस समय जो स्वा. **अखण्डानन्द गिरि** के नाम से परिचित हैं) कन्या हैं। उन्हें वि.सं.1972 के पौष महीने से माँ के सत्संग लाभ का सौभाग्य मिला है – बीच–बीच में कुछ समय के लिये माँ के आदेश से व्यवधान पड़ने पर भी उस सयम से माँ के साथ उनका साहचर्य एक प्रकार से लगातार बना हुआ है। उन्होंने निरन्तर माँ की सेवा और अनुषंगिक अन्यान्य अनेक कर्मों में व्यापृत रहकर भी धारावाहिक रूप से माँ का चरित्र और उपदेश आदि लिखने का प्रयत्न किया है और कर रही हैं, इससे माँ के सभी भक्त उनके ऋणी हैं। गुरुप्रिया, ब्रह्मचारिणी, वैराग्य सम्पन्न, निष्ठावती और सर्वोपरि माँ के प्रति असाधारण भक्तिमति हैं – इसके अतिरिक्त उनमें सूक्ष्म दर्शन की और निपुणतापूर्वक वर्णन करने की अनुपम क्षमता है, विशेषतः नाना कारणों से उन्हें घनिष्ठतापूर्वक माँ का संग और सेवा का अधिकार प्राप्त हुआ है। इसलिये विवरण लिखने की योग्यता उनमें विशेष रूप से होगी, इसमें सन्देह नहीं है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे उक्त योग्यता का सदुपयोग कर धन्य हुई हैं।

श्री गोपीनाथ कविराज

* * *

दिव्य जीवन परिक्रमा

(ग्रन्थ रचयित्री के श्री श्री माँ से मिलने से पूर्व–जन्म वर्ष 1896 **से** 1925 **तक)**

30 अप्रेल, 1896 खेओड़ाः– पूर्व बंगाल त्रिपुरा जिलान्तर्गत दादी के पितृ गृह में आविर्भाव, निर्मला सुन्दरी नाम।

1897 विद्याकूटः– पिता विपिनबिहारी भट्टाचार्य के पैतृक आवास में नौ–दस महीने के अल्पवय में ज्योतिर्मय पुरुष द्वारा माँ की अर्चना।

1898 सुल्तानपुरः– मामा के घर माता मोक्षदा सुन्दरी देवी की गोद में बैठकर दो वर्ष की उम्र में कीर्तन सुनकर भाव। बाल्यकाल से ही विशेष अवसर व परिस्थितियों में भाव परिवर्तन।

1903 खेओड़ा, सुल्तानपुरः– आठ–नौ वर्ष की अवस्था में दोनों ग्रामों के विद्यालयों में विद्याध्ययन।

फरवरी 1909, खेओड़ाः– बारह वर्ष दस माह की अवस्था में ढाका विक्रमपुर निवासी श्री रमणीमोहन चक्रवर्ती के साथ विवाह (कालान्तर में बाबा भोलानाथ)।

1911 श्रीपुर व नरुन्दीः– जेठ श्री रेवतीमोहन चक्रवर्ती के कर्मस्थल में। कर्मरता माँ की समय–समय पर भावावस्था।

1914 अष्टग्रामः– 18 वर्ष की अवस्था में भोलानाथजी के कर्मस्थल अष्टग्राम आना, जयशंकर सेन की स्त्री द्वारा **'खुशी की माँ'** नामकरण, श्री हरकुमार की भविष्यवाणी, ''एक दिन विश्व जगत् आपको माँ सम्बोधन से पुकारेगा।'' क्षेत्र बाबू द्वारा देवी रूप में दर्शन व प्रणाम, कीर्तन सुनकर भावावस्था, शरीर में आसनादि का प्रकाश।

1914–1918 विद्याकूटः– कटाक्ष करने वाले दो युवकों पर तीव्र दृष्टिपात व चरित्र परिवर्तन, धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का माँ के प्रति विशुद्ध आकर्षण।

1918–1924 बाजितपुरः– 22 वर्ष की उम्र में काली–पूजा के समय पद्मासनादि का प्रकाश। समय–समय पर स्वतः स्फूर्त विभिन्न आसन व यौगिक क्रियाएँ।

1922:– झूलन पूर्णिमा (श्रावणी) तिथि दीक्षा का खेल। ममेरे भाई की जिज्ञासा ''आप कौन है।'' माँ का उत्तर ''पूर्णब्रह्म नारायण''। माँ के स्पर्श से बाबा भोलानाथजी की समाधि। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि विभिन्न साधना मार्ग की क्रियायें, षट्चक्र ग्रन्थिचक्रादि तथा देव–देवियों का स्वतः प्रकाश, अरब देशीय महापुरुष की चर्चा, बाबा भोलानाथजी की दीक्षा। श्रीमुख से स्वतः संस्कृत भाषा में प्रश्नोत्तर। निरन्तर कंठ में बीज–मन्त्र। संस्कृत मंत्रों का उच्चारण। कुण्डली देकर बात करना।

अप्रेल, 1924 **शाहबाग (ढाका):**– नवाब स्टेट शाहबाग में बाबा भोलानाथजी की नौकरी। ''**शाहबाग की माँ**'' नाम से परिचित। आहार में परिवर्तन, स्पर्श द्वारा बालक स्वस्थ। सिद्धेश्वरी का सन्धान, सिद्धेश्वरी में सात दिन, वहाँ विविध अलौकिक घटनाएँ। श्री ज्योतिषचन्द्र राय का प्रथम मातृदर्शन वर्ष का अंत।

1925:– रमना काली बाड़ी में यातायात, अरब देशीय फकीर को सशिष्य सूक्ष्म में देखना। प्राणगोपाल बाबू द्वारा माँ का पहला चित्र। पक्षाघात–ग्रस्त बालिका की रोग–मुक्ति। फलाहार करने का खयाल, बृहस्पति एवं सोमवार किञ्चित् अन्नग्रहण, बाउल बाबू के आग्रह पर काली–पूजा। बलि देने पर बकरे के शरीर से रक्तपात न होना। कालीप्रसन्न कुशारी की धर्मपत्नी द्वारा खीर का भोग। परिमाणाधिक मात्रा में माँ का खीर ग्रहण। माँ की परीक्षा लेने पर विपरीत फल। भाईजी द्वारा सिद्धेश्वरी में ''**श्री श्री माँ आनन्दमयी**'' नामकरण।

* * *

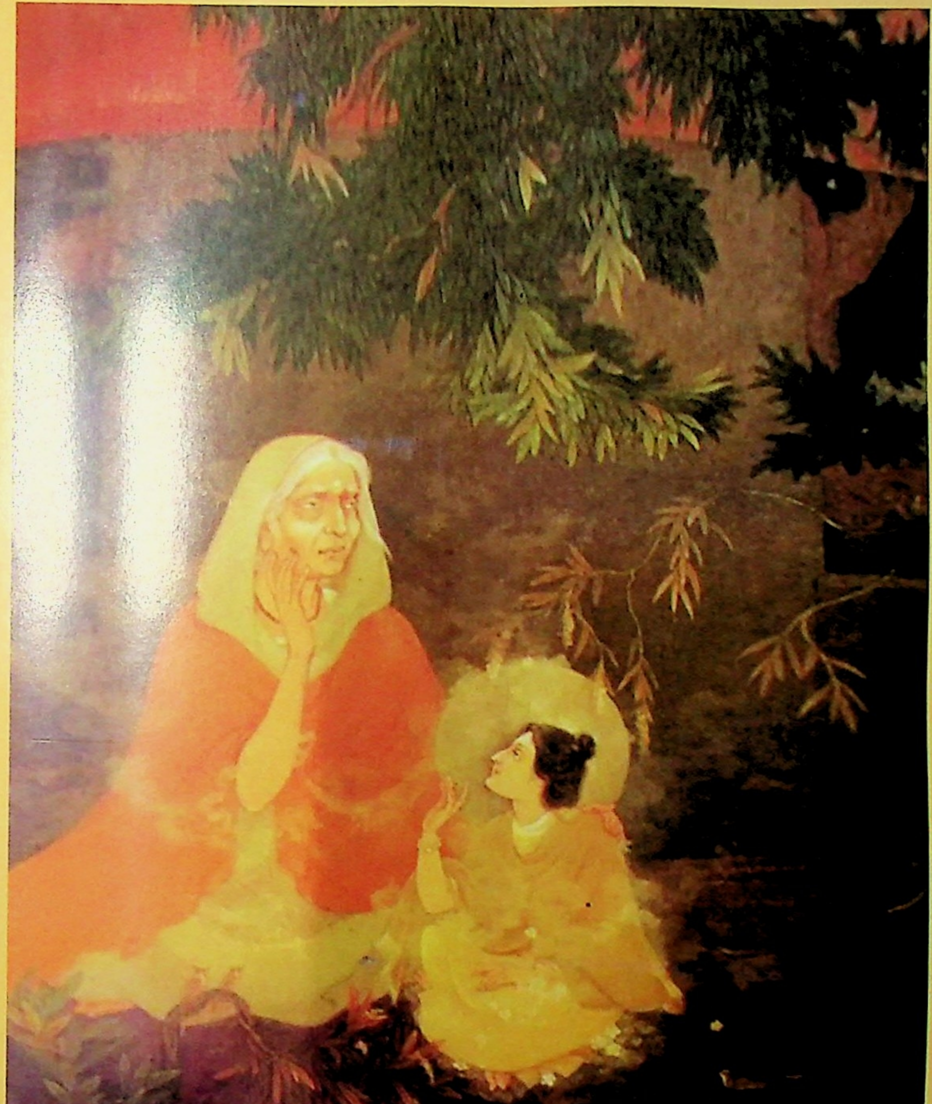

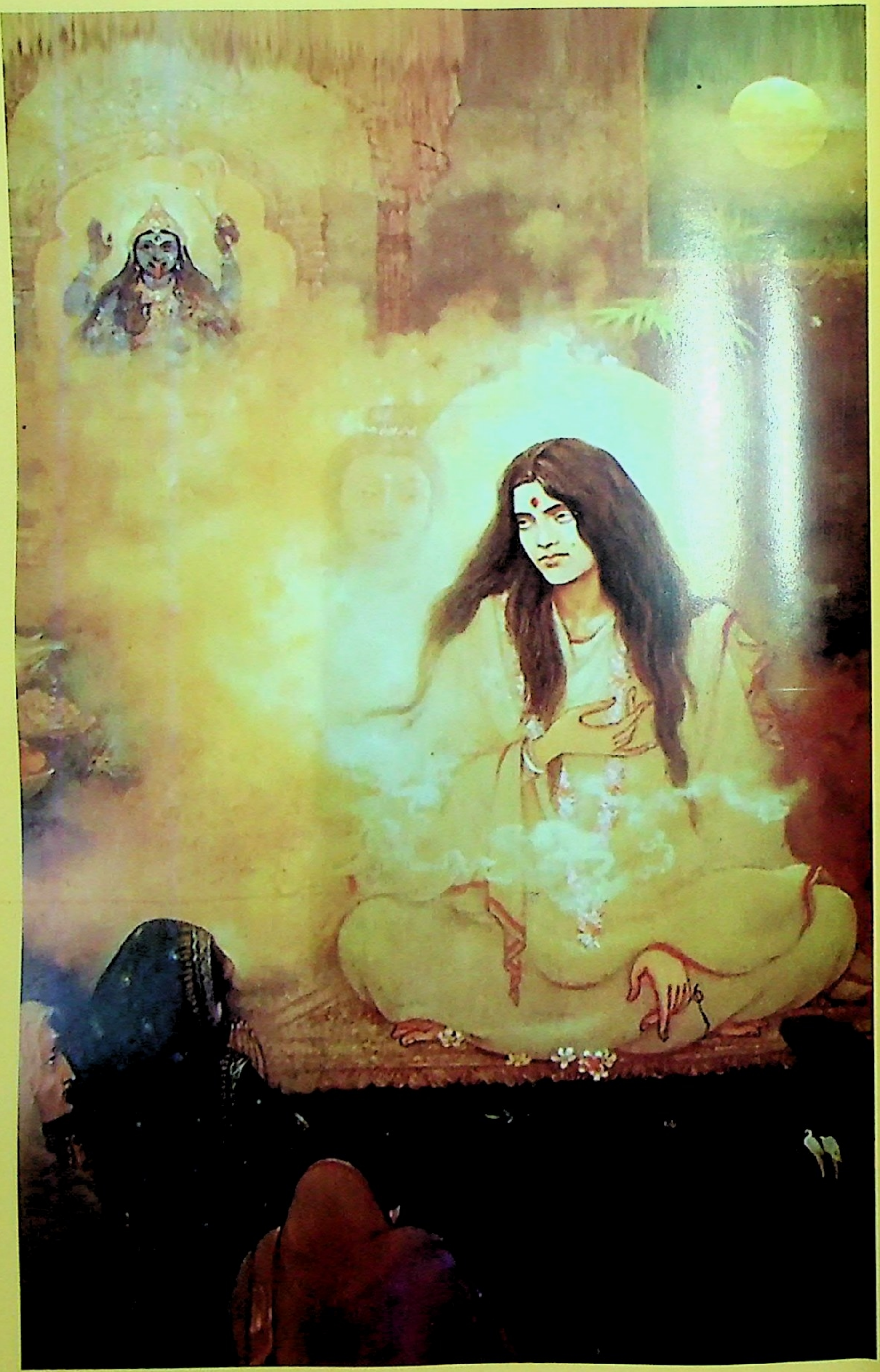

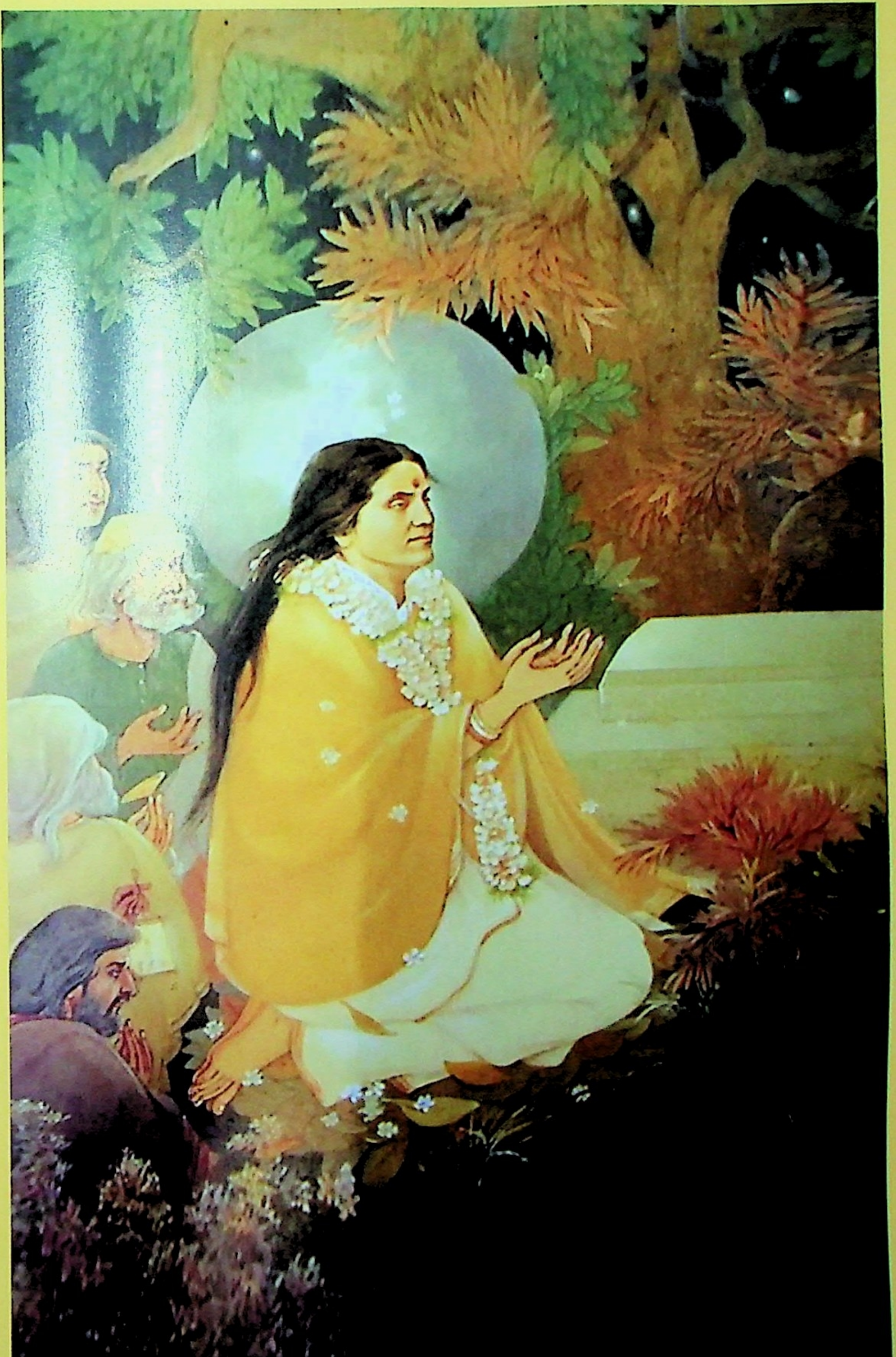

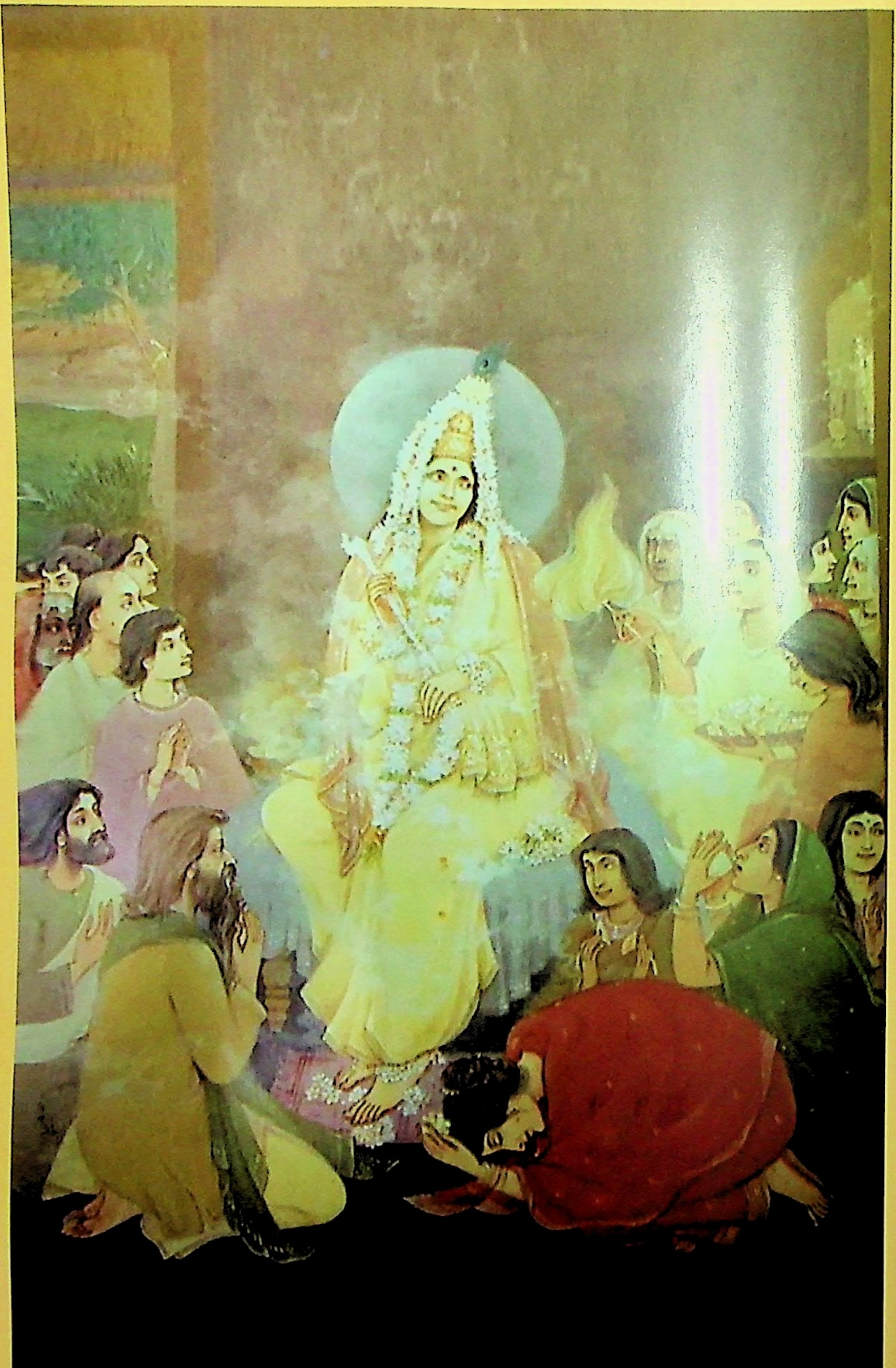

संक्षिप्त जीवन चरित

ग्रन्थ रचयित्री के श्री श्री माँ से मिलने से पूर्व जन्म वर्ष 1896 से 1925 तक

श्री श्री माँ का आविर्भाव

श्री श्री माँ आनन्दमयी* ने वैशाख 19 सौर सं. 1953 वि. (30 अप्रैल 1896 ई.) बृहस्पतिवार रात्रिशेष में 3 बजे त्रिपुरा जिले के खेओड़ा गाँव में जन्म लिया था।** उनके पिताजी श्री विपिनबिहारी भट्टाचार्य और माताजी मोक्षदा सुन्दरी अथवा विधुमुखी देवी उस समय अपने गाँव विद्याकूट का परित्याग कर खेओड़ा गाँव में रहते थे। उक्त गाँव श्री श्री माँ के पिताजी (श्री विपिनबिहारीजी) का ननिहाल है।

माँ अपने पिता की दूसरी सन्तान हैं। माँ के प्रादुर्भाव के पूर्व उनकी एक बहिन हुई थी, किन्तु वह बालिका अधिक दिन जीवित नहीं रही। माँ के जन्म के पहले ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई थी। माँ के बाद लगातार तीन भाई हुये। वे भी अधिक दिन नहीं टिके। थोड़े ही दिन धरा-धाम में रहकर वे भी अपने लोक को चल दिये। उनमें से पहला सात वर्ष जीवित रहा। उस बच्चे को जब अन्त समय बाहर रखा गया, तब उसने माँ से तीन बार ''माँ, मैं तो मरता हूँ'' कहकर प्राण छोड़े। दूसरे के कपाल पर राजतिलक का चिह्न था। उसे देखकर सभी लोग कहते-''गरीब के घर यह बच्चा जीयेगा नहीं।'' मृत्यु के पहले श्री श्री माँ के पिताजी ने उस चिह्न को देखकर कहा था-''जाने के पहले मालूम पड़ता है चिह्न दिखा गया है।'' चार वर्ष की अवस्था में उस बच्चे की मृत्यु हुई। तीसरा केवल डेढ़ महीना धरा-धाम में रहा। इन तीन भाइयों के बाद माँ की दो बहिनें हुई और सबके अनन्तर एक भाई हुआ। दोनों बहिनों का नाम क्रम से सुरबाला और हेमलता पड़ा एवं भाई का नाम माखन। माँ के पहले एक बालिका की मृत्यु हो जाने के कारण श्री श्री माँ की माताजी (मोक्षदा सुन्दरीजी) माँ के आविर्भाव के दूसरे दिन प्रातःकाल ही माँ को तुलसी

---

* माँ का जननी का रखा हुआ प्रसिद्ध नाम निर्मला सुन्दरी है। इसके सिवा तीर्थवासिनी, दाक्षायणी, गजगंगा, निर्मला और कमला- ये भी पाँच नाम उनके हैं। आनन्दमयी नाम ढाका के ज्योतिषचन्द्र रायजी ने रखा। तब से इसी नाम से माँ सर्वत्र परिचित हैं।

** माँ के जन्मकाल में कृष्णपक्ष की चतुर्थी तिथि थी।

के नीचे लिटा लाई। इसी तरह अट्ठारह महीने तक नित्य ही तुलसी के नीचे लिटा लाती थी। उसके बाद जरा बड़ी होने पर माँ स्वयं ही जाकर लोट-पोट ले आती। माँ के आविर्भाव के समय श्री श्री माँ की माताजी को कुछ ऐसी विशेष प्रसव-वेदना का अनुभव नहीं हुआ, साधारण वेदना होते ही दस मिनट में प्रसव हो गया। एक बात और हुई, वह यह कि माँ आविर्भूत होकर साधारण बच्चे-बच्चियों के समान रोई नहीं-एकदम चुप रही। माँ इस बात को सुनकर कहती हैं, रोती क्यों? मैं उस समय झरोखे के छेद से आम का पेड़ जो देख रही थी।'' माँ के गर्भ में आविर्भूत होने की वार्ता प्रकट होने के पहले से ही श्री श्री माँ की माताजी विविध देव-देवियों की मूर्तियाँ स्वप्न में देखती थी एवं उन सब मूर्तियों का मानो वरण कर उन्हें घर में स्थापित कर रही हों, ऐसा देखती थी। माँ का आविर्भाव होने के बाद भी बहुत दिनों तक वे ऐसा देखती रही।

श्री श्री माँ के पिताजी की वंश मर्यादा अत्यन्त प्रतिष्ठित है। ये काश्यप गोत्रिय हैं-विद्याकूट के काश्यप विख्यात हैं। विद्याकूट में इनके सम्बन्धियों के कई घर हैं। इनकी ननिहाल में एक सती हो चुकी थी और ददीहाल (पितृकुल) में भी। इनके पुरखों में से कुछ लोगों को सिद्धी मिली थी। प्रथम कन्या के जन्म के अनन्तर एक नौकरी मिल जाने के कारण श्री श्री माँ के पिताजी परदेश चले गये। घर से जाकर तीन वर्ष तक उन्होंने न तो घर को अपनी खबर भेजी और न घर की ही खबर ली। श्री श्री माँ की माताजी को उनकी दादी के पास खेओड़ा ग्राम में छोड़ गये थे। उनके जाने के उपरान्त वह कन्या स्वर्ग सिधार जाती है। किन्तु श्री श्री माँ के पिताजी की कोई खबर नहीं लगी। गरीब गृहस्थी थे-खबर लेना भी मुश्किल था। कुछ दिनों के बाद पड़ोसियों ने श्री श्री माँ की माताजी की ओर दृष्टिपात कर एक आदमी भेजकर खबर मँगाई। तीन वर्ष बाद श्री श्री माँ के पिताजी घर आये। तब ज्ञात हुआ कि लड़की की मृत्यु का समाचार भी उन्हें मिल गया था-किन्तु उससे उन्हें कुछ भी दु:ख नहीं हुआ। इसके कुछ दिन बाद ही माँ गर्भ में आविर्भूत हुई। कभी-कभी माँ इसीलिये कहती हैं- ''इस शरीर के आविर्भूत होने के पूर्व ही पिताजी ने गृहत्याग किया था। कई दिनों तक गेरुआ वस्त्र भी धारण किया था। हरि-संकीर्तन में समय व्यतीत करते थे। उनके इस वैराग्य-भाव के समय ही इस शरीर का आविर्भाव हुआ।''

सुनने में आता है कि श्री श्री माँ के पिताजी की माताजी कसवा के विख्यात काली-मन्दिर में विपिन का एक पुत्र हो, ऐसी प्रार्थना करने गई और

कर बैठी 'विपिन के कन्या हो।' वृद्धा की इस प्रार्थना के कुछ ही दिन बाद माँ का आविर्भाव हुआ।

माँ की असाधारणता बचपन में ही प्रकट हो चुकी थी। बाल्यावस्था से ही माँ खूब हँसमुख थी। उनकी स्वाभाविक शक्ति उस समय भी आज की जैसी ही थी। सभी का माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था। गरीब के घर में जन्म लेने पर भी पिता-माता के प्रेम से माँ को विशेष कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। माँ के तीन छोटे भाइयों की मृत्यु के शोक में उनकी माताजी को विशेष करके रोते किसी ने नहीं देखा। कभी यदि वे रोने लगती तो माँ इस प्रकार चिल्लाकर रोना आरंभ कर देती कि उनकी माताजी बाध्य होकर स्वयं शान्त हो माँ को शान्त करती। इस प्रकार श्री श्री माँ अपनी माताजी को रोने नहीं देती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि माँ को सदा पूर्ण ज्ञान था। एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ ने अपनी माताजी से कहा था- ''माँ, मेरे जन्म के तेरहवें दिन श्रीनन्दन चक्रवर्ती (मातामहीजी के ममियाँ श्वसुर) मुझे देखने आये थे न?'' श्री श्री माँ की माताजी को उस बात का बिल्कुल स्मरण न था, माँ की बात सुनने के अनन्तर उनकी माताजी को उसकी याद आ गई। बचपन में ही उनमें समाधि भाव का प्रकाश देखा जाता था, जैसे बहुत दूरी पर कीर्तन हो रहा है, माँ घर के भीतर सो रही हैं-इस प्रसंग में माँ कहती हैं-शरीर में एक अस्वाभाविक अवस्था हो जाती थी। किन्तु कमरे में अंधेरा रहता था, इसलिये माता-पिता कोई देख न पाते थे। मेरे में ऐसा एक भाव रहता कि कोई देखे नहीं। इसीलिये प्रतीत होता है कि उक्त अवस्था गुप्त ही रहती।''*

कीर्तन में भाव

माँ जिस समय दो वर्ष दस महीने की थी, उस समय उनकी माताजी उनको गोद में लेकर पड़ोसी (चन्द्रनाथ भट्टाचार्य) के घर कीर्तन में गई। माँ को

---

* इस बात पर बचपन के वृत्तान्त के सम्बन्ध में किसी को जिज्ञासा हुई कि उस समय तो साधन आदि क्रिया शरीर में आरम्भ नहीं हुई थी, फिर ये सब क्रियाएँ उस समय कैसे होती थी? इसके उत्तर में माँ ने कहा, ''यह शरीर जैसे बहू, बेटी बन कर रहा वैसे ही ये सब अवस्थाएँ भी जब जिस भाव में शरीर रहता उस समय वह अवस्था इस खेल के समान ही फिर प्रकट दिखाई देती। क्योंकि तुम लोगों के तुल्य चलना-फिरना एवं यह समाधि और कभी-कभी भावस्थ रहना अथवा जैसे तुम लोग सन्ध्या करते हो इस तरह प्रकाश होना, इस शरीर में ये सब एक समान हैं।'' फिर यह भी मैंने सुना है कि कभी किसी स्थान, काल और अवस्था की अपेक्षा नहीं रहती थी। अपने भाव में मन की मौज के अनुसार अपने में ही रह कर खेलती थी।

हिलडुल कर गिरती देखकर उन्होंने कहा–''सोती क्यों है? कीर्तन सुन।'' आगे चलकर माँ ने अपनी माताजी को स्वयं ही उस दिन की बात का स्मरण कराया था, किस घर में कीर्तन सुनने गये थे यह भी बतला दिया था। माँ के कहने पर उनकी माताजी को भी स्मरण हो आया। माँ कहती हैं– ''इस समय कीर्तन में जैसी अवस्था होती है उस समय भी वैसी ही होती थी। मालूम पड़ता है कि उपयुक्त समय न होने के कारण उस समय वह प्रकाश में नहीं आती थी।''

माँ अपने बचपन में अपनी माताजी की बड़ी सास (यानी पिताजी की ताई) के साथ चानला में पागल शिव के दर्शन करने गई। वे माँ को जिस जगह बैठा गई वहाँ से माँ ने देखा कि शिवजी निकटवर्ती तालाब में एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहे हैं। निरन्तर इसी प्रकार जल में खेल रहे हैं। माँ ने और भी कुछ देखा था। ऐसी भी किंवदन्ती है कि उक्त शिवजी सदा मन्दिर में दिखाई नहीं देते हैं। जंगम शिव हैं।

बाल्यावस्था में जब श्री श्री माँ की माताजी उनको भात खिलाने बैठाती, उस समय माँ अन्यमनस्क हो उठती। श्री श्री माँ की माताजी माँ को धक्का देकर बिगड़ती–''भोजन करने बैठकर भोजन करने की ओर ध्यान नहीं देती, ऊपर की ओर देखती है।'' माँ कुछ कह नहीं सकती थी। आगे चलकर माँ ने बतलाया कि मैं देखती कि कितने ही देव-देवियों की मूर्तियाँ आ रही हैं और जा रही हैं।

माँ का स्वभाव निसर्गतः सरल था, इसलिये बाल्यावस्था में सभी लोग माँ को बड़ी सीधी भोली कहते थे। उनकी माताजी तो अक्सर ही कहती कि यह तो बड़ी ही सीधी है, इसे कुछ भी सुध-बुध नहीं है। माँ एक दिन तालाब से एक घड़ा जल भरकर बगल में दबाकर टेढ़ी बनकर आई, खड़ी होकर अपनी माताजी से बोली–''तुम सब लोग मुझे सीधी कहते हो, लो मैं टेढ़ी हो गई हूँ।''

माँ का लिखना-पढ़ना सामान्य ही हुआ था। कुछ दिन स्कूल में पढ़ा था। मामाजी के मकान में बालिका-विद्यालय के एक अध्यापक रहते थे। माँ वहीं जाकर पहले-पहले स्कूल में प्रविष्ट हुई। उन्होंने अ, आ पढ़ा दिये। दूसरे ही दिन अ, आ सीखकर माँ ने उनके सामने पढ़ दिये फिर क, ख पढ़ा ले आई। उसके दूसरे ही दिन माँ ने सब क, ख सीख डाले। यह देखकर अध्यापकजी को बड़ा आश्चर्य हुआ एवं उन्होंने सोचा कि मालूम होता है इसने निश्चय ही पहले पढ़ा होगा। किन्तु माँ का वह पहले-पहल ही पुस्तक-परिचय था, इसी तरह सब कैसे हो जाता भगवान् ही जानें। माँ थोड़े ही दिन वहाँ रही। उसके

बाद खेओड़ा चली गई। वहाँ उस समय जो स्कूल के मास्टर थे वे रिश्ते में माँ के दादा लगते थे। माँ स्कूल में बहुत कम जाती, क्योंकि स्कूल दूर था और छोटे भाइयों की बीमारी भी कुछ दिन बाधक हुई थी। यह सही है कि वे पढ़ती न थी, किन्तु मास्टर के समीप पढ़ते समय सब ठीक रीति से हो जाता था। एक बार पुस्तक खोलकर तनिक देखते ही माँ ने एक पद्य कण्ठस्थ कर लिया। उस दिन स्कूल में इन्सपेक्टर आये थे। उन्होंने भी पुस्तक को खोलकर देखते ही ठीक वही पद्य माँ से बोलने को कहा। माँ ने उसे अच्छी तरह से सुना दिया। पढ़ना और नामवरी अपने आप हो जाती। शिक्षक महाशय ने स्कूल की नामवरी के लिये माँ तथा अन्य तीन लड़कियों को क, ख क्लास से लोअर प्राईमरी क्लास में चढ़ा दिया। माँ अक्सर स्कूल नहीं जाती थी। बहुत दिनों के बाद स्कूल जाकर उन्होंने देखा कि लड़कियाँ बहुत आगे बढ़ गई हैं। शिक्षक ने माँ को क्लास के समान रखने के लिये उनके साथ-साथ वे जो पढ़ रही थी वही माँ को भी पढ़ा दिया। उनका पढ़ना बहुत अच्छी तरह हो गया।

श्री श्री माँ की माताजी ने एक दिन उन्हें बतला दिया कि जहाँ कौमा या पूर्ण विराम हो, पढ़ते समय वहाँ पहुँच कर रुक जाना चाहिये। माताजी का आदेश था, इसलिये माँ एक साँस में पढ़ती रहती। यदि बीच में साँस जरा रुक जाती तो माँ फिर पहले से आरम्भ करती। एक साँस में पढ़कर अत्यन्त कष्ट से शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा कर पूर्ण विराम के समीप पहुँचकर साँस छोड़ती। जिस समय दुःख का भाव दिखाना होता उस समय शरीर से वह भाव प्रकट हो जाता। जिस समय लज्जा का भाव दिखाना होता उस समय शरीर से लज्जा का भाव प्रकट हो जाता।

बाल्यावस्था में हिन्दू-मुसलमान सभी माँ के प्रति खूब स्नेह करते थे। मुसलमान सदा माँ को गोद में लेते। माँ को जमीन पर रख देने पर वे गोद में उठा लेते। मातामहीजी (नानीजी) कहती कि अन्नप्राशन होने तक मुसलमान के छू लेने में कोई दोष नहीं है। अन्नप्राशन करने के अनन्तर उनके छू लेने पर स्नान करना चाहिये।

खेओड़ा में रहते समय माँ की बाल्यावस्था की एक घटना का यहाँ पर मैंने उल्लेख किया है। माँ उस समय नन्हीं बच्ची थी। एक दिन माँ ने देखा कि एक पेड़ पर केवल एक आम पेड़ की चोटी पर पका है। उस समय वैशाख का महीना था, पेड़ पर आम विशेष पके न थे। कोई एक पूजा थी, सभी पैसे से आम खरीदकर पूजा करने वाले थे। माँ ने नानीजी से कहा- ''माँ, तुम पूजा

में आम चढ़ाओगी ना?'' नानीजी ने कहा- ''पैसे कहाँ पाऊँगी? पेड़ पर भी तो आम पके नहीं हैं। पूजा पर कैसे आम चढ़ाऊँगी।'' यह बात सुनकर माँ ने दौड़कर उस आम के पेड़ के नीचे जाकर देखा कि ठीक वही आम जमीन पर गिरा है। उन्होंने लाकर उसे माँ को दिया। इस सिलसिले में माँ ने कहा- ''मेरे ऊपर बड़ा कड़ा शासन रहता था कि मैं दूसरे की वस्तु को हाथ न लगाऊँ। मुझे सहसा उस पके हुये आम को लाती देखकर माँ मुझे डाँटने लगी - ''तू किसी दूसरे के मकान से आम ले आई है, हमारे पेड़ पर तो आम पके नहीं हैं।'' मैंने माँ से कहा, नहीं माँ, मैं किसी के मकान से नहीं लाई हूँ। वहाँ पर मुझे मिला है। तुम जाकर देख आओ।

विवाह और उसके बाद का विवरण (1909–1918 ई.स.)

विक्रम संवत् 1965 सौर 25 माघ को बारह वर्ष 10 मास की अवस्था में ढाका-विक्रमपुर के अन्तर्गत आठपाढ़ा गाँव के डिंसाई क्षोत्रिय श्रीजगबन्धु चक्रवर्ती और त्रिपुरासुन्दरी के पुत्र के साथ श्री श्री आनन्दमयी का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ। वर का नाम **रमणीमोहन चक्रवर्ती** था, किन्तु पीछे ढाका जाने के बाद भक्त लोग उन्हें **'भोलानाथ'** नाम से पुकारते हैं एवं इसी नाम से सर्वत्र उनकी प्रसिद्धि है। इसलिये यहाँ पर मैंने 'भोलानाथ' नाम का ही व्यवहार किया है।

उस समय भोलानाथजी की माँ जीवित न थी, किन्तु पिताजी जीवित थे। विवाह के दो वर्ष बाद पिताजी की मृत्यु हुई। उनके दो बड़े भाई थे। उनके नाम थे - रेवतीमोहन और सुरेन्द्रमोहन। उनके छोटे भाई भी दो ही थे-एक का नाम कामिनीकुमार और दूसरे का यामिनीकुमार। बहनें पाँच थी। विवाह के बाद भोलानाथजी ने दो-एक पुस्तकें लाकर माँ को दी थी, किन्तु संयुक्ताक्षर, लाइन और छन्द के अनुसार पढ़ना माँ को महा कठिन प्रतीत हुआ, इसलिये फिर पुस्तक पढ़ना नहीं हुआ।

विवाह के समय भोलानाथजी पुलिस विभाग में काम करते थे। विवाह के कुछ समय बाद ही अर्थात् संवत् 1966 के भाद्रपद में उनकी नौकरी छूट गई। तभी से कई वर्षों तक वे निरालम्ब अवस्था में रहे। माँ विवाह के चार वर्ष तक बड़े जेठजी रेवती बाबू के निकट रही। वे श्रीपुर, नरुन्दी आदि स्थानों में (ढाका-जगन्नाथगंज लाइन में) रेलवे विभाग में स्टेशन मास्टर का काम करते थे। इसी बीच में (संवत् 1968 में) माँ के पिताजी अपने ननिहाल खेओड़ा गाँव का त्याग कर अपने पैतृक गाँव विद्याकूट आकर रहने लगे। माँ के छोटे भाई माखन का जन्म लगभग उसी समय हुआ।

कुलवधू

जेठजी के निकट रहते समय माँ घर-गृहस्थी का सम्पूर्ण काम अपने हाथ से करती थी और यथाशक्ति जेठजी की सेवा शुश्रुषा करती थी। जेठजी भी उन पर अत्यन्त स्नेह करते थे। वे उस समय अत्यन्त लज्जाशील थी, कुलवधु के पालन योग्य सब नियमों और आचरणों का पालन करती थी। उस समय भी कभी-कभी माँ भाव में चली जाती थी, लेकिन प्रकट न होने के कारण लोग उसे समझ न पाते थे। कभी-कभी रसोई बनाते समय ऐसी अवस्था का उदय हो जाता - लोग समझते कि बहू बहुत सोने वाली है। सम्भवत: दाल-भात गिर पड़ता, जेठानीजी आकर बकझक करती। उस समय माँ अत्यन्त लज्जान्वित होकर उठ बैठती और फिर सब ठीक करके रसोई बनाती। माँ की प्रकृति अत्यन्त शान्त थी, इसलिये सभी उन पर स्नेह करते थे।*

जेठजी की मृत्यु के अनन्तर माँ आठपाड़ा के मकान में आकर बड़ी जेठानीजी के निकट छ: महीने रही। उसके बाद छ: महीने अपने पीहर विद्याकूट रही। माँ के आठपाड़ा रहते समय ही भोलानाथजी की अष्टग्राम में ढाका के नवाब के स्टेट के अन्तर्गत सर्वे डिपार्टमेन्ट में नौक़री लग गई। तदनन्तर माँ अष्टग्राम आई। वहाँ माँ एक वर्ष चार महीना रही।

अष्टग्राम सन् 1914-भाव के पहले रूप

अष्टग्राम में जयशंकर सेन महाशय की स्त्री माँ को 'खुशी की माँ' कहकर पुकारती थी। उनके पुत्र शारदा शंकर माँ को भागवत सुनाने के लिये वहाँ गये थे। सेनजी के साले हरकुमार राय के सम्बन्ध में दो-एक बातें इस सिलसिले में उल्लेख योग्य प्रतीत होती हैं। माँ के अष्टग्राम जाने से पहले अष्टग्राम में ही हरकुमार का मातृवियोग हो गया था। उनकी माँ जिस मकान में रहती थी दैवात् माँ भी उसी मकान में रहने लगी। इस सूत्र से हरकुमार माँ को माँ कहकर पुकारने लगे। यही माँ का सर्वप्रथम 'माँ' सम्बोधन था। उस समय माँ की अवस्था 17-18 वर्ष की होगी। बीच-बीच में हरकुमार में मस्तिष्क-विकृति के लक्षण दृष्टिगोचर होते। मस्तिष्क अच्छा रहने पर वे खूब काम-धाम करते थे। वे बिल्कुल अशिक्षित न थे, नौकरी भी अच्छी ही करते थे। फिर भी

---

* माँ की बड़ी जेठानी और ननद के मुँह से भी मैंने ये सब बातें सुनी हैं। बाद में माँ के साथ-साथ मैं आठपाड़ा, बाजितपुर आदि स्थानों में जाकर वहाँ के लोगों के मुँह से भी सब बातें सुन आई हूँ। माँ की पूर्वलीला के सब स्थान देख आई हूँ।

धर्मभाव में बहुधा पागल हो जाते थे, इसलिये उनकी नौकरी अधिक दिन टिकी नहीं। वे अष्टग्राम में अपनी बहन के मकान में रहते थे। माँ को जिस तरह किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस ओर उनका विशेष लक्ष्य रहता था। माँ उनसे बोलती न थी, उनके सामने घूँघट काढ़ती थी, किन्तु वे नियमतः प्रतिदिन बाजार से माँ का सौदा-पत्ता ला देते थे। बहुधा गीली और कच्ची लकड़ियों से भोजन बनाने में माँ को कष्ट हो रहा है, यह देखते ही वे जहाँ कहीं से भी सूखी लकड़ियाँ लाकर माँ को देते और कहते - ''ले बेटी, इन लकड़ियों से रसोई बना।'' माँ से बोलने के लिये वे बहुत अनुरोध करते, किन्तु माँ उनसे बोलती न थी। बहुत दिनों के बाद भोलानाथजी के आदेश से माँ उनसे बोलने लगी थी। माँ के प्रति इतना आदर करना पड़ौसियों को अच्छा नहीं लगता था। किन्तु उस ओर उनका दृष्टिपात न था। प्रतिदिन सवेरे-शाम माँ को प्रणाम करना उनका दैनिक कार्य था। माँ खाने बैठती तो वे प्रसाद के लिये हाथ पसारकर बैठ जाते। माँ उनको प्रसाद तो नहीं ही देती, उनके सामने न खाऊँगी, यह ठानकर हाथ उठाकर बैठ जाती। कई दिन इस तरह निराश होकर उन्होंने भोलानाथजी के पास जाकर कहा - ''देखो, बेटी से इतनी मिन्नत के साथ कहता हूँ, बेटी प्रसाद नहीं देती।'' माँ ने भी भोलानाथजी से सब बातें कही। सब सुनकर और हरकुमार का भाव देखकर भोलानाथजी ने माँ से कहा- ''उसका जब इतना आग्रह है, तुम खाते समय थोड़ा-सा कुछ दे दो।'' भोलानाथजी के आदेश से तब माँ सब ही करती।

एक दिन सारा संसार तुझे माँ कहेगा

एक दिन प्रसाद देने के बाद देखने में आया कि प्रतिदिन ही माँ के खाते समय हरकुमार आकर उपस्थित हो जाते, एक दिन का भी इसमें हेर-फेर न होता। बीच-बीच में माँ से कहते- ''बेटी, तुमको किसी ने पहचाना नहीं।'' जब वे अनेक अनुरोधों से भी माँ को अपने साथ बातें करा सकने में समर्थ नहीं हुए, तब एक दिन वे भीषण भाव धारण कर कहने लगे- ''बेटी, तू इतनी बड़ी पाषाणी है। मैं एक वर्ष से तुझसे बोलने के लिये कह रहा हूँ, तू मेरे साथ बोलती नहीं है। मैं यदि पत्थर के निकट जाकर इस तरह माँ कहकर पुकारता तो पत्थर में भी प्राण-संचार कर सकता था। बच्चे के निकट माँ की लज्जा- यह कैसी बात है?'' एक दूसरे दिन उन्होंने कहा था- ''बेटी, तू देखेगी, - मैंने तुझे माँ कहकर पुकारा है, एक दिन सारा जगत् तुझे माँ कहकर पुकारेगा।'' हरकुमार की यह भविष्यवाणी सत्य हुई है। किन्तु हरकुमार आज कहाँ है? माँ

के उनके साथ बोलने के कुछ ही दिन बाद हरकुमार एक नौकरी पाकर अन्यत्र चले गये।*

लोगों के सामने पहले–पहल भावावेश

इसी हरकुमार ने माँ का लिपा–पुता स्वच्छ सुथरा तुलसी तला देखकर सर्वप्रथम वहाँ कीर्तन का प्रबन्ध किया था। कभी–कभी वहाँ कीर्तन होता था। अष्टग्राम में निवास करते समय गगनराय के कीर्तन के समय माँ के भाव बाहर अभिव्यक्त हुये थे। जिस समय पहले–पहल भाव का प्रकाश होने लगा, उस समय माँ की अवस्था 17–18 वर्ष की थी।

एक बार निकटवर्ती ब्रह्माणी मन्दिर में जाते समय इसी अष्टग्राम में माँ को एक सज्जन ने एक साड़ी पहना दी थी। उसमें माँ का रूप सहसा देखकर अष्टग्राम के क्षेत्र बाबू ने माँ को देवी कहकर साष्टांग प्रणाम किया था। अष्टग्राम में रहते समय दो दिन कीर्तन में माँ का भाव हुआ था एवं सभी लोग उसे समझने और देखने के लिये आये थे। वहाँ पहले–पहल कुछ दिनों तक माँ खूब अच्छी रही। उसके बाद कुछ दिनों के लिये अस्वस्थ हो गई। बाद में अच्छी हो गई। स्वस्थ होने के कुछ दिन बाद विद्याकूट गई और वहाँ लगभग दो वर्ष आठ महीने रही। अष्टग्राम और विद्याकूट दोनों स्थानों में माँ लगभग चार वर्ष रही। भोलानाथजी उस समय भी अष्टग्राम में ही रहे।

बाजितपुर में (सं. 1918–1924)

सन् 1918 में माघ महीने के लगभग भोलानाथजी की बदली अष्टग्राम से बाजितपुर हो गई। माँ विद्याकूट से बाजितपुर आई। यहाँ रियासत के सुपरिंटेंडेंट भूदेव चन्द्र बसु थे, इनकी पत्नी के साथ माँ का बहुत प्रेम हो गया।

पहले की तरह कीर्तन में भाव यहाँ भी होता था। एक बार भूदेव बाबू

---

* इसके पश्चात् फिर बहुत दिनों तक हरकुमार के साथ भेंट नहीं हुई। एक दिन बरसात के समय बाजितपुर के मकान में बैठकर माँ सहसा भोलानाथजी से कह उठी, "देखो, हरकुमार का गाना सुनाई दे रहा है।" भोलानाथजी ने यह बात विश्वासयोग्य नहीं है, यों माँ को समझा दिया। किन्तु कुछ क्षणों के अनन्तर ही अष्टग्राम के क्षेत्र बाबू नामक एक भद्र पुरुष के साथ हरकुमार नौका कर माँ के निकट आ उपस्थित हुए। उस समय उनका मस्तिष्क स्वस्थ न था। क्षेत्र बाबू ने कहा, "हरकुमार माँ को एक बार देखने के लिए व्याकुल होकर मेरे साथ आया है।" वही अन्तिम भेट रही। उसके बाद हरकुमार की फिर कोई खबर नहीं मिली। हरकुमार ने माँ को कई चिट्ठियाँ लिखी थी। चिट्ठी के आरंभ में ही वे माँ को 'देवी' यों संबोधित कर लिखते।

की लड़की की बीमारी के समय घर पर भी कीर्तन कराया गया। माँ बीमार लड़की के पास बैठी थी। उन्होंने भूदेव बाबू की स्त्री को इशारे से बुलाकर कहा, 'मेरा शरीर न मालूम कैसा हुआ जा रहा है।' भूदेव बाबू की स्त्री ने उनके सिर पर पानी छिड़का और पंखा किया, भूदेव बाबू को खबर दी। माँ के घर जाने लिए कहने पर उन्हें हाथ पकड़कर घर पहुँचाया गया। भूदेव बाबू ने यह बात जाहिर न करने के लिए कह दिया। कीर्तन सुनने से ही माँ की तबियत खराब हुई, यह सुनकर भूदेव बाबू नाराज हुए थे। उस समय उन्होंने हिस्टीरिया समझा था।

गृहस्थी और साधन

थोड़े दिन बाद से माँ के जीवन की अनोखी बातें लोगों के सामने कुछ-कुछ दिखाई देने लगी। ऊपर जिस भाव का हाल बताया है वह धीरे-धीरे गहरा होकर, उसकी चर्चा फैलने लगी। इससे पहले सब लोगों को उसका इतना हाल मालूम नहीं था। यहाँ हर रोज माँ की साधन-क्रिया नियम से हो जाती थी। वे दिन में गृहस्थी के सभी काम करती पति की सेवा, भोजना बनाना, घर में बुहारी देना वगैरह। रात में जब भोलानाथजी आराम करते थे, उस समय वे सोने के कमरे के ही एक कोने में साधन करने बैठ जाती थी। उनके शरीर में तरह-तरह की क्रियाएँ होती थी, जो साधारण लोगों की समझ में अनोखी थी। तरह-तरह के आसन, मुद्रा, पूजा वगैरह अपने आप ही हो जाते थे। शरीर से एक तरह का तेज झलकता था, इसलिए वे अक्सर कपड़ा ओढ़कर बैठती थी; भोलानाथजी तख्त पर लेटे रहते थे। कभी देखते-देखते सो जाते थे। कभी बैठे-बैठे देखते रहते। माँ की यह सब क्रियाएँ बैठे-बैठे ही होती थी।* माँ तेजोमयी और पवित्रता की मूर्ति हैं। जिस कमरे में यह सब क्रियाएँ होती थी उस कमरे के बाहर करीब दो हाथ जगह वे रोज साफ रखती थी। एक तिनका भी कमरे के आसपास नहीं रहता था। धूपदानी लेकर चारों ओर घूम आती थी। उस समय माँ अपनी दशा छिपाये हुए थी और उनको कोई बहुत जान नहीं पाया था। लेकिन कोई भी चीज बिल्कुल छिपी नहीं रहती। बाजितपुर में माँ के शरीर की इन सब अनोखी क्रियाओं को छप्पर के सुराखों से कोई-कोई देख लेता था, पर उनका मतलब कोई भी नहीं समझ सकता था। बहुतों का कहना था कि यह भूत-लीला है-कुछ लोग समझते थे कि यह एक रोग है, वगैरह-

---

* जिस स्थान पर बैठकर माँ के ये सब आसन आदि होते थे, वहाँ की मिट्टी लाकर रमना आश्रम में पञ्चवटी की वेदी के भीतर रखी गई है।

वगैरह। अपनी-अपनी समझ से भोलानाथजी को अच्छे ओझा या डॉक्टर को दिखाने की सलाह देते थे।

भोलानाथजी ने लाचार होकर दो-एक ओझाओं को दिखाया; लेकिन वे माँ का भाव देखकर माँ-माँ कहते हुए माँ को नमस्कार कर चलते बने। क्षेत्रमोहन बाबू भी ओझा की विद्या जानते थे। भोलानाथजी उनको भी लाये। वे माँ के कमरे के एक कोने में आसन डालकर बैठे। माँ उसी कमरे के दूसरे कोने में बैठी थी। वे बहुत देर तक तरह-तरह की क्रियाएँ करके जरा देर के लिए बाहर गये। फिर भीतर आकर तमाखू भरकर हुक्के को भोलानाथजी के हाथ में देने ही वाले थे कि इतने में काँपकर गिरने लगे। भोलानाथजी ने उन्हें पकड़ लिया। फिर भी वे जमीन पर गिरकर गों-गों करने लगे। फिर वह माँ-माँ कहकर गिड़गिड़ाने लगे। भोलानाथजी ने माँ से कहा-'जिस तरह यह ठीक हो वैसा ही तुम करो।' माँ का एक नया-सा भाव प्रकट हुआ। इधर वे धीरे-धीरे ठीक हो गये और शान्त हो, माँ को प्रणाम करके चले गये। जाते-समय वह कह गये 'यह सब हम लोगों का काम नहीं है। ये साक्षात् देवी भगवती हैं।'

कालीकच्छ के डॉक्टर महेन्द्र नन्दी एक भले आदमी थे। उन्होंने एक बार माँ को देखकर भोलानाथजी से कहा था-'यह तो बहुत ऊँची अवस्था है, बीमारी नहीं है। आप हर किसी को दिखलावें नहीं।' इसलिए फिर भोलानाथजी किसी को दिखलाते न थे।

बाजितपुर रहने के दिनों में एक और विशेष बात हुई। माँ कहती हैं कि माँ की आँखों के सामने एक सिनेमा का सा दृश्य प्रकट हो गया जिसमें वे सब लोग दिखाई पड़े जिनसे इस जन्म में माँ से भेंट होगी।

माँ की दीक्षा, श्रावण पूर्णिमा (1922)

सन् 1922 के वैशाख महीने में माँ के भावों में विशेष परिवर्तन शुरू हो गया। तीन महीने के बाद यानी सावन के महीने में झूलन पूर्णमासी (सलूनो) की आधी रात को माँ की दीक्षा-क्रिया अपने आप हो गई। उसके बाद पाँच महीने तक आसन, प्राणायाम, मुद्रा वगैरह योग की क्रियाएँ माँ के शरीर में बराबर चलती रही। इससे पहले भी आसन, प्राणायाम, मुद्रा वगैरह होना शुरू हो गया था। लेकिन स्तोत्र वगैरह दीक्षा के खेल के बाद होने लगे। स्तोत्र आदि प्रकट होने के पहले ॐ शब्द ही प्रकट हुआ था। एक दिन माँ रात में रोज की तरह जमीन पर लेटी हुई थी। भोलानाथजी देखते-देखते सो गये। जब

वह उठकर बैठे तो उन्होंने देखा कि माँ की अंगुलियाँ जप करने के ढंग से घूम रही हैं–जप हो रहा था।

बाजितपुर में इस तरह भावों के आरम्भ होने से पहले माँ को सभी प्यार करते थे, सभी उनके समीप आते थे। लेकिन यह दशा शुरू होने के बाद सभी ने यह सोचकर कि माँ को भूल लगा है, उनके पास आना बन्द कर दिया। माँ भी अकेला पाकर अपनी मौज से साधन में बैठी थी। मौज से साधन का खेल शुरू हो गया।

पूर्णब्रह्म नारायण

निशिकान्त भट्टाचार्य नाम के एक ममेरे भाई थे। वे माँ से 10–11 बरस बड़े थे। माँ उनका बहुत आदर करती थी। इन सब आसनों और क्रियाओं पर ध्यान न देने के लिए वे भोलानाथजी पर बिगड़े थे। ऊपर लिखी दीक्षा के पाँच–छः दिन बाद, वे एक दिन भोलानाथजी को फटकार रहे थे। कह रहे थे, यह सब ठीक नहीं है। तुम उनसे कहते क्यों नहीं–पूछते क्यों नहीं।

माँ उस समय घूँघट काढ़े हुए कमरे के एक कोने में बैठी थी। यह सुनते ही उनका भाव एकदम बदल गया–वे आसन पर तनकर बैठ गई। धोती सिर से गिर पड़ी, बाल बिखरे थे। कुछ बदन भी खुल गया–पर उस वक्त लज्जा किसको? बड़े भाई की तरफ देखकर गजरजकर, कहा–'क्या कह रहा है रे?'

निशि बाबू डर से चौंककर पीछे को हट गये। माँ ने उसी रूप में, पर कुछ हँसकर, उनका मुँह अपने बाएँ हाथ से छूकर–पहले जैसी तेजी से कहा था, उतने ही मृदु स्वर में कहा–डर गया? डर मत, डर मत।

तब हिम्मत करके उन्होंने पूछा–'आप कौन हैं?'
माँ ने गम्भीर स्वर से कहा–'पूर्णब्रह्म नारायण।'

सब चकित हो गए।

भोलानाथ–तुम कौन हो?
माँ–महादेवी, महादेव।

निशि बाबू–'आप जो यह संध्या और अन्य क्रियाएँ करती हैं, तो क्या आपकी दीक्षा हो गई है?'

'हाँ, हो गई है।'
'रमणी बाबू की हुई है?'

'नहीं। पाँच महीने के अन्दर, सौर अगहन की 15 तारीख को बृहस्पतिवार द्वितीया तिथि को होगी।

माँ तो पत्रा आदि देखती नहीं थी; निशि बाबू और भोलानाथजी ने फौरन पत्रा देखा तो तारीख, तिथि, वार सब ठीक पाया। चकित होकर पूछा–कौन नक्षत्र?

माँ ने कुछ संस्कृत भाषा में जवाब दिया।

निशि बाबू–यह तो समझ में नहीं आया।

माँ–'जानकी बाबू तालाब में मछली पकड़ रहे हैं। उन्हें बुला लाओ। समझेंगे।'

जानकी बाबू नवाब की रियासत में काम करते थे। माँ के घर के पास ही उनका मकान था। वह मछली पकड़ रहे हैं, यह जानने का माँ के पास कोई जरिया न था और यह तो उनका कचहरी जाने का समय था। उन्हें बुलाया गया। वे आये। उनके सामने माँ अभी तक बिना घूँघट काढ़े नहीं निकलती थी, लेकिन आज न बड़े भाई का, न उनका, कुछ संकोच रहा। उसी हालत में बैठी रही। नक्षत्र की बात जानकी बाबू की समझ में आ गई।

मूल नक्षत्र था।

जानकी बाबू–आप कौन हैं?
माँ– 'पूर्णब्रह्म नारायण।

जानकी बाबू – आप शैतानी हैं।
माँ–नहीं, पूर्णब्रह्म नारायणी।

तब सबने माँ से कहा–अच्छा तो कुछ परिचय दीजिए।

माँ ने खड़े होकर भोलानाथजी के सिर से पाँव तक अपनी अंगुली फेर दी। उन्हें एकदम समाधि लग गई। आँखें ऊपर को चढ़ गई। सब चुपचाप बैठ गये। एक घण्टे से ऊपर हो गया। आशु स्कूल से आया–देखा चाचा बेहोश समाधिस्थ, माँ की अजीब हालत, सिर खुला, आधी नंगी, आसन लगाये। सब लोग चुपचाप, कुछ भयभीत। वह रोने लगा। जानकी बाबू ने विनीत भाव से माँ से भोलानाथ को ठीक करने को कहा। तब माँ ने फिर भोलानाथ को अंगुली से छुआ–समाधि खुली, और कहने लगे अरे! मैं कहाँ था, कितना आनन्द था, वर्णन नहीं कर सकता।

उस दिन इन्हीं बातों से किसी का दफ्तर जाना नहीं हुआ।

1947 में माँ ने बताया कि मुझे यह मालूम था कि मेरे कपड़े ठीक नहीं हैं, बदन भी खुल गया है; पर ढकने का कोई भाव नहीं आया' और हँसकर कहा–'जब सायंकाल होने को हुआ, तब मैं कपड़े ठीक करके, लम्बा-सा घूँघट काढ़कर गुरुजनों के समीप से बहू की तरह शरमाती हुई, रसोई बनाने चली गई।' माँ की लीला माँ ही जानें। कुछ बरस हुए, माँ के एक भक्त ने इस प्रसंग में पूछा कि 'माँ यदि पूर्ण ब्रह्म नारायण आपके शरीर को छोड़ जाये, तो फिर हमारा क्या होगा?' माँ ने जवाब दिया–'छोड़ कौन किसको जायेगा, मैं ही तो वह हूँ।'

इधर भोलानाथजी ने अपने मन में ठान लिया कि जिस तरह भी हो, बताई हुई तारीख पर मन्त्र न लिया जाय। वे रोज कचहरी जलपान करके जाते थे, लेकिन उस दिन रोके जाने के डर से जलपान बिना किये ही चले गये। निर्दिष्ट समय पर माँ ने उन्हें बुला भेजा। उन्होंने कहलाया, मैं नहीं आऊँगा। माँ ने कहला भेजा कि अगर आप न आएँगे तो लाचार होकर मुझे ही कचहरी आना पड़ेगा। यह सुनकर भोलानाथजी अपने आप चले आये। क्योंकि वे माँ की आदत अच्छी तरह जानते थे। उन्हें मालूम था कि माँ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। घर आकर उन्होंने देखा, माँ टहल रही हैं और उनके मुँह से स्तोत्र वगैरह निकल रहे हैं। माँ ने धोती लाकर उन्हें दी और नहाकर आने के लिए कहा। भोलानाथजी के नहाकर लौटने पर माँ ने उनसे शान्ति के साथ एक आसन पर बैठने को कहा। उस प्रकार बैठने के बाद माँ के मुँह से एक बीजमन्त्र निकला। माँ ने भोलानाथजी से उसका ही जप करने के लिए कहा और बिना प्रसादी मांस खाने को मना कर दिया, शरीर और मन से साफ रहने का कहा। भोलानाथजी वही करने लगे।

नोट– 1952 में माँ ने बताया कि वह बीजमन्त्र माँ ने भोलानाथजी के कान में नहीं दिया था। अपने हाथ से उनकी बाँह को स्पर्श करते हुए बहुत धीरे मन्त्र कहा था, भोलानाथजी ने उसे सुन लिया। माँ कहती हैं कि शक्ति या दीक्षा के देने के कई तरीके होते हैं–जैसे (1) शब्द से (2) स्पर्श से (3) दृष्टि से (4) इच्छा मात्र से, दूर रहते हुए भी इच्छा से केवल खयाल से (5) कोई वस्तु, फल वगैरह दे दिया या भेज दिया। एक बार ढाका में माँ गाड़ी में सड़क पर जा रही थी। एक मकान के दो मंजिले पर कमरे में शायद कोई रोगी था। माँ को खयाल आया और एक डाक्टर रोगी के पास पहुँच गया। माँ ने कहा–'कहना किससे, दिखाना किसको, जो होना होता है, हो जाता है।'

मौन

सन् 1922 के पूस महीने में माँ का मौन शुरू हुआ और लगभग तीन साल तक चला। इस समय माँ कभी-कभी जमीन पर अपने चारों ओर लकीर खींच लेती थी और इस तरह घेरा पड़ जाने पर स्तोत्रादि के से शब्द उनके मुँह से निकलते। फिर बातचीत करती। लेकिन घेरा डालने का कोई ठीक वक्त न था। माँ इन दिनों किसी दूसरे के घर नहीं जाती थी।

(माँ ने 1952 में बताया कि घेरा डालने के बाद वे एक अनोखी भाषा में जो किसी देश में प्रचलित नहीं है बोलती थी, पर दीदी उसे समझ जाती थी, क्योंकि माँ की मर्जी थी। माँ का कहना है कि दीदी चाहती तो उन शब्दों को लिख लेती पर लिखा नहीं। माँ की ऐसी ही मर्जी थी और वे शब्द दीदी के मन से कपूर की तरह उड़ गए, अब एक शब्द भी याद नहीं है।)

माँ का मौन साधारण लोगों का सा नहीं होता था, जो मौन रहते हुए भी लिखकर या इशारे से बात करते रहते हैं। माँ वाक् से और मन से दोनों से मौन रहती थी। कभी कुछ आवश्यक बात हुई तो भोलानाथजी के पास बहुत धीरे से कह दी। दीदी या किसी दूसरे के सामने खड़े होकर देखने लगती। प्राय: वह कहता-'माँ, क्या तुम यह कह रही हो?' ठीक होता तो माँ मुस्कुरा देती।

भैरवजी का प्रसाद

बाजितपुर की काली-पूजा का हाल लिखने लायक है। यह पूजा भोलानाथजी के पुरखों की पूजा थी।* एक बार इस पूजा के भोग के चावल कौवे के मुँह डालने से खराब हो गये और चावल लेकर भोग बनाया। अपने आप माँ रसोई नहीं बना सकती थी, किसी दूसरे ने रसोई तैयार की थी। सब लोग पूजा के पास बैठे थे। माँ रसोईघर के दरवाजे पर बैठी थी। उन्होंने देखा कि एक सफेद और लाल रंगवाला ब्राह्मण उनके दाहिने अंग से प्रकट होकर रसोई में घुस गया और जिस थाली में भोग परोसा हुआ था उसमें से तीन ग्रास तीन अंगुलियों से उठाकर उसने माँ के मुँह में डाल दिए। फिर वह माँ के शरीर में लोप हो गया।

---

* कालीपूजा के दूसरे दिन भोलानाथजी प्राय: सभी परिचित भद्र पुरुषों को बुलाकर खाने को बैठाते। लोगों को खिलाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। इसलिए जिसको देखते बुलाकर प्रसाद लेने को बैठा देते। इस प्रकार अनेक लोग प्रसाद पाते। किन्तु पहले से उस प्रकार का कोई प्रबन्ध न रहता। प्रतिवर्ष इसी तरह चलता। जो रसोई बनती उसी से सबकी पूर्ति हो जाती। लोगों का कोई हिसाब न रहता। किन्तु कभी भी वस्तु कम न पड़ती।

इसके बाद भोलानाथजी भोग लेकर चले, एकाएक कहीं से एक कुत्ते ने आकर उनको छू दिया। उसी समय भोलानाथजी भोग को तालाब के किनारे फेंककर नहा आये। रात बीतने को थी। उस समय चावल खरीदकर लाना कठिन था, इसलिए भोलानाथजी ने माँ से कहा–'माँ की इच्छा। ये कौए के जूठे किये हुए चावल जो घर में रखे हैं उन्हीं को भोग के लिए जल्दी पका दो।' वही किया गया। दाल, तरकारी सब थी ही। उन्हीं चावलों को जल्दी से पकाकर दूसरी बार भोग लगाया गया। माँ ने जो कुछ भी देखा था वह सब भोलानाथजी को बतला दिया। उन्होंने पुरोहितजी से कहा। पुरोहितजी खाने के लिए बैठकर यह सब सुनकर बोले–'वही असल प्रसाद है, क्योंकि भैरवजी ने इसको पहले ही पा लिया है। वही महाप्रसाद है, मुझे थोड़ा–सा लाकर दो।' लेकिन वह तो सबका सब जल में छोड़ दिया गया था।

सभी माँ को प्यार करते थे। माँ के सुन्दर रूप की छटा देखकर बहुतों को आश्चर्य होता था। भूदेव बाबू की स्त्री कहती थी–'माँ का रूप ऐसा है कि जब वे घाट पर जाती हैं तो उजाला हो जाता है।' इसलिए कोई–कोई माँ को **'राँगा दीदी'** कहते थे। इसी तरह जानकी बाबू की स्त्री (उषा दीदी) से भी बहुत प्रेम था पर जब से माँ की क्रियाएँ वगैरह शुरू हुई, उनकी सास उनको माँ के पास नहीं आने देती थी, क्योंकि बहुत से लोग कहते थे कि भूत लग गया है। लेकिन उषा दीदी को माँ से बिना भेंट किए रहा नहीं जाता था। इसलिए छुपकर मिलने आती थी। माँ के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी और विश्वास था कि यह जो कुछ हो रहा था, भला ही हो रहा था।

एक बार उनकी एक लड़की के बीमार पड़ने पर उसे माँ के पास ले आई। उनके मन में पक्का विश्वास था कि माँ के छूने से वह लड़की अच्छी हो जावेगी। सचमुच माँ ने न जाने क्या किया, लड़की चंगी हो गई। माँ की इस तरह की क्रियाएँ पहले हो जाती थी; जिनसे रोगी को आराम हो जाता था। माँ कहती हैं–'मैं अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करती! जैसे आसन वगैरह अपने आप हो जाते थे, वैसे ही यह भी हो जाता था।' इसके बाद उषा दीदी की भक्ति और भी बढ़ गई। एक दिन माँ की हालत देखकर उन्होंने कहा–'मुझे तुम्हें माँ कहकर पुकारने की इच्छा होती है। मेरा आपके लिए बहिन का सा भाव नहीं होता, माँ का सा भाव होता है।' उस वक्त माँ भाव में थी, हँसकर बोली–'तुम्हीं क्या' एक दिन संसार के और लोग भी इस शरीर को माँ कहकर पुकारेंगे।' यह सन् 1923 के लगभग की बात है।

ढाका शाहबाग में (1924–1928)

सन् 1924 के चैत्र में भोलानाथजी की नौकरी छूट गई। उस वक्त वे बड़े व्याकुल हो उठे। ढाका जाकर शायद कहीं काम मिल जाय इस आशा से वे चैत्र के आखिर में ढाका गए। माँ भी साथ थी। लेकिन ढाका में इधर-उधर दौड़-धूप करने पर भी जब कोई काम न मिल सका तब उन्होंने माँ को घर भेज देने की ठानी। माँ ने उनसे तीन दिन और ठहरने के लिए कहा। इन्हीं तीन दिनों के अन्दर वैशाख लगते ही शाहबाग में नवाब के बगीचे के मैनेजर की जगह उनको मिल गई। और वे चार बरस, जब तक रियासत कोर्ट नहीं हुई, इसी काम पर रहे।

शाहबाग एक बड़ा बाग था। उसी के एक हिस्से में भोलानाथजी के रहने का भी बन्दोबस्त हुआ। उनके रहने के लिए एक कोठरी थी। उसके अलावा एक बड़ा-सा कमरा था जो पहले नाच घर था। उसके दोनों तरफ दो कोठरियाँ थी और एक छोटा-सा दालान था। उसे भोजन का घर कहते थे।

जिस समय शाहबाग आना हुआ उस समय माँ का मौन जारी था। करीब डेढ़ साल तक यह दशा चलती रही। इसके अलावा कभी-कभी खाने-पीने के तरह-तरह के नियम चल पड़ते थे। आठ-नौ महीने तक सिर्फ तीन कौर रोज खाती। यहाँ तक कि फलाहार करने में भी तीन बार से ज्यादा मुँह में न देती। और समय जल तक न लेती। इसके बाद फल वगैरह खाने का नियम चला लेकिन उसके लिए किसी तरह का भी बन्दोबस्त करना मना था। अपने आप जो कुछ जुट जाता, उसी पर रहती।

इस समय माँ के शरीर में योग की क्रियायें होने लगी।

माँ गृहस्थी का सभी काम-काज करती थी। उस समय वहाँ माखन (माँ का छोटा भाई) और आशु (भोलानाथजी का भतीजा) रहते थे। वे स्कूल में पढ़ते थे। उनके लिए सवेरे रसोई बनानी पड़ती थी। खा-पी चुकने पर बर्तन माँजती और नहाकर तालाब से जल लाती, फिर भोग के लिए रसोई बनाती। भोग लगाने के बाद भोलानाथजी भोजन करते। मसाला पीसने, तरकारी छीलने से लेकर घर का सारा काम अकेली करती। उन दिनों रात-दिन एक अद्भुत भाव रहता था। अक्सर जमीन पर पड़ी रहती। कभी-कभी काम करते-करते समाधिस्थ होकर गिर पड़ती। पीछे कुछ स्थिर होकर अधूरे काम को पूरा करती। उस समय सदा घूँघट काढ़कर चलती थी। लेकिन घेरा देकर बातचीत शुरू होने पर अकसर खुला रहता था।

दीपावली की कालीपूजा का विवरण ग्रन्थ में है। वह वि.सं. 1982 के कार्तिक महीने में हुई थी। वि.सं. 1983 की दीपावली में भी कालीपूजा हुई–इस काली का इतिहास भी ग्रन्थ में है। इस काली का विसर्जन नहीं हुआ। वह इस समय भी है। सिद्धेश्वरी की घटना वि.सं. 1981 के भाद्रपद मास में घटी थी। उस समय माँ की बाहर इतनी प्रसिद्धि न होने पर भी वे सर्वथा गुप्त न थी। कुछ-कुछ भक्त प्राय: नित्य ही आते थे। प्राणगोपाल बाबू, प्रमथ बाबू, बाउल बाबू, ननी बाबू, निशि बाबू आदि बहुत से लोग बीच-बीच में आकर माँ का सत्संग करते थे।

* * *

श्री श्री माँ आनन्दमयी

पहला अध्याय

प्रथम मिलन

संवत् 1982 के पौष के महीने (दिसम्बर 1925, जनवरी 1926) में माँ के साथ पहले-पहल मेरी भेंट हुई। पिताजी श्रीशशांकमोहन मुखोपाध्याय (अवकाश प्राप्त सिविल सर्जन), पहले ड़िप्टी पोस्टमास्टर जनरल श्री प्रमथनाथ बसु से माँ की खबर पाकर दो दिन माँ के समीप जाकर उनके दर्शन कर आने के अनन्तर मुझे माँ के निकट ले गये। माँ उस समय ढाका शाहबाग में रहती थी। बाबा भोलानाथजी* उस समय, उस बाग के व्यवस्थापक थे। विशाल सजा-सजाया बाग माँ के रहने के लिये उपयुक्त स्थान ही रहा। मैं कभी भी विशेष बाहर जाती न थी। अपरिचित स्त्री क्या, पुरुष क्या किसी के साथ बातें भी नहीं कर सकती थी -कैसा एक विचित्र मेरा स्वभाव था। इसलिये माता-पिता कितना बिगड़ते, किन्तु किसी प्रकार भी अपरिचित किसी की भी ओर न तो देख सकती थी और न किसी के साथ बातें कर सकती थी। किसी साधु-सन्त के समीप जाना भी मेरे स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध था। किन्तु जिस दिन पिताजी ने माँ के दर्शन करके घर आकर माँ की खबर दी, उसके दूसरे ही दिन मेरा मन अत्यन्त अस्थिर हो उठा। इच्छा हुई कि माँ को देखने जाऊँ। किन्तु मैंने पिताजी से कुछ कहा नहीं, इसलिये वे सन्ध्या समय अकेले ही चले गये। जिस समय पिताजी की गाड़ी रवाना हुई, मुझे खूब याद है, सड़क की ओर के बरामदे में खड़ी होकर मैं खूब रोई थी। कैसा आश्चर्य था, जिन्हें कभी देखा न था, जिनके विषय में यदि कुछ कहना पड़े तो कुछ भी नहीं जानती थी, उन्हें देखने न जा सकी इसलिये रोना क्या। आज भी उस बात का स्मरण होने पर अवाक् रह जाती हूँ। लेकिन अब समझ रही हूँ कि उस समय क्यों रोई थी, कैसा आकर्षण था। पिताजी के लौट आने पर सब काम पूरा कर माँ के साथ क्या-क्या बातें हुई, यह सुनने गई। पिताजी ने कुछ-कुछ कहा, किन्तु उससे

---

* माँ के पति श्रीयुत् रमणीमोहन चक्रवर्ती।

तृप्ति नहीं हुई। पिताजी ने कहा- माँ ने तुम्हें लेकर आने को कहा है। मैंने सोचा पिताजी के मुँह से मेरा वृत्तान्त सुनकर माँ ने ले आने को कहा होगा।

दूसरे दिन दोपहर को खा-पीकर माँ के दर्शनों के लिये शाहबाग गई। जाकर माँ को देखते ही अत्यन्त परिचित की भाँति निकट जाकर खड़ी हो गई। उस दिन फिर अपरिचित होने के कारण नेत्रों में लज्जा नहीं रही। उनकी ओर खूब निहार कर देखकर मैंने प्रणाम किया। मूर्ति मैंने जो देखी उसे फिर क्या बतलाऊँ - सिर मानो अपने आप ही उनके चरणों पर गिर पड़ा। माँ के सिर पर बहुत बड़ा घूँघट था, बड़े लाल चौड़े किनारे की साड़ी पहने थी, कपाल पर सिन्दूर की बड़ी-सी बिन्दी थी। किन्तु मुखमण्डल पर अलौकिक ज्योति दमक रही थी, लालिमा लिये हुये दोनों नेत्र छलछला रहे थे, भाव में मानो विभोर हों। वचन अत्यन्त ही बैठा हुआ अस्पष्ट था - मैंने सुना कि तीन वर्ष मौन रहने के बाद माँ को बोलते हुये थोड़ा ही समय बीता है। आगे चलकर मैंने देखा है कि ठीक वही कारण भी न था। थोड़े समय तक चुप रहते ही माँ का सारा शरीर, यहाँ तक कि जिह्वा पर्यन्त स्तब्ध हो जाती। बाग में माँ भोलानाथजी, माँ की एक विधवा ननद (मटरी बुआ), माँ के जेठजी का एक लड़का (आशु) और एक भानजा (अमूल्य) रहते थे। आशु स्कूल से आया - माँ भात परोसने के लिये गई। किन्तु हाथ काबू के बाहर हो गया। अत्यन्त क्लेश के साथ भात परोस आकर मेरे समीप बैठी। मेरे बैठने के लिये कुछ बिछा दिया। पान लगाकर ला दिया। मैंने कहा- "मैं तो पान कभी खाती नहीं।" माँ ने कहा- "मैं पान खाती हूँ, इसलिये तुम्हें भी दिया है।" मैं भी न जाने कैसी हो गई, बोली "अच्छी बात है आपने दिया है, खाऊँगी।" मैं देख रही थी कि माँ भाव में इतनी भरपूर थी कि आँखें भी भली-भाँति नहीं खोल पा रही थी। मैंने तो इस प्रकार का भाव और कभी भी नेत्रों से देखा न था। मुग्ध होकर देख रही थी और मन में ऐसा हो रहा था कि जो चाह रही थी आज मानो उसे प्राप्त कर कृतार्थ हो गई हूँ। थोड़ी देर दो-चार क्या बातें हुई, ठीक स्मरण नहीं है। कभी 'आप' सम्बोधन करने गई तो 'तुम' हो गया और शरीर के निकट सटकर बैठी रही, कुछ भी ध्यान नहीं रहा। माँ उस समय मेरे साथ जिस कमरे में बैठी थी उस कमरे

में माँ के भण्डार की वस्तुयें रहती थी। समीप का कमरा जरा बड़ा था, उमसें माँ सोती थी। उसके पीछे एक छोटा-सा कमरा था, उसमें मटरी बुआ बच्चों के साथ रहती थी। इन तीन कमरों के साथ इस छोटे से दालान में माँ रहती थी। कुछ दूरी पर मुझे दो छप्पर दिखाई दिये, उनमें निरामिष और सामिष रसोई बनती थी। प्रतिदिन भोग लगाकर भोजन होता है यह मैंने सुना। माँ ने दो-चार बातें कहकर ही बीच का दरवाजा बन्द कर दिया। उस बीच के कमरे में पिताजी और भोलानाथजी बैठे थे। दरवाजा बन्द करके माँ अत्यन्त परिचित की तरह बातें करने लगी। मुझसे सहसा बोली- ''तुम इतने दिनों तक कहाँ थी?'' यह कहकर हँसती हुई मेरी ओर देखती रही। बातें करते-करते भाव फिर कैसा गंभीर हो आया, बोली- ''तुम बैठो मैं अभी आती हूँ।'' मैंने तुरन्त कहा- ''यह क्या, मैं आई तुमसे भेंट करने, तुम इस वक्त नहीं जा सकोगी।'' मैंने सोचा था संभव है माँ उठकर कहीं जाएँगी, किन्तु वह बात तो नहीं हुई। माँ वहीं मेरी गोद के निकट जमीन पर ही लेट गई। मैंने **रामकृष्णदेव** का **कथामृत** पढ़ा था, इसलिये मुझे ज्ञात हुआ कि हो न हो यह समाधि है। मैं आँखें बन्द कर माँ के शरीर का स्पर्श कर बैठी रही। बहुत देर बाद माँ उठ बैठी। शरीर मानो अशक्त था। मैंने सोचा जरा-सी स्थिरता लाने के लिये मनुष्य को कितनी साधना करनी पड़ती है, किन्तु इनको देख रही हूँ कि निरन्तर वही भाव लगा ही है। उठकर फिर अत्यन्त अस्पष्ट स्वर में बातें करते-करते क्रमशः वचन कुछ स्पष्ट हुआ। बहुत देर तक बातें हुई।

मैं माँ की गोद में सिर रखकर लेट गई। माँ भी बैठे-बैठे कितनी ही बातें कर रही थी। उधर माँ के दर्शनों के लिये प्रमथ बाबू के पुत्र प्रतुल बाबू ने उसी अवस्था में दरवाजा खोल दिया। ये माँ के बड़े भक्त हैं, माँ के निकट चिरकाल से आना-जाना कर रहे हैं। इनके पिताजी भी माँ के बड़े भक्त हैं। पिताजी ने पुकार कर कहा- ''उठ आ, माँ के दर्शनों के लिये अन्यान्य अनेक भक्त आयें हैं।'' दरवाजा खोल दिया गया। मैं माँ को नमस्कार कर चली आई। आते समय माँ ने मुझे फिर ले आने के लिये पिताजी से कह दिया।

नशा-सा लग गया। दूसरे दिन फिर गई, माँ के दर्शन किये, बातें सुनीं, चली आई। किन्तु फिर घर पर मन ही नहीं लगता था। प्रतिदिन ही

जब भी मौका मिलता, एक बार माँ के निकट जाती, उसी समय की प्रतीक्षा में सारे दिन और सारी रात बैठी रहती। दिन पर दिन माँ के दर्शनों के लिये मन सहसा इतना चंचल हो उठता कि दिन में दो बार भी जा पहुँचती। क्रमशः परिचय बढ़ रहा था, कभी-कभी जाकर माँ के काम में हाथ बँटा आती थी, परोसने में सहायता कर आती थी। मैंने सुना कि प्राणगोपाल बाबू (डिप्टी पोस्टमास्टर जनरल, श्रीयुत् प्राणगोपाल मुखोपाध्याय), बाउल बाबू (लॉ कालेज के प्रोफेसर श्रीयुत् बाउलचन्द्र बसाक), ननी बाबू (ढाका कालेज के प्रोफेसर), निशि बाबू (विक्रमपुर सामसिद्धि के जमींदार श्रीयुत् निशिकान्त मित्र) आदि का माँ के समीप आना-जाना है। प्राणगोपाल बाबू के बदली होकर अन्यत्र चले जाने पर उनके स्थान पर प्रमथ बाबू आये थे। वे भी माँ के समीप प्रतिदिन ही सपरिवार जाते थे। इन सभी लोगों की घर-गृहस्थी थी और सभी ब्राह्मण भी न थे, इसलिये अधिक समय तक रहने अथवा रसोई बनाने में माँ की सहायता करने में वे समर्थ न थे। मुझे पाकर खूब प्रसन्नता प्रकट कर माँ कहती- ''भगवान् ने तुम्हें उपस्थित कर दिया है। अब इस शरीर से सब काम भली-भाँति नहीं होते, इसीलिये सहायता पहुँचाने के लिये भगवान् तुम्हें ले आये हैं।'' मैंने सुना कि इतने दिनों तक माँ अकेली थी, किन्तु अधिकांश समय तक पड़ी रहती थी, इस कारण भोजन बनाने आदि में असुविधा होती थी, इसीलिये भोलानाथजी की विधवा बहन मटरी बुआ आई है। माँ मछली-पाक विधवाओं को छूने देना बिल्कुल ही पसन्द नहीं करती, इसलिये मछली का भोग माँ जब भी होता, येन-केन प्रकारेण स्वयं बनाती। सब निरामिष भोजन मटरी बुआ ही बनाती थी। मैंने सुना कि माँ की एक और ननद है - श्रीयुत् कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री। वे बड़े दिनों की छुट्टियों में (दिसम्बर 1925) माँ के समीप आई थी। माँ ने उनके साथ एक जगह बैठकर भोजन किया था।

रायबहादुर श्री योगेशचन्द्र घोषजी के घर से लड़कियाँ सदा ही आती। योगेश बाबू के तीसरे पुत्र प्रफुल्ल बाबू की स्त्री का माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था। वे कहती- यह जो शाहबाग की बहू हैं उन्हीं को देखने के लिये मैं प्रतिदिन बगीचे में जाती थी। अपराह्न में 3 बजे से 4 बजे के बीच का वह समय कब आवेगा उसके लिये अस्थिर हो जाती थी। सास

कहती कि घर में रहकर क्या धर्म नहीं होता है? रोज ही वहाँ क्या धरा है? मैं धर्म समझकर जाती इसका मुझे स्मरण नहीं है। किन्तु एक दिन भी यदि उस बहू को न देखती तो मन अधीर हो उठता। बाग में जाने के लिये व्याकुल हो जाती। केवल यही स्मरण होता कि "वही जो शाहबाग की बहू है।" मेरा स्नेह भी क्रमशः उस बहू की ओर ही जाने लगा। माँ के इस प्रकार के तीव्र आकर्षण के और भी अनेक प्रमाण मिले हैं। उस समय भी माँ के निकट बहुत से लोग आते-जाते न थे। सुनने में आया कि ज्योतिषचन्द्र राय आई.एस.ओ. (I.S.O.), Personal Assistant to the Director of Agriculture, Bengal कई मास पूर्व आकर माँ के दर्शन कर गये थे, वे भी उस समय अधिक नहीं आते थे, लेकिन न आने पर भी अधीनस्थ कर्मचारियों को सदा शाहबाग भेजकर माँ का समाचार लेते रहते थे। सुनने में आया कि उन्होंने आकर जब देखा कि माँ के सिर पर लम्बा घूँघट है तब उनके मन में विचार आया कि हम माँ समझकर आये किन्तु माँ का इतना बड़ा घूँघट! अभी हमारे आने का समय नहीं है। यह विचार कर वे फिर स्वयं न आते, आदमी भेजकर खबर मँगा लेते थे। ज्योतिष दादा खूब विचार कर चलते थे। इसलिये उस समय भी विचार करके ही दूर रहे।

धीरे-धीरे अधिक समय माँ के समीप बिताने लगी। माँ अनेक अवसरों पर पहले की सब बातें कहती, मैं मुग्ध हो सुनती। मैं सोचती ऐसी बातें मैंने पहले कभी भी नहीं सुनी हैं। हम धीरे-धीरे शाहबाग में एक प्रकार से घर के से लोग हो उठे। धीरे-धीरे नये-नये लोग भी आने लगे। किन्तु माँ सिर पर घूँघट काढ़कर ही भोलानाथजी की आज्ञा से सबके निकट आकर बैठती और उन्हीं की अनुमति पाकर सबके साथ आवश्यकतानुसार दो-चार बातें करती। भद्र पुरुषों के चले जाने पर हम लोगों के साथ कभी खूब आनन्द के साथ बातें करती। कभी-कभी जीभ बिल्कुल जड़ हो जाती, कुछ बोल न सकती। अपनी अवस्था की बातें भी माँ मुझसे बहुत कहती थी, मेरे सदृश प्रायः सदा साथ रहने वाली और कथा सुनने वाली संगिनी अभी तक माँ को कोई मिली न थी। इसलिये बड़े आनन्द से हृदय खोलकर कितनी ही बातें कहती। मैं तो मुग्ध थी। प्रतिदिन किसी तरह घर जाकर कुछ क्षण बिताकर फिर चली आती थी।

माँ पत्तल का प्रसाद किसी को भी न देती। पैरों की धूलि भी न देती– सभी लोग दूर से जमीन पर सिर टेककर प्रणाम करते, माँ भी हाथ जोड़ देती। यदि कोई पैर पकड़कर प्रणाम करता तो तुरन्त माँ भी उसके पैरों पर हाथ लगाकर प्रणाम कर डालती। इस डर से फिर कोई भी पैर न छूता। रसोई तैयार होने पर माँ और भोलानाथजी कमरे में जाकर भोग लगाते, तदुपरान्त सब लोग प्रसाद पाते। माँ भोलानाथजी के पत्तल में ही प्रसाद पाती। जिन दिनों हम पहले-पहल गये थे उस समय माँ सोमवार और बृहस्पतिवार को तीन कौर खाती। अन्य पाँच दिनों में नौ पके चावल गिनकर खाती। फिर कुछ न खाती थी। किन्तु काम धाम खूब करती। यथासम्भव भोलानाथजी की सेवा करने में त्रुटि न करती। ऐसी पति-भक्ति अन्यत्र कहीं मैंने नहीं देखी है। बच्चे के समान आदेश का पालन करती जाती – कुछ भी विचार न करती।

हम लोगों के मकान में माँ का भोग – पौष 1982

एक दिन सोमवार या बृहस्पतिवार को पिताजी अपने टिकाटूली के मकान में माँ को भोग देने के लिये बुला ले गये। माँ पहले-पहल उस मकान में आई। साथ में भोलानाथजी तथा और भी कई लोग थे। माँ ने मकान में सब कमरे घूम-घूमकर देखे, सड़क की ओर के बरामदे में जाकर बोली– ''मैं पहले-पहल जब ढाका आई, इस सड़क से घूमने के लिये जाते समय इस नल में (मकान के सामने ही सड़क में नल लगा था) कितनी बार पैर धो गई हूँ। उस समय मकान बन रहा था। इस मकान को देखकर मन ही मन मैंने कहा– यह किसी साहब का मकान होगा। देखकर पहले ही मकान को लक्ष्य कर गई थी। और बाबा तो साहब के ही काम में थे। इसलिये मैंने भूल नहीं की।'' यह कहकर हँसने लगी। माँ पहले ही इस मकान को देख गई थी, यह सुनकर हमें तो महान् आनन्द हुआ। भोग लगने के थोड़ी देर पहले ही निशि बाबू ने घबराते हुये आकर माँ को प्रणाम कर प्रार्थना की, कि मेरे नाती के कर्णमूल हुये हैं, इस समय उसकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है, माँ यदि कृपा कर एक बार मेरे मकान में चलें तो मैं कृतकृत्य होऊँगा। उनका मकान निकट ही था, पिताजी गाड़ी लाने जा रहे थे, किन्तु माँ ने जाने नहीं दिया। भक्त की कातर प्रार्थना पर दयामयी उसी समय पैदल ही उनके मकान में जा पहुँची तथा थोड़ी देर

बाद लौट आई। वहाँ जाकर क्या किया यह मैं नहीं जानती हूँ। किसी दूसरे की बात दूसरे किसी के निकट माँ प्रायः प्रकट नहीं करती हैं। लेकिन देखने में आया कि कर्णमूल अपने आप ही फूट गये। लड़का भी चंगा हो उठा। जाते समय माँ ने मुझसे कहा था– "क्या लड़का अच्छा होगा तो?" मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया था– "तुम जब जा रही हो, निश्चय ही अच्छा होगा।" तीन बार माँ ने पूछा था, तीन ही बार मैंने इसी तरह स्पष्ट उत्तर दिया था। माँ ने भी हँसते हुये सभी के प्रति कहा– "वह तो कह रही है अच्छा हो जायेगा, तब अच्छा ही होगा।" यह कहकर चली गई।*

निशि बाबू के मकान से वापस आकर माँ बैठी। वह माँ के तीन कौर खाने का दिन था। भोलानाथजी से माँ ने कहा– "तुम खाओ, मैं बाद में खाऊँगी।" भोलानाथजी के भोजन करके उठने पर माँ ने मेरी ओर इंगित कर उनसे कहा, "मैं उसके साथ एक पात्र में खाऊँ?" उन्होंने कहा– "अच्छा तो है, खाओ। किन्तु आज डॉक्टर बाबू पहले–पहल अपने मकान में लाये हैं, सब कुछ प्रबन्ध किया है, आज तुम्हें सब कुछ खाना होगा।" स्वामी के आदेश से माँ यथासम्भव सभी नियम भंग करती। विशेषतः माँ का तो कोई भी नियम इच्छा करके होता नहीं – जब जो होने को होता, हो जाता। कुछ दिन सम्भवतः एक नियम चला, फिर वह बदल गया। इसी तरह चलता था। वे भोलानाथजी की आज्ञा का पालन करने की सदा चेष्टा करती। भोलानाथजी भी माँ के प्रति विशेष दबाव न डालते। क्योंकि वे यह जानते थे कि माँ जो कुछ करती हैं, मंगल के लिये ही करती हैं। भोलानाथजी का आदेश पाकर माँ ने हँसते हुये मेरा हाथ पकड़ मुझे उठाकर कहा – "चल, हम एक–साथ खायेंगे। मैं इस अवस्था के बाद से फिर किसी के भी साथ नहीं खाती हूँ। मेरी ननद (कालीप्रसन्न बाबू की स्त्री) आई थी, केवल उनके साथ खाया था और आज तुम्हारे साथ खाऊँगी।" मैंने बहुत

---

* उसके बाद भी इस तरह के व्यापार मैंने देखे हैं– कोई घटना होती तो, जो कोई समीप में होता, माँ उसी से क्या होगा यों जिज्ञासा करती, भला या बुरा उसी के मुँह से कहला देती, अपने मुँह से कुछ भी न कहती। यदि कोई उत्तर देते समय स्पष्टतः न कह सकता तो कहती, "न मालूम कैसा कह रहा है, अच्छा तो नहीं प्रतीत होता है।" आश्चर्य की बात यह है कि ज्ञात होने पर भी माँ किसी विषय में भले–बुरे की जिज्ञासा करने पर सदा स्पष्ट भाषा में "अच्छा ही होगा" ऐसा नहीं कह सकती। उत्तर मानो रुक जाता फिर वास्तव में ही उस विषय में गड़बड़ भी हो जाती। माँ इस प्रकार दूसरों के मुँह से बातें कहला लेती।

दिन पहले से ही मछली-मांस खाना छोड़ दिया था। माँस तो चिरकाल से ही नहीं खाती थी, मछली का भी लगभग दो वर्ष से बिल्कुल त्याग कर दिया था। इसके पहले भी मछली विशेष नहीं खाती थी। माँ का मछली का भोग है, माँ के साथ खाने पर मछली खानी ही पड़ेगी, किन्तु माँ को देखते ही एक ऐसा भाव जागा कि जिससे उनके आदेश का उल्लंघन करने की क्षमता नहीं रही, अनिच्छा से नहीं आनन्दपूर्वक मैंने उनका आदेश मान लिया। सभी आत्मीय स्वजनों के विरोध करने पर भी मैंने मछली का त्याग किया था, किन्तु उस दिन माँ का आदेश न मानने की मुझमें क्षमता नहीं आई।

माँ के साथ भोलानाथजी के पत्तल पर जाकर खाने बैठी। माँ उस समय अपने हाथ से ही खाती थी। माँ ने स्वयं थोड़ा खाकर मुझे मछली भात खिला दिया। मैंने कहा- ''तुम जो दो वही खाऊँगी।'' आत्मीय स्वजन कहने लगे- ''आज से तुम यह आज्ञा दे जाओ कि उसे मछली खानी होगी।'' किन्तु माँ ने जरा हँसते-हँसते कहा-''ना, यह नहीं कहती हूँ। मेरे साथ जब खायेगी तभी खायेगी और समय (मछली) खाने की आवश्यकता नहीं है।'' मैं उन दिनों आलू के साथ पकाया हुआ भात खाती थी, किन्तु माँ ने इतनी मछली-तरकारी खिला दी कि सभी ने सोचा कि इसे यह नुकसान पहुँचायेगी। माँ के साथ थोड़े दिनों का परिचय था इसलिये माँ की शक्ति का यथार्थ परिचय बहुतों को मिला न था। इसीलिये उन्होंने ऐसा सोचा था। मैंने हँसते हुये कहा था- ''तुम खाओगी नहीं, केवल मुझी को खिलाओगी।'' माँ ने भी हँसकर उत्तर दिया-''आज तुम्हें खिला दिया है, बाद में तुम मुझे खिला दोगी।'' इस कथन का अर्थ उस समय भली-भाँति समझ में नहीं आया। खाना-पीना समाप्त हो गया। सायंकाल माँ शाहबाग चली गई।

सूर्य ग्रहणोत्सव – 30 पौष 1982

इसके कुछ दिन बाद ही पौष संक्रान्ति के दिन सूर्यग्रहण पड़ा। बहुत लोग सम्मिलित होकर उस दिन शाहबाग में माँ के समीप दिन में कीर्तन करेंगे और प्रसाद पायेंगे, यह निश्चय कर उसकी व्यवस्था करने लगे। हम लोग उस दिन सवेरे ही आ पहुँचे। आकर देखते हैं कि माँ तरकारी छील

रही हैं। मुझे भी माँ ने उस काम में लगा दिया। बहुत लोग प्रसाद पाने वाले थे। बाउल बाबू और उनकी स्त्री ने आकर माँ को सहायता पहुँचाई। माँ ने तरकारी सुधारकर चावल, दाल आदि ठीक कर दिये। देवेन्द्र कुशारी आदि कई भक्त रसोई बनाने वाले थे। मटरी बुआ तो थी ही। पिताजी ग्रहण के समय पुरश्चरण करते थे। वे भी उस दिन घर न जाकर वहीं जप करने बैठे। माँ ने स्वयं ही पूजा के बर्तन माँजकर पिताजी के लिये पूजा की जगह बना दी। ग्रहण का आरंभ होते ही कीर्तन शुरू हुआ।

कीर्तन में माँ का भाव

धीरे-धीरे प्रमथ बाबू की स्त्री, निशि बाबू की स्त्री आदि स्त्रियाँ आकर माँ को प्रणाम कर कीर्तन के निकट एक गोल कमरे में जा बैठी। नाच घर में कीर्तन हो रहा था। माँ की अवस्था देखकर मालिकों के श्रद्धान्वित होने के कारण वहाँ सभी जगह माँ का उत्सव चल रहा था। माँ समागत स्त्रियों को अपने हाथ से सिन्दूर दे रही थी, बैठने के लिये चटाई आदि बिछा दे रही थी, किसी काम में त्रुटि न थी। इधर रसोई की सब व्यवस्था कर दी गई। तदुपरान्त माँ स्त्रियों के साथ कीर्तन के सामने गोल कमरे में जा बैठी। माँ किसी भी आसन पर विशेष बैठती न थी, जमीन पर ही बैठती और जमीन पर ही लेटी रहती। बहुधा इस अवस्था में सारा दिन कट जाता, माँ जमीन पर ही पड़ी रहती। कभी-कभी मैंने देखा है कि चीटियों से माँ का मुख-हाथ भरा है, माँ एक कोने पर पत्थर के समान जमीन पर पड़ी हैं। उस दिन भी जमीन पर एक कोने में जा बैठी। सिर और शरीर भली-भाँति कपड़े से ढक दिया था। सदा ही मैं देखती, माँ सिर अथवा शरीर का कपड़ा कभी खोलकर न बैठती, शरीर भली-भाँति ढका रहता। कीर्तन हो रहा था, लगभग दोपहर का समय था, हम लोग भी सब माँ के समीप बैठी थी। सहसा माँ का सारा शरीर हिलने लगा, सिर का वस्त्र गिर गया। नेत्र बन्द हो गये, किन्तु शरीर मानो कीर्तन के ताल-ताल में नाम कीर्तन के साथ-साथ हिल रहा था। इस प्रकार हिलते-हिलते ही माँ उठ खड़ी हुई। किन्तु मालूम पड़ता था कि शरीर छोड़ दिया है, किसी अदृश्य-शक्ति की सहायता से शरीर में भाँति-भाँति की क्रियायें होने लगी। अवस्था देखकर स्पष्टतः प्रतीत होता था कि इसमें अपनी कोई इच्छा-शक्ति नहीं है। शरीर इस प्रकार छोड़ दिया कि शरीर का कपड़ा भी गिरा जा रहा था। उस

समय माँ बदन पर शमिज नहीं पहनती थी, कपड़ा ही इस प्रकार भली-भाँति पहनती थी कि कभी भुजायें तक दिखाई नहीं देती थी। सब स्त्रियों ने माँ के शरीर पर एक चादर कसकर बाँध दी। माँ हवा के साथ-साथ मानो प्रत्येक बार गिरकर भी वायु में भार देकर ही उठ रही थी। सारे कमरे में घूमने लगी। मानो एक विचित्र नशे में मस्त हों। ठीक वैसा भी न था - हमने जो अवस्था देखी उसका वर्णन भाषा द्वारा नहीं किया जा सकता। अपने जीवन में और कभी भी ऐसी अवस्था देखने में नहीं आई। **चैतन्य देव** और **रामकृष्ण देव** की जीवनी में इस महाभाव के विषय में मैंने केवल पढ़ा भर था। आज इस अवस्था को प्रत्यक्ष आँखों से देखकर तो मैं मानो स्तब्ध हो गई। कैसी आश्चर्य की अवस्था थी। जो कुछ ही क्षण पहले कितने काम कर रही थी, वे इस समय न जाने कहाँ चली गई। उक्त अवस्था साधारण लोगों की तो बुद्धि में भी नहीं आ सकती थी। माँ का शरीर इस प्रकार घूमते-घूमते बरामदे से धीरे-धीरे कीर्तन करने वालों की टोली में जाकर घूमने लगा। नेत्र ऊपर लगे हुये तथा पलकहीन थे, मुँह पर अस्वाभाविक ज्योति मानो झलमला रही थी, सम्पूर्ण शरीर पर रक्त कान्ति थी। देखते-देखते उत्थितावस्था से ही एकाएक जमीन पर गिर पड़ी। किन्तु तनिक भी शरीर पर चोट आई हो ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। मैंने कहा तो है कि हवा के साथ ही मानो शरीर छोड़ दिया था, वायु के साथ ही साथ मानो शरीर जमीन पर ढुलक पड़ा। गिरते ही जैसे बवंडर कागज या पत्ते को उड़ा ले जाता है वैसे ही शरीर द्रुतगति से घूमने लगा। हम लोगों ने पकड़े रखने की चेष्टा की, किन्तु उस वेग को सम्भालना असम्भव हो गया। थोड़ी देर बाद स्थिर होकर बैठी। नेत्र बन्द थे, आसन बाँधकर बैठी थी, स्थिर, धीर, अचल, अटल। अवस्था देखकर मैं पिताजी को दिखाने के लिये उन्हें बुलाने माँ के सोने के कमरे में गई। पिताजी जप कर रहे थे। मैंने कहा- "देख लीजिये कैसी अद्भुत अवस्था है। ऐसी अद्भुत अवस्था मैंने कभी नहीं देखी है।" किन्तु पिताजी जप छोड़कर उठे नहीं। उस समय भी ग्रहण हटा न था। उसके अनन्तर माँ कीर्तन के उस अस्त-व्यस्त वेश से ही पिताजी जिस कमरे में जप कर रहे थे, चलते-चलते उसी कमरे में एकाएक दरवाजा खोलकर अकेले ही प्रविष्ट हो गई, क्या किया यह मुझे ज्ञात नहीं, एक क्षण के बाद ही बाहर आकर दरवाजा बन्द कर उसी तरह

कीर्तन में चली आई, किन्तु पिताजी ने माँ को देखा नहीं। माँ बैठकर पहले धीरे-धीरे फिर जोर-जोरे से स्पष्ट रूप से कीर्तन करने लगी –"**हरे मुरारे मधु कैटभारे, गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।**" केवल इतना ही घूम-घूमकर गाने लगी। क्या वह स्वर था, आज भी उसका स्मरण होने पर शरीर में रोमांच होते हैं। ऐसी मधुर ध्वनि और कभी सुनी नहीं। सब कुछ ही नूतन था। सभी ने इस व्यापार को प्राय: नया देखा। क्योंकि माँ का उक्त भाव इतने दिनों तक खूब गुप्त ही था, सबके सम्मुख कीर्तन के बीच में वे इस तरह और कभी भी प्रकट नहीं हुई थी। तदुपरान्त माँ कुछ देर चुपचाप बैठी रहकर शरीर छोड़कर जमीन पर गिर पड़ी। शरीर में मानो किसी प्रकार का स्पन्दन न था। श्वास अत्यन्त धीरे-धीरे जरा-जरा चल रहा था। ग्रहण छूट चुका था, पिताजी ने उठकर देखा कि माँ का वेश अस्त-व्यस्त है, सिर के केश भी इधर-उधर बिखरे हैं, इस प्रकार सिर झुकाये बैठी हैं। जमीन पर पड़कर पिताजी ने उन्हें प्रणाम किया।

साँझ हो गई थी। भोलानाथजी ने अनेक आवाज देकर माँ को उठाया। उस समय भी शरीर विवश था, शरीर का वस्त्र ठीक नहीं कर पा रही थी। हमने कपड़ा ठीक कर दिया। बोल नहीं पा रही थी। जीभ एकदम जकड़ गई थी। भोलानाथजी के कहने पर उनके साथ-साथ उठ गई सही, किन्तु शरीर बिल्कुल भी ठीक नहीं था। भोलानाथजी माँ को रसोईघर में ले जाकर घुमा लाकर सोने के कमरे में ले गये। माँ उस कमरे में जाकर जमीन पर बैठ गई। धीरे-धीरे सभी के साथ जरा-जरा बोलते-बोलते धीरे-धीरे वचन कुछ स्पष्ट हुआ। धीरे-धीरे शरीर की अवसन्नता भी कुछ कम हुई। मैं शरीर पर हाथ फेरने लगी। माँ बोली- "शरीर के भीतर ठीक नहीं है, न जाने कैसा हो गया है।" नेत्र उस समय भी जल से भरे थे। इसी तरह साँझ हो आई। भोलानाथजी ने कीर्तन के निकट बताशे ले जाने को कहा। माँ फिर सिर और बदन का वस्त्र ठीक करके एक पीतल की परात में बताशा स्वयं लेकर और एक पीतल की परात में जो फल काटे थे, मेरे हाथ में देकर कीर्तन में चली गई। कीर्तन की एक ओर बताशा रखे गये, फल भी रखे गये। गिलास से जल दिया गया। खूब जोर से कीर्तन आरम्भ हुआ। सन्ध्या हो गई थी, माँ घूँघट काढ़कर स्त्रियों के साथ कीर्तन में एक ओर जमीन पर बैठ गई। कुछ देर बाद ही फिर वही भाव प्रकट हुआ,

जिससे शरीर में नई-नई क्रियायें होने लगी। इस बार नेत्रों की वह शान्त दृष्टि कुछ काल के लिये बदलकर भयानक भ्रकुटि के रूप में परिणत हो गई। पैर और दोनों हाथ इस प्रकार चल रहे थे कि देखते ही मालूम होता था कि पैर और दोनों हाथ कभी एक पैर इस प्रकार चल रहे थे मानो युद्ध और ताण्डव नृत्य हो रहा हो। शरीर का रंग भी लाल न था, मानो काली छाया पड़ी हो। कुछ देर बाद वह भाव बदल गया। कभी प्रतीत होता था कि मानो सारे शरीर से आरती कर रही हों। आरती के साथ-साथ मानो शरीर आहुति दे रहा हो। कितने ही प्रकार होने लगे। अन्त में बैठ गई थी, किन्तु प्रतीत हो रहा था कि मानो भीतर से धक्का देकर मुख से बाहर निकलेगा किन्तु निकल नहीं रहा था, शब्द बाहर नहीं निकल रहा था। कई बार प्रयत्न करने के पश्चात् अपूर्व मन्त्र और स्तोत्र बाहर निकलने लगे। वह ध्वनि कितनी सुन्दर थी और उच्चारण भी कितना सुन्दर और स्पष्ट था, किन्तु वह भाषा किसी के समझ में नहीं आ रही थी। कई एक बीज मन्त्र के तुल्य सुनाई दे रहे थे, पर समझ में कुछ नहीं आ रहा था। मुँह से धारावाहिक रूप में स्तोत्र निकल रहे थे। फिर धीरे-धीरे स्तोत्र बन्द हो गये। धीरे-धीरे माँ चुप होकर स्थिर भाव में बैठी और कुछ क्षणों के उपरान्त लेट गई। इधर बहुत रात बीत जाने के कारण दिनभर के उपवास के सब भक्त प्रसाद पावेंगे यह सोचकर भोलानाथजी माँ को उठाने के लिये अनेक प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु माँ उठ नहीं पा रही थी। लड़खड़ाते वचन से कह रही थी- ''उठ नहीं पा रही हूँ, शरीर बेबस है।'' तदनन्तर हम सारे शरीर को हाथ से मलते रहे, बहुत देर बाद माँ उठ बैठी। वस्त्र ठीक करने की चेष्टा कर रही थी, किन्तु हाथ ठीक न होने के कारण नहीं कर सक रही थी। इस कारण बच्चों की तरह अपने आप हँस रही थी। आँखे भी भली-भाँति नहीं खोल सक रही थी। किन्तु मुँह पर हास्य की रेखा लगी ही थी। भावावस्था में मुख उज्ज्वल था। उसमें वह हास्य की रेखा भी बड़ी ही मीठी लग रही थी।

कुछ क्षणों के बाद माँ उठकर खड़ी हुई और अपने शयन गृह की ओर चली। उसी कमरे में भोग का सब सामान प्रस्तुत था। माँ और भोलानाथजी कमरे में गये। धूप-दीप जला दिया गया, दरवाजा बन्द कर दिया गया। भोग लगा, वे दोनों बाहर आये। बहुत लोग प्रसाद पाने वाले

थे। फलतः बैठक के कमरे में, जहाँ कीर्तन हो रहा था, उसी कमरे में खाने की जगह की गई। माँ ने भोलानाथजी से कहा– "तुम इन लोगों के साथ बैठो मैं और खुकुनी परोसेंगी, बाद में हम खायेंगी।" माँ का आदेश था, इसलिये सब लोग खाने बैठ गये।

एक घटना

इस बीच में एक घटना हो गई। माँ जिस समय कीर्तन में बैठी थी, उस समय सब स्त्रियाँ माँ को घेरकर बैठी थी। माँ की संनिधि होने के कारण किसी को भी संकोच नहीं रहा। कुछ दूरी पर एक पुरुष खड़ा था, किसी ने भी उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु घूँघट के भीतर से ही माँ की दृष्टि उसकी ओर जाकर स्थिर हुई। धीरे-धीरे दृष्टि इतनी तीव्र हो उठी कि उस आदमी ने फिर घूर न सकने के कारण नेत्र जमीन की ओर नीचे कर लिये। माँ की तीव्र दृष्टि शान्त हो गई। माँ जरा हँसते हुये उस आदमी को लक्ष्य कर कह उठी– "ये सब लड़कियाँ आज मेरे कारण ही सबके सामने हुई हैं, तुम इनमें से किसी की भी ओर नहीं घूर सकोगे। केवल मेरी ओर देख सकते हो, उससे मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा, किन्तु सावधान, अब किसी की ओर न ताकना।" इस कथन का अर्थ किसी की समझ में कुछ नहीं आया। उस समय वहाँ नये-नये लोग आये थे, कोई किसी को विशेष पहचानते न थे। उनके बीच में एक भद्र पुरुष के प्रति माँ के इस तरह कहने पर सभी का ध्यान आकृष्ट हुआ कि यह क्या हुआ। उसके पश्चात् कीर्तन आदि में और भोजन का इन्तजाम करने में व्यस्त रहने के कारण किसी ने उस बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब सब लोग भोजन करने बैठे तब वे सज्जन भोजन करने के लिये नहीं बैठ रहे थे। माँ और मैं परोसने लगी। माँ ने भी कमर पर कपड़ा लपेट लिया, उस समय मानो एक दूसरी मूर्ति हो गई। वह सज्जन भोजन करने नहीं बैठ रहे हैं यह देखकर सब लोग उनसे बैठने का अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा – "मैं खाऊँगा नहीं, माँ मेरे ऊपर गुस्सा हुई हैं।" माँ उस समय समीप में ही परोस रही थी। बिना सिर उठाये ही एक आदमी के पत्तल पर खिचड़ी परोसते-परोसते मानो अपने मन में ही बोल उठी– "माँ किसी पर गुस्सा नहीं होती।" उक्त सज्जन ने भी वह सुना, सबके कहने पर इस बार वह भोजन करने बैठे, किन्तु विशेष कुछ खा न सके। प्रायः दो पहर रात बीतने

पर सबका खाना-पीना समाप्त होने पर मैं और माँ एक साथ भोजन करने बैठी। भोलानाथजी ने माँ से कहा- ''मैं कहता हूँ आज भली-भाँति सब कुछ खाओ।'' माँ ने अपने नियमानुसार न खाकर कुछ खाया। उस पुरुष की ओर इस प्रकार की तीव्र दृष्टि की चर्चा चली। माँ ने केवल यही कहा- ''देखो, मैंने अपनी इच्छा से अथवा गुस्से से उस तरह ताका हो सो बात तो बिल्कुल ही नहीं है। हर एक पुरुष के भीतर के भाव के अनुसार ही उसकी ओर उस प्रकार की दृष्टि पड़ती है। वह भयभीत हो जाता है और सोचता है कि माँ ने गुस्से में आकर उस प्रकार से देखा है। किन्तु मेरे अन्दर क्रोध का भाव बिल्कुल ही नहीं रहता, दृष्टि यदा-कदा वैसी हो जाती है।'' इस प्रकार की अनेक बातें होने के अनन्तर हम लोग नमस्कार कर विदा हुये। माँ भी विश्राम करने लगी।

दूसरे दिन आश्रम में जाकर सुनने में आया कि माँ रात्रि में कुछ ही देर बिछौने पर रहकर जमीन पर आकर बैठी रही। माँ अक्सर इसी प्रकार रहती हैं, कभी जमीन पर पट होकर (नमस्कार करने की तरह) पड़ी रहती हैं, बहुत समय बीत जाता है। यह दिन है या यह रात्रि है यों कोई समय-असमय माँ का नहीं है। रात्रि में सोना चाहिये अथवा दिन में जागना चाहिये, ऐसा कुछ नियम मैं नहीं देखती हूँ। जब शरीर में जो भाव हो जाता है तब उसी भाव में चलती हैं। वे कहती हैं- ''तुम लोगों को जैसे प्रातःकाल, दोपहर, सन्ध्या, रात्रि इस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों की प्रतीति होती है, भाव में परिवर्तन होता है, मुझे वह कुछ भी प्रतीत नहीं होता, सभी समय मानो बिल्कुल एक से लगते हैं, कोई भी भेद मालूम नहीं होता।'' उस दिन तड़के रात्रि शेष से ही जमीन पर उतरकर आँखें बन्द करके ही चौकी पर सिर रखकर बैठी थी। इधर प्रातःकाल ही वे भद्र पुरुष आकर माँ को प्रणाम कर माँ से कुछ दूर सिर नीचा कर बैठ गये। माँ के उठने में विलम्ब देखकर उन्होंने भोलानाथजी से पूछा- ''माँ कब उठेंगी?'' भोलानाथजी ने माँ को दो-चार बार पुकारकर जगा कर बैठाया। माँ ने उस भद्र पुरुष की ओर देखा। भद्र पुरुष ने पुनः प्रणाम कर भोलानाथजी से पूछा- ''कल माँ ने मेरी ओर उस तरह क्यों निहारा एवं मुझसे वे सब वचन क्यों कहे यही पूछने आया हूँ।'' माँ ने क्या उत्तर दिया इसका ठीक स्मरण नहीं है। उसे सुनकर वह भद्र पुरुष माँ के निकट अपने जीवन का

सारा वृतान्त जी खोलकर कहने लगे। अपने भाव की बात भी कहने लगे। उन्होंने जो कहा उसका सारांश यह है कि किसी स्त्री के प्रति मेरा मातृभाव उदित नहीं होता है, केवल सखी भाव जागता है। मैं शिक्षित हूँ, किन्तु किसी तरह भी मेरे इस स्वभाव में परिवर्तन नहीं हो रहा है। घर पर बड़े भाइयों के निकट इसीलिये अब भी बहुत किचकिच सहनी पड़ती है किन्तु उपाय क्या? मातृभाव तो मेरे भीतर आता ही नहीं। उन्होंने यह भी कहा- ''आज पहले-पहल मैंने आपको 'माँ' कहकर पुकारा है और प्रणाम किया है। आज तक मै किसी को भी माँ कहकर नहीं पुकार सका।'' माँ ने उन्हें कुछ उपदेश दिया और कहा- ''प्रतिदिन एक बार यहाँ आना। पर किसी स्त्री के मुख की ओर निहार नहीं सकोगे, पैरों की ओर निहारोगे।'' प्रतिदिन मैं देखती वे माँ के निकट बैठे रहते, ''दूसरी किसी स्त्री के कमरे में जाते ही सदा कपड़े से ढ़ककर सिर को नवाँ कर बैठते। माँ जब जाने की आज्ञा देती तब कुछ प्रसाद लेकर चले जाते। बाद में मैंने सुना कि उक्त पुरुष के चरित्र में परिवर्तन हो गया है। वे अब भली-भाँति परिवार को साथ लेकर नौकरी करके दिन व्यतीत कर रहे हैं।

शाहबाग में नियमित रूप से कीर्तन का आदेश

पखावज और करताल उस समय शाहबाग में ही पड़े थे। एक दिन सन्ध्या के समय माँ ने कहा- ''रोज सन्ध्या के समय थोड़ा-थोड़ा नाम-कीर्तन हो तो क्या बुरा है?

पखावज करताल तो हैं ही।'' यह कहने पर भोलानाथजी को साथ लेकर आशु, अमूल्य आदि सभी उस दिन सन्ध्या समय कीर्तन करने बैठ गये। माँ भी बैठी, हम लोग भी बैठे, थोड़ा-सा कीर्तन हुआ। धीरे-धीरे और भी दो-चार आदमी सन्ध्या समय आने लगे, उन्होंने भी कीर्तन में योग दिया। भोलानाथजी गाना न जानने पर भी खूब आनन्द के साथ जोर-जोर से नाम कीर्तन करते। इस तरह प्रतिदिन कुछ देर तक कीर्तन होना आरम्भ हुआ। मैं बताशे ले आती, उनका प्रसाद बाँटा जाता। प्रतिदिन ही कीर्तन में माँ का थोड़ा-थोड़ा ऐसा भाव होता, किसी दिन खूब अधिक होता। कभी-कभी स्तोत्रादि भी मुँह से निकलते, किन्तु उस भाषा का अर्थ कोई भी समझ न पाता।

संक्रान्ति के दिन माँ की उक्त अवस्था होने के अनन्तर माँ के दर्शन करने बहुत लोग आने लगे। बहुत से लोग भोग भी देते। माँ भी रसोई बनाती, जो उपस्थित रहते तदुपरान्त वे प्रसाद पाकर जाते। माँ का नियम था, जिस दिन जो-जो कुछ भी लेकर आवेगा (कच्ची मिर्चा तक) उसी दिन वह पकाकर बाँट दिया जायेगा, घर में कुछ नहीं रह सकेगा। और खाने वाले लोग भी ठीक समय पर जुट जाते थे। इसके अनन्तर माँ ने तीन भात खाने का नियम आरम्भ किया।

प्रमथ बाबू की बदली हो रही थी, इसलिये उन्होंने माँ के हाथ का बना हुआ प्रसाद पाना है, यह सोचकर माँ के मकान में नाना प्रकार की वस्तुयें भेजी। भोलानाथजी हमारे मकान में जाकर हम लोगों को प्रसाद लेने के लिये कह आये। भोग रात्रि में होने वाला था। पिताजी बहुत वर्षों से रात्रि में थोड़ा दूध और मिठाई लेते हैं, यदि और कुछ खा लें तो उन्हें नुकसान करता है। माँ ने यह सुना था, इसलिये उन्होंने कहला भेजा, ''पिताजी, दिन में थोड़ा दूध-फल खाकर रहें, तब रात्रि का खाना उन्हें कोई नुकसान नहीं करेगा।'' माँ के आदेश से वैसा ही किया गया। दोपहर में ही हम आ गये। माँ रसोई की व्यवस्था कर रही थी, चिंड़िमछली का चाप, काटलेट आदि बनाने वाली थी। मैं साथ-साथ सहायता कर रही थी। मुझे मालूम हुआ कि माँ किसी भी विषय में अपटु नहीं हैं। वह काम भी बड़ी कुशलता के साथ ही कर रही थी। काम-धाम खूब सफाई सुधराई से और शीघ्रता से करती। रसोई तैयार हो गई, अग्नि के ताप से माँ का मुँह लाल हो गया, किन्तु मुँह पर हास्य की रेखा लगी ही रही। सन्ध्या होते ही भोग लगा। भोलानाथजी, प्रमथ बाबू, पिताजी और दो-चार व्यक्ति भोजन करने बैठे। माँ ने कहा - ''मैं बाद में खाऊँगी।'' माँ और मैं परोस रही थी। सभी में माँ का भिन्न-भिन्न नूतन रूप देख रही थी। उस समय देखकर यह प्रतीत नहीं होता था कि इन्हीं ने कीर्तन के समय ऐसा रूप धारण किया था। हाँ, ध्यान देते ही दोनों नेत्रों का अस्वाभाविक भाव उस कामकाज के समय भी लक्षित होता था। बोलना अधिकांश समय अस्पष्ट रहता, कुछ देर बोलते-बोलते तब जाकर कुछ साफ होता। नहीं तो चुपचाप रसोई बनाती, परोसते समय मुँह में बोली न रहती, पर हाथ खूब काम करते। उस समय यदि कोई बातें करना आरम्भ करते तो मुँह से वचन न निकलता ऐसा मैंने

अक्सर देखा है। जरा चुप होते ही बोली रुक जाती। और यदि कोई काम हाथ में न ले चुप होकर बैठती तो तुरन्त नेत्र बन्द हो जाते, हिलती रहती या एकबारगी सो पड़ती, –ऐसा भाव हो जाता कि उठाना कठिन हो जाता। केवल कीर्तन में ही नहीं, जब कभी इस प्रकार का भाव हो जाता। पर कीर्तन में ही अधिक होता और विविध प्रकार की शारीरिक क्रियायें होती। सबका खाना–पीना हो गया। माँ सदैव भोलानाथजी की पत्तल पर ही बैठती। उस दिन मैं और माँ एकसाथ बैठी। खाने–पीने के बाद माँ के निकट थोड़ी देर बैठकर हम सब लोग अपने–अपने मकान चले आये

भिखारियों का भोजन और दरिद्र–नारायणों की सेवा

सौर 19 फाल्गुन, 1982–श्रीसरस्वती पूजा थी, मैडिकल कॉलेज के लड़के, भिखारियों को भोजन कराने वाले थे और साथ ही कीर्तन भी कराने वाले थे, उसमें उन्होंने माँ को ले जाना चाहा। किन्तु पिताजी ने मना कर दिया। साधारणत: कीर्तन करते ही माँ का ऐसा भाव होता है। कॉलेज के अन्दर भी यदि ऐसा हुआ तो बाहर के जो सब लोग वहाँ रहेंगे, वे सब इस भाव को पहचान तो सकेंगे नहीं, न जाने कौन किस दृष्टिकोण से देखेगा, क्या कहेगा? माँ तब भी घूँघट काढ़े रहती थी- यह सब विचार कर निषेध कर दिया गया। शाहबाग में ही कीर्तन हो, जो–जो आवें, वे देखें। माँ ने एक बार कहा था–''भिखारियों का भोज देखने में आता।'' इस कथन पर मेरा आग्रह हुआ, अपनी जननी की मृत्यु तिथि के उपलक्ष्य में मैंने भिखारियों के भोजन का आयोजन किया। माँ को ले जाऊँगी यही आनन्द था।

बगीचे में पेड़–पौधे नष्ट हो जायेंगे यह सोचकर मालिकों ने शाहबाग में भिखारियों को भोजन कराने की अनुमति नहीं दी। संयोगवश मेडिकल कॉलेज में ही भिखारियों के भोजन का आयोजन किया गया। लगभग तीन हजार आदमियों के खाने का बन्दोबस्त हुआ। माँ के भक्तों तथा कॉलेज के छात्रों ने ही सब प्रबन्ध किया। हम लोग माँ को और भोलानाथजी को साथ लेकर भोजन के पहले दिन रात्रि में वहाँ गये। रात्रि में वहाँ रहने का निश्चय हुआ। माँ का आदेश था कि जब तक भोर न हो तब तक दरिद्र नारायणों के लिये रसोई नहीं चढ़ाई जायेगी, क्योंकि बासी भोजन नहीं दिया

जायेगा। तरकारी काटी जा रही थी। माँ ने कहा- ''हम भी थोड़ी तरकारी काटेंगे। दरिद्र नारायणों के भोग का काम करना चाहिये।'' वही हुआ, ऊपर बैठकर हमने भी थोड़ी बहुत तरकारी छीली। दूसरे दिन प्रात:काल जिनके रसोई बनाने के लिये आने का निश्चय था वे नहीं आये। मथुर बाबू नाम के माँ के एक भक्त ने (जो पुलिस विभाग में काम करते थे) माँ को प्रणाम कर कहा - ''रसोई बनाने वाले ब्राह्मण तो[१] अभी तक नहीं आये, इधर भोर हो गया है।'' माँ ने कहा- ''चल, हमीं जाकर रसोई चढ़ा दें।'' माँ की कृपा से थोड़ी देर बाद मथुर बाबू रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को साथ लाकर उपस्थित हुये। हम लोगों को रसोई चढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। सारी रात माँ ने हम लोगों में से किसी को भी सोने नहीं दिया, बोली- ''दरिद्र नारायणों की सेवा करोगे, आज रात जागे रहो। सभी कामों के पहले निष्ठा के साथ संयम करना पड़ता है।'' प्रात:काल मुझसे कहा- ''इस समय दरिद्र नारायण जिस तरह तुम्हारे काम में उपस्थित हों उसके लिये उनके निकट प्रार्थना करो।'' यह कहते ही मुझसे बोली- ''क्या, नारायण सब भली-भाँति आयेंगे तो?'' मैं जानते हुये भी जवाब देते समय न जाने क्यों ठिठक गई। बोली- ''यदि तुम्हारी इच्छा होगी तो आवेंगे।'' माँ उसी समय बोल उठी- ''कैसे कह रही है - प्रतीत होता है गड़बड़ करेंगे।''

जो हो जाने वाला है होगा ही। दोपहर के समय लगभग 11 बजे से लड़कों ने कीर्तन आरंभ किया। सरस्वती देवी की मूर्ति उस समय भी वहीं थी। माँ ने हँसकर कहा- ''इस सरस्वती की पूजा में लड़कों ने इस शरीर को यहाँ लाना चाहा था, मूर्ति रहते-रहते ही आना हुआ।'' कीर्तन खूब जम उठा। माँ भी भाव में विभोर हो गई। शरीर में कितने प्रकार की क्रियाएँ हो रही थी। उस दिन भी कुछ क्षण ऐसी उग्रमूर्ति में ऊर्ध्व दृष्टि से मानो खड्ग लेकर किसी के साथ युद्ध कर रही हों। इस भाव का आरंभ होते ही जीभ बाहर निकल पड़ी। मुहूर्त्त भर में ही जीभ भीतर चली गई, भाव में भी परिवर्तन हो गया। माँ ने भाव से भरपूर शान्तमूर्ति धारण की। कभी आसन पर बैठकर मानो पूजा कर रही थी- अपनी ही स्वयं पूजा कर रही थी। कभी अपने पैरों पर ही माथा टेककर प्रणाम कर सर्वथा अशक्त हुये जा रही थी, कभी द्रुतगति से घूमते-घूमते जमीन पर लोट-पोट लेते-लेते स्थिर भाव से चित्त होकर लेट रही थी- नाभि से लेकर कण्ठ तक ऐसा

श्वास चल रहा था मानो लहर खेल रही हों, फिर कभी शिथिल होकर पड़ गई, मैं गोद में लेकर बैठी थी। सारा शरीर पत्थर के समान ठण्डा हो गया, जरा स्थिर होते ही मुख से असंभावित रीति से राल निकलने लगी। मेरे सब कपड़े भीग गये, कभी नेत्रों से इनता अश्रुजल निकल रहा था कि धोती, कुर्ती सब भीगकर तर हो रहे थे, फिर कभी एकबारगी मृत की-सी अवस्था हुये जा रही थी, अंगुलियाँ, नख सब काले हो गये थे। मुख मृत के मुख की भाँति पीला पड़ गया था। नाड़ी की गति भी है या नहीं, समझ में नहीं आता था। श्वास के चिह्न भी बिल्कुल न थे। हम लोग मारे भय के अधीर हो उठे, किन्तु माँ ने पहले से ही बतला रखा था, ''तुम्हें नाम कीर्तन करना चाहिये, यदि ठीक होने वाला होगा तो उसी से हो जायेगा।'' इसलिये हम लोग यदि माँ की ऐसी अवस्था होती तो केवल नाम कीर्तन करते। भोलानाथजी भी खूब नाम कीर्तन करते थे। वह कीर्तन दो तल्ले पर हो रहा था। उस समय पिताजी नीचे रसोई के कमरे में खड़े थे। एक आदमी ने जाकर पिताजी से कहा- ''ऊपर जाकर देखें माँ की कैसी चमत्कारपूर्ण भावावस्था हुई है।'' पिताजी दौड़कर ऊपर गये, किन्तु जाकर देखा तो माँ बैठी हुई थी। सिर के बाल अस्त-व्यस्त थे, सिर झुकाकर बैठी हुई थी। पिताजी ने जाकर बड़े ही दुःख के साथ मन ही मन कहा- '' आज मैं ही ठगा गया। तुम्हारे उस रूप के मुझे दर्शन नहीं मिले।'' मन ही मन ऐसा विचार कर जप करने बैठ गये। थोड़ी देर बाद आँखें सहसा खुल गई, - माँ की ओर देखते ही माँ के मुख का रंग गहरा काला और दोनों ओठ लाल दिखाई दिये। जीभ बाहर निकली नहीं दिखी। पिताजी ने कहा- ''मैंने आँख गड़ाकर दो-तीन बार देखा, सोचा आँखों का भ्रम तो नहीं है? किन्तु भ्रम नहीं था, मैंने स्पष्टतः वही रूप देखा। थोड़ी देर बाद उस रंग में परिवर्तन हो गया -स्वाभाविक गौरवर्ण हो गया।'' माँ कुछ देर बाद सो गई। फिर उठकर बैठते ही उसी तरह धाराप्रवाह से स्तोत्र आदि निकलने लगे। कुछ क्षणों के बाद प्रसाद बाँटा गया। माँ भी तनिक सुस्थिर रूप से सो गई। तीन बजते-बजते बहुत प्रयत्नों से माँ को जगाया गया। इधर दरिद्र नारायणों को भोजन के लिये बैठाना था। माँ उठी, कुछ स्वस्थ हुई, जंगल से भिखारी कितने इकट्ठे हुये हैं यह देखकर बोली- ''कुछ विशेष तो नहीं देख रही हूँ। तीन हजार के लिये प्रबन्ध

है, आधे भी होंगे या नहीं, सन्देह है। मैंने प्रातःकाल ही कह दिया था कि आज गोलमाल करेंगे।'' नीचे जहाँ सब रसोई तैयार कर रखी हुई थी, माँ को उस कमरे में ले जाना हुआ। उस दिन विशेष भोग लगाना न था, माँ को दर्शन कराकर फिर प्रसाद वितरण करने की बात थी, इसलिये पिताजी माँ को नीचे ले गये। माँ ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर घूम-घूमकर सब देखा। घूँघट के भीतर से माँ ने जिस प्रकार दृष्टि डाली, आज भी उसकी मुझे याद है। किस प्रकार नेत्र घुमाकर सब वस्तुयें एक ही बार देख ली। माँ ने कहा- ''मैं भी थोड़ा परोसूँगी।'' सबने माँ के जयकार के नारे लगाये। माँ ने कमर पर कपड़ा लपेटकर परोसा। एक कुष्ठ रोगी आया, माँ ने उसे विशेष प्रेम से खिलाया। माँ ने दरिद्र नारायणों की जूठन उठानी चाही। भोलानाथजी के निषेध करने के कारण फिर नहीं उठाई। भक्त और कालेज के लड़कों ने ही जूठन उठाई। अनेक भद्र महिलायें भी उक्त कार्य को देखने गई थी। माँ ने कहा- ''आज हम सभी दरिद्र हैं, सभी यह प्रसाद पावेंगे।'' वैसा ही हुआ। सभी उसी जगह प्रसाद पाने बैठ गये। धनी-गरीब का कोई विचार नहीं रहा। दरिद्र नारायण भोजन करने बैठे, भीषण अन्धकार करके वृष्टि आई। सब लोग मैदान में भोजन करने बैठे थे। माँ एकाएक कमरे से बाहर निकली, मैदान के एक ओर जाकर टहलने लगी। सब लोग भोजन समाप्त होने पर उठ गये, माँ भी कमरे के अन्दर आकर बैठी। उसके बाद वेग से वृष्टि आई। हमने सोचा वृष्टि के कारण सबका भोजन खराब न हो, इसीलिये माँ बाहर जाकर टहलने लगी थी। इसी तरह बाद में और भी दो-एक बार मैंने देखा है। रात में एक-दूसरे भद्र पुरुष को सब भार सौंपकर माँ सबको साथ लेकर जहाँ पर दरिद्र भोजन हुआ था, अन्धकार में उस मैदान में जाकर खाने बैठी और बोली- ''आज हम भी भिखारी हैं, हमें भी भिक्षा दो।'' जिन भद्र पुरुष पर भार सौपा था उन्होंने जल्दी-जल्दी लाकर माँ को परोसा। सभी लोग माँ के चारों ओर बैठ गये। माँ ने उजाला लाने नहीं दिया, बोली- ''क्या भिखारी दीपक जलाकर खाते हैं?'' खाने-पीने के अनन्तर धीरे-धीरे सबने विदा ली। अन्त में माँ भी हमें साथ लेकर चली आई। बहुत-सा सामान बच गया। निश्चय हुआ कि दूसरे दिन बाँट दिया जायेगा। माँ कह आई- ''कल फिर मैं नहीं आऊँगी।'' रात्रि में टिकाटूली आकर दूसरे दिन शाहबाग चली गई।

अनाथ का वृत्तान्त

इधर उक्त दरिद्र नारायण भोजन के समय एक लड़का माँ के दर्शन कर न मालूम कैसा हो पड़ा था वह ढाका में कानून का अध्ययन करता था- मेडिकल कॉलेज के निकट ही एक मैस में रहता था। पीछे सुनने में आया कि वह उस दिन रात्रि से ही माँ के दर्शनों के लिये व्याकुल हो उठा। दूसरे दिन भोर में एक बार अपनी कोठरी का दरवाजा खोलकर कुछ फूल तोड़कर, फिर दरवाजा बन्द कर दिन भर बैठे-बैठे एकाग्र मन से माँ को पुकारता रहा। उसका विश्वास था कि माँ इस पुकार से निश्चय ही मेरे कमरे में आवेंगी एवं उस समय मैं फूलराशि माँ के चरणों में चढ़ाऊँगा। वह दिन भर बिना खाये दरवाजा बन्द किये बैठा रहा। उसके सगे-सम्बन्धियों में से कोई भी माँ कहाँ रहती हैं, यह न जानते थे। मेडिकल कॉलेज में पूछताछ करने पर लड़कों से उन्हें केवल यह खबर मिली कि वह माताजी शशांक बाबू की गुरु माँ हैं। शशांक बाबू रोज ही वहाँ जाते हैं। वास्तव में माँ किसी को भी दीक्षा नहीं देती हैं। लड़के हमारे घर आकर उपस्थित हुये और पिताजी से शाहबाग का पता लेकर सन्ध्या समय अनाथ को साथ ले शाहबाग गये। हम लोग भी शाहबाग गए। लड़का माँ को साष्टांग प्रणाम कर पड़ा ही रहा। इधर सुनने में आया कि दोपहर से ही माँ बाहर जाने के लिये छटपटा रही थी, मेडिकल कॉलेज की ओर जाऊँ ऐसा भाव जागा था। किन्तु पहले दिन कह आई थी- "कल फिर इधर नहीं आऊँगी, तुम्ही ने भार लिया है, तुम्हीं सब बाँट देना" - इसलिये रात खुलते ही उधर जाने की प्रतीक्षा में थी। माँ ने कहा- "मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं हूँ, किन्तु उधर जाने के लिये कैसा एक अपूर्व भाव जागा था।" इधर अनाथ के बन्धु-बाँधवों ने बलात् दरवाजा खोलकर अनाथ को ले जाकर माँ के समीप उपस्थित किया। सारी घटना सुनकर हम तो अवाक् रह गये। कीर्तनादि हुआ। किन्तु अनाथ उस समय भी माँ की चरणधूलि लेने के लिये पड़ा था। माँ किसी को भी चरण छूने नहीं देती हैं। बहुत समय बीत गया, रात बहुत हो गई। माँ उस समय भी घूँघट काढ़कर बैठी थी। दूसरा चारा न देखकर भोलानाथजी ने माँ से कहा-"यह लड़का जब सारे दिन तुम्हारे लिये ही व्याकुल रहा तब आज इसे चरणधूलि दो।" भोलानाथजी के आदेश की माँ जैसे भी हो, रक्षा करने की चेष्टा करती

थी। उस दिन भोलानाथजी बार-बार वही रट लगा रहे थे। किन्तु माँ स्थिर होकर बैठी रही। कुछ क्षणों के बाद माँ धीरे-धीरे उठ खड़ी हुई, मुख लाल हो उठा, पैर के केवल अँगूठे के ऊपर भार देकर खड़ी हुई। भोलानाथजी के संकेत पर अनाथ एवं अन्यान्य सभी माँ की चरणधूलि पाकर कृतार्थ हुये। उस समय अनाथ के आनन्द की सीमा न रही। माँ और भोलानाथजी भोजन करने गये। अनाथ बैठा रहा, उसकी इच्छा थी कि माँ के पत्तल का प्रसाद लेकर जाऊँ। माँ उसे भी विशेषत: किसी को नहीं देती हैं। किन्तु उस समय अनाथ के सभी कर्मों में सिद्धि हुई। माँ ने एक छोटी-सी चाँदी की थाली में सब तरकारियों से मेरे द्वारा भात मिलाया, फिर सिर पर लम्बा घूँघट काढ़कर अन्नपूर्णा स्वयं ही प्रसाद वितरण करने गई। एक-एक ग्रास उठाकर माँ ने हाथ एक ही स्थान पर स्थिर भाव से रखा। पहले अनाथ, तदनन्तर सभी धीरे-धीरे माँ के हाथ के नीचे हाथ पसार रहे थे, माँ ग्रास छोड़ दे रही थी, फिर दूसरा ग्रास उठा रही थी। इस प्रकार अनाथ के कारण उस दिन सभी माँ की चरणधूलि और प्रसाद पाकर धन्य हुये। तदुपरान्त सबने माँ को प्रणाम कर विदा ली। सम्भवत: अनाथ उस दिन वहीं रहा, दूसरे दिन दोपहर के समय उसने पुन: माँ की चरणधूलि ली थी। नियम हुआ कि महीने की उन दो तारीखों में, जिन दो समयों में अनाथ ने पैर की धूलि ली है, उन्हीं दो तारीखों के निर्दिष्ट इन दो समयों में, पाँच मिनट के लिये सभी माँ की चरणधूलि लेंगे। अगले महीने में सब भक्तजन यह वृतान्त जानकर निर्दिष्ट तारीखों के निर्दिष्ट समय में उपस्थित हुये। माँ बैठी थी, घूँघट काढ़कर बैठे-बैठे हिल रही थी। सब लोग घड़ी देख रहे थे, किन्तु माँ नेत्र बन्द कर बैठी थी। ज्यों ही ठीक समय हुआ, माँ खड़ी हो गई। जल्दी-जल्दी एक-एक करके सब चरणधूलि लेने लेगे, माँ नेत्र बन्द कर हाथ जोड़कर खड़ी थी। सुई के ठीक 2.10 बजे पर पहुँचते ही माँ ने बैठकर जमीन पर लोटकर प्रणाम किया। किन्तु उक्त नियम केवल उसी मास में दो दिन रहा, उसके अनन्तर बन्द हो गया।

उसके बाद से ही अनाथ और मेडिकल कॉलेज के अन्य कई लड़के आते-जाते रहते। धीरे-धीरे सीतानाथ, सुबोध, जट्टू, पोस्टमास्टर सुरेन्द्र बाबू, गिरिजा बाबू, विनय बाबू, केदार मास्टर आदि अनेक लोग आने लगे, कीर्तन भी अत्यन्त सुचारु रूप से होने लगा।

माँ का स्ववर्णित पूर्वावस्था का इतिहास

एक दिन माँ ने अपने पूर्व जीवन का वृतान्त कहते-कहते कहा- ''कितने प्रकार की अवस्थायें हुई हैं, इसका अन्त नहीं है, किन्तु कोई भी अधिक दिन नहीं चली, मानो एक के बाद एक अवस्था शरीर के ऊपर से चली गई है।'' प्रातः स्नान कुछ दिन किया, परान्न-भोजन का कुछ दिन त्याग किया, आचार निष्ठा की ओर कुछ दिन विशेष भाव रहा। माँ कहती- ''जिस कमरे में बैठकर ये सब क्रियायें होती, उस कमरे के बाहर की चारों ओर लगभग दो हाथ जगह इतनी साफ रखती कि एक तिनके के साथ भी कमरे का स्पर्श न रहता। धूपदानी लेकर चारों ओर घूम आती।'' और भी कहा, ''दिन-रात कहाँ चले जाते इसका मुझे भान न रहता।'' भोलानाथजी की सेवा की पूर्ति कर जा बैठती - खाना-पीना (दिन का खाना) संभवतः किसी-किसी दिन रात्रि शेष में होता, और कभी होता भी नहीं, यदि किसी प्रकार छू जाती तो कैसी विचित्र अवस्था हो जाती। कहने लगी- ''मैं चौकी पर बैठी होऊँ, पीछे की ओर शायद किसी के कपड़े से स्पर्श हुआ, इतने में शरीर हिलने लगता। मैं देखती नहीं, किन्तु शरीर की अवस्था से मुझे विदित हो जाता कि किसी से मैं छू गई हूँ।'' फिर किस प्रकार से ये सब नियम टूटे यह बात भी कही - ''एक लड़की के विवाह में उसे सिन्दूर लगाने गई, सिन्दूर लगा दिया, तभी से सबको छू सकती हूँ।'' माँ ने कहा- ''बाजितपुर में यह अवस्था प्राप्त होने के पूर्व सभी मुझसे खूब स्नेह करते थे, सदा मेरे समीप आते थे। किन्तु यह अवस्था आरम्भ होने पर इन्हें भूत लगा है यह सोचकर सबने आना बन्द कर दिया। अच्छा ही हुआ, मैं भी एकान्त पाकर अपनी इच्छा के अनुसार बैठकर उनको पुकारती। सभी जैसे सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया।'' बचपन के वृतान्त के सिलसिले में एक दिन बोली- 'बाल्यावस्था में भात खाने बैठते ही मैं अन्यमनस्क हो जाती थी, माँ मुझे धक्का देकर बिगड़ती और कहती, खाने बैठकर खाने की ओर ध्यान नहीं है, ऊपर की ओर देखती है। मैं कुछ कह न पाती। इस समय कह सकती हूँ इसलिये कह रही हूँ, मैं देखती कि कितनी ही देव-देवियों की मूर्तियाँ आ रही हैं और जा रही है।'' एक दिन हँसते-हँसते बोली- 'बाल्यावस्था में सभी मुझको सीधी कहते, विशेषतः माँ सदा ही कहती, यह अत्यन्त सीधी है, इसे कुछ भी सुधबुध नहीं है।'' मैंने एक

दिन एक कलशा जल पोखरे से भरकर बगल में रखकर टेढ़ी खड़ी होकर माँ से कहा– ''तुम सब मुझे सीधी कहते हो, यह तो मैं टेढ़ी बन गई हूँ।'' यह बात सुनकर हम सभी हँस उठे। माँ भी हँसने लगी। मैंने हँसते हुये कहा– ''इस समय तुम्हारी माँ देख रही हैं कि उस सीधी लड़की ने किस प्रकार इतने लोगों को पागल बना डाला है।''

दूसरे के रोग का आकर्षण

एक दिन जाकर मैंने देखा माँ को एकाएक भीषण सर्दी हुई है। बाद में मुझे उसका कारण मालूम पड़ा। प्रमथ बाबू के लड़के प्रतुल ने माँ से कहा था– ''मुझे सर्दी मालूम पड़ रही है, परीक्षा आई है, देखना परीक्षा के समय जैसे सर्दी न रहे।'' इस कथन के फलस्वरूप उसकी सर्दी घट गई और उसकी परीक्षा के समय माँ को सर्दी हो गई।

मौन ग्रहण और मौन तोड़ने की प्रक्रिया

एक दिन प्रमथ बाबू की स्त्री ने माँ से कहा– ''माँ, मैं सोमवार को मौन रहूँगी। माँ प्राय: सभी लोगों से कुछ समय मौन रहने को कहती रहती हैं। इस कथन पर माँ ने कहा– ''अच्छा तो है, वैसे ही रहना।'' इधर प्रमथ बाबू ने माँ से कहा– ''माँ मेरी स्त्री मुझसे आगे बढ़ जाये सो नहीं होगा। वे सोमवार को मौन रहेगी, तो मैं उसके पहले दिन रविवार को मौन रहूँगा।'' माँ ने उस पर भी अपनी सम्मति प्रकट की। वे अत्यन्त भक्तिमान् पुरुष थे। गत पौष संक्रान्ति के दिन रात्रि में कीर्तन के समय भाव में विभोर होकर खड़े-खड़े नाचे थे। वे माँ के समीप आकर चुपचाप बैठकर नाम-जप करते थे और प्रणाम कर चले जाते थे, यह उनका प्रतिदिन का सन्ध्या समय का काम था। किस तरह उत्तम प्रकार से मौनी रहा जाता है, इस सम्बन्ध में उन्होंने एकान्त में माँ से प्रश्न किया। माँ ने भी उन्हें एक प्रक्रिया बतला दी। उन्होंने उसी प्रक्रिया से रविवार को मौन लिया। सोमवार को बोलने के समय उन्हें प्रतीत हुआ कि वचन नहीं निकल रहा है। वे बड़े ऑफिसर थे। कितने ही लोग आकर कितने कागज-पत्र लेकर बैठे थे, किन्तु महा-विपत्ति यह कि वे बोल ही नहीं पा रहे थे। प्रतुल ने शाहबाग आकर माँ को सब हाल बतलाया और उन्हें साथ ले गया। माँ ने जाकर बोलने की प्रक्रिया बतला दी, तदुपरान्त उस प्रक्रिया द्वारा प्रमथ बाबू बातें

कर सके। माँ ने कहा– "बोलना बन्द कराने की प्रक्रिया देखने आकर तुमने तद्नुरूप क्रिया कर मौन ग्रहण किया था, किन्तु मौन तोड़ने की प्रक्रिया तुम देखने नहीं आये, इसी से यह गड़बड़ी हुई।"

सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त

हम लोगों को साथ लेकर माँ एक दिन सिद्धेश्वरी मन्दिर गई। वहाँ पर एक स्थान बाँसों से घेरा हुआ था और उसके बीच में एक छोटी वेदी ईंट और मिट्टी से बनाई थी। उसके चारों और तुलसी के पेड़ तथा दो फूल के पेड़ लगाये थे। सिद्धेश्वरी के काली मन्दिर में जो भैरवी सेवा आदि करती थी, वही वहाँ एक बत्ती जला दिया करती थी। माँ वहाँ जाकर बहुत देर तक बैठी। फिर चली आई। सिद्धेश्वरी का काली मन्दिर भी प्राचीन मन्दिर है। एक विशाल पीपल का पेड़ जड़ सहित उखड़ा पड़ा है, किन्तु पेड़ सूखा नहीं, जड़ से फिर पेड़ निकल रहा है। सुनने में आया कि इस वृक्ष का भी क्या अद्भुत महात्म्य है।

सिद्धेश्वरी का पहले का इतिहास

सिद्धेश्वरी का पहले का इतिहास माँ के मुँह से जैसा मैंने सुना है वह यहाँ पर उल्लेख योग्य प्रतीत हो रहा है। माँ कहती हैं– "सन्ध्या होते ही अपना काम पूरा कर रमना के काली मन्दिर में आकर कभी मैं बैठी रहती अथवा कभी प्रणाम करने की–सी मुद्रा में पट होकर पड़ी रहती। इस तरह रात्रि बहुत बीत जाती।" एक दिन सुनने में आया कि रात को दस बजे रमना काली मन्दिर का दरवाजा बन्द हो जायेगा, ऐसा नियम बना है। उसी समय एक दिन अटल तथा अन्यान्य दो–तीन व्यक्तियों से मैंने कहा– "चलो, रमना की काली के दर्शन कर आवें।" यह कहकर उन लोगों को साथ लेकर हम बाहर निकले। मार्ग में ही दस बज गये। उस समय सभी कहने लगे कि अब तो दर्शन होंगे नहीं, क्योंकि दरवाजा बन्द हो गया होगा। मैंने कह डाला, 'चले तो चलो।' हम लोग जिस समय काली मन्दिर के फाटक से प्रवेश कर रहे थे उस समय एक घटना घटी। ठीक उसी समय देखा गया कि एक विधवा दो बालक–बालिकाओं को साथ लेकर हम लोगों की दृष्टि बचाकर बगल से शीघ्रता से मन्दिर की ओर चली गई। हमने जाकर देखा तो वही स्त्री मन्दिर में प्रणाम कर लौट रही थी, मन्दिर

का दरवाजा खुला था। सभी ने अचम्भे में आकर पूछा- इस समय भी यह दरवाजा खुला है? तब मालूम हुआ कि वह स्त्री काली मन्दिर के महन्त की शिष्या है। वह आई थी इसी से दरवाजा खुला है। हम लोगों के पहुँचते ही वह स्त्री चली गई। आश्चर्य की बात है कि रास्ते में और कहीं पर भी उस स्त्री के साथ भेंट नहीं हुई। एकदम फाटक के पास जाकर इस प्रकार भेंट हुई। इतनी रात में यह स्त्री यहाँ अकेली क्यों आई, यह प्रश्न किसी के मन में नहीं उठा। एक बार वह स्त्री चार वर्ष की एक लड़की को लेकर मेरे पास शाहबाग आई थी। लड़की भली-भाँति चल फिर नहीं सकती है, यही बात मुझसे कहने आई थी। मेरे मुँह से न जाने क्या निकला। पीछे एक दिन आकर उस स्त्री ने कहा- ''माँ तुम्हारे निकट प्रार्थना करके जाने के अनन्तर लड़की अच्छी हो गई है।'' मैंने छोटी लड़की की ओर ध्यान नहीं दिया, किन्तु वह विधवा स्त्री शाहबाग में जब मेरे निकट आई तब मैंने विशेष रूप से उसे ही लक्ष्य किया। उसी समय एक दिन सावन के महीने में, जिस वर्ष भोलानाथजी की शाहबाग में नौकरी लगी थी उसी वर्ष बाउल ने हम लोगों के साथ शाहबाग लौटते समय मार्ग में कहा- ''एक दिन तुम लोगों को सिद्धेश्वरी ले जाऊँगा। बाउल के साथ रमना मन्दिर में ही कुछ दिन पहले भेंट मुलाकात हुई थी। पहले की और बात यह है कि बाजितपुर में एक दिन मेरे नेत्रों के सामने एक वृक्ष उद्‌भासित हो उठा था और मन में सिद्धेश्वरी के वृक्ष का ऐसा भान हुआ था। उसके बाद शाहबाग आने पर एक दिन मैंने भोलानाथजी से पूछा- ''सिद्धेश्वरी का पेड़ कहाँ है?'' भोलानाथजी बतला न सके। बाद में बाउल के मुँह से उक्त बात सुनी। भोलानाथजी से इशारे में मैंने पहले जो सिद्धशेवरी की बात कही थी उसे प्रकट करने का निषेध कर दिया। इसके पश्चात् एक दिन बाउल आकर रात्रि में हम लोगों को सिद्धेश्वरी ले गया। जो पीपल का पेड़ गिरा था उसे देखते ही मैंने उसका स्पर्श किया और उसके पत्ते पर हाथ रखा। मैं समझ गई कि यही पेड़ मैंने देखा था। बाउल के मुँह से सुना कि यहाँ बहुत पहले मन्दिरादि नहीं थे। पीछे संवरन नामक एक संन्यासी ने इस मन्दिर की स्थापना की। यहाँ पर एक साथ तीन वृक्ष थे, इसलिये इसका नाम तिन्तिरी पड़ा था। दो अब नहीं हैं- केवल यह पीपल का पेड़ विद्यमान है। किंवदन्ती है कि इस पीपल के वृक्ष से एक ज्योति निकल

कर मन्दिर स्थित कालीमूर्ति में समा गई थी। हम लोग लालटेन से मन्दिर देखकर चले आये। उस समय सिद्धेश्वरी में यह सब मकान, कमरे न थे। इसके अनन्तर फिर एक दिन हम बाउल के साथ सिद्धेश्वरी गये। जाकर देखा तो ताला बन्द मिला, मैंने ताला पकड़कर ज्यों ही खींचा, ताला खुल गया। बाउल ने कहा– ''माँ की इच्छा से ही ऐसा हुआ है।'' हम लोग रात को लौट न सके, क्योंकि मन्दिर को खुला छोड़कर कैसे लौटते? प्रात:काल ताले को यों ही खुला लगाकर हम लोग लौट आये। सिद्धेश्वरी के महन्त को इसकी सूचना दे दी थी। उन्होंने ताला खुला देखकर सोचा था कि बन्द करते समय संभवत: ताला भली-भाँति लगा न होगा। ताला मेरे खींचते ही खुला, पहले से खुला न था, यह बात किसी से कहने के लिये मैंने बाउल को मना कर दिया था। उसके अनन्तर एक दिन मैंने भोलानाथजी से कहा– ''तुम बाजार जाकर एक दर से सवा सेर आलू, सवा सेर पीले मूँग की दाल और एक नारियल तथा कुछ चावल ले आओ, मोल भाव न करना।'' भोलानाथ, आलू, चावल और नारियल ले आये, किन्तु पीले मूँग मिले नहीं। इसके कुछ दिन पहले मैं नारायणगंज द्विजेन्द्र बाबू वकील के घर गई थी। वे आशु के (भोलानाथजी के भतीजे के) मामा थे। मुझे वे अत्यन्त प्यार करते थे। लड़के की बीमारी में मुझे ले गये थे। उनके मकान में मैं पीली मूँग देख आई थी। वहाँ से मैंने डेढ़ सेर मूँग मँगाया, उन्होंने दाम लेना नहीं चाहा, किन्तु अन्त में आशु द्वारा मैंने कहला भेजा, जाकर कहो कि मुझे आवश्यकता है यदि आप दाम नहीं लेंगे तो मैं उन्हें काम में नहीं ला सकूँगी। मेरी अवस्था को जानते थे, इसलिये बाध्य होकर उन्होंने दाम ले लिये। इस तरह सब ठीक कर और सब सुधार-बीनकर एक दिन मैंने भोलानाथजी से कहा– ''चलो सिद्धेश्वरी जायँ।'' भोलानाथजी मेरी बात पर अड़ंगा नहीं डालते थे। वे चले। माखन उस सयम शाहबाग में मेरे डेरे पर था, उसे खूब ज्वर चढ़ा था। सुरबाला की (माँ की बहिन की) मृत्यु के बाद वह हमारे समीप आया था। किन्तु उस ओर मेरा ध्यान ही न था। मैं गई। वहाँ जाकर उन सब वस्तुओं से रसोई बना भोग लगाकर खाना-पीना हुआ। मूँग की दाल, नारियल का भूँजा, आलुओं के साथ पकाया गया, भात बनाया। उसके अनन्तर मैंने भोलानाथजी से कहा–''मैं यहीं रहूँगी।'' उस समय निश्चय हुआ कि दिन में पिताजी

जाकर सिद्धेश्वरी रहेंगे और सन्ध्या के बाद भोलानाथजी जायेंगे। मैंने कहा- मैं काली मन्दिर के निकट छोटी कोठरी में रहूँगी। वैसा ही हुआ। मैं बहुत तड़के स्नान आदि करके कमरे में चली जाती, दिन-रात मैं फिर बाहर न निकलती। दिन भर कुछ खाना था नहीं। रात्रि के समय बाउल गाते-गाते फलादि ले आता। बहुत रात बीते उसी का नैवेद्य लगाकर खाना होता। पहले-पहले मैं भोग लगाती थी, तुम लोगों ने भी देखा है। सब कुछ सजाकर बैठ गई या गिर पड़ी-बाद में उठकर बोली- 'भोग हो गया है।' कभी-कभी रात्रि के समय महन्त लोग फूल, चन्दन रख जाते। शायद फूल काली को चढ़ा देती थी। किन्तु ये सब ही अस्वाभाविक रूप से निवेदन, पूजा आदि हो जाते। इसी तरह भोग निवेदन किया जाता। पीछे मैंने भोलानाथजी से कहा- ''मालूम होता है अब यह सब मेरे बूते का नहीं है। तुम्हारे जो मन्त्र हैं उन्हीं से तुम भोग निवेदन करो।'' तदनन्तर वे वैसा ही करते। इस तरह सात दिन बीत गये। भोलानाथजी काली मन्दिर के एक छोर पर रहते, कभी अपना काम करते, कभी सोये रहते। मैं भी रात्रि को काली मन्दिर में ही रहती, भोर में स्नानादि कर छोटी कोठरी में प्रविष्ट हो जाती। बाउल मन्दिर के फाटक पर रहता। इस प्रकार सात दिन बीते। आठवें दिन प्रातःकाल भयानक वृष्टि हुई। मैं भोलानाथजी को इशारे से (उस समय तीन वर्ष का मौन चल रहा था) बुला ले जाकर बाहर चली गई। कहाँ कौन मार्ग है कुछ भी नहीं जानती थी, एकदम उत्तर की ओर चली। अन्त में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर शरीर खड़ा हो गया। तीन बार प्रदक्षिणा-सी हुई। उसके अनन्तर दक्षिण मुँह होकर घेरा डालकर बैठ गई एवं स्तोत्रादि सब होने लगे। क्योंकि उस समय इसी प्रकार बोली बाहर निकलती थी। बैठकर ही मैंने जमीन पर हाथ दबाकर रखा। आश्चर्य की बात है कि एक के बाद एक जमीन की पर्त हटने लगी और हाथ बिना रोक-टोक के जमीन के अन्दर घुसने लगा। इस प्रकार जब हाथ काँख तक अन्दर धँस गया, तब भोलानाथजी ने मुझे पकड़ लिया और खींचकर हाथ बाहर निकाल लिया। साथ-ही-साथ थोड़ा-थोड़ा लाल रंग का गरम जल निकलने लगा एवं माँ ने हाथ में कोई एक चीज उठाई थी। माँ जमीन में धँसी जा रही हैं, देखकर भोलानाथजी को बड़ा डर लगा। इस समय हाथ में उक्त वस्तु को देखकर न जाने फिर क्या हो यह सोचकर माँ के हाथ से लेकर उन्होंने

उसे सिद्धेश्वरी के पोखरे में फेंक दिया। बाद में भोलानाथजी से कहा गया– 'तुम हाथ डालो।' भोलानाथजी के हाथ डालने में सहमत न होने पर उनसे कहा गया, भय कुछ नहीं है। तुम्हारा हाथ डालना आवश्यक है। हाथ डालो। तब उन्होंने भी हाथ डाला। भोलानाथजी ने कहा– 'स्थान मानो एकदम पोला प्रतीत हुआ तथा गरम मालूम पड़ा।' भोलानाथजी के हाथ निकालने के साथ-साथ लाल गरम जल निकला। मैंने और भोलानाथजी ने खड़े होकर उसे देखा, जल निकलकर बहा जा रहा था। उस समय मिट्टी से उस जगह को ढककर हम लोग चले आये। आश्चर्य का विषय है कि बाउल रोज जगा रहता था, किन्तु उस समय वह सो पड़ा। हम लोग उसके शरीर के निकट से ही बाहर गये थे, किन्तु उसे आहट प्रतीत नहीं हुई। उसके अनन्तर हम लोग लौट आये। बाउल जाग गया। जागकर उसने बहुत दुःख प्रकट किया। बाउल को भोग देने की इच्छा हुई। वह उसका प्रबन्ध करने के लिये चला गया। मैंने और भोलानाथजी ने फिर उस जगह जाकर भीतर हाथ डाला। पुनः एक बार शाहबाग जाकर सन्ध्या के बाद सिद्धेश्वरी लौट आये एवं रात्रि में मैंने ही भोजन बनाया। उसी समय तुम लोगों की नानी और बाउल की स्त्री भी आ गई। भोजन के अनन्तर हम सब शाहबाग चले गये। उक्त निर्दिष्ट स्थान के पास ही एक बाँबी का स्तूप था। उसे तुम लोगों ने भी बाद में देखा है। देखो, उस जगह जब पहले गये तब बाउल सोया था, चारों ओर से किसी आदमी ने भी हमको जाते नहीं देखा। जब लौट आये तब भैरवी ने देखा था।''

आठवें दिन भी भोग लगा–माँ बाहर गई। उसके दूसरे ही दिन भाद्रपद की संक्रान्ति थी। उसके बाद माँ शाहबाग में एक दिन लेटी थी। बाउल से कतिपय वस्तुओं के लिये कहा गया। उसने उनको जुटाकर माँ के कथनानुसार उक्त गड्ढे में रख दिया। उक्त निर्दिष्ट स्थान की लिपाई कर रखने एवं उक्त स्थान को देखने प्रतिदिन जाने के लिये माँ ने कहा, बाउल वही करते। उन्होंने तुलसी और कई एक फूलों के पौधे वहाँ लगाये थे। तदनन्तर प्राणगोपाल बाबू ने यह सुनते ही उस स्थान की रक्षा के निमित्त बाउल बाबू को दस रुपये दिये। उन रुपयों से माँ के निर्देशानुसार दस हाथ जगह बाँसों से घेर दी गई तथा उस निर्दिष्ट स्थान पर ईंटों की एक वेदी बना दी गई। वह नाप में सवा वर्ग हाथ थी। बाद में उक्त स्थान पर जाकर

कभी-कभी माँ बैठती और कीर्तनादि होता। एक दिन वहाँ प्राणगोपाल बाबू को ले जाकर कीर्तन करके रात बिताई। प्राणगोपाल बाबू ने कहा था कि इस प्रकार कीर्तन आदि के द्वारा रात व्यतीत करने का मेरे जीवन में यह सर्वप्रथम अवसर है। वे बड़े नियम के साथ आहार-विहारादि करते थे। उस समय कीर्तन में माँ अपने आसन पर लेटी थी। बाउल आदि सबने देखा कि माँ का शरीर नहीं है केवल कपड़े ही पड़े हैं। और एक विशेष बात यह हुई कि बाँबी का स्तूप गिराकर जब पिताजी ने एक कमरा बनवाया तब कुली मजदूरों को उस बाँबी के स्तूप को तोड़ने में कैसा विचित्र भय हुआ था। तदुपरान्त माँ के कथनानुसार भोलानाथजी जाकर उसे गिरा आये। उक्त बाँबी के स्तूप की मिट्टी वासन्ती (चैत्र नवरात्र) पूजा के समय प्रतिमा की मिट्टी में मिला दी गई थी। इस बाँबी के स्तूप का क्या विवरण है यह अभी तक माँ के मुँह से प्रकाशित नहीं हुआ है। परन्तु माँ ने यह बात प्रकट की थी कि भोलानाथजी ने इस स्थान पर किसी समय साधना की थी। उन्होंने दुर्गापूजा की थी एवं उस दुर्गा-प्रतिमा का काली मन्दिर के पोखरे में विसर्जन किया था। पाँच हजार पाँच सौ पाँच वर्षों के बाद इसी तरह विभिन्न साधक इस स्थान पर आते थे।

यहाँ पर एक ध्यान देने योग्य विषय है। वह यह कि भोलानाथजी ने बाजितपुर में यह इच्छा प्रकट की, कि मेरी इच्छा है कि मैं एक पोखरे के साथ एक मकान बनाऊँ एवं वासन्ती पूजा करूँ। माँ ने उसी क्षण कहा- ''तुम्हारा तो मकान है - ढाका में गोकुल ठाकुर का मकान ही तुम्हारा मकान है।'' माँ के द्वारा कहे गये गोकुल ठाकुर ही पहले रमना आश्रम के मालिक थे, यह बात बाद में सुनने में आई। पीछे भोलानाथजी की वासन्ती पूजा सिद्धेश्वरी में हुई। सिद्धेश्वरी के निर्दिष्ट स्थान पर बहुत प्राचीन काल में भोलानाथ ही साधक थे। तभी देखा जाता है कि भोलानाथजी के कारण ही उक्त दो स्थानों में माँ उन्हें ले आई। उक्त दोनों स्थानों में वे थे।

भोग में बाधा

एक घटना और घटी। प्रमथ बाबू रोज ही माँ के मकान में कुछ मछलियाँ और पान भेज देते थे। उनकी बदली हो जाने पर उनका पुत्र प्रतुल ढाका में था, उसने नौकर से कह रखा था कि मकान में मछली आते ही पहले थोड़ी माँ के लिये भेज देनी चाहियें। एक दिन एक छोटी

मछली का सिर माँ के मकान में भेज दिया। माँ ने अपने ही हाथ से रसोई बनाई। भोलानाथजी ने भोजन करने के लिये बैठकर ज्यों ही सिर फोड़ा तो सिर के भीतर एकदम ताजा रक्त दिखाई दिया, थाली में खून की बूँद खूब जम गई। यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ, पक गया फिर भी उस सिर में इस तरह का ताजा खून कैसे रह गया? माँ ने उसे उन्हें खाने नहीं दिया। प्रतुल ने आते ही यह बात सुनी, माँ से बार-बार इसका कारण पूछा। माँ ने अगत्या कहा- "शायद इस मछली को यहाँ भेजते समय किसी के मन में अनिच्छा रही हो, इसीलिये ऐसा हुआ।" उसने घर जाकर नौकरों और रसोइयों को बहुत फटकार कर पूछा। उन्होंने स्वीकार किया कि उस सिर को माँ के डेरे में भेजते समय हमारे मन में ऐसा भाव आया था कि सिर प्रतुल बाबू के लिये ही रख देना चाहिये। अन्त में प्रतुल बाबू शायद बिगड़ें, इस भय से माँ के डेरे में ही भेज दिया। तब प्रतुल बाबू ने जाकर माँ से विनती की - "चूँकि भोग में इस प्रकार की गड़बड़ी हुई, इसलिये आगामी अमावस्या को मैं भोज के लिये सब सामान भेजूँगा, आपको सब खाना होगा।" प्रतुल का भी माँ के प्रति अत्यन्त विश्वास और भक्ति थी। माँ उसके और भोलानाथजी के कथन पर अमावस्या को भात खाने के लिये राजी हो गई। अमावस्या के दिन प्रतुल ने भोग भेज दिया। माँ ने उस दिन नियमानुसार भोजन किया। दूसरे दिन वे नौ उबले चावल खाकर रही, दूध-फल का कुछ भी प्रबन्ध नहीं था। अगली अमावस्या को पिताजी ने विनती की एवं उस दिन भोग दिया, माँ ने उस दिन भी खाया।

अमावस्या और पूर्णिमा को माँ का भोग

उसके बाद प्रति अमावस्या को पिताजी भोग देते एवं माँ भी नियमानुसार भोजन करती। इस तरह अमावस्या का भोग आरम्भ हुआ। माँ के भानजे अमूल्य को जब पहले-पहल नौकरी मिली तब उसने पूर्णिमा को पूरी और मिठाई द्वारा माँ को भोग दिया। माँ ने उस दिन भी खाया। उसके बाद प्रत्येक पूर्णिमा को अमूल्य भोग देता। बाद में इस अमावस्या-पूर्णिमा का भोग सब मिलकर देने लगे। अमावस्या और पूर्णिमा को दिन के समय माँ, भोलानाथजी एवं सब भक्त साधारण थोड़ा-सा फल खाकर रहते। रात में कीर्तन होता और माँ का भोग लगता। बाद में सब प्रसाद पाते। हम लोग अक्सर ही रात खुलते समय प्रसाद पाने बैठते। क्योंकि कीर्तन में माँ का

भाव होता और उसके हटते-हटते बहुत रात बीत जाती थी। उसके बाद इतने लोगों का खाना-पीना समाप्त होने में प्राय: रात खुलने की नौबत आ जाती थी। उन दिनों माँ के भक्तों में प्राय: बहुत लोग अमावस्या और पूर्णिमा को दिन में खाते नहीं थे - रात्रि में रमना आश्रम में भोग लगता था, वहीं पर प्रसाद पाते थे। अमावस्या और पूर्णिमा की रात्रि में मन्दिर में विशेष पूजा होती थी।

भोग की वस्तु में लोभ होने पर भोग नहीं होता

खाने की वस्तु में यदि किसी को लोभ हो जाता तो वह माँ के भोग में न लगती, यह मैंने अनेक बार देखा है। एक दिन माँ हमारे टिकाटूली के मकान में भोग ग्रहण करने बैठी थी, खूब बड़ी मछली बनाई गई थी, जरा माँ के मुँह में दी गई, किन्तु माँ उसे किसी प्रकार भी निगल न सकी। अन्त में मालूम हुआ कि नौकरों में गड़बड़ी हुई थी। एक दिन शायद कोई व्यक्ति कोई उत्तम खाद्य दे गये। किन्तु माँ ने कुछ नहीं खाया। सब बाँट दिया। फिर किसी एक दिन साधारण-सी वस्तु इस तरह खाई कि जो लाया था वह देखकर खूब ही तृप्त हुआ। फिर तो माँ के खाने की वस्तु बनाने में हमें बड़ी आशंका होती थी। कुछ दिन ऐसा हुआ था कि किसी फल पर यदि किसी पक्षी ने चोंच मारी हो तो उस फल को खा नहीं सकती थी। माँ जानती न थी - हम काटकर ले जाते, किन्तु खा नहीं सकती थी। पीछे कारण बतलाती। हम लोग देखते तो सचमुच वह पक्षी का चोंच मारा हुआ निकलता। कुछ दिन इस तरह का भाव रहता, बाद में वह हट जाता। फिर जो-जो कुछ देता, बेरोक-टोक खा लेती। यहाँ तक कि दूसरे के मुँह की वस्तु भी ग्रहण कर लेती। एक दिन एक कुत्ते को न जाने क्या खाता देखकर ''मैं उसके साथ खाऊँगी'' कहकर दौड़ पड़ी थी।

* * *

दूसरा अध्याय

अमावस्या के भोग और कीर्तन काल में विचित्र भाव पैरों पर फूल चढ़ाने का परिणाम

संवत् 1982 में एक दिन एक घटना घटी। उस दिन अमावस्या थी। उस समय भी बहुत लोगों का आना आरम्भ नहीं हुआ था। हम ही कुछ लोग शाहबाग गये थे। रात्रि में अमावस्या का भोग और कीर्तन हो रहा था, सीतानाथ आदि कतिपय लोग कीर्तन कर रहे थे। निरामिष भोग मटरी बुआ ने ही बनाया था। सामिष रसोई माँ ने बनाई थी, मैं साथ-साथ सहायता कर रही थी। रसोई में सामान्य थोड़ी-सी कसर थी। माँ मुझे वहाँ छोड़कर कीर्तन में आ बैठी। थोड़े आदमी रहते थे, इसलिये माँ बीच के जिस कमरे में लेटती उसी कमरे में कीर्तन होता था। मटरी बुआ आदि जिस कोने के कमरे में सोते थे, उसी कमरे में माँ बैठती थी। कोई महिला यदि उपस्थित होती तो वह भी उसी कमरे में बैठती। रात के समय स्त्रियाँ विशेष रहती न थी, कभी-कभी दो-चार महिलाएँ आ जाती थी। उस दिन कोई स्त्री नहीं आई थी, माँ अकेली ही उस कोने के कमरे में बैठी थी। उसी कमरे में भोग लगने वाला था। रसोई के पदार्थ भी उसी कमरे में रखे जा रहे थे। प्राय: कीर्तन के समय माँ भावावस्था में बीच वाले कमरे में कीर्तन के बीच चली जाती थी। कभी सारे मकान में घूमती, कभी लोट-पोट लेती, कभी केवल पैर के अँगूठे के ऊपर सारे शरीर का भार देकर खड़ी रहती-उस समय शरीर में कितनी ही क्रियायें होती। कभी केवल पैरों की एड़ियों के ऊपर भार देकर घूमती, भावावेश में नाचती। कभी स्थिर होकर बैठी रहती अथवा लेट जाती। पहले-पहले कभी-कभी प्रसाद के बताशों पर हाथ फेरकर एक बार जमीन पर फेंककर गिर पड़ती। कुछ दिनों के बाद फिर यह भी न कर सकती। भोलानाथजी से कह देती, वे ही नैवेद्य लगाकर प्रसाद बाँट देते। अन्त में कभी थोड़े से ही प्रयत्न से उठ जाती। कभी-कभी सारा दिन बीत जाता, माँ उठाई न जाती, रात के लगभग 2-3 बजे तक मैं और पिताजी माँ के समीप बैठे रहते। भोलानाथजी उठाने के लिये विविध

चेष्टायें करते। किसी दिन हम ही नाम कीर्तन करते-करते माँ के तनिक स्वस्थ होने पर माँ को सुलाकर घर आते। उस दिन माँ कोने के कमरे में जाकर बैठी, कीर्तन हो रहा था। शेष रसोई बनाकर मैं भी कीर्तन के समीप आई। माँ भाव में विभोर होकर कीर्तन में चली गई थी। इधर मैं रोज ही माँ के लिये माला और कुछ फूल ले आती थी। उस दिन भी लाई थी। माँ जब चुपचाप बैठती, कीर्तन आरम्भ होने के पूर्व ही मैं माला माँ के गले में डाल देती और फूल हाथ में रख देती। आज माँ पहले ही उस कमरे में चली गई थी, इस कारण माला नहीं डाली जा सकी थी, इसलिये मेरा मन कैसा खराब हुआ। मैं पहले से माँ के शरीर की रक्षा करने के लिये भाव के समय पुरुषों की भीड़ में भी माँ के साथ-साथ रहती, किसी प्रकार का संकोच न करती थी। परन्तु उस दिन माँ चली गई थी, इसलिये मुझे अकेले-अकेले कीर्तन के बीच में जाने में एक प्रकार की लज्जा का अनुभव हुआ, अतः मैं बीच में जा न सकी। उस कोने के कमरे में अन्धकार में ही खड़ी होकर माँ की ओर देखती रही, माँ को माला न पहना सकी, यह दुःख मन ही मन माँ को जताने लगी। मैंने देखा माँ कुछ देर घूम-घूमकर प्रतिदिन के समान बताशों को बिखेरकर भूमि पर सो गई। मैंने सोचा माँ शीघ्र उठेंगी नहीं। कितने प्रयत्नों से उन्हें उठाना पड़ता है, यह मुझे ज्ञात था। किन्तु क्या आश्चर्य है कि उस दिन माँ धीरे-धीरे उठकर खड़ी हो गई। पहले कभी ऐसा देखने में नहीं आया था, इसलिये आश्चर्य में पड़कर मैं देखने लगी। मैंने देखा, माँ हिलते-हिलते खड़ी होकर कोने की कोठरी की ओर-मेरी ओर-आ रही हैं। मैं अपने मन की उस समय की अवस्था न समझा सकूँगी, छाती के भीतर न मालूम कैसा हो उठा, क्षण भर में ही माँ हिलते-डुलते मेरी गोद में आकर गिर गई, मैं भी उन्हें चिपटाकर बैठ गई। कमरे में दूसरा कोई न था, कमरे में अन्धेरा था, मेरे मन की अभिलाषा जानकर ही माँ इस कमरे में इस प्रकार उठकर चली आई हैं, इसमें मुझे बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं रहा। उस समय मन में कैसी लहर आई कि मैंने किसी विधि निषेध का खयाल नहीं किया, अन्धकार में माँ के गले में माला डालकर फूल पैरों पर बिखेर दिये, सोचा कि और तो कोई देखेगा नहीं। किन्तु फूल पैरों पर चढ़ाते ही माँ कैसी कड़ी पड़कर गोद से लुढ़ककर जमीन पर लम्बी होकर लेट गई, अन्दर से एक विचित्र आवाज बाहर निकालने लगी, आँखे चढ़ गई। मुँह लाल हो गया, हाथ पैर मानों ऐंठे जा

रहे थे, एक अस्पष्ट शब्द कर रही थी। भोलानाथजी वैसी अवस्था देखकर दौड़कर उस कमरे में आये। जो कतिपय लोग कीर्तन में उपस्थित थे, सभी उजाला लेकर दरवाजे पर खड़े हुये। माँ के पैर और कपड़ों पर नाना रंग के फूल-बत्ती उजाले में स्पष्ट दिखाई देने लगे। सभी समझ गये कि माँ के पैरों पर उसने (मैंने) फूल चढ़ायें हैं, इसी से माँ की ऐसी अवस्था हुई है। माँ का अस्पष्ट शब्द भी क्रम से कुछ स्पष्ट हुआ। बाहर निकला- ''उसने फूल चढ़ाये हैं, मैं जाती हूँ।'' यह कहकर कैसा विचित्र भाव करने लगी, उसे देखते ही भय लगा। भोलानाथजी ने निषेध कर कहा- ''जाना मत।'' सबने धीरे-धीरे कहा- ''अनुचित ही हुआ जब कि निषेध किया था।'' वह भी मेरे कानों में पड़ा। माँ की ऐसी अवस्था थी, अपनी अवस्था का वर्णन करने के लिये मेरे पास भाषा नहीं है। मैं काठ की तरह स्तब्ध हो गई थी, अंगुलियाँ हिलाने की भी मुझमें शक्ति न थी। लज्जा, दुःख और भय ने मेरी ऐसी अवस्था कर दी थी कि मैं सोच रही थी पृथ्वी यदि फट जाती तो में उसमें समा जाती। किस प्रकार फिर लोगों को मुँह दिखाऊँगी, पिताजी भी क्या कहेंगे। सभी जानते हैं कि माँ मेरे ऊपर जरा अधिक अनुग्रह करती हैं, किन्तु आज मैं क्या कर बैठी, लोग क्या सोचेंगे? मैंने माँ के आदेश की अवहेलना की। इतनी बातों का विचार करने की उस समय मुझमें शक्ति नहीं थी। मैं तो चौकी के एक कोने पर माँ के पैरों के पास सिर नवाकर बैठी थी। भोलानाथजी सान्त्वना दे रहे थे। सभी चुप थे। माँ आज क्या कर डालेंगी सभी को यह भय था। सहसा माँ अस्त-व्यस्त वेश से ही उठ बैठी। नेत्र उस समय भी शान्त नहीं हुये थे। उठते ही मुझसे बोली- 'उठ'। मैं मशीन के खिलौने की तरह खड़ी हुई। फिर बोली (अपने दोनों पैर मिलाकर बैठी थी)- ''मेरे दोनों पैरों के ऊपर दोनों पैर रखकर ठीक तरह से खड़ी हो।'' दरवाजे के निकट ही कितने ही लोग खड़े हैं, कैसे उनकी ओर मुँह करके खड़ी होऊँ? किन्तु इतना सोचने का अवकाश उस समय कहाँ था? मशीन के खिलौने के समान मैंने उस आदेश का भी पालन कर लिया। उस समय माँ न मालूम क्या-क्या सब मन्त्रों का उच्चारण करते-करते उन्हीं सब फूलों को मेरे पैरों पर बिखेरने लगी। कुछ देर तक इस तरह करने के बाद माँ शान्त हुई। मुझसे उतरने को कहा, स्वयं भी पैर समेटकर ठीक तरह बैठी। फिर सहसा मेरी ओर निहार कर बोली- ''आज से अपने पैरों पर हाथ लगाकर किसी को भी प्रणाम करने

न देना, छोटे भाई-बहनों को भी नहीं।'' किसी कारण से यह भी बतला दिया था, ''तुम भी दो-तीन व्यक्तियों को छोड़कर और किसी के भी पैरों पर हाथ लगाकर प्रणाम न करना।'' मैं कोने के भीतर फिर बैठ गई। इस बार माँ को शान्त देखकर मारे दुःख के मुझे भीषण रुलाई आई, क्यों माँ उस प्रकार स्वयं आई, माला, फूल चढ़वाये, फिर इस प्रकार सबके सामने मुझे लज्जित किया। भय उस समय चला गया था, क्योंकि माँ तो स्थिर ही हो गई थी। मैं रोने लगी। माँ ने हँसकर भोलानाथजी से कहा- ''देखो तो वह क्यों रोती है।'' भोलानाथजी ने कहा- ''तुमने जैसा किया है रोवेगी ही तो, अब शान्त करो।'' उस समय भी हम लोगों को वहाँ गये बहुत दिन नहीं हुये थे। उस समय माँ ने दरवाजा बन्द कर देने को कहकर वास्तव में ही उस दिन मुझे शान्त ही किया। इस घटना के बाद से प्रत्येक अमावस्या को पैरों में फूलों की अंजलि देने की माँ से अनुमति पाकर मैं प्रत्येक अमावस्या को पूजा करती थी। एक दिन मैंने कहा- 'माँ, मैं पूजा नहीं जानती हूँ।' माँ ने कहा- ''तुम जिस प्रकार करोगी उसी से पूजा हो जायेगी।'' मैं यथासाध्य भक्ति पुष्पांजलि माँ के चरणों में अर्पित करती। जिस दिन से माँ के चरणों में अंजलि अर्पित करना आरम्भ किया, उस दिन से माँ ने और किसी देवता के चरणों में अंजलि देने का निषेध कर दिया। तभी से केवल इन चरणों को छोड़कर और कहीं पर भी पुष्पांजलि नहीं देती हूँ। तदनन्तर माँ ने कहा- 'चल, अब प्रसाद परोसें।' मैंने कहा- मैं परोसने न जा सकूँगी। जो काण्ड हुआ है, उससे सबके समीप जाने में मुझे लज्जा लगती है। वे सब निश्चय ही मन-ही-मन मेरे लिये खूब क्रुद्ध हुये होंगे।

माँ ने तुरन्त ही कहा- ''अच्छा, मैं सबसे पूछती हूँ, कैसा गुस्सा किया है।'' मैंने देखा ये फिर एक महाविपत्ति खड़ी करेंगी। मैं अगत्या माँ के कथनानुसार माँ के साथ परोसने के लिये राजी हुई। माँ और मैं सबको परोसकर भोजन करने बैठे।

अपने हाथ से खाना बन्द – मेरे ऊपर खिलाने का भार

मांस खाने में मुझे भीषण घृणा होती, इसलिये माँ प्रसादी का माँस भी मुझे कभी न देती थी। एक दिन खाने के लिये बैठने से पूर्व माँ बोली- ''आज से खुकुनी मुझे खिला देंगी। जब वह न रहेगी तब तुम खिला

दोगे।'' कुछ दिन भोलानाथजी ने खिला दिया था, कभी मुँह नवाकर अपने हाथ से ही भोजन कर लेती। अवश्य कभी हाथ से भी जरा खा लेती। आज से अपने हाथ से भोजन करना एकबारगी बन्द हुआ। माँ अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं। कुछ दिन पहले राजेन्द्र कुशारी के मकान में भोज में गई थी, उस समय भात मुँह में डालते समय माँ को प्रतीत हुआ कि हाथ मुँह की ओर न जाकर नीचे की ओर झुका जा रहा है। उसी समय माँ ने समझा कि हाथ से खाना बन्द हो रहा है। उसके बाद किसी प्रकार चलता था। मैं इस काम का भार पाकर कृतार्थ हुई। बहुत दिन पहले टिकाटूली के मकान में पहले दिन के भोग में बैठकर माँ ने मुझे खिला दिया था और कहा था– ''जिस समय मैं न खा सकूँगी उस समय तुम मुझे खिला दोगी।'' उस कथन का तात्पर्य अब मेरी समझ में आया। माँ तो सब कुछ जानती थी, इसी से उस समय मुँह से ऐसी बात निकली थी। खाने–पीने के पश्चात् माँ और भोलानाथजी सो गये, हम उन्हें प्रणाम कर घर चले गये। उसके बाद से माँ नौ या तीन जितने भी पके चावल खाती, यदि मैं उपस्थित रहती तो मैं ही खिला देती। उस समय दिन में भोजन करते समय मैं न आती थी, रात्रि में रोज ही मैं माँ को खिला देती, माँ के सोने पर चली जाती। मकान को लौटने में रात्रि के प्रायः ही 1.30 या 2 बजे या उससे भी अधिक समय हो जाता था।

दीपावली की काली–पूजा का इतिहास

कार्तिक, 1982 वि.– एक और घटना सुनने में आई कि गत दीपावली को (संवत् 1982 वि. के कार्तिक में) सबके अनुरोध से इस शाहबाग में ही माँ ने काली पूजा की थी। माँ को कभी फूल–बेलपत्रों से सर्वसाधारण के सामने पूजा करते किसी ने नहीं देखा। उनके दीक्षादि भी साधारण रीति से नहीं हुये, अलौकिक रूप से अपने आप ही हो गये। माँ पूजा करने बैठी। एक तगड़ा बकरा बलि देने के लिये लाया गया। माँ बकरे को गोद में लेकर पहले बहुत देर तक रोई, पीछे उसका उत्सर्ग किया। उसके बाद बकरा कैसा सीधा होकर अपने आप ही बलि के स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। माँ ने स्वयं प्रतिमा के सामने मुँह के बल पट हो तनकर लेटकर बलि देने के पूर्व जैसे बकरा कातर शब्द से चिल्लाता है वैसे ही तीन बार शब्द किया। बहुत देर बाद बलि होने पर देखने में आया कि एक

बूँद भी रक्त बाहर नहीं निकला। थोड़ा-सा रक्त बाहर निकालना आवश्यक था, क्योंकि पूजा में रक्त की आवश्यकता होती है। भोलानाथजी अँगुलियों से दबा-दबाकर बड़े प्रयत्न से एक बूँद रक्त नहीं निकाल सके।

माँ की भावावस्था की स्थिति

भावावस्था में माँ की नाना प्रकार की अवस्थायें होती थी। बहुधा ऐसा होता कि माँ टहल रही हैं, बातें कर रही हैं, पर हैं अत्यन्त अन्यमनस्क। यद्यपि हाथ का काम सब बिल्कुल ठीक ही करती तथापि अधिक समय इस प्रकार की अन्यमनस्कता का भाव रहता, खड़ी हैं प्रतीत होता मानो कहीं चली गई हैं। माँ का ऐसा भाव देखकर भोलानाथजी के बहनोई काली प्रसन्न कुशारीजी कहते - ''देखें, आप बातें करते-करते कहाँ चली जाती हैं बता सकती हैं? साफ मालूम होता है कि आप यहाँ नहीं थी। किस तरह का भाव हुआ बतलावें तो?'' माँ जरा मुस्कराकर कहती, ''जिसने चीनी नहीं खाई है उसे क्या यथार्थ रूप से समझाया जा सकता है कि चीनी कैसी मीठी है?'' माँ तब विशेष बातें न करती, भाव में विभोर रहती। किसी-किसी समय अधिक चटपटा भाव दिखाई देता- किसी-किसी समय खूब बातें करती। किन्तु हम लोगों के चुप होते ही माँ स्थिर हो जाती। सदा ही बातें कहला-कहलाकर माँ का बोलना जारी रखना पड़ता। माँ भी हँसकर कहती- ''मशीन और क्या है? तुम लोग जितना चला लो चलती है, फिर बन्द हो जाती है।'' अधिकांश समय पड़ी रहती। कभी भोजन करने बैठती तो थाली में ही लुढ़क पड़ती- एकदम स्तब्ध हो जाती। पाखाना जाने का भी स्मरण करा देना पड़ता। फिर संभवत: यह भूल जाती कि किसलिये आई हूँ, वहीं पर जमकर बैठ जाती। मैं बहुधा साथ-साथ रहती, अवस्था की ओर ध्यान रखती। इसलिये बहुत देर होने पर यदि न लौटती तो भीतर चली जाती। देखती कि जमकर बैठी हैं। धक्का देकर पुकारने पर चौंककर मुस्कराती हुई उठती और कहती- ''मैं भूल ही गई थी।'' उसके बाद मैं उठा लाती। सदा ही शरीर के लिये एक प्रकार का भय लगा रहता। दिन-पर-दिन यह अवस्था बढ़ने लगी। भोलानाथजी अकेले आदमी कितना देखें। इसीलिये मैं अधिकांश समय वहीं बिताने लगी। किसी दिन कहती- ''देख, मुझे अग्नि और जल का भेद ज्ञान ठीक-ठीक नहीं रहता है, यदि तुम लोग देखभाल रख सकोगे तो शरीर रहेगा, अन्यथा नष्ट

हो जायेगा।'' सचमुच किसी–किसी दिन जल में गिर जाती। और कभी–कभी ऐसा होता है कि बैठी हैं चट उठकर शाहबाग के भीतर–ही–भीतर चारों ओर घूम आई। बीच–बीच में ऐसा प्रतीत होता है कि मानो किसी के साथ बातें करती हों। यदि मैं साथ रहती तो सुनती कि मानो किसी के साथ बातें कर रही हैं।

किसी–किसी दिन भोग के समय बिल्कुल भी कुछ मुँह में लेना नहीं चाहती। फिर किसी–किसी दिन ऐसी अन्यमनस्क रहती कि जो कुछ भी मुँह में डाल देती, खा जाती; दूसरी ओर देखती और नहीं खाऊँगी, यह नहीं कहती। मैं सुविधा पाकर सम्भवत: दिये ही जाती, दो–तीन व्यक्तियों का आहार खा डालती, फिर भी कुछ नहीं कहती, मुँह में लेती जाती। अन्त में भयभीत होकर मैं जब खिलाना बन्द कर देती तब ध्यान जाता, चौंकने के समान निहार कर कहती– ''क्या और नहीं देगी? तुम लोगों का खाना समाप्त हो गया है क्या?'' मैंने किन्हें खिलाया, उन्होंने क्या खाया मानो बिल्कुल ही खयाल नहीं आता। एक दिन इसी अवस्था में खा रही थी, मैंने भी ध्यान न देकर इलिश मछली का सिर मुँह में दिया, मैंने सोचा चबाकर फेंक देंगी। थोड़ी देर बाद रोहू मछली का सिर भी दिया, चबाकर फेंका या नहीं इस पर मैंने भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि अनेक बार भली–भाँति चबाकर फेंकते मैंने देखा था। कुछ देर बाद मैं खिलाती जा रही थी। पिताजी सहसा देखकर कह उठे– ''काँटा चबाकर फेंका या नहीं?'' मैंने देखा तो कुछ भी फेंका नहीं था, ऐसा भयंकर काँटा खा डाला। माँ भी चौंकने के समान ताक कर बोली– ''मैं क्या जानती हूँ? तू खाने को कहती है, खा रही हूँ। जिस समय ग्रहण करती हूँ उस समय सभी कुछ ग्रहण करती हूँ बीच–बीच में त्याग करना होगा, यह तो तू कहती ही नहीं है। मैं सदा क्या त्यागना होगा, क्या ग्रहण करना होगा समझती नहीं हूँ। स्वाद का भेद कुछ पहचानती नहीं हूँ सब कुछ एक–सा प्रतीत होता है – मैं क्या करूँ?'' स्वयं ध्यान देकर मैंने काँटा फैंकवा नहीं दिया यह सोचकर मुझे अत्यन्त पश्चाताप हुआ। मेरे मन में विचार आया कि हम लोग सेवा करने के अधिकारी ही नहीं हैं। शरीर की अवस्था भी ऐसी चलती कि हम लोग सदा ही सशंक रहते कि आज न जाने शाहबाग जाकर क्या अवस्था देखते हैं। स्वाभाविक अवस्था देखने पर निश्चिन्त होते।

बाजितपुर में अरब देश के फकीरों के दर्शन

सुनने में आया कि बाजितपुर में रहते ही माँ ने एक दिन अरब देश के दो फकीरों के सूक्ष्म शरीर देखे थे। उनमें एक गुरु था और दूसरा था शिष्य। माँ ने कहा– ''इतने स्पष्ट रूप से देखा कि यदि मैं चित्र बनाना जानती तो चित्र बनाकर दिखा देती।'' एक दिन शाहबाग के निकट सिक्खों के अखाड़े में जाकर एक चित्र में एक सफेद दाढ़ी वाले शुभ्र केशधारी सौम्यमूर्ति वृद्ध का चित्र देखकर माँ ने कहा था– ''अरब देश के फकीर का भी चेहरा कई अंशों में इसी तरह का देखा था।'' उसके बाद शाहबाग आकर माँ को दो कबरें दिखाई दी। माँ ने सुना कि वे अरब देश के दो फकीरों की कबरे हैं, एक गुरु की है और दूसरी शिष्य की। शाहबाग में भी माँ ने अकेले-अकेले घूमते-घूमते फिर एक बार उन्हीं फकीरों को देखा था। माँ ने कहा– ''अरब देश कहाँ है अथवा अरब नाम का कोई देश है यह मैं कुछ नहीं जानती थी, किन्तु इस प्रकार भीतर से ही सब प्रकट हुआ था।''

पूर्व अवस्था का विवरण

एक दिन मैं दोपहर में बैठी थी – पहले जो आसन आदि हो जाते थे, वह चर्चा चली। माँ ने कहा– ''ये जो आसन आदि होते, मैं इच्छा करके कुछ भी करती न थी, यहाँ तक कि हाथ से पकड़कर भी कुछ कर न सकती थी। मैं देखती कि शरीर के मुड़ने से अपने आप ही विभिन्न प्रकार के आसन हुये जा रहे हैं। यहाँ तक कि प्रतिदिन कितने ही प्रकार के आसन हो जाते। एक दिन संभवत: एक आसन हुआ, फिर जब वही आसन होने लगा, मैंने सोचा कि देखूँ तो किस तरह होता है। मैंने हाथ से पकड़कर थोड़ा ठीक कर दिया। उससे पैर पर झटका लग गया, मैं चोट खा गई। अभी तक उस जगह पर कैसा विचित्र मालूम होता है।'' आगे माँ ने कहा– ''उस समय तो जानती न थी कि आसन क्या है? कितने प्रकार के आसन हैं, या आसनों के नाम ही क्या हैं, यह तब तक मुझे बाहर से विदित न था। किन्तु तरह-तरह के आसन हो रहे थे। उसके बाद क्या हुआ, यह भीतर से ही साफ-साफ सुन रही थी और समझ रही थी।'' शरीर में हड्डी नहीं है केवल माँस है, इसीलिये इस तरह मुड़ाया-घुमाया जा सकता है। किस तरह गोल-मटोल हो जाता था, सिर मुड़कर एकदम

पीठ के बीच में सट जाता था। हाथ-पैर इस प्रकार मुड़ जाते थे कि देखकर अवाक् होना पड़ता था। माँ कहती- "देख दरवाजे के कब्जों में यदि तेल दिया जाय तो उन्हें घुमाने-फिराने में तनिक भी जोर लगाना नहीं पड़ता और यदि कब्जों पर मोरचा लगा हो तो थोड़ा भी घुमाना हो तो कष्ट होता है और घुमाया भी नहीं जा सकता - इस शरीर के जोड़ों में वैसे ही तेल दिया जाय तो यह सब ओर अपने आप मुड़ जाता है। भोग-विलास में जीवनयापन कर यदि कभी आसन किया जाय तो महा कष्ट होता है। किसी प्रकार भी हाथ-पैर ठीक नहीं किये जाते, मालूम होता कि मानो मोरचा लग गया है।" बाल्यावस्था का वृतान्त कहते-कहते माँ ने कहा- "एक बार माँ मुझे गोद में लेकर कीर्तन सुनने गई - मेरी अवस्था उस समय लगभग तीन वर्ष की होगी। कीर्तन सुनने से इस समय जैसा भाव हो जाता है, उस समय भी ठीक वैसा ही हो जाता था। किन्तु माँ को मालूम पड़ा कि यह नींद में ऊँघ रही है, इस कारण मुझे धक्का देकर वे जगाने लगी। किन्तु मैं उस समय कुछ न कह सकी। यदि कहती भी तो समझता कौन? मालूम होता है तब समय नहीं हुआ था। इस समय वही बात तुम लोगों से कह सक रही हूँ।"

बहुत-सी बातें समझ में ही नहीं आती थी। जब से शरीर प्रकट हुआ तभी से माँ को पूर्ण ज्ञान था, किन्तु जिस समय जिसकी आवश्यकता हुई, उपयुक्त समय में ही वह धीरे-धीरे प्रकट हुआ और हो रहा है। जब विवाह के बाद माँ जेठजी के समीप रहती थी, उस बहू अवस्था की बातें माँ कहती हैं- "देख, शरीर एक बार लड़की बना, फिर बहू के रूप में परिणत हुआ, जिस समय जो करना था वह शरीर से हो गया। अब यह अवस्था आई है। इसके बाद फिर क्या हो, कौन जाने? बहू बनी, जेठजी ने कभी मुँह नहीं देखा, पर सम्पूर्ण सेवायें इस शरीर द्वारा हो गई। वे मेरे ऊपर बहुत स्नेह रखते।"

भावावस्था में सिद्धेश्वरी में गृह निर्माण का आदेश

फाल्गुन 1982 वि.- एक दिन फाल्गुन के महीने में कीर्तन के अवसर पर माँ की भावावस्था हुई। कुछ देर बाद कीर्तन समाप्त हुआ। माँ कुछ स्वस्थ हुई, उस समय भी अस्त-व्यस्त वेश में बैठी थी। इस बीच में

भोलानाथजी की ओर दृष्टि कर बोली– ''सिद्धेश्वरी के इस स्थान में जो एक कमरे की बात कही गई थी।'' बात उस समय भी स्पष्ट नहीं हुई। इतने में पिताजी ने एक भक्त के द्वारा पुछवाया, ''कमरा किस तरह का होगा।'' माँ ने कहा– ''अच्छा, कल बात होगी।'' दूसरे दिन पिताजी ने स्वयं ही कमरे की बात पूछी। माँ ने भी आविष्ट भाव से बैठकर उत्तर दिया, कितना बड़ा और कितना ऊँचा होगा, सब बतला दिया। किन्तु स्वाभाविक अवस्था न थी। वेदी के ऊपर कमरा बनाने की बात हो रही थी। माँ ने कहा– यह जो बाँसों का घेरा डाला गया है वह जिस तरह हटाना न पड़े। उसके बाहर से ही दीवार उठानी होगी। पक्का कमरा बनाने का निषेध कर दिया। बोली– ''मैं मिट्टी के कमरे में ही रहूँगी।'' वेदी की बात पूछी गई कि उसके ऊपर क्या मिट्टी डाली जायेगी? उसके उत्तर में माँ ने कहा– ''काम आरम्भ तो हो, उस समय जो होने को होगा, हो जायेगा, इस समय कुछ प्रकट नहीं हो रहा है।'' भोलानाथजी से पिताजी ने निवेदन किया। भोलानाथजी ने जाकर माँ से पूछा, ''उस कमरे को बनाने के लिये शशांक बाबू प्रस्तुत हैं, तुम्हारी अनुमति चाहते है।'' माँ ने कहा– ''तुम बनाओ, जो भी बनावें, होना चाहिये।'' पिताजी ने उक्त कमरा बनाना आरम्भ किया, उक्त वेदी के साथ उस जगह एक जमीन ली गई। माँ ने कहा– ''सात दिनों के अन्दर कमरा बनना चाहिये।'' इसके बीच में एक दिन वेदी की बात भी कही। आँखें मूँदकर बोली– ''वेदी के ऊपर मिट्टी नहीं पड़ेगी। चारों ओर से दीवार उठेगी, वह जगह गड्ढ़े की तरह ही रहेगी।'' वेदी चौकोर थी। सम्भवत: वेदी की नाप चारों ओर सवा हाथ थी। सात ही दिनों में अत्यन्त त्वरा के साथ कमरा बनाया गया। संवत् 1982 के फाल्गुन महीने में पहला कमरा बना। माँ ने सातवें दिन उस कमरे में जाकर सबसे कीर्तन करने को कहा। वही हुआ। निर्दिष्ट दिन माँ और भोलानाथजी को ले जाकर सबने उस कमरे में कीर्तन किया। रात भर कीर्तन हुआ, भोर में माँ शाहबाग लौट आई। माँ उक्त कमरे में जाकर उस गड्ढ़े के बीच में वेदी पर ही बैठती। इतनी–सी जगह में ही पैर समेटकर सो भी जाती। बहुत–सा समय इस तरह व्यतीत होता, भक्त लोग चारों ओर बैठते। इसके बाद माँ कभी–कभी तो उस कमरे में दो–एक दिन भी रह जाती थी। किसी–किसी दिन कुछ ही क्षण रहकर चली आती थी।

पूर्वोक्त कमरे में वासन्ती पूजा का अनुष्ठान

चैत्र, सं. 1982 वि.–कुछ दिनों के बाद सुनने में आया कि उस कमरे में माँ ने श्रीवासन्ती पूजा करने को कहा है। बहुत दिन पहले भोलानाथजी को वासन्ती पूजा करने की प्रबल इच्छा हुई थी। इसीलिये माँ इस समय उसकी पूर्ति कराने वाली थी। भक्तजन बड़े आनन्द से पूजा का आयोजन करने लगे। भोलानाथजी के आत्मीय बन्धु–बान्धवों को खबर दी गई। इसी बीच मेरा छोटा भाई हरिदास ढाका आया। वह कलकत्ते में बी.ए. में पढ़ता था। उसने सुना था कि ये (हम) लोग किसी एक माताजी के भक्त बन गये हैं। इस बीच माँ के आदेश से मेरा चिट्ठी–पत्री लिखना बन्द हो गया था। उसे इससे बड़ा दुःख हुआ था। उसकी जननी लगभग डेढ़ वर्ष हुआ मर गई थी। हम लोगों की यह अवस्था थी, इसलिये वह ढाका आकर महादुःख प्रकट करने लगा। हम लोगों ने कुछ नहीं कहा। क्योंकि यह समझाने का विषय नहीं है। एक दिन वासन्ती पूजा के उपलक्ष में माँ स्वयं जाकर चटगाँव से बुआजी को (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री को) बुला लाई थी। इन बुआजी का चेहरा देखने में हमारी जननी के चेहरे से बहुत कुछ मिलता–जुलता था। माँ उन्हें साथ लेकर हमारे टिकाटूली के मकान में घूमने गई। माँ का क्या उद्देश्य था, यह माँ ही जानें। हरिदास तो माँ आई हैं, यह सुनते ही दूसरे कमरे में जाकर बैठ गया। उसने सुना था हम लोग घर में अधिक नहीं रहते हैं, इन माँ के समीप ही रहते हैं। इसलिये माँ के ऊपर उसको बड़ा गुस्सा आया था। माँ, भोलानाथजी, बुआजी – सब एक कमरे में बैठे थे। पिताजी ने हरिदास को पुकारकर माँ को प्रणाम करने को कहा। वह क्या करे, पिताजी के कहने पर उसने आकर माँ को प्रणाम किया। माँ ने मुस्कराकर बुआजी से कहा– "यह देखिये खुकुनी का छोटा भाई है।" बुआजी स्वभावतः खूब हँसमुख और धर्म प्राण महिला हैं। उन्होंने हरिदास को देखते ही हाथ बढ़ाकर गोद में ले लिया, हरिदास भी बहुत कुछ अंशों में अपनी माँ का–सा चेहरा देखकर उनकी गोद के समीप निःसंकोच बैठ गया। माँ ने देखकर जरा हँस दिया, किन्तु कहा कुछ नहीं। कुछ देर बाद वे लोग शाहबाग लौट गये। मैं और पिताजी साथ गये। हरिदास भी गाड़ी के पायदान पर खड़ा–खड़ा कुछ देर तक साथ–साथ चला। फिर लौट आया। वहाँ से लौटने में हमें बहुत रात हो गई। लौटने पर हमने सुना कि

भाई मुँह से माँ के लिये कुछ न कहने पर भी उन्हें देखकर कैसा हो गया है। मकान में कई आत्मीय स्त्रियाँ थी। हम लोगों के मकान में आते ही उन्होंने कहा– ''नन्दू (हरिदास का पुकारने का नाम) अभी तक सोया नहीं है, अब तक माँ की ही सब कथायें सुनता रहा।'' ऊपर जाते ही वह बिछौने से उठकर हमारे निकट आया। उसके मुख का भाव बदल गया था। हरिदास खूब गम्भीर प्रकृति का लड़का है, किन्तु आज कैसा हो गया। कह रहा है– ''ये साधारण माँ नहीं हैं, मैं दर्शन करते ही न जाने कैसा हो गया हूँ। मन में आ रहा है अभी फिर जाऊँ। माँ की सब बातें कहो मैं सुनता हूँ।'' दूसरे दिन हम लोगों के घर में माँ के भोग की बात थी। नन्दू ने कहा– ''मैं ही माँ को लेने जाऊँगा।'' उसका ऐसा भाव देखकर हमें महा आनन्द हुआ। बैठे-बैठे माँ की कहानियाँ सुनाते–सुनाते प्राय: रात्रि खुल गई। भोर होते ही वह उठकर हाथ–मुँह धोकर माँ को लेने चला गया। उसके बाद वह माँ के निकट अधिक समय रहने लगा। माँ के आदेश से काम–काज भी कुछ करने लगा। पढ़ना–लिखना प्राय: बन्द कर दिया। माँ के पीछे–पीछे ही वह घूमता। इस घटना को लिखने का उद्देश्य यह है कि माँ की अद्‌भुत आकर्षण शक्ति पहले से ही प्रकट हो चुकी थी एवं हर एक व्यक्ति के अन्दर विशेष रूप से काम करती थी। अनाथ का वृतान्त लिखा जा चुका है। नन्दू की अवस्था भी देखी। आजकल के शिक्षित अल्पवयस्क लड़कों का भी किस प्रकार से मत–परिवर्तन हो गया। नन्दू तो गुस्से में आकर तथा हम वहाँ जाते हैं, यह सुनकर अत्यन्त दु:खी होकर आया था। किन्तु एक बार के दर्शन से ही यह अवस्था हुई।

नानीजी और नानाजी आये। नानीजी अत्यन्त शान्त स्त्री हैं, मालूम होता है क्रोध नाम की वस्तु ही उनमें नहीं है। नानाजी गाना खूब गा सकते हैं। वृद्ध को बैठाकर सब गाना सुन रहे थे। भोलानाथजी के बड़े बहनोई सीताराम कुशारीजी आये, उनकी स्त्री, पुत्र, पुत्रवधु और नन्ही पोती– सब आये। शाहबाग में खूब आनन्द चल रहा था। राजशाही के प्रोफेसर श्रीयुत् अटलबिहारी भट्टाचार्य सस्त्रीक आये। वे गत वर्ष की गर्मी की छुट्टियों में ढाका प्राणगोपाल बाबू के घर आकर माँ के प्रथम दर्शन और पूजा कर गये थे। तदनन्तर पूजा की छुट्टियों में भी आये थे। इस समय स्त्री को लेकर आये। इनके सन्तान आदि नहीं है। यह बड़े ही सरल और धार्मिक

पुरुष हैं। चेहरा देखते ही भीतर की स्वच्छता फूट पड़ती है। सुनने में आया कि इन्होंने भी एक दिन माँ के चरणों में फूल अर्पित कर डाले थे। बाल्यावस्था से ही ये माँस-मछली नहीं खाते हैं। माँ के गृहस्थ जीवन का जो लक्ष्मी-व्रत का कलश था, माँ ने उसे अटल दादा की स्त्री को दे दिया था। बहुत से और भी आत्मीय तथा भक्त-जन आये थे। पूजा का आयोजन खूब समारोह के साथ ही हो रहा था। यह जो सिद्धेश्वरी में माँ की वेदी के ऊपर कमरा बना उसके नीचे बहुत बड़ा बाँबी का टीला था। घर बनने के बाद भी कमरे के अन्दर दीमक मिट्टी का ढेर लगा देती थी। माँ के आदेशानुसार वासन्ती मूर्ति बनाते समय वह दीमकों की मिट्टी उसमें मिला दी गई। हम लोगों ने सिद्धेश्वरी के कमरे में माँ और भोलानाथजी को ले जाकर पूछा- ''मूर्ति की नाप क्या होगी?'' माँ ने भोलानाथजी से एक सींक से अपने शरीर की नाप लेने को कहा। वही हुआ। माँ के शरीर की नाप से ही वासन्ती प्रतिमा तैयार कराई गई। पूजा करने के लिये विक्रमपुर से पुरोहितजी आये। चण्डीपाठ की भी व्यवस्था की गई थी। इधर भोग का भी प्रबन्ध हो रहा था। श्रीयुत् योगेश वन्द्योपाध्यायजी भण्डार घर में रहे। मथुर वसु लोगों को काम में लगा रहे थे। प्रस्ताव हुआ कि तीन दिनों में एक दिन माँ के पूर्व नियमानुसार केवल मूँग की दाल, आलुओं के साथ पके भात और नारियल के भूँजे का भोग होगा। जितने लोग इन तीन दिनों में उपस्थित होंगे, उन्हें प्रसाद देना होगा, किन्तु एक बार जो कुछ पकाकर भोग प्रस्तुत हो जायेगा, फिर वह दूसरी बार नहीं पकाया जा सकेगा, ऐसा ही माँ का आदेश था। ऐसा नियम होने पर वस्तुओं का अन्दाज कौन करें? बुआजी ने माँ से कहा- ''तुम्हीं अपनी वस्तुओं का अन्दाज करके दे जाओ। क्योंकि एक बार से अधिक पाक नहीं हो सकेगा और जितने लोग आवेंगे, सभी को प्रसाद देना होगा।'' वही हुआ। दोनों बुआ और राजेन्द्र कुशारी की स्त्री आदि भोग बनाने वाली थी। षष्ठी के दिन से सभी सिद्धेश्वरी चले गये। वहाँ उस समय कई नये-नये घर बन गये थे, जंगल तब बहुत कुछ साफ हो गया था- उन्हीं सब मकानों में भक्तजनों को रहने के लिये स्थान दिया गया। पुरुष काली माता के मन्दिर के बरामदे में रहे। उस समय काली मन्दिर का बरामदा आदि भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था, बाद में मन्दिर का बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। माँ जिस समय सात दिन

मन्दिर की छोटी कोठरी में रही थी, उस समय कोठरी में बाहर की ओर कोई दरवाजा न था। अब दरवाजा लग जाने के कारण कमरे में प्रकाश हो गया है। षष्ठी के दिन 'अधिवास' आदि प्रारम्भिक कृत्य हो गये। सप्तमी को पूजा आरम्भ हुई। माँ अत्यन्त भोर में ही एक बार काली मन्दिर के पोखरे में स्नान कर आई और भण्डार घर की ओर जाकर क्या-क्या चीज कितनी बनेगी, यह बतला आई। तदुपरान्त प्रतिमा के सामने उस वेदी के ऊपर गड्ढ़े में बैठी रही-दिन भर, रात भर, फिर उठी नहीं। थोड़ा-सा दूध सन्ध्या के पहले या बाद में ले लिया। पुरोहितजी के पूजा करने के पहले भोलानाथजी ने माँ से पूछा- "किस बीजमन्त्र से पूजा होगी?" माँ थोड़ी देर चुप रह कर बोली- "बीज कुछ उच्चारण न करें, पूजा सब विधि के अनुसार ही करें। जहाँ बीज के उच्चारण की आवश्यकता हो वहाँ प्रत्येक बार जरा चुप रहकर पूजा किये जायें।" माँ के सब काम असाधारण होते हैं। उन्होंने जो कह दिया वही हुआ। माँ पुरोहितजी के अत्यन्त निकट ही गड्ढ़े में बैठी थी, घूँघट से मुँह ढका था। माँ के हाथों में सदा ही कोई न कोई मुद्रा रहती है, उस समय भी वह थी। पूजा हो गई, भोग भी लग गया, सबने प्रसाद ग्रहण किया। रात्रि में माँ उस गड्ढ़े में कभी बैठी रहती, कभी पैर समेटकर लेटी रहती। उक्त गड्ढे की माप यज्ञ-कुण्ड जैसी है। माँ उसमें भली-भाँति लेटी रहती। यदि शरीर में संकुचित होने की क्रिया न हो तो उक्त गड्ढे में सोये रहना कदापि सम्भव नहीं है। विशेषकर माँ का शरीर उस समय अधिक लम्बा और मोटा था। उक्त कमरे के एक ओर भोलानाथजी लेटते। मैं भी माँ के गड्ढ़े के निकट ही सोई रहती। दूसरा कोई भी उस कमरे में नहीं रहता था। दूसरे दिन फिर सभी वस्तुओं का भोग होने वाला था। मथुर बसु ने नौकरों के द्वारा रात्रि में ही सब साफ करवाकर भोग का प्रबन्ध कर दिया था। कीर्तन बीच-बीच में चल रहा था। दूसरे दिन महाअष्टमी थी। आज भी पूजा आदि हो चुकी, भोग लाने में तनिक विलम्ब हो रहा था, माँ रोते-रोते व्याकुल हो उठी। इस हँसने-रोने का मतलब हम कुछ न समझते थे। कभी रोते-रोते व्याकुल हो जाती तो कभी हँसते-हँसते समाधिस्थ हो जाती। कभी खिल-खिलाकर हँसती। भोग जल्दी-जल्दी ले गये। भोग लग गया, सब लोग प्रसाद पाने बैठे। जितने लोग आ रहे थे सभी प्रसाद पा रहे थे। इस तरह समय प्राय: समाप्त होने आया। रसोईघर की सामग्री

भी प्राय: समाप्त हो चली। बड़े-बड़े बर्तन सब खाली करके बाहर रखे जा रहे थे। चिन्ताहरण समाद्दार (पुलिस सबइन्स्पैक्टर) रसोईघर की सब वस्तुयें उठाकर रख रहे थे। केवल अपने कतिपय लोगों के लायक ही सामान शेष रह गया था। उसे रखकर उन्होंने सब बर्तन बाहर कर दिये। सन्ध्या के थोड़ी देर पहले एक दल स्त्रियों और पुरुषों का प्रतिमा के दर्शन करने के लिये आया, किन्तु प्रसाद कुछ विशेष नहीं था। ''एक बार से अधिक रसोई नहीं बन सकेगी'' इस बात का किसी को स्मरण नहीं रहा। भोलानाथजी तथा अन्य सबने घबराकर भात चढ़ा देने को कहा। उसी दम चार हाँडियों में भात चढ़ा दिया गया। माँ गड्ढे में निश्चल भाव से प्रतिमा की ओर मुख करके बैठी थी। मैंने जाकर माँ से कहा- ''माँ, प्रसाद कुछ विशेष नहीं है, बहुत लोग आये हैं।'' माँ ने बिना मुँह फेरे ही कहा- ''जो है उसी को दे देने को कहो, फिर तुम लोगों का जो होगा, देखा जायेगा, पर पुन: रसोई न बने।'' उस समय याद आया कि पुन: पाक करने का निषेध था। मेरे जाकर कहते ही चिन्ताहरण बाबू ने जो सब बर्तन बाहर रखे थे, उनमें हाथ डालकर कुछ-कुछ प्रसाद इकट्ठा किया। जो पहले से बचा था, सब मिलाकर उसी समय उक्त दल को खाने के लिये बैठाकर उक्त प्रसाद से ही खिला दिया गया। आश्चर्य की बात है कि वे भी पेट भरकर खा गये और हम सब लोगों के लिये भी बच गया। चार हाँडी भात उतारकर रख दिया गया, उसमें से रत्ती भर भी खर्च नहीं हुआ। दूसरे दिन वह बाँट दिया गया।

सप्तमी के दिन सन्ध्या के बाद ही भीषण आँधी आई। घर गिरने की नौबत आ गई। रसोई की झौपड़ी न मालूम उड़कर कहाँ चली गई। माँ आँधी के साथ-ही-साथ उठ खड़ी होकर झूम रही थी और महा आनन्द से हँस रही थी। हाथों से ताली बजा रही थी। इधर क्रमश: आँधी का वेग बढ़ने लगा। भोलानाथजी अत्यन्त घबरा उठे, वे भी मन-ही-मन जानते थे कि माँ यदि चाहें तो सब कुछ कर सकती हैं। इसी से उन्होंने माँ से कहा- ''यह फिर क्या आरम्भ हुआ, प्रतिमा को कुछ नुकसान न पहुँचे।'' अत्यन्त घबराकर उन्होंने यह बात कही थी। माँ वायु के वेग के साथ-ही-साथ मानो मचल उठी। बहुत से लोगों ने आकर पूजा के कमरे में शरण ली। कमरा भर गया। हम लोगों ने उस समय नाम-कीर्तन आरम्भ कर

दिया। माँ तब कीर्तन के समय बीच-बीच में अत्यन्त मधुर स्वर में ''हरि बोल'' कहती थी, इसलिये उन दिनों ''हरि बोल'' कहकर ही कीर्तन होता था। बाद में ज्योतिष दादा ने 'माँ'-'माँ' कीर्तन आरम्भ कराया। बाद में सुनने में आया कि पहले एक दिन रात्रि में माँ ने भी अपने आप ही ''माँ''-''माँ'' कीर्तन किया था, किन्तु ज्योतिष दादा को उसका पता न था। उन्होंने 'मातृ नाम ही हो'' यह सोचकर इस प्रकार का कीर्तन आरम्भ किया। आँधी के वेग के साथ-ही-साथ कीर्तन भी खूब जोर से चलने लगा। पिताजी केवल हाथ जोड़कर माँ की ओर निहार कर ''माँ-''माँ'' पुकारते थे। वे कीर्तन में योग नहीं देते थे, चुप बैठे रहते थे। माँ का भाव होने पर ही हाथ जोड़कर धीरे-धीरे केवल माँ-माँ पुकारते थे। उस दिन भी वैसा ही कर रहे थे। इतने में माँ उस आँधी-वृष्टि में ही बाहर चली गई। साथ-ही-साथ अन्यान्य सभी लोग बाहर निकल पड़े। माँ विविध स्थानों में घूम-घूमकर अन्त में काली माँ के मन्दिर में जा प्रविष्ट हुई। वहाँ पर कुछ देर रहकर बाहर आईं। इस बार बाहर निकलकर निकट स्थित राजमोहन बाबू के मकान में एक छोटी कोठरी में प्रविष्ट होकर भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया। उस मकान में महिलाओं के रहने के लिये स्थान का प्रबन्ध किया गया था। इस पूजा के सिलसिले में भोलानाथजी के बड़े भाई रेवती बाबू की स्त्री, उनकी लड़की लावण्य और जामाता आदि सब आये थे। इस लड़की के जन्म के समय प्रसूति-गृह में माँ ही थी। लड़की बहुत ही सीधी-सादी है। माँ के कमरे में प्रविष्ट होते ही पिताजी पूजा के कमरे की ओर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उस कमरे के पास ही कीचड़-मिट्टी में लावण्य लोट-पोट हो रही है। सारा शरीर कीचड़ से ढ़क गया था। केवल 'हरि बोल' शब्द सुनाई दे रहा था। पिताजी ने जाकर उसे उठाया - उसकी प्रसन्न मूर्ति, कोई खयाल नहीं, केवल हँसते-हँसते हरि बोल कह रही थी। सभी ने उसके समीप जाकर वह अवस्था देखी। भोलानाथजी दौड़े, जाकर माँ को बुला लाये। माँ ने कीचड़ भली-भाँति धोकर कपड़े बदलवा कर लड़की को राजमोहन बाबू के मकान में ही ले जाने को कहा, माँ भी वहाँ गई। लड़की की अद्‌भुत अवस्था थी। बाह्य ज्ञान कुछ न था, केवल नाम के रस में ही मानो डूबी हो। उसकी अवस्था

देखकर उसकी माँ और पति बहुत घबराए। उसकी माता माँ की शरण में गई, ''शीघ्र ही इस भाव को हटा दो, इस तरह की होने से गृहस्थी किस प्रकार चलेगी।'' लड़की से कह रही थी – ''अब मैं तुझे ढाका की चाची के निकट कभी नहीं आने दूँगी, यहाँ आकर ही यह अवस्था हुई है।'' बहुत क्रुद्ध हो रही थी। लड़की उक्त आविष्ट दशा में ही माँ की ओर निहार कर कह रही थी– ''देखिये तो चाचीजी, क्या मैं पागल हुई हूँ। माँ ऐसा क्यों कह रही है। क्या मधुर नाम है, आप ही ने तो सिखाया है, इस नाम के सिवा और क्या है?'' माँ जिस समय भावावस्था में गड्ढ़े में उठकर खड़ी हुई, उसी समय लड़की भी चाचीजी को क्या हुआ कहकर माँ के समीप जाकर माँ से चिपट गई। माँ को छूते ही वह कैसी हो गई। उसके अनन्तर सब लोगों के कमरे से उठकर माँ के साथ चले जाने के कारण साथ-ही-साथ लड़की भी भावावस्था में कमरे से लुढ़कते-लुढ़कते नीचे गिर गई। कीर्तन के कोलाहल में किसी ने उसे देखा नहीं। माँ लड़की को साथ लेकर एकान्त में एक कमरे में बैठी। मैं भी उसी कमरे में थी। माँ ने मुझसे कहा– ''देख, इस समय इसकी जो अवस्था है यह बहुत साधनाओं से भी नहीं मिल सकती। इसकी माँ आदि समझ नहीं रहे हैं। किन्तु मैं क्या करूँ?'' यह कहकर लड़की के शरीर के ऊपर कुछ क्रिया करने लगी, लड़की कुछ क्षणों के लिये स्वाभाविक स्थिति में आकर फिर कैसी हो रही थी। माँ ने कहा– ''देखो, जैसे अधिक अग्नि में एक ओर जल डालने पर वह दूसरे छोर पर सुलग उठती है, यह भी वैसा ही हो रहा है।'' धीरे-धीरे लड़की कुछ स्वस्थ हुई। किन्तु लगभग तीन दिनों तक वह उसी अलौकिक भाव में विभोर रही। नवमी-पूजा के दिन आलू के साथ पका भात, मूँग की दाल और नारियल के भूँजे का भोग लगा। लड़की पूजा के समीप जाकर बैठी और प्रतिमा के मुख की ओर देख-देख कर जरा हँसते-हँसते मुझसे बोली-''दीदी, देखिये, प्रतिमा का मुख ठीक चाचीजी के मुख की तरह दीख रहा है।'' माँ ने मुझसे भी कहा था– ''सदा लावण्य के साथ-साथ रहना इस प्रकार के भाव का प्रसंग आते ही उसे रोकना।'' भाभीजी तथा दामाद के कहने पर भोलानाथजी ने भी माँ से प्रार्थना की थी– ''जिस प्रकार लावण्य का यह भाव स्थाई न रहे वैसा कर दो।'' इसलिय माँ ने कहा– ''मेरा क्या? उसके आत्मीय इस भाव को

निवृत्त करने के लिये कह रहे हैं। वही हो। जो होने वाला है, होगा।'' लड़की के कथन के उत्तर में मैंने कहा- ''क्या चाचीजी के दस हाथ हैं? यह सब क्या कह रही है।'' लड़की ने कहा- 'मैं सच कह रही हूँ। दस हाथ क्या सब देख सकते हैं। मनुष्यों के साथ मिल-जुलकर रहने के लिये दस हाथ छिपाकर दो ही हाथ दिखा रही हैं।'' यह कहकर प्रतिमा की और माँ की ओर बार-बार देखने लगी। माँ की यह अवस्था होने के बाद उस लड़की ने फिर माँ को देखा भी नहीं। आज आविष्टावस्था में ही यह सब बातें कह रही थी। नवमी की पूजा विधिपूर्वक हो गई। दशमी के दिन सिद्धेश्वरी के मन्दिर के निकट एक पोखरे में प्रतिमा का विसर्जन किया गया। इस पूजा के अनन्तर भी कई दिनों तक सभी लोग सिद्धेश्वरी में रहे। पूजा के कुछ दिन बाद ही माँ के सहोदर भाई माखन का (यदुनाथ भट्टाचार्य का) उपनयन वहीं हुआ। एक बात और हुई। वह यह कि अष्टमी की पूजा के दिन बुआजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री) ने 108 जपा के फूलों से और 108 कमलों से माँ की पाद-पूजा की। माँ गड्ढे में ही बैठी रही, उन्होंने ऊपर बैठकर पूजा की। भाभी के प्रति आज उनका देवीभाव जागृत हुआ, इसलिये इस प्रकार पूजा कर सकी। दशमी के दिन रात्रि में बुआजी ने माँ को भात खिला दिया। कई दिनों के बाद सब लोग शाहबाग लौट आये।

माँ के प्रति सीतानाथ कुशारीजी का देवी-भाव

शाहबाग में एक दिन कीर्तन हो रहा था। आत्मीय बन्धु-बान्धव उस समय भी शाहबाग में ही थे। बूढ़े सीतानाथ कुशारीजी भी कीर्तन कर रहे थे। माँ का भाव हुआ था, लोटपोट हो रही थी। एकाएक माँ का हाथ वृद्ध के पैर में लग गया। यही वृद्ध भोलानाथजी का विवाह करा लाये थे। वे बड़े ही धर्मभीरु पुरुष थे तथा माँ के प्रति देवी की जैसी श्रद्धा रखते थे। कीर्तनादि के बाद कुशारीजी ने कहा- ''मैं चरणधूलि लिये बिना खाऊँगा नहीं, मेरे पैर में माँ का हाथ लग गया है।'' वे भोलानाथजी के सबसे बड़े बहनोई थे। माँ पहले तो किसी को भी चरणों में हाथ लगाने नहीं देती, फिर इन वृद्ध को तो पैर छूने के लिये माँ किसी प्रकार भी राजी नहीं हुई। किन्तु वृद्ध कहने लगे- ''मैं विवाह कराकर आपको लाया हूँ, किन्तु आज मेरे निकट आप रमणी की (अर्थात् भोलानाथजी की) स्त्री नहीं हैं। मैं जानता

हूँ आप देवी हैं, मैं चरणधूलि लिये बिना जल ग्रहण नहीं करूँगा।'' अगत्या माँ ने उन्हें चरण-धूलि दी। उस अवसर पर सभी चरण-धूलि लेकर धन्य हुये।

मरणी को आश्रय प्रदान

सब आत्मीय जन विदा हो गये। सीतानाथ कुशारीजी के एकमात्र पुत्र मंगल दादा की बहू के बच्चे बचते न थे। एक बच्चे के कुछ बड़े होने पर दूसरे बच्चे के गर्भ में आते ही पहला बच्चा मर जाता था। इस तरह दो बच्चे मर चुके थे। उस बार एक लड़की गोद में लेकर आई थी। वह लगभग दो वर्ष की होगी। बहू को फिर गर्भ था, इसलिये रो रही थी कि शायद इस बार यह लड़की भी मर जायेगी। अन्त में सब लोग मिलकर विचार-विमर्श कर उस बच्ची को माँ के चरणों में चढ़ा गये। लड़की का नाम मरणी है। तब से मरणी माँ के समीप ही रहती है। मटरी बुआ ही उसका लालन-पालन करने लगी। भोलानाथजी उक्त बच्ची को बहुत प्यार करते हैं। माँ के कहीं भी बाहर जाने पर वह कभी साथ-साथ जाती है और कभी मटरी बुआ के पास ही रहती है। सदा हरि-संकीर्तन सुनते-सुनते लड़की भी सुन्दर नाम-कीर्तन करती। माँ ने मरणी को फिर अपने पिताजी के घर जाने नहीं दिया। संयोगवश इसके बाद मरणी की माँ का जो बच्चा हुआ वह मर गया। उसके बाद दो बच्चे पैदा हुये, जो जीवित हैं।

सब लोग चले गये। शाहबाग में दिन पर दिन आनन्द की धारा बहने लगी और माँ की विविध प्रकार की अवस्थायें प्रकट होने लगी। माँ के दर्शन करने के लिये अनेक लोग आ रहे थे। उस समय अन्यान्य घरों में जाकर भी कीर्तन होता था। माँ जाती थी, भाव खूब होता था। सभी लोग दर्शन करते थे। ज्योतिष दादा एक बार दर्शन कर फिर लगभग एक वर्ष तक नहीं आये। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। बाद में एक दिन वह पुस्तक पढ़कर माँ को सुनाने के लिये उन्होंने एक आदमी भेजा। माँ ने कहा-''जिसने पुस्तक लिखी है उसी को भेज दो।'' इस आह्वान पर ज्योतिष दादा फिर आये। इस बार माँ ने उनके साथ खूब बातचीत की। उन्होंने देखा कि माँ का वधुत्व हटकर मातृत्व विकसित हो रहा है। इसके पश्चात् वे प्रायः ही आते। भीड़ में विशेष रहते नहीं, किन्तु सदा ही माँ की खबर लेते रहते। माँ के चिन्तन में वे इतने मग्न रहते कि कभी-कभी अपने

मकान में बैठकर भी स्पष्ट रूप से माँ ने कौनसा कपड़ा पहना है, यह तक देख लेते। वे प्राय: एकान्त में आकर माँ के साथ बहुत-सा समय बिता जाते। वे माँ के एक विशेष कृपाभाजन व्यक्ति थे। माँ का अभिप्राय: भी वे विशेष रूप से ग्रहण कर सकते थे। निरंजन बाबू ज्योतिष दादा के बड़े मित्र थे। वे दोनों व्यक्ति चटगाँव निवासी थे। निरंजन बाबू के मकान में माँ को ले जाकर कीर्तन आदि हुआ था। टिकाटूली के मकान में अनेकों बार कीर्तन होता था। माँ जाती। कभी-कभी रात में वहीं रहकर भोर में चली आती। माँ रात को विशेष सोती न थी, हम लोगों की भी माँ के समीप रहने पर वही अवस्था होती। सारी रात माँ के साथ जागकर ही बिता डालते। बहुत-सी रात्रियाँ ऐसे ही बीती। माँ के भोजन के विविध प्रकार के नियम होने लगे, कुछ दिन बाद माँ ने कहा- ''मुझे जो खिला देगा, उसे रात्रि को फल खाकर रहना होगा।'' वैसा ही हुआ। तभी से मैं एक वक्त भोजन करती हूँ।

भोलानाथजी की अस्वस्थता

चिन्ताहरण बाबू की स्त्री ने न जाने क्या स्वप्न देखा, इसलिये वे दीक्षा लेने वाली थी, इसलिये माँ और भोलनाथजी को ले गई। तब भोलानाथजी किसी को भी दीक्षा देते न थे, माँ तो दीक्षा देती ही नहीं हैं। किन्तु उनकी दीक्षा किस प्रकार सम्पन्न हुई, यह हमें ज्ञात नहीं है, किसी की बात दूसरे किसी के निकट प्रकट नहीं की जाती। उसी मकान से भोलनाथजी भीषण पेचिश की बीमारी ले आये। माँ ही मल साफ तथा अन्यान्य सेवा आदि करती थी। दूसरे दिन रात को माँ ने जरा खीरा खिला दिया। उसके बाद वे धीरे-धीरे चंगे होने लगे।

माँ के जन्म और बाल्य-जीवन की बात

माँ प्रतिदिन बैठकर पहले की बातें कहती। एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ नानीजी से कह रही थी- ''माँ, मेरे जन्म के तेरहवें दिन अमुक मुझे देखने आये थे न?'' संभवत: नानीजी को उस बात का स्मरण नहीं रहा, माँ की बात सुनने के अनन्तर उसका स्मरण हो आया। इस प्रकार की अनेक बातों से प्रतीत होता है कि माँ को सदा ही पूर्ण ज्ञान था। बचपन से ही समाधि लग जाती थी। बहुत दूर कीर्तन होता रहता, माँ

घर में सोई रहती, कहती है– ''इस शरीर की एक अस्वाभाविक अवस्था हो जाती, किन्तु कमरे में अँधेरा होने के कारण माता–पिता अथवा अन्य कोई देख न पाते। और मेरे भी भीतर ऐसा एक भाव रहता कि कोई देखे नहीं। इसलिये मालूम होता है गुप्त ही रहती।'' माँ के शरीर के प्रादुर्भाव की किंवदन्ती मैंने सुनी। नानाजी की माँ कसवा के विख्यात काली मन्दिर में विपिन के एक पुत्र हो ऐसी प्रार्थना करने के लिये जाकर देवी के निकट प्रार्थना कर बैठी कि विपिन के एक लड़की हो। बुढ़िया की उस प्रार्थना के कुछ दिन बाद ही माँ के शरीर का प्रादुर्भाव हुआ। बचपन से ही माँ खूब हँसमुख थी। उनकी जो आकर्षिणी शक्ति आज इतनी प्रचूर मात्रा में उद्‌भुत हुई है, उस शक्ति के प्रभाव से सब लोग माँ के प्रति स्नेह करते थे। यद्यपि माँ ने गरीब के ही घर जन्म लिया था तथापि माता–पिता के प्रेम से उन्हें विशेष कष्ट प्रतीत नहीं हुआ। माँ के जन्म के बहुत बाद और भी दो बहिनों तथा एक भाई ने जन्म लिया था। उनमें से भी बड़ी बहन लगभग सत्रह वर्ष की अवस्था में मर गई। उसकी बात भी माँ से मैंने सुनी है। वह बहन मरने के समय तक माँ को दीदी–दीदी पुकार कर मरी। उसके जीवन की घटना भी जो मैंने सुनी है उसमें एक विशेषता थी।

बुआजी का खीर का भोग

मैंने और एक घटना सुनी। हम लोगों के माँ के समीप आने के कुछ पूर्व (बड़े दिनों में) बुआजी (कालीप्रसन्न बाबू की स्त्री) शाहबाग आई थी। इन्होंने आकर देखा कि माँ कुछ खाती नहीं हैं। उन्हें एक दिन खीर के भोग से माँ को खिलाने की इच्छा हुई। उन्होंने भोलानाथजी से प्रार्थना की, क्योंकि भोलानाथजी के कोई बात कहने पर माँ उसका यथाशक्ति पालन करती हैं। भोलनाथजी जानते थे कि माँ जो भी करती हैं वह कल्याण के लिये ही करती हैं। माँ इच्छा करके कुछ नहीं करती हैं, यह उन्हें ज्ञात ही था, इसलिये वे भी माँ के इस नियम के विरुद्ध विशेष अनुरोध नहीं करते थे। आज उन्होंने बुआजी के कहने पर माँ से खाने के लिये अनुरोध किया। माँ ने कहा– ''उस समय जो हो जाये।'' आधे मन दूध की खीर बनी थी, और भी दो–चार व्यक्तियों को निमन्त्रण दिया गया था। उन्होंने भी कुछ–कुछ खाया था। भोग लग जाने पर माँ ने बुआजी से कहा– ''क्या, खीर खिलायेंगी नहीं।'' बुआजी ने एक बर्तन में रखकर खीर दी, माँ ने उसे

खा लिया, और भी खाने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने और खीर लाकर दी। इस प्रकार धीरे-धीरे सब खीर खाकर भी माँ ने और खाने की इच्छा व्यक्त की। शाहबाग शहर से कुछ दूर है, इस कारण आदमी भेजकर पुनः दूध मँगाने में कुछ देरी होने लगी। दूध आते ही खीर पकाने को चढ़ा दी गई। किन्तु विलम्ब देखकर माँ की रुलाई भी एक देखने योग्य ही थी। चावल पके नहीं, माँ के परोसे पर सब खीर उडेल दी, माँ वैसी ही खीर खा गई। माँ ने इस तरह लगभग आधे मन दूध की खीर खा डाली, देखकर बुआजी को भय लगा। वे बड़ी भक्तिमति हैं, उन्होंने सोचा यह मनुष्यों का स्वाभाविक भोजन नहीं है। उस समय उन्होंने हाँडी काछकर न जाने कौनसा मन्त्र पढ़कर थोड़ी खीर माँ के सिर पर डाल दी। फिर माँ तनिक भी खीर न खा सकी, सारा शरीर न जाने कैसा हो गया। बुआजी ने माँ के सिर पर जो खीर डाली थी, उससे उनके सिर के कपड़े में उस जगह जले का -सा दाग लग गया था, उसे हमने देखा है।

प्रणाम बन्द होना

किसी मन्दिर में अथवा अन्य किसी जगह कभी मैंने माँ को प्रणाम करते नहीं देखा है। उनके मुँह से मैंने सुना है कि गत सोलह वर्षों से उनका प्रणाम करना बन्द है। इस सिलसिले में उन्होंने कहा कि गत् संवत् 1978 के फाल्गुन महीने में उनकी छोटी बहन सुरबाला और हेमांगिनी के विवाह की शुभ रात्रि को माताजी (नानीजी) और पिताजी (नानाजी) लड़कियों और जमाइयों को लेकर ढाकेश्वरी के मन्दिर में पूजा करने गए। माँ भी उनके साथ थी। माँ मन्दिर में जाकर ढाकेश्वरी की मूर्ति की ओर दृष्टि कर पद्मासन में स्थिरता के साथ बैठ गई। उस अवस्था में पहले एक रोदन का भाव और तदनन्तर हँसी का भाव प्रकट हुआ। तदुपरान्त साष्टांग, पंचांग आदि दो-तीन प्रकार के प्रणाम अपने आप हो गये। अन्तिम प्रणाम हो जाने के अनन्तर कुछ क्षण तक माँ अपने शरीर को उठा न सकी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे उठकर घर लौट आई। मार्ग में सबसे कह दिया- ''ये सब बातें किसी से भी न कहना।'' भोलानाथजी भी साथ थे, माँ के ममेरे भाई निशि बाबू भी साथ थे। वे पण्डित हैं, माँ को इस प्रकार प्रणाम करते देखकर विस्मित होकर उन्होंने पूछा- ''तूने यह सब किससे सीखा है? माँ ने कहा- ''किसी से भी नहीं सीखा, अपने आप ही हो जाता है।'' माँ

का बाजितपुर में उस दिन से प्रणाम बन्द हो गया। पहले-पहले तो माँ बिल्कुल ही प्रणाम नहीं कर सकती थी। बाद में मैंने देखा मौका पड़ने पर कभी-कभी माँ ने भोलानाथजी, नानाजी तथा नानीजी को प्रणाम किया है। वह भी कभी हो गया। भोलानाथजी भी माँ को प्रणाम करते थे, उन लोगों का क्या भाव है, यह वे ही जानें। इस प्रणाम के प्रसंग में माँ ने और भी एक घटना कही। भोलनाथजी के बाजितपुर रहते समय एक बार वे, नानाजी, नानीजी और माँ सब लोग इकट्ठे होकर कसवा के काली मन्दिर में गये। वहाँ पर अन्यान्य सबके समान माँ ने भी प्रणाम और प्रदक्षिणा आदि किये, किन्तु उसके बाद ही माँ के मुख और नेत्रों से एक असाधारण भाव का उदय हुआ। उस घटना के वर्णन के प्रसंग मे माँ ने कहा- ''कैसा होता था जानती है? जिस देवता के निकट प्रणाम करने जाती उसके साथ मानो अभेद हो जाता और उसके साथ-साथ शरीर में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता।'' और भी माँ ने कहा- ''बचपन में मुझे ठाकुरजी के कमरे का काम करने को देते थे। माँ कहती, सावधान जिस प्रकार ठाकुरजी छुए न जायँ। किन्तु क्या आश्चर्य है कि किसी न किसी प्रकार ठाकुरजी अवश्य छू जाते। मैं कोई काम अपनी इच्छा से करती नहीं हूँ, विशेषकर जब कि माँ का निषेध था किन्तु क्या करूँ? वैसा हो जाता। दूसरे ही क्षण में विचार उठता - मैं तो कुछ इच्छा करके करती नहीं हूँ। आश्चर्य का और भी विषय यह है कि बाहर आकर इन सब बातों को किसी से कहने का स्मरण ही नहीं रहता।'' मैंने कहा- ''तुम क्यों स्मरण रखो, जो आवश्यक नहीं है, वह तो तुम्हारे शरीर से होता ही नहीं। यदि कहती तो संभव है ठाकुरजी को पुनः स्नान कराना पड़ता, किन्तु उसकी तो जरूरत नहीं थी।''

भोजन के विविध प्रकार के नियम

दिन पर दिन ही खाने के नियमों में परिवर्तन होता था। संभवतः कुछ दिनों तक स्वाभाविक रूप से खाया, फिर छः महीने तक संभवतः मुँह में अन्न रखा ही नहीं, हम लोगों से कह दिया- 'मेरे मुँह में कुछ भी अन्न न रखना, यदि तुम लोगों ने रखा तो तुम्हारी ही हानि होगी।' छः महीने के बाद भोलानाथजी खाने बैठे हैं, वहाँ बैठ गई, मटरी बुआ से बोली- ''सब भात ले आवें तो।'' वे जितना पकाया था सभी भात ले आई। उस दिन तरकारी कुछ विशेष न थी। बोली-''गेंदे की पत्तियाँ तोड़ लाओ।'' वे

ही लाई गई, उनके साथ ही सात-आठ व्यक्तियों के भोजन योग्य भात खा गई। उस दिन जो कुछ दिया गया वही खा गई। तदनन्तर कुछ दिन तक फिर नियम चला; बोली- ''बगीचे के पेड़ों के जो फल जमीन पर पड़े रहे, उन्हीं को खाकर रहूँगी और कुछ न देना।'' बगीचे में विशेष कुछ फल थे नहीं, आम के पेड़ और लीची के पेड़ ही अधिक थे। ये आम के दिन न थे। सारांश यह कि कुछ भी न खाती। फिर कुछ दिनों से मुझसे कह रही थी- ''एक निश्वास में जो कुछ खिला सको, सारे दिन, सारी रात वही मेरा भोजन है।'' फिर जल तक नहीं लेती। इस कारण एक निश्वास में जल तक पिलाना पड़ता। माँ की दृष्टि से मालूम होता है इससे भी मनोनुकूल नहीं हुआ। अन्त में बोली- ''दूब जैसे दो-तीन अंगुलियों से तोड़ी जाती है वैसे ही एक निश्वास में दो-तीन अँगुलियों से जो उठे वही खिलाओ।'' सारांश यह कि न खाना ही उद्देश्य था। इसी तरह दिन बीतते। भात तो खाती ही नहीं, किन्तु दूध, फल आदि किसी का प्रबन्ध भी करने न देती। कुछ प्रबन्ध यदि किया भी जाता तो उसे तोड़ देती। एक बार माँ कुछ नहीं खाती हैं यह जानकर ज्योतिष दादा ने मटरी बुआ से कह दिया कि ''मैं मैदा और घी भेज दूँगा, रोज दो-चार पूरियाँ बनाकर माँ को खिला दें।'' मैदा और घी वे सम्भालकर रखती। माँ से छिपाकर ज्योतिष दादा के आदमी मैदा और घी दे जाते। माँ यदि देख लेती तो एक ही दिन में सबको बाँटकर समाप्त कर देती। कुछ दिनों तक माँ ने यथोचित रूप से उक्त सेवा ग्रहण की। अन्त में एक दिन माँ ने कहा- ''जितना मैदा और घी घर में है, पूरी बनाकर ले आओ।'' इधर ज्योतिष दादा को भी बुला भेजा। उनके आने पर उनसे बोली- ''देखूँ कितनी पूरी खिला सकते हो।'' यह कहकर जितनी पूरियाँ पकाई थी (60-70) सब माँ ने खा डाली। हँसकर बोली- ''यदि और होती तो और भी खाती। किन्तु यदि मैं इस तरह खाऊँ तो कितने दिन खिला सकोगे?'' यह कहकर हँसने लगी और बोली- ''यदि मैं रोज ठीक तरह से खाना शुरू करूँ तो तुम लोगों में किसी के भी रुपयों से पूरा नहीं पड़ेगा। इसलिये कहती हूँ आज से अब घी, मैदा न भेजना। इस प्रकार के प्रबन्ध से मेरा भोजन नहीं चलेगा।'' फिर उस दिन से बहुत दिनों तक पूरियाँ नहीं खाई। ऐसा मैंने बहुत बार देखा है, कुछ भी नहीं खा रही हैं, एक आदमी आया उसने आग्रह कर

खाने को बैठा दिया। माँ कुछ गम्भीर बनकर खाने बैठी। वैसा ही अन्यमनस्क भाव है। मैं खिला रही हूँ, किन्तु उससे पूर्ति नहीं हो रही है। कह रही हैं –''देरी हो जाती है। किसी और एक को बुला ले।'' दो व्यक्ति खिला रहे हैं, तिस पर भी मालूम होता पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं, खाते ही जा रही हैं, स्थिर भाव से बैठकर खा रही हैं। उक्त अवस्था को देखकर जिसने खाने को कहा था वह भी भयभीत हो जाता, अन्त में खिलाना बन्द कर देना पड़ता। तुरन्त माँ कहती– ''क्या अब दोगे नहीं? एक बार कहते हो खाओ और खाना आरम्भ करने पर दोगे नहीं। मैं क्या करूँ कहो तो?'' भोलानाथजी ने भी बहुत बार आग्रह के साथ खिलाकर यह अवस्था देख भयभीत हो खिलाना बन्द कर दिया। इसीलिये वे इस विषय में माँ से विशेष आग्रह नहीं करते थे। बहुत बार फिर ऐसा भी दृष्टिगोचर हुआ है, माँ की अपनी इच्छा से असंभव ढंग से आहार करने पर कुछ भी न होता। किन्तु यदि दूसरा कोई आग्रह करके खिलाता तो खाती सही, किन्तु थोड़े समय के भीतर ऐसी अस्वस्थ हो उठती कि खिलाने वाला अप्रतिभ हो जाता, फिर कभी अनुरोध करने का साहस न करता। फिर कुछ दिनों के बाद अस्वस्थता अपने आप चली जाती। किन्तु सबको आश्चर्य हो जाता। कई दिन फिर ऐसा देखा है – कह दिया, रोज ही मेरे मुँह में बनते ही दो–एक भात देना। किन्तु संभवत: संयोगवश उस दिन खाना ही नहीं हुआ, रात में सिद्धेश्वरी मन्दिर गई हैं, वहीं खायेंगी, वहाँ खाने का कुछ भी प्रबन्ध नहीं है। कोई प्रबन्ध करने के लिये व्यग्र भी न होता। क्योंकि माँ की गतिविधि का कोई ठीक परिचय नहीं था – इसलिये बन्दोबस्त करना सम्भव न होता। रात को सिद्धेश्वरी में कहती– ''आज तो भात मुँह में दिया नहीं गया।'' उसी समय किसी से दो–एक चावल लाकर सन की सींक जलाकर उसमें पकाकर दो चावल मुँह में डालने को कहती। इस तरह एक दिन मैंने सिद्धेश्वरी में किया है। इस प्रकार अद्भुत ढंग से भी नियम का पालन करती। माँ प्रतिदिन खाने बैठें, ऐसा भी कोई नियम न था– सोई हैं, प्रसाद लिये बिना कोई खायेगा नहीं, इसलिये मैं थोड़ा–सा मुँह में छुआ लाती। बस वही आहार हुआ। पड़े रहने का भाव ही खूब अधिक रहता। बोल भी बहुधा बन्द हो जाता।

बोलने का नियम

कभी–कभी सहसा मौन धारण कर लेती। उस समय हम लोगों को महा दु:ख होता। पहले–पहले मौनी होकर भोलानाथजी के साथ दो-एक बातें कर लेती, अन्त में फिर वह भी न करती। इशारा–इंगित कुछ भी नहीं करती। नेत्र और मुख से एकदमम कोई भाव ही प्रकट न होता। पहले के तीन वर्ष के मौन की बात कहती, ''केवल भोलानाथजी के साथ बहुत धीरे–धीरे दो–एक कामकाज की बातें हो जाती। उसके सिवा और कुछ भी बोल न निकलता।'' उस अवस्था में भोलानाथजी के सबसे छोटे भाई यामिनी बाबू एक बार बाजितपुर गये। उस समय उनकी अवस्था विशेष अधिक न थी। जाकर उन्होंने माँ को मौनी देखा, उन्हें बहुत अधिक कष्ट हुआ। माता भी जीवित न थी, भाभी के निकट गये थे, किन्तु वे भी बोलेंगी नहीं। अत्यन्त दु:ख के साथ एक दिन उन्होंने कहा– ''भाभीजी, क्या मुझसे भी नहीं बोलेंगी?'' माँ इस प्रसंग में कहती हैं– ''मैं तो इच्छा से कुछ भी नहीं करती हूँ। उनके यह कहने के कुछ देर बाद अपनी अंगुली से ही जहाँ पर बैठी थी उसके चारों ओर जमीन पर घेरा बन गया। उसके पश्चात् भीतर से मानो धक्का देकर न जाने क्या निकलने लगा। थोड़ी देर बाद अब जैसे स्तोत्र, मन्त्र आदि निकलते हैं वैसे ही निकले, तदनन्तर उनके साथ बातें कर सकी। ऐसा होने का कोई नियत समय, असमय न था। सम्भवत: पोखरे पर काम करने गई हूँ वहीं पर इस तरह का घेरा पड़ जाता और बातचीत कर सकती, फिर अपने आप बोलना बन्द हो जाता और घेरा मिटाकर उठ पड़ती। इस प्रकार की जो कितनी ही अवस्थायें बीती हैं, उनकी इयत्ता नहीं है।'' मैं देखती जो आकर चाहे जिस प्रकार की बातें करते, माँ तुरन्त ही उनका आशय समझ जाती। किसी उच्च अवस्था की साधना की बातों की चर्चा छिड़ते ही माँ उन्हें साधारण बोलचाल की भाषा में सब समझा सकती। मानो कोई भी भाव उनका अज्ञात नहीं है। जब मैंने कहा– ''माँ बाजितपुर के एक कमरे में बैठकर अकेले-अकेले ऐसी अवस्था होने से क्या लाभ हुआ? कोई तो देख पाया नहीं– क्या लाभ हुआ?'' माँ कहती– ''तुम लोगों को उसकी जरूरत थी। उस समय गुप्त रूप से होने की ही जरूरत थी, इसलिये उस तरह ही हो गई। जिस साधना की क्रियायें एकान्त में होने की जररूत है वह तो एकान्त में ही

होगी। और देखो, तुम लोग जिस समय जिसकी जिज्ञासा करते हो, तत्क्षण ही कह दिया जाता है कि इस शरीर में ही ऐसी क्रियायें हुई हैं और इस तरह होती हैं। इन बातों से तुम लोगों को कितनी उत्तम रीति से समझने में सुविधा होती है।'' माँ के इस कथन से हम लोग भी सोचते कि ठीक ही तो है। ये सब माँ के शरीर में हो गई हैं, यह सुनने से हम लोगों को कितने ही अंशों में अत्यन्त स्पष्ट-सा प्रतीत होती है। चैतन्य देव की लीला में मैंने पढ़ा था, ''उन्होंने स्वयं आचरण में लाकर धर्म दूसरों को सिखाया।'' माँ कहती है- ''देख इसलिये सब कुछ आवश्यक है।'' कितनी विपरीत घटनाओं के बीच माँ को गुजरते मैंने देखा हैं, किन्तु कभी व्यग्र होते अथवा असन्तुष्ट होते नहीं देखा। सभी अवस्थाओं में धीर, स्थिर, शान्त भाव, सभी में आनन्द। जो लोग माँ के प्रति वैसी विशेष भक्ति-श्रद्धा नहीं रखते हैं, उन लोगों ने भी यह स्वीकार किया है कि हम कभी माँ को चंचल अथवा आनन्द शून्य अवस्था में नहीं देखते हैं।

* * *

तीसरा अध्याय

माँ की वैद्यनाथ धाम यात्रा–1983

इस बीच प्राणगोपाल बाबू ने माँ के पास देवधर जाने के लिए अनुरोध करते हुये पत्र लिखा। वे पेन्शन लेकर देवधर गुरु के समीप रहते थे। उनका परिवार भी वहीं भाड़े का मकान लेकर रहता था। प्राणगोपाल बाबू गुरु के आश्रम में ही रहते थे। उनके गुरु **स्वामी बालानन्दजी** एक महापुरुष हैं। उनके बार–बार अनुरोध करने पर माँ हम लोगों को साथ लेकर संवत् 1983 के वैशाख या जेठ में देवधर को रवाना हुई। साथ में भोलानाथजी, पिताजी, अटल दादा, नन्दू, अटल दादा की स्त्री और मैं गई। माँ पहले कभी कलकत्ता गई न थी, उसी समय पहले–पहल गई। हम लोग जाकर प्रमथ बाबू के मकान में ठहरे। वे उस समय सपरिवार कलकत्ता थे। दो–एक दिन वहाँ रहकर हम लोग देवधर को रवाना हो गये। देवधर जाकर प्राणगोपाल बाबू के डेरे में ठहरे। छोटे–छोटे बच्चों के साथ प्राणगोपाल बाबू की स्त्री मकान में रहती हैं। क्या सुन्दर परिवार है। अपराह्न के बाद प्राणगोपाल बाबू माँ को गुरु के आश्रम में ले गये। हम लोग भी साथ गये। शिष्यों की जबानी हमने सुना कि स्वामीजी की अवस्था एक सौ वर्ष की है। सिद्ध पुरुष के रूप में ही वे विख्यात हैं। बहुत बड़ा आश्रम है। दो मन्दिर हैं और कई ब्रह्मचारी हैं। स्वामीजी थोड़ी दूरी पर एक मन्दिर में रहते हैं। मन्दिर का नाम ध्यान–मन्दिर है। प्राणगोपाल बाबू माँ को ध्यान–मन्दिर में ले गए। वहाँ स्वामीजी के साथ माँ का साक्षात्कार हुअ। माँ को देखकर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुये। उन्होंने बातचीत के सिलसिले में माँ से कहा– ''माँ, एक बार तुमने सूक्ष्म रूप से दर्शन दिया था, आज स्थूल रूप से दर्शन देने आई हो।'' प्रतिदिन ही माँ प्रातःकाल और शाम को आश्रम में जाती थी। हम भी साथ में जाते थे। एक दिन स्वामीजी के साथ माँ की बातें हुई-माँ कहती थी, ''एक के सिवा कुछ भी नहीं है।'' स्वामीजी कहते थे, दो हैं, वे और उनकी माया।'' माँ किसी प्रकार भी द्वैत स्वीकार नहीं कर रही थी। बहुत देर तक कथोपकथन होने के बाद स्वामीजी ने माँ का ही कथन मा-

लिया। माँ हँस उठी। स्वामीजी ने माँ को अपने गोद के निकट बैठाकर पूरियाँ खिला दी। दूसरे दिन आश्रम में माँ को भोजन कराया। माँ को एक रुद्राक्ष की माला और एक लाल वस्त्र दिया। वहाँ कीर्तन में माँ की खूब भावावस्था हुई। पैर के अँगूठे के बल खड़ी होकर बहुत देर तक माँ भावावस्था में नाची थी। स्वामीजी ने माँ की अवस्था मुग्ध होकर देखी थी। माँ ने उस भावावस्था में ही स्वामीजी के सिर पर हाथ रखा था। तदनन्तर उसी अवस्था में स्वामीजी का हाथ पकड़कर माँ ध्यान-मन्दिर में गई। वहाँ जाकर एकान्त में कुछ बातें हुई। माँ के कथनानुसार कुछ दिनों के बाद स्वामीजी अपनी साधना की भूमि (तपोवन) में जाकर कुछ दिन रहे थे। देवधर में भी उक्त भावावस्था की बात पर माँ ने कहा- ''मैं मानो कहीं रहकर देखती हूँ कि शरीर की इस तरह क्रीड़ा हो रही है। हम लोग लगभग सात दिन वहाँ रहे थे। वहाँ राजशाही कॉलेज के प्रोफेसर गिरिजाशंकर भट्टाचार्यजी ने भी जाकर माँ के दर्शन किये और माँ के साथ-ही-साथ कलकत्ता आये। एक दिन माँ से न मालूम कौनसी एक बात कहकर गिरिजा बाबू खूब रोये, वे बच्चों की तरह सिर नीचा कर रो रहे थे। माँ उठकर चली आई। इधर-उधर टहलने लगी, ये भद्र पुरुष जो रो रहे थे उस ओर नजर तक न डाली। ''हम लोगों ने कहा, तुमसे क्या कहें? ये भद्रपुरुष इस प्रकार रो रहे हैं और तुम्हारा उस ओर दृष्टिपात भी नहीं है-उस ओर जा ही नहीं रही हो।'' माँ ने हँसते हुये कहा-''क्या करूँ, मैं तो अपनी इच्छा से कुछ कर नहीं सकती हूँ। कभी सौ बार रोने पर भी उधर खयाल ही नहीं जाता और कभी कुछ न कहने पर भी उसके समीप बैठ जाती हूँ। शरीर से जैसा हो जाय, विचार करके तो कुछ कर नहीं सकती।'' यही भाव और भी बहुत बार मैंने देखा है। देवधर में एक दिन प्राणगोपाल बाबू के डेरे में माँ की ऐसी अवस्था हुई कि हम लोगों ने जीवन की आशा छोड़ दी थी। उस दिन कीर्तन में नहीं, यों ही बैठे-बैठे सारा शरीर काला हो गया था। पिताजी को नाड़ी की गति देखकर भय हो रहा था। हम लोग केवल नाम-कीर्तन करते, भोलानाथजी भी खूब नाम-कीर्तन करते, वही हमारे लिये एकमात्र सहारा था। माँ ने भी बहुत बार कहा है-''इस अवस्था में यदि शरीर में लौटने का खयाल न रहे तो सब खेल समाप्त हो सकता है, किन्तु शायद लौटना रहा, इसलिये तुम लोगों की यह व्याकुलता फिर

लौटा लाई है।'' कितने दिन माँ की एक अवस्था हुई है-रात्रि में सोई हैं, सहसा अत्यन्त अस्पष्ट भाषा में दरवाजा, खिड़कियाँ बन्द कर देने को कह रही हैं। मैं अत्यन्त कठिनाई से उक्त भाषा समझकर दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर देती। और सम्भवतः पहले से ही कह रखती। ''ऐसी अवस्था यदि हो तो मेरे शरीर के चाहे किसी भी स्थान पर हाथ रखना और मन ही मन नाम-जप करना।'' मैं वही करती। पैर पर हाथ रखकर बैठे-बैठे नाम-जप करती। अनेक रात इस तरह बिताई हैं। उक्त अवस्था की बात भी माँ ने कही है, ''तुम लोग जो पकड़कर नाम-जप करते हो उसी से शरीर में लौटने का खयाल जागता है।'' यह भी कहती-''सम्भवतः लौट आने की आवश्यकता है, इसी से तुम लोगों से यह सब कह पा रही हूँ।'' उक्त अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये, यह सब भोलानाथजी से भी बहुधा कह रखती। वे ही सब चेष्टायें करते, किन्तु कभी ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाती कि किसी तरह भी कुछ न होता। हम लोग एकमात्र सहारा नाम-जप किये जाते। कुछ दिन शरीर की अवस्था ऐसी हुई कि सम्भवतः कुछ भोजन कर, विश्राम कर रही हैं, श्वाँस की गति भीषण तीव्र हो उठी, शरीर भी साथ-साथ कैसा विचित्र हो जाने लगा। इस प्रकार की जितनी भी अवस्थायें हुई हैं, उनमें कभी भी माँ बेहोश नहीं हुई-यह बात माँ ने अपने मुँह से कही है तथा हम लोगों ने भी इसका अनुभव किया हैं। श्वास की उस प्रकार की अस्वाभाविक गति से शरीर पस्त पड़ जाता, मैं शरीर मल देती, किन्तु मेरे खूब जोर से मल देने पर भी माँ को कुछ भी मालूम न पड़ता। अन्त में भोलानाथजी स्वयं तथा अन्यान्य युवक भक्त पूरी शक्ति से हाथ-पैर मल देते। तब जाकर माँ कहती बहुत थोड़ा प्रतीत हुआ और जो मलते वे पसीने से सराबोर हो जाते, कई महीनों तक ऐसी अवस्था रही है। अन्त में जब रमना के नूतन आश्रम से उत्सव के अनन्तर पिताजी को साथ लेकर अनेक स्थानों में घूमने बाहर निकली, बाहर जाने के कुछ दिन पहले मैदान में बैठकर उन्होंने कहा था-''कितने दिन पहले से ही इस तरह बाहर जाने के लिये भोलानाथजी से अनुमति माँग रही थी, किन्तु वे राजी नहीं हुये, इसीलिये बाहर नहीं गई। किन्तु मेरे शरीर में जो ऐसा हो जाता है यह उसी के कारण होता है।'' बहुत बार यह देखा है कि किसी विषय में यदि भोलानाथजी रुकावट डालते तो उसे करती तो

नहीं पर शरीर ऐसा हो जाता कि सब लोगों को भय हो जाता। इस कारण भोलानाथजी साधारणत: किसी भी विषय में विशेष बाधा उपस्थित न करते। भोलानाथजी को किसी कारण यदि अति क्रोध होता तो भी शरीर ऐसा हो जाता। मृत्यु के सब लक्षण प्रकट हो जाते। इस प्रकार धीरे-धीरे भोलानाथजी का क्रोध बहुत घट गया था। पहले से ही सभी अवस्थायें तो वे देख ही रहे थे - इस शरीर की रक्षा के लिये उन्हें बहुत कुछ सहन करना पड़ा, इसमें सन्देह नहीं है।

लौटते समय कलकत्ते में

हम लोग देवधर से लौटकर कलकत्ता सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में आये। उन्होंने उससे पहले माँ को देखा न था। पहले-पहले उन्होंने भी अतिथि-सेवा के रूप में ही माँ की सेवा की थी। एक दिन रात भर छत पर बैठकर माँ के साथ उनकी न जाने क्या बातें हुई। उसके बाद से ही उन्होंने माँ को 'माँ' कहकर पुकारा और माँ को भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। उनकी वृद्धा माता ने भी माँ को इष्टदेवी की मूर्ति में देखा था। उसके बाद ही यह सारा परिवार माँ का अत्यन्त भक्त बन गया। माँ जब कलकत्ते जाती तो सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में ही ठहरती। भक्तों के साथ कीर्तन आदि उसी मकान में अधिक होता। अधिक समय माँ उसी मकान में व्यतीत करती। उनकी वृद्धा माता, माँ को अपनी इष्टमूर्ति के रूप में देखने पर भी सन्तान के समान ही प्यार करती थी। माँ के लिये वे पागल हो जाती थी। कलकत्ते से प्राणगोपाल बाबू की बहन अत्यन्त आग्रह कर माँ को अपने मकान (शिव निवास) में ले गई। वहाँ ले जाकर उन्होंने कितना प्रेम प्रदर्शित किया उसका वर्णन नहीं कर सकती। प्राणगोपाल बाबू और उनके सम्पूर्ण आत्मीय-बन्धु-बान्धवों के चरित्र से हम लोग अत्यन्त मुग्ध हुये। ऐसे परिवार अधिक नहीं दिखाई देते। सभी सरल, नम्र, मधुरभाषी और धर्मभीरु। शिव निवास से लौटकर कलकत्ता प्रमथ बाबू के मकान में गये, वहाँ अनेक लोग माँ के दर्शन करने आये। प्रमथ बाबू के परिचित, बन्धु-बान्धवों, बहुतों ने आकर माँ के दर्शन किये। रेवती सेन (गुसाईजी के शिष्य बालब्रह्मचारी), नवतरु हाल्दार आदि अनेकों ने प्रमथ बाबू के मकान में ही माँ के पहले-पहल दर्शन किये। इस समय वे लोग माँ के अत्यन्त कृपाभाजन हैं। कलकत्ते से ढाका को रवाना होने के दिन पिताजी ने गाड़ी

मँगाकर सब सामान उस पर लाद दिया, किन्तु प्रमथ बाबू ने माँ को किसी तरह आने नहीं दिया। मुख से विशेष कुछ कहा नहीं, किन्तु एक कमरे के कोने पर जाकर ध्यान में बैठे रहे। माँ के बिदा लेने के लिये जाते ही पैरों के निकट पस्त होकर गिर गये, माँ फिर हिल न सकी, स्थिर होकर वहीं खड़ी रही। इधर गाड़ी का समय बीत गया। खूब वर्षा आरम्भ हुई। माँ के द्वारा सबको कीर्तन करने की अनुमति देने पर सब लोग वर्षा में खड़े होकर कीर्तन करने लगे। माँ भी वर्षा में खड़ी रही। बहुत देर तक कीर्तन हुआ, रात भी बहुत हो गई। माँ को प्रसाद देने के लिये सभी लोग कुछ न कुछ खाद्य पदार्थ लाये थे, उसी का प्रसाद वितरण किया गया। सभी के भीगे कपड़े थे। माँ को बहुत लोगों ने कपड़े दिये - सभी कपड़े बाँट दिये गये। सबने कपड़े बदलकर माँ को प्रणाम कर विदा ली।

ढाका लौटना

दूसरे दिन हम लोग माँ को लेकर ढाका को रवाना हुये। मालूम पड़ता है अटल दादा कलकत्ते से ही विदा हो गये थे। पहले अटल दादा के आते ही माँ ने मुझे दिखाकर उनसे कहा था- ''देख, तुम्हारी बहन है, दोनों का ही चेहरा-मोहरा अधिकांश में मिलता है।'' आगे भी इसी तरह और न जाने क्या-क्या कहा था।

सिद्धेश्वरी का वृत्तान्त

माँ शाहबाग ही थी। कभी-कभी सिद्धेश्वरी जाती थी। एक दिन रात्रि में सिद्धेश्वरी गई। सभी लोग उस दिन सिद्धेश्वरी गये। पहले-पहले यह नियम चला था कि यदि प्रतिदिन कीर्तन न भी हो सके तो सोमवार और बृहस्पतिवार को विशेष रूप से कीर्तन अवश्य होना चाहिये। वही होता था। सप्ताह में इन दो दिनों में सब इकट्ठे होते थे और खूब कीर्तन होता था। अन्यान्य दिन सामान्य थोड़ा-थोड़ा कीर्तन होता था। बहुत लोगों की भीड़ होने के कारण उद्यान की क्षति होने के भय से अधिकारियों ने सबका उद्यान में जाना बन्द कर दिया था। उस समय माँ ने एक-एक दिन एक-एक मकान में कीर्तन करने का आदेश दिया। सोम और बृहस्पतिवार को सिद्धेश्वरी में कीर्तन होगा, कह दिया। संभवतः उस दिन सोमवार या बृहस्पतिवार होगा। माँ सिद्धेश्वरी गई। उस समय भी सिद्धेश्वरी का रास्ता बहुत खराब

था। सभी लोग बड़ा कष्ट झेलकर सिद्धेश्वरी जाते थे, अथवा माँ ही सबको खींचकर ले जाती थी। माँ सिद्धेश्वरी जाकर गड्ढ़े के अन्दर बैठी, भोलानाथजी ऊपर बैठे। भक्तगण सब उपस्थित थे। ज्योतिष दादा भीड़ में विशेष रहते नहीं थे, किन्तु उस दिन वे भी विद्यमान थे। कभी-कभी भक्तों में विविध विषयों को लेकर कोलाहल होता था। माँ किस घर में गई, किसमें नहीं गई, इस विषय को लेकर भी दुःख व्यक्त किया जाता था। माँ ने तब घूँघट काढ़ना बहुत कुछ कम कर दिया था- सन्तानों के साथ बैठकर खूब बातचीत करती थी। उस दिन उनकी मूर्ति और भी उज्ज्वल थी। बोलने में संकोच का भाव या स्तब्धता बिल्कुल न थी। मधुर दृष्टि से सबकी ओर देखकर बोली-"यहाँ आये हो-सब लोग द्वेष, हिंसा भूल जाने का प्रयत्न करो। हिंसा निंदा ही यदि करना है तो यहाँ आने का लाभ क्या? और मैं तो जो जब जहाँ ले जाता है, वहीं जाती हूँ। पहले टहलते-टहलते जहाँ होता था चली जाती थी, अब दिन पर दिन शरीर न जाने कैसा होता चला जा रहा है। सदा पैदल नहीं चल सकती हूँ। तुम लोग गाड़ी द्वारा जहाँ चाहो ले जाओ। इसमें दुःख की तो कुछ भी बात नहीं है।" तदनन्तर जरा दृढ़ता से बोली- "आज भाव न जाने कैसा हुये जा रहा है। मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ फिर भी तुम मुझे माँ कहते हो। यदि सचमुच वैसा ही समझते हो तो मैं जब जहाँ रहूँ जानो उतने समय के लिये वह मकान मेरा ही है, इससे वह हम लोगों का ही है, ऐसा यथार्थ रूप से मन में ठानो।" कुछ देर बाद फिर बोली- वधुत्व का संकोच उस समय कहीं चला गया था, दृढ़ स्वर में कह रही थी- "जो-जो यहाँ आते हो सभी को तैयार होना होगा। इस समय तक तो कुछ भी नहीं हुआ है। केवल जमीन पर कुदाली पड़ी है बस। कितना सहन करना पड़ेगा, कितनी आँधियाँ उठेंगी, उस बवंडर में जिन्हें जाना होगा चले जायेंगे, जिन्हें रहना होगा रहेंगे।" दृढ़तापूर्वक यह बात कहकर माँ चुप हो गई। हँसते-हँसते बोली थी सही, किन्तु सभी के मन में माँ के उस दृढ़ स्वर ने आघात पहुँचाया। सभी चुपचाप बैठे रहे, कुछ क्षणों के बाद दूसरी चर्चायें चली, कुछ देर कीर्तन भी हुआ। सभी माँ से सांसारिक उन्नति-अवनति के विषय में जिज्ञासा करते हैं, उस दिन भी उन्होंने की। महिलायें प्रश्न कर रही थी। माँ ने कहा- 'देखो, सभी सांसारिक विषयों में ही मुझ से प्रश्न करते हैं,

मैं उस सम्बन्ध में कुछ भी विशेष नहीं कहती हूँ। किन्तु आज कह रही हूँ कि मैं जिस समय आकर यहाँ बैठूँ, उस समय चाहे जो-जो भी प्रश्न करेगा, मैं उत्तर दूँगी। अन्य समय फिर कुछ नहीं कहूँगी। किन्तु मैं कब जाऊँगी यह नहीं कह सकती।'' यह बात सुनते ही स्त्रियाँ बहुत ही छोटे-छोटे सांसारिक विषयों में प्रश्न करने लगी। माँ ने भी हँसते-हँसते प्रत्येक का उत्तर दिया। आश्चर्य की बात है कि किसी ने कोई अच्छी बात नहीं पूछी। पुरुषों में प्राय: किसी ने भी कोई प्रश्न नहीं किया। मेरी उस समय माँ को पाकर ऐसी अवस्था हुई कि मानो प्रश्न करने योग्य कुछ भी नहीं है। स्त्रियों में से भी केवल कतिपय स्त्रियों ने ही प्रश्न किये। सबने इन साधारण से प्रश्नों से ऊब कर फिर कीर्तन आरम्भ कर दिया। माँ ने हँसते-हँसते मुझसे कहा- ''इस गड्ढ़े में आकर बैठ सकती है?'' मैंने भी निर्भय होकर उत्तर दिया- ''खूब अच्छी तरह से, आपका आदेश होना चाहिये।'' माँ जमीन से कुछ फूल उठाकर मेरे ऊपर फेंकने लगी और हँसते-हँसते कहने लगी- ''मैं पूजा कर रही हूँ, यह लड़की बड़ी ढीठ है।'' मैंने भूमि पर लोटकर प्रणाम किया। माँ के निकट अपने-पराये का कोई भेद नहीं है। माँ सबकी पूजा करती है फिर अपने पैरों की भी पूजा करती हैं। वह उनकी एक लीला मात्र है। कुछ देर बाद कीर्तन खूब जम गया, माँ उठकर उस गड्ढे के अन्दर ही खड़ी हुई। उस दिन अत्यन्त अद्भुत-अद्भुत भाव होने लगे। प्रतिक्षण ही परिवर्तन हो रहा था। बहुत लोग कीर्तन कर रहे थे। बहुत लोग कुछ-कुछ समझकर हाथ जोड़े खड़े थे, उस दिन मैं भी न जाने कैसी हो गई, जोर से देवी-स्तुति पढ़ने लगी। हाथ जोड़कर घुटने टेककर माँ के गड्ढ़े के समीप ही बैठी थी। आँखें मुंदी थी, मैंने देखा नहीं सहसा माँ के हाथ का मेरे हाथ से स्पर्श हुआ। मैंने चौंककर आँखें खोलकर देखा, माँ हँसते-हँसते हाथ पकड़कर मुझे खींच रही थी। माँ का हाथ खूब ठंडा था मानो बरफ हो। कुछ देर बाद माँ बिखरे हुये केशों और अस्त-व्यस्त वेश से बाहर निकल पड़ी। अँधेरी रात थी, अति द्रुत गति से चली जाने लगी। माँ कभी-कभी स्वाभाविक रूप से भी इतनी तेज चलती हैं कि कोई भी साथ नहीं चल सकता है। मैं प्राय: ही दौड़ती हुई माँ के साथ रहती हूँ। माँ ने जाकर काली मन्दिर में प्रवेश किया। (उस दिन माँ सबको लेकर वहाँ आयेंगी, यह सोचकर मन्दिर खुला रखने को कहा गया था)।

मन्दिर में घुसते ही कालीमूर्ति की प्रदक्षिणा कर दरवाजे के सामने लम्बी होकर लेट गई। मैं और भोलानाथजी शरीर पर हाथ फेर रहे थे, अन्यान्य सब लोग मन्दिर के दरवाजे पर खड़े थे। बहुत देर बाद अस्पष्ट भाषा में अत्यन्त धीमे स्वर में माँ ने कहा- ''सबसे कह दो आज जो कुछ देखा है उसे कोई मुख से उच्चारण न करे।'' अत्यन्त क्लेश से मैंने उक्त कथन का तात्पर्य समझकर सबसे कह दिया। बहुत देर हो गई थी, माँ को उठाकर जिस कमरे में उनका आसन था, उसमें लाया गया। रात प्रायः खुलने को आई। बहुतों ने विदा ली। भोलानाथजी ने माँ को बड़े कष्ट से उठाया- शरीर मानो पस्त पड़ गया था और भी कुछ क्षण बीते। तदुपरान्त माँ उठ खड़ी होकर इतनी तेजी से चलने लगी कि साथ में कोई चल नहीं सका, एक-बारगी शाहबाग आकर लेट गई।

बगीचे में लोगों के आने की निषेधाज्ञा का परिहार

इसी तरह प्रतिदिन एक-एक लीला कर रही थी। एक दिन दोपहर के समय में टिकाटूली से शाहबाग आई, देखा माँ नहीं हैं। बहुत खोज करते-करते मैंने देखा माँ एक छोटे पेड़ की डाल पर चढ़कर बैठे-बैठे हँस रही हैं, थोड़ी देर बाद उतर आई। रायबहादुर के मकान से भी स्त्रियाँ सदा ही आती थी। रायबहादुर की भी माँ के प्रति खूब श्रद्धाभक्ति थी। उन्होंने बगीचे में सबके आने का निषेध कर दिया था। थोड़े ही दिनों में उक्त नियम हटा दिया और उसके लिये माँ के सन्मुख वे खूब लज्जित हुये।

एक दिन की घटना-कीर्तन में सबकी चरणधूलि लेने की चेष्टा

एक दिन शाहबाग में सन्ध्या के समय कीर्तन हो रहा था, माँ के सोने के कमरे में ही कीर्तन हो रहा था। माँ भावावस्था में थी, सहसा माँ पिताजी के चरणों की धूलि लेने को उद्यत हुई। पिताजी तो माँ-माँ कहकर पीछे हट गये। अन्त में सभी के पैरों के निकट जा रही थी, धूलि लेंगी, यह सोचकर सभी चौंककर हटे जा रहे थे। माँ नन्हें बच्चे की तरह रोते-रोते व्याकुल हो उठी। कहने लगी-''यदि चरण धूलि नहीं दी तो मैं रहूँगी नहीं।'' अन्त में भोलानाथजी ने जाकर बहुत कह-सुनकर शान्त किया। उन्होंने कहा- ''तुम्हें कौन अपनी चरणधूलि देगा? तुम स्वयं ही अपने चरणों की धूलि लो।'' तब माँ ने स्वयं ही अपने चरणों की धूलि ली और शान्त

हुई। मैं समीप के कमरे में खड़ी होकर सोच रही थी–माँ चरण धूलि लिये बिना रहूँगी नहीं जब कह रही हैं तब तो भाग्य में बदा हो, यदि मेरे निकट माँ आवें तो मैं रोकूँगी नहीं, माँ जो कुछ करेंगी इससे मंगल ही होगा। किन्तु माँ मेरी ओर आते–आते रुक गई, आई नहीं। उस दिन और भी कई स्त्रियाँ उपस्थित थी। शान्त होकर माँ स्त्रियाँ के बीच में आ बैठी। माँ बोली– ''आज किसी ने चरण धूलि नहीं दी, यदि कोई आज चरण धूलि देते तो मैं भी सबको चरण धूलि देती।'' मैंने कहा– ''माँ तुम तो सबके समीप आई नहीं, जो तुम्हें नहीं रोकते ऐसे लोग भी यहाँ विद्यमान थे।'' माँ ने हँसते–हँसते कहा– ''वह तो जानती थी, इसीलिये उधर नहीं आ सकी।'' इस प्रकार लीला कर रही थी।

अन्य के रोग को आरोग्य करने का इतिहास

रोग–पीड़ा की निवृत्ति के लिये कितने ही लोग औषधि और आशीर्वाद लेने आते, उनकी सीमा नहीं है। किन्तु माँ उस सम्बन्ध में चुप्पी साधे रहती। कभी जो दो–एक घटनायें हो जाती, वह दूसरी बात है। दो–एक रोगी चंगे भी हुये हैं। किसी–किसी रोगी के समीप सम्भवतः लोग माँ को ले गये, माँ ने उसके शरीर पर हाथ फेर दिया मानो झाड़ रही हों, वह शायद अच्छा हो गया। माँ कहती– ''मैं अपनी इच्छा से ऐसा करती सो बात नहीं है, हाथ अपने–आप उठ जाता और ऐसी क्रिया जो जाती और कभी–कभी सैंकड़ों अनुरोध करने पर भी हाथ न हिलता।''

(क) अतुलदत्त के लड़के की बात

एक दिन शाहबाग में अतुलदत्तजी की स्त्री (विभु ठाकुरताजी की बहन) आकर माँ को अपने घर ले जाने के लिये खूब अनुरोध करने लगी। माँ इधर–उधर घूम रही थी। उनकी बात पर ध्यान नहीं दे रही थी। अन्त में उन्होंने भोलानाथजी के निकट जाकर उनसे प्रार्थना की, कि मेरा लड़का बहुत बीमार है, माँ को एक बार दिखाने ले जाना चाहती हूँ। भोलानाथजी दूसरे के दुःख से अत्यन्त द्रवित हो जाते थे। उन्होंने जाकर माँ से अनुरोध किया, जाना ही होगा। माँ ने कमरे में जाकर भोलानाथजी से कहा– ''जाकर क्या होगा? वह लड़का बचेगा नहीं। ज्योतिष दादा भी उस समय वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने कहा– तब तो न जाना ही अच्छा है, जाने पर केवल

माँ का नाम व्यर्थ बदनाम होगा। और नहीं तो उनके किसी आत्मीय के पास माँ ने यह बात कही है ऐसा कह आना ही उचित है। भक्त का हृदय है, बाद में कोई माँ की गलती समझे यह सोचकर यह सब बात कही गई थी। किन्तु कुछ भी नहीं किया गया, क्योंकि यह बात पहले कहना ठीक नहीं है। माँ और भोलानाथजी उस मकान में गये, लड़का एम.ए. या 'ला' पढ़ता था, ठीक स्मरण नहीं है। यक्ष्मा का-सा रोग हुआ था। माँ देखकर चली आई। माँ बहुत जगहों में ऐसे स्थानों पर जाना नहीं चाहती थी, किन्तु भोलानाथजी के विशेष आग्रह करने पर जाती और कहती- ''अच्छा तो है, मालूम पड़ता है दरकार है, इसीलिये जाना हो रहा है। बचना या मरना मेरे निकट एक-सा है। शायद जो मरेगा उसके निकट भी जाना आवश्यक था।'' यह कहकर फिर कोई विशेष आपत्ति न करती। किन्तु भोलानाथजी तथा विशेषकर हम सब लोगों से कह दिया था- ''किसी को भी अच्छा करना होगा ऐसा अनुरोध कभी मत करना। क्या कह सकते हो किसको खराब करना होगा? सभी को यदि बचाना हो तो फिर किसी की मृत्यु ही नहीं होगी। यह क्या सम्भव है? सभी अपने-अपने कर्मफलों को भोग कर रहे हैं और करेंगे, उसमें बाधा पहुँचाना ठीक नहीं है। जबरदस्ती करने पर विपरीत फल होता है।'' इधर देख आने के बाद एक दिन अतुल बाबू की स्त्री ने आकर माँ से विनती की, ''माँ'' कोई व्यवस्था कर देने की कृपा कीजिये।'' माँ ने कहा-''नियम बतला देने पर भी उसका पालन न कर सकोगी।'' उन्होंने कहा-''माँ, तुम बतला दो निश्चय ही उसका पालन करूँगी।'' तब माँ ने बतला दिया-''इतने दिनों के (संभवतः अट्ठारह दिनों के) अन्दर लड़के को बिछौना छोड़ने न देना।'' यह आज्ञा लेकर वे चली गई। लड़का क्रमशः अच्छा होने लगा। सहसा एक दिन अवस्था फिर बिगड़ गई। लड़के की माँ शाहबाग माँ के पास आ खड़ी हुई। आते ही माँ ने कहा- ''बिछौना क्यों छोड़ने दिया? सोमवार को बिछौना छोड़ा है।'' उसने कहा-'' नहीं माँ, यह कदापि नहीं हुआ।'' कुछ दिनों के बाद लड़के की मृत्यु हो गई। शव को घर में रखकर ही अतुल बाबू की स्त्री शाहबाग दौड़ी आई। इधर कुछ देर पहले माँ बैठी थी, सहसा मुँह के बल लेट गई। आधे घण्टे में ही लड़के की माँ पागल के समान आकर उपस्थित हुई। उनका विश्वास था, नियम का भंग नहीं हुआ। माँ ने जब कहा है यह

नियम करो तब लड़का मर नहीं सकता। उन्माद की-सी अवस्था थी। कुछ देर बाद सब लोग उन्हें पकड़कर ले गये। तभी से उनका माँ के प्रति बड़ा अविश्वास हो गया। क्योंकि माँ के नियम का पालन करने पर भी लड़का मर गया, यही उनके अविश्वास का कारण था। कुछ दिनों के बाद किसी एक घटना से उन्हें स्पष्टत: स्मरण हो गया कि माँ ने ठीक ही कहा, उन निर्दिष्ट दिनों के अन्दर लड़के ने अच्छा होकर बिछौना छोड़ बरामदे में आकर बातें की थी। उसी समय वे फिर आश्रम में माँ के निकट आई और उक्त बात बतलाकर पश्चाताप कर रोने लगी। माँ और भी उन्हें यह कहकर सान्त्वना देने लगी, ''देखो, जो होने वाला होता है वह अवश्य ही होकर रहता है। मैंने कहा था कि यह लड़का बचेगा नहीं, तुमसे भी कहा था नियम यदि बतला भी दूँ तो तुम उसका पालन नहीं कर सकोगी। इसी से कहती हूँ मुझसे विशेष अनुरोध करने से कोई फल नहीं होगा, और जब होने को होता है वह अपने आप ही हो जाता है।'' इस तरह की विविध प्रकार की बातें करके माँ ने उन्हें सान्त्वना दी। वे अपनी सुविधा के अनुसार माँ के निकट आती हैं, माँ के प्रति उनका अत्यन्त विश्वास है। तब से भोलानाथजी फिर विशेष अनुरोध नहीं करते। जब अच्छा होने वाला होता है तब माँ स्वयं ही वहाँ उपस्थित होकर कुछ क्रिया कर देती हैं। उससे वह अच्छा हो जाता है।

(ख) गुरुबन्धु के लड़के का वृत्तान्त

एक बार हमारे टिकाटूली के मकान में माँ भोजन करने बैठी थी। गुरुबन्धु भट्टाचार्य समीपवर्ती मकान में ही रहते थे। उनकी स्त्री माँ के निकट आती-जाती थी। उनके लड़के को कालाज्वर हुआ था। वे माँ के निकट उसके लिये खूब रोई ओर उन्होंने माँ से विनती की। भोलानाथजी ने माँ का प्रसाद ले जाने को कहा। उन्होंने उनके कथनानुसार प्रसाद ले जाकर लड़के को खिलाया। कुछ दिनों के बाद ही लड़का चंगा हो गया। उसके बाद से वे खूब आना-जाना करती। एक दिन उन्होंने माँ को अपने घर भोज दिया। किन्तु कुछ समय के बाद उनका उक्त भाव चला गया, माँ के समीप आना-जाना भी बन्द हो गया। हम लोगों ने माँ से कहा। माँ बोली- ''सभी अच्छे हैं, यदि कोई मेरी निंदा भी करे तो भी तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। जिसका जितने दिन देना-लेना रहता है उसका उतने ही दिन

आना-जाना होता है। किसी का कोई दोष नहीं है। और निंदा,-जानो अंग का भूषण है। इस मार्ग में आने पर निन्दा को शरीर का आभूषण बना देना पड़ता है। जैसे सधवा के हाथों का लोहा सौभाग्य सूचित करता है, वैसे ही इस मार्ग में भी निंदा बड़ी सहायता करती है। इस मार्ग में आने पर निंदा अवश्यम्भाविनी है। इससे कहती हूँ, निंदा से न तो डरो और न कुपित ही होओ।'' माँ तो कहती हैं, किन्तु हम उसका पालन कहाँ कर सकते हैं?

(ग) एक कालाज्वर पीड़ित लड़के का वृत्तान्त

एक घटना और घटी थी। हमारी ही एक आत्मीया अपने बीमार लड़के को लेकर हमारे टिकाटूली के मकान में आई। लड़के की कालाज्वर से शोचनीय अवस्था थी। उन्होंने माँ का वृतान्त सुना था। पिताजी ने उनसे कहा- ''मेरे मकान में दो प्रकार की चिकित्सा होती है - यदि डॉक्टरी चिकित्सा कराना हो तो उसकी व्यवस्था कर देता हूँ और यदि विश्वास हो तो माँ के निकट छोड़ दो, यदि बचना होगा तो उसी से बच जायेगा। दो-एक दिन विचार कर उन्होंने माँ का प्रसाद खिलाकर रखने का ही निश्चय किया। माँ भोग के लिये टिकाटूली के मकान में आई थी। माँ का भोजन हो गया था। हमारी आत्मीया ने जाकर लड़के के लिये प्रसाद चाहा, माँ चुप रही। भोलानाथजी उठ गये। माँ सहसा उठते समय एक ग्रास-भात लेकर उस लड़के की माँ के हाथ में देकर ही उठ पड़ी। इस तरह प्रसाद पाकर उन्होंने बड़ी श्रद्धा से लड़के को खिलाया। आश्चर्य की बात है कि लड़का धीरे-धीरे चंगा हो गया। कई वर्षों के बाद लड़के के पुनः अस्वस्थ होने पर वे फिर ढाका आई। किन्तु उस समय माँ ढाका न थी। लड़के की चिकित्सा चलने लगी। वे बड़ी गरीब थी। वे ढाका में हमारे ही मकान में रही। कुछ दिन बाद माँ ढाका आई। हम लोगों ने शाहबाग में माँ से लड़के का वृतान्त कहा। कहते ही माँ बोली- ''घर भेज दो, वह लड़का बचेगा नहीं। यदि बच जाय तो भगवान की विशेष कृपा समझो।'' हम लोगों ने कहा, गरीब आदमी है यहाँ चिकित्सा हो रही है, गाँव जाकर क्या करेगा।'' कुछ दिनों की चिकित्सा के बाद उसका शरीर खूब अच्छा हो गया। हम लोगों ने सोचा भगवान के विशेष अनुग्रह से बच गया है। किन्तु सहसा एक दिन स्कूल से आकर कै (वमन)-दस्त होने लगे और

दूसरे दिन लगभग 9 बजे के समय वह चल बसा। माँ उस समय ढाका में न थी।

(घ) क्षय रोगी का वृत्तान्त

फिर एक दिन घटना और घटी। एक क्षय के रोगी को उसके आत्मीयजन माँ का नाम सुनकर गाँव से शाहबाग ले आये। माँ के निकट आत्मीयों ने प्रार्थना की, कि माँ हम शाहबाग से रोगी को चंगा किये बिना कदापि नहीं ले जायेंगे। नाच घर के निकट जो दो गोल कमरे थे, उनमें से एक में उस समय माँ सोती थी, दूसरा कमरा उन लोगों को रहने के लिये दिया गया। कुछ दिनों के बाद एक दिन नाच घर में कीर्तन हो रहा था, उसमें माँ की खूब भावावस्था हुई। उक्त अवस्था में कपड़ा ठीक नहीं रहता है यह समझकर मैं कपड़े का आँचल कमर में खूब कसकर बाँध देती। सिर पर वस्त्र न रहता, नेत्र मुख की तो वह ज्योति क्या सुन्दर दिखाई देती, उसका भाषा द्वारा वर्णन करना असंभव है। जितनी देर तक उक्त भाव रहता, कपड़ा भी वैसा ही रहता। कीर्तन में शरीर की विविध प्रकार की क्रियायें हो रही थी। कुछ देर बाद भावावस्था में ही सर्वसाधारण की अगम्य भाषा में मधुर स्तोत्र आदि हुये। तदुपरान्त माँ स्थिर भाव से बैठकर बोली– ''उसे (अर्थात् उक्त क्षय–रोगी को) यहाँ ले आओ।'' रोगी के साथ पाँच–सात आदमी थे। वे उठाकर उसे कीर्तन में ले आये। कीर्तन उस समय रुक गया था। माँ जरा घबराहट के साथ बोली– ''यहाँ पर उससे लोट–पोट लेने को कहो।'' किन्तु आश्चर्य की बात है, वह आदमी स्वयं लेट नहीं पा रहा था, साथ के आदमी पकड़कर लिटा दें सो भी नहीं कर रहे थे। न मालूम कैसे सबके सब अप्रतिभ हो गए थे। माँ ने दो–तीन बार कहा। रोगी ने स्वयं लेटने की कोशिश की, किन्तु लेट न सका। माँ चुप हो गई। पीछे माँ ने कहा– ''देखा, कहने पर भी नहीं हुआ, सब लोग मिलकर भी तो लिटा सकते थे। किन्तु वह नहीं हुआ, जो कुछ होना है वह होगा ही।'' तदुपरान्त माँ ने उन्हें घर लौट जाने को कहा। वे रवाना हो गये, रास्ते में ही रोगी मर गया।

योगेश राय की घटना

एक दिन कीर्तन में एक विशेष घटना घटी। टिकाटूली के नृपेन्द्रचन्द्र

घोष के साथ योगशचन्द्र राय नाम के एक सज्जन कभी-कभी शाहबाग आते थे। वे ढाका में ही नौकरी करते थे और विवाह उन्होंने नहीं किया था। वे माँ के सम्बन्ध के अच्छे-अच्छे गाने गाते थे। शाहबाग में कीर्तन में विशेष सहयोग देते न थे, एक किनारे चुपचाप बैठे रहते थे। बहुत देर तक अकेले एकान्त में श्यामा संगीत या और कोई गाना गाते थे। एक दिन कीर्तन हो रहा था, माँ की भावावस्था प्रचूर मात्रा में ही हो रही थी। सारे नाच घर में घूम रही थी-कभी उग्रमूर्ति, कभी अतिशान्त आनन्दमय मूर्ति, विविध प्रकार की क्रियायें-आसनादि हो रहे थे। माँ घूमते-घूमते सहसा योगेश बाबू के कन्धे पर चढ़कर खड़ी हो गई, वे स्वाभाविक रूप से ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद माँ उतर पड़ी और घूमते-घूमते दूसरी ओर चली गई। सभी योगेश बाबू के भाग्य की सराहना करने लगे। उनसे पूछा गया, माँ के कन्धे पर चढ़कर खड़ी होने पर उन्हें कैसा लगा? उन्होंने कहा-एक नन्हीं बच्ची के कन्धे पर चढ़ने पर जैसा प्रतीत होता है वैसा ही प्रतीत हुआ। तब तक माँ का घूँघट भली-भाँति उठा न था-बोलते समय बहुत लम्बा घूँघट काढ़कर बोलती थी। कुछ दिनों के बाद सुनने में आया कि योगेश बाबू संन्यासी होकर कहीं बाहर चले गये हैं। मैंने माँ से आकर कहा, माँ बोली-"गया है, फिर आवेगा।" मेरी समझ में कुछ नहीं आया। एक वर्ष के बाद योगेश दादा लौट आये। उस समय सारी घटना सुनी। घटना यों है-एक दिन वे शाहबाग आये। माँ उस समय भी अपरिचित पुरुषों के साथ विशेष बातें नहीं करती थी। भोलानाथजी की मार्फत माँ ने उन्हें यह आदेश दिया था, "एक वर्ष किसी तरह का सम्बल लिये बिना (अर्थात् अपने संग रुपये-पैसे लिये बिना) नाना स्थानों में घूम आओ। जाने के पहले अपनी माता के दर्शन कर सिर तथा दाढ़ी-मूँछ मुंडाकर जाना, फिर इस एक वर्ष के बीच हजामत न बनाना। एक वर्ष के बाद आकर मेरे साथ भेंट करना। अवकाश लेकर जाना एवं तुम्हारा मासिक वेतन जिस तरह यहाँ जमा हो वैसा प्रबन्ध कर जाना।" उक्त आदेश पाकर वे चले गये एवं माँ के निर्देशानुसार काम करके पूरे एक वर्ष के बाद आकर शाहबाग में वे पुनः माँ के चरणों के निकट उपस्थित हुये। उस दिन देखा, वे योगेश बाबू अब नहीं हैं, उस समय उनके लम्बे बाल और दाढ़ी थी। माँ ने उनसे अपनी इस अवस्था का एक फोटो उतरवा कर बाल और दाढ़ी मुंडवा डालने

के लिये कहा एवं पहले की नौकरी सम्भालने का आदेश देकर बोली– ''इस समय यहीं तक रहो, जैसा होगा देखा जायेगा।'' आगे कह दिया– ''यदि इस एक वर्ष के भीतर कहीं मेरे साथ भेंट हो तो समीप में न आना।'' आगे चलकर ये ही रमना आश्रम में अन्नपूर्णा मन्दिर के पुजारी हो नौकरी का त्यागकर आश्रम के ब्रह्मचारी हुये।

प्राय: प्रतिदिन ही शाहबाग में कीर्तन होता था, कभी कीर्तनकारियों का दल आकर 'पाला' गा जाता था। माँ नित्य नूतन लीला कर रही थी। एक दिन भोजन करने के पूर्व माँ ने कहा– ''खुकुनी, मुझे कपड़ा पहना दे तो।'' यह कहकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई एवं मन्द-मन्द मुस्कराने लगी। भोलानाथजी बोले– ''क्या तुमने अपने हाथ से कपड़ा पहनना भी बन्द कर दिया है?'' माँ ने कहा– ''नहीं, आज उससे कह रही हूँ।'' मैं महिलाओं के समान ठीक तरह से कपड़ा पहनना नहीं जानती हूँ, इसी से माँ यह कह रही हैं ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मैंने बहुत सोच-विचार कर पहना दिया, किन्तु देखा तो उल्टा हो गया था। माँ ने हँसते-हँसते कहा– ''आज यह उल्टा ही पहनकर रहूँगी।'' पिताजी ने कहा, वह न तो खिलाना जानती है, न कपड़ा पहनाना जानती है किन्तु उसके हाथ से ही तुम सब व्यवस्था करती हो।'' माँ ने धीरे से कहा– ''जो अपना नहीं जानता है मैं उसी से ग्रहण करती हूँ।'' यह बात इतने धीरे कही कि मेरे सिवा शायद किसी दूसरे ने नहीं सुनी। मैं माँ के पास ही खड़ी थी, इसलिये मैं सुन पाई। मैंने सोचा माँ कौन हैं इस बात से ज्ञात होता है, इस कथन से माँ ने अपने मुख से ही अपना स्वरूप प्रकट कर दिया। माँ अनेक अवसरों पर कहती– ''तुम लोगों के शुद्ध और पवित्र भाव से रहने पर ही मैं स्वस्थ रहूँगी, तुम लोगों का शुद्ध भाव ही मेरी पुष्टि करेगा। बाहर के खाने से कुछ न होगा। इस कथन से ही हमें आश्चर्य होता। हम सोचते, ''सबका शुद्ध भाव ही मेरे शरीर का पोषण करेगा, कौन ऐसी बात कह सकता है।''

भक्तजनों का आगमन

काशी से जितेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ के दर्शन किये - कीर्तन में माँ की भावावस्था देखकर वे अचम्भे में पड़ गये। कई दिन बाद– सम्भवत: पूजा की छुट्टियों में श्री वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी ने आकर

माँ के दर्शन किये। उन्हें पहले से ही पिताजी के द्वारा माँ का वृतान्त ज्ञात था। वे भी माँ के दर्शन कर मुग्ध हुये। वे प्रतिदिन शाहबाग जाकर बहुत देर तक माँ के निकट रहते।

नाना प्रकार के प्रश्न और उनकी मीमांसा

दिन में माँ बहुधा पड़ी रहती, रात्रि होते ही निद्रा रहित हो उठती। माँ अक्सर रात्रि में विशेष सोती न थी। यदि हम लोग रहते तो हम लोगों के साथ वार्तालाप कर अपनी इच्छानुसार घूम-घूमकर रात्रि व्यतीत कर देती। यदि कोई न भी रहता तो टहलकर या बैठे-बैठे रात बिता डालती। रात में बहुत स्पष्ट रूप से बातें करती। वीरेन्द्र दादा, अटल दादा आदि अनेक जटिल विषयों में प्रश्न करते, माँ सहज और सरल भाषा में उन प्रश्नों का उत्तर समझा देती। वे उत्तर से खूब सन्तुष्ट होते। किन्तु कभी-कभी विशेष बातें न होती, क्योंकि सब लोग जिन सब प्रश्नों को मन में सोचकर आते, माँ के निकट आते ही उन सबको भूल जाते। रात को ही बातें करने की सुविधा होती थी। माँ उसी समय विशेष स्पष्ट भाषा में सब कुछ कहती। स्मरण नहीं रहता है यह सोचकर कितने ही प्रश्न एक दिन जितेन्द्र दादा ने रात में जाकर माँ से पूछे। माँ ने अपनी स्वाभाविक भाषा में उनकी पूरी मीमांसा कर दी। रात्रि में वीरेन्द्र दादा, अटल दादा और हम कई लोग माँ के साथ बैठते थे, माँ आसन लगाकर बैठती थी, कितनी ही सुन्दर-सुन्दर बातें कहती थी। सब लोग मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे। एक दिन वीरेन्द्र दादा ने कहा- ''अच्छा, माँ ये जो सब नित्य नये-नये लोग आ रहे हैं, इन सबको देखकर तुम्हारे मन में क्या आता है?'' माँ ने हँसते हुये तुरन्त ही जवाब दिया- ''कोई भी नया नहीं है, सभी अति परिचित प्रतीत होते हैं।'' फिर दूसरे दिन और पूछा गया, ''सभी के मन का भाव क्या सदैव तुम्हारी दृष्टि में भासता है।'' माँ ने कहा-''नहीं, सदा सबके मन का भाव नहीं भासता, तो भी जब जिधर दृष्टि जाती है, तुरन्त स्पष्ट रूप से देख लेती हूँ। जैसे क, ख अक्षरों को तो तुम सब लोग जानते हो, किन्तु सदा ही क्या वे तुम्हारी दृष्टि में भासते हैं? किन्तु जिस समय जिसका स्मरण करते हो, तुरन्त ही वे हृदय में भासित हो उठते हैं, बस वैसे ही समझो। यह भी एक दृष्टिकोण की बात है। सदा सबको देखकर भी न देखे हुये की तरह व्यवहार हो सकता है। खयाल का मतलब और क्या है?'' फिर

एक दिन चर्चा चली – ''अवतार और साधक में क्या भेद है? साधारण लोग उन्हें कैसे पहचानें?'' माँ कुछ देर तक शान्त भाव से पड़ी रही। माँ बातें करते-करते कुछ देर चुप होते ही या तो पड़ी रहती, नहीं तो स्थिरता के साथ बैठी ही रहती। कभी-कभी माँ का बोल बाहर न निकलता। उस दिन भी कुछ देर पड़ी रहकर उठ बैठी। बोली– ''यदि वे अपना स्वयं परिचय न दें तो साधारण लोगों के निकट उन्हें पहचानने का उपाय नहीं है।'' फिर, थोड़ी देर बाद बोली– ''जो साधक हैं वे किसी एक नियम में या कई नियमों में अपने को बाँधे रखते हैं, किन्तु जो अवतार हैं वे किसी भी नियम के अधीन नहीं रहते। यद्यपि सब कुछ भली-भाँति उनके भीतर हो जाता है, किन्तु वे किसी में भी बद्ध नहीं रहते। ध्यान से देखने पर उसकी पहचान हो जाती है। हाँ, साधारण लोगों का पहचानना अवश्य मुश्किल है। यह कहकर कुछ देर बाद बातचीत के सिलसिले में माँ ने अपनी अवस्था की बात कही– ''इस शरीर के अन्दर न जाने कितनी नियम-क्रियायें हुये जा रही हैं, किन्तु कोई भी अधिक दिन नहीं रहती, कोई-कोई तो बहुत ही स्वल्प समय तक रहती है। जैसे कि तुम लोगों की पढ़ी हुई पुस्तक का परीक्षा के पूर्व एक बार पन्ना उलट जाने से ही काम चल जाता है।''

शारदीय पूजा (सं. 1983)

दुर्गापूजा आई। पिताजी उन तीनों दिनों में शाहबाग में माँ की पूजा करने वाले थे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल शाहबाग जाकर मैंने देखा कि माँ ने कमरे का दरवाजा बन्द किया है। भोलानाथजी ने कहा– ''दिन में बाहर नहीं आवेगी, कमरे में किसी के भी प्रवेश का निषेध किया है। सन्ध्या के बाद बाहर निकलूँगी कहा है।'' सारे दिन माँ के साथ भेंट नहीं होगी, यह जानकर हम लोगों की तो भीषण अवस्था हुई। किन्तु उपाय क्या था? भोलानाथजी को कमरे में जाने की अनुमति थी। वे पूजा की सम्पूर्ण साज-सामग्री लेकर कमरे में जाकर माँ की पूजा कर आये। सन्ध्या के बाद माँ ने दरवाजा खोला। सभी लोग माँ के पास जाकर बैठे। हम लोगों ने माँ से पूछा– ''यह क्या नियम?'' माँ ने कहा– ''मैं तो कुछ भी नहीं करती हूँ, देखती हूँ कि कई दिन सूर्य का मुँह नहीं देखने देंगे।'' यह कहकर हँसने लगी। सारी रात माँ के समीप हम कई लोग बैठे रहे। भोर होते ही माँ ने

आँखे ढँक ली, भोलानाथजी से बोली– ''इन लोगों से (हम लोगों से) बाहर जाने को कहो, मैं देख नहीं पा रही हूँ।'' हम लोग उदास होकर चले आये। क्या भयंकर नियम हुआ, कितने दिन रहेगा कौन जाने, यह सोचकर हम लोग बहुत घबरा उठे। किन्तु उपाय क्या था? सप्तमी, अष्टमी और नवमी–तीनों दिन माँ उसी तरह रही। भोलानाथजी उन तीनों दिन कमरे में जाकर माँ की पूजा कर आये थे। रात्रि में सब लोगों का भोजन होता था। दशमी के दिन कुछ दिन चढ़ने के बाद से ही माँ सबसे छिपकर चुप्पे–चुप्पे बाहर निकल पोखरे में जाकर कूद पड़ी, हम सब लोग खबर पाकर दौड़े गये, जाकर देखते हैं कि महाआनन्द से माँ तैर रही हैं। यह देखकर पिताजी और भोलानाथजी तथा अन्यान्य बहुत से लोग पोखरे में उतर पड़े। दशमी का स्नान होने लगा। माँ को किसी तरह भी जल से उठते न देखकर भोलानाथजी ने बार–बार निकलने को कहा, क्योंकि फिर क्या कर बैठें, क्या ठीक? माँ छाती पर्यन्त जल में उतरकर आसन लगा बैठी, किसी तरह भी नहीं उठ रही थी। भोलानाथजी ने जबरदस्ती उठाना चाहा, किन्तु उठा न सके, माँ न जाने कैसी भावस्थ हो गई। माँ ने दोनों हाथ फैलाकर जल में कूद पड़ना चाहा और बोली– ''जल माता मुझे बुला रही है'' किसी तरह भी उठाई नहीं गई। अन्त में सबने मिलकर माँ को उठाया। कपड़े बदला दिये गये। इतने में माँ के जल में रहते–रहते ही वीरेन्द्र दादा भी अपने मकान से आ पहुँचे – वे पोखरे में उतर पड़े। माँ और हम सब बाहर निकल आये थे, वे जल में खड़े होकर सन्ध्या कर रहे थे। वे सहसा एक भयंकर मूर्ति देखकर मारे भय के काँप उठे, किन्तु उन्होंने सन्ध्या करना छोड़ा नहीं। सन्ध्या वन्दनादि से निवृत्त होकर जब वे माँ को प्रणाम करने आये, माँ उस समय नाच घर में बैठी थी। (उन दिनों वहीं पर कीर्तन होता था)। वीरेन्द्र दादा को प्रणाम करते ही माँ ने कहा– ''क्या बाबा, डर गये थे?'' वीरेन्द्र दादा अचम्भे में पड़ गये।

* * *

चौथा अध्याय

काली पूजा का इतिहास (सं. 1983)

देखते-देखते काली पूजा आ पहुँची। सभी लोग माँ से इस बार भी काली पूजा करने का अनुरोध कर रहे थे, किन्तु माँ राजी नहीं हो रही थी। माँ ने भोलानाथजी से कह दिया था- ''तुम भी अब इन सब कामों के लिए आग्रह न करना। मैं कोई भी काम कर नहीं पा रही हूँ।'' माँ राजी नहीं हो रही थी, इसलिये सब चुप हो गये। एक दिन माँ टिकाटूली के मकान में भोग में जा रही थी। जिस समय लाट साहब की कोठी के निकट पोखरे के समीप गाड़ी पहुँची, उस समय माँ ने देखा एक सजीव काली मूर्ति मानो आकाश से माँ की गोद में कूदने के लिये तैयार है। काली के गले में लाल अढ़हुल की माला लटक रही थी। उनके पैरों के नीचे महादेवजी की मूर्ति न थी। माँ ने उस समय कुछ कहा नहीं (बाद में माँ के मुख से यह बात हम लोगों ने सुनी)। टिकाटूली के मकान में जाकर माँ भोजन करने बैठी, सहसा हाथ उठाकर अन्यमनस्क हुई।* (माँ ने कहा फिर वही मूर्ति दिखाई दी)। उस दिन माँ का हाथ उठाना देखकर भोलानाथजी और हम लोग माँ की ओर देखते रहे। थोड़ी देर बाद माँ ने हाथ नीचे कर लिया। कहा कुछ भी नहीं। गाड़ी में भी मालूम पड़ता है हाथ उठाया था। कुछ दिनों के बाद शाहबाग में रसोई घर में माँ रसोई बना रही थी, इधर माँ के सोने के गोल कमरे में भूदेव बाबू आकर भोलानाथजी से माँ की काली पूजा करने की बात पूछ रहे थे। भोलानाथजी ने उनसे कह दिया कि वे पूजा के लिये राजी नहीं हो रही हैं। इन सब बातचीतों के बाद सन्ध्या समय कीर्तन में सब एकत्र हुये। सभी को निश्चय हो गया कि काली पूजा नहीं होगी। बहुत रात बीते हम लोग घर लौट

---

* हम लोग देखते हैं जिस समय माँ के इस प्रकार के विविध भाव होते हैं उस समय कभी कोई न कोई बात अस्पष्ट रूप से कहती, कभी संभवतः सोई रहती। गंभीर रात्रि में चिल्लाकर कुछ कहती, हम लोग कुछ न समझ पाते। कभी-कभी शब्द तो सुनते पर क्या कहा यह कुछ भी समझ न पाते। शरीर की गतियाँ भी इस तरह की कितनी ही देखते जो सभी साधारण लोगों की दुर्ज्ञेय होती।

आये। माँ और भोलानाथजी सो गये। उस समय माँ ने भोलानाथजी से पूछा- 'देखो, आज भूदेव बाबू ने आकर कुछ कहा क्या?'' माँ जहाँ पर रसोई बना रही थी, वहाँ से माँ का शयन गृह बहुत दूर था। भूदेव बाबू को न तो माँ ने देखा और न किसी के मुख से उनके आने की बात ही सुनी? माँ के मुँह से उक्त बात सुनकर भोलानाथजी ने कहा-''भूदेव बाबू ने आकर काली पूजा के लिये बहुत अनुरोध किया।'' माँ बोली-''देखो, तुम काली पूजा क्यों नहीं करते हो?'' इस बात पर भोलानाथजी को प्रतीत हुआ कि माँ काली-पूजा करेंगी। उन्होंने उसी वक्त बाहर सब लोगों को यह समाचार सुनाया कि माँ काली-पूजा करेंगी। बाउल बाबू, सुरेन्द्र बाबू उस समय तक शाहबाग ही थे, उन लोगों के साथ भोलानाथजी बातें कर रहे थे, इधर माँ लेटे-लेटे समाधिस्थ हो गई। काली पूजा का केवल एक दिन शेष रह गया था, उसी रात को काली मूर्ति के लिये जाना उचित था। कितनी बड़ी मूर्ति होगी यह प्रश्न उठा, भोलानाथजी ने जाकर माँ से पूछा। माँ तो स्तब्ध होकर लेटी थी। कुछ भी बोल नहीं सक रही थी। भोलानाथजी ने बहुत प्रयत्न से उठाया, किन्तु माँ मौन रही। अन्त में भोलानाथजी को सूझा कि माँ ने जो उस दिन टिकाटूली जाकर दो बार हाथ उठाया था, उसका अर्थ क्या है? उन्होंने माँ को उठाकर बैठाया और माँ का हाथ ऊँचा कर माप लेकर देखा तो सवा दो हाथ ऊँचाई निकली, उन्हें प्रतीत हुआ कि यही मूर्ति की नाप है। वही नाप बतला दी गई। आगे चलकर माँ ने भोलानाथजी से तथा अन्य सब लोगों से वह घटना कही। माँ बोली- भोलानाथजी ने जो समझा था, वह ठीक ही है। माँ ने कहा- ''मूर्ति कितनी बड़ी है, यही बात हाथ उठाकर दिखलाई थी।'' मूर्ति का प्रबन्ध करने के लिये बाजार जाने पर सुनने में आया कि कारीगर ने एक ही मूर्ति तैयार की है, किन्तु उस समय तक उसे कोई ले नहीं गया। भक्तों ने मूर्ति को नापकर देखा तो वह ठीक सवा दो हाथ की ही निकली। सबको आश्चर्य हुआ! वही मूर्ति लाई गई। रंग देखकर माँ ने कहा-''ठीक यही रंग देखा था।'' काली-पूजा का सम्पूर्ण आयोजन हुआ। कलकत्ते से उसी दिन वीरेन्द्र दादा, सुरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी की माता, आशु और उसकी माता-सब आ पहुँचे। कीर्तन का भी उत्तम प्रबन्ध हुआ। हम लोग कई व्यक्ति पूजा का आयोजन कर रहे थे। सन्ध्या हो आई, माँ स्थिर धीर भाव

से बैठी थी। भोलानाथजी माँ को उठाकर पोखरे पर स्नान कराने को ले गये। माँ स्नान कर नूतन वस्त्र पहन आई। शरीर का जम्पर पोखरे पर ही फेंक आई। अनेक बार मैंने देखा है तालाब के भीतर जम्पर और साड़ियाँ माँ ने फेंक दी हैं। अनेक बार हम लोग देखते हैं कि सन्ध्या समय माँ एकदम निश्चल पत्थर की मूर्ति के तुल्य बैठी रहती, नेत्रों के पलक तक न गिरते। उस दिन तो और भी कुछ विशेष अवस्था थी। किसी प्रकार पोखरे से आकर पूजा-गृह में जा बैठी। सम्पूर्ण साज-सामग्री तैयार थी, भोलानाथजी माँ से पूजा करने के लिये कह रहे थे। कमरे में लोगों की अथाह भीड़ थी, तिल रखने को भी जगह न थी। कीर्तन के कमरे में भी वैसी ही भीड़ थी। कीर्तन हो रहा था। माँ ने भूमि पर बैठकर ही पूजा आरम्भ की। बायें हाथ से पूजा करने लगी। थोड़ी देर तक पूजा करने के अनन्तर ही सहसा उठ खड़ी हुई एवं भोलानाथजी की ओर देखकर बोली- ''मैं बैठती हूँ, तुम पूजा करो।'' यह कहते ही अट्टहास कर पलक भर में सबके ऊपर से घूमकर एकदम काली मूर्ति से सटकर बैठ गई। पहले भोलानाथजी और हम सबने समझा था कि माँ हटकर बैठेंगी। भोलानाथजी से काली पूजा करने को कह रही थी। भोलानाथजी भी कह उठे थे- ''मैंने पहले ही कह दिया था कि मैं पूजा नहीं कर सकूँगा।'' किन्तु बात पूरी होने के पहले ही उक्त अवस्था देख सब लोग दाँतों तले अँगुली दबाने लगे। एक मुहूर्त में माँ के शरीर के कपड़े भी गिर पड़े। चंचल जीभ बाहर निकल गई, पिताजी 'माँ-माँ' कहकर ऊँचे स्वर से पुकार उठे। भोलानाथजी पूजा के आसन पर बैठकर दोनों हाथों से पुष्पांजलि दे रहे थे। मुहूर्त में ही जीभ भीतर चली गई एवं माँ भूमि पर पट होकर लेट गई। इतनी घटनाओं के घटने में अत्यन्त ही स्वल्प समय लगा। सबके कुछ सोचने या बोलने के पहले ही सब घटनायें घट गई। वृन्दावन नाम के एक वकील थे, वे पूजा के कमरे में ही थे। माँ के घूमकर जाते समय वे निकट ही थे। थोड़ा ताप का उन्हें अनुभव हुआ था और बेहोश होकर वे गिर पड़े थे इधर माँ मुँह के बल पट होकर पड़ी-पड़ी कह रही थी- ''सभी लोग नेत्र बन्द कर लो।'' सभी ने नेत्र बन्द कर लिये। माँ उसी तरह पड़ी-पड़ी कह रही थी- ''महादेइया आँखें खोले हैं।'' महादेइया बगीचे के माली की स्त्री थी, वह कमरे के बाहर कुछ दूरी पर पेड़ के नीचे खड़ी थी। माँ कैसे देख रही थी, यह कौन

जाने? उससे कहने पर उसने भी नेत्र बन्द कर लिये। बहुत देर बाद भोलानाथजी के आदेश से सबने आँखे खोलकर देखा तो माँ काली-मूर्ति के समीप में ही बैठी थी, क्या दिव्य आनन्दमयी मूर्ति थी, मानो राजराजेश्वरी हों, फूलों से सारा शरीर भर गया था। भोलानाथजी फूल और बेल के पत्तों से माँ की पूजा कर रहे थे। कुछ देर बाद पूजा समाप्त हो गई।

काली पूजा का हवन

हवन आरम्भ होने का समय आया। माँ ने अत्यन्त अस्पष्ट भाषा में धीरे से कहा- ''आज की पूजा में हवन अनावश्यक है।'' तदुपरान्त बोली- ''उन्होंने आयोजन किया है, हो।'' हवन भी हुआ। वीरेन्द्र दादा ने भोलानाथजी से कहा- ''आज हम सभी लोग माँ के चरणों में पुष्पांजलि चढ़ाना चाहते हैं। उन्होंने अनुमति दे दी। उस दिन बहुत लोगों ने पुष्पांजलि दी। बहुत देर बाद भोलानाथजी और माँ भोजन करने बैठे। उन सब अवस्थाओं को देखकर हम लोगों ने मन ही मन निश्चय किया कि आज से माँ को सदा उसी भाव से देखेंगे। किन्तु उपाय क्या था? फिर जब माँ साधारण भाव से बातचीत करती, हँसी ठट्टा करती तभी उसे सब भूल जाते। माँ का भोजन हो जाने पर सभी ने प्रसाद पाया। प्राय: सभी माँ को प्रणाम कर विदा हुये। केवल हम कुछ लोग रह गये थे। अमावस्या और पूर्णिमा को भोग के दिन मैं शाहबाग ही रहती थी। माँ बैठी थी, पिताजी, वीरेन्द्र दादा, अटल दादा, नन्दू और कमलाकान्त आदि समीप बैठे थे। भोलानाथजी भी विश्राम कर रहे थे। एकाएक माँ ने मुझसे कहा- ''एक बर्तन में हवन की कुछ अग्नि उठा ला तो।'' मैं ले आई। माँ अग्नि के बर्तन को नचाते-नचाते बोली- ''देखते क्या हो, इस यज्ञ की अग्नि को महायज्ञ में लगा दूँगी।'' तदनन्तर बोली- ''अच्छा, इस अग्नि को लेकर कालीजी के कमरे में कौन बैठ सकता है?'' वीरेन्द्र दादा बोल उठे- ''ना माँ, मैं बैठ न सकूँगा, मेरा अभी तक संसार में कर्तव्य ज्ञान है।'' फिर भी माँ ने कहा- ''कौन बैठ सकता है?'' पिताजी मालूम पड़ता है झपकी ले रहे थे। उन्होंने जागकर उक्त बात का तात्पर्य भली-भाँति समझा या नहीं मैं नहीं जानती। बोले- ''मैं बैठ सकता हूँ, भय किस बात का? काली के मन्दिर में बैठे रहने में किसी को डर लगेगा कि नहीं ये ही सब बातें इससे पहले उन्होंने सुनी थी, तदुपरान्त थोड़ी तन्द्रा-सी आ गई थी। माँ उक्त कथन सुनते ही बोली-

''ठीक तो है, बाल-बच्चों से पूछो।'' बच्चों ने कहा- ''अच्छा तो है। बाबा कर सकें तो अच्छा ही है।'' उसी समय माँ ने पिताजी के हाथ में अग्नि का बर्तन दे दिया और कालीजी के कमरे में जाकर उनसे बैठने को कहा। पिताजी उसी समय जाकर बैठ गये। हम सब लोगों से चले जाने को कहने पर हम सब चले गये। तदुपरान्त माँ एक कम्बल स्वयं ही पिताजी के थोड़ा विश्राम करने के लिये बिछा आई। तभी से चार-पाँच महीने तक पिताजी इस तरह उसी कमरे में रहे। अग्नि की रक्षा करते थे। दोपहर में एक बार मेडिकल स्कूल जाते थे। अपराह्नोत्तर लौटते समय मकान में हो आते थे। मैं दूसरे दिन एक कम्बल लाकर उस कमरे में आसन लगा आई। कमलाकान्त उसी कमरे में रहता था। दिन-रात अग्नि की रखवाली होने लगी। हम ही कई लोग अग्नि रक्षा में नियुक्त हुये।

प्रतिमा-रक्षा

दूसरे दिन काली-प्रतिमा का विसर्जन होने वाला था, महिलायें सब अपराह्न के बाद आई। निरंजन बाबू की स्त्री ने कहा- ''माँ, प्रतिमा इतनी सुन्दर है कि इसका विसर्जन करने में मुझे क्लेश हो रहा है।'' माँ ने तुरन्त कहा- ''यदि तुम्हें कष्ट हो रहा है तो रहे, विसर्जन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम कोई उसे बुला तो लाये नहीं हैं, स्वयं ही आई है। जितने दिन रहना हो रहे।'' इस तरह दूसरे के मुँह से कहला कर प्रतिमा रख ली।

कमलाकान्त

काली को प्रतिदिन लाल अढ़हुल की माला चढ़ाने का भार नवागत विक्रमपुर निवासी कमलाकान्त नामक ब्रह्मचारी के ऊपर पड़ा। कमलाकान्त ने मैट्रिक पास किया था, विवाह आदि करता न था। उसके माता-पिता कोई न थे। वह ननिहाल में पला था। बीच में वह बहुत सख्त बीमार पड़ा था। माँ की कृपा से आरोग्य लाभ कर माँ के चरणों में ही रह गया। लड़का अत्यन्त कष्ट सहिष्णु था।

कई एक घटनायें

(क) एक दिन की एक घटना का स्मरण हो आया है - एक दिन शाहबाग में जाकर मैंने देखा कि माँ बहुत अधिक खाँस रही थी, खाँसी

बंद ही नहीं हो रही थी। उस समय शीत की ऋतु थी, साँझ के समय माँ ने बाल्टी से जल डालने को कहा। जाड़े के मौसम में सन्ध्या के बाद ठंडे जल से खूब स्नान किया। कमरे में खटाई रखी थी, मुझसे खिला देने को कहा, खूब खाई और सो गई। दूसरे दिन फिर खाँसी नहीं रही।

(ख) देवधर में रहते समय नन्दू के हाथ में कितने ही फोड़े निकल आये। वह अपने हाथ से खा नहीं सकता था, मैं खिला देती थी। कलकत्ता आने के बाद एक दिन उसके हाथ में बड़ी व्यथा हुई, माँ कहीं घूमने गई थी। नन्दू को उस दिन रीस आ गई। वह माँ को अपनी जननी के तुल्य ही देखता और उसकी तरह व्यवहार करता था। माँ भी उस पर सन्तान के तुल्य ही बर्ताव करती थी। उसने रीस वश कुछ खाया नहीं, माँ ने लौटकर उससे बहुत कुछ कहा-सुना, तब जाकर उसने खाया। करुणामयी माँ भक्त के लिये कितना कष्ट सहती। उस दिन उन्होंने स्वयं ही नन्दू का घाव धो दिया। तब से प्रतिदिन ही माँ घाव धो देती थी। माँ ने कहा था- ''सात दिनों के अन्दर यह अपने हाथ से भात खा सकेगा।'' सातवें दिन हमारे घर माँ का भोग होने वाला था। भोग के पहले दिन रात्रि से ही नन्दू के पेट में दर्द होने के कारण रातभर उसे कै हुई। उसको उक्त दर्द पहले भी दो-एक बार हुआ था। उस अवस्था में वह चार-पाँच दिन केवल बार्ली और जल पीकर रहता था। दूसरे दिन माँ आई, भोग लगा, माँ बोली- ''नन्दू को बुला ला।'' उसे उस समय भीषण मतली आ रही थी, वह रोग शय्या पर ही था। किन्तु माँ के आदेश से बुला लिया गया। माँ बोली- ''आज तुम्हारे अपने हाथ से खाने की बात थी-खाओ, जितना खा सको खाओ।'' यह कहकर समीप में बैठी रही। आश्चर्य की बात है कि जो कुछ भी मुँह में नहीं दे पा रहा था। उसने घी, भात, मछली की तरकारी सब कुछ खाया। वह उस दिन चंगा हो गया। उसने अपने हाथ से खाना शुरू किया।

(ग) एक दिन एक सज्जन अपनी एक अशक्त लड़की को डॉक्टर गुरुप्रसाद बाबू की सलाह से माँ को दिखाने लाये। भोलानाथजी के माँ से कुछ कहने के लिये विशेष अनुरोध करने पर माँ के मुँह से सहसा निकला, ''बृहस्पति के दिन ले आवें।'' भोलानाथजी ने वही कह दिया। तदनुसार वे बृहस्पति के दिन आ पहुँचे। माँ उस समय भोग में पान देने के लिये सुपारी काट रही थी। उस लड़की को माँ के पास सुला दिया गया। माँ ने

एक टुकड़ा सुपारी लड़की की ओर जमीन पर फेंककर उसे लेने को कहा। लड़की ने बड़े कष्ट से उसे लिया। माँ ने भोलानाथजी से कहा–"इस वक्त इन लोगों से जाने को कह दो।" वही हुआ। दूसरे दिन लड़की के पिता ने आकर कहा–"क्या आश्चर्य है, आज सड़क पर एक बाजा जा रहा था, मेरी रुग्ण लड़की पड़े-पड़े अपने भाई-बहनों का खेल देख रही थी। एकाएक बाजा सुन वह अपनी बीमारी की बात भूलकर भाई-बहनों के साथ बाहर चली गई। इस समय वह खूब चल-फिर रही है। माँ की अपार कृपा है।" तदनन्तर एक दिन लड़की के पिता शाहबाग आकर माँ को भोग दे गये।

(घ) एक बार एक घटना और हुई थी। ढाका गेण्डरिया में एक सज्जन का लड़का बहुत अस्वस्थ था, इसलिये वे शाहबाग आये। उनके शाहबाग पहुँचने के कुछ पहले तक माँ बाहर ही बैठी थी। एकाएक उठकर घूँघट काढ़कर कमरे के भीतर चली गई, मैंने सोचा क्या हुआ? कौन आ रहा है? कुछ देर बाद देखती हूँ कि गेण्डरिया से दो भद्र पुरुष आकर माँ को ले जाने के लिये अनुरोध कर रहे हैं। रोगी मृतप्राय: तथा तीन दिनों से बेहोश था। तब मुझे मालूम हुआ कि माँ को पहले ही यह खबर लग गई थी, इसलिये वे उठकर चली गई। भोलानाथजी ने जाकर माँ से कहा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, माँ इस समय फिर विशेष आपत्ति न करती। उस मकान में गई। जाते ही दरवाजे से घर में ज्यों ही प्रवेश किया, रोगी की स्त्री ने आकर पैर छूकर चरण-धूलि ली, माँ बाधा पाकर बैठ गई। ऐसा होने पर बहुधा विपरीत फल होता है। उसके पश्चात् बहुत देर बाद माँ उठकर रोगी की चौकी के निकट जा बैठी। रोगी बेहोश था। जीभ बाहर निकली थी। उसे भली-भाँति सुलाया न था। माँ ने कहा–"भली-भाँति सुला दो।" यह कहकर स्वयं पकड़ने गई। कर्मो का क्या फेर था, वे नये लोग थे, केवल माँ का नाम सुनकर आये थे। ज्यों ही माँ भली-भाँति सुलाने के लिये उद्यत हुई त्यों ही आत्मीय लोगों में से कोई कह उठा–"हिलावें नहीं, डॉक्टर ने मना कर रखा है।" माँ ने उसी दम हाथ समेट लिया। दोनों ही बार बाधा पहुँची। किसी का कुछ दोष नहीं, वे ही कैसे जानते। माँ ने कहा–"जो होने को होता है वह इसी तरह हो जाता है।" कुछ देर बाद माँ उठकर चली आई। दूसरे दिन फिर माँ को लेने आये। माँ जाते समय पिताजी को और मुझे साथ ले गई। रोगी की अवस्था ज्यों-की-त्यों थी।

माँ वहाँ जाकर दरवाजे के पास जमीन पर बैठ गई। भोलानाथजी को अत्यन्त दु:ख हो रहा था। किन्तु माँ ने मना कर रखा था, इसलिये माँ से कुछ आग्रह नहीं कर पा रहे थे। पिताजी से जाकर उन्होंने कहा– ''आप जाकर अपनी माँ से इस रोगी के लिये जरा अनुरोध कर दें। पिताजी ने भोलानाथजी के कथन पर माँ के निकट जाकर हाथ जोड़कर ज्यों ही माँ से कुछ कहा त्यों ही माँ पिताजी की ओर इस तरह देखने लगी कि पिताजी के मुँह से फिर वचन नहीं निकला। कुछ देर बाद हम लोग चले आये।

दूसरे दिन शाम के वक्त शाहबाग फिर वहाँ से आदमी आया। माँ फिर नहीं गई, कह दिया– ''कल साँझ से पहले अब न आना।'' दूसरे दिन अपराह्न के समय माँ शाहबाग में पहले जिस कमरे में सोती थी, उस कमरे में बैठी थी। मुझसे बोली– ''रसोई घर में आग है, कुछ ले आ तो।'' मैं एक बर्तन में रखकर कुछ अग्नि ले आई। माँ ज्यों ही हाथ डालने के लिये उद्यत हुई पिताजी ने मुझे धमकाकर आग हटा ले जाने को कहा। मैं क्या करती, मैंने माँ से कहा– ''मैं दोनों (माँ तथा पिताजी) का ही आदेश पालन करने के लिये बाध्य हूँ। तुमने कहा था, इसलिये ये आग ले आई। पिताजी निषेध कर रहे हैं, इसलिये ले गई।'' यह कहकर मैंने आग हटा दी। थोड़ी देर बाद एक सज्जन आये। माँ ने उनसे कहा– ''तुम्हारे पास दियासलाई है? एक तिनका जलाओ तो।'' वह जानता न था। वह एक तिनका जलाकर जब माँ के समीप ले गया तो माँ उसमें अपने हाथ की अँगुली लगाकर बैठी रही। उनसे बोली– ''जब तक ठीक तरह से जलता है, पकड़े रहो।'' उन्होंने वैसा ही किया। जितनी देर एक तिनका जला, माँ उसमें अँगुली रखकर स्थिरता के साथ बैठी रही। सन्ध्या के बाद ही खबर मिली कि गेण्डारिया का रोगी मर गया है। उसी दिन अपराह्न के बाद उसका अंतिम संस्कार किया गया था। माँ जरा हँसते हुये बोली– ''इसलिये तो थोड़ी देर पहले मैंने अपने इस शरीर को भी जरा जला लिया, सभी तो मेरे ही शरीर हैं।'' हम लोगों को आश्चर्य हुआ।

ज्वरावस्था में मेरे शरीर पर माँ का हाथ फेरना

कई दिन बाद माँ एक दिन टिकाटूली के मकान पर कीर्तन में गई थी। रात्रि में भी वहीं रहने वाली थी। मुझे भयानक बुखार आया था। कीर्तन,

भोग आदि सब हो गये थे। सब भक्त भी विदा हो गये थे। रात्रि में सोना होगा, ऐसा माँ का विशेष भाव न था। भोलानाथजी सो गये। माँ ने उनसे पूछा-''मैं क्या करूँ?'' उन्होंने कहा-''खुकुनी को ज्वर आया है, उसी कमरे में जरा जाओ न।'' माँ वहाँ से उठकर जिस कमरे में मैं सोई थी उस कमरे में आकर जमीन पर बैठ गई। माँ जमीन पर ही बैठती। आसन देने का नियम हम लोगों का भी न था, माँ आसन पर बैठती भी नहीं थी। बहुत दिनों के बाद आसन पर बैठने का नियम हुआ है। एक आत्मीय महिला बैठकर मुझे पंखा झल रही थी। किन्तु रात्रि अधिक बीत जाने के कारण वे ऊँघने लगी थी। माँ बैठे-बैठे वह देख रही थी। कुछ देर बाद माँ ने उन्हें उठा दिया। कमरे में और कोई न था, गहरी रात थी, सभी लोग सोये हुये थे। निकट ही बरामदे में जल रखा था, माँ ने स्वयं ही बाल्टी से जल लाकर भली-भाँति मेरा सिर धो दिया। तदनन्तर आँचल से सिर पोंछ दिया। जल से जितनी ठंडी पड़नी चाहिये, पड़ी हो चाहे न पड़ी हो, पर माँ की उस करुणा से मेरा हृदय भर उठा। तदुपरान्त माँ मेरे बिछौने पर बैठकर एक हाथ से पंखा झलने लगी और दूसरे हाथ से मेरा शरीर सहलाने लगी। कुछ दिन पहले माँ ने एक दिन कहा था- ''कोई मुझे अधिक छूना नहीं।'' मैं सदा ही पीछे-पीछे रहती, इसलिये उक्त आदेश से मुझे भीषण दुःख हुआ था। एक दिन अत्यन्त कष्ट से मैंने माँ से कहा था-''इस प्रकार दूर-दूर रहना अत्यन्त क्लेशकारी है। मेरी इच्छा होती है कि मैं खूब बीमार पड़ूँ, उस समय तो तुम मेरे शरीर पर हाथ रखोगी। उस समय तो तुम्हारा स्पर्श हो सकेगा।'' इस तरह की क्या-क्या बातें की थी। उस समय माँ कह रही थी-''क्यों इस वक्त तो शरीर पर हाथ फेर रही हूँ, अच्छा लग रहा है न?'' मुझे उस समय भीषण ज्वर-पीड़ा हो रही थी। फिर भी उक्त करुणा से मुझे जो आनन्द मिला, उसका वर्णन नहीं कर सकती। थोड़ा हँसकर मैंने माँ से कहा- ''बहुत आराम और आनन्द मिल रहा है।'' यह कहकर मैंने माँ के चरणों में हाथ लगाया। भोर होते न होते ही माँ उठ गई और मेज के ऊपर चादर ओढ़कर सो गई। यही उनका साधारणतः सोने का स्वभाव था। केवल भूमि पर ही अधिकतर पड़ी रहती, जाड़ा, गर्मी, जल-कीचड़ कुछ भी न समझती जहाँ-तहाँ पड़ी रहती।

माँ के फोटो में ज्योति का आभास

आश्विन, सं. 1983- दुर्गापूजा के समय चटगाँव के शशिबाबू (श्रीयुत् शशिभूषणदास गुप्त) शाहबाग आये थे। माँ के दर्शन करने और उनका फोटो लेने की उनकी इच्छा थी। माँ उस दिन प्रात:काल से ही छत के कमरे में जाकर सोई थी। अटल दादा की बहू को बाहर बैठा रखा था। उनसे कह दिया था- "कोई भी भीतर मेरे पास न आवे।" इसी बीच में ज्योतिष दादा और शशिबाबू को साथ लेकर भोलानाथजी वहाँ उपस्थित हुये। माँ उस समय समाधि अवस्था में थी। देह से चारों ओर एक दिव्य ज्योति छिटक रही थी। समाधि से व्युत्थित होने के अनन्तर भी कुछ देर तक वह ज्योति विद्यमान थी। लेकिन वह उस समय संकुचित होकर ललाट पर सफेद बिन्दु के रूप में प्रकाशित हो रही थी। एकदम छिपी नहीं। माँ को पकड़कर फोटो खींचने के लिये निर्दिष्ट स्थान पर बैठाया गया। वे उस समय भी भावावस्था में ही थी - भली-भाँति नेत्र खोल नहीं पा रही थी। शशिबाबू बहुत-सी प्लेटों को व्यवहार में लाये थे, किन्तु सबके सब बरबाद हो गये थे। अन्तिम फोटो अच्छा उतरा था। उसमें दो विशेषतायें दिखलाई दी। एक तो माँ के ललाट पर एक गोलाकार ज्योति का चिह्न उठा। दूसरी विशेषता माँ के पीछे ज्योतिष बाबू का चित्र उठा जबकि ज्योतिष बाबू फोटो खींचते समय माँ के पीछे न थे।*

आशु की माँ की और वीरेन्द्र दादा की काली पूजा

पूर्वोक्त काली पूजा के अनन्तर ही आशु की (टिकाटूली रामकृष्ण रोड के आशुतोष वन्द्योपाध्याय की) माँ ने कोई एक स्वप्न देखकर काली पूजा की। कुछ दिनों के बाद वीरेन्द्र दादा ने भी एक स्वप्न देखा, उस पर उन्होंने भी काली-पूजा करने का निश्चय किया। सब आयोजन हो गया। बलिदान का भी निश्चय हुआ। मगर खड्ग पर धार देते समय वीरेन्द्र दादा

---

* माँ के मुख से मैंने सुना है, फोटो खींचते समय उनके मन में ज्यातिष बाबू की स्मृति जागी थी। उनके भीतर का उक्त भाव तीव्र होने के कारण स्पष्ट, घनीभूत और साकार होकर प्लेट पर प्रतिबिम्बित हुआ था। उस समय माँ एक विशेष अवस्था में थी यह बात पहले ही कही जा चुकी है। इसके पहले भी एक बार फोटो खींचते समय भावावस्था में माँ का बायाँ हाथ एक बारगी ऊपर को उठ गया था। उस फोटो में भी पूर्ण चन्द्राकार चिह्न उठा था। बहुत पहले भी एक बार फोटो में सिन्दूर के बिन्दु के बीच में एक ज्योति बिन्दु के सदृश उठी थी।

की अँगुली कट गई। खबर पाकर माँ ने कहा- ''अच्छा हुआ, मैं भी सोच रही थी, थोड़ा-सा रक्त आवश्यक था। एक बेल के पत्ते में थोड़ा रक्त रख देना।'' वैसा ही किया गया। भोलानाथजी ने पूजा की। माँ सोई रही। एक आदमी ने एक लाल साड़ी माँ को दी थी, उसे ही सिर के नीचे रखकर माँ पास ही में भूमि पर सोई थी। पूजा हो गई। बलि का सम्पूर्ण इन्तजाम हो चुका था, भोलानाथजी बलि देने गये। ज्यों ही बलि देने को तैयार हुये, त्यों ही माँ एकाएक हड़बड़ाती हुई उठकर दौड़ी गई और बकरे के गले पर हाथ रखकर बैठ गई। उनका अस्त-व्यस्त वेश और नेत्र मानो झकझका रहे थे। भोलानाथजी की ओर निहारकर माँ ने कहा-''बलि नहीं दे सकोगे।'' सभी अवाक् थे, भोलानाथजी ने खड्ग नीचे कर लिया। माँ ने बकरे के शरीर पर हाथ फेर दिया। माँ क्या करती हैं, यह सभी देख रहे थे। उन्होंने आशु को बुलाया और उससे उनके सिर के नीचे जो लाल साड़ी थी, उसे पहनकर आने को कहा। उसके लाल साड़ी पहनकर आते ही उसके कपाल पर सिन्दूर का टीका लगा दिया। अनन्तर माँ ने आशु की माँ से कहा- ''तुम लड़के को छोड़ सकोगी?'' वे राजी हो गई। बोली- ''तुम यदि कहो तो छोड़ सकती हूँ।'' तब माँ ने कहा- ''केवल अकेले तुम्हारा ही तो लड़का नहीं है, लड़के के पिता (यतीन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय) क्यों छोड़ेंगे?'' यह कहकर जरा हँसते हुये आशु से बोली- ''बकरे को गोद में रखकर मेरे साथ चल।'' कहते ही माँ ने चलना आरम्भ कर दिया, साथ-साथ हम भी कई लोग उजाला लेकर चले, आशु भी बकरे को गोद में लेकर चला। वर्तमान रमनाश्रम के पीछे की ओर मैदान में जो एक गोल पोखरा है, माँ ने उसके निकट जाकर बकरे को छोड़ देने को कहा और बकरे के सम्पूर्ण शरीर पर अपना पैर उठाकर फेर दिया, और शाहबाग की ओर लौट चली। बकरा माँ के पीछे-पीछे चला। माँ जाकर जहाँ बैठी, बकरा भी वहीं उनके पास ही बैठा। पूजा हो गई, सब लोग प्रसाद पाकर विदा हुये। बकरा शाहबाग ही रह गया। तदनन्तर उक्त बकरा कीर्तन के समय माँ की गोद के निकट बैठा रहता। रात्रि में माँ की चौकी के नीचे जाकर सो जाता। अक्सर वह माँ के पीछे-पीछे ही रहता। एक दिन बहुत जाड़ा पड़ रहा था, माँ ने एक कम्बल बकरे के शरीर पर डालकर उसे सुला दिया और बोली- ''पूर्व जन्म में वह कम्बलधारी ही था, इस जन्म

में भी शरीर पर कम्बल पड़ गया।'' वीरेन्द्र दादा ने बहुत बार पूछा था– ''यह बकरा कौन था?'' बातचीत के सिलसिले में एक दिन माँ ने कहा था, ''सन्यासी था।'' तदुपरान्त मैदान में घास चरकर बकरा खूब मोटा ताजा हो उठा। एक बार माँ के ढाका के बाहर जाने पर बकरा अहाता लाँघकर कहीं चला गया।

कालीजी का स्थान–परिवर्तन

कुछ दिनों के बाद माँ ने काली की मूर्ति को गोल कमरे से दालान के कोने के कमरे में ले जाने को कहा। उक्त दालान में वे पहले रहती थी। माँ के आदेश से बहुत तड़के भोर में योगेश बाबू, सुरेन्द्र बाबू, विनय बाबू आदि स्नान कर मूर्ति को गोल कमरे से उठा ले गये। उसी दिन रात्रि में भीषण आँधी आई जिससे गोल कमरे का दरवाजा टूट गया और काली की मूर्ति जहाँ पर स्थापित थी, वहीं पर गिर गया। उस समय सभी के समझ में यह आया कि माँ ने मूर्ति क्यों हटाई थी।

कीर्तन में धूप की बात

पहले–पहले कीर्तन में धूप नहीं जलाई जाती थी। एक दिन कीर्तन के समय खूब धूप की सुगन्धि प्रकट हुई। कीर्तन के बाद भी सारे बगीचे में धूप की गन्ध का सभी को अनुभव हुआ। उस वक्त एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि ''इतनी धूप की सुगन्ध कहाँ से आई है? धूप तो जलाई ही नहीं गई।'' इस पर जटू बोला– ''क्यों, मैंने तो कीर्तन के समय खुकुनी दीदी को धूप जलाते देखा था।'' पर वास्तव में धूप जलाई नहीं गई थी। तभी से माँ ने आदेश दिया, ''कीर्तन में प्रतिदिन ही धूप जलाई जाय।''

माँ की अवस्था का परिवर्तन

माँ की अवस्था देखते तो दिन पर दिन मानो उनका काम करना बन्द होता जा रहा था। रसोई बनाते समय हाथ टेढ़ा हो जाने लगा था। माँ कहती– ''देख, गृहस्थी को मैं नहीं छोड़ रही हूँ, गृहस्थी ही मुझे छोड़ रही है।'' घर का कामकाज, सेवा कुछ भी माँ ने स्वेच्छा से नहीं छोड़ा। किन्तु सबने मानो माँ को छोड़ दिया। भोलानाथजी की सेवा सब अपने हाथ से ही करती। असमर्थ होने पर भी भोलानाथजी के कहने पर बायें

हाथ से ही बड़ी कठिनाई के साथ रसोई बना डालती थी। एक दिन हमारे टिकाटूली के मकान में रात्रि में भोजनोपरान्त भोलानाथजी ने खाट पर लेटकर माँ से कहा- ''पैर दबा देना तो।'' माँ पैरों के नीचे बैठकर पैर दबाने लगी। मगर हाथ मुड़ जाने लगा, दबा न सकी। भोलानाथजी सोये थे। इसलिये उन्होंने उक्त अवस्था देखी नहीं, अतः वे बोले- ''जरा जोर लगाओ न।'' ज्यों ही उन्होंने ऐसा कहा, माँ तुरन्त ही बच्चें के समान ऊँचे स्वर से रोने लगी एवं रोते-रोते बोली- ''मैं नहीं कर पा रही हूँ यह तुम नहीं जानते हो।'' तुरन्त ही भोलानाथजी उठ बैठे और बोले- ''जरूरत नहीं है।'' किन्तु सुने कौन? रोते-रोते माँ समाधिस्थ हो गई। सारी रात उसी तरह बीती, दूसरे दिन सवेरे बहुत दिन चढ़ने पर माँ को उठाया गया। तदुपरान्त शाहबाग चली गई। इस प्रकार प्रत्येक काम छोड़ती जा रही थी। कभी शायद एक-आध काम करने की चेष्टा भी करती तो वह सहसा हो जाता था, काम-काज करना प्रायः बन्द हो गया था। एक दिन बिना खाये ही कितने ही काम श्रान्ति-क्लान्तिविहीन होकर किये हैं, आज बहुत से कामों के रहते भी उनका उनकी ओर ध्यान ही नहीं है, करने के लिये उद्यत होने पर ठीक-ठीक नहीं होता है। गिनकर केवल नौ भात (पके चावल) खाती, तदुपरान्त तीन भात खाने का नियम भी बहुत दिन चला। आश्चर्य की बात है कि तीन भात से अधिक भात का एक कण भी गले के अन्दर जाने पर भी उसे बाहर फेंक देती, निगल ही न सकती। यह जो तीन भात खाने की बात कही है उससे अधिक कुछ भी नहीं खाती थी।

ढाका – पारुलदिया गमन

कुछ दिनों के बाद पारुलदिया रायबहादुर के मकान में माँ और भोलानाथजी को ले गये- साथ में मैं गई। पहले की तरह प्रायः रोज ही मुझे ज्वर आ जाता था, मैं कोई औषध नहीं लेती थी। माँ जल-भात, दही-भात जो खाने को कहती वही खाती थी। ज्वर में ही पारुलदिया गई। मैं विशेष सोती न थी, माँ के साथ-ही-साथ घूमती थी। पारुलदिया में माँ ने मुझसे और भोलानाथजी से कहा- ''चलो, हम पोखरे में स्नान कर आवें।'' ज्वर में माँ के साथ स्नान कर आई। 2-3 महीने का ज्वर स्नान करने के अनन्तर ही टूट गया, फिर नहीं आया। जाकर देखा तो काली

पूजा होने वाली थी, सब लोग माँ से पूजा करने के लिये अनुरोध कर रहे थे। माँ राजी नहीं हो रही थी। पुरोहित का प्रबन्ध करने की चेष्टा की गई थी। किन्तु किसी घटना से पुरोहित मिला नहीं। अगत्या, भोलानाथजी के कहने पर माँ पूजा करने के लिये राजी हुई। माँ ने पूजा की, भोलानाथजी ने भी हवन आदि करके पूजा में सहायता पहुँचाई। उक्त घर के स्त्री-पुरुषों में बहुत से विलायत हो आये थे, इसलिये उक्त घर में पूजा का कोई सिलसिला न था। माँ का सत्संग मिलने के कारण ही उस पूजा का आयोजन हुआ था।

राजदिया तथा अन्यान्य गाँवों में गमन

भोर में पिताजी पारुलदिया आ पहुँचे। उसी दिन हम लोग वहाँ से रवाना होकर चले आये। माँ नाव से आई, पिताजी भी साथ थे। पिताजी ने माँ से अनुरोध किया, ''बहुत ही निकट हमारा मकान है, एक बार पूर्वजों की थाती पवित्र कर जाओ।'' भोलानाथजी राजी हो गये, पिताजी माँ को अपने मकान राजदिया गाँव में ले गये, वहाँ भोग हुआ। भोग के अनन्तर ही माँ रवाना हुई। पिताजी भी ढाका चले गये। भोलानाथजी, माँ और मैं -तीनों वहाँ से सीतानाथ कुशारीजी के मकान में (मरणी के मकान में) गये। राजदिया से थोड़ी दूर पर भोलानाथजी का मकान है, हम लोग वहाँ भी गये। मकान में उस समय कोई न था। माँ मकान में ठहरी नहीं। भोलानाथजी और हम लोग देख आये। कुशारीजी माँ के प्रति देवी के तुल्य श्रद्धा रखते थे। माँ को पाकर उन्होंने अपने को कृतार्थ माना और माँ के समीप बैठकर सप्तशती का पाठ किया। वहाँ पर भी कोई एक पूजा हुई। पूजा के पहले ही हम लोग ढाका चले आये। राजदिया से माँ एक भक्त के अनुरोध पर आटसाही गाँव में भी गई थी।

पुनः पारुलदिया गमन-रायबहादुर की माता का श्राद्ध

अगहन, 1983- कुछ दिनों के बाद रायबहादुर की माता के श्राद्ध के उपलक्ष्य में माँ को पुनः पारुलदिया ले गये। उस बार भी मैं, भोलानाथजी और एक माली माँ के साथ गये। रायबहादुर ने नवीन डाक्टरी दवाखाना तथा डॉक्टर के रहने के लिये मकान बनवाया था। उन्होंने उसी मकान में रहने के लिये माँ को स्थान दिया। हम तीन जनों की रसोई वहीं बनती

थी। रायबहादुर ने माँ से कहा–''हमारे कुलगुरु नहीं हैं, मैं आपको ही अपना कुलगुरु समझता हूँ। इसलिये जननी का श्राद्ध करने के लिये बैठते समय आप सामने बैठी रहें, ऐसी मेरी अभिलाषा है।'' वैसा ही हुआ। किन्तु जननी का श्राद्ध करते समय भी रायबहादुर पायजामा और सर्ट पहनकर ही बैठे। एक तो बुड्ढ़े थे, दूसरे सदा उन्हें पहनकर रहने का अभ्यास था। पुरोहित को भी पायजामा छोड़ने को कहने का साहस नहीं हुआ, उसी तरह कर्म करा रहे थे। किन्तु माँ ने वैसा देखकर पुरोहित से कहा– ''इन सब कर्मों के समय क्या कुर्ता आदि पहना जाता है?'' पुरोहित ने कहा– कुर्ता पहिनना तो ठीक नहीं है, किन्तु ये नंगे बदन बैठ नहीं सकते, इसलिये कुछ नहीं कहा। रायबहादुर ने भी कहा– ''मुझे सर्दी लग जाती है, इस भय से मैंने कपड़ा नहीं छोड़ा।'' माँ ने तुरन्त कहा–''इन सब श्राद्ध के कामों में कुछ नहीं होता, सब खोल डालना ही ठीक है, कुछ नहीं होगा।'' रायबहादुर ने कहा–''आप जो कहेंगी वही करूँगा।'' यह कहकर सब कपड़े उतारकर धोती पहनकर तथा शरीर पर दुपट्टा ओढ़ कर ही बैठे। सन्ध्या के बाद सब काम सम्पन्न हो जाने पर वे माँ से बोले–''दिन भर इस तरह खुले बदन मैं कभी नहीं रहता हूँ, थोड़ी देर भी यदि खुले बदन रहता हूँ तो बीमार पड़ जाता हूँ, किन्तु आज आपके कहने से मुझे कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि अधिक स्वस्थ हूँ।'' माँ के आदेश से उस रात में कीर्तन का बन्दोबस्त हुआ। खूब कीर्तनादि हुआ। छोटी–छोटी लड़कियों से (रायबहादुर की पोतियों से) माँ ने कहा– ''तुम लोगों को तो श्राद्ध में और कुछ करना नहीं है। तुम लोग आज सारी रात अखण्ड नाम कीर्तन करो। इस कीर्तन के बाद ही उनका नाम–कीर्तन होगा, यह निश्चित हुआ। भ्रमर ही सबसे बड़ी थी, वही नाम–कीर्तन करने वाली थी। कीर्तन में माँ को खूब भाव हुआ। उन्होंने सारे मकान की प्रदक्षिणा की। माँ की क्या सुन्दर मूर्ति थी, केश अस्त–व्यस्त हुये थे, कमर पर कपड़ा बाँधा था– नेत्रों में अपूर्व चितवन थी। जहाँ पर मिठाई बन रही थी, वहाँ जाकर हलवाइयों से भी माँ ने नाम–कीर्तन करवाया। मुसलमान एक ओर खड़े थे। उनके निकट जाकर अल्ला के नाम का स्वयं ही उच्चारण किया और उनसे करवाया। रायबहादुर और उनके पुत्र–पौत्र सभी नामोच्चारण करने लगे। इससे पूर्व उस मकान में किसी ने हरि का नाम तक सुना न था। उस दिन उक्त परिस्थिति देखकर

सबको आश्चर्य हो रहा था। माँ के आदेश से रायबहादुर ने हाथ में धूपदानी लेकर कीर्तन के चारों ओर प्रदक्षिणा की। उस दिन वे न जाने किस एक शक्ति से उन सब कामों को करने के लिये बाध्य हो रहे थे। उससे पहले वे यह सब कुछ मानते न थे। कीर्तन में नाम बंद होते न होते ही माँ ने मेरा मुँह जोर से दबाकर कान के निकट केवल इतना ही कहा – ''नाम'' और अधिक बोल न सकी, उस समय भी माँ प्रकृतिस्थ नहीं हुई थी। मैंने समझा माँ ने मुझसे मौनी होकर नाम-जप करने को कहा है। वही करने लगी। कीर्तन बन्द हुआ।

हम लोग माँ को साथ लेकर उनके रहने के लिये जो स्थान निर्दिष्ट था, वहाँ गये। सभी लोग साथ-साथ जाकर पहुँचा गये। माँ की अवस्था देखकर सब लोग मुग्ध थे। मैं मौन होकर नाम-जप कर रही थी। इधर लड़कियाँ खा-पीकर नाम-कीर्तन करने आई। वे सब बहुत देर तक नाम-कीर्तन करने के उपरान्त सो गई, माँ ने मुझसे नाम-कीर्तन करने को कहा था। ऊँघने लगूँगी इस भय से मैं टहलते-टहलते नाम-कीर्तन करने लगी। बहुत तड़के ही उठकर माँ ने नाम-कीर्तन करना आरम्भ किया एवं भ्रमर तथा अन्यान्य लड़कियों को उठा दिया। कुछ नाम-कीर्तन होकर बन्द हुआ। इधर ढाका में न मालूम किस उपलक्ष्य में ठीक स्मरण नहीं है, कीर्तन शुरू हुआ था, शायद सोमवार या बृहस्पतिवार से कीर्तन होने वाला था। पिताजी काली पूजा के दिन से शाहबाग थे। माँ मुझे साथ ले आई। कमलाकान्त को उनकी सेवा के लिये रख आई थी। माँ के आदेश से ही पिताजी को टेलिग्राम किया गया कि माँ के ढाका लौट आने तक कीर्तन बन्द न हो। पिताजी मेडिकल कॉलेज के लड़कों तथा अन्यान्य लोगों के द्वारा कीर्तन चला रहे थे। कीर्तन के तीसरे दिन हम लोग माँ के साथ ढाका जा पहुँचे। सड़क से ही कीर्तन सुनाई दे रहा था। माँ गाड़ी के भीतर ही समाधिस्थ हो गई। ज्यों ही गाड़ी कीर्तन के कमरे के सामने जाकर खड़ी हुई त्यों ही सब लोगों ने आनन्द से और भी ऊँचे स्वर से कीर्तन करना आरम्भ किया एवं गाना शुरू किया, ''माँ हमारे घर में आई, हरि बोलो हरि बोलो।'' महान् आनन्द से वे नाच-नाचकर गाने लगे। इधर माँ को किसी तरह गाड़ी से उतारा गया। माँ कीर्तन के मध्य में जाकर लम्बी हो भूमि पर लोट गई। हमने देखा निर्मल बाबू काशी से श्यानी-पूजा करने के लिये ढाका आये

हैं।* दीदी, निर्मल बाबू, सभी उक्त दृश्य देखकर मारे आनन्द के मुग्ध होकर निहारते रहे। सभी के नेत्र सजल थे। बहुत देर बाद माँ कुछ सुस्थिर हुई।

निर्मल बाबू को सरस्वती के रूप में मातृदर्शन

एक दिन भोर में निर्मल बाबू शाहबाग गये । उसके पहले दिन रात्रि में हम सभी लोग माँ के निकट थे। माँ ने सबसे नाम-कीर्तन करने को कहा- साथ-साथ माँ ने भी बहुत देर तक नाम-कीर्तन किया। सारी रात नाम-कीर्तन में बीत गई। दूसरे दिन प्रातःकाल निर्मल बाबू एकाएक शाहबाग के दरवाजे पर जाकर ज्यों ही खड़े हुये, माँ भी उठकर दरवाजे पर जा खड़ी हुई। उस समय माँ के चरण स्पर्श का निषेध था। किन्तु निर्मल बाबू दो अढ़हुल के फूल ले आये थे। उन्होंने अपने भक्ति-भाव में विभोर होकर एक अढ़हुल माँ के चरणों में और एक माँ के सिर पर चढ़ा दिया एवं चरणों में मस्तक टेककर प्रणाम किया। साथ-साथ निर्मल बाबू की स्त्री तथा और भी दो-एक भक्तों ने माँ को प्रणाम किया। माँ ने कुछ नहीं कहा। माँ को इस प्रकार प्रणाम ग्रहण करते देखकर और भी दो-एक भक्त दौड़कर प्रणाम करने गये, किन्तु माँ के उस स्थान से चली जाने के कारण पुनः उन्हें प्रणाम करने का साहस नहीं हुआ। माँ ने दोनों फूल हाथ में रख लिये। अनन्तर जब पूजा के फूल तोड़ने के लिये डलिया लेकर आदमी शाहबाग में गया तब माँ ने उस डलिया में उक्त एक निवेदित फूल डाल दिया एवं निर्मल बाबू से कहा- ''तुम्हारा फूल मैंने पूजा के फूलों की

---

* इसी अगहन के महीने में निर्मल बाबू ने (निर्मलचन्द्र चट्टोपाध्यायजी ने) माँ के पहले-पहल दर्शन किये थे। उन्होंने माघ के महीने में पिताजी के टिकाटूली के मकान में आकर रयानी-पूजा की। पूजा के अवसर पर माँ टिकाटूली के मकान में चार दिनों तक रही। वहाँ शाहबाग से वापस जाने के दिन सीढ़ी से उतरते समय पैर में चोट आने के कारण पैर के तलवे की हड्डी टूट गई। माँ सात दिन तक चौकी पर ही बैठी रही- उतरी नहीं और खाया भी नहीं। इस पैर में चोट आने का रहस्य क्या रहा? उसके सम्बन्ध में पीछे एक दिन माँ ने प्रसंगतः कहा था-''देख उस पूजा के समय जब बकरे की बलि दी गई थी, उस समय बकरे का कान कट गया था। पूर्णरूप से गला कटने के पहले कान कट जाने पर बलि की अङ्गहानि हुई। उक्त दोष की निवृत्ति की कोई विधि पुरोहितजी बतला न सके। किन्तु जब पिताजी के मङ्गल के लिए पूजा हुई उस समय बलि में अङ्गहानि होने पर यह तो अशुभ फलप्रद घटना हुई ऐसा विचार मेरे मन में आया। इसलिए इस शरीर में इस प्रकार चोट लग गई। ऐसा ही हो जाता, मैं तो अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती हूँ। जो इस शरीर पर निर्भर रहते, कभी उनके किसी प्रकार के अमंगल की आशंका होने पर इस शरीर के ऊपर ही कुछ न कुछ हो जाता।

डलिया में डाल दिया है।'' निर्मल बाबू ने भी उत्तर में कहा- ''ठीक है तुम्हारी जहाँ इच्छा हो डालो।'' इस घटना के कुछ देर ही बाद माँ सिद्धेश्वरी चली गई। माँ के साथ-साथ बहुत से लोग पैदल सिद्धेश्वरी गये। वहाँ जाकर माँ सिद्धेश्वरी के आसन पर बैठी। कुछ देर बाद धानाकोड के जमींदार की मोटर से माँ का शाहबाग आना हुआ। निर्मल बाबू एवं अन्यान्य भद्र पुरुष पैदल शाहबाग आ रहे थे। उस समय लगभग 10 बजे होंगे। उस साफ सूर्य के प्रकाश में निर्मल बाबू ने देखा नाचघर के एक खम्भे के सहारे मानो सरस्वती-मूर्ति खड़ी हैं। कुछ निकट आते ही निर्मल बाबू को प्रतीत हुआ कि माँ ही उस मूर्ति के रूप में खड़ी हैं। निर्मल बाबू ने कहा कि इतना गौर वर्ण मैंने और कभी नहीं देखा। वे खूब स्थिर प्रकृति के व्यक्ति थे, किन्तु उक्त घटना से उन्हें इतना आश्चर्य था कि उसी समय उन्होंने सब लोागें से वह घटना कह डाली।

कुलदा वन्द्योपाध्याय का वृत्तान्त

सुनने में आया कि कुलदाकान्त वन्द्योपाध्याय नाम के एक भद्र पुरुष कीर्तन के आरम्भ से ही नहीं खा रहे हैं। उनका संकल्प था कि कीर्तन समाप्त होने एवं माँ के लौट आने पर जल-ग्रहण करूँगा। बहुत दिन पहले एक बार वे माँ के दर्शन कर गये थे फिर आये नहीं। इधर कुछ दिन पहले पुनः आये हैं। तीन दिन से आकर माँ के दर्शन किये बिना जल तक नहीं पी रहे हैं। उन्होंने आकर माँ को प्रणाम किया एवं माँ की अनुमति लेकर जल-पान किया। वे अत्यन्त निष्ठावान तथा कष्टसहिष्णु पुरुष हैं। वे इस समय सर्वथा गृहत्याग कर आश्रमवासी हुये हैं। सम्वत् 1992 के ज्येष्ठ महीने में योगेश दादा के उत्तरकाशी जाने पर वे ही अन्नपूर्णा मन्दिर के पूजन तथा होमादि कार्य में नियुक्त हुये। आश्रम बनने के बाद उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र को भी आश्रम में ब्रह्मचारी बना दिया। सिद्धेश्वरी आश्रम में ही लड़के का यज्ञोपवीत हुआ।

यज्ञाग्नि रक्षा तथा काली पूजा की व्यवस्था

इस प्रकार माँ की लीला चलने लगी। पहले-पहले काली प्रतिमा की पूजा प्रतिदिन कुछ विशेष नहीं होती थी। कमलाकान्त माला चढ़ाया करता था और पिताजी प्रतिदिन गीता तथा दुर्गासप्तशती का पाठ किया करते थे।

पिताजी जिस समय काली मन्दिर में रहते थे; उस समय नियमानुसार गीता और सप्तशती का पाठ करते थे एवं निज की सन्ध्या, पूजादि करते थे। माँ कहती- "यह तो पूजा हो रही है।" पारुलदिया से मुझे मौनी बना लाने के बाद से दिन-रात काली मन्दिर में यज्ञाग्नि की सन्निधि में एक व्यक्ति को मौनी होकर नाम-कीर्तन करना पड़ता था। कमलाकान्त को, मुझे और एक स्त्री को पारा-पारी से इस काम का भार सौंपा गया। दिन-रात अग्नि रक्षा और नाम-कीर्तन करना पड़ता। एक दिन रात को बारह बजे से तीन बजे तक कमलाकान्त ने अग्नि रक्षा की थी। तीन बजे के उपरान्त मुझे रखवाली करनी थी, तीन बजे के समय पिताजी भी उठकर अपने कृत्य में बैठे। मैंने 3 बजे उठकर देखा तो कमलाकान्त की असावधानी से आग बुझ गई थी। मैंने दौड़कर माँ को खबर दी। भोलानाथजी ने बड़ी कोशिश से माँ को जगाया, माँ ने सब समाचार सुनकर भोलानाथजी को और मुझे साथ लेकर दरवाजा बन्द कर दिया। तदनन्तर माँ के कथनानुसार भोलानाथजी ने अग्नि प्रज्वलित की। किस प्रकार अग्नि जलाई गई यह बात प्रकाशित करने का हम लोगों को निषेध कर दिया। एक धूपदानी की अग्नि मेरे समीप रखकर माँ ने कहा-"सात दिन तक सर्वथा मौनी होकर तुम इस अग्नि की रक्षा करो। मैं वैसा ही करने लगी। सात दिन के बाद शाहबाग में तालाब के किनारे एक कुण्ड बनाकर माँ और भोलानाथजी ने उसमें अग्नि की स्थापना की। उसी समय से कुलदा दादा को उक्त अग्नि में कुछ कृत्य करने का आदेश हुआ। कभी-कभी उस अग्नि में चरु आदि का पाक होता था। कुलदा दादा उसे ही खाकर रहते थे। काली-पूजा और हवन का भार उस समय से शनैः-शनैः कुलदा दादा के ऊपर पड़ा।* किन-किन नियमों से वह करना पड़ता, यह सब वे ही जानते थे; सर्वसाधारण में उसका प्रकाश नहीं होता था। माँ जिस काम का भार जिसे सौंपती उस कार्य के विषय में उसी से कहती, सबके निकट सब बातें प्रकट नहीं की जाती।

* * *

---

* वे प्रतिदिन काली-पूजा और हवन का उक्त काम पूर्ण कर गहरी रात को अकेले तीन-चार मील दूर घर लौट जाते थे। उपवास कर, फल खाकर एवं समयानुसार माँ की सम्पूर्ण व्यवस्थाओं का पालन करते चलते थे।

पाँचवाँ अध्याय

महाकुम्भ दर्शन के लिये हरिद्वार यात्रा

फाल्गुन सं. 1983– उस बार हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ था। निश्चय हुआ कि माँ और भोलानाथजी हम लोगों को लेकर कुम्भ-स्नान के लिये जायेंगे। इधर हवन और काली-पूजा का बन्दोबस्त हुआ। माँ के साथ हम लोगों ने सम्वत् 1983 के फाल्गुन में हरिद्वार को प्रस्थान किया। पिताजी, मैं, कलकत्ते के राजेन्द्र कुशारी और उनकी स्त्री, मटरी बुआ, नानीजी, नानाजी – सभी उस अवसर पर तीर्थयात्रा के लिये बाहर निकले। कलकत्ता गये। भाग्यकुल के कुण्डुओं के एक खाली मकान में राजेन्द्र कुशारी ने माँ के रहने का प्रबन्ध किया था। हम लोगों के साथ लगभग 18-20 आदमी थे। इस कारण किसी के मकान में ठहरना उचित प्रतीत नहीं हुआ। राजा जानकीनाथ राय के पुत्र योगन्द्र बाबू माँ के दर्शन कर माँ के प्रति अत्यन्त श्रद्धान्वित हुये। एक दिन उन्होंने अपने निजी मकान में माँ को ले जाकर कीर्तन किया। माँ का खूब भाव हुआ। वहाँ बहुत लोग इकट्ठे हुये थे। रायबहादुर भी उस समय कलकत्ता थे-उनके प्रयत्न से ढाका की नवाबजादी प्यारीबानू के मकान में भी कीर्तन हुआ। वे ही शाहबाग की मालकिन हैं। रायबहादुर, प्यारीबानू के ही मैनेजर थे। वहाँ भी माँ का खूब भाव हुआ, नवाबजादी ने अपने बाल-बच्चों के साथ हरिनाम-कीर्तन किया। आगे भी बहुत दिन उस मकान में कीर्तन हुआ। वे माँ को अत्यन्त श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखती थी। वहाँ भी बहुत लोग एकत्र हुये थे।

माँ के भाव में परिवर्तन

उस समय माँ की एक नवीन अवस्था हुई थी। वे नाव पर चढ़ नहीं सकती थी, नौका पर चढ़ते ही जल की लहरों के साथ-साथ कैसी विलक्षण हो जाती थी, जल में कूद पड़ना चाहती थी। पकड़कर रखना महा कठिन हो जाता था। माँ ने आगे चलकर कहा था– ''जल इस तरह मुझे अपनी ओर आकृष्ट करता है कि मानो शरीर जल के साथ मिल जाना चाहता है, कुछ भी भेद-ज्ञान नहीं रहता था।'' फिर एक दूसरा भाव हुआ था– दुतल्ले

पर चढ़ न सकती थी। चढ़ते ही समाधिस्थ हो पड़ती। सीढ़ी पर पैर न रख सकती, शून्य में पैर रखने जाती और गिर पड़ती। उक्त भाव के वर्णन के सिलसिले में एक दिन माँ ने कहा था– ''शरीर को शून्य आकृष्ट करता है। जैसे वायु शून्य के भीतर मिला है वैसे ही शरीर शून्य में मिल गया है, ऐसा प्रतीत होता है। उस समय दूसरा कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है, इस कारण सीढ़ी पर पैर नहीं रख सकती हूँ।'' उन्हें यदि दुतल्ले पर चढ़ाना अथवा उतारना होता तो पकड़कर चढ़ाना या उतारना पड़ता था। माँ कहती– ''सीढ़ी द्वारा पैदल चढ़ना चाहिये या उतरना चाहिये ऐसा भाव ही नहीं रहता है। सब मानो शून्यमय है, शरीर भी वैसा ही है।'' क्या अद्‌भुत अवस्था थी।

काशी–कुंज बाबू के मकान में

काशी होते हुये हरिद्वार जाना था। काशी में कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में उतरना था। उनके पुत्र जितेन्द्र दादा उस समय कलकत्ता थे, उन्होंने काशी को लिख दिया था। पिताजी ने भी लिख दिया कि नीचे की मंजिल में माँ के लिये स्थान का प्रबन्ध किया जाय। निर्मल बाबू आदि माँ को देख गये थे। कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी एक आवश्यक टेलीग्राम पाकर एक दिन के लिये काशी से बाहर चले गये थे। स्टेशन पर उनकी स्त्री और सपरिवार निर्मल बाबू उपस्थित हो, गले में गमछा डालकर हाथ जोड़े खड़े थे। ज्यों ही गाड़ी पहुँची, माँ के दर्शन होते ही उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। सब लोग माँ को मकान में ले गये। सब दरवाजों पर मंगल कलश और मालायें माँ के शुभागमन के उपलक्ष्य में रखी थी। माँ और भोलानाथजी का भोजन हो जाने पर सबने प्रसाद ग्रहण किया। उसी बार नेपाल दादा ने (नेपालचन्द्र चक्रवर्ती ने) माँ के सर्वप्रथम दर्शन किये। माँ को निर्मल बाबू की स्त्री और उनके एक गुरुभाई अपने गुरु श्रीयुत् जितेन्द्रनाथ ठाकुर के समीप एक दिन ले गये। माँ के साथ ठाकुर की कोई बात नहीं हुई। कुछ समय बैठकर माँ चली आई। हम लोग सब साथ गये थे। काशी जाकर सुनने में आया कि माँ के आने के दो दिन पहले कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी को सन्ध्या समय छत पर बैठे-बैठे अकस्मात् माँ दिखाई पड़ी थी, मानो लाल वस्त्र पहनकर माँ सामने खड़ी हों। इससे पहले कभी उन्होंने माँ को देखा न था, जितेन्द्र दादा तथा निर्मल बाबू की स्त्री के मुख से केवल

सुना भर था। इससे पहले माँ आने वाली हैं, यह सोचकर वे कुछ विशेष उत्साहित नहीं हुये थे। फिर भी पिताजी माँ के अत्यन्त भक्त हुये हैं, यह उन्होंने सुना था। उन्होंने सोचा कि वे ही जब स्वयं लेकर आ रहे हैं एवं अन्यान्य अनेक लोगों के मुख से बड़ी प्रशंसा सुनी है, इसलिये इस बार माँ के दर्शन करूँगा। दर्शन के बाद ही माँ के लिये लाल रेशमी साड़ी ले आये एवं मंगल कलश दरवाजे पर स्थापित किये और मालायें सजाई। उनके मन में ऐसा भाव जागा कि देवी आई हैं। रात्रि में माँ थोड़ी देर सो कर उठ बैठी। भोलानाथजी सोये ही थे, माँ बैठे-बैठे भावावेश में काँपने लगी। भोर में कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ के दर्शन किये। देखते ही उन्हें प्रतीत हुआ कि यही मूर्ति मैंने देखी थी। देखते ही भक्तिभाव से विह्वल हो गये, विविध प्रकार के स्तोत्रपाठ करने लगे। लाल रेशमी साड़ी पहना दी और लाल अढ़हुल के फूलों से पूजा की। ढाका छोड़कर आने के बाद से ही पैर छूकर प्रणाम करने की निषेधाज्ञा हटा दी थी। बहुत से लोग प्रणाम करने आते, माँ कुछ न कहकर केवल हाथ जोड़े रहती। इतने लोगों को रोकना असम्भव था। विशेषत: माँ कहती- ''पहले छूने नहीं दे सकती थी, अब देखती हूँ जो हाथ हैं वही पैर भी हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है। जब मैं हाथ पकड़ने में निषेध नहीं करती हूँ तब पैर पकड़ने में ही बाधा देने का क्या कारण है?'' दूसरे दिन कीर्तन हुआ, माँ का भाव भी हुआ, किन्तु माँ ने लोट-पोट नहीं ली, सारे मकान में एक विचित्र ढंग से टहलने लगी।

हरिद्वार में कुम्भ स्नान और मथुरा, वृन्दावन होते हुये ढाका प्रत्यावर्तन

दूसरे दिन ही हम लोग हरिद्वार को रवाना हो गये एवं उसके दूसरे ही दिन तड़के हरिद्वार पहुँचे। निर्मल बाबू पहले ही हरिद्वार आकर स्टेशन पर उपस्थित थे। फाल्गुन का महीना था, सभी लोग कम्बल ओढ़कर किसी प्रकार जाड़े से काँपते हुये धर्मशाला में पहुँचे। उस दिन कुम्भ का प्रथम स्नान था। माँ और हम लोग धर्मशाला में खड़े होकर साधुओं का जुलूस देखने लगे। तदनन्तर हम सब लोग माँ के साथ ब्रह्मकुण्ड में जाकर स्नान कर आये। सात दिन धर्मशाला में रहकर हम लोग ऋषिकेश कालीकम्बली वालों की धर्मशाला में गये। दो दिन वहाँ रहकर लक्ष्मण झूला आदि स्थानों के दर्शन कर लौटे और भीमगोड़ा में एक पंजाबी साधु के आश्रम में फूँस

की कुटिया में ठहरे। जिस दिन ऋषिकेश से लौटे उसी दिन टेलीग्राम मिला कि सीतानाथ कुशारीजी की मृत्यु हो गई है। एक दूसरा भी टेलीग्राम आया कि ज्योतिष बाबू की अवस्था अत्यन्त खराब है, इससे पहले ही उनका शरीर अस्वस्थ हो पड़ा था। टी.बी.(क्षय) का पूर्व रूप मालूम पड़ता था। उक्त दो टेलीग्रामों को पाने के अनन्तर उस दिन रात्रि को ही माँ सबको साथ लेकर ढाका की ओर रवाना हुई। भोलानाथजी के छोटे भाई यामिनी बाबू भी हम लोगों के संग ही थे। जाते समय मार्ग में मथुरा, वृन्दावन, आगरा आदि तीर्थ स्थानों के दर्शन कर आने का निश्चय था। माँ ने पिताजी को और मुझको एकान्त में ले जाकर (जाने के कुछ ही समय पहले) हरिद्वार तीन महीने रहने का आदेश दिया एवं जिन-जिन नियमों से खाना, पीना, रहना आवश्यक था, वे भी बतला दिये। माँ चली जायेंगी और हम साथ न जा सकेंगे, यह सोचकर अत्यन्त कष्ट हुआ, किन्तु माँ का आदेश पालन करने में भी जो एक अपूर्व आनन्द होता है, उसका भी हमें अनुभव हुआ। माँ के दर्शन होने के अनन्तर उसी दिन पहले-पहल माँ से बिछोह हो रहा था। हृदय अत्यन्त घबरा उठा। सन्ध्या के पश्चात् माँ हम लोगों को सान्त्वना देकर तथा उसी आश्रम में रखकर सबको साथ लेकर रवाना हो गई। हम लोगों का कुम्भ स्नान के लिये कोई विशेष आकर्षण न था, माँ का संग ही प्रधान लक्ष्य था। माँ यह भी कह आई- ''यदि पिताजी अस्वस्थ हों तो तुरन्त काशी चली जाना, यहाँ रुकना नहीं।'' बाद में मेरे सुनने में आया कि माँ ने टेलीग्राम पाते ही भोलानाथजी से कहा था- ''देखो, मैंने देखा कि मानो मैं ज्योतिष बाबू को गोद में लेकर बैठी हूँ।'' उसी समय भोलानाथजी ने कहा-''तब उनके प्राणों को कोई भय नहीं है।'' लेकिन उस समस ऐसी अवस्था थी कि डॉक्टरों ने साफ जवाब दे दिया था। माँ विविध स्थानों में पर्यटन कर ढाका गई। लगभग डेढ़ महीने के अनन्तर भोलानाथजी ने किसी कारणवश पत्र द्वारा सूचित किया कि माँ ने आप लोगों को ढाका चले आने को कहा है। इधर पिताजी खूब अस्वस्थ हो गये थे, इसलिये मैं विलम्ब न कर तुरन्त काशी चली गई। मार्ग में मुझे भी ज्वर हो आया। काशी में पिताजी के और मेरे कुछ स्वस्थ होते ही हम लोग ढाका जाकर माँ के चरणों में उपस्थित हुये। सुना कि ज्योतिष दादा भी पहले की अपेक्षा अच्छे हैं। वे रमना में शाहबाग के निकट ही एक मकान भाड़े में लेकर रहते थे। माँ प्रतिदिन एक बार वहाँ जाती थी और रोज ही थोड़ा प्रसाद भेज दिया जाता था। एक दिन पिताजी ने माँ

को टिकाटूली के मकान में ले जाकर अपने इष्टमंत्र से उनके चरणों क़ी पूजा की। माँ पूजा समाप्त होते ही उठ बैठी। एक विचित्र भाव में विभोर अवस्था हो गई। उसी भाव में बैठकर ही माँ ने पिताजी से कहा– ''आज से तुम्हारी फूल–बेलपत्तों की बाह्य पूजा समाप्त हुई।'' पिताजी ने पुनः साष्टांग प्रणाम किया। कुछ देर बाद माँ उठकर खड़ी हुई, शाहबाग चली जायेंगी ऐसा प्रतीत हुआ। बाद में बोली–''मैंने सोचा था कि दुमंजिल के सड़क की ओर के बरामदे से ही नीचे उतर जाऊँ (मगर उस ओर उतरने का कोई रास्ता न था)। कुछ दिन बाद एक दिन पिताजी से बोली– ''अपने कुलगुरु को चिट्ठी लिख दो, वे इस सम्बन्ध में क्या आदेश देते हैं यह जान लो।'' आश्चर्य की बात है कि बाह्य पूजा के त्याग की बात पर उन्होंने भी कोई आपत्ति नहीं की बल्कि प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी। पिताजी के पैर में बहुत दर्द होता था, थोड़ा अधिक चलने पर नाड़ी की गति बिगड़ जाती थी। ट्रेन से भी अधिक चलना–फिरना नहीं कर सकते थे। माँ उनसे प्राणायाम की एक प्रक्रिया नियमानुसार कराने लगी। माँ ने उनसे 24 घण्टे क्या उससे भी अधिक समय तक बैठने को कहा था, पिताजी ने भी माँ की कृपा से वैसा ही किया। माँ ने कहा था– ''इस प्रकार दूसरे किसी से भी काम नहीं कराया है, तुम्हीं से कराया जा रहा है। जो जिस प्रकार से काम करने का अधिकारी होता है उससे उस तरह के काम की बात कही जाती है। सब तो एक प्रकार के नहीं है।'' माँ के निर्देशानुसार काम करते–करते पिताजी बहुत देर तक बैठे रह सकते थे, किसी प्रकार का भी क्लेश नहीं होता था। पहले पैरों में गरम जल डालने पर भी (गर्मी के दिनों में भी) स्वास्थ्य खराब हो जाता था, पेट में भी कोई विशेष पाचन नहीं होता था। तालाब में स्नान करने पर तो युवावस्था में ही बीमार पड़ जाते थे, इस कारण स्नान बन्द था। अब इस वृद्धावस्था में तालाब में स्नान करते, माँ का प्रसाद सब खाते, पैदल भी खूब चल सकते, माँ की कृपा से सब कुछ सहन होने लगा। माँ को सभी अपने–अपने घर ले जाने लगे। धानकोड़ा के जमींदार दिनेश बाबू की स्त्री माँ को अनेक बार अपने घर ले जाती और कीर्तन की व्यवस्था करती। अन्यान्य बहुत से मकानों में भी माँ जाती। सभी भक्त उस समय उसी मकान में इकट्ठे होते। उयारी के नलिनी बाबू की स्त्री और उनके भाई की स्त्री (बेवी दीदी और सुनीति दीदी) कभी–कभी आती।

एकलक्ष्य होने का माहात्म्य

एक दिन माँ धानकोड़ा के मकान में जा रही थी। मोटर से सड़क पर निकलते ही एक भद्र पुरुष घोड़ा-गाड़ी से माँ के दर्शन करने आ पहुँचे। उन्होंने ज्यों ही देखा कि माँ मोटर से बाहर चली गई हैं त्यों ही हड़बड़ाकर कोचवान से कहा-"मोटर के पीछे-पीछे तेजी से गाड़ी चलाये जाओ।" यह खयाल नहीं किया कि घोड़ा-गाड़ी मोटर के पीछे दौड़कर क्या करेगी। वे केवल यही सोच रहे थे कि माँ चली गई हैं, उन्हें पकड़ना चाहिये। कुछ ही दूर पहुँचने पर माँ ने जब देखा कि घोड़ा-गाड़ी मोटर के पीछे दौड़ी आ रही है, तब कहा-"जरा मोटर रोको।" मोटर के रुकते ही गाड़ी मोटर के निकट जा पहुँची। उस भद्र पुरुष ने उतरकर माँ के चरणों की धूलि ली एवं माँ धानकोड़ा के मकान में जा रही हैं, यह समाचार पाकर वे भी कुछ ही देर बाद वहाँ जा पहुँचे। इस वृतान्त के सिलसिले में शाहबाग में भक्तों के प्रति माँ ने कहा था-"तुमने देखा तो, एकलक्ष्य होकर इस प्रकार दौड़ सकने पर घोड़ा-गाड़ी के लिये भी मोटर रुक गई। धीरे-धीरे सब समाचार जानकर कुछ देर बाद वह भी जाकर मिल सका। हम लोग मोटर से चले गये, वह घोड़ा-गाड़ी से भी हम लोगों के साथ जा मिला। एकलक्ष्य होकर दौड़ सकने पर ही यह सम्भव हुआ।"

कीर्तन में बाउल बाबू और चिन्ताहरण बाबू की स्त्री का भाव

शाहबाग में कीर्तन में बाउल बाबू की स्त्री भी हमेशा ही आती और कीर्तन में उनका विशेष भाव होता। दीक्षा के दूसरे दिन कीर्तन में आने पर चिन्ताहरण बाबू की स्त्री की भी अस्वाभाविक अवस्था हुई थी। सन्ध्या के बाद कीर्तन में वे पस्त पड़ गई, माँ के चरण पकड़कर गिर ही गई। उन्हें उठाने में लगभग रात के दो बजे, तभी से कभी-कभी उनका इस तरह का भाव होता है।

माँ का चिरकाल तक जल-त्याग, माँ को जल पिलाने का अद्‌भुत पुरस्कार

एक बार माँ तेरह दिनों तक बिना जल पीये रही, एक दिन भोलानाथजी से जल देने को कहा, उन्होंने जल पिला दिया। फिर एक बार तेईस दिन तक जल मुँह में नहीं लिया। मुँह तक न धोती। तेईस दिनों के बाद एक दिन रात्रि में मैं, कमलाकान्त, अटल दादा और नन्दू, माँ के निकट रात

भर बैठे थे, माँ जमीन पर बैठी थी और भोलानाथजी सोये थे। रात्रि में ढाई या तीन बजे के समय माँ ने एक कलश जल लाने के लिये कहा। जल लाने पर भोलानाथजी को उठाकर बोली– "तुम लोग जो पाँच व्यक्ति कमरे में हो, मुझे यह एक घड़ा जल थोड़ा-थोड़ा करके पिला दो।" वैसे ही थोड़ा-थोड़ा करके मुँह में जल डाला गया। माँ ने यह जल तेईस दिनों बाद पीया, फिर बोली– "मैंने अनुभव किया है कि जल पीये बिना कैसा लगता? किन्तु देख रही हूँ कि जल का व्यवहार ही भूली जा रही हूँ। यदि एक बार भूल जाऊँ तो मेरे लिये तुम लोगों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा, इसलिये आवश्यकता न रहने पर भी जल पीया।" जल पीकर बैठी थी, थोड़ी ही देर बाद झटपट उठकर दरवाजा खोलकर बाहर गई (उस समय माँ गोल कमरे में रहती थी) और दरवाजे के पास से पाँच कमल के फूल ले आई। हँसते हुये बोली– "देखो, कोई ये पाँच कमल के फूल रख गया है। तुम पाँच व्यक्तियों ने जल पिलाया है। पाँच ही कमल रख गया है। तुम लोग पाँच व्यक्ति इन्हें ले लो।" यह कहकर हर एक के हाथ में एक-एक फूल दे दिया। इतनी गहरी रात्रि में कमल-फूल कौन रखेगा? देखकर हम चकरा गये। मगर माँ के निकट सब कुछ सम्भव है, इसीलिये विशेष घटनाओं का भी मैं उस रूप में स्मरण नहीं रखती हूँ।

कई पुरानी घटनायें– बीच-बीच में अलौकिक शक्ति का प्रकाश

पहले की बातें कहते-कहते एक दिन माँ ने कहा था–"इस सिद्धेश्वरी में तीन महीने तक पड़ी रहना चाहती थी, किन्तु भोलानाथजी ने किसी तरह भी रहने नहीं दिया, उसमें बाधा डाली। उसके कारण भोलानाथजी खूब अस्वस्थ हुये थे।" ज्योतिष दादा बहुत अस्वस्थ थे; एक दिन दोपहर के समय उनके मकान में माँ और भोलानाथजी गये। माँ ने कहा–"इस सामने के पोखरे में डुबकी लगा आओ तो।" संयोग की बात है कि उस समय घर में सब लोग सोये थे। ज्योतिष दादा उसी समय जाकर डुबकी लगा आये और कपड़े बदलकर बिछौने पर लेट गये। तब कुछ लोग जागे। भीगे कपड़े देखकर उन्हें यह घटना मालूम पड़ी। ज्योतिष दादा डर रहे थे कि यदि आज रक्त अधिक पड़ा तो सभी बकझक करेंगे एवं सोचेंगे कि स्नान से ही यह हुआ है। किन्तु उक्त स्नान से रोगी की रोगवृद्धि का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई पड़ा बल्कि और दिनों की अपेक्षा उस दिन अच्छे

ही रहे। इस प्रकार की छोटी-बड़ी कितनी ही घटनायें घटी हैं। ऐसा भी देखने में आया है कि हाथ में एक बार एक फूल या अन्य कोई वस्तु माँ ने ली वह पाँच-छः दिनों तक हाथ में ही रही। थोड़े समय बाद वह फूल या वस्तु किसी को दे डाली। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि रात्रि में बहुधा टहलती रहती थी अथवा इच्छानुसार बैठी रहती थी। सारांश यह है कि रात होने पर चटपटा भाव रहता था। बहुधा रात्रि के समय गाड़ी करके सब लोगों के घर-घर जाती। किसी-किसी दिन ऐसा होता कि रात्रि में बिल्कुल भी सुस्थिर न रहती। बिछौने पर सोये रहने पर भी विविध बातें करती, उन बातों का अर्थ कोई भी न समझता। कभी देखा है कि रात्रि में सोये-सोये कहती कि- ''इटली कहाँ है? उस देश में किस जाति के लोग रहते हैं।'' दो-चार दिनों के बाद ही इटली का एक आदमी शाहबाग में माँ के साथ भेंट करने के लिये आया। कभी-कभी अंग्रेजी के शब्द मुँह से निकलते, कभी अन्य विदेशी भाषायें निकलती, कभी-कभी भोलानाथजी से लिखवा भी रखती। रात्रि में सोये-सोये भी ऐसा होता। फिर, किसी दिन सो ही न सकती, अपनी इच्छानुसार रातभर चहल-कदमी करती। एक बार निरंजन बाबू के मकान में कीर्तन के अनन्तर भोग हुआ। उस दिन रात्रि में उसी मकान में रही। सारी रात टहलते-टहलते बिता डाली। बहुत लोगों के मन की बात अनेक बार बता देती। सम्भवतः कोई व्यक्ति, कोई न कोई प्रश्न मन में रख कर बैठा है, माँ दूसरे से बातें कर रही हैं, बातें करते-करते उक्त प्रश्न का भी साफ उत्तर दे दिया। जो व्यक्ति प्रश्न करने के लिये बैठे थे, उन्हें फिर प्रश्न करने की जरूरत ही नहीं रही। ऐसा एक बार नहीं अनेकों बार हुआ है। माँ की दूर दृष्टि का प्रमाण मुझे अनेक बार मिला है। मकान में दोपहर को मैंने कोई काम किया, अपराह्न में ज्यों ही माँ के समीप आई अक्सर माँ कहती-''दोपहर को मैं लेटी थी, देख रही थी तुम अमुक काम कर रही हो।'' ठीक-ठीक बतला देती। और भी बहुतों को इस प्रकार की दूरदृष्टि का प्रमाण मिला है। मगर माँ यह सब बहुत ही कम प्रकट करती, कभी कोई बात बाहर प्रकट हो जाती, नहीं तो विशेष प्रकट नहीं करती। एक बार शाहबाग में मैंने माँ से पूछा था, ''माँ, जिस समय हम लोग तुम्हारे लिये व्याकुल होते हैं, उस समय क्या तुम्हें मालूम पड़ जाता है?'' माँ ने कहा था-''किस प्रकार समझती हूँ, जानती है?

जभी तुम लोगों का मेरी ओर ध्यान आकृष्ट होता है, उस समय तुम लोगों को अपने निकट विविध प्रकार से देखती हूँ, उसी समय मुझे ज्ञात हो जाता है कि तुम लोग मेरा ही चिन्तन कर रहे हो।'' यह कहकर बोली– ''एक दिन रात में मशहरी के भीतर सोई थी, मैंने देखा कि तुम धीरे–धीरे मशहरी उठाकर पैरों में हाथ लगा रही हो।'' एक दिन सिद्धेश्वरी के आसन पर जाकर बैठी, कीर्तन होने वाला था, कमरे में बहुत लोग थे। एक नवीन अपरिचित आदमी खड़ा था, उसने माँ की ओर निहार कर कहा– ''कहें तो, मैं क्यों आया हूँ? मैं अपने मुँह से कहूँगा नहीं, मैंने मन–ही–मन प्रश्न किया है, जवाब दें तो जानूँ'' माँ उसकी ओर तनिक दृष्टि डालकर बोली– ''उत्तर दे चुकी हूँ, समझ लो, तुमने भी मन–ही–मन प्रश्न किया है। मैंने भी मन–ही–मन उत्तर दिया है, समझ लो।'' यह कहकर उसकी ओर दृष्टि कर जरा हँस दिया। वह आदमी फिर कुछ बोला नहीं। दूसरे दिन शाहबाग जाकर देखती हूँ कि वह आदमी माँ के कमरे के एक कोने में बैठकर रो रहा है। वह माँ को प्रणाम करना चाहता था और क्षमा माँगना चाहता था, किन्तु माँ गृहस्थी के विविध काम–काज कर रही थी, उस ओर मानो ध्यान ही न था। उस आदमी के मन में कैसा भाव हुआ, मैं नहीं जानती, वह राते–रोते व्याकुल हो रहा था। फिर क्या हुआ, ठीक स्मरण नहीं है। एक बार किसी एक घटना के विषय में माँ राजी नहीं हो रही थी, किन्तु भोलानाथजी आग्रह करते जा रहे थे। आखिर माँ ने उसे किया, लेकिन पन्द्रह दिनों तक कमरे के भीतर न जा सकी। आँधी–वृष्टि में बाहर ही रहती। इस तरह की घटनायें और भी अनेक देखने में आई हैं। भोलानाथजी के आदेश का पालन करने के लिये ही कर डालती, किन्तु पीछे सम्भवतः शरीर में विपरीत क्रियायें होती रहती, भोलानाथजी भी डर जाते। इस कारण उन्हें भी आग्रह करने में भय होता कि न जाने फिर क्या उपद्रव हो। माँ बहुधा ''जो होने वाला है होगा, वे जब कह रहे हैं किये जाऊँ।'' यह कहकर किये जाती। माँ की दूर दृष्टि की एक दूसरी घटना याद आ गई है। एक दिन एक सज्जन भोग लेकर आये। माँ डेरे पर न थी। माँ के शाहबाग लौट आने पर भोग बना, खाना–पीना पूरा होने में प्रायः सन्ध्या हो गई। योगेश वन्द्योपाध्यायजी ने सन्ध्या के बाद शाहबाग जाकर सुना कि भोग हो गया है। उन्होंने माँ से कहा– ''हमें प्रसाद नहीं मिला, इस समय मैं प्रसाद

पाना चाहता हूँ।'' माँ ने और कुछ न कहकर मसाले पीसने को कहा। इधर ज्योतिष दादा के घर उस दिन कोई एक बड़ी मछली दे गया था। उन्होंने नौक़र से कहा– ''कुछ शाहबाग दे आ।'' कुछ मछली और अन्यान्य लेकर सन्ध्या समय नौकर शाहबाग आ पहुँचा। माँ हँस पड़ी। मसाला तो पहले से ही पीसकर रखा था। रसोई बनी, योगेश बाबू तथा अन्यान्य बहुत से लोग प्रसाद पा गये। फिर किसी एक दिन माँ सब लोगों के साथ शाहबाग मैदान में बैठीं थी, एकाएक उठकर कपड़े ठीक करके बैठी और बोली– ''रायबहादुर आ रहे हैं।'' सचमुच कुछ देर बाद ही रायबहादुर की मोटर का शब्द सुनाई पड़ा। मैं पहले ही कह चुकी हूँ, यह सब ऐश्वर्य प्रकाश बहुत ही कम होता।

माँ का उपदेश– अलौकिक भावों के विषय में संयम की आवश्यकता

माँ बहुतों से बार-बार कहती– ''अपने को गुप्त पेटी बनाना चाहिये। इन सब भावों के विषय को प्रकाश में नहीं लाना चाहिये, गुप्त रखना चाहिये। बक्से के भर जाने के कारण यदि कुछ निकल पड़े तो निकले, उस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। तुम अपने लक्ष्य पर चलते जाओ, जो थोड़ा बहुत प्रकट हो पड़े, हो जाय, तुम स्वयं कुछ प्रकट न करो।'' माँ कहती– ''वह जो थोड़ा बहुत प्रकट हो पड़ता है, यह भी इस पथ की ही एक अवस्था मात्र है। इस पथ पर चलते-चलते ऐसी एक भूमिका प्राप्त होती है, जिस समय अपने आप ही यह सब प्रकट हो जाता है। किन्तु साधक को उधर ध्यान नहीं देना चाहिये। वह यदि अपने यश की आकांक्षा से उन सबको प्रकट करने लगे तो तुरन्त ही वहाँ पर वह रुक जायेगा। यदि मार्ग का उक्त तमाशा देखने के लिये खड़ा न रहकर अपने लक्ष्य की ओर चलता रहे तो देख पड़ेगा कि जो प्रकाश देखे थे वे पुनः दूसरी भूमिका में जाने के बाद बन्द हो गये हैं।''

एक घटना

संवत् 1984 में एक दिन रात्रि के समय माँ गाड़ी से टीकाटूली के मकान में जा पहुँची। कुछ ही देर बाद फिर किसी दूसरे मकान में गई। उस समय रात्रि बहुत बीत चुकी थी। माँ की अवस्था देखकर मुझे और पिताजी को न जाने कैसा सन्देह हुआ कि माँ कहीं जायेंगी। इधर माँ कई मकानों

में होकर शाहबाग के निकट ही ज्योतिष दादा के समीप जाकर बोली– ''रोज–रोज क्या प्रसाद भेजा जाय, आज ही थोड़ा अधिक प्रसाद कर रख लो।'' यह कहकर कुछ फल प्रसाद रूप देकर दूसरी भी दो–चार बातें कहकर शाहबाग चली गई। उन्हें भी कुछ सन्देह हुआ, इसलिये नौकर को शाहबाग भेजकर उन्होंने खबर ली, माँ और भोलानाथजी बैठे थे। इधर रात के लगभग 2 बजे का समय होगा, पिताजी का मन स्थिर नहीं हो रहा था, वे टिकाटूली से उस रात के समय पैदल ही शाहबाग जा पहुँचे। फाटक का दरवाजा बन्द था। वे चारदीवारी लाँघकर भीतर गये, किन्तु चारदीवारी के पास मैला पड़ा था। उस पर पैर पड़ गया। उसी अवस्था में वे माँ के निकट जा पहुँचे, देखा कि इतनी रात में माँ और भोलानाथजी बैठकर कुछ वार्तालाप कर रहे हैं। पिताजी को भी इतनी रात में देखकर माँ ने कहा– ''यह क्या? इतनी रात में आया है?'' पिताजी ने कहा– ''माँ, मन में न जाने कैसा सन्देह हुआ, इसलिये आया हूँ। हमें छोड़कर कहीं जायेंगी तो नहीं?'' माँ ने कहा– ''जाने पर तो मालूम हो ही जायेगा।'' इस कथन से सन्देह गया नहीं। पिताजी मैले पर पैर पड़ने के कारण अपने को अपवित्र समझ रहे थे, इसलिये माँ ने उनसे घर लौट जाने को कहा। पिताजी भी घर आने की इच्छा न होते हुये भी स्नान करूँगा, यह सोचकर चले आये। उक्त घटना यदि न होती तो सम्भव है रात में वहीं रहते।*

माँ का ढाका त्याग

इधर माँ ने सोचा आज ही प्रात:काल नारायणगंज चली जाऊँ और वहाँ से अन्यत्र चली जाऊँगी। माँ ने यह भी सोचा था कि जाते समय यदि किसी के साथ भेंट हो जायेगी तो नहीं जाऊँगी। ज्योतिष दादा के दरवाजे के पास से ही नारायणगंज को जाना पड़ता है। प्रतिदिन बहुत सवेरे ही दरवाजा खोलकर ज्योतिष दादा लेटे रहते, किन्तु उस दिन बहुत रात बीते माँ आई थी, इसलिये जागते हुये रहना पड़ा, अत: भोर में उन्हें नींद आ गई। जाते समय माँ की किसी से भी भेंट नहीं हुई। पिताजी रात में लगभग तीन या साढ़े तीन बजे मकान में लौटे। चार बजे के समय ही माँ

---

* एक बात यहाँ पर कह देना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। हरिद्वार से आने के बाद माँ ने पिताजी को और मुझे मकान में जाकर रहने का आदेश दिया था, इसलिए हम लोग घर ही रहते थे। फिर भी हम लोगों का अधिकांश समय शाहबाग में ही कटता था।

भोलानाथजी को साथ लेकर बाहर चल पड़ी। भोर में ही पिताजी दूसरी बार शाहबाग गये, जाकर देखा तो माँ चली गई थी, कहाँ गई कुछ खबर नहीं लगी। ज्योतिष दादा के मकान में जाकर रो पड़े। ज्योतिष दादा भी घबराये, किन्तु करें क्या! इधर माँ ने रात को पिताजी से कहा था– "जाने पर खबर पा जाओगे।" अपने इस वचन के पालन के लिये माँ ने नारायणगंज में एक आदमी से पिताजी को यह समाचार दे देने को कह दिया कि वे भोर की गाड़ी से नारायणगंज गये और वहाँ से अन्यत्र चले गये हैं। पीछे क्रमशः खबर मिली कि माँ राजशाही होती हुई कलकत्ता, वहाँ से देवधर और देवधर से विन्ध्याचल गई हैं। उस समय विन्ध्याचल में आश्रम न था। माँ एक बंगले में टिकी। जितेन्द्र दादा माँ के साथ कलकत्ते से देवधर गये और वहाँ से उन्होंने माँ के विन्ध्याचल जाने की खबर काशी को दी। समाचार पाकर काशी से उनके पिता (श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्याय) तथा माता एवं सपरिवार निर्मल बाबू ने विन्ध्याचल जाकर माँ के दर्शन किये। तदनन्तर माँ चुनार तथा अन्यान्य स्थानों में घूम-घामकर ढाका चली गई।

माँ के लिये आश्रम निर्माण का प्रथम उद्योग

इस बीच में ज्योतिष दादा और निरंजन बाबू आदि माँ के लिये एक बड़े आश्रम का निर्माण करने का प्रयत्न करने लगे। माँ ने उन लोगों से कहा– "आश्रम की तो मुझे कोई आवश्यता नहीं है, पेड़ का तला ही मेरा आश्रम है। फिर भी यदि तुम लोगों को आवश्यकता हो तो बना सकते हो। किन्तु मेरी एक बात है कि यदि तुम कुछ बनाओ तो इस रमना के काली-मन्दिर के पीछे की भूमि को (जहाँ वर्तमान आश्रम है) लेने की तुम लोग चेष्टा करना। आगे चलकर माँ ने कहा था कि इस स्थान में पहले बहुत से फलाहारी, पवनाहारी संन्यासी रहते थे। उन्हें रमना के काली-मन्दिर में उन लोगों की अशरीर आत्मा के दर्शन मिले थे। माँ ने कहा था इसीलिये उस स्थान को लेने के लिये ज्योतिष दादा और निरंजन बाबू ने बहुत कष्ट झेले थे। ज्योतिष दादा बीमारी की अवस्था में भी उक्त स्थान हस्तगत नहीं हुआ, यह सोचकर दुःखी होते थे। पीछे स्वस्थ होने पर जब किसी प्रकार भी उक्त स्थान न ले सके तब एक दिन अन्तिम बात के लिये कालीबाड़ी के ठाकुर के निकट गये थे। उस समय उन्हें स्पष्टतया प्रतीत हुआ कि माँ साथ हैं। उसी दिन बात ठीक हो गई और

जगह ले ली गई। माँ के हरिद्वार से लौटने के बाद ही सं. 1984 के वैशाख महीने में शाहबाग में माँ का प्रथम जन्मोत्सव हुआ। उस बार केवल एक ही दिन (19वीं बैशाख) कीर्तन, भोग आदि होकर जन्मोत्सव समाप्त हुआ।

माँ की कृपा से कुंज बाबू के पंचम पुत्र का सर्पदंश से परित्राण

तदुपरान्त कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी अपनी छोटी लड़की का विवाह करने के लिये सपरिवार हमारे टिकाटूली के मकान में आये। माँ उस विवाह के समय उपस्थित थी। जामाता का नाम श्यामाकान्त वन्द्योपाध्याय (जमशेदपुर) था। वे माँ के अत्यन्त भक्त थे और आगे चलकर भोलानाथजी से उन्होंने मन्त्र-दीक्षा ली। विवाह के बाद सब लोग कुछ दिन ढाका ही रहे और सदा माँ के समीप आते-जाते रहते थे। सावन के महीने में कुंज बाबू के पंचम पुत्र मनु की सर्पदंश (साँप के डसने) से मृत्यु जन्म-पत्री में लिखी थी। उस बात का उल्लेख कर मनु की माँ ने माँ से कहा- ''माँ, इस लड़के को यदि तुम्हाने निकट रख जाऊँ तो शायद इसकी रक्षा हो जाय।'' माँ ने कहा- ''कोई आवश्यक नहीं है, संग ही ले जाओ।'' वे सब काशी चले गये। इसके कुछ ही दिन बाद सम्भवत: सावन के महीने में माँ भोलानाथजी को साथ लेकर बाहर गई। कलकत्ते से खबर पाकर कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी और निर्मल बाबू सपरिवार काशी से माँ के दर्शन के लिये विन्ध्याचल गये। एक दिन सब लोग इकट्ठे होकर अष्टभुजा देवी के दर्शन करने गये। वहाँ से सप्तकुण्ड की ओर चले। मार्ग में एक जगह माँ सबको पीछे छोड़कर जरा आगे बढ़ गई। थोड़ी दूर जाकर पीछे हाथ कर माँ ने सब लोगों को आगे बढ़ने से रोका। भोलानाथजी आदि सभी ने दौड़ते हुये जाकर देखा कि माँ से थोड़ी ही दूरी पर एक गेहुँअन साँप निश्चल हो माँ की ओर देख रहा है। माँ ने उसके ऊपर पैर रखा था, यह जानकर सभी घबरा उठे थे, काटा या नहीं पूछने लगे। माँ कुछ भी नहीं बोली, गेहुँअन अपनी इच्छानुसार तेजी से टहलने लगा। मनु का छोटा भाई शंकर- उस समय उसकी अवस्था छ: या सात वर्ष की होगी। वह एकाएक अपनी माँ से कह उठा- ''माँ, भाईजी को साँप काटेगा ऐसा लिखा था, इसलिये माँ ने उसे ले लिया।'' बच्चे के मुँह से अकस्मात् यह बात सुनकर सभी को आश्चर्य हुआ। जन्मपत्री की बात भी सभी को याद थी। माँ जिस बंगले

में रहती थी, वहाँ आ पहुँची। वहाँ पहुँचकर माँ भी जरा हँसते हुये मनु से बोली– "मनु, बात तो थी साँप तुम्हें काटेगा, पर काटा मुझे।" माँ तो साधारणतः कुछ भी नहीं खाती, किन्तु उस दिन जितनी खिचड़ी बनी थी, वह सब माँ ने खा डाली। इधर माँ के पर्यटनार्थ बाहर निकलने के कुछ दिन बाद ही वायु परिवर्तन के लिये ज्योतिष दादा भी विन्ध्याचल चले आये थे। उन्होंने नीचे मकान भाड़े में लिया था। माँ खाने-पीने के बाद पहाड़ के नीचे ज्योतिष दादा के मकान में घूमने चली। वहाँ ज्योतिष दादा ने सर्पदंश की खबर सुनकर घबराते हुये किस पैर में काटा है यह जाने बिना ही दाहिने पैर में कितनी ही औषधियाँ डाल दी। माँ ने हँसते हुये कहा– "काटा बायें पैर में और औषधियाँ डाली गई दाहिने पैर में। बहुत अच्छी चिकित्सा हुई, पर औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है।" थोड़ी देर बाद ही पहाड़ पर बंगले में चली आई। बच्चे इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे, माँ भी उन्हीं के साथ खेलने लगी। पीछे एक जगह बैठने पर सभी ने देखा कि पैर के नीचे दो नीले गड्ढ़े हुये हैं। सभी ने पूछा, साँप के काटने पर कैसा प्रतीत हुआ था? माँ ने कहा– "विशेष कुछ नहीं, यह पैर थोड़ा चसका था बस।"

ज्योतिष बाबू का चुनार और गिरिडीह निवास

उसके पश्चात् ज्योतिष दादा चुनार गये। माँ भी दो-एक दिन के लिए चुनार गई थी। सभी को प्रतीत हुआ कि माँ की कृपा से ज्योतिष दादा की जीवन रक्षा हुई। ज्योतिष दादा ने चुनार के पत्थर से माँ का चरणचिह्न तैयार कर ढाका के आश्रम में एक समाधि के ऊपर उसे स्थापित किया। उसके ऊपर एक छोटा मन्दिर भी बना दिया है। उक्त चरणचिह्न की प्रतिदिन पूजा होती है। तदनन्तर ज्योतिष दादा गिरिडीह जाकर रहे।

माँ का ढाका लौटना

माँ घूम-फिरकर ढाका आई। एक दिन माँ शाहबाग नाचघर में नगेन्द्र बाबू, निरंजन बाबू आदि के साथ बैठी थी। अष्टभुजा पहाड़ के साँप की चर्चा छिड़ी, माँ के नेत्रों में आँसू भर आये। सबने जब उसका कारण पूछा तो माँ ने कहा– "उस साँप का विशेष खयाल आ रहा है, मेरी उसके साथ भेंट होगी।" सभी ने पूछा, वह साँप कौन है? किन्तु माँ ने उत्तर नहीं

दिया। माँ बहुधा कहती– ''सदा सब बातों का उत्तर नहीं होता, उत्तर निकलता ही नहीं, मालूम होता है उस समय भी उसके प्रकट होने का समय न था, इसलिये प्रकट न कर सकी।''

माँ का विद्याकूट पितृगृह गमन

कुछ दिनों के बाद माँ विद्याकूट पितृगृह गई। संग में भोलानाथजी, उनके छोटे भाई यामिनी बाबू, पिताजी, मैं, वीरेन्द्र दादा, नानाजी, नानीजी, माखन और माँ की छोटी बहन - सब लोग चले। विद्याकूट पहुँचे। वहाँ नानाजी के बहुत कुटुम्बी जन हैं, वे सब-के-सब तथा अन्यान्य ग्रामवासी माँ के दर्शन करने आये और माँ के बचपन का प्रसंग छेड़कर उन्होंने बहुत आनन्द लूटा। माँ को सबके मकान में ले गये। आश्चर्य की बात है कि सभी नई अवस्था के लोग मुझे माँ की सहोदर बहन समझकर कानाफूसी करते थे। ढाका में भी बहुत लोग पहले-पहले मुझे माँ की बहन समझते थे। बहुत लोग कहते कि माँ के साथ इसका चेहरा मिलता है। जागतिक कोई सम्बन्ध नहीं है, कहने पर भी लोगों को विश्वास नहीं होता था। वे समझते कि यह अपना सम्बन्ध छिपा रही है। और मौसीजी साथ ही रहती, लेकिन उनके सम्बन्ध में ये माँ की बहन हैं, ऐसा किसी को अनुमान न होता। इस विषय को लेकर हम लोगों में खूब हँसी होती। विद्याकूट से नाटघर के शिव मन्दिर के दर्शन के लिये जाना हुआ।

खेओड़ा गमन– जन्म स्थान दर्शन

तदुपरान्त एक दिन नानाजी के ननिहाल माँ के जन्म स्थान - खेओड़ा गाँव देखने के लिये हम सब लोग चले। नौका से गये। इस समय वह मकान मुसलमानों ने खरीद लिया है। उसमें मुसलमान लोग निवास कर रहे हैं। उन मुसलमानों ने भी बचपन में माँ को देखा था। माँ उन लोगों के सम्बन्ध में कितनी ही बातें कहने लगी। वे किसी को चाचा, किसी को नाना और किसी को मामा कहकर पुकारती। वे भी माँ के प्रति कितना अधिक प्रेम प्रदर्शित करते। नानाजी से सब लोगों ने माँ का जन्म स्थान दिखा देने को कहा। किन्तु मकान में इतना हेर-फेर हो गया था कि नानाजी या नानीजी दोनों में से कोई भी स्थान न बतला सके। माँ घूम-घूमकर

पेड़-पौधे देख रही थी तथा सब पुरानी बातें कह रही थी। किसी प्रकार भी जन्म स्थान का पता नहीं चल रहा है, यह देखकर मैंने माँ से कहा- "माँ तुम्हीं दिखा दो न, इतना कष्ट झेलकर हम सब लोग आये हैं, जन्म स्थान के ही दर्शन नहीं हुये।" माँ ने कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद माँ घर के पीछे की ओर एक जगह जाकर खड़ी हो गई। उस जगह गोबर का एक टीले की तरह ढेर लगा था। माँ ने उस जगह खड़ी होते ही थोड़ी मिट्टी हाथ में ली और पुक्का फाड़कर रोने लगी। आगे चलकर माँ के मुँह से ठीक ही विदित हुआ कि वही जन्म स्थान है। अन्यान्य चिह्नों को देखकर नानीजी को भी स्मरण हो आया कि यही जन्म स्थान है। माँ को उस प्रकार पुक्का फाड़कर रोते देखकर सभी घबरा गये। भोलानाथजी तो विशेष रूप से भयभीत हुये, उन्होंने सोचा कि न जाने फिर क्या कर बैठे। कुछ देर बाद माँ शान्त हुई। नेत्रों का जल पोंछकर उसी जगह खड़ी होकर उन्होंने मुसलमानों को पुकारा। उनसे कहने लगी-"देखो, इस जगह को पवित्र रखने पर तुम लोगों का मंगल होगा। इस जगह आकर तुम लोगों के विशुद्ध भाव से प्रार्थना करने से फल की आशा है। इस स्थान को कदापि अपवित्र न करना।" वे लोग सहमत हुये। पिताजी ने स्थान को अच्छी तरह रखने के निमित्त कुछ देना चाहा, किन्तु उन लोगों ने कुछ लिया नहीं, स्वयं ही स्थान को ठीक तरह रखेंगे कहा। वे यह सब देखकर भयभीत हुये थे। माँ बोली-"तुम लोगों को कोई भय नहीं, हम लोग अभी चले जा रहे हैं।" वहाँ की माँ के हाथ की मिट्टी हम लोग ले आये। तदनन्तर एक दूसरे मकान में जाना हुआ। वहाँ तनिक रुककर हम लोग माँ के साथ फिर नौका द्वारा विद्याकूट को रवाना हुये। इतने अल्प समय में गाँव के किसी को भी विशेष खबर नहीं मिली। जब हम लोगों की नाव चल पड़ी, तब देखते हैं कि बहुत से लोग दौड़े आ रहे हैं। किन्तु हम लोगों का रुकना नहीं हुआ। एक मकान के निकट जरा नाव रोकी गई, वे लोग दौड़े हुये आकर नाव के पास खड़े हो गये। उस मकान के ही एक भद्र पुरुष नानीजी को 'माँ' कहते थे। माँ के अनन्तर तीन भाई जब छः-छः मास के अन्दर मर गये तब वे ही नानीजी को सान्त्वना देते थे। माँ के प्रति भी वे अपनी बहन के समान ही प्रेम करते थे। उनका नाम था - श्रीशचन्द्र, वे डिब्रूगढ़ में काम करते थे। माँ बहुधा दुर्गापूजा में उनके मकान में रहती

थी। माँ ने उनके चरित्र की अत्यन्त प्रशंसा की। श्रीश बाबू भी आकर नौका के निकट खड़े हुये। माँ की बचपन की सखी निर्मला देवी* भी आकर खड़ी हुई। उन्होंने माँ को उतार लेना चाहा, किन्तु माँ राजी नहीं हुई। थोड़ी देर रुककर ही हम लोग विद्याकूट को रवाना हुये। दो-तीन घण्टे में ही विद्याकूट पहुँच गये। मकान में माँ के एक चचेरे भाई की स्त्री थी।

विद्याकूट से ढाका को प्रस्थान

कई दिन विद्याकूट रहकर हम लोग ढाका को रवाना हुये। रवाना होते समय माँ अपने एक जाति के चाचा को पकड़कर खूब रोने लगी। हम लोग भी यह देखकर मारे आश्चर्य के सन्न हो गये कि किसी भी अंग की त्रुटि नहीं, पीहर से जाने में रुलाई का अभिनय भी ठीक-ठीक कर रही हैं। देखा जाये तो रोने का कोई कारण नहीं था-माता, पिता, भाई, बहन सब साथ थे। भोलानाथजी के घर में भी आत्मीय स्वजन सब बहुत तितर-बितर हो गये थे। तीन भाइयों में से किसी के साथ भी बहिनों की बहुत वर्षों से भेंट नहीं हुई थी। छोटे भाई पहले कालीप्रसन्न कुशारी के निकट रहते थे, तदुपरान्त मुक्तागाछा के जमींदार के निकट ही रहते। एक भाई बहुत वर्षों से लापता थे। जब तक बड़े भाई रेवती बाबू जीवित थे तब तक कुछ शृंखला बनी थी, उनकी मृत्यु के बाद सब तितर-बितर हो गये थे। सबसे छोटी बहन को तो माँ ने देखा तक नहीं। उन्नीस वर्ष के बाद माँ ने उन्हें शाहबाग बुलाया- वहीं पहले-पहल भेंट हुई। बुआजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी की स्त्री) कहती- ''हम लोगों की यह दिशा तो एकदम तितर-बितर थी, बहुरानी (माँ) ही सबको मिला रही हैं।'' सब बहिनें और भाई ढाका में ही माँ के कारण इकट्ठा हुये थे। उस दिन माँ बच्ची बनकर पीहर से आते समय रो रही थी। माँ ने यह भी कहा था कि पहले इन चाचाजी से बातें करने का भी मुझे साहस नहीं होता था। चाचाजी भी पीठ पर हाथ फेरते हुये माँ को शान्त कर रहे थे। फल यह हुआ कि माँ का रोना देखकर पास-पड़ौस के आत्मीय स्वजन, जो वहाँ उपस्थित थे, सभी रोने लगे। माँ नौका पर चढ़ी, आँसू पोंछ रही थी और हँस रही थी। हम लोग माँ की

---

* माँ का नाम निर्मला सुन्दरी है, उस लड़की का नाम भी निर्मला था। वे माँ की बचपन की सहेली थी। माँ का 'आनन्दमयी' नाम ज्योतिष बाबू ने रखा है।

यह लीला देखकर नौका में आकर खूब हँसे। वीरेन्द्र दादा ने कहा– ''सब को रुलाये बिना माँ आने वाली न थी, इसीलिये स्वयं रोकर सबको रुला आई।''

नौका के मार्ग में सर्प–रूपी महापुरुष के दर्शन

हम लोग नाव से आ रहे थे, नवीनगढ़ पहुँचकर स्टीमर पकड़ना था– नवीनगढ़ तक नौका से आना पड़ता है। माँ नौका पर एक किनारे की ओर बैठी थी। एक छोर पर वीरेन्द्र दादा और एक छोर पर मैं बैठी थी। नदी के बीच में नाव तेजी से चल रही थी एकाएक हमने देखा कि बहुत दूर से एक साँप तेजी से नौका की ओर चला आ रहा है। माँ की ओर निहारकर मैंने देखा कि माँ भी एकटक से साँप की ओर देख रही हैं, साँप भी माँ के बराबर ही आ रहा है। माँ बहुत पहले से ही निश्चल होकर बैठी थी, प्रतीत होता है कि माँ बहुत पहले से ही साँप को देख रही थी, किन्तु हम लोगों को कुछ निकट आने के बाद ही साँप दिखाई दिया। आश्चर्य है कि नाव इतनी तेज चल रही थी, किन्तु साँप इधर–उधर न जाकर एकदम माँ जिधर बैठी थी, उधर से ही नाव पर चढ़ने लगा। माँ चुप बैठी थी, साँप भी लगभग शरीर से लगने वाला ही था कि यह देखकर हम लोग उछल उठे, माँझी ने भी उसी समय साँप को चढ़ते देखकर हाथ के डाँडे से साँप पर आघात किया। किन्तु साँप नाव के नीचे चला गया, पानी के उछल उठने से माँ का शरीर भीग गया। माँ स्नान कर उठी तो भी वे एकदम चुप रही। हमने माँ से कपड़े बदलने को कहा, किन्तु माँ ने कपड़े बदले नहीं, माँ ने वे भीगे कपड़े शरीर ही पर ही सुखाये। उस समय हम लोगों ने सोचा – माँ ने कहा था, ''अष्टभुजा के साँप की बात याद आने से आँखों में आँसू आये हैं। फिर उसके साथ भेंट होगी।'' वीरेन्द्र दादा बहुत बार माँ से पूछने लगे– ''माँ, यह साँप के रूप में कौन आया था?'' माँ थोड़ी देर तक चुप रही। फिर कहने लगी– ''मैंने कई हाथ ऊपर शून्य में दो महापुरुष बैठे हुये देखे। एक गुरु था और दूसरा शिष्य। शिष्य खड़ा था।'' तदनन्तर कुछ नहीं बोली। सबने अनुमान लगाया कि शायद साँप कौन था, इस प्रश्न का ही यह जवाब हुआ हो। शायद कोई महापुरुष साँप के रूप में माँ के समीप आये हों। फिर एक बार माँ ने कहा था– ''फिर दर्शन होंगे।'' हम लोग ढाका लौट गये।

निरंजन बाबू के मकान में माँ का सर्प दर्शन

बहुत दिनों के बाद माँ एक बार निरंजन बाबू के मकान के कीर्तन में गई थी। दूसरी मंजिल में जाकर एक कमरे में जमीन पर लेटी थी। सहसा माँ को प्रतीत हुआ कि पैरों के निकट साँप है। किन्तु उस समय कुछ बोली नहीं। जब नीचे कीर्तन में जा रही थी, तब सीढ़ी से उतरते ही साँप के ऊपर पैर पड़ा, पीछे भोलानाथजी थे, उन्हें माँ ने ठेलकर हटा दिया। साँप को मारने के लिये सब लोग दौड़े आये। किन्तु माँ ने कहा– "यदि मार सको तो मारो।" सीढ़ी के बाद बड़ा बरामदा था, साफ सुथरी जगह थी, सारे मकान में उजियाला था। किन्तु सीढ़ी से साँप कहाँ चला गया, कोई देख न पाया। माँ कीर्तन में जा बैठी। इस तरह अनेक बार माँ ज्यों ही कहती– "साँप, साँप का खयाल हो रहा है।" देखने में आता कि तुरन्त ही दो–चार दिनों के बीच में माँ साँप देखती। साँप के साथ माँ का क्या सम्बन्ध है, यह माँ ही जाने। रमना की जिस जगह को माँ ने लेने के लिये कहा था (वर्तमान आश्रम की भूमि), वहाँ भी बहुत बड़े साँप हैं। एक बार एक बहुत बड़ा सफेद साँप दिखाई दिया था। एक बार मैंने सुना था, प्रतुल के हाथ जिस समय माँ दूध और केले भेजती थी, उस समय एक बार एक गड्ढ़े के मुँह पर माँ ने पैर रखते हुये खड़ी होकर प्रतुल से कहा– "तुम यहाँ आकर दूध और केले दे जाना, कोई भय नहीं है।" ढाका बक्सी बाजार के सत्यबाबू और उनकी स्त्री भी बहुत दिनों से माँ के समीप आ रही थी। उन्होंने भी कुछ दिन दूध और केले दिये थे।

प्यारीबानू के पुत्र और कन्या के विवाह में माँ का कलकत्ता गमन

कलकत्ता आते–जाते समय हर बार ही प्यारीबानू के यहाँ माँ को ले जाना होता और कीर्तन आदि भी होता था। प्यारीबानू की केवल एक लड़की और एकमात्र लड़का है– उनके विवाह के अवसर पर संवत् 1984 में उन्होंने माँ को कलकत्ता बुलाया। पिताजी, मैं और माँ, भोलानाथजी के साथ गई। उन्होंने विवाह के समय माँ को उपस्थित रखा। वर और वधू माँ को प्रणाम कर विवाह–मण्डप में गये। एक ही समय दो घरों में दो विवाह हुये। उन्होंने माँ को दोनों घरों में विवाह–मण्डप के पास बैठाए रखा। यद्यपि बाहरी दृष्टि से देखने पर प्यारीबानू के बाग में भोलानाथजी एक कर्मचारी–

मात्र थे, किन्तु उस समय उन्हें उस दृष्टि से बिल्कुल ही नहीं देखती थी, बहुत अधिक श्रद्धा रखती थी। विवाह के पश्चात् भी उन्होंने कई दिनों तक माँ को कलकत्ता रखा। माँ को प्रतिदिन अपने मकान में बुलाती। प्यारीबानू आदि का एक पारिवारिक झगड़ा था। एक दिन उन्होंने माँ से कहा– ''मेरी सास कभी यहाँ नहीं आती हैं। इस बार आपकी कृपा से ही वे आई हैं। हम लोगों में एक भीषण कलह चल रहा है। हमारा विश्वास है कि यदि आप उपस्थित रहे तो सब मंगल हो जायेगा। इसलिये कल आपको समीप में बैठाकर हम अपनी पारिवारिक अशान्ति की मीमांसा करेंगी।'' वैसा ही हुआ– माँ को समीप में बैठाकर वे सब एकत्रित हो बैठी एवं आश्चर्य की बात है कि उनके इतने दिनों का विवाद मिट गया। मैं भी साथ थी। उन्होंने माँ से कहा– ''आपकी कृपा से ही यह मीमांसा हुई। आप हमारा बगीचा छोड़कर कहीं भी नहीं जा सकेंगी।'' सास ढाका में रहती थी, इस कारण वे ढाका जाती न थी। उस समय यह निश्चय हुआ कि सब लोग ढाका जायेंगे। माँ से वहाँ जाकर अपने साथ भेंट करने को कहा। मुसलमानों के बगीचे में काली–पूजन हो यह कोई कम साधारण बात नहीं है। केवल माँ के प्रति प्यारीबानू की श्रद्धा थी, इसी कारण वह हो सका था। हाँ, बीच में रायबहादुर योगेश बाबू भी थे। माँ के साथ हम लोग ढाका लौट आये।

प्यारीबानू के पुत्र और कन्या के विवाह के अवसर पर स्व. चितरंजनदासजी की बड़ी लड़की अपर्णा देवी निमन्त्रित होकर आई थी। माँ के बदन पर लाल किनारे की साड़ी और कपाल पर बड़ा–सा सिन्दूर का टीका देखकर उन्हें अपनी माँ के (वासन्ती देवी के) बहुत दिन पहले देखे हुये एक स्वप्न की स्मृति जाग उठी। वासन्ती देवी ने विधवा होने से पहले एक दिन स्वप्न देखा था कि एक स्त्री–जिनके बदन पर लाल पाड़ की साड़ी और कपाल पर बड़ा सिन्दूर का टीका था– उनसे कह रही थी– ''तुम सावधान हो ओ, तुम्हारे ऊपर भयानक विपत्ति आ रही है।'' अपर्णा देवी को उक्त स्वप्न की बात याद आते ही उन्होंने वासन्ती देवी के निकट माँ का संवाद भेजा। एक दिन प्यारीबानू के मकान के कीर्तन में वासन्ती देवी माँ को देखने आई। वे बहुत देर तक माँ की ओर निहारती रही। सबके पूछने पर उन्होंने कहा– ''बहुत दिनों की बात है, मुझे ठीक स्मरण

नहीं है, फिर भी यही मूर्ति मानो मैंने स्वप्न में देखी थी।* तदनन्तर अपर्णा देवी को आदेश देकर उन्होंने माँ को कीर्तन सुनवाया एवं स्वयं माँ को गोद में लिया। उक्त दास महोदय की बहिन उर्मिला देवी के साथ वासन्ती देवी फिर भी अनेक बार माँ के समीप आई एवं अपने मकान में भी माँ को ले गई। तीनों की ही माँ पर असीम श्रद्धा थी। अपर्णा देवी भी माँ को अपने घर ले गई।

प्यारीबानू का ढाका आगमन

कुछ दिनों के बाद (सं. 1984 वि. में ही) प्यारीबानू पुत्र और बहू तथा लड़की और जामाता के साथ ढाका सास के समीप आई। एक दिन उन्होंने माँ के हाथ की रसोई खाने के लिये कहा था, इसलिये उनसे खाने के लिये कहा गया। माँ ने अपने ही हाथ से अधिकांश रसोई बनाई। मैंने और मटरी बुआ ने साथ में सहायता की। उन्होंने बड़े आनन्द के साथ पेड़ के नीचे बैठकर पत्तल बिछाकर भोजन किया। मैंने खाना परोसा। माँ समीप में ही बैठी रही। लड़के-लड़कियाँ सब कितने प्रकार की रसोई बनी हैं, यह सुनने लगे। उन्होंने हँसकर कहा– ''अपनी नानी के मकान में भी हम इतने प्रकार के भोजन नहीं करते हैं, यहाँ तो बहुत अधिक प्रकार के भोजन प्रस्तुत हैं।'' सब लोगों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ खाया-पीया। मैं पहले कह चुकी हूँ कि माँ जब जो कुछ करती हैं वही मानो परिपूर्ण होता है। नवाब के घर के सब लोगों को खिला रही थी, उस काम में भी कोई त्रुटि नहीं रही। नवाबजादी प्यारीबानू ने अपने हाथ से काली-प्रतिमा के गले में सोने का हार पहना दिया। कुछ दिनों के बाद वे सब कलकत्ता चले गये।

कामाख्या यात्रा (सं. 1984 वि.)

माँ का गोहाटी जाने का निश्चय हुआ। इधर कुम्भ मेले में जाते समय मुन्सिफ दीनेशचन्द्र राय महाशय के साथ कलकत्ते में माँ की भेंट हुई थी। वे उस समय सपरिवार कलकत्ते में ही थे। थोड़े दिन पहले उनका एक

---

* स्व. चित्तरंजनदासजी की मृत्यु के कुछ दिन पहले फोटो में दास महोदय के साथ उनकी स्त्री को देखकर माँ ने कहा था, इस महिला के ऊपर विपत्तियों का पहाड़ आ रहा है। ये शीघ्र ही विधवा हो जायेगी। उस समय भी माँ उनको पहचानती न थी।

होनहार लड़का मर गया था। वह लड़का नन्दू के साथ प्रेसीडेन्सी कॉलेज में बी.ए. कक्षा में पढ़ता था। नन्दू ही दीनेश बाबू और उनकी स्त्री को माँ के साथ भेंट कराने के लिये ले आया था। माँ के दर्शन कर उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली थी। उसके बाद एक छुट्टी में वे मातृ-संग-लाभ के लिये ढाका आकर भाड़े का मकान लेकर रहे थे। उस समय वे माँ को एक बार फिरोजपुर ले जाने के लिये अनुरोध करने लगे। गिरिजाशंकरजी का मकान वरिशाल के बाइसारी गाँव में है- वे भी एक बार माँ को अपने घर ले जाना चाहते थे। माँ हम सब लोगों को साथ लेकर संवत् 1984 वि. में ही गोहाटी कामाख्या दर्शन के लिये चली। निश्चय हुआ कि गोहाटी से ढाका न आकर दार्जिलिंग से फिरोजपुर जायेंगे और वाइसारी होते हुये लौटेंगे। मैं, पिताजी और माँ भोलानाथजी के साथ चले। वीरेन्द्र दादा भी गये। कामाख्या पहाड़ पर चढ़ते समय पहले-पहले तो माँ खूब जल्दी-जल्दी चढ़ी, कुछ दूर जाते ही साँस की गति दूसरे ढंग की हो जाने के कारण फिर चढ़ न सकी। हम लोग धर-पकड़कर किसी प्रकार उठा ले गये। ऊपर जाकर देखते हैं कि काशी से कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी आये हैं। निर्मल बाबू आये नहीं, किन्तु उनकी स्त्री आई है। दो-चार दिनों में ही कलकत्ते से नानाजी (नानाजी कलकत्ते में सुरेन्द मुखोपाध्यायजी के मकान में कुछ दिनों से रहते थे), सुरेन्द्र बाबू, चण्डी बाबू, चारु बाबू (रायबहादुर के कनिष्ठ पुत्र) आदि बहुत से लोग आ पहुँचे। खूब आनन्द रहा। कामाख्या देवी के दर्शन हुये। एक दिन रात्रि में माँ बाहर गई, उन्होंने देखा- सम्पूर्ण पहाड़ मानो एक पवित्र सत्ता से चारों ओर परिव्याप्त है। उस पवित्र भाव का प्रभाव चारों ओर बिखर रहा है। मुकुटधारी कितने राम, कृष्ण तथा अन्यान्य देवी-देवता दौड़ा-दौड़ी कर खेल रहे हैं, सभी की बाल्यावस्था है। अनेक और भी ऋषि-मुनियों को माँ ने देखा, जिनकी लम्बी-लम्बी जटा और दाढ़ियाँ थी और कोई बाल्यावस्था से पार नहीं हुये थे। उन सभी लोगों ने माँ को पाकर आनन्द मनाया। इतनी मूर्तियाँ थी कि पहाड़ मानो दिखाई नहीं दे रहा था। माँ शीघ्रता से कमरे में चली आई। उस समय माँ ने कुछ कहा नहीं, बाद में सब वृतान्त कहा? मैंने कहा- रामायण-महाभारत में बालखिल्य ऋषियों का वर्णन मिलता है, वे सभी बालक और महातपस्वी थे। माँ ने कहा-''वे ही न हों। मैंने तो यह कथा कभी सुनी नहीं, सभी किन्तु उसी तरह के थे। देख, स्थान का उस समय क्या प्रभाव था। निर्मल

बाबू की स्त्री मेरे साथ ही थी, उसने कुछ देखा नहीं, किन्तु उसके सम्पूर्ण शरीर में मारे भय के रोंगटे खड़े हो गये थे। वह भय का कारण न बतला सकी।'' पूजा के समय भी अनेक बालक-बालिकायें माँ के समीप आये थे। कामख्या पहाड़ में एक दिन रात्रि के समय माँ और भोलानाथजी लेटे थे। हम सभी लोग बैठे थे, माँ पहले की बातें, अष्टग्राम की बातें, बाजितपुर की बातें, माँ किस प्रकार गृहस्थी चलाती थी, ये सब बातें भी कह रही थी। पिताजी एक कमरे में सारी रात बैठकर अपना जपादि कृत्य कर रहे थे। उस कमरे में माँ के साथ बातें करते- करते भोर हो गई। कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी सहसा बोले- ''आज मैंने मन में निश्चय किया था कि माँ से अपने जप-तप की बात करूँगा, कुछ भी नहीं हुआ, व्यर्थ बातों में रात कट गई।'' माँ तुरन्त बोल उठी- ''तुम लोग तो कितनी ही बातें कहते हो, मालूम पड़ता है उनमें समय व्यर्थ नहीं जाता, मेरी गृहस्थी की कथा ही मालूम होता है, व्यर्थ हुई।'' सबको लगा कि माँ ने शिक्षा देने के लिये ही यह बात कही थी। माँ की प्रत्येक बात हम लोगों के लिये मन्त्र के तुल्य श्रद्धा की वस्तु है, उसे हम भूल जाते हैं यह सोचकर ही माँ ने हँसी-ठट्ठे में उसका स्मरण करा दिया। जिस बात को सुनने से मन पवित्र होता है, वह क्या व्यर्थ की बात हो सकती है? विशेषकर माँ के पूर्व जीवन की बातें- पूर्व घटनायें- जो अति पवित्र बातें है। काम की बात और व्यर्थ की बात किसे कहते हैं, यह भी हम लोग नहीं जानते हैं। कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी उक्त बात का तात्पर्य समझकर अत्यन्त लज्जित हुये और उन्हें अपनी गलती प्रतीत हुई। कामाख्या पहाड़ पर एक दिन भोलानाथजी माँ की पूजा करने वाले थे, सारा प्रबन्ध किया जा चुका था। माँ बैठी थी, भोलानाथजी पूजा कर रहे थे कि इतने में ही माँ एकाएक समाधिस्थ हो गई। बहुत देर तक उसी तरह बैठी रही। कपाल पर सिन्दूर के टीके के समीप कुछ स्थान खूब सफेद दिखाई दे रहा था। वहाँ पर उपस्थित सभी ने उसे देखा। उस समय तक कलकत्ते का दल वहाँ नहीं पहुँचा था। जिस कमरे में पूजा हुई उसके पीछे विशाल बरामदा था, बरामदा खूब ऊँचा था। बरामदे के नीचे कुछ दूरी पर बलि हुई। भोलानाथजी ने ही बलि दी। पिताजी ने संयोगवश बकरे को बलि के बाद इस तरह पकड़ा था कि रक्त से उनका स्नान हो उठा। समाधि भंग होने के बाद माँ ने

कहा- ''बलि के रक्त की बूंद मेरे शरीर में लगी हैं मुझे स्पष्ट रूप से प्रतीत हुआ।'' इस कथन से सभी को अचम्भा हुआ, क्योंकि इतनी दूर से साधारणतया रक्त आ ही नहीं सकता है। भोग लग गया है। पूजा के बाद कलकत्ते का दल आ पहुँचा। कुछ दिनों तक माँ ने पहाड़-ही-पहाड़ पर खूब आनन्द से भ्रमण किया।

फिरोजपुर में माँ

उसके अनन्तर माँ ने फिरोजपुर की ओर प्रस्थान किया। माँ के जाने में विलम्ब होने के कारण दीनेश बाबू ने टेलीग्राम से सूचित किया कि मैं नहीं रह सका, बदली होने के कारण चला जा रहा हूँ, किन्तु फिरोजपुर के सब लोगों को माँ दर्शन दे जायें। ढाका के गिरिजा बाबू, सुबोध, सीतानाथ सब फिरोजपुर जाकर माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोग फिरोजपुर पहुँचे (1985 वि.)। स्टीमर से उतरकर थोड़ी दूर नाव से जाना पड़ता है। नाव के घाट पर पहुँचते न पहुँचते ही कीर्तन की अति मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी, माँ की भावावस्था हो पड़ी। नाव के घाट पर लगते ही बहुत से लोग कीर्तन करते-करते घाट पर आते दिखाई देने लगे। सब माला-चन्दन लेकर आ रहे थे। माँ को पकड़कर उठाया गया और कमर में कपड़ा बाँध दिया गया। सब लोगों ने माला और चन्दन से माँ को सजाया। वे सभी को माला पहना और चन्दन लगा रहे थे। उस भावावस्था में माँ के नेत्र अर्धनिमीलित थे, शरीर मानो छोड़ दिया था। सिर के बाल खुले थे, शरीर और कमर पर कपड़ा लपेटा था, एक जम्पर बदन पर था। ऐसी अवस्था में वे हिलते-डुलते कीर्तन के साथ चली। माँ का वैसा रूप देखकर सब मानो मस्त हो उठे। सभी उस मूर्ति को देख रहे थे और आनन्द में विभोर होकर कीर्तन कर रहे थे। जहाँ पर माँ का रहने का स्थान बनाया गया था, वहाँ जाना हुआ। माँ वहाँ पहुँचते ही बैठ गई। सब लोग घूम-घूमकर कीर्तन करने लगे, दीनेश बाबू के मुँह से सभी ने माँ की बातें सुनी थी। थोड़ी देर बाद भोग हुआ। माँ कुछ भी खा न सकी, भावावस्था में ही थी। कीर्तन भी बन्द नहीं हो रहा था। माँ दो दिन वहाँ रही, कीर्तन प्रायः सदा ही चलता रहा। सुनने में आया कि फिरोजपुर के सभी लोग माँ के निकट आये, केवल एक बुढ़िया, जो चल नहीं सकती थी, बाकी रही। माँ को साथ लेकर सब लोग उसे दिखा लाये।

वाइसारी में माँ

गिरिजा बाबू माँ को फिरोजपुर से अपने घर ले गये। वहाँ माँ की खूब भावावस्था हुई, कीर्तन भी खूब हुआ। सारे दिन कीर्तन होने के बाद रात्रि में थोड़ा बन्द होने पर भोग हुआ। बहुत लोगों ने प्रसाद पाया। गिरिजा बाबू की वृद्धा माता, स्त्री और बाल-बच्चे सब घर पर ही थे। माँ के पहुँचने में देरी देखकर गिरिजा बाबू आदि माँ के आने के सम्बन्ध में निराश हो गये थे। एक दिन उनकी माँ ने भोर में उठकर कहा- "मैंने स्वप्न में देखा है कि काली और मनसा माता आ रही हैं, तू फिरोजपुर जा, निश्चय ही माँ आ रही हैं।" उनके फिरोजपुर जाने के बाद ही माँ आ पहुँची। तीन दिन गिरिजा बाबू के मकान में रहे। माँ का भावावेश हुआ था, गिरिजा बाबू ने वहाँ पर माँ का एक आश्रम बना दिया। वहाँ से वीरेन्द्र बाबू (डॉक्टर) अपने मकान में माँ को ले गये। वहाँ भी कीर्तनादि खूब हुआ, बहुत लोगों ने प्रसाद पाया। गिरिजा बाबू के मकान में ही वीरेन्द्र महाराज ने आकर माँ का संग पकड़ा।

सोहागदल गाँव

वीरेन्द्र डॉक्टर के मकान से सोहागदल गाँव में जाना हुआ। एक गाँव से दूसरे गाँव में कुछ दूर नाव में और कुछ दूर पैदल ही गई। साथ-ही-साथ बहुत से लोग कीर्तन करते-करते जा रहे थे। कोई भी माँ को छोड़ना नहीं चाहता था। बच्चे, बूढ़े सब सम्मिलित होकर कीर्तन कर रहे थे। सब सोचते थे कि सदा कीर्तन करने पर माँ फिर जा न सकेंगी। माँ ने एक दिन पिताजी से कहा- "आज जायेंगे, जाने का प्रबन्ध करो।" पिताजी ने नाव ठीक की, दोपहर में ही माँ सब लोगों को साथ लेकर बाहर निकल पड़ी। माँ नाव में आते ही समाधिस्थ होकर पड़ी रही।

सलकिया और राजशाही होते हुये ढाका लौटना

वहाँ से हम लोग कलकत्ता सलकिया में बुआजी के घर गये। वहाँ से माँ के साथ राजशाही गये, तदुपरान्त फिर कलकत्ता होते हुये ढाका जाना हुआ। हम लोग माँ को लेकर ढाका पहुँचे। इन सब गाँवों में माँ अनेक लोगों के मकानों में गई। सभी लोग अपना मकान पवित्र करने के लिये माँ

को अपने-अपने मकानों में ले गये। बहुत से मकानों में एक घिरे हुये स्थान में लक्ष्मी अथवा राधाकृष्ण का आसन रहता है, वहाँ जाकर माँ ने उन आसनों से बताशा अथवा पान बीन कर खाये। माँ के ऊपर सभी की देवीबुद्धि थी, इसलिये आसन के पान या बताशा माँ को देने में किसी को हिचक प्रतीत नहीं हुई। इस प्रकार विविध लीलायें कर माँ ढाका पहुँची। देवधर से बाहर निकलने के बाद से ही माँ फिर एक बार में एक वर्ष भी ढाका नहीं रहती हैं।

* * *

छठवाँ अध्याय

भोजन का नूतन नियम

कुछ दिन माँ का खाने का नियम चला कि एक बार में हाथ में जितना आये उसे उठाकर अथवा रखकर दाहिने हाथ से खिला देना होगा। उसके सिवा और कुछ भी न खायेंगी। मैं वही करती। एक दिन कलकत्ते प्रमथ बाबू के मकान में भी इसी तरह खिलाया। कई दिनों तक किसी भी बर्तन में कुछ न खाती। कमरे के फर्श को साफ–सुथरा कर माँ को खिलाना पड़ता। एक दिन भोलानाथजी के न जाने क्या कहने पर उन्होंने कहा– ''काँसे के बर्तन में मैं नहीं खाऊँगी।''पीतल के बर्तन में भी नहीं खाऊँगी, कहाँ? इस पर भोलानाथजी ने उपहास कर कहा– ''किसी में भी नहीं खायेंगी, तब क्या चाँदी के बर्तन में खाएँगी?'' माँ ने भी जवाब दिया– ''ठीक ही कहा है, यदि चाँदी का बर्तन हो तो उसमें खा सकती हूँ। किन्तु कह देती हूँ कि मेरे लिये न तो कोई चाँदी का पात्र तुम बनाना और न यह बात किसी से कह ही सकोगे।'' आश्चर्य की बात है कि उक्त कथनोपकथन के दो–एक दिन में ही ज्योतिष दादा ने मकान से कुछ सन्देश (एक प्रकार की मिठाई) रखकर एक चाँदी की रकाबी माँ के लिये भेज दी। कुछ दिनों के बाद पिताजी ने भी एक चाँदी की रकाबी माँ को भेज दी। उस समय इस पर खूब हँसी हुई। तब से कुछ समय तक माँ ने चाँदी के पात्र में भोजन कर फिर अन्यान्य पात्रों में करना आरम्भ किया। काँसे के बर्तन में भूल से भी यदि कभी भोजन हो जाता तो भोजन बन्द हो जाता, अवस्था में भी एक विषम परिवर्तन हो जाता। बहुत दिनों के बाद यह नियम टूट गया।

प्रमथ बाबू और उनके चपरासी को अलौकिक दिव्य रूप–प्रदर्शन

प्रमथ बाबू ने स्वयं ही वर्णन किया है कि एक दिन उनके मन में माँ के सम्बन्ध में न जाने कैसा एक संशय जागा। उन्होंने सोचा, मैं जिस देवी का मन में ध्यान कर रहा हूँ, यदि माँ मुझे वही मूर्ति दिखा दें तो मेरा सन्देह निवृत्त हो जायेगा। उन्होंने इस विषय में किसी से भी कुछ नहीं

कहा। उसी दिन सन्ध्या के समय माँ, भोलानाथजी और प्रमथ बाबू सिद्धेश्वरी गये। माँ कभी-कभी वहाँ जाती। माँ उस दिन भी वहाँ जाकर काली-मन्दिर के बरामदे में बैठी। बहुत रात बीत गई थी, माँ के तो लौटने का कोई ठीक समय नहीं, भोलानाथजी बरामदे में लेटे-लेटे सो गए। प्रमथ बाबू बैठकर जप कर रहे थे। उन दिनों माँ खूब लम्बा घूँघट काढ़े रहती थी, मुँह अक्सर दिखाई नहीं पड़ता था। माँ उसी तरह बैठी थी। बहुत देर बाद चारों ओर सन्नाटा छा गया। माँ एकाएक उठ खड़ी हुई, सिर का कपड़ा गिर पड़ा, सिर उलट कर पीठ से जा मिला, सिर के बाल खुल गये, क्या हुआ मैं नहीं जानता। प्रमथ बाबू ने उस दिन छिन्नमस्ता मूर्ति देखने की बात सोची थी, वही माँ के शरीर में देखकर वे तो चकित रह गए एवं भूमि पर लोटकर उन्होंने माँ को प्रणाम किया। मुहूर्त के बाद ही माँ फिर सुस्थिर होकर बैठ गई, भोलानाथजी के जागने पर सब लोग शाहबाग चले आये। तदनन्तर प्रमथ बाबू अपने घर चले गये। उस दिन उनके साथ एक चपरासी था, उसने भी यह सब देखा था। उसने प्रमथ बाबू से कहा- ‘‘बाबूजी, मैंने माँ के स्वरूप में दस महाविद्याओं का रूप देखा।’’ प्रमथ बाबू ने उसे गले लगाकर कहा- ‘‘तुम मुझसे भी अधिक भाग्यवान हो, क्योंकि मैंने केवल एक रूप देखा है और तुमने दस रूप देखे हैं। इस घटना की बात पिताजी ने प्रमथ बाबू के मुँह से ही सुनी थी।

माँ नित्यसिद्धा हैं- बालानन्द स्वामी का मत

देवधर के बालानन्द स्वामीजी ने भी एक दिन स्वयं ही पिताजी से कहा था, ‘‘जिनका संग पकड़े हो, छोड़ना मत। माँ तो साधिका नहीं हैं। ये नित्यसिद्धा हैं, किसी कर्म के निमित्त जन्म लिया है, उस कर्म की पूर्ति होने पर ही चली जायेंगी। इन्हें किसी प्रकार का साधन-भजन करना नही है।’’ माँ के सम्बन्ध में इसी तरह की और भी बहुत-सी बातें उन्होंने कही थी, किन्तु माँ इस प्रकार साधारण ढंग से चलती हैं कि हम सभी बातें भूल जाते हैं। विशेष एक-से-एक घटना देखने पर भी पीछे फिर सब विस्मृत हो जाती हैं।

सिद्धेश्वरी में माँ की गुप्त लीला

इसी बीच में एक बार शिवरात्रि के दिन दोपहर के समय माँ

भोलानाथजी, पिताजी, वीरेन्द्र दादा, नन्दू, मरणी और मुझे साथ लेकर सिद्धेश्वरी गई। माँ वहाँ जाकर उस गर्त में ही बैठी, थोड़ी देर बाद उठकर माँ ने भोलानाथजी से वहाँ पर बैठने को कहा। भोलानाथजी के बैठने पर माँ जाकर उनकी एक जंघा पर बैठी और दूसरी जंघा के ऊपर मरणी को बैठाया। उसके पश्चात् पिताजी से माँ ने (अपनी) गोद में बैठने को कहा। पिताजी माँ की गोद में बैठे। पिताजी को उठाकर फिर वीरेन्द्र दादा से बैठने को कहा, वे भी बैठे। तदुपरान्त उन्हें उठाकर मुझसे बैठने को कहा एवं मुझे उठाकर नन्दू को बैठाया। उसके बाद सब उठ गये। गुप्त भाव से ही उक्त लीला हुई, दूसरे किसी के श्रुतिगोचर या दृष्टिगोचार नहीं हुई। कुछ समय वहाँ रहकर शाहबाग लौट आना हुआ।

टिकाटूली के मकान में पिताजी की पैतृक दुर्गा–पूजा

सं. 1984 वि.– माँ के शाहबाग रहते समय 1984 वि. में हम लोगों के टिकाटूली के मकान में दुर्गा पूजा हुई। वह पैतृक पूजा थी, इसलिये आत्मीय स्वजन सभी इकट्ठे हुये। माँ के भक्त भी बहुत से आये। कलकत्ते से बहुत लोग आये। सभी लोग टिकाटूली के मकान में इकट्ठा हुये। माँ और भोलानाथजी षष्ठी के दिन ही टिकाटूली के मकान में चले गये। काशी से कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी सपरिवार गये थे। उनके मित्र और श्रीयुत् अरविन्द घोषजी के शिष्य मिर्जापुर के डॉक्टर श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायजी भी माँ का नाम सुनकर कुंज बाबू के साथ ही माँ के दर्शन करने सपत्नीक गये थे। जिन पुरोहितजी ने वासन्ती पूजा कराई थी, वे ही दुर्गा पूजा कराने गये थे। उनके पैर में बड़ी व्यथा हुई थी। माँ ने कहा– ''इस तरह से पूजा करना ठीक नहीं है। अपनी पूजा अपने आप ही तो करना उचित है। तुम स्वयं नहीं कर सकते हो इसी से पुरोहित द्वारा कराई जाती है। बाबा ही (पिताजी ही) पूजा करें।'' सब भाइयों में पिताजी ही सबसे बड़े थे, इसलिये माँ के आदेश से वे ही पूजा करेंगे और पुरोहित मन्त्र बोल देंगे, यह निश्चय हुआ। जीवन में ऐसा पहले कभी किसी ने देखा न था। पिताजी पूजा करने बैठे। माँ उसी कमरे में एक छोर पर बैठी रहती। पिताजी माँ के चरणों की धूली और आदेश लेकर पूजा में बैठे। जितनी देर तक पूजा होती उतनी देर तक माँ उसी कमरे में बैठी रहती। पिताजी पूजा करते और अन्यान्य सब लोग पूजा की सामग्री देते और जुटाते। श्रीयुत् सुरेन्द्रमोहन

मुखोपाध्यायजी पिताजी के चचेरे भाई हैं, अतः वह उनकी भी पैतृक पूजा थी। वे सपरिवार आये थे। चारु बाबू, अनन्त बाबू और चण्डी बाबू भी आये थे। माँ इन पाँच जनों को पंच पाण्डव कहती थी। एक दिन इन पाँच जनों ने माँ को शाहबाग ले जाकर पूजा। दुर्गा पूजा में बलि का भी प्रबन्ध किया गया था। सप्तमी के दिन बलि निर्विध्न हो गई। तीन दिन तीन बलियाँ होती थी, यही पूर्व पुरुषों का नियम था। अष्टमी के दिन पिताजी के कल्याण के लिये एक विशेष बलि बहुत दिनों से दी जाती थी। सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी भी बलि दे रहे थे। अष्टमी के दिन बकरे का उत्सर्ग करने के अनन्तर खड्ग लेकर जाते समय उन्होंने माँ को पहले एक बार प्रणाम किया, फिर खड्ग के उत्सर्ग के अनन्तर जबकि खड्ग लेकर बलि देने जा रहे थे, उस समय खड्ग को जमीन पर रखकर माँ का प्रणाम कर बलि के कमरे में चले गये। जिस कमरे में पूजा हो रही थी उससे सटे हुये दूसरे कमरे में प्रतिमा के सामने बलि देने का प्रबन्ध किया गया था। इधर माँ प्रतिमा की ओर मुँह करके पूजा के कमरे के एक छोर पर बैठी थी। माँ की पीठ की ओर बलि की कोठरी थी। माँ जहाँ पर बैठी थी वहाँ से बलि का स्थान बिल्कुल भी दिखाई नहीं देता था, जबकि विशेषकर माँ प्रतिमा की ओर मुँह करके बैठी थी। किन्तु ज्यों ही वे खड्ग लेकर बलि देने के लिये गये त्यों ही माँ एकाएक उठ खड़ी हुई। एकबारगी दो कमरों के बीच के दरवाजे पर जाकर माँ के खड़ी होते ही खड्ग बकरे के ऊपर गिरा एवं साथ-ही-साथ बकरा कटा नहीं, जानकर सब महिलायें ऊँचे स्वर से 'माँ-माँ' कहकर चिल्ला उठी। मकान में एक भीषण शोरगुल मच गया, क्योंकि यह अमंगल का चिह्न है, ऐसा सबका विश्वास है। किन्तु माँ जैसी स्थिर थी वैसे ही स्थिर, धीर, शान्त और आनन्दमयी मूर्ति में खड़ी रही। भोलानाथजी बहुत घबरा उठे, उन्होंने सोचा, "ऐसा आनन्द हो रहा है इसके बीच में यह घटना घटी।" वे उसी समय प्रतिमा के चरणों में अंजलि देकर सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी के हाथ से खड्ग लेकर बलि देने के लिये प्रस्तुत हुये। सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी माँ की ओर निहारते हुये खड़े थे। भोलानाथजी ने वीरेन्द्र दादा से बकरा लाने को कहा, बकरा लाया गया, बलि हो गई। उसी समय पिताजी के मंगल के लिये भी बकरे की बलि दी जाने वाली थी। वहाँ भी खूँटा गाड़ दिया गया था। भोलानाथजी ने बलि देने के लिये खड्ग उठाया ही था कि इतने में माँ दौड़ती हुई जाकर बकरे के गले में

हाथ डालकर बैठ गई। हँसती हुई बोली– ''मेरा हाथ काटे बिना बकरे को नहीं काट सकोगे।'' भोलानाथजी ने खड्ग नीचे कर लिया। बकरा उठा दिया गया। माँ से पूछा गया कि बकरे का क्या होगा? माँ ने भी उसे रमना के मैदान में पहले की जगह ही ले जाकर छोड़ आने को कहा। इस बार भी बकरे के सारे शरीर पर पैर फेर दिया एवं उसी समय आदेश दिया– ''पिताजी के कल्याण के लिये प्रतिवर्ष जो एक विशेष बलि होती है वह अब न होगी।'' आगे और बोली– ''अपनी पैतृक बलि के सम्बन्ध में तुम लोग अपने गुरुदेव से पूछो, वे यदि कहें तो उसे भी बन्द कर सकते हो।'' तभी से पिताजी के कल्याण के लिये जो बलि होती थी वह बन्द हो गई। किन्तु गुरुदेव के इच्छानुसार पैतृक बलि चली आ रही है। उस दिन जब पूजा देखने के लिये आये हुये पुरुष ही या स्त्री, सभी इस प्रकार बलि के व्यापार से घबरा उठे थे और सभी माँ–माँ पुकार रहे थे। उस समय माँ में क्षण भर के लिये भी चंचलता नहीं दिखाई दी, मुख पर तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ, मानो कुछ भी नहीं हुआ, ऐसा माँ का भाव रहा, यह देखकर जिनकी माँ के ऊपर उतनी श्रद्धा–भक्ति नहीं थी, वे भी स्तब्ध रह गये थे। उन्होंने भी स्वीकार किया था कि ऐसी स्थिरता हमने और कहीं भी नहीं देखी। वास्तव में ही यदि और कुछ न भी मानें तो भी केवल इन सभी अवस्थाओं में शान्त, स्थिर, आनन्दपूर्ण भाव के कारण ही वे जगत् के लिये पूजनीय हैं। मानव जाति इस भाव के प्रति मस्तक बिना नवाये नहीं रह सकती। इस प्रकार माँ ने दो बार दो बलियाँ बन्द कराई। माँ ने कहा– ''उत्सर्ग होने पर ही बलि हो जाती है।''

सिद्धेश्वरी के बड़े कमरे का निर्माण

सिद्धेश्वरी का मकान पुराना हो गया था। बहुत से लोग यह सोचते थे कि माँ के लिये एक आश्रम बनाना आवश्यक है। क्योंकि उक्त बाग में सदा सबके इकट्ठे होने में बाधा उपस्थित होती थी। प्यारीबानू आदि की तरफ से ही थोड़ी–बहुत गड़बड़ी सुनाई देने लगी थी। इस कारण सिद्धेश्वरी में एक अच्छा कमरा बनाने का प्रस्ताव हुआ। इससे पहले माँ की इच्छा के अनुसार जो कमरा बना था, उसकी छाजन घास–फूस की थी और दीवार मिट्टी की थी। इस बार सबकी सम्मति से बड़ा कमरा बनाना ही स्थिर हुआ। पिताजी ने अगुवा बनकर उसका भार अपने ऊपर लिया और

जितनी जमीन थी, सबको साथ लेकर एक बड़ा कमरा बनाया। उस कमरे का लगभग आधा व्यय अन्यान्य लोगों ने मिलकर दिया। बाकी आधा पिताजी ने दिया। वही माँ का प्रथम आश्रम है। वह कमरा इस समय भी विद्यमान है। इस बार कमरा बनाते समय माँ ने उस निर्दिष्ट आसन के सम्बन्ध में कहा– ''यह स्थान इतने दिनों तक एक गर्त के तुल्य था, किन्तु मैं देख रही हूँ कि इस स्थान की रक्षा कोई कर न सकेगा।'' यह कहकर अपने शरीर की नाप से उस जगह जिस प्रकार की वेदी माँ को बनानी थी, वह बतला दी। उसी प्रकार की वेदी बना दी गई।

माँ का ढाका त्याग– गिरिडीह, चुनार और विन्ध्याचल गमन

कुछ दिनों के बाद माँ फिर बाहर चली गई। इस बार माँ तुम लोगों को साथ नहीं ले जाऊँगी, कह रही थी। साथ में भोलानाथजी, मरणी और नन्दू को लेकर बाहर जाने वाली थी। हम लोग माँ के साथ–ही–साथ रहते थे, इस कारण बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु माँ हमें समझा–बुझाकर रवाना हो गई। कलकत्ता गई, वहाँ काशी से सपरिवार श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने आकर माँ का संग पकड़ा। सब लोग गिरिडीह गये, वहाँ से परेशनाथ के दर्शन कर कुछ दिन वहाँ रहकर कलकत्ता आये। सम्भवतः कलकत्ते से ही श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी सपरिवार काशी चले गये। माँ संगी–साथियों को लेकर चुनार होती हुई मिर्जापुर गई और वहाँ से विन्ध्याचल गई। उस समय भी विन्ध्याचल में आश्रम नहीं बना था। माँ मारवाड़ियों के बंगले में रही। रोज साँझ को पुजिमर के डॉक्टर श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायजी अष्टभुजा पहाड़ पर माँ के समीप आते थे। फिर प्रातःकाल चले जाते थे। माँ, भोलानाथजी और नन्दू सब मिलजुल कर रसोई–वसोई करते, इसी प्रकार काम चलता। कुछ दिनों के बाद **विन्ध्यवासिनी देवीजी** के दर्शन के लिये निर्मल बाबू सपरिवार विन्ध्याचल गये। वहाँ माँ का समाचार पाकर सपरिवार माँ के समीप अष्टभुजा पहाड़ पर उपस्थित हुये। कई दिनों के बाद नन्दू कलकत्ते चला गया। माँ कुछ दिन विन्ध्याचल रहकर सब लोगों को साथ लेकर कलकत्ता चली गई। वहाँ पहुँचकर सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी के मकान में रही, खूब आनन्द होता था। माँ को साथ लेकर सुरेन्द्र बाबू, चण्डी बाबू आदि तारकेश्वर गये। बाद में एक बार माँ नवद्वीप भी गई। दो–एक दिन के लिये माँ और भोलानाथजी **जयपुर** और भरतपुर भी उसी समय हो आये।

बोलने में सावधानी की आवश्यकता

सं. 1984– शाहबाग से यात्रार्थ बाहर निकलते समय प्रफुल्ल बाबू की स्त्री ने परिहास में माँ से कहा था–''जल्दी से जल्दी आवें, यदि विलम्ब किया तो शाहबाग में घुसने न दूँगी– दरवाजा बन्द कर दूँगी।'' माँ ने भी हँसते हुये कहा–''यही न, अच्छी बात है।'' भोलानाथजी ने प्रफुल्ल बाबू की स्त्री को यह कहने से मना किया। उन्होंने अवश्य अच्छे भाव से ही यह बात कही थी। किन्तु मुँह से जो निकल गया, वही हुआ। मालिकों ने शाहबाग कोर्ट ऑफ वार्ड के हाथ में दे दिया। भोलानाथजी, योगेश बाबू, भूदेव बाबू सभी की नौकरी जाती रही। माँ का फिर शाहबाग में जाना नहीं हुआ। इसीलिये माँ बहुधा कहती– ''बोलते समय सावधान होकर बोलना उचित है, कभी भली–बुरी सभी बातें सत्य हो जाती हैं।'' मुन्सिफ दीनेश बाबू टांगाइल में थे, माँ इस बार वहाँ होती हुई ही गई थी। इधर नवाब के घराने के मुसलमानों में विवाद चला। काली–मूर्ति बगीचे में ही थी। बगीचे में उस समय मटरी बुआ, नानाजी, नानीजी, माखन, अमूल्य आदि रहते थे। कुलदा दादा काली–पूजा कर आते थे। कमलाकान्त उस समय बगीचे में ही रहता था, क्योंकि वह प्रतिदिन काली के गले में अढ़हुल की माला डालता था। एक दिन माला चढ़ाना भूल गया, माँ उसे जान गई। चिट्ठी लिखकर उन्होंने खबर मँगाई तो विदित हुआ कि सचमुच ही उस दिन माला चढ़ाने में भूल हुई थी।

काली मूर्ति का स्थान परिवर्तन

सं. 1984 वि.– टिकाटूली में एक मकान किराये में लेकर काली–मूर्ति को वहाँ ले गये। जो लोग उस समय शाहबाग थे वे भी वहीं गये। वीरेन्द्र महाराज भी कुछ दिन शाहबाग में रहे थे, पीछे अन्यत्र चले गये। इतनी पुरानी मिट्टी की काली मूर्ति थी, इसलिये सभी को भय हुआ कि उठाते ही कोई अवयव खिसक न पड़े। किन्तु दूसरा कोई चारा न था, मूर्ति अवश्य स्थानान्तरित करनी थी। योगेश बाबू, सुरेन्द्र बाबू आदि मूर्ति को उठाकर मोटर द्वारा टिकाटूली ले गये, किन्तु मूर्ति को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचा।

माँ का टिकाटूली वाले भाड़े के मकान में गमन

बैशाख, सं. 1985– सिद्धेश्वरी का कमरा तैयार हो गया था। इस बार जन्मोत्सव वहीं होगा, ऐसा निश्चय हुआ एवं जन्मोत्सव का समय भी समीप आ पहुँचा। माँ कलकत्ते से टिकाटूली के भाड़े के मकान में सं. 1985 के वैशाख महीने में आई। ज्योतिष दादा भी संग ही आये थे। निरंजन बाबू की स्त्री बहुत अस्वस्थ थी, अतिसार का कष्ट भोग रही थी। माँ आते ही पहले उसी मकान में उतरी, फिर भोजनोत्तर टिकाटूली आई। शाहबाग कोर्ट ऑफ वार्ड में चला गया था, फलत: भोलानाथजी की नौकरी छूट गई थी। रायबहादुर योगेश बाबू की भी नौकरी छूट गई थी। उस समय उक्त नौकरी के लिये रायबहादुरजी के सारे परिवार ने माँ के निकट बहुत अनुरोध किया था, किन्तु माँ ने कहा– "बिल्कुल मत घबराओ, सभी मंगल के लिये है।" सचमुच अन्त में उन सभी को प्रतीत हुआ था कि माँ की कृपा से उक्त नौकरी का छूटना कितना मंगलकारी हुआ। माँ को प्यारीबानू और उनके जामाता इसके पश्चात् भी ले जाना चाहते थे, किन्तु योगेश बाबू को फिर वहाँ जाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसलिये माँ को जाने नहीं दिया गया। इस बार ढाका आने पर माँ ने देखा कि रायबहादुर के पुत्र प्रफुल्ल बाबू की स्त्री की अवस्था बहुत खराब है, उन्होंने अपने सिहराने माँ का फोटो रखा था। टिकाटूली मकान में आने के थोड़ी देर बाद ही माँ को प्रफुल्ल बाबू की स्त्री को देखने ले जाना हुआ। माँ बहुत देर तक वहाँ रही। आते समय अपने शरीर की चादर उन्हें दे आई। कुछ दिनों के बाद ही वे धीरे-धीरे स्वस्थ हो उठी।

सिद्धेश्वरी में माँ का प्रथम जन्मोत्सव–

वैशाख, संवत् 1985 **वि.**– सं. 1985 के बैशाख में सिद्धेश्वरी में माँ का जन्मोत्सव आरम्भ हुआ।* काशी से कुंजमोहन मुखोपाध्याय और निर्मल बाबू सपरिवार आये थे। विनय बाबू (मुन्सिफ) सपरिवार आये थे। माँ

---

* संवत् 1983 के वैशाख में माँ एक दिन हमारे टिकाटूली के मकान में भोग के लिए गई थी। बातचीत के सिलसिले में हमने माँ के मुँह से सुना "वह दिन (11वीं वैशाख) माँ के शरीर के आविर्भाव की तारीख है।" हम लोगों ने कहा, "आज यहाँ भोग होगा वह अच्छा ही हुआ।" उसके बादवाले वर्ष में (सं. 1984 में) उक्त तारीख को ज्योतिष दादा आदि सबने प्रबन्ध कर शाहबाग में माँ का जन्मोत्सव किया था। यही जन्मोत्सव का पूर्व इतिहास है।

भोलानाथजी तथा और सबको साथ लेकर सिद्धेश्वरी गई। इस बार से माँ की जन्मतिथि से तारीख तक जितने दिनों का अन्तर रहता है उतने दिनों तक अखण्ड नाम-कीर्तन चलेगा, यह निश्चय हुआ एवं यह भी निश्चय हुआ कि जन्मतिथि को जन्म के समय भोलानाथजी ही माँ की पूजा करेंगे। 19 बैशाख से उत्सव आरम्भ हुआ। कमरा बहुत बड़ा बना था, इस कारण कमरे के भीतर ही पाला-कीर्तन भी हो रहा था। चिन्ताहरण वन्द्योपाध्याय तथा अन्यान्य बहुत से लोग निमाई-संन्यास, मान-भंजन, माथुर आदि कीर्तन गाकर समागत सब लोगों को कभी हँसा रहे थे और कभी रुला रहे थे। निमाई-संन्यास सुनकर सब रोते-रोते बेहाल हुये। माँ स्थिरता के साथ एक ओर बैठकर गाना सुन रही थी। उधर भोग के लिये रसोई-वसोई भी हो रही थी, बहुत से लोग प्रसाद पा रहे थे। जन्म-तिथि के दिन रात को प्राय: दस बजे से ही माँ नानीजी की गोद में लेट गई। रात्रि खुलते ही माँ के आविर्भाव के समय माँ अपने गले की माला से बहुत देर पहले एक फूल हाथ में लेकर बैठी थी। इसी तरह लेट गई किन्तु फूल हाथ में ही रहा। उस समय माँ नेत्र बन्द कर नानीजी की गोद में ही लेटी रही। इस अवस्था में रहते ही सभी ने देखा कि माँ का हाथ धीरे-धीरे नानीजी के पैरों के निकट गया है, शरीर उसी तरह लेटा है, हाथ खुल गया और फूल नानीजी के चरणों में गिर गया। फिर हाथ उठा न सकी। इस तरह कुछ समय बिताने के बाद माँ को उठाकर पूजा के स्थान में ले जाया गया। माँ वहाँ जाकर भी लेटी रही।

भोलानाथजी षोड्शोपचार से पूजा कर रहे थे, सभी लोग शुद्ध होकर अपूर्व दृश्य देख रहे थे। पूजा करते-करते भोर हो गयी। पूजा समाप्त हुई, कीर्तन भी उस दिन समाप्त होने वाला था। किन्तु माँ पड़ी थी, इसलिए कीर्तन बन्द नहीं हो रहा था। बहुत देर के बाद बहुत प्रयत्नों से माँ को उठाया गया। माँ उठी, कुछ देर के बाद माँ बहुत कुछ स्वस्थ हुई। हँसते-हँसते देख रही थी। नानाजी भी कीर्तन कर रहे थे, माँ ने उन्हें बुलाया, उनके निकट आने पर माँ ने अपने गले की माला नानाजी को पहना दी और भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। किन्तु चरणों पर जो लेटी, फिर उठ न सकी, बहुत प्रयत्नों से उठाया गया। माँ जब जो कुछ करती उसी में मानो सारा शरीर, मन और प्राण उड़ेल देती। नानाजी ने उस माला को

गले में पहनकर नाच-नाचकर गाना शुरू किया-"**हरिनामेर माला निताई दिल आमार गले, हरिनाम-मन्त्र दिल स्नान कराये गंगाजले**" इत्यादि। उस उत्सव में एक दिन बाउल बाबू ने सम्पूर्ण अंगों के फूल के आभूषण मँगाकर माँ को सजाया। सिर पर फूलों का मुकुट लगाया, हाथ-पैरों में फूलों के गहने, गले में फूलों की माला। माँ एक अद्‌भुत साजबाग से सजी। कुछ देर के बाद माँ ने सब उतार दिये। हमने देखा है कि यदि कोई अधिक समय तक पैर छुये रहता या विशेष रूप से पूजा करता अथवा इस प्रकार सजाता तो माँ कुछ देर के बाद ही समाधिस्थ हो जाती। इस प्रकार उत्सव की पूर्ति हुई। सब लोग टिकाटूली के भाड़े के मकान में चले गये। काली मन्दिर की भैरवी ही उस कमरे में दियाबत्ती जलाती। एक घटना लिखना भूल गई हूँ- शाहबाग में रहते समय एक दिन कीर्तन हो रहा था, माँ की खूब भावावस्था हुई। किन्तु उस दिन माँ घूम-घूमकर मानो कीर्तन की प्रदक्षिणा कर रही हों, मुख और नेत्रों का भाव अस्वाभाविक रूप से दमक रहा था। मानो सम्पूर्ण चेहरे पर बिजली चमक रही हो। माँ एकाएक कीर्तन के कमरे से बाहर चली गई, बड़ी तेजी से अँधेरे में बगीचा पार कर फकीर साहब की जो बड़ी कबर थी वहाँ जाकर खड़ी हुई। एक भद्र मुसलमान भी उस दिन माँ के दर्शनों के लिये आये थे, वे उस समय भी वहीं थे। सब लोग उजाला लेकर दौड़ते हुये माँ के पीछे-पीछे गये। उक्त मुसलमान के समीप माँ ने उस अवस्था में ही उन्हें साथ ले जाने के लिए उनकी पीठ पर साधारण रूप से ज्यों ही स्पर्श किया, उन्होंने साथ-साथ जाकर कबर के दरवाजे खोल दिये। माँ ने भीतर जाकर चारों ओर पर्यटन किया एवं खूब ऊँचे स्वर से कुरान की सब आयतों की आवृत्ति करने लगी। माँ का इतना ऊँचा स्वर कभी हम लोगों ने सुना न था, पर पहले दिन पौष संक्रान्ति के कीर्तन में "हरे मुरारे" भी खूब ही उच्च स्वर में माँ ने गाया था। कुरान की आयतों का खूब स्पष्ट रूप से उच्चारण कर रही थी। मुसलमान सिर नवाकर खड़े थे। सब लोग स्तब्ध थे कि माँ ने ये कुरान की आयतें कहाँ सीखी। उसके अनन्तर माँ जिस प्रकार मुसलमान नमाज पढ़ते हैं उसी तरह नमाज पढ़ने लगी। किन्तु मुसलमान तो साधारणत: नियम रक्षा करने के अनुरूप ही एक बार उठते हैं, बैठते हैं, नमस्कार करते हैं, हाथ उठाते हैं। माँ भी वही सब कर रही थी, किन्तु सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों को ये सब

क्रियायें करते समय उड़ेल दे रही थी। मुसलमान भद्र पुरुष ने भी उस समय नमाज पढ़ी। किन्तु माँ ने मानो दिखला दिया कि ये सब क्रियायें किस प्रकार सारे शरीर, प्राण और मन को उड़ेलकर करनी पड़ती हैं। बाद में माँ ने यह भी कुछ-कुछ समझा दिया था कि किस अंग का किस प्रकार परिचालन करना चाहिये। माँ ने कहा- "इसके अन्दर बहुत अच्छी बातें हैं। किन्तु साधारणत: उसे कोई जानता नहीं। सभी केवल नियम रक्षा के अनुसार ही किये जाते हैं।" इस कुरान की भाषा के सम्बन्ध में माँ ने कहा- "मैं तो स्वयं इच्छा करके कुछ कर नहीं सकती हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब भीतर से अपने आप बाहर निकल रहे हैं। भाषा, स्वर अपने आप ही हुये जा रहे हैं। फिर इसका क्या अर्थ है एवं ये सब क्या है? यह सब अन्दर से ही प्रकट हो जाता है। सदा तुम लोगों के समीप प्रकट नहीं होता। लेकिन जब भी जो होता है सभी का अर्थ भीतर उसी वक्त प्रकट होता है।" तदुपरान्त माँ कबर से बाहर चली आई। वहाँ से कीर्तन के कमरे में आई, नैवेद्य बाँटा गया, मुसलमान भद्र पुरुष ने भी वह लूट का प्रसाद लिया। उन्होंने माँ को अपने हाथ से कुछ खिला देना चाहा, माँ के राजी होकर समीप में खड़ी होते ही उन्होंने माँ के मुँह में बताशा डाल दिया। माँ ने भी उसे ग्रहण कर लिया। प्यारीबानू आदि ने यह बात सुनी, जब वे ढाका आये तब माँ को पूर्वोक्त कबर के पास ले गये एवं सभी उस प्रकार कुरान का पाठ करने का अनुरोध करने लगे। किन्तु सबके कहने पर भी फिर कुरान पाठ नहीं हुआ। उस दिन किसी प्रकार भी माँ के मुँह से कोई आयत नहीं निकली। माँ बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। माँ के सहसा उठकर खड़ी होने पर थोड़ी देर के लिये न जाने क्या सब वचन माँ के मुँह से निकले। नवाब घराने के लोगों ने समझा कि माँ कुरान का कोई एक अंश कह रही हैं किन्तु उस दिन पहले के समान वाणी नहीं निकली, बहुत ही स्वल्प वाणी बाहर निकली।

माँ का टांगाइल गमन

सिद्धेश्वरी में जन्मोत्सव होने के अनन्तर टांगाइल दीनेश बाबू के घर जाने की बात पहले से ही प्राय: निश्चित हो चुकी थी। माँ वहाँ गई। संग में भोलानाथजी और ज्योतिष दादा गये। दो-एक दिन के बाद ही माँ वहाँ से ढाका लौट आई। उस समय किसी कारणवश हम लोगों का वहाँ जाना

नहीं हुआ। माँ के चले आने के साथ-ही-साथ दीनेश बाबू ने एक पत्र भेजा था, जिसमें हम लोगों के न जा सकने के कारण उन्होंने दुःख प्रकट किया था। उसमें उन्होंने लिखा था, ''यहाँ एक दिन कीर्तन हुआ था, माँ की खूब भावावस्था हुई थी। बहुत से लोग माँ की शरीर-रक्षा हेतु प्रयत्न भी कर रहे थे, किन्तु माँ का शरीर पुनः-पुनः जमीन पर गिर पड़ा।'' माँ के तनिक प्रकृतिस्थ होकर बैठने पर हम सबने माँ से पूछा- ''माँ जिस समय तुम्हारी भावावस्था होती है, उस समय केवल खुकुनी ही तुम्हारी शरीर-रक्षा कर सकती है। आज खुकुनी नहीं है, किन्तु इतने लोगों के रहते भी तुम्हारे शरीर में पर्याप्त चोट आई है, इसका क्या कारण है?'' माँ ने धीरे से उत्तर दिया- ''यह सब लोग नहीं जानेंगे?'' उस चिट्ठी को पाकर उसमें माँ की इस साधारण-सी बात को पढ़कर मानो मैं कृतार्थ हो गई।

काली मूर्ति का उत्तमा कुटीर में परिवर्तन और – माँ का उत्तमा कुटीर में अवस्थान

ज्येष्ठ, सं. 1985- माँ के टांगाइल चली जाने के अनन्तर ही जेठ के महीने में (सं. 1985 वि.) ढाकेश्वरी के मन्दिर के निकट एक भाड़े का मकान लेकर उसमें काली-मूर्ति प्रतिष्ठापित की गई। यह तीसरी बार काली-मूर्ति का स्थान परिवर्तन किया गया। निश्चय हुआ कि माँ आकर वहीं रहेंगी। माँ आकर वहीं उतरी। ऊपर एक कमरा था। उस मकान में कई दिन रहने के बाद ढाका के जमींदार सूर्यकान्त बाबू सपरिवार माँ के दर्शनों के लिये आये। वे उस समय पुत्रों के वियोग से अत्यन्त दुःखी थे। माँ के दर्शन और पूजा कर उन्हें बड़ी शान्ति मिली। माँ ने कहा- ''मैं तुम्हारी बच्ची हूँ।'' उन्हें भी माँ को छाती से लगाकर बड़ा आनन्द मिला। कुछ दिन रहकर वे कलकत्ता लौट गये। इधर निरंजन बाबू की स्त्री की अवस्था भी अच्छी न थी। उन्हें इच्छा हुई कि हर रोज माँ के दर्शन करूँ। निरंजन बाबू रोज ही माँ को एक बार अपने मकान में ले जाते। एक दिन माँ के साथ वीरेन्द्र दादा भी गये। निरंजन बाबू की स्त्री को देखकर वीरेन्द्र दादा का मन बहुत दुःखी हुआ। सन्ध्या के समय माँ आँखें बन्द कर बैठी थी। ऊपर के कमरे में ही माँ बैठी थी। कमरे में बहुत से लोग बैठे थे, सभी चुपचाप थे। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि माँ बहुधा सन्ध्या समय आकाश

की ओर देखकर एकदम पत्थर की तरह स्थिर होकर बैठी रहती। उपस्थित सभी व्यक्ति स्थिरता के साथ बैठे रहते। उस दिन भी सब लोग चुपचाप बैठे थे। वीरेन्द्र दादा आँखें बन्द कर मन-ही-मन माँ से निरंजन बाबू की स्त्री की रक्षा करने के लिये हार्दिक प्रार्थना कर रहे थे। क्योंकि अतिसार की बीमारी से वे अत्यन्त कष्ट भोग रही थी। कुछ ही देर बाद माँ आँखें खोलकर इधर-उधर निहारती हुई बोल उठी- ''मुझे कौन पुकारता है?'' वीरेन्द्र दादा जान गये कि माँ ने हार्दिक प्रार्थना सुन ली हैं। उन्होंने तुरन्त हाथ जोड़कर कहा- ''माँ, मैं पुकार रहा था। निरंजन बाबू की स्त्री की रक्षा करो।'' माँ उनकी ओर तनिक निहारते ही आँखें बन्द कर फिर पहले की तरह बैठ गई। उसके कुछ दिन बाद ही निरंजन बाबू की स्त्री की मृत्यु हो गई। स्त्री की मृत्यु होने के कुछ महीने बाद ही निरंजन बाबू का भी देहान्त हो गया। माँ उस समय ढाका में थी। उसी मकान में कीर्तन के समय एक दिन रामठाकुर को साथ लेकर मथुरामोहन चक्रवर्ती आदि कई व्यक्ति माँ के दर्शन करने आये। रामठाकुर के साथ माँ की कलकत्ते में पहली बार भेंट हुई। दर्शन करते ही रामठाकुरजी ने माँ को साष्टांग प्रणाम किया एवं बातचीत के सिलसिले में सभी के सामने उन्होंने माँ को ''भगवती देवी'' के रूप में प्रकाशित किया था। उत्तमा कुटीर में भी एक दिन काली-पूजा के दिन पूर्वोक्त काली-मूर्ति के ऊपर काली की पूजा हुई, किन्तु उस दिन भोलानाथजी ने पूजा की। माँ समीप ही भूमि पर लेटी रही।

बारिशाल और विक्रमपुर गमन

माँ एक बार उसी समय चिन्ताहरण समाजदारजी के बुलावे पर बारिशाल शहर में गई। कुछ दिन वहाँ रही, तदुपरान्त मुंशीगंज वापिस आकर वहाँ से विक्रमपुर के गाँव-गाँव में नाव द्वारा माँ ने पर्यटन किया। पहले माँ तन्तर गई, वहाँ माँ की बुआ का मकान है। दो-तीन दिन वहाँ रहना हुआ, कीर्तनादि भी हुआ। तन्तर में एक दिन मैं माँ के पास बैठी थी, किसी बात पर एकाएक माँ ने अपनी साड़ी का एक किनारा फाड़कर मेरी बायी भुजा में बाँध दिया। कपड़े का टुकड़ा नहीं किया। बीच में थोड़ा-सा फाड़कर बाँध दिया। जो कपड़ा मैंने पहना था इसके साथ-ही-हाथ बाँध दिया था, इस कारण बड़ी असुविधा प्रतीत हो रही थी। अन्य लोग न देख सकें, इसलिये मैं उसे शरीर की चादर से ढककर रखती थी। मुझे ऐसा प्रतीत

हुआ कि शायद इसे खोलने को माँ मना करें। माँ ने मुँह से कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन हलदिया गाँव में श्यामलदाओं के मकान में गये। प्रातःकाल कपड़े बदलने थे, बदन पर जम्फर था, उक्त बन्धन को खोले बिना जम्फर भी नहीं खोला जा सकता था। मैंने माँ से पूछा– ''क्या करूँ?'' माँ ने कहा– ''खोलना मत, सात दिनों के बाद खोलना।'' मुझे ही भोग की रसोई बनानी थी – माँ की रसोई बनानी थी, माँ को खिलाना था। मैंने माँ से कहा– ''मैं पखाना जाऊँगी, तदनन्तर अपवित्र कपड़े बदले बिना तुम्हारे लिये भोग बनाऊँगी, तुम्हें खिलाऊँगी, लोग क्या कहेंगे?'' माँ ने कहा– ''किसी से भी कुछ न कह, तू इन्हीं कपड़ों से सब कुछ किये जा।'' जीवन में इस तरह पहली बार एक कपड़े में रहकर पूजादि का काम करना पड़ा, किन्तु माँ के आदेश में परिवर्तन नहीं हुआ। केवल लोगों की दृष्टि बचाने के लिये एक चादर बदन पर ओढे रहती। फिर भी मालूम पड़ता है कि सभी लोग ताड़ गये। मैंने ही सब काम किये थे। उक्त मकान में खूब कीर्तन हुआ। उसके अनन्तर माँ भोलानाथजी की भतीजी के ससुराल बेंजगाओ गाँव में एवं भोलानाथजी के निजी मकान आठपाड़ा गई। उस समय आठपाड़ा में भोलानाथजी की विधवा भाभी (रेवती बाबू की स्त्री) थी। उस बार उन्होंने माँ से मकान के भीतर जाने के लिये खूब अनुरोध किया। किन्तु माँ निकट में ही एक दूसरे मकान में बैठ गई। केवल विनीत भाव से कहने लगी– ''आपकी आज्ञा तो अनुल्लंघनीय है, वह कभी अन्यथा नहीं हुई, किन्तु आज मैं नहीं कर पा रही हूँ, क्या करूँ आप ही बतायें।'' उस बार पिताजी, मैं, राजेन्द्र कुशारी की स्त्री, अमूल्य आदि माँ के साथ थे। उस बार हम लोग मथुर बाबू के मकान छयगाँओं गाँव में भी गये और वहाँ दो–एक दिन रहे। उससे पहले भी एक बार माँ हम लोगों को लेकर उनके मकान में गई थी। तदुपरान्त हम लोग पुनः दोकाछि स्व. सीतानाथ कुशारीजी के मकान में गये।

इस तरह घूमते–घूमते ढाका गये। जिस दिन ढाका पहुँचे उसी दिन कलकत्ते के कुण्डुओं के मकान में टेलीग्राम आया कि योगेन्द्र बाबू सख्त बीमार है, माँ को एक बार कलकत्ता आना होगा। फिर टेलीग्राम आया कि कलकत्ते में नन्दू बहुत बीमार है। पहले दिन मैं और पिताजी माँ से आज्ञा लेकर कलकत्ता चले गये। दूसरे दिन माँ कलकत्ते को रवाना हुई और कुण्डुओं

के मकान में ठहरी। हम जिस दिन कलकत्ता पहुँचे उस दिन कपड़े के बन्धन के खुलने का दिन था, मैंने बन्धन खोल डाला। कुछ दिनों के बाद नन्दू और योगेन्द्र बाबू के कुछ अच्छे होने पर हम लोग माँ के साथ ढाका लौट आये। आगे चलकर माँ ने कहा था, "नन्दू को बीमारी होगी यह मैं जानती थी, नन्दू की ही जीवन रक्षा के लिये इस तरह कपड़ा बाँधा गया था।" माँ कलकत्ते योगेन्द्र कुण्डुओं के मकान में पहले भी दो-तीन बार गई थी। एक बार उन लोगों के खिलौनों से सजे-सजाये एक कमरे में माँ को ले जाकर लड़कियों ने कहा- "माँ तुम जिसे चाहो ले लो।" आलमारी में विविध प्रकार के खिलौने सजाये थे, माँ उनमें से एक 'चूसनी' ले आई, इस पर सब हँसने लगे। उतने बड़े मकान में पहली ही बार जाकर माँ इस तरह इधर-उधर चलती-फिरती कि मालूम होता मानो माँ को सभी मार्ग ज्ञात है। वह 'चूसनी' माँ ने नन्दू को दी। विक्रमपुर के गाँव-गाँव में प्रत्येक मकान में जाकर माँ ने खूब आनन्द किया। किसी के हँड़िया भरे लड्डू खोज-खोजकर सब लोगों में बाँट दिये तो किसी के मकान में आचार की हाँड़ी इसी तरह खाली कर दी। माँ के इस व्यवहार से सभी को बड़ा आनन्द हुआ। फिर वे लक्ष्मी के आसन की वस्तुयें स्वयं ढूँढ़कर खा गई।

टांगाइल दीनेश बाबू के मकान में गमन

एक बार काशी में कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने मनु के जीवनदान के निमित्त माँ की पूजा का आयोजन किया और माँ को ले आने के लिये अनुरोध करते हुये चिट्ठी भेजी। निश्चय हुआ कि जाते समय टांगाइल दीनेश बाबू के मकान में भी होते जायेंगे। उस बार माँ की एक बुआ भी तीर्थयात्रा करने के निमित्त हम लोगों के साथ चली। माँ, भोलानाथजी, पिताजी, नन्दू, माँ की बुआ और मैं- सब लोग टांगाइल गये। सपरिवार दीनेश बाबू ने खूब आनन्द के साथ कीर्तनादि कराया। वहाँ भी माँ का खूब भाव हुआ। एक दिन ऐसी अवस्था हुई कि भोलानाथजी और हम सब लोग डर गये। भोलानाथजी ने दूसरा कोई उपाय न देख जल मँगाया और माँ के मुख-नेत्र पर जल छिड़कते ही माँ जोर से बोल उठी- "कौन जल छिड़कता है? मुझे क्या फिट आया है?" इस प्रकार यह बात आँखें मूँदकर ही कही कि भोलानाथजी हकबकाकर बोले-"किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर जल छिड़का है, तुम्हें

उठाने के लिये।'' तुरन्त ही माँ तनिक मुस्कराकर आँखें बन्द करके ही बोली- ''शरबत छिड़क दिया है।'' सचमुच माँ की अवस्था के कारण सब लोग इतने व्यस्त थे कि जल माँगते ही एक लड़की शरबत का बर्तन ही बिना जाने ले आई। अनेक क्षणों के बाद माँ उठी। दूसरे दिन दीनेश बाबू की स्त्री ने माँ की पूजा की। सहसा माँ इस तरह रो उठी कि दूसरे कमरे से भोलानाथजी आदि सब लोग दौड़े आकर उन्हें सान्त्वना देने लगे। किसी घटनावश भोलानाथजी के तनिक असन्तुष्ट होने से दीनेश बाबू भी सपरिवार दु:खित थे, इसी प्रकार रवाना होकर आना हुआ। माँ को देखा है कि किसी प्रकार की गड़बड़ी होते ही कैसी हो जाती हैं। करुणामयी केवल यही चाहती हैं कि सब लोग आनन्द से मिल-जुलकर रहें, किन्तु सांसारिक व्यवहार में सर्वदा वैसा होता नहीं है। ये माँ को कितने आनन्द से ले गये, पीछे आते समय सपरिवार दीनेश बाबू का मन खराब होते ही मालूम पड़ता है कि माँ के मन में भी आघात पहुँचा अथवा अन्य कोई कारण था, यह माँ ही जाने, हम केवल अनुमान भर करते हैं। किन्तु व्यापार अत्यन्त विपरीत हो पड़ा। बहुत दूर तक नाव से आकर स्टीमर पकड़ना पड़ता है। नाव में आते ही माँ सो गई। कुछ देर बार शरीर कैसा हो गया। माँ जल में कूद पड़ने के लिये रोते-रोते व्याकुल हो गई। शरीर में उस समय ऐसी शक्ति आ गई कि हम तीन-चार व्यक्ति पकड़ने में असमर्थ हो रहे थे। भीषण अवस्था थी, आँखे लाल, मुख का भीषण भाव था। मालूम पड़ता था कि कहीं जीवन न त्याग दें। मैं तो वह अवस्था देखकर रोने लगी और माँ की प्रार्थना करने लगी। भोलानाथजी और पिताजी सभी बहुत घबरा उठे, बहुत देर बाद दाहिना हाथ लम्बा कर उसे जल की ओर बढ़ाकर सो गई। भोलानाथजी ने भी बहुत सान्त्वना दी। जल में जावेंगी ही यह सोचकर भोलानाथजी ने कहा- ''क्या करने से शान्त होओगी, तुम शान्त हो जाओ'' इत्यादि-इत्यादि। बहुत देर बाद दाहिने हाथ को उस तरह से उठाकर लेट गई और धीरे से बोली- ''लौट चलो।'' उस समय करीब-करीब स्टीमर के निकट आ गये थे, भोलानाथजी ने यह कहा। किन्तु माँ आँखें बन्द किये ही रही। दो ही बार बोली- ''लौट चलो।'' तब नाव को लौटा कर दीनेश बाबू के घर जाना हुआ। खबर पाकर वे स्तब्ध रह गये। माँ को नाव से उतारकर घर ले गये। माँ बहुत देर तक लेटी रही, बाद में उठ

बैठी। भोलानाथजी से माँ ने न जाने क्या कह दिया जिससे भोलानाथजी शान्त हुये। माँ के लौट आने पर सपरिवार दीनेश बाबू का भी बहुत कुछ दुःख मिट गया था। भोलानाथजी को शान्त देखकर वे लोग भी आनन्दित हुये। इस प्रकार झगड़ा मिटाकर माँ दूसरे दिन रवाना हुई। नाव में जो माँ दाहिना हाथ लम्बा कर सो गई थी, उससे मुझे प्रतीत होता है कि दाहिना हाथ बेकाम हो गया है, उससे कुछ भी पकड़ नहीं सकती, बहुत दिनों तक यह अवस्था रही।* बाद में धीरे-धीरे फिर ठीक हो गया। उसके लिये किसी तरह की चिन्ता या दवादारू का व्यवहार नहीं किया गया। एक बार इसी अवस्था में गोयालन्द से गाड़ी में चढ़ाते समय (गाड़ी बहुत ऊँची थी) मैंने माँ का हाथ पकड़कर अनायास ही माँ को गाड़ी में चढ़ाया। उस समय मुझे स्मरण नहीं रहा, किन्तु कुछ देर बाद गाड़ी में बैठकर माँ ने मुझसे कहा- "तुमने मुझे कैसे चढ़ाया?" मैंने कहा- "क्यों बायाँ हाथ पकड़कर मैंने ऊपर खींच लिया।" दाहिने हाथ से तो माँ कुछ भी नहीं पकड़ती हैं। माँ ने कहा- "कैसे ऊपर खींचा? इतने बड़े शरीर को तुमने इतनी सरलता से ही अलग से उठा लिया, मैं तो कुछ पकड़ नहीं सकती हूँ।" तब जाकर मुझे स्मरण हुआ। इसमें भी मुझे माँ की कृपा या महिमा की उपलब्धि हुई। उठाते समय मुझे बिल्कुल भी वजन प्रतीत नहीं हुआ, मानो एक हल्की-सी वस्तु अनायास ही जरा पकड़कर उठा ली हो। बाद में मुझे प्रतीत हुआ कि यह कदापि सम्भव नहीं है कि मैं अपनी शक्ति से माँ के शरीर को अलग से इतने ऊँचे पर बायाँ हाथ पकड़कर उठा लूँ और माँ को चोट भी न आवे।

---

* लगभग चार महीने उक्त अवस्था रही। इस प्रकार से हाथ बेकाम क्यों हुआ था, यह बात किसी समय प्रसंगत: माँ ने इस प्रकार समझाई थी, "नन्दू ने पहले हमारे साथ जाना स्वीकार किया था, बाद को वह मुकुर गया था। इसके बाद टांगाइल में जब शरीर विचित्र प्रकार का हो गया तब नन्दू अत्यन्त भयभीत होकर मेरे दाहिने हाथ को अपने हाथ से सहलाते-सहलाते बोला कि मैं आपके साथ जाऊँगा। किन्तु काशी को रवाना होते समय फिर जाने के लिए नट गया। वह तो लड़का है, इसलिए वह कभी कुछ और कभी कुछ कहता है। मेरा कैसा खयाल हुआ कि इस दाहिने हाथ को सहलाते-सहलाते वह मेरे साथ जाने को राजी हुआ था। पीछे वह फिर अनिच्छा प्रकट करता है- वह तो जानता नहीं है, किन्तु उससे उसका भीषण अमंगल होगा। उस समय नन्दू गोद के बच्चे के तुल्य मेरे साथ-साथ रहता, वही फिर खयाल आया और दाहिना हाथ बेकाम हो गया।

कुंज बाबू के आह्वान पर काशी गमन

इसके अनन्तर ही काशी कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में जाना हुआ। काशी में खूब उत्सव हुआ। माँ समाधिस्थ भाव में पड़ी रही। भोलानाथजी ने माँ की पूजा की, उसके पश्चात् कीर्तनादि भी खूब हुये। माँ भावावस्था में दो-एक बच्चों की फूल बिखेरकर पूजा करने लगी। थोड़ा मुस्कराकर बोली, ''पूजा कर रही हूँ।'' भावावस्था में अधिकांश समय लेटी रही। उसके पश्चात् माँ के उठने पर विविध प्रकार के प्रश्न पूछे गये। माँ उस अवस्था में जो बातें करती वह बहुत ही मीठी सुनाई देती। नेत्र और मुख पर एक प्रकार की अस्वाभाविक ज्योति उस समय भी खूब रहती थी, और रहती थी नन्हे बच्चे के समान तोतली बोली, मुख पर हँसी तथा एक अत्यन्त मनोहर शोभा। इस प्रकार बोलते-बोलते क्रमशः वचन भी स्पष्ट हो जाते और शरीर के अन्यान्य लक्षणों में भी परिवर्तन हो जाता। कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने उस अवसर पर बहुत लोगों को निमन्त्रित किया था एवं एक छोटी-सी पुस्तक, जिसमें सर्पदंश का विवरण था, लिखकर सबको बाँटी थी। इस कारण बहुत लोग उपस्थित हुये थे। **काशी के गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल माननीय पण्डित प्रवर गोपीनाथ कविराजजी** ने इसी बार सर्वप्रथम माँ के दर्शन किये और माँ की बातें सुनकर मुग्ध हुये। वे माँ की बातें सुनकर तथा समागत सब लोगों के प्रश्नों का जो माँ साधारण भाषा में उत्तर दे रही थी उसे सुनकर केवल यही कहते, ''अपूर्व है, ऐसा पहले कभी सुना नहीं।'' गोपीबाबू प्रायः ही एक पंखा हाथ में लेकर माँ के समीप बैठकर हवा करते और माँ के श्रीमुख की बातें सुनते। इसके बाद से ही माँ जब- जब काशी जाती वे आकर माँ के दर्शन करते। माँ के मुख से जो स्तोत्रादि निकलते उनका किसी को भी कुछ अर्थ न लगता, उन्होंने दो-चार का अर्थ जानकर कहा था- ''यह वास्तविक देवभाषा है, मृत्युलोक के संस्कारों के साथ इसे समझना असम्भव है।'' वे बहुत-सी भाषाओं और शास्त्रों के परिज्ञाता हैं। अनेक पण्डित और बड़े-बड़े लोग माँ के दर्शनों के लिये आये थे। प्रतिदिन अपराह्व के बाद एक बहुत बड़ी खुली जगह पर माँ को बैठा दिया जाता। सब लोग वहाँ माँ के दर्शन करते और माँ के साथ बातें कर सकते। रात्रि को लगभग दस बजे के समय माँ को उठाकर छत पर ले जाया जाता। वहाँ उस समय एक-एक व्यक्ति एकान्त में माँ के

साथ बातें करने जाते। इस तरह लगभग तीन बज जाते। उस समय छत की ही कोठरी में माँ का बिछौना बिछाया गया था, माँ जरा लेट जाती। फिर रात्रि में चार या साढ़े चार बजते ही अनेक लोग पूजा की सामग्री लेकर माँ के चरणों में उपस्थित होते। माँ सोई रहती, उसी अवस्था में बिछौने पर ही अनेक लोग फूल, चन्दन, गंगाजल माँ के चरणों पर चढ़ाकर पूजा कर जाते। सवेरा होते-होते ही घर दर्शनार्थी लोगों की भीड़ से ठसाठस भर जाता। खड़े होने की भी जगह न रहती। मकान के मालिकों से कोई पूछता तक न था, एकदम सबके-सब कमरे के भीतर ही आ घुसते। दूसरी मंजिल और तीसरी मंजिल सब भर जाती। माँ भी प्राय: सदा भावावस्था में ही बैठी रहती अथवा लेटी रहती। खाना प्राय: बन्द हो गया। लोगों की इतनी भीड़ होती कि मुँह धुलाने के लिये भी ले जाना मुश्किल हो जाता। कोई माँ को थोड़ी देर के लिये भी छोड़ना नहीं चाहता। सबके इस प्रकार के भाव से माँ भी भावस्थ ही रहती। स्वामी शंकरानन्द और योगेन्द्र राय सभी को इसी बार ही माँ के दर्शन प्राप्त हुये। योगेन्द्र राय ने माँ को बहुत से कीर्तन सुनाये, माँ ने भी अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। अपराह्न के बाद सभा-सी लगाकर सब लोग माँ के साथ बैठते और माँ की बातें सुनते। उससे पहले और कभी भी इस प्रकार सभा करके बैठाना नहीं हुआ। माँ ने भी ऐसे बड़े-बड़े प्रश्नों की मीमांसा इतने लोगों में बैठकर पहले कभी नहीं की। माँ लिखना-पढ़ना अत्यन्त साधारण ही जानती हैं। विवाह के बाद कोई पुस्तक पढ़ने के लिये देने पर माँ उसे पढ़ न सकती थी। अष्टग्राम में इस अवस्था के आरम्भ होने के बाद माँ को यदि कोई सद्ग्रन्थ पढ़ने को दिया जाता तो माँ उसे थोड़ा पढ़ते-न-पढ़ते, ना मालूम कैसी भावस्थ हो जाती, इस कारण फिर पढ़ना होता नहीं। किसी के भी मुँह से उन सब पुस्तकों को यदि सुनती तो भी भावस्थ हो जाती थी। फलत: ग्रन्थगत विद्या बिल्कुल भी माँ को प्राप्त नहीं हुई थी। मैं कह चुकी हूँ कि माँ बातें भी कम ही करती। केवल भाव में ही विभोर रहती। यहीं सर्वप्रथम माँ की इतनी बातें प्रकाश में आई थी। इसके उपरान्त कलकत्ता तथा अन्यान्य स्थानों में सब लोग माँ को साथ ले बैठकर इस तरह प्रश्नादि करते और माँ की साधारण भाषा में कितने अमूल्य उपदेश सुनकर आनन्द लाभ करते। माँ के भी मुँह से दिन-पर-दिन नई-नई बातें निकलने लगी। कीर्तन बन्द रखकर बहुत देर तक सब लोग माँ की बातें सुनते। माँ का

घूँघट भी उस समय पहले की अपेक्षा छोटा हो गया था, वे सबके साथ खुले आम विविध विषयों पर आलोचना करती। पहले भावस्थ होकर सर्वदा पड़ी रहती थी, इधर यह भी घटने लगा। माँ मानो दिन-पर-दिन सबके साथ मिलने-जुलने लग गई। वह भी खूब धीरे-धीरे और सुशृंखलता के साथ होने लगा। इस सबके बीच में इतने हिलमिल जाने का पता किसी को भी न लगा। और तो और भोलानाथजी भी इसका पता न पा सके कि किस प्रकार माँ का परिवर्तन होता जा रहा है। एक दिन किसी कारण जरा असन्तुष्ट होकर उन्होंने इन सब बातों के लिये माँ से प्रश्न कर दिया था। माँ ने तनिक मुस्कराकर उत्तर दिया- ''देखो, तुम कुछ कह नहीं सकते। मैं पहले तुम्हारे ही घर के कोने में रहती थी। तुम्हारे आदेश के बिना किसी के साथ बातें तक नहीं करती थी। मैं बाहर होना पसन्द नहीं करती थी, फिर भी तुमने जोर देकर मुझे सबके सामने बाहर कराया है एवं सबके साथ धर्मविषय में मीमांसा करने के लिये पुनः-पुनः प्रेरित किया है। तुम्हारे आदेश से ही मैं सबके सम्मुख बाहर आई हूँ और वार्तालाप किया है, आज सबकी ही हो गई हूँ। अब कहने से क्या होगा?'' थोड़ा हँसकर आगे बोली- ''तुम्हारे हाथ के घड़े में ही जल था, तुम्हीं ने उसे मिट्टी पर उड़ेल दिया, अब फिर उसे समेटकर घड़े में भरने का कोई उपाय नहीं है। यद्यपि थोड़ा-सा उठाओ भी तो वह भी मिट्टी से सन जायेगा।''

बाजितपुर की उषा दीदी के निकट माँ की भविष्यवाणी

बहुत पहले की एक बात याद आ गई है। बाजितपुर के जानकी बाबू की स्त्री को माँ उषा दीदी कहती थी। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि उनके साथ माँ का अत्यन्त स्नेह था। वे जिस समय ढाका आई, उसी समय मैंने उनके मुँह से सुना कि माँ की जब बाजितपुर में यह अवस्था आरम्भ हुई तब उषा दीदी की सास उषा दीदी को माँ के समीप जाने नहीं देती थी, क्योंकि बहुतों का विश्वास था कि माँ को भूत लगा है। किन्तु उषा दीदी माँ को देखे बिना रह नहीं सकती थी, इसलिये लुकछिप कर माँ के समीप जाती। उनका न जाने कैसा विश्वास था कि माँ का यह सब जो हो रहा है वह अच्छा ही हो रहा है। माँ के प्रति उनकी भक्ति जागी थी। एक बार वे एक लड़के को अस्वस्थ होने के कारण, माँ के समीप ले आई। मन में विश्वास था कि माँ के छूते ही अच्छा हो जायेगा।

सचमुच माँ ने कुछ किया और लड़का अच्छा हो गया। पहले ही लिख चुकी हूँ कि माँ की इस प्रकार की क्रिया पहले से ही हो जाती, जिससे रोगी को आराम हो जाता। माँ कहती कि मैं इच्छापूर्वक कुछ नहीं करती। जैसे आसन आदि अपने आप ही हो जाते, यह भी वैसे ही हो जाता। इसके बाद तो उषा दीदी की भक्ति और भी बढ़ गई। एक दिन माँ की अवस्था देखकर उन्होंने कहा था– ''मेरी तुम्हें माँ कहने की इच्छा होती है। मेरा तुम्हारे प्रति भगिनीभाव नहीं होता, मातृभाव हो रहा है।'' माँ भावस्थ हुई थी, जरा थमकर माँ ने उत्तर दिया था– ''तुम्ही क्यों, एक दिन जगत् के बहुत से लोग इस शरीर को माँ कहेंगे।''

काशी में माँ की अवस्थिति

यह जो माँ का काशी आना हुआ वह उस कथन के लगभग तीन वर्ष बाद ही हुआ होगा। इस तरह बाहर सभा में माँ पहले बैठी नहीं। माँ कितनी ही बातें कहती थी, सब लोग सुनते थे। कुछ लोग प्रश्न करते थे। एक दिन उसके बीच में किसी बात पर माँ ने आत्मप्रकाश किया, किन्तु इतने अस्पष्ट रूप में किया कि सब लोग उसे समझ न सके। एक दिन रात्रि में प्राय: सभी चले गये थे, माँ और मकान के लोग तथा बाहर के दो–चार व्यक्ति छत पर बैठे थे। रात के 2 या 3 बजे होंगे। सहसा माँ बोल उठी– ''मृत्यु आ रही है।'' किसकी मृत्यु यह कुछ भी समझ में नहीं आया। सभी लोग चिन्तामग्न हो गए, किन्तु उसके बाद कोई भी बात माँ के मुँह से नहीं निकली। मनु की माँ (कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी की स्त्री) गृहिणी थी, इसलिये उन्हीं को अधिक चिन्ता हुई। उन्होंने कहा– ''माँ, मृत्यु भले ही मेरे ऊपर आवे पर और सब कुशली रहें।'' माँ उनकी ओर निहारकर तनिक हँसी, माँ के सत्संग के आनन्द में किसी को भी उस बात को सोचने तक का समय नहीं मिला। दिन–रात उत्सव चल रहा था। पूर्णिमा के दिन निश्चय हुआ कि उसी दिन माँ चली जायेंगी। उसके पहले दिन रात को मनु की माँ ने मुझसे कहा– ''लोगों की भीड़भाड़ में, माँ को एक दिन इच्छानुसार खिला भी न सकी। मुझे एक दिन इच्छा हुई थी कि भाते–भात* बनाकर बाल–बच्चों को जैसे रसोई घर में ही बैठाकर खिला देती

---

* आलू आदि दो–एक तरकारियों के साथ पकाया गया भात।

हूँ वैसे ही रसोई घर में ही बैठकर गरम-गरम बड़े-बड़े ग्रासों से माँ को खिलाऊँ। तदुपरान्त वह प्रसाद सब लोग पावें। किन्तु इस हो-हल्ले में कुछ भी नहीं हो सका। माँ भी जिस अवस्था में हैं कुछ खा नहीं रही हैं।'' इत्यादि-इत्यादि। दूसरे दिन अपराह्न के बाद हम लोग माँ को साथ लेकर कलकत्ता को रवाना होने वाले थे। प्रात:काल माँ को जरा फुरसत में देखकर मैं मुँह धुलाने के लिये ले गई। स्नानागार का दरवाजा बन्द कर मैं मुँह धुला रही थी और धोती बदलवा रही थी। इस बीच में माँ ने मुझसे कहा- ''देख, आज तो चले जायेंगे। आज पूर्णिमा है, कोई दिन में खाते भी नहीं हैं (शाहबाग से ही अमावस्या और पूर्णिमा को यह नियम चला आ रहा था)। किन्तु मुझे आज भाते-भात खाने की इच्छा हो रही है।'' पहले दिन रात्रि में ही मनु की माँ ने जो माँ को खिलाने की बात कही थी, उसकी उसी समय एकाएक मुझे याद आ गई। मैं अचम्भे में पड़ गई। माँ से उसी समय मैंने कहा- ''माँ, कल ही मनु की माँ ने तुम्हें भाते-भात बनाकर खिलाने की बात कही थी।'' माँ ने कहा- ''तुमने तो मुझसे पहले कहा नहीं।'' मैंने कहा- ''तुम्ही ने जब कहा है तब बनाने को कह आती हूँ।'' माँ ने कहा- ''अच्छा, कह आ, किन्तु तुम लोगों में से कोई दिन में खा नहीं सकेगा, केवल मैं ही खाऊँगी। मैंने तो कितने ही दिनों से खाया नहीं है, इसलिये मेरे साथ तुम लोगों की तुलना नहीं है।'' मैंने हँसते हुये कहा- ''वैसा ही होगा।'' तब माँ बाहर निकल आई, सब लोगों के निकट जा बैठी। मैं दौड़ी हुई गई और मनु की माँ से भाते-भात की बात कह आई। सभी अचम्भे में पड़कर खूब आनन्दित हुये। उसी समय रसोई बनी। मनु की माँ रसोई-घर में बैठकर ही बड़े-बड़े ग्रासों से माँ को खिलाने लगी। माँ खूब खाने लगी। इतने दिनों से कुछ भी मुँह में नहीं ले रही थी। उस दिन मनु की माँ की इच्छा पूरी कर रही थी। खिलाते-खिलाते बातचीत के प्रसंग में मनु की माँ ने कहा- ''माँ, मालूम होता है पूर्वजों में से किन्हीं ने महातपस्या करके तुम्हें सन्तुष्ट किया था, उस पुण्य के फल से सारा परिवार सम्मिलित होकर इस प्रकार तुम्हारे दर्शन कर पा रहा है।'' माँ ने तनिक मुस्कराकर खाते-खाते ही कहा- ''चौदह पीढ़ी पहले।'' तुरन्त मनु की माँ ने सबको बुलाकर यह बात सुनाई। तदुपरान्त माँ ने कहा- ''देख, ऐसा ही होता है। भोलानाथजी आदि के भी ऐसा है। सात-सात

पीढ़ी के बाद सिद्ध पुरुष होता है।'' सभी लोग मुग्ध होकर ये सब बातें सुन रहे थे। पिताजी और कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने यह बात सुनकर अपने को अत्यन्त ही कृतार्थ माना, क्योंकि वे दो सहोदर थे। उन्हीं के एक पूर्वज ने साधना द्वारा माँ को प्रसन्न किया था, उसी के फलस्वरूप वे इस तरह माँ के दर्शन पा रहे थे। उन दोनों के पुत्र, कन्या और जामाता लगभग सभी माँ के चरणों में उपस्थित हुये थे। इसके कुछ देर बाद ही सिद्धेश्वरी स्थान की कथा छिड़ी। माँ ने कहा– ''उस स्थान का शंकराचार्यजी के साथ सम्बन्ध है।'' फिर माँ ने कुछ नहीं कहा। योगेन्द्र राय से माँ ने कहा– ''तुमने तो कीर्तन सुनाते–सुनाते पेट भर दिया है।'' माँ पूर्णिमा के दिन सबको साथ लेकर कलकत्ते को रवाना हुई। सभी ने स्टेशन पर जाकर माँ को गाड़ी में बैठा दिया। सबको रुला कर माँ रवाना हुई।

माँ का ढाका प्रत्यागमन

हम लोग कलकत्ता सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में गये। उसके बाद उत्तमाकुटीर में जाना हुआ। माँ के काशी से आने के कुछ ही दिन बाद कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने माँ को सूचित किया कि उनकी स्त्री को कालरा हुआ है। दूसरे टेलीग्राम द्वारा उन्होंने सूचित किया कि उनकी मृत्यु हो गई है। माँ ने क्यों काशी में 'मृत्यु आ रही है' कहा था, उसका मर्म तब हम लोगों की समझ में आया।

कुमिल्ला गमन

उत्तमाकुटीर से ही कुछ दिनों के बाद प्रफुल्ल घोषजी (रायबहादुर के पुत्र) माँ को कुमिल्ला ले गये। वे उस समय कुमिल्ला में रहते थे। कुमिल्ला में अपार भीड़ हुई। माँ को कमरे में रख दिया गया, दर्शनार्थी लोगों ने दरवाजा तोड़कर कमरे में घुसने का उद्योग किया। अन्त में माँ को मैदान में बैठाया गया।

कलकत्ते में अवस्थान– रायबहादुर के जीवन पर माँ का प्रभाव

कुछ दिन वहाँ रहकर माँ कलकत्ता गई। उस बार कलकत्ता पहुँचकर वे चारु घोषजी के मकान में रही। रायबहादुर और उनकी स्त्री भी वहीं थी। खूब आनन्द चल रहा था। भ्रमर भी वहीं थी और माँ को गाने गाकर

सुनाती थी। एक दिन माँ जलपान करने बैठी थी, एकाएक रायबहादुरजी ने जाकर कहा- ''माँ को थोड़ा खिला देने की मेरी इच्छा हो रही है- किन्तु मेरा तो खाने-पीने का कुछ विचार नहीं है। माँ क्या मेरे हाथ से खायेंगी?'' माँ ने कहा- ''अच्छा तो है, कुछ खिला दो।'' मैं खिला रही थी, रायबहादुरजी ने माँ को थोड़ा फल और मिठाई खिला दी। माँ ने उसी समय कहा- ''आज से जब जो कुछ खाओ, देवता को निवेदन करके खाना।'' उन्होंने कहा- ''मैं तो सब कुछ खाता हूँ, कोई विचार नहीं करता, अखाद्य वस्तु भी खाता हूँ।'' माँ ने कहा, ''जब जो कुछ भी खाओ उसी को मन-ही-मन देवता के अर्पण कर खाना।'' वे सहमत हुये। इसके फलस्वरूप क्रमशः उनके भोजन में परिवर्तन हो आया। माँ ने उनसे हरिनाम-कीर्तन करने के लिये कहा था, उन्होंने वही किया। वृद्ध रायबहादुर अन्त में स्वयं ही महाआनन्द से कहते थे- ''माँ की कृपा से मेरी नाम-जप में अभिरुचि हुई है। तदनन्तर वे खूब नाम-कीर्तन सुनते और नाम-कीर्तन करते। माँ के आश्रम में रोज एक बार आकर माँ को प्रणाम कर जाते। माँ के प्रति उनकी अत्यन्त ही श्रद्धा जाग उठी। उनके जीवन का परिवर्तन भी माँ की असीम कृपा का परिचय है।

ढाका प्रत्यागमन- माँ की शारीरिक अवस्था में परिवर्तन

कुछ दिन कलकत्ता रहकर माँ फिर ढाका लौट गई। कुछ दिनों से माँ की एक भीषण शारीरिक अवस्था होती थी। पहले ही लिखा जा चुका है कि माँ की साँस भयानक जोर से चलती रहती। माँ चाहे बैठी रहती या सोई रहती, एकाएक इस तरह साँस आरम्भ हो जाती। उसी में कभी लेटती और कभी बैठती। उस अवस्था में मैं अक्सर मेरुदण्ड या हाथ-पैर मल देती, किन्तु उस समय मेरा मलना माँ को कुछ भी मालूम नहीं होता था। भोलानाथजी प्राणपण से मलते। तब माँ कहती- ''थोड़ा-सा मालूम पड़ रहा है।'' सारा शरीर मानो स्तब्ध हो जाता। कलकत्ते में सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में और अन्यान्य स्थानों में भी इस तरह की अवस्था हुई थी। जितेन्द्र दादा, नवतरु दादा हाथ पैर मलते-मलते थक जाते थे, किन्तु माँ को विशेष कुछ भी मालूम नहीं होता था। बहुत देर तक ऐसा भाव रहता। फिर धीरे-धीरे घट जाता।

माँ की बाहर जाने की सूचना

एक दिन माँ ने मुझसे उत्तमा कुटीर में ही एकान्त में कहा- ''देख, मैं क्या करती हूँ, कुछ ठीक नहीं है। यदि मैं ढाका से बाहर चली जाऊँ तो जिस दिन बाहर जाऊँ, उस दिन से ही तुम मौनी रहना, मैं जब तक लौटकर न आऊँ तब तक बोलना मत।'' आगे यह भी कह दिया कि- ''यह बात इस समय किसी से भी न कहना।'' मैं सदा ही सशंक रहती कि कब माँ बाहर चली जायें। उस बार माँ हम लोगों को साथ नहीं ले जायेंगी, यह भी विदित हो गया था। किन्तु बाद में सुनने में आया था कि माँ जिस प्रकार बाहर जाना चाहती थी, भोलानाथजी उस पर सहमत नहीं हुये, इसलिये माँ उस समय बाहर न जा सकी। बहुत दिनों के बाद रमना के नूतन आश्रम में आकर केवल चौबीस घण्टे वहाँ रहकर ही माँ भोलानाथजी को ढाका छोड़कर अपने पिताजी को साथ लेकर बाहर चली गई।

माँ के शरीर पर अग्नि का असर- अग्नि की ताप शून्यता

एक दिन उत्तमाकुटीर में जाकर मैंने देखा कि माँ ने पैर में एक जगह जलाकर एक घाव कर डाला है। सुनने में यह आया कि उसी दिन या उसके पहले दिन ज्योतिष दादा ने बातचीत के दौरान माँ से कहा था- ''आपके शरीर पर यदि अग्नि रखी जाये तो आपको उसकी प्रतीति होती है या नहीं?'' माँ ने भी अग्नि रखने पर मुझे प्रतीति होती है या नहीं, यह जानने के लिये दोपहर के समय खाना-पीना हो जाने पर अकेले ही रसोई घर में जाकर चूल्हे से एक जलता हुआ अंगारा उठाकर पैर पर रखा। उस समय बाल जलने की गन्ध पाकर एक व्यक्ति ने रसोई घर में जाकर देखा कि माँ पैर पर एक जला हुआ कोयला रखकर बैठी हैं। पैर के रोमों के जलने के कारण गन्ध बाहर फैली। उन्हें देखते ही माँ कोयला फैंककर उठ आई। माँ ने हम लोगों को देखकर हँसते-हँसते यह वृतान्त सुनाया और बोली- ''मैंने देखा कि कैसा लगता है, किन्तु सच कहती हूँ कि मुझे तनिक भी प्रतीति नहीं हुई।'' हम लोगों ने कहा- ''यदि कुछ भी ताप प्रतीत नहीं हुआ तो घाव कैसे हो गया? यदि घाव न होता तो तभी यह बात सम्भव हो सकती।'' माँ ने हँसते-हँसते कहा- ''यदि घाव न होता तो आग रखी गई थी इसका क्या प्रमाण होता। अग्नि का काम तो

अग्नि करती ही है।'' फिर अन्यमनस्कता से उस फफोले को हाथ से मलते-मलते माँ ने बहुत बड़ा कर दिया। अनेक दिनों के बाद घाव सूखा। पैर में इस समय भी उसका चिह्न है। हाथ के पृष्ठभाग पर उसके पहले एक बार माँ ने अग्नि रखी थी एवं एक बार छुरी से थोड़ा काट डाला था। वे दोनों चिह्न हाथ के पृष्ठभाग पर विद्यमान हैं।

नानीजी की अस्वस्थता

उत्तमाकुटीर में एक बार नानीजी बहुत बीमार पड़ी। एक छोटी उम्र का लड़का डॉक्टरी पास कर स्कूल से बाहर निकला था, उसका नाम था रमणीमोहन। माँ ने उसका नाम रखा था, कालीदास। कालीदास माँ का बड़ा भक्त था और नानीजी की खूब सेवा शुश्रूषा करता था। नानीजी की अवस्था जिस समय अत्यन्त खराब थी, उस समय माँ ने सहसा उस कमरे में जाना-आना ही बन्द कर दिया था। उस कमरे के सामने से बाहर कहीं चली जाती, किन्तु कमरे में घुसती न थी। लगभग सात दिनों तक उस कमरे में गई ही नहीं। उन सात दिनों तक अवस्था भी बहुत खराब रही। आठवें दिन माँ नानीजी के कमरे में गई और उनके बिछौने के एक छोर पर जाकर लेटी रही। तदुपरान्त धीरे-धीरे नानीजी चंगी हो गई।

एक बार मेडिकल स्कूल का एक दूसरा लड़का माँ के पास आया। माँ ने पूछा- "गाड़ी से आये हो?" उसने कहा- "नहीं, पैदल ही आया हूँ। मैं गाड़ी में विशेष नहीं बैठता। घोड़े को कष्ट देना भी तो पाप है।" माँ ने कहा- "देख उसमें पाप नहीं होता है। क्योंकि तुमने जैसे कई एक कर्मों के लिये जन्म ग्रहण किया है। तुम यदि उन्हें न करो तो तुम्हारे कर्मों का क्षय नहीं होगा। इस कारण यदि कोई उस काम में सुविधा कर दे तो उससे तुम्हारा उपकार ही होगा; वैसे ही इन घोड़े आदि ने कर्मक्षय करने के लिये ही जन्म ग्रहण किया है। घोड़ा तो डॉक्टरी पढ़कर कर्मक्षय कर नहीं सकेगा, इसी तरह गाड़ी खींचकर उसे कर्मक्षय करना पड़ेगा। इसलिये उस काम की सुविधा मनुष्यों को देनी चाहिये। जिसका जो काम है, उसे करते जाने की आवश्यकता है।"

उत्तमा–कुटीर त्याग

उत्तमाकुटीर में रहते समय ही सहसा एक दिन सं. 1985 के अगहन

या पौष महीने में माँ खा-पीकर भोलानाथजी को साथ लेकर ढाकेश्वरी के मन्दिर में जा पहुँची। थोड़ी देर बाद माँ ने कहा- "एक गाड़ी ले आओ, सिद्धेश्वरी जायेंगे।" कुछ वस्तु लाने के लिये भोलानाथजी उत्तमाकुटीर जाने वाले थे, किन्तु माँ ने "अब उत्तमाकुटीर में प्रवेश नहीं करूँगी" कहा। उसी समय वे सिद्धेश्वरी चली गई। बाद में मैंने भी सिद्धेश्वरी जाकर देखा तो वे वहाँ बैठी थी। माँ अब उत्तमाकुटीर में नहीं आयेंगी, समझकर बिछौना, सामान आदि सिद्धेश्वरी में ले जाना हुआ। उत्तमाकुटीर का डेरा उठा देने को कहा। नानाजी और नानीजी घर चले गये। उत्तमाकुटीर में माँ केवल छः या सात मास रही। माखन हमारे टिकाटूली के मकान में गया। मटरी बुआ, मरणी, अमूल्य, कमलाकान्त और दूसरी एक विधवा स्त्री थी, उन सबने सिद्धेश्वरी में ही अश्विनीकुमार बाबू के मकान में आश्रय लिया। अश्विनी बाबू की स्त्री तथा बाल-बच्चे सदा ही माँ के समीप रहते थे।

इस तरह माँ ने सहसा उत्तमाकुटीर का डेरा छोड़ दिया। काली-मूर्ति एक काठ की अलमारी-सी बनाकर उसमें सिद्धेश्सरी के आश्रम में ही रखी गई। सं. 1985 में काली सिद्धेश्वरी गई। यह चौथी बार काली-मूर्ति का हटना हुआ। यज्ञाग्नि भी सिद्धेश्सरी के काली मन्दिर के सामने के पीपल के वृक्ष के नीचे कुण्ड बनाकर रखी गई। प्रतिदिन कुलदा दादा आकर वहाँ हवन करते। शिवपूजा, दुर्गासप्तशती पाठ सब कुछ वे ही करते। कभी-कभी रात के दो-तीन बजे इन सब कामों को पूरा कर घर लौटते थे। कुलदा दादा का भी माँ के प्रति प्रगाढ़ विश्वास था। माँ के उत्तमाकुटीर में रहते समय कुलदा दादा के मझले लड़के को कालरा हो गया था, उन्होंने किसी भी औषधि का उपयोग नहीं कराया। केवल माँ का चरणामृत पिलाया। उन्होंने कहा-"यदि बचने वाला होगा तो इसी से बच जायेगा।" किन्तु लड़के की मृत्यु हो गई। उन्होंने औषधि का व्यवहार नहीं किया, यह सोचकर बिल्कुल भी अनुतप्त नहीं हुये। उनका अटल विश्वास था कि यदि बचने वाला होता तो उसी से बच जाता। उनके केवल तीन लड़के थे। बिचला मर गया। लड़के की मृत्यु के बाद वे और उनकी स्त्री दोनों माँ के समीप आये, वे आकर बाहर ही खड़े रहे, माँ कमरे में बैठी थी। उनकी स्त्री के माँ के समीप कमरे में जाते ही माँ ने इस प्रकार रोना आरम्भ किया कि पुत्रशोकार्ता जननी फिर पुत्र के लिये शोक प्रकट न कर सकी, उल्टे वे ही

माँ को सान्त्वना देने लगी। इस प्रकार माँ ने स्वयं रोकर उनके हृदय की व्यथा हल्की कर दी। इस प्रकार के कितने ही खेल माँ करती हैं।

भोलानाथजी से माँ ने सिद्धेश्वरी के काली मन्दिर की छोटी कोठरी में बैठकर अपना साधना कृत्य करने को कहा। फिर, नियम चला कि माँ के निकट दस मिनट से अधिक कोई भी नहीं रह सकेगा। इस कारण माँ प्रायः अकेली ही सिद्धेश्वरी आश्रम के कमरे में बैठी रहती। कमलाकान्त रसोई बना देता। शाहबाग में और उत्तमाकुटीर में रात को भी बहुत देर तक माँ के समीप में ही रहती थी। सिद्धेश्वरी में माँ कभी-कभी सहसा आकर दो-एक दिन रहती। एक बार वहाँ आकर सात दिन रही, उस समय भी मैं अक्सर रहती, रसोई बना देती। उक्त आदेश होने के कारण फिर मेरा अधिक समय तक माँ के निकट रहने का उपाय न था। भोलानाथजी बहुत देर तक उस मन्दिर में बैठकर अपना काम करते, तदुपरान्त आश्रम में आते।

भोलानाथजी का एकाकी ढाका त्याग

एक दिन सन्ध्या के समय जाकर मैंने सुना कि माँ ने कहा-"भोलानाथजी कल ही ढाका छोड़कर एक जगह जा रहे हैं, तुम सब लोग स्टेशन जाकर भोलानाथजी को गाड़ी में बैठा आओ।" वे कहाँ जा रहे हैं, यह प्रकट नहीं किया। भोलानाथजी उस समय कई दिनों से मौनी थे, किसी से वे बोलते न थे। कलकत्ते की मेल से वे रवाना हुये। यज्ञ की अग्नि लेकर योगेश दादा फिर जाने वाले थे। माँ सिद्धेश्वरी ही रहने वाली थी। कभी भी इस प्रकार बाहर जाना हुआ नहीं। सदा ही दोनों एक साथ जहाँ भी हो, गये हैं। माँ के आदेशानुसार दूसरे दिन सब लोग सिद्धेश्वरी जाकर भोलानाथजी को साथ लेकर स्टेशन गये, माँ भी साथ गई। सबसे विदा लेकर सबके साथ बातें कर वे योगेश दादा को साथ लेकर रवाना हो गये। साथ में यज्ञ की अग्नि भी दे दी गई। माँ को साथ लेकर हम लोग सिद्धेश्वरी लौट आये, ज्योतिष दादा भी साथ ही थे। निश्चय हुआ कि और भी सात दिनों तक भोलानाथजी के रहते जो दस मिनट का नियम चला है, दिन में वही चलेगा। कमलाकान्त और एक विधवा स्त्री थी, वे माँ के निकट रहेंगी। रात्रि में चाहे कोई भी एक व्यक्ति आकर आश्रम में सोयेगा। पिताजी ही रात्रि में जाकर सोवेंगे, यह निश्चय हुआ। वही चलने

लगा। सात दिन इस तरह बीते। आठवें दिन प्रात:काल उठते ही माँ ने सिद्धेश्वरी के काली–मन्दिर के पास वाली उस छोटी–सी कोठरी में स्थान ग्रहण किया। कह गई– ''इस कमरे में कोई न आवे, जब होगा मैं ही बाहर आऊँगी, उस समय दर्शन हो जायेंगे।'' दस दिन का नियम छूटा तो फिर यह दूसरा नियम चला। चाहे जब भी बाहर निकलकर साधारण कुछ खाकर माँ कमरे में चली जाती। जिस दिन कमरे में गई, उसी दिन अपराह्ण के बाद बाहर आकर पोखरे के किनारे बैठी थी, हम लोग वहीं थे। माँ ने मुझसे एकान्त में कहा– ''तुम कुछ दिनों तक दिन में एक बार आकर मेरे साथ भेंट करते ही चली जाना। यहाँ रहना नहीं।'' इससे मुझे बड़ी चोट लगी। दिन–रात में जितना अधिक हो सकता था माँ के निकट ही बैठती थी, सात दिन तो उस नियम में गये, फिर यह आदेश हुआ। किन्तु माँ ने कहा था, इसलिये उसी पर मैं राजी हो गई। उस दिन चली गई। पिताजी आदि सभी रहे।

* * *

सातवाँ अध्याय

तारापीठ आने का पहला इतिहास

सिद्धेश्वरी निवास के समय माँ ने जिस दिन मुझे यह आदेश दिया कि तुम कुछ दिनों तक दिन में एक बार आकर मुझसे भेंट कर जाया करो यहाँ रहना नहीं, उसके दूसरे दिन जाकर देखती हूँ कि कलकत्ते से भोलानाथजी ने माँ के पास चिट्ठी भेजी है। चिट्ठी लेकर सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आये हैं। भोलानाथजी तारापीठ गये हैं। मैं माँ के आदेशानुसार माँ से भेंट करके ही लौट आई। अन्य सभी लोग माँ के समीप बैठे रहे। माँ अपराह्न को ही कमरे से बाहर चली आई थी। रात को पिताजी के घर आने पर मुझे मालूम हुआ कि भोलानाथजी ने केवल माँ को ही तारापीठ ले जाने के लिये सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को भेजा है एवं माँ के पास भी चले आने के लिये चिट्ठी लिखी है। कल ही माँ तारापीठ को रवाना हो जायेंगी। मैंने सोचा, माँ ने मना कर रखा है, अतः जाकर भी दर्शन न पा सकूँगी। इसलिये रात किसी तरह बिताकर तड़के ही पिताजी और मैं –दोनों सिद्धेश्वरी गये। जाकर देखा कि ज्योतिष दादा भी वहाँ आये हैं।

माँ का ढाका–त्याग और तारापीठ को प्रस्थान

माँ मन्दिर से बाहर आई। कुछ देर बाद माँ फिर कमरे में गई। मैं उस कमरे के अन्दर ही जाकर जोर–जोर से रोने लगी। माँ ने ढाढ़स दिया। किन्तु माँ चली जा रही थी, इसलिये सान्त्वना की बातों से क्या होना था? उधर पिताजी और ज्योतिष दादा माँ के जाने की तैयारी कर रहे थे। साज–सामान तो कुछ था नहीं, भोलानाथजी के जाने के बाद से ही माँ ने 2–1 फटे पुराने अलवानों का एक छोटा–सा बिछौना बना रखा था। तकिया आदि कुछ भी न था। पहले भी माँ तकिये का विशेष उपयोग नहीं करती थी, फिर भी वह बिछौने में रहता था। देखते–देखते जाने का समय हो आया। मैंने बड़े कष्ट से आकर माँ को खिला दिया। फिर उसी छोटी कोठरी में पड़कर रोने लगी। माँ उस कोठरी में आकर बैठी और मुझसे बोली– "यदि मैं तुम लोगों को आने के लिये चिट्ठी लिखूँ तभी आना।"

माँ रवाना हो रही थी, मैं भी उठकर साथ हो ली। काली के मन्दिर में जाकर श्रीकाली के विग्रह पर हाथ फेरकर मानो माँ ने उनसे विदा ली। दूसरा कोई कमरे में था नहीं, केवल मैं ही माँ के साथ रही, इसीलिये मैंने ही यह देखा। सब लोग माँ के साथ स्टेशन गये। स्टेशन सभी लोग गये। खूब भीड़ हुई। माँ जाकर गाड़ी में बैठी। गाड़ी छूटने में कुछ विलम्ब था। माँ सबकी ओर निहार रही थी, सब लोग गर्दन उठा-उठाकर माँ को उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। गाड़ी छूटने से थोड़ी देर पहले माँ एकाएक पुक्का फाड़कर रोने लगी। पहले कभी कहीं जाते समय माँ को इस प्रकार रोते मैंने देखा नहीं था। माँ की रुलाई देखकर उपस्थित सभी लोगों की आँखें भर आई। पहले तो वैसे ही सबका चित्त व्याकुल था उस पर माँ का रुदन देखकर कोई भी स्थिर न रह सका। उसी समय गाड़ी चल पड़ी। हम कुछ लोग नारायणगंज तक साथ जाकर माँ को स्टीमर पर चढ़ा आये।

माँ का आभूषण-त्याग

स्टीमर पर चढ़कर माँ ने अपने हाथ की दो चूड़ियाँ उतारकर कहा- ''इन चूड़ियों से 5 अंगूठियाँ बनवाकर सीताराम, जटु, अमूल्य, माखन (चिन्ताहरण वन्द्योपाध्याय के पुत्र) और सुबोध को दे देना।'' याद आता है कि माँ ने चूड़ियाँ ज्योतिष दादा को दी थी। ये लोग उस समय खूब कीर्तन करते थे। माँ को उस समय अनेक लोगों ने बहुत से गहने दिये थे। माँ कुछ दिन पहनकर उन्हें उतारकर रख देती। पिताजी ने एक बार माँ के लिये मुण्डमाला बनवाकर गले में पहना दी थी। माँ को ढाका में बहुत से लोग 'काली माँ' कहते थे। कलकत्ते में भी बहुत से लोग माँ को 'मनुष्य काली' कहते थे। लोग माँ को काली माँ कहते थे, इसीलिये मुण्डमाला पहनाई गई। इससे सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। माँ के दर्शनों के लिये आते ही मुण्डमाला देखकर लोग कहते, ''ठीक ही हुआ, माँ के गले में मुण्डमाला ही शोभा पाती है।'' बहुत दिनों तक वह माँ के गले में रही, परन्तु उस समय कोई विशेष गहना शरीर पर नहीं था। ज्योतिष दादा ने एक हीरे की नाक की कील बनवा दी थी, वह नाक में थी। निरंजन बाबू की स्त्री ने एक लोहा बाँध दिया था और एकलरा हार दिया था। हार तो उतार डाला था। लोहा हाथ में ही था। बाद में तो माँ ने सभी गहने उतार डाले थे। केवल शंख की चूड़ियाँ और निरंजन बाबू की स्त्री का दिया हुआ लोहा

रख छोड़ा था। माँ के हाथ में कई चूड़ियाँ और गले में महीन एकलरा हार था। यह हार बहुत पहले भोलानाथजी ने ही बनवाया था। स्टीमर चल पड़ा। हम सब ढाका लौट आये। सभी का मन उदास था।

भोलानाथजी का भक्तगणों के साथ दक्षिण यात्रा का प्रस्ताव

कुछ दिनों के बाद भोलानाथजी की चिट्ठी आई कि हम लोगों का दक्षिण की ओर जाने का विचार हो रहा है, साथ में जो-जो चलना चाहें तारापीठ आकर साथ हो जायें। मटरी बुआ और मरणी को भी साथ ले आने के लिये लिखा था। ढाका से और कोई नहीं गया। मैं और पिताजी, मटरी बुआ और मरणी को लेकर तारापीठ के लिये रवाना हुये। सन्ध्या के समय पहुँचने पर देखा कि कलकत्ते से अनेक भक्त आये हुये हैं। कई दिनों से वहाँ खूब आनन्द चल रहा था। उस दिन कुमारी, सधवा आदि को भोजन कराया गया था। माँ ने स्वयं ही भोजन बनाया था। उस समय तक भी माँ ने भोजन नहीं किया था। इतने दिनों बाद माँ के दर्शन पाकर बड़ा आनन्द आया। भोलानाथजी के कपाल पर भी बहुत बड़ा सिन्दूर का टीका देखा। मैंने माँ को खिला दिया। भोलानाथजी ने भी खाया। तदुपरान्त हम लोगों ने प्रसाद पाया। तारापीठ एक महाश्मशान है। उसी में **तारा माई** का विशाल मन्दिर है। एक शिवजी का मन्दिर भी है। माँ, भोलानाथजी और योगेश दादा उसी मन्दिर में रहते थे। मैंने भी उस रात्रि को शिव-मन्दिर में ही माँ के पैरों के नीचे स्थान ग्रहण किया। यह स्थिर हुआ कि कल ही यहाँ से कलकत्ते को चला जायेगा, दक्षिण की यात्रा इस समय स्थगित रहेगी।

तारापीठ में आने का पूर्व इतिहास

रात्रि में बैठे-बैठे पिताजी ने और मैंने माँ और भोलानाथजी के मुँह से बहुत-सी बातें सुनी। जिस समय भोलानाथजी सिद्धेश्वरी में काली-मन्दिर में साधना के लिये बैठते थे, उस समय एक दिन उन्हें एक काली-मूर्ति के दर्शन हुये, किन्तु मूर्ति का सिर न था। उन्होंने यह वृतान्त माँ से कहा। माँ बोली- "तुम तारापीठ चले जाओ।" माँ तारापीठ में इससे पहले कभी आई न थी अथवा वहाँ कोई मूर्ति है या नहीं, यह भी माँ कुछ जानती न थी। माँ के इस कथन से ही भोलानाथजी ने तारापीठ आकर तारा माई के मन्दिर के बरामदे में अपना आसन लगाया। तारापीठ में आकर उन्होंने तारा

माई को स्नान कराते समय देखा कि तारा माई का चाँदी का मस्तक अलग है। प्रतिदिन रात्रि में उक्त मस्तक उतारकर रख दिया जाता है। दूसरे दिन फिर स्नान के बाद मस्तक रखकर कपड़े से सजा दिया जाता है। पृथक सिर देखकर सिद्धेश्वरी में मुझे जो मस्तकविहीन काली-मूर्ति दिखाई दी थी यही वह मूर्ति है, यह भोलानाथजी को प्रतीत हुआ। इसी से प्रतीत होता है कि भोलानाथजी की उक्त मूर्ति की बात सुनकर माँ ने भोलानाथजी को तारापीठ भेजा था। कलकत्ते से साथ में एक-दो आदमी और आये थे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी को माँ को लिवा लाने के लिये भेजा था। वे भोलानाथजी के साथ तारापीठ गये थे। इसके बाद केवल भोलानाथजी और योगेश दादा ही रह गये थे। निर्जन स्थान, लोगों की भीड़-भाड़ भी विशेष नहीं। केवल कुछ घरों में पण्डे ही उस गाँव में रहते हैं। तारा माई के मन्दिर में रात को कोई रहता नहीं। भोलानाथजी के ढाका से आने के ठीक नौ दिन बाद ही माँ ढाका से रवाना होकर दसवें दिन तारापीठ पहुँची।

तारापीठ में भोलानाथजी की अपूर्व अवस्था

यहाँ भोलानाथजी की अति उत्तम अवस्था हुई थी। उस जाड़े के मौसम में (सम्भवतः पूष का महीना था) दिन-रात खुले बरामदे में ही बैठे रहते थे। दिन में मक्खियाँ मुँह और आँखों में भिनभिनाती थी तो भी उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता था। उस समय भोलानाथजी खूब तम्बाखू पीते थे, किन्तु हुक्का हाथ में देते ही दो-एक कश लगाते न लगाते हुक्का उनके हाथों से गिर पड़ता था। एक दिन मुँह से वमन की तरह निरन्तर थूक निकलने लगा, उसमें केवल तम्बाखू की ही गन्ध थी। उस दिन से अब वे तम्बाखू की गन्ध सहन नहीं कर सकते हैं। किस समय उन्हें किसका दर्शन होता था, यह सब बतलाते थे। माँ के जाने के बाद वे शिव-मन्दिर में ही दिन-रात रहते। माँ दिन-भर बाहर-ही-बाहर घूमती, रात्रि में जाकर शिव-मन्दिर में सो रहती। भोलानाथजी का खाना-पीना भी बहुत कम हो गया था। एक दिन अर्धरात्रि में सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी को बुलाकर उन्होंने स्वयं तारासिद्धि और शिवसिद्धि प्राप्ति की बात प्रकट की थी। तदनन्तर धीरे-धीरे उनका इस तरह का आविष्ट भाव घट गया।

तारापीठ में माँ की दिनचर्या

माँ भी दिन भर अकेले घूमती-फिरती, पण्डों की बहुओं में से कोई फरवी खिला देती, कोई रोटी खिला देती। माँ उस समय भी भात विशेष नहीं खाती थी। ये सब बातें हमने सुनी। तदनन्तर माँ और भोलानाथजी विश्राम करने के लिये लेट गये। योगेश दादा भी सो गये। मैं रात भर माँ के पैरों के नीचे बैठी रही, भोर होते ही उठ गई। सवेरे माँ मुझे साथ लेकर पण्डों के घर-घर गई। सभी को यह मालूम हुआ कि माँ आज चली जायेंगी। प्रायः सभी इस कारण दुःख प्रकट करने लगी। प्रायः सभी घरों में माँ को और मुझको च्यूड़े और फरवी घी में सानकर खाने को दी गई। वे सब माँ से कहती थी- "माँ हम लोग गरीब हैं, हम लोगों के घरों में मीठा-वीठा कुछ भी नहीं है। इन साधारण वस्तुओं को सामने रखकर ही हम लोगों ने तुम्हें खाने को बैठा दिया है।" एक पण्डे की स्त्री ने कहा- "माँ, तुम जाओगी, मोटर आई है। मैं नहाने गई थी, मोटर के शब्द से ही हृदय में न जाने कैसा भाव उठा कि मानो हमारे कृष्णजी को ले जाने के लिये अक्रूर जी आये हैं।" यह कहकर वह रोने लगी। माँ हँसती थी और कहती थी- "मेरे लिये तुम लोग ऐसा क्यों कर रही हो? मैं तो तुम्हारी तरह ही साधारण मनुष्य हूँ। केवल कुछ दिनों के लिये आई। अपनी इच्छानुसार घूमती-फिरती रही। तुम लोगों ने कितने जतन से मुझे खिलाया है।" वही बहू कहने लगी- "माँ, हम **तारापीठ** के निवासी हैं। यह **सिद्धपीठ** है। देखते हैं, यहाँ कितने ही साधु-संन्यासी आते हैं। माँ हम भी मनुष्य को पहचानती हैं। तुम्हारी जैसी दूसरी भगवती माँ हमने कभी नहीं देखी।" माँ ने कहा- "मैं तो साधु-संन्यासी नहीं हूँ, उनके साथ मेरी क्या तुलना?" वे कहती थी- "माँ क्यों छल रही हो? तुम हमारी भगवती माँ हो।" इस समय भी तारापीठ में माँ को कुछ लोग 'भगवती माँ' कहते हैं। माँ को कितने प्रेम से उस बहू ने खिला दिया, कह नहीं सकती। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इतने थोड़े दिनों में ही इनका माँ से कितना स्नेह हो गया था। मगर माँ यहाँ अकेले-अकेले कभी घूम आती, कभी लेटी रहती। माँ की बातें विशेषकर वे सुनती भी नहीं, फिर भी वह अवस्था!

तारापीठ–त्याग, वक्रेश्वर–दर्शन, दक्षिण–यात्रा का संकल्प–त्याग और सलकिया आगमन

खा–पीकर हम रवाना हुये। मोटर से रामपुर हाट आकर ट्रेन पकड़ी। कलकत्ते के समीप सलकिया में बुआजी के घर (कालीप्रसन्न कुशारीजी के घर) माँ उतरी। मैंने सुना कि भोलानाथजी को साल में एक दिन तारापीठ जाकर रहने तथा कलकत्ते में भी अमुक–अमुक स्थानों में निर्दिष्ट दिन रहने का आदेश हुआ है। उसके अनुसार वे चले गये। यज्ञ की अग्नि लेकर योगेश दादा कलकत्ते के एक खाली टूटे मकान में चले गये। उक्त यज्ञाग्नि को गृहस्थ के मकान में ले जाने का माँ ने निषेध कर रखा था। तारापीठ से आते समय भोलानाथजी ''जीवित पुष्करिणी'' (जो 'जिओल पुकुर' के नाम से प्रसिद्ध है) का एक घड़ा जल लेते आये। उन्हें आदेश हुआ था कि इस जल से रोगियों को आरोग्य–लाभ होगा। तारापीठ से लौटते समय वक्रेश्वर होकर आना हुआ एवं रेल्वे स्टेशन के निकट ही एक और पीठस्थान के दर्शनों का सुयोग प्राप्त हुआ। भोलानाथजी को पीठस्थान देखने का बड़ा शौक है, बाद में वे और भी बहुत से पीठस्थानों में घूमे हैं। हम लोग सलकिया में माँ के साथ बुआजी के मकान में ही रहे। भोलानाथजी कलकत्ता जाकर जैसा–जैसा आदेश प्राप्त हुआ था तदनुसार रहते थे। दिन में सलकिया आ जाते थे और सन्ध्या समय चले जाते थे।

कुशारीजी के मकान में माँ को साबुन से स्नान कराते समय मैंने माँ के गले का हार भी उतारकर साबुन से साफ कर फिर एक लर कर माँ के गले में डाल दिया। वह गले में डालते समय जनेऊ की तरह हो गया, माँ ने हाथ लम्बा कर उसे नापा। जनेऊ की माप का पाते ही बोल उठी–''खुकुनी, देख तो यह एकदम हूबहू जनेऊ की माप का हुआ है।'' यह कहते ही माँ के खयाल में वह जनेऊ के रूप में रहा एवं माँ कन्धे के ऊपर जनेऊ के समान ही उसे रखे रहती, किन्तु मुझसे और कुछ बोली नहीं। उसी दिन शाम के समय माँ छत पर खड़ी थी। कुशारीजी खुले बदन समीप में जाकर ज्यों ही खड़े हुये माँ ने देखा कि उनके गले में जनेऊ नहीं है।

माँ का यज्ञोपवीत–ग्रहण

देखते ही माँ बोल उठी – ''यह क्या, आपके गले में जनेऊ नहीं है?'' वे बोले– ''कुछ दिनों से टूट गया है, फिर कई बार कह चुका हूँ, एक जनेऊ बनाकर दो, कोई देता नहीं।'' माँ ने कहा– ''यह क्या बात? आपको देखकर लड़के क्या शिक्षा लेंगे? पैसा खर्च करके उनका व्रतबन्ध क्यों किया?'' इसके बाद सन्ध्या समय फिर सब लोग एक जगह बैठे। माँ का वही प्रातःकाल का जनेऊवाला भाव शान्त नहीं हुआ था। माँ ने कुशारीजी की स्त्री से कहा– ''देखिये, आप मुझे एक जनेऊ दे दें।'' यह कहकर माँ ने हार उनके हाथ में दिया। उन्होंने भी सरल भाव से हँसते–हँसते माँ के कथनानुसार वैसा ही किया। उस समय माँ ने कहा– ''मैं इस समय ब्रह्मचारी हूँ, मुझे व्रत–भिक्षा नहीं देंगी?'' उन्होंने माँ के आँचल में कुछ हर्रे और दस रुपये बाँधे दिये। माँ बोली– ''अब पाँच व्यक्ति मुझे गायत्री मन्त्र सुनाओ।'' यह कहकर माँ ने एक–एक करके उस मकान के जिस–जिस लड़के को बुलाया, उनमें से किसी के भी गले में जनेऊ नहीं दिखाई दिया। उस समय सब कानाफूसी करने लगे कि माँ ने इसीलिये ही जान–बूझकर यह खेल आरम्भ किया है। अन्त में पिताजी, भोलानाथजी और अन्य तीन व्यक्तियों ने मिलकर माँ को गायत्री सुनाई।

उसी दिन दोपहर के समय रेवती सेनजी तथा और भी कई भद्र पुरुष आये। माँ कपड़े से मुँह ढ़ककर बैठी रही। कारण कि ब्राह्मण के सिवा अन्य किसी का भी मुँह ब्रह्मचारी को नहीं देखना चाहिये। माँ ने कहा– ''मैं कम–से–कम एक दिन तो इन सब नियमों का पालन करूँ तो भी हो जायेगा।'' सन्ध्या समय भोलानाथजी के साथ योगेश दादा आये। उन्हें साथ ले गंगा–तट पर जाकर माँ ने उनसे गायत्री मन्त्र सुनना चाहा। हम सभी लोग साथ थे। माँ बीच–बीच में कह रही थी– ''मैं इस समय ब्रह्मचारी हूँ, भिखारी हूँ। कहाँ जाऊँ, क्या ठीक?'' माँ के इस कथन से भोलानाथजी, पिताजी आदि सभी लोगों को चिन्ता हुई। कौन जानें माँ क्या कर डालें? माँ के इस भाव को हटा देने के लिये भोलानाथजी ने माँ से जरा जोर से ही उपेक्षा के साथ कहा– ''यह सब क्या आरम्भ हुआ? बड़ी ब्रह्मचारी बनी हैं, हटाओ इन सब बातों को।'' गंगाजी के किनारे ही ये सब बातें हुई। माँ एकदम चुप रही। भाव ही दूसरी तरह का हो गया। भोलानाथजी

मकान में पहुँचते ही भवानीपुर चले गए। माँ मकान में आते ही कपड़े से मुँह ढककर सो गई। बुआजी ने कितना पुकारा, हम लोग पुकारते–पुकारते थक गये, किन्तु उत्तर कुछ भी नहीं। मुँह का कपड़ा उठाकर देखा तो माँ के आँसुओं से कपड़ा भीग गया था। बुआजी के बहुत प्रयत्न करने और रोने का कारण पूछने पर बोली– "मुझसे चाहे कितना ही भला–बुरा कहें उससे मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगता, किन्तु जो सत्य है उसके प्रति उपेक्षा या अनुपादेयता का भाव देखने पर मेरा शरीर न जाने कैसा हो जाता है।" माँ का सारा शरीर पस्त पड़ गया था। दूसरे दिन भोलानाथजी ने आकर देखा कि माँ पड़ी ही हैं। इस प्रकार की अवस्था देखकर उन्होंने माँ के समीप जाकर उस बात के लिये क्षमा चाही। बहुत देर बाद माँ उठ बैठी।

कलकत्ता–गमन

उसी दिन माँ के भवानीपुर जाने की बात थी। स्मरण होता है, प्राणकुमार बाबू के मकान में जाने वाली थी। प्राणकुमार बाबू ढाका में सब जज थे, वहीं सपरिवार उन्हें माँ के चरण–दर्शन प्राप्त हुये थे। इधर देखने में आया कि सलकिया के मकान में फूफाजी तथा बच्चों में से प्रायः किसी के भी गले में जनेऊ नहीं है। माँ भवानीपुर जाते समय कह गई– "मैं अगले सोमवार को पुनः इस मकान में आऊँगी। कुछ जनेऊ गाँठ लगाकर तैयार रखें और कुछ फल मँगा रखें।" भिक्षा के 10 रुपये भी बुआजी को देकर कह आई, "इन दस रुपयों से उस दिन जनेऊ का निमन्त्रण होगा।" माँ प्राणकुमार बाबू के मकान में होकर टूटे मकान में जहाँ योगेश दादा यज्ञाग्नि लेकर रहते थे, गई। भोलानाथजी को वहाँ कुछ दिन रहने का आदेश हुआ। हम सभी लोग कुछ दिन उसी मकान में रहे। कलकत्ते में योगेन्द्र रायजी बहुत अस्वस्थ थे, उन्हें एक बार माँ के दर्शनों की इच्छा हुई। उनकी स्त्री ने सलकिया आकर माँ से चलने के लिये बहुत अनुरोध किया, किन्तु उस बार माँ किसी प्रकार भी वहाँ जाने को राजी नहीं हुई। माँ ने भोलानाथजी को देखने के लिये भेज दिया। बाद में कलकत्ता छोड़ने के समय वे फिर आदमी भेजकर बहुत आग्रह कर थोड़े समय के लिये माँ को ले गई।

पुनः सलकिया आगमन

उधर निश्चित दिन माँ सलकिया पहुँची। योगेश दादा से भी दूसरे दिन

भोर में यज्ञाग्नि लेकर सलकिया गंगाजी के तट पर पहुँचने को कह आई। बुआजी ने जनेऊ और फलों की व्यवस्था कर रखी थी। लड़कों ने माँ के भय से इधर-उधर से पुराना टूटा जैसा भी जनेऊ पाया उसका संग्रह कर गले में डाल रखा था। दूसरे दिन भोर में माँ सबको साथ लेकर गंगाजी के तट पर गई। फूफाजी को तथा अन्य चार लड़कों को स्नान कराया। तदुपरान्त माँ ने यज्ञाग्नि के पात्र को गंगाजी के सन्निकट रखा। माँ यज्ञाग्नि और गंगाजी के बीच में इस तरह खड़ी हुई कि पैरों की एड़ी का भाग गंगाजी को छू रहा था और अंगूठे के अगले भाग का यज्ञाग्नि-पात्र से स्पर्श हो रहा था। माँ इस प्रकार चरण द्वारा गंगाजी और अग्नि का सम्पर्क स्थापित कर खड़ी हुई एवं एक-एक जनेऊ और फल माँ ने एक-एक व्यक्ति के हाथ में दे दिया। भोलानाथजी से जनेऊ गले में पहना देने के लिये कहा। इस प्रकार पाँच व्यक्तियों का यज्ञोपवीत हो जाने पर माँ ने गायत्री पढ़ने को कहा। उन लोगों के पुराने टूटे यज्ञोपवीत इकट्ठे कर माँ ने अपने गले में (यज्ञोपवीत की तरह ही) डाल लिये। सोने का हार तो जनेऊ की तरह था ही। उसके बाद सबसे कह दिया- ''आज से सन्ध्या यदि न भी हो सके तो कम-से-कम गायत्री मन्त्र-जप करने में तो कभी भी विघ्न-बाधा न आवे।'' तदुपरान्त सबको साथ लेकर मकान में गई। बुआजी ने उस दिन बड़े सुन्दर ढंग से यज्ञोपवीत का निमन्त्रण दिया। श्री श्री माँ ने नूतन यज्ञोपवीतधारी पाँच व्यक्तियों के साथ बैठकर उस दिन भोजन किया।

आगरा-गमन और पुनः सलकिया आगमन

इस प्रकार जनेऊ का खेल समाप्त कर कुछ दिनों के बाद वीरेन्द्र दादा के आग्रह से माँ और भोलानाथजी हम लोगों को साथ लेकर आगरा गये। संवत् 1984 वि. में वीरेन्द्र दादा प्रोफेसर होकर आगरा गये थे। दो-तीन दिन वहाँ रहकर माँ फिर कलकत्ता लौट आई। इस ओर ढाका के मेडिकल स्कूल के किसी काम के लिये लड़के और मास्टरों ने मिलकर माँ के समीप टेलीग्राम कर प्रार्थना की, कि पिताजी को एक बार ढाका आने की अनुमति प्रदान करें। उन्होंने सोचा कि संभव है पिताजी अनुमति के बिना न आवें, इसलिये माँ को टेलीग्राम किया कि माँ के कहने पर पिताजी ढाका जाने के लिये बाध्य होंगे। वही हुआ, माँ ने पिताजी को ढाका जाने का आदेश दिया। मैं और पिताजी ढाका चले आये। कुछ ही दिनों में ढाका

का काम समाप्त कर हम लोग कलकत्ता गये। सलकिया जाकर सुना कि माँ पुरी गई थी, वहाँ से लौटकर सलकिया आई थी, इस समय भवानीपुर गई हैं और आज ही 'विद्याकूट' के लिये रवाना होने वाली हैं।''

विद्याकूट होकर ढाका–गमन

उसी समय कालीघाट के सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय के मकान में और चण्डीबाबू के मकान में पता लगाया, मालूम हुआ कि माँ आई थी, किन्तु कुछ समय हुआ स्टेशन चली गई हैं। स्टेशन पर जाकर देखा तो गाड़ी छूट चुकी थी। उसी दिन हम ढाका लौट गये। दूसरे दिन 'विद्याकूट' को रवाना हुये। साथ में सुबोध, अमूल्य आदि दो–तीन व्यक्ति भी माँ को लेने के लिये चले। 'विद्याकूट' जाकर देखते हैं कि माँ और भोलानाथजी वहीं विद्यमान हैं। दो–चार दिन वहाँ रहकर उन्हें साथ लेकर ढाका आये। माँ और भोलानाथजी ढाका के सिद्धेश्वरी आश्रम में ही रह गये। सम्वत् 1986 वि. का जन्मोत्सव भी आ गया। माँ कुछ दिनों से कह रही थी– ''मेरा शरीर जल रहा है।'' बहुत पूछने पर माँ ने मोटा–मोटी यह कहा कि हम लोगों में से किसी के ऊपर विपत्ति आ रही है। कुछ ही दिनों के बाद खबर आई कि योगेन्द्र रायजी का देहान्त हो गया है। माँ का 1986 संवत् का जन्मोत्सव आरम्भ हुआ।

* * *

आठवाँ अध्याय

वि.सं. 1986

रमना आश्रम का सूत्रपात – स्थान लेने का इतिहास

रमना आश्रम में भी माँ के रहने के लिये एक छोटी कोठरी बनवाई गई। रमना की भूमि लेने के सम्बन्ध में एक इतिहास है। वह यों है - एक बार माँ के ढाका से बाहर जाते समय निरंजन बाबू (असिस्टेन्ट इन्कमटैक्स कमिश्नर, ढाका) ने ज्यों ही माँ को प्रणाम किया, माँ ने उनके सिर पर हाथ रखकर कहा– ''आश्रम के लिये चेष्टा कर रहे हो, किन्तु पहले इस रमना के मैदान की भूमि ही लेने की चेष्टा करना।'' आरम्भ में निरंजन बाबू के प्रयत्न से ही रमना आश्रम के लिये कुछ रुपयों का संग्रह हुआ था। उन्हीं रुपयों से पहले आश्रम का काम आरम्भ हुआ। निरंजन बाबू और ज्योतिष दादा के विविध प्रयत्न करने पर भी आश्रम न बनते देख एक बार, जब माँ सलकिया थी, सरकारी काम के सिलसिले में विनय बाबू (ये सरकारी कृषि विभाग में नौकरी करते हैं) कलकत्ता जा रहे हैं, यह देखकर ज्योतिष दादा ने विनय बाबू के मार्फत माँ के समीप सन्देश भेजा कि हम लोगों के प्रयत्न से कुछ भी नहीं हो रहा है, जब तक आपकी इच्छा नहीं होगी, कुछ भी होने-जाने का नहीं। हम लोग व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हैं।

माँ ने उत्तर में विनय बाबू से कहा– ''जाकर इस बार भली-भाँति प्रयत्न करने को कहो।'' विनय बाबू ने ढाका आकर यह बात ज्योतिष दादा से कही। आश्चर्य की बात है कि इसके कुछ ही दिनों के अनन्तर बात पक्की हो गई, भूमि मिल गई। अन्तिम दिन जिस दिन बात पक्की हुई थी, ज्योतिष दादा ने माँ की जिस कृपा का अनुभव किया था उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। माँ पक्के मकान में नहीं रहेंगी यह सोचकर नूतन आश्रम में एक छोटी-सी फूस की कुटिया माँ के रहने के लिये बनवाई गई। निश्चय हुआ कि उत्सव के अन्तिम दिन माँ नूतन आश्रम में प्रवेश करेंगी।

सिद्धेश्वरी में जन्मोत्सव (वैशाख संवत् 1986 वि.)

इस बार भी बड़े ही आनन्द के साथ सिद्धेश्वरी में उत्सव हुआ। इस संवत् 1986 के उत्सव के बीच एक दिन कमरे में अनेक लोगों ने प्रसाद पाया। माँ और भोलानाथजी का भोग लग चुका था। पिताजी भी कमरे में प्रसाद पाने बैठे। माँ अकस्मात् आकर पिताजी के साथ खाने बैठी। बोली– ‘‘दो, मुझे खिला दो।’’ पिताजी क्या करते, माँ के आदेश से उन्होंने अपना जूठा भोजन माँ को खिला दिया।

रमना आश्रम में माँ का प्रथम पदार्पण

उत्सव के अन्तिम दिन सन्ध्या के बाद बहुत से भक्तों को साथ लेकर माँ रमना के नूतन आश्रम में गई। इस उत्सव के अवसर पर भी नाना स्थानों से भक्तगण आकर माँ के समीप एकत्र हुये थे। माँ के आश्रम में प्रवेश करते ही खूब जोर से कीर्तन होने लगा। कीर्तन साथ–ही–साथ आया था। उत्सव का कीर्तन उस समय भी बन्द नहीं हुआ था, उस दिन रात्रि में भी कीर्तन चलने वाला था। अगले दिन प्रातःकाल कीर्तन बन्द होने की बात भी। माँ कुछ देर तक जमीन पर पड़ी रही। तदनन्तर उठ बैठी।

बाउल बाबू का वृतान्त

उत्सव के अवसर पर बाउल बाबू की एक दुकान लगी थी। माँ ने उस दुकान से सब मिठाई खरीद लाने को कहा। तदनन्तर सब लोगों में मिठाई बाँट दी। बाउल बाबू की दुकान की सब मिठाई समाप्त हो गई। इस बार भी बाउल बाबू ने फूल के मुकुट और अन्यान्य आभूषणों से माँ को सजाया। माँ छोटी कुटिया की सीढ़ी पर बैठकर हँस रही थी।

फूलों के साज–सामान से माँ की अपूर्व शोभामयी देवी मूर्ति

सिन्दूर, लाल चौड़े किनारे की साड़ी एवं उन फूलों के आभूषणों से माँ की अपूर्व शोभा निखरी। भावावस्था कई दिनों से चल रही थी। मुँह पर अस्वाभाविक ज्योति थी। उस पर फूलों के साज से सजी थी। ऐसा लगता था मानो एक अपूर्व सौन्दर्यमयी देवी प्रतिमा हों। समागत सभी भक्त माँ के चरणों पर गिरकर प्रणाम कर रहे थे। माँ ने भोलानाथजी की ओर निहारकर हँसते–हँसते कहा– ‘‘तुमने प्रणाम नहीं किया?’’ भोलानाथजी ने सिर हिलाकर

इशारे से कहा– ‘‘नहीं’’। माँ ने हँसकर सबकी ओर देखकर कहा– ‘‘ये तो अकेले घर में अनेक बार नमस्कार करते हैं। यहाँ तुम लोगों के सामने, प्रतीत होता है, लजाते हैं, इसीलिये नहीं करेंगे।’’ माँ की इस बात पर सभी लोग हँस पड़े। भोलानाथजी भी हँसे। मरणी उस समय छोटी थी, वह बोल उठी– ‘‘हाँ, मैंने देखा है, दादाजी, दादीजी को प्रणाम करते हैं।’’ इस बात पर माँ, भोलानाथजी एवं सभी फिर हँस पड़े। प्रायः सारी रात इस तरह विविध लीलाओं में बीत गई।

विविध मधुर लीलायें

भोर में माँ आँगन में जहाँ शामियाना तना था, जमीन पर ही पड़ी रही। उस दिन भी अनेक लोग प्रसाद पाने वाले थे।

कीर्तन समाप्त हो चुका था, रसोई बन रही थी। दिन भर माँ उसी तरह पड़ी रही। सन्ध्या से थोड़ी देर पहले माँ उठ बैठी। सारी रात माँ ने बाहर ही बिताई, कमरे में नहीं गई। दिन में भी बाहर ही पड़ी रही। अब जाकर उठी। मैंने मुँह धुलाकर कपड़े बदलवा दिये। भोग तैयार था। माँ ने भोलानाथजी से खाने को कहा। माँ ने उस समय नहीं खाया। अन्त में नानाजी खाने बैठे, माँ भी उनके साथ खाने बैठी। नानाजी ने माँ को खिला दिया। सन्ध्या के बाद नानीजी खाने बैठी, फिर उनके साथ बैठकर भी माँ कुछ खा आई। उस समय भाव तेजी पर था। सुरेन्द्र बाबू (स्टेशन मास्टर) आदि सन्ध्या के बाद विदा लेने के लिये माँ के पास गये। माँ उस समय नानीजी के साथ खाकर मुँह धो रही थी। माँ ने कहा– ‘‘तुम लोग अभी क्यों जाते हो? थोड़ा और कीर्तन करो; पिताजी से थोड़ा कीर्तन करने को कहो।’’ यह सुनकर नानाजी को साथ लेकर सब कीर्तन करने बैठे। इधर खाने-पीने के बाद भोलानाथजी माँ से कहकर निरंजन बाबू के घर उनके अस्वस्थ लड़के को देखने चले गये। वहाँ से ज्योतिष दादा के मकान में जाकर उन्हें साथ ले हमारे टिकाटूली के मकान में भी गये थे।

ढाका त्याग का उपक्रम

इधर सब लोग कीर्तन में बैठे थे। माँ को किसी ने पान खिला दिया। माँ पान मुँह में रखते ही आश्रम के भीतर चारों ओर चहारदीवारी के किनारे-किनारे घूमने लगी एवं बीच-बीच में दीवार छूती जाती थी। मैं साथ-साथ

थी। यह देखकर कैसा सन्देह हुआ। स्मरण हुआ कि शाहबाग से माँ जिस समय अन्तिम बार बाहर निकली थी, उस समय भी इसी तरह उन्होंने चहारदीवारी का स्पर्श किया था। किन्तु कुछ कहने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि माँ के मुँह के भाव में विचित्र परिवर्तन हो रहा था। माँ की किसी भावावस्था में सभी लोग पास बैठकर आदर कर सकते हैं, कितनी ही बातें कह सकते हैं। जिसके मन में जो आता है वही कहने का साहस करते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसी भावावस्था देखने में आती है कि किसी को बातें करने का साहस नहीं होता। हम लोग जो सदा समीप में रहते हैं, हमें भी बोलने का साहस नहीं होता। पर उग्र भाव कुछ भी नहीं रहता, कैसा एक विलक्षण भाव दीख पड़ता। जिन्होंने देखा है वे जान जायेंगे, मैं उसे भाषा द्वारा प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकी।

श्री श्री माँ के मुँह से स्वत: विनिर्गत स्तोत्रादि

उस दिन भी उस भाव को देखकर सब चुप थे। माँ कीर्तन के बीच में जा बैठी। नानाजी के साथ-साथ थोड़ी देर कीर्तन किया। थोड़ी देर बाद ही माँ के श्रीमुख से स्पष्ट रूप में स्तोत्र आदि अपने आप बाहर निकलने लगे। बहुत दिन पहले से पिताजी इस प्रकार की भावावस्था में स्वत: विनि:सृत स्तोत्र आदि लिखना चाहते थे। किन्तु श्री श्री माँ ने कहा था- "चेष्टा करने पर भी लिख न सकोगे।" उस दिन पिताजी पास ही बैठे थे। माँ ने थोड़ी देर बाद ही कहा- "लिख सको तो लिख लो।" उसी समय पिताजी और केदार मास्टर आदि तीन-चार व्यक्ति लिखने बैठे। किन्तु अपूर्ण, बीच-बीच में छोड़कर थोड़ा बहुत लिख पाये।*

सहसा ढाका-त्याग का संकल्प

इस बार के उत्सव में सबके अनुरोध से कीर्तन करने के लिये मैंने

---

* एहि भावनायं भायम्
एहि यं सं तानि तायम्
वां क्लीं आं हे
भां हां हीं हौं हम्
हिं वं लं यं सं त्वम्
तादरौ भाग सं. वं लं हे
भावमयं भवभयहरणं हे।
यस्मिंस्त्वहं भाग पौं हम्।
यस्तारणं तत्र द्वयरूपम्।
मया हि सर्वाणि स्वरूपमयानि।
मया हि सर्व्व:।
मया हि सर्वशरणं हे।

एक हारमोनियम खरीद दिया था। माँ ने योगेश दादा से उस हारमोनियम में स्तोत्रों को भली–भाँति भरने को कहा। कुछ देर बाद स्तोत्र बन्द हुये। माँ बोली– ‘‘प्रतिदिन कीर्तन के पहले, जो यह स्तोत्र लिखा गया है इसी का हारमोनियम द्वारा स्वरों के सहयोग से गान करके तद्नन्तर कीर्तन करना।’’ माँ ने आगे कहा– ‘‘इस हारमोनियम से कीर्तन के सिवा और कोई व्यर्थ का गाना न हो सकेगा।’’ यह कहकर उठ खड़ी हुई और कीर्तन के साथ–ही–साथ घूमने लगी। घूमते–घूमते अकस्मात् खड़ी हो गई एवं बोल उठी– ‘‘तुम सब लोग मुझे छोड़ दो, मैं आज ही ढाका छोड़कर चली जाऊँगी।’’ यह मर्मघातिनी बात सुनकर सभी लोगों ने अत्यन्त दुःख से कहा– ‘‘माँ, माँ, सो कैसे होगा?’’ यह कहते ही माँ छोटे बच्चें की नाई रोते हुये बोली– ‘‘तुम लोग मेरे मार्ग में बाधा मत डालो, यदि तुम लोगों ने मुझे न छोड़ा तो मैं अभी शरीर त्याग करके ही चली जाऊँगी, मुझे जाना ही होगा।’’ फिर तो किसी के मुँह से बोली नहीं निकली, सभी के नेत्र अश्रुपूर्ण थे। माँ फिर बोली– ‘‘भोलानाथजी के आने पर तुम लोग उन्हें समझा देना ताकि मेरे मार्ग में बाधा उपस्थित न करें।’’ सभी राजी हो गये। माँ आगे और भी कहने लगी– ‘‘तुम सब लोग पहले भी थे, फिर आकर सब मिले और भी अनेक लोग आयेंगे।’’ आगे बोली– ‘‘कल इसी समय इस आश्रम में प्रवेश किया, 24 घंटे हुये, अभी मुझे बाहर जाना होगा।’’ पिताजी ने भोलानाथजी को खबर देनी चाही। माँ बोली– ‘‘कोई आवश्यकता नहीं है।’’ फिर जिज्ञासा की गई कि साथ में कौन जायेगा? माँ ने कहा– ‘‘मेरे

देव भक्तमयं मम हे
स त्वं हि हं यं वं वायं कम्
भावभक्ति....भावमयं हे
महात्मायं भवभयं हर हे
दैवतं मयं मे सं तं ह्रीं
मत्तत्व भवोहयम्
यस्तानि त्वं तारणमयम्
भवभयनाशं भावय हे
स्वभावशरणागतं प्रणवजासनम्
भवानीभवं भवभयनाशनं हे
हर शरणागतं.....तायम्
विभावतः ममायनं हे

दास नित्यं.... प्रणवश्रुतकारणम्।
महामाया महाभावमयमय हे।
मम भो भक्तौ तरणं मा।
मम सर्वमयं हे।
यस्या रुद्ररुद्रत्वम्।
प्रणवे रां क्रूं कृतकारणम्।
रुद्रं नौमि।
ग्रां वां हां सां।
आं हीं अम्।
भावमयं हे.....।
संसृष्टे केशवः।

साथ किसी के भी जाने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी तुम लोगों के लिये पिताजी को साथ ले जा सकती हूँ।'' यह कहने पर नानाजी से पूछा गया, वे उसी समय तैयार हो गये।

नानाजी के साथ ढाका–त्याग

माँ केवल शरीर में पहने एक वस्त्र से बाहर निकलकर मैदान में जा बैठी। सब माँ को घेरकर बैठे। माँ ने पूछा– ''गाड़ी कब मिलेगी?'' एक व्यक्ति ने कहा–''12 बजे जायेगी।'' माँ ने कहा– ''उसी में तुम लोग मुझे बैठा दो, देखना गाड़ी फेल न हो जाय।'' इधर पिताजी ने ज्योतिष दादा को खबर दे दी। भोलानाथजी भी वहीं थे, वे दोनों उसी समय आ पहुँचे। भोलानाथजी आश्रम के अन्दर गये। माँ ने कहा– ''ठीक समय तो बाहर जाना ही है, इस समय भीतर हो आती हूँ।'' यह कहकर भोलानाथजी के समीप जाकर माँ ने जाने की अनुमति माँगी। भोलानाथजी के जरा असन्तोष व्यक्त करने पर माँ ने कहा– ''तुम यदि रुकावट डालोगे तो यहीं तुम्हारे चरणों में यह शरीर छूट जायेगा।'' इस बात पर भोलानाथजी बाधा उपस्थित न कर सके। उदास भाव से ही बोले– ''जाओ, मैं मना नहीं करता।'' माँ तुरन्त बोली– ''यह मेरे लिये आदेश हुआ है।'' यह कहकर बाहर चली गई। भोलानाथजी ने कहा, ''मेरे साथ न रहने से लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे।'' माँ ने तुरन्त कहा– ''लोग निन्दा करें ऐसा कोई काम ही मैं नहीं करूँगी। पिताजी साथ जा रहे हैं, फिर भी कोई निन्दा करेगा क्या?'' यह कहकर माँ ने जिज्ञासु भाव से सबके मुँह की ओर देखा। सभी ने कहा– ''नहीं माँ, क्यों निन्दा करेंगे?'' माँ ने फिर कुछ नहीं कहा।

स्टेशन में श्री श्री माँ–सीतानाथ का माँ के साथ गमन

जाने का समय हो आया। एक मोटर आई थी, किन्तु माँ मोटर से जाने के लिये राजी नहीं हुई। सबको साथ लेकर पैदल ही स्टेशन को रवाना हुई। बहुत लोग प्रकाश लेकर साथ-साथ चले। सीतानाथ ने भी जाना चाहा, माँ ने उसे भी साथ ले लिया। ज्योतिष दादा आकर एक ओर ही खड़े रहे, माँ के पास नहीं गये। हम लोग माँ को लेकर स्टेशन चले गये। थोड़ी देर बाद ही ज्योतिष दादा को तथा दो-एक अन्य लोगों को साथ लेकर भोलानाथजी स्टेशन आ पहुँचे। माँ एक पेड़ के नीचे बैठ गई, भक्त

लोग घेरकर बैठे। सभी लोग दुःखी थे। बहुतेरे मुझे कष्ट होगा यह सोचकर कह रहे थे– ''माँ, दीदी को साथ ले जाओ।'' माँ राजी नहीं हुई। वहीं पर सभी की जेब टटोलकर जो कुछ मिला, उन्हीं रुपयों से टिकट खरीद दिया गया। माँ ने कहा– ''मैं पहले मैमनसिंह कालीपद बाबू के (भोलानाथजी के भतीजे के) मकान में जाऊँगी। आशु कहाँ है यह भी पूछा। आशु उस समय ढाका न था। मैदान में बैठकर माँ कह रही थी– ''बहुत दिनों से इस तरह बाहर जाने का एक खयाल हो रहा था। किन्तु भोलानाथजी के राजी न होने से उसकी पूर्ति नहीं हो रही थी। मगर जो भाव होता है उसमें बाधा डालने पर (मैं आदेश का पालन कर जाती हूँ) शरीर न जाने कैसा हो जाता है। इसलिये इस भाव में रुकावट पड़ने से अक्सर न जाने कैसा पस्त पड़ जाता है, बहुत प्रयत्न करने पर भी शीघ्र ठीक नहीं होता। तुम लोग जो कहते हो, किये जाती हूँ, शरीर की चाहे जो भी दशा हो।''

ज्योतिष दादा का माँ के साथ गमन

स्टेशन पर कुछ देर बैठने के बाद गाड़ी आई। भोलानाथजी और ज्योतिष दादा माँ के निकट न थे। गाड़ी आने पर माँ गाड़ी में जा बैठी। उस समय देखने में आया कि ज्योतिष दादा भी गाड़ी में जा बैठे। माँ के कारण पूछने पर बोले– ''पिताजी ने मुझसे साथ जाने को कहा है, मैं साथ जाऊँगा।'' यह बात और किसी ने नहीं सुनी। माँ आगे कुछ नहीं बोली। गाड़ी छूटने के बाद भोलानाथजी क्रोध और दुःख से झुँझलाये, मगर गाड़ी छूटने तक चुपचाप दूर खड़े रहे। ज्यों ही माँ का काम ठीक हो गया, वे अधीर हो उठे। हम कई लोग भोलानाथजी को साथ लेकर आश्रम में चले गये। अन्यान्य सब लोग अपने-अपने घरों को गये।

आदिनाथ-यात्रा

दूसरे दिन भोर में तड़के ही पिताजी माँ के लिये दो-एक कम्बल और कपड़े लेकर मैमनसिंह चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि माँ भी रवाना हो रही हैं। पिताजी कम्बल देकर उसी दिन सन्ध्या को ढाका लौट आये क्योंकि माँ ने अपने साथ जाने का निषेध किया था। माँ आदिनाथ (चटगाँव) जा रही थी। मैमनसिंह में भी आशु अपने भाई कालीपद बाबू के मकान में

नहीं मिला। आशु नारायणगंज था। माँ के चले जाने के बाद ढाका आया। पिताजी के आने के पहले ही श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी माँ की खोज में अकेले ही निकल पड़े। वे उत्सव में सम्मिलित होने के लिये काशी से ढाका आये थे। ज्योतिष दादा, सीतानाथ और नानाजी माँ को लेकर काक्स बाजार होते हुये आदिनाथ पहाड़ पर गये। पाँच-सात दिनों में ही ज्योतिष दादा माँ को आदिनाथ छोड़कर लौट आये, क्योंकि उनकी नौकरी थी।

भोलानाथजी का आदिनाथ जाना और माँ को साथ लेकर चन्द्रनाथ होते हुये कलकत्ता लौटना

भोलानाथजी, ज्योतिष दादा से माँ आदिनाथ हैं, यह खबर पाते ही आशु को साथ लेकर वहाँ के लिये रवाना हो गये। इधर कुंज बाबू ने ढूँढते-ढूँढ़ते माँ को खोज लिया। भोलानाथजी कई दिन आदिनाथ रहकर माँ को तथा संगी-साथी सब लोगों को साथ लेकर चटगाँव होते हुये चन्द्रनाथ आये। वहाँ माँ के पुराने भक्त शशि बाबू ने चटगाँव से साथ आकर चन्द्रनाथ के दर्शन कराये। चन्द्रनाथ के दर्शन कर माँ और संगी-साथी सभी को साथ लेकर कलकत्ता चले गये।

श्री श्री माँ की हरिद्वार-यात्रा और देहरादून में सहस्त्र-धारा दर्शन

कलकत्ता आकर सलकिया की बुआजी के यहाँ भी जाकर फिर भोलानथजी को न जाने क्या समझाकर उन्हें उसी मकान में छोड़कर माँ आशु को और नानाजी को साथ लेकर हरिद्वार चली गई। सीतानाथ को भोलानाथजी के पास रख गई। कुंज बाबू से भी माँ ने वहीं रहने को कहा था। किन्तु वे काशी तक जा रहा हूँ, कहकर साथ हो लिये, पर वे काशी उतरे नहीं, माँ के साथ सीधे हरिद्वार ही चले गये। वहाँ से माँ देहरादून जाकर सहस्रधारा देखकर फिर हरिद्वार लौट आई।

अयोध्या गमन और हरिद्वार प्रत्यावर्तन

एक दिन नानाजी और कुंज बाबू को जताये बिना ही माँ आशु को साथ लेकर गंगा के किनारे घूमने गई। सहसा संकल्प उठने के कारण डेरे से दो कम्बल आशु के द्वारा मँगाकर माँ गंगाजी के किनारे से ही सीधे स्टेशन चली गई। नानाजी को खबर तक नहीं लगी। माँ आशु को साथ

लेकर अयोध्या आई। वहाँ के टिकट मास्टर के साथ परिचय हुआ। वे ही माँ को अपने मकान में ले गये। दो-एक दिन वहाँ रहकर फिर हरिद्वार आकर इस बार भोलागिरी के आश्रम में ठहरी। आशु कभी भी मार्ग में विशेष चलना-फिरना करता नहीं। मालूम पड़ता है, माँ को अनुभव हुआ कि उसे साथ लेकर अकेले बाहर निकलना सुविधापूर्ण नहीं है। भोलागिरि की धर्मशाला में उस समय **श्रीयुत् पं. गोपीनाथ कविराजजी** और काशी के अन्यान्य कई लोग ठहरे थे। वे माँ को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। कविराजजी ने जाकर नानाजी को खबर दी। उस समय वे माँ के समीप आकर उपस्थित हुये। माँ हँसने लगी, इन कुछ दिनों तक नानाजी अत्यन्त ही चिन्तित रहे। इस बीच में कुंज बाबू को पेट की बीमारी हो गई।

हरिद्वार-त्याग, काशी और विन्ध्याचल गमन

माँ कुंज बाबू को हरिद्वार छोड़कर आशु को और नानाजी को साथ लेकर काशी, बच्चू (निर्मल बाबू के पुत्र) आदि के मकान में आ गई। इधर हरिद्वार से कुंज बाबू ने काशी अपने पुत्रों के पास अपनी अस्वस्थता का समाचार टेलीग्राम से दिया। उस टेलीग्राम को पाकर जितेन्द्र दादा (ज्येष्ठ पुत्र) एवं बच्चू की माँ (कुंज बाबू की भतीजी) उन्हें काशी लाने के लिये, माँ के काशी पहुँचने से पहले ही रवाना हो गई। काशी पहुँचकर नानाजी को ज्वर हो आया। माँ उन्हें उसी मकान में रखकर आशु को साथ लेकर रवाना हुई। साथ में कुंज बाबू का चौथा पुत्र ननी तथा काशी का एक और बालक भक्त माणिक* ये दो व्यक्ति साथ चले। माँ के साथ केवल तीन व्यक्ति थे, सभी लड़के थे। कहाँ जायेंगी, कोई निश्चय नहीं। मुगलसराय स्टेशन पर जाकर ननी ने कहा- "माँ, चलो विन्ध्याचल।" माँ भी वहीं चली। उस समय बहुधा देखा जाता है कि यदि कोई कहता तो माँ उसी समय उसे कर डालती। कभी-कभी तो कोई भी माँ को टस-से-मस नहीं कर सकता और कभी-कभी मानो बच्चे की तरह सभी के

---

* इसकी माँ भी श्री श्री माँ की बड़ी भक्त थी। जिस समय माँ के समीप खूब भीड़ रहती उस समय उठ जाने पर फिर शायद बैठने के लिए जगह न मिले इस भय से वे कई दिन उपवास रहकर भी माँ के समीप बैठे-बैठे केवल माँ के दर्शन करती। सं. 1992 में इनकी मृत्यु के पूर्व ही माँ एकाएक काशी जा पहुँची। माँ के दर्शन कर दूसरे ही दिन प्रातःकाल माणिक की माँ मर गईं। माणिक अवसर पाते ही माँ के दर्शन करने जाता।

कथनानुसार चलती, ये सब भाव देखे जाते। उस दिन ननी के कहने पर ही सहमत होकर माँ विन्ध्याचल गई। विन्ध्याचल आश्रम में जाकर ठहरी।*

विन्ध्याचल से पुन: काशी आगमन

इधर जितेन्द्र दादा और बच्चू की माँ के कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी को लेकर काशी पहुँचने पर उन्हें खबर मिली कि माँ काशी आकर चली गई हैं। इससे उन्हें अत्यन्त दु:ख हुआ। उन्होंने समाचार पाकर अथवा अनुमान लगाकर उसी दिन विन्ध्याचल जाकर माँ के दर्शन किये। माँ से काशी चलने का अनुरोध करने पर माँ राजी हो गई। उनके साथ ही फिर काशी आकर बच्चू आदि के घर में ही ठहरी।

चाँदपुर में भोलानाथजी की अस्वस्थता– माँ का कलकत्ता गमन

उधर भोलानाथजी कलकत्ता, कसवा तथा वहाँ से अन्यान्य कई पीठ-स्थानों के दर्शन कर चाँदपुर में अपने भानजे डा. श्रीयुत् गिरिजा कुशारीजी के घर गये। नाना स्थानों में घूमने के कारण वे अस्वस्थ हो गए। समाचार पाकर माँ ने आशु को काशी से ही वहाँ भेज दिया। इधर नानाजी को भी ज्वर आ गया। एक दिन रात्रि में निर्मल बाबू के घर में ही माँ के निकट कीर्तन हुआ। कीर्तन हो चुका था। सब लोग विदा हो रहे थे। एक व्यक्ति ने कहा– ''माँ जिस समय भी जाओ, हमें सूचना मिल जाय।'' माँ बोल उठी– ''मैं अभी जाऊँगी।'' मकान के सब लोगों के एवं नानाजी के आपत्ति करते ही माँ रोने लगी, नानाजी से बोली– ''आप मुझे जाने की अनुमति प्रदान करें।'' माँ की अवस्था देखकर उन्होंने मारे भय के अनुमति दे दी। माँ स्वस्थ हो बैठी। साथ कौन जायेगा यह प्रश्न उठा। जितेन्द्र दादा का साथ जाना स्थिर हुआ। उसी समय जो गाड़ी मिली उसी से माँ कलकत्ते के लिये रवाना हुई। वहाँ पहुँचकर गिरीन्द्र डॉक्टर महाशय के घर ठहरी। गिरीन्द्र बाबू, जितेन्द्र दादा के घनिष्ठ मित्र हैं। वे जितेन्द्र दादा के साथ बहुत पहले श्रीयुता प्यारीबानू बेगम के थियेटर रोड़ के मकान में जाकर कीर्तन में माँ के दर्शन कर आये थे। वे भी माँ के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भक्ति रखते हैं।

---

* पिताजी और श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी ने ही इस आश्रम को बनवाया था। कुछ दिन पहले माँ और भोलानाथजी को विन्ध्याचल बुलाकर वे इस आश्रम की प्रतिष्ठा कर गये थे।

नवाँ अध्याय

नवद्वीप गमन और पुनः कलकत्ता आगमन

माँ पहले एक बार नवद्वीप जाकर एक मौनी साधु को देख आई थी। साधु के चेले उनके कमरे में घुसने नहीं देते थे, दूर से ही देखना पड़ता था। साधु खूब स्थिरतापूर्वक आसन जमाकर बैठे थे। भोलानाथ, चारु बाबू आदि बहुतों को विश्वास था कि वह मनुष्य मूर्ति ही नहीं है। कृष्णनगर की एक प्रतिमा है, ये रुपये कमाने के लिये उसे मनुष्य कह रहे हैं। बातचीत के सिलसिले में गिरीन्द्र बाबू के घर पर उस साधु की चर्चा चली। माँ के यह कहने पर कि पुनः उसको देखने जाऊँगी, गिरीन्द्र दादा की एक विधवा भाभी, गिरीन्द्र दादा तथा जितेन्द्र दादा माँ को लेकर नवद्वीप गये। माँ वहाँ उस मौनी साधु के आश्रम में ही जा ठहरी एवं कुछ दिन वहाँ रहने की इच्छा प्रकट करने पर गिरिन्द्र दादा अपनी भाभी को माँ के पास छोड़कर जितेन्द्र दादा के साथ कलकत्ता चले आये। माँ उस समय दिन भर में 2–3 रोटियाँ और थोड़ा-सा पका हुआ शाक खाती थी। गिरिन्द्र दादा की भाभी ही रसोई बनाकर माँ को खिला देती एवं स्वयं भी खाती थी। माँ के निकट कोई भी रहस्य छिपा नहीं रह सकता था। साधु का सम्पूर्ण रहस्य जानकर माँ नवद्वीप से फिर कलकत्ता चली आई। गिरीन्द्र दादा ही जाकर माँ को ले आये। उस साधु के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन का विवरण अन्यत्र दिया गया है।

'आखूना' में गिरीन्द्र बाबू के मकान में एकान्तवास

माँ के 'मैं एकान्त में रहूँगी' कहने पर गिरीन्द्र दादा माँ को तथा अपने सारे परिवार को लेकर अपने गाँव आखूना के मकान में चले गये। वहाँ माँ अपनी इच्छानुसार रहती थी। माँ ने जिस प्रकार रहना चाहा उन्होंने उसी तरह माँ के रहने की व्यवस्था कर दी। माँ एकान्त में पड़ी रहती थी। किसी को भी वहाँ जाने नहीं दिया जाता था। गिरीन्द्र दादा ने किसी को भी माँ का समाचार नहीं दिया, क्योंकि खबर पाने पर लोगों की भीड़ लगने का भय था। विशेषतः माँ की इसी तरह रहने की इच्छा थी।

कलकत्ते में श्री श्री माँ और भोलानाथजी

कुछ दिन इस तरह रहने के बाद गिरीन्द्र दादा को मालुम हुआ कि भोलानाथजी अत्यन्त अस्वस्थ हैं। उन्होंने माँ को यह समाचार दिया और उनको साथ लेकर कलकत्ता आये। ज्योतिष दादा भी उस समय सरकारी काम से कलकत्ता ही थे। उन्हें और सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय आदि भक्तों को माँ की खबर मिली। ज्योतिष दादा अपने बान्धव ज्ञानसेनजी के मकान में माँ को ले गये। कमलाकान्त को ढाका से बुलाया गया। उधर सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी ने भोलानाथजी को माँ के कलकत्ता पहुँचने की खबर टेलीग्राम से दे दी। कई दिनों से उन्हें माँ की खबर ही नहीं मिली थी। टेलीग्राम पाते ही भोलानाथजी कलकत्ता आये। ज्ञानसेनजी के मकान में उनकी भेंट होने के बाद वे सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में चले आये। भोलानाथजी बहुत नाराज हुये। माँ कलकत्ते ही रही।

नानाजी की पुरी यात्रा

इस बीच में श्रद्धेय **श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज जी** अपने गुरुदेव **श्रीमद् विशुद्धानन्द स्वामी जी** को साथ लेकर पुरी जा रहे थे। साथ में नानाजी भी जा रहे थे। कलकत्ते में गोपी बाबू ने माँ के साथ भेंट की। अपने गुरुदेव के साथ माँ की मुलाकात कराने की उनकी इच्छा थी। किन्तु घटनाचक्र से उस समय मुलाकात नहीं हो सकी। बहुत दिनों के बाद एक बार काशी में कविराजजी माँ को विशुद्धानन्द स्वामीजी के समीप ले गये थे। उन्होंने माँ को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की थी।

सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी की माता और स्त्री के हाथ से– श्री श्री माँ का भोग–ग्रहण

भोलानाथजी के साथ भेंट होने के बाद माँ प्रायः मौन ही रहती थी। ज्योतिष दादा कुछ दिनों के बाद ढाका लौट गये। सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी की वृद्धा माता, माँ को बहुत अधिक प्यार करती थी। उन्हें माँ को बड़े जतन से खिलाने में बड़ा आनन्द आता था। माँ लगभग दो वर्षों से दूध से बना कोई भी पदार्थ नहीं खाती थी। यहाँ तक कि घी से कुछ बनाया जाता तो उसे भी नहीं खाती थी। भात, मछली, तरकारी माँ कभी भी

अधिक नहीं खाती थी। इसलिये माँ को कुछ न खिला सकने के कारण वृद्धा का मन अत्यन्त ही दुःखी रहता था। इस बार माँ उनके घर में ही गई। निस्तारिणी व्रत के उपलक्ष्य में वृद्धा ने विविध पदार्थों से पूजा की व्यवस्था कर रखी थी। उनके मन में न जाने कैसा भाव हुआ, वे बोली– ''माँ ही जब स्वयं उपस्थित हैं तब फिर पूजा क्या करूँ? माँ के खा लेने से ही सब हो जायेगा।'' यह कहकर पूजा का नैवेद्य और अन्यान्य सब पदार्थ लाकर उन्होंने माँ के सामने रख दिये और माँ को खिलाने बैठी। माँ ने उस दिन वृद्धा के हाथ से सब कुछ भली-भाँति खाया। तदुपरान्त बोली– ''मैं दूध के पदार्थ नहीं खाती हूँ, इसका तुम्हें दुःख है न? आज तुम्हारी जो इच्छा हो, खिला दो।'' वृद्धा ने बड़े आनन्द से दही इत्यादि भी थोड़ा-थोड़ा खिला दिया। लगभग दो वर्ष के बाद माँ ने दूध के पदार्थ खाये। उसके पश्चात् माँ उठकर रसोईघर में गई। वहाँ सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी की स्त्री मछली इत्यादि न जाने क्या बना रही थी। माँ वहीं पर बैठकर उनके हाथ से भी खा आई। सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये।

भोलानाथजी के साथ श्री श्री माँ का चाँदपुर गमन

सभी को आनन्दित कर माँ भोलानाथजी और कमलाकान्त के साथ चाँदपुर को रवाना हो गई। समाचार पाकर पिताजी, निशि बाबू और ज्योतिष दादा माँ और भोलानाथजी को लेने के लिये चाँदपुर गये। दो-एक दिन रहकर ज्योतिष दादा, उसके अनन्तर पिताजी ढाका चले आये। निशि बाबू को वहाँ छोड़ आये। कुछ दिनों के बाद निशि बाबू, माँ और भोलानाथजी को साथ लेकर लौट आये। वे ढाका के सिद्धेश्वरी आश्रम में ठहरे। ढाका छोड़ने के लगभग ढाई महीने बाद चाँदपुर से माँ फिर ढाका लौटी। मैं इन ढाई महीनों में माँ के पूर्व आदेश के अनुसार मौन रही। आज माँ के दर्शन कर माँ के कथनानुसार मैंने बोलना आरम्भ किया। माँ मौन ही थी। कमलाकान्त चाँदपुर से ही अन्यत्र चला गया था।

माँ का ढाका वापस आना और सिद्धेश्वरी में निवास

भोलानाथजी की इच्छा के अनुसार केवल माँ और भोलानाथजी ही सिद्धेश्वरी में रहे। माँ भोलानाथजी की सहायता से रसोई बनवाती थी। उस समय भोलानाथजी की इच्छा के अनुसार उनकी सेवा आदि माँ ही कर रही

थी। हम लोग जाकर दर्शन कर चले आते थे। मटरी बुआ, नानीजी आदि सिद्धेश्वरी में अश्विनी बाबू के मकान में ही रहती थी। एक दिन माँ ने अत्यन्त धीमे स्वर में भोलानाथजी के साथ कुछ बातें की, मालूम होता था कि गले का शब्द मानो बन्द हो गया हो, मुखाकृति अत्यन्त मलिन थी। बातचीत के बाद मुझे बुलाकर कहा कि कल पिताजी और तुम उपवास करना, सन्ध्या के उपरान्त काम है। दूसरे दिन हमने उपवास रखा, माँ के पास गये। सन्ध्या के पश्चात् माँ के आदेश से भोलानाथजी, पिताजी, मैं, कुलदा दादा और योगेश दादा- इन पाँच जनों ने पाँच फलों की यज्ञकुण्ड में आहुति दी। रात्रि में हम लोग चले आये।

श्री श्री माँ को मांस की तरकारी देना एवं उसके सम्बन्ध में उनकी उक्ति

इसी समय की बात है, एक दिन नानीजी ने मांस पकाया था, कुछ माँ के भी मुँह में रखा। उसी दिन या उसके दूसरे दिन माँ भैरवी के कमरे के दरवाजे पर बैठी थी, एकाएक भयानक रूप से रो उठी। भोलानाथजी भी आश्रम से गये, हम लोग भी वहीं थे। माँ रोते-रोते कह रही थी- ''कल मुझे मांस खिला दिया। मांस में खून था, पेड़ के फल में भी खून है, दूध भी गऊ का एक प्रकार का रक्त है, सब रक्त है, मुझे यह सब कुछ मत खिलाओ।'' तभी से ये सब चीजें अनेक दिनों तक माँ ने नहीं खाई। धीरे-धीरे माँ का मौन टूट गया था।

ढाका सिद्धेश्वरी में भोलानाथजी की अस्वस्थता

(सं. 1986 आषाढ़ या श्रावण)

कुछ दिनों के बाद एक दिन रात्रि में भोलानाथजी के पेट में भीषण दर्द आरम्भ हुआ। संवत् 1986 आषाढ़ महीने का मध्य भाग हो या श्रावण का प्रथम भाग। सारी रात माँ ने भी जागकर जितनी बन सकी उतनी सेवा की। दूसरे दिन सबने जाकर यह अवस्था देखी। चिकित्सा आरम्भ हुई। दो-एक दिन के बाद ही भोलानाथजी को अश्विनी बाबू के मकान में ही एक कोठरी में ले जाया गया, क्योंकि सिद्धेश्वरी में जमीन पर रहना इस अवस्था में उचित न था। माँ भी वहीं जाकर रही। माँ सदा ही भोलानाथजी की चौकी पर अथवा चौकी के किनारे जमीन पर बैठी रहती थी। सेवा भी

जितनी हो सकती, करती थी। बोलती बहुत कम थी, प्राय: सदा ही मौन रहती थी। कुछ दिनों के बाद भोलानाथजी बहुत कुछ स्वस्थ हो गये। माँ भोलानाथजी की अनुमति लेकर कभी-कभी दोपहर के समय सिद्धेश्वरी के आश्रम में जाकर सोई रहती थी। फिर शाम के समय उठकर आ जाती थी।

सिद्धेश्वरी में भावावस्था में उठकर दरवाजा खोलने से गिर पड़ने के कारण श्री श्री माँ के सिर पर चोट आने से रक्तपात

इसी तरह एक दिन माँ सिद्धेश्वरी के आश्रम में दरवाजा बन्द कर सोई थी। कई स्त्रियाँ माँ के साथ भेंट करने गई। तदनन्तर वे भोलानाथजी के निकट पुन: जाते समय कह गई कि माँ, हम फिर आयेंगी, तुम दरवाजा खोल देना। माँ बोली- 'अच्छा', यह कहकर दरवाजा बन्द कर सो गई। उन्होंने लौट आकर दरवाजा खटखटाया, माँ ने उठकर दरवाजा खोल दिया एवं तुरन्त लेट गई। यह जो उठकर माँ ने दरवाजा खोल दिया, इस बात पर माँ कहती हैं, ''किस तरह हुआ जानती हो? मैंने वचन दिया था, आने पर दरवाजा खोल दूँगी, उनके दरवाजा खटखटाते ही शरीर उठकर सिटकिनी खोलकर फिर जिस तरह पहले सोया था उसी तरह सोया रहा। यह जो उठकर जाना हुआ वह ऐसा हुआ मानो हवा कागज को उड़ा ले गई। खोलते ही (वादे की पूर्ति होते ही) उत्थितावस्था से ही शरीर गिर पड़ा।'' जिस भाव में पहले सोई थी वही भाव चल रहा था, इसलिये सिर पर जो चोट आ गई उसका खयाल ही नहीं हुआ। उधर जिन्होंने दरवाजा खटखटाया था, उन्हें सिटकिनी खोलने का शब्द सुनाई दिया एवं उसके बाद ही गिर पड़ने की आवाज सुनाई दी किन्तु किवाड़ बन्द थे, इसलिये थोड़ी देर तक उन्हें खोलने का साहस नहीं हुआ। तदनन्तर खोलकर देखा कि माँ के सिरहाने की ओर जमीन रक्त से भर गई है एवं बूँद-बूँद रक्त गिरने से केश अप्रतिभ हुये जा रहे हैं। उस समय वे मारे भय के माँ को पुकारने लगी। सो जाने के बाद जैसे ही माँ उठ बैठती हैं वैसे ही स्वाभाविक रूप से ही माँ उठ बैठी और बातें करने लगी। इधर उस समय और भी कतिपय लोगों के आ जाने के कारण माँ के श्रीमुख की वाणी सुनकर सभी मुग्ध होकर बातें सुनते रहे, सिर के रक्त की बात की ओर किसी का खयाल ही नहीं गया। बहुत देर बाद सभी उठकर फिर अश्विनी बाबू के मकान में

भोलानाथजी के समीप गये। थोड़ी देर बाद मैंने जाकर सिर पर हाथ रखते ही देखा कि रक्त से सब बाल भीग गये हैं। उस समय मेरे व्यग्र हो उठते ही सबका खयाल हुआ। बाल काटकर देखा गया, बहुत बड़ा घाव हो गया था। माँ ने भी उस समय हँसते-हँसते कहा- ''यही तो मेरा खयाल ही नहीं हुआ।'' जल डालते-डालते बहुत देर बाद रुधिर बन्द हुआ। बाल भी कुछ काट देने पड़े। माँ चुपचाप बैठी ही रही। बहुत दिनों में वह घाव भरा था।

भोलानाथजी को आरोग्य लाभ और सुरेन्द्र मुखोपाध्याय की वृद्धा माता की बात

क्रमशः भोलानाथजी ने अन्न-पथ्य लिया। उसी मकान में थे। उस समय एक दिन कलकत्ते से खबर आई कि सुरेन्द्र मुखोपाध्यायजी की माता और स्त्री दोनों का अकस्मात् देहान्त हो गया है। उस समय मेरे मस्तिष्क में यह विचार आया कि मालुम होता है कि इसीलिये माँ इस बार कलकत्ते से आते समय उनके हाथ से दूध इत्यादि सब खाकर उन्हें आनन्दित कर आई। इस वृद्धा को माँ कुम्भ के मेले में अपने साथ हरिद्वार ले गई थी। बहुत तीर्थों में घुमा लाई थी। वृद्धा उसके अलावा कभी भी तीर्थादि में विशेषतः गई न थी। माँ की कृपा से उन्हें अनेक तीर्थ-स्थानों के दर्शन प्राप्त हुये थे।

श्री श्री माँ की अस्वस्थता (सं. 1986 श्रावण) तथा उसी अवस्था में सिद्धेश्वरी में गमनागमन

कुछ दिनों के भीतर ही माँ को थोड़ा-थोड़ा ज्वर आने लगा (सम्भवतः वह 1986 वि. के श्रावण महीने में आने लगा था)। माँ का तो उस ओर कभी कुछ खयाल ही नहीं था। अस्वस्थता के अवसर पर भात खिला दे रहे थे। वही खा रही थी। किसी कारण से हम उस समय वहाँ विशेष नहीं रहते थे। दिन में एक बार जाकर कुछ देर वहाँ रहकर चले आते थे। एक दिन ज्वर अधिक प्रतीत होने पर अश्विनी बाबू की छोटी लड़की (छाना) ने जबरदस्ती माँ को थर्मामीटर लगाकर देखा। ज्वर बहुत अधिक चढ़ा था। उस दिन भी माँ ने भात ही खाया था। इस प्रकार की अवस्था में भी रोज प्रायः दोपहर को सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर सोई रहती। उस दिन भी माँ वहाँ गई, फिर शाम को लौट आई।

अस्वस्थावस्था में श्री श्री माँ का सिद्धेश्वरी में निवास

दूसरे दिन जल्दी-जल्दी खा-पीकर सिद्धेश्वरी आश्रम में चली गई। भोलानाथजी से कह गई, ''अभी खा लेती हूँ, इसके बाद शायद न खा सकूँ।'' इस कथन का तात्पर्य किसी ने नहीं समझा। दोपहर को आश्रम में जाकर सोई रही। उस समय मैं और पिताजी आश्रम में गये। जाकर देखा, साधारण-सा कुछ बिछाकर माँ जमीन पर सोई हैं। शरीर पर हाथ रखकर देखा तो शरीर ज्वर के ताप से ऐसा लगा मानो अग्नि हो। माँ ने हम लोगों के साथ स्वाभाविक रूप से ही कुछ बातें की। और भी 2-4 लोग आये। माँ के दर्शन कर चले गये। माँ के ज्वर का समाचार पाकर नानीजी आदि सभी आ पहुँची। कुछ देर बाद माँ को कै हुई। कमरे में उस समय मेरे सिवा और कोई नहीं था। क्योंकि माँ ने सबसे जरा हट जाने को कहकर कै की। एक बहुत बड़ा कीड़ा निकला। माँ ने मुझसे कहा- ''फेंक आ। किसी से कुछ न कहना।'' तदनन्तर सभी कमरे में आये। कुछ देर बाद सन्ध्या से पहले माँ ने पेशाब करना चाहा। मैं पकड़कर बाहर ले गई, किन्तु उठकर लौटते समय माँ फिर न आ सकी, एकाएक सारा शरीर छोड़ दिया। एकदम सारा शरीर पस्त पड़ गया। उस समय और भी 2-4 व्यक्ति आये थे। उनकी सहायता से मैंने माँ को कमरे में लाकर सुला दिया। ज्वर भी खूब तेज था, उस पर इस तरह सारे शरीर के पस्त पड़ जाने के कारण पिताजी आदि सभी अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो गए। समाचार पाकर भोलानाथजी भी आये। उन्होंने कहा- ''मैं भी इसी आश्रम में रहूँगा। माँ ने आश्रम छोड़कर अन्यत्र जाना नहीं चाहा। उन्हें दूसरी जगह ले जाना भी एक प्रकार से असम्भव ही था। किन्तु माँ का आनन्द मानो उमड़ पड़ा। भोलानाथजी ने माँ के समीप मेरे रहने की अनुमति ले ली थी, इस कारण मैं उसी दिन से माँ के समीप रह गई। पिताजी और योगेश दादा दोनों रात्रि में सिद्धेश्वरी आश्रम में ही रहे। किसी कारणवश उस समय ज्योतिष दादा को आश्रम आने का निषेध था। इसलिये वे आ न सके। उनका मकान टिकाटूली वाले मकान के अति निकट ही है। इसलिये पिताजी जब सवेरे मकान में जाते उसी समय उनके मुँह से ज्योतिष दादा को माँ का समाचार मिल जाता था एवं अन्यान्य बहुत से लोगों के मुँह से भी वे खबर लेते रहते थे।

उक्त अस्वस्थता और उसके अद्भुत लक्षणों का वृत्तान्त

इधर उस दिन सभी चले गये। माँ की अवस्था भयानक हो उठी। माँ का सिर से पैर तक सारा अंग एकदम काठ की तरह निश्चेष्ट हो गया। रात्रि को लगभग 10 बजे होंगे, वृष्टि हो रही थी, इसी बीच माँ ने कहा– ''मुझे बाहर ले चलो।'' मैं, पिताजी, योगेश दादा और भूपति दादा माँ को उठाकर बरामदे में ले गये। वृष्टि होते देखकर पिताजी ने भीतर कमरे में ले जाना चाहा। माँ हँसते-हँसते बोली– ''डॉक्टर हैं न, संस्कार जाना नहीं चाहता।'' माँ कमरे में नहीं गई। एक बार माँ ने कहा– ''मुझे उठाकर बैठाओ।'' फिर कहा– ''हाथ, पैर और शरीर इकट्ठा कर बेल के समान कर दो।'' फिर बोली– ''हाथ-पैर फैलाकर सुला दो।'' इस तरह माँ जब जैसा कह रही थी, हम वैसा ही करने लगे। वह 'आसन' कर रही थी या नहीं, यह कौन जाने? बहुत-सा समय इसी तरह कटा। तदुपरान्त माँ ने कहा, ''कमरे में ले चलो।'' हम कमरे में ले आये। उस समय शरीर ऐसा हो गया था कि उठाते-बैठाते यदि दो व्यक्ति भली-भाँति सिर और गर्दन न पकड़कर रखते तो अत्यन्त छोटे बच्चे का माथा जिस तरह सीधा नहीं रह सकता गर्दन मुड़कर सिर लटक पड़ता है ठीक वही अवस्था थी। सारा शरीर मानो अलग-अलग हो गया था, लक्-लक् करता था। इस अवस्था में निरन्तर दिन-रात उठाने, बैठाने, सुलाने को कह रही थी। निरन्तर ही शरीर का कुछ न कुछ परिवर्तन करने को कह रही थी। औषध कुछ भी नहीं ले रही थी। माँ से यदि कोई औषध खाने की बात कहता तो माँ कहती थी– ''मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, तो भी एक बार कुछ आरम्भ करने पर मेरा थोड़े में वह समाप्त नहीं होता, यह समझकर तुम लोग जो चाहो करो'', किन्तु हम लोगों को भी माँ को औषध खिलाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। दिन में पिताजी को भी योगेश दादा के कार्य के लिये चला जाना पड़ता। मैं और भोलानाथजी माँ के समीप रहते। नानीजी और बुआजी भी रसोई-वसोई समाप्त करके आती। माँ की अवस्था एक ही तार पर चल रही थी, कोई अन्तर नहीं हो रहा था। पैखाने में ले जाना बड़ी विपत्ति थी। माँ हँसते-हँसते कहती– 'मैदे के बोरे की तरह शरीर की अवस्था हुई है।'' वास्तव में ही 3-4 व्यक्तियों के पकड़ लेने पर भी शरीर का जो भाग भली-भाँति नहीं पकड़ा जाता, वही भाग गिर

पड़ता। शरीर मानो छोड़ दिया हो उस स्थिति में खूब प्रयत्न करने पर भी पूर्ण रूप से शरीर-रक्षा नहीं की जा सकती थी। यह देखकर हमें भीषण कष्ट होता था। कभी एक भाग का बचाव करने पर दूसरा भाग गिर पड़ता, इसी तरह होता रहता। परन्तु बातचीत खूब करती थी, आनन्द का भाव भी खूब था। शरीर के इस प्रकार पस्त पड़ जाने पर भी शरीर में स्पर्श-ज्ञान प्रचूर मात्रा में था। यहाँ तक कि पैर के नीचे या शरीर के अन्य किसी स्थान में एक चींटी के जाने पर भी माँ को मालुम हो जाता था। माँ की ऐसी अवस्था 4-5 दिन तक चली।

हमारे कातर निवेदन पर श्री श्री माँ का अपनी इच्छा से आरोग्यता की ओर अग्रसर होना

जब माँ शाहबाग रहती थी, तभी से प्रति शनिवार को रात भर कीर्तन होता था। पहले अस्त से उदय तक नाम-कीर्तन होता था। बाद में असुविधा होने के कारण उदय से अस्त तक नाम-कीर्तन होने लगा। एक दिन मैंने कहा- ''माँ अब स्वस्थ हो जाओ, हम तो तुम्हारे शरीर की रक्षा भी ठीक तरह से नहीं कर पा रहे हैं।'' उसी दिन रात्रि में माँ सोई थी, मैंने देखा माँ आँखें बन्द करके सोई हैं। माँ ने एकाएक धीरे-धीरे बायाँ हाथ उठाकर फिर नीचे कर लिया। 4-5 दिनों में यह माँ ने पहले-पहल अपने अंग का अपने से संचालन किया था। यह देखकर बहुत आनन्द हुआ। दूसरे दिन इसी आश्रम में बैठकर उदय से लेकर अस्त पर्यन्त का नाम-कीर्तन हुआ। केवल 2-4 व्यक्ति बैठे-बैठे नाम-कीर्तन कर रहे थे। सहसा माँ भावावस्था में अपने आप उठकर बरामदे में जा बैठी। फिर उठ न सकी। फिर हम लोग उठा-उठूकर कमरे में ले आये। इसके बाद ही शरीर की निश्चेष्टावस्था एकदम नहीं रही। किन्तु ज्वर खूब तेज चल रहा था। कई दिनों तक भूपति दादा ने और मैंने खूब थर्मामीटर लगाया। 106 डिग्री तक ज्वर चढ़ा रहता था। ज्वर को प्राय: एक ही प्रकार से चढ़ा देखकर कुछ दिनों के बाद माँ के कहने से या स्वयं ही विरक्त होकर हम लोगों ने थर्मामीटर लगाना छोड़ दिया। उसके बाद फिर थर्मामीटर नहीं लगाया।

श्री श्री माँ का अद्भुत् चिकित्सा का अवलम्बन

तदनन्तर एक दिन राजमोहन बाबू की स्त्री ने कोई औषधि जल में

पीसकर माथे पर लगाई। जल में पीसकर क्या लगाया गया है, माँ ने पूछकर यह जान लिया। तुरन्त बोली- ''जल डाला है तो भली-भाँति जल सिर पर डालो।'' यह सिर धोना शुरू हुआ। सिर के बाल तो हम लोगों ने कुछ काट ही दिये थे। पहले दिन लगभग 4-5 घड़ा जल उड़ेला गया। उसके दूसरे दिन 10 घड़ा, उसके अगले दिन 40-50 घड़ा जल सिर पर उड़ेला गया तो भी उड़ेलने को ही कह रही थी। बाद में 100-150 घड़ा जल डाला जाने लगा। थोड़ा दिन चढ़ते ही जल डालना शुरू होता, प्रायः दोपहर भर जल की धारा दी जाने लगी। जल मस्तक पर डालने से मानो माँ का एक तरह का विषम भाव दब गया। हमें ऐसा लगा कि एक दिन माथा धोकर हमने ही भूल की। अब तो सिर पर जल देना बन्द करना ही नहीं चाहती थी। साँझ तक जल उड़ेलना जारी रहता था। माँ जो कह रही थी, वही किया जा रहा था। 3-4 लड़के कालिदास, अमूल्य इत्यादि जल लाते-लाते हैरान हो पड़ते। एक दिन जल डालना बन्द कर पुराना घी और दूध मथकर सिर पर लगाया, उसी से जल डालना बन्द हो गया। अस्वस्थ शरीर! उस पर खूब आनन्द के साथ बातचीत करती थी। एक दिन भोलानाथजी ने सोचा, यह रोग लेकर इतना आनन्द कर रही हैं, ऐसी स्थिति में रोग दूर करने का भाव ही नहीं जागेगा। वे मन-ही-मन खूब जानते थे कि माँ यदि इच्छा करें तो स्वस्थ हो सकती हैं। इसीलिये उन्होंने एक दिन धमकाकर कहा, ''रुग्णावस्था को लेकर इतना आनन्द क्यों?'' उसके बाद से ही माँ ने चुप्पी साध ली। रुग्णावस्था में जिस तरह चुप रहना स्वाभाविक है, वैसे ही रहती थी।

श्री श्री माँ के भाव में रुकावट डालने से भोलानाथजी पर विपत्ति

कुछ दिनों के बाद भोलानाथजी ने एक बार माँ से कहा कि देखो, अब स्वस्थ हो उठो। अस्वस्थता को भगा दो। दो-तीन बार उन्होंने यह कहा। माँ कुछ देर चुप रहकर बोली- ''देखो, एक बार भाव में बाधा डालकर लौटा लाकर तुमने यह अवस्था की है, अब इस समय कुछ मत कहो। जो होने वाला है वह होगा ही।'' तब हमें मालुम हुआ कि माँ को लौटा लाकर इस तरह रखने से आज यह अवस्था सामने आई है। पहले लिखा जा चुका है कि भाव में बाधा उपस्थित करने पर माँ आदेश पालन करती हैं सही, किन्तु शरीर में एक भीषण परिवर्तन हो जाता है। हम

लोगों के कुछ बोलने अथवा कुछ करने का उपाय नहीं है। केवल वे जितनी सेवा करा ले रही हैं उतनी किये जा रहे हैं। (इस अस्वस्थता के बाद से प्रत्येक वर्ष लगभग तीन-चार वर्ष तक इसी समय माँ को ज्वर आ जाता था।) कुछ दिनों के बाद भोलानाथजी फिर अस्वस्थ हो गए - पेट में दर्द, ज्वर इत्यादि रहता। कुलदा दादा, मटरी बुआ आदि कई व्यक्ति उनकी सेवा करने लगे।

माँ के निकट रोग का आगमन दर्शनार्थी लोगों के तुल्य ही है

कुलदा दादा का भी ऑफिस था। दिन में प्राय: सभी चले जाते थे। रात्रि में पिताजी, योगेश दादा और कुलदा दादा रहते थे। कुछ दिनों के बाद नगेन्द्रदत्तजी तथा नृपेन्द्र डॉक्टर भी आश्रम में आकर रहने लगे। माँ को खून के दस्त और खून का पेशाब होने लगा। कई दिनों तक अस्वस्थता चली। स्वस्थ होने की बात कहने पर माँ कहती - ''तुम लोगों के आने पर तुम्हें निकाल नहीं देती हूँ। रोग भी आकर शरीर में खेल कर रहे हैं। इसलिये उन्हीं को क्यों निकाल बाहर करूँ? जितने दिन तक उन्हें खेल करना है उतने दिन खेल करके फिर अपने आप चले जायेंगे।'' यह कहकर हँस देती थी। रोगों ने शरीर में खूब जोर-शोर का खेल आरम्भ किया। कुछ दिनों के बाद रोगों के अन्यान्य लक्षण हट गये। ज्वर भी कम हो गया, किन्तु बिल्कुल निश्शेष नहीं हुआ।

मेरे और नन्दू के बचपन का वृत्तान्त

इस बीच में माँ ने मेरे सहोदर भाई नन्दू को एक बार आने के लिये लिखने को कहा। टेलीग्राम किया गया। नन्दू कलकत्ते से आया। माँ ने कहा- ''मैं भात खाऊँगी।'' मैंने भात पका दिया। जिस दिन माँ भात खाने वाली थी, उसी दिन नन्दू ढाका आ पहुँचा। क्यों माँ ने आने को कहा था, इसका मुझे पता न था। नन्दू के प्रति भी माँ का अगाध स्नेह था। हम लोगों को मातृ-स्नेह माँ के समीप प्रचूर मात्रा में प्राप्त हुआ है। मैं और नन्दू अपनी जननी के भी अनन्य अनुगामी थे। माँ के बिना हम लोगों का तनिक भी समय नहीं बीतता था। माता-पिता की सेवा ही हमारा बचपन से जीवन का लक्ष्य था। माता-पिता की सेवा करने की क्षमता सन्तान में है ही कितनी? फिर भी क्षमतानुसार करेंगे, इसी भाव को लेकर चलते।

हमारा रात-दिन माँ के साथ-ही-साथ कटता। पूजा, सन्ध्या तो विशेष कुछ थी नहीं। हमारी अवस्था देखकर, माँ के देहावसान के बाद अनेक लोग सोचते थे कि यह भी अधिक नहीं बचेगी। किन्तु श्री श्री माँ के चरण दर्शनों का सौभाग्य बदा था, इसलिये कुछ भी नहीं हुआ।

हमारे प्रति श्री श्री माँ की विशेष स्नेहसनी करुणा

जननी के देहान्त के एक या डेढ़ वर्ष के भीतर ही शाहबाग में श्री श्री माँ के चरण दर्शन पाकर मैं धन्य और कृतार्थ हुई। माँ ने एक बार हमारी जननी का फोटो देखकर नन्दू और मेरी ओर लक्ष्य कर कहा था, ''इस चित्र को देखकर मुझे प्रतीत होता है कि माँ कितना कष्ट झेलकर तुम दोनों जनों को मेरे लिये ही मनुष्य बनाकर रख गई हैं।'' माँ की इस स्नेह भरी उक्ति से हम दोनों पिघल जाते। न जाने कितना आनन्द हृदय में जाग उठता। इन सब बातों को लिखने का प्रधान उद्देश्य है माँ के स्नेह की स्मृति जगाकर रखना। मेरा विश्वास है कि इस स्मृति से मन का मैल जितना कटता है, बहुत पूजा, जप आदि से भी उतना नहीं कटता। इसलिये पवित्र स्नेह की यह स्मृति मेरे निकट बहुत ही मूल्यवान है। माँ की बातें लिखते-लिखते इसीलिये दो-एक जगह ये दो-एक स्नेह की बातें भी लिख डाली हैं। मेरे सरीखे सन्तान के प्रति भी श्री श्री माँ की कितनी कृपा है। इसका स्मरण करने पर नेत्र सजल हो उठते हैं। पूर्वजन्म की प्रचूर तपस्याओं से श्री श्री माँ के चरण दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। आज फिर स्वयं ही अस्वस्थता की सृष्टि कर माँ ने सन्तान को थोड़ी-सी सेवा करने का सुयोग दिया है। माँ के सभी काम मंगलमय हैं। ज्वर थोड़ा कम होते ही माँ भात खाने लगी। फिर ज्वर आने लगा। इसी तरह चल रहा था। भोलानाथजी भी अत्यधिक अस्वस्थ हो गए।

अतुल ब्रह्मचारी का सिद्धेश्वरी में प्रथम मातृ-दर्शन

इधर रमना आश्रम में एक और कमरा बनवाया गया। श्रीकालीमूर्ति सिद्धेश्वरी में ही थी। योगेश दादा के ही ग्राम के एक लड़के ने मैट्रिक पास किया है, विवाह आदि कुछ करते नहीं हैं, संसार के प्रति वैराग्य होने के कारण योगेश दादा को खोजते सिद्धेश्वरी में आ पहुँचे। उनका नाम अतुल है। वे ही वहाँ श्रीकालीजी का भोग बना देते हैं और श्रीकालीजी

को नैवेद्य लगा देते हैं। योगेश दादा, मैं और अतुल वही भोग पाते हैं। अन्यान्य सभी लोगों का अश्विनीकुमार बाबू के मकान में ही खाना-पीना होता है। बुआजी और नानीजी रसोई बनाती हैं। इस तरह चल रहा है।

रमना आश्रम में श्रीकालीमूर्ति के लिये श्री श्री माँ के द्वारा स्थान का निर्देश

श्री काली-मूर्ति को रमना आश्रम में लाना होगा। श्रीदुर्गा पूजा के पहले ही लाने की बात हो रही है। नगेन्द्र बाबू और भूपति बाबू आश्रम के लिये खूब परिश्रम कर रहे हैं। ज्योतिष दादा के ऊपर ही आश्रम के प्रबन्ध का सारा भार है। श्री कालीमन्दिर के निर्माण करने की बात माँ ने कही, ''यहाँ पर जो टूटा शिव-मन्दिर है, ठीक उसी स्थान पर कालीजी का एक छोटा-सा मन्दिर बनेगा एवं जहाँ पर शिवजी स्थापित हैं, उसी स्थान पर काली-मूर्ति स्थापित होगी।'' श्रीयुत् नगेन्द्र रायजी ने ही वह मन्दिर बना दिया। भूपति बाबू, नगेन्द्र बाबू आदि सब लोग मिलकर रमना आश्रम में माँ के भोजन का बन्दोबस्त करने लगे।

अस्वस्थ माँ के निकट बहुत-भक्तों का समागम

माँ की अस्वस्थता का समाचार पाकर निर्मल बाबू भी आ पहुँचे। वे भी माँ के समीप सिद्धेश्वरी में ही रहते थे। आश्रम के काली-मन्दिर की अलमारी का एक नमूना तैयार हुआ। सिद्धेश्वरी में काली-मूर्ति एक बड़ी-सी काठ की अलमारी में ही है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। आश्रम में यज्ञ की अग्नि रखने के लिये कुण्ड भी बनाया गया। माँ के साथ-ही-साथ कालीजी की मूर्ति और यज्ञ की अग्नि भी जायेगी, ऐसा माँ का आदेश हुआ। ज्योतिष दादा भी उस समय आने लगे थे। माँ के समीप गमनागमन करने के अनुरूप सिद्धेश्वरी में कुछ अधिक लोग न थे। किन्तु माँ की अस्वस्थता के अवसर पर वहाँ के बहुत से लोग माँ के समीप आये। श्रीयुत् राजमोहन बाबू की स्त्री दोपहर के समय आकर बहुत देर तक माँ के समीप रहती एवं थोड़ा बहुत जितना हो सकता, माँ की सेवा करती। घर पर अस्वस्थ बाल-बच्चों को छोड़कर भी वे माँ के समीप आकर बहुत समय बिता जाती थी। अन्यान्य अनेक लोग, कोई अचार, कोई पुराना अमावट, कोई पुरानी इमली माँ के सेवन के लिये ले आते थे। माँ के उन सबको ग्रहण करने पर उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता था।

श्री श्री माँ स्वस्थता और अस्वस्थता के परे

एक दिन श्रीयुत् राजमोहन गांगुलीजी के साथ अस्वस्थावस्था में ही माँ की बातें हो रही थी। माँ अपनी अवस्था की बातें कह रही थी, ''देखिये पिताजी, इस बार चाँदपुर में एक दिन पेट बहुत खराब हुआ, ऐसी बीमारी कि पाखाने से फिर कमरे में न आ सकी। 50–60 बार पाखाना जा रही थी। उसमें भी महाआनन्द हो रहा था। मानो वह भी एक महा–कीर्तन चल रहा हो। दिन भर इसी तरह एक प्रकार का महा–आनन्द चला। रात्रि में स्वाभाविक रूप से सब कुछ खाया और हुआ कुछ भी नहीं।'' राजमोहन गांगुलीजी बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। उन्होंने समझा यही तो वह स्थितप्रज्ञ का लक्षण है। वे महान् आग्रह और आनन्द के साथ माँ की ओर निहारकर बोले– ''माँ, यह अवस्था क्या तुम्हारी सदा ही रहती है।'' माँ ने जरा हँस दिया और कुछ जवाब नहीं दिया।

* * *

दसवाँ अध्याय

श्री माँ का रमना आश्रम में निवास (आश्विन महालया के दिन)

संवत् 1986 के आश्विन महीने में महालया के दिन सन्ध्या के समय माँ और भोलानाथजी रमना आश्रम में गये। साथ-साथ श्रीकालीजी की मूर्ति और यज्ञाग्नि सिद्धेश्वरी आश्रम से ले गये। इस बार को लेकर यह पाँचवी बार कालीमूर्ति स्थानान्तरित हुई। इस बार जाकर श्री कालीजी स्थिर हुई। माँ बोली- ''अब जो होने वाला है वही होगा।'' आश्रम में जाकर उत्तर की ओर जो कमरा बना है उसके दोनों ओर दो खाट माँ और भोलानाथजी के सोने के लिये लगाई गई। माँ के लिये जो छोटी कुटिया पहले बनी थी, उसके अन्दर पहले की भग्न शिवमूर्ति रखी गई। नूतन मन्दिर में माँ के निर्देशानुसार श्री कालीजी की मूर्ति स्थापित की गई। माँ उस समय भी खड़ी नहीं हो सकती थी, बहुत दुर्बल थी, तो भी उस समय रोग विशेष कुछ न था, धीरे-धीरे स्वस्थ हो रही थी। भोलानाथजी अत्यन्त अस्वस्थ थे। कुछ दिनों तक उन्होंने दवा-दारू कुछ नहीं लिया। उस समय नियमानुसार दवा होने लगी। कई दिन बाद माँ ने पहले की उसी छोटी कुटिया में ही अपना बिछौना ले जाने को कहा एवं उसी कुटिया में रहने लगी।

श्री दुर्गापूजा के समय रमना आश्रम की कालीमूर्ति की विशेष रूप से पूजा व्यवस्था का सूत्रपात

दुर्गा-पूजा के समय उस बार भक्तों ने उस पूजा के कई दिनों तक आश्रम में विशेष पूजा करने की कुछ भी व्यवस्था नहीं की थी। महासप्तमी की पूजा के दिन भोर में ही उठकर माँ ने कहा- ''आज बहुत शीघ्रता से भोग बना देने की आवश्यकता है।'' कुलदा दादा से इन तीन दिनों में विशेष रूप से श्रीकाली पूजा करने के लिये कह दिया। उस समय सभी ने जो कुछ घर में विद्यमान था, उसी से पूजादि की व्यवस्था की। पूजा आदि कृत्य हो गये। बलिदान के विषय में भोलानाथजी के पूछने पर माँ ने कहा- ''इस स्थान पर कभी भी बलिदान न हो।'' तीनों दिन षोडशोपचार से श्रीकाली

मूर्ति की पूजा हुई। तभी से दुर्गा आदि की पूजा के समय उसी तरह से पूजा आदि कृत्य होते हैं।

विनय बाबू की कन्या उमा की मृत्यु एवं उसके स्मारक रूप में आश्रम में कीर्तन–गृह का निर्माण

इस पूजा के प्रारम्भ के समय विनय बाबू (मुन्सिफ) ढाका में सपरिवार आये थे। उनकी उमा नाम की एक लड़की थी। उमा उस समय अस्वस्थ थी। वे रोज ही इस लड़की को साथ लेकर आश्रम आते थे। एक दिन माँ ने कहा– ''इसे साथ लेकर कुछ दिनों तक आश्रम में मत आओ।'' उन्होंने सोचा, अस्वस्थता के कारण असुविधा होगी यह सोचकर ही माँ निषेध कर रही हैं। माँ के समीप जाने की आकांक्षा के कारण उन्होंने उस निषेध वाक्य पर ध्यान नहीं दिया। कुछ ही दिनों के बाद लड़की मर गई। उस समय माँ ने कहा– ''मैंने निषेध किया था।'' बाद में उस लड़की के स्मारक रूप में ढाका रमना आश्रम में कीर्तन का कमरा विनय बाबू ने ही बनवा दिया। उस कमरे का नाम कीर्तन–गृह रखा गया। टूटे मन्दिर में जो माँ दूध और केले चढ़ाती थी, वहाँ भी प्रतिदिन पूजा के समय मनसा देवी को दूध और केला चढ़ाने की व्यवस्था उन्हीं ने कर दी। इस रमना आश्रम में बहुत बड़े–बड़े साँप थे। भोलानाथजी धीरे–धीरे स्वस्थ हो उठे। माँ भी स्वस्थ हुई।

भुआल संन्यासी का माँ के समीप आगमन

इस बीच में अमूल्य की एक भानजी के विवाह के उपलक्ष्य में भोलानाथजी गाँव गये। किन्तु माँ एक वर्ष तक ढाका छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जायेंगी, यह सोचकर भोलानाथजी ने माँ से गाँव चलने के लिये विशेष अनुरोध नहीं किया। प्राय: नित्य ही नये–नये लोग माँ के दर्शनों के लिये आ रहे थे। एक दिन भुआल के मध्यम कुमार (संन्यासी) माँ के दर्शन करने आये। मुझे राज्य प्राप्त हो जाये, ऐसी प्रार्थना कर गये।

श्री श्री माँ का सोना, बैठना या चलना सब कुछ मन की मौज के अनुसार

एक बार माँ के भाव में न जाने क्या आया, लगभग 15 दिन तक अपने छोटे से बिछौने पर दिन–रात कभी बैठी और कभी लेटी रहती थी।

खाने को भी विशेष उठती न थी, यदि पाखाना जाना होता तो उठती। किन्तु फिर आकर बिछौने पर ही बैठी रहती थी। तदुपरान्त ज्योतिष दादा प्रतिदिन भोर में अपने निवास स्थान से आश्रम में आकर माँ को उठा मैदान में घूमने ले जाते थे। यह घूमना जब से आरम्भ हुआ उसके बाद फिर ऐसा हुआ कि माँ प्रतिदिन ही प्राय: सारे मैदान में घूमने लगी। कभी-कभी तो और भी दूर तक जाती थी। लगभग 3-4 घण्टे इसी प्रकार घूमती रहती थी। कभी-कभी कहीं पर भी जाकर थोड़ा विश्राम ले लेती थी।

लगातार दो-तीन दिन तक माँ का शयन, नाम-कीर्तन से उसका भंग और भाव का परिवर्तन

एक दिन माँ रात्रि में जो सोई, फिर दूसरे दिन नहीं उठी। इसी तरह प्राय: 2-3 दिन तक सोई ही रही। तदनन्तर भोलानाथजी ने हम सब लोगों के साथ कीर्तन आरम्भ किया। बहुत देर तक कीर्तन करने के बाद माँ की अवस्था में तनिक परिवर्तन दिखाई दिया। रात्रि भर कीर्तन हुआ। दूसरे दिन दोपहर के समय माँ उठ बैठी। माँ अक्सर कह रखती थी, ''यदि मैं सोई रहूँ तो मुझे कोई छूना मत। दरवाजा बन्द कर रखना, तुम लोग बैठकर अपने-अपने इष्टदेव का नाम-जप करना।'' बहुधा वैसा ही किया जाता था। परन्तु कभी-कभी उठाने की चेष्टा भी की जाती थी।

श्री श्री माँ का भावावस्था में भक्तों के प्रति कर्त्तव्य का आदेश

एक बार शाहबाग में कीर्तन के समय माँ का भाव हुआ, माँ सोई रही। बहुत रात बीत गई, सभी अपने-अपने घरों को चले गये। मैं और पिताजी माँ को ऐसी हालत में छोड़कर नहीं जा रहे थे। कुछ देर बाद माँ का भयानक श्वास चलने लगा। शरीर भी विविध प्रकार का होने लगा। अवस्था देखते ही भय लगता था। मालुम होता था कि अभी शरीर त्याग देंगी। क्या करना चाहिये, यह किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था। बहुत देर बाद अत्यन्त अस्पष्ट भाषा में माँ ने कहा- ''नाम, पाँच जन।'' हमें प्रतीत हुआ कि पाँच आदमियों से कीर्तन करने की कह रही हैं। तब भोलानाथजी, पिताजी, मैं, अमूल्य और मटरी बुआ- सब कीर्तन करने लगे। बहुत देर बाद माँ कुछ स्थिर हुई। इस तरह के न मालूम कितने भावों के खेल हुये हैं, उनका उल्लेख करना असम्भव है।

रमना आश्रम में भक्तों के प्रति शनिवार-व्रत पालन का उपदेश

फिर एक दिन रमना आश्रम में ही माँ रात को सोई। दूसरे दिन दिनभर उसी तरह सोई रही। सन्ध्या समय उठ बैठी। हँसती हुई बोली- ''मेरा भोर इतनी देर में हुआ।'' यह कहकर हाथ-मुँह धोने गई। उस दिन शनिवार था, सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त नाम-कीर्तन हुआ। माँ की यह अवस्था देखकर उस दिन हम लोगों का खाना-पीना कुछ नहीं हुआ। साँझ को माँ ने कहा- ''आज संयोगवश आश्रम में किसी ने भी भोजन नहीं किया। इसलिये आज से शनिवार को दिन में नाम-कीर्तन होगा, सब फल-मूल खाकर रहेंगे। सन्ध्या के बाद कीर्तन समाप्त होने पर आलू आदि किसी एक वस्तु के साथ भात बनेगा, सब वही प्रसाद पावेंगे।'' माँ शनिवार को दिन भर कुछ नहीं खाती थी। सन्ध्या के बाद दूध या फल जो कुछ होता वही लेती थी। यह नियम बहुत दिनों तक चला। माँ ने मुझे भी शनिवार को सन्ध्या के बाद फल और दूध ही लेने को आदेश दिया। इसके बाद अन्यान्य अनेक लोगों ने भी इस नियम के अनुसार सन्ध्या के पश्चात् आलू आदि एक चीज के साथ पका भात खाना आरम्भ किया। माँ कहती थी- ''कम से कम सप्ताह में एक दिन शुद्ध भाव से रहने और खाने का संकल्प करने की जरूरत है। उसके बाद धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ जायेगा।''

श्री श्री माँ की भावावस्था का वृतान्त

अब इधर शाहबाग की भाँति माँ सदा सोई नहीं रहती हैं। माँ के साथ यह बात होने पर माँ कहती- ''देख, अब सोये रहना या घूमना, चलना, बातें करना सभी मानो एक ही अवस्था है, ऐसा प्रतीत होता है, कोई भेद-भाव प्रतीत नहीं होता। मैं सदा ही मानो एक ही अवस्था में हूँ।'' एक दिन भाव हुआ, रसोई कर आई। उस पर भी कहती थी- ''यह जो रसोई कर आई हूँ, यह जो है- वह जो सोये रहना है, वह भी वही है, भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता। मालूम होता है कि एक ही अवस्था में हूँ। तुम लोग अवश्य देखते हो कि शरीर से विभिन्न क्रियायें हो रही हैं, किन्तु मुझे पार्थक्य बोध बिल्कुल ही नहीं होता।'' कभी-कभी सभी के प्रति अधिक स्नेह का भाव प्रतीत होता था। फिर कभी मालुम होता था कि मानो किसी को पहचानती ही नहीं हैं। हम लोग रात-दिन पास ही

रहते थे, किन्तु हमारे ऊपर पलक उठाकर देखती तक न थी। किसी प्रकार के स्नेह का इंगित तक प्राप्त नहीं होता था। हम कितना रोते थे, किन्तु मालुम पड़ता था कि मानो अरण्य रोदन कर रहे हैं। इस अवस्था में ज्योतिष दादा भी कभी-कभी दोपहर को ऑफिस से आकर यह भाव देखकर दुःख प्रकट करते थे, किन्तु माँ की अवस्था में कोई अन्तर नहीं आता था। बिल्कुल चुप रहती हो सो बात भी नहीं थी, सबके साथ बातें करती थी, आनन्द करती थी। किन्तु तनिक ध्यान देते ही प्रतीत होता था कि भाव में क्या परिवर्तन है। हम लोग इस भाव को मानो सहन ही नहीं कर सकते थे। किन्तु उपाय कुछ न था। कैसी एक अवस्था में माँ बैठी हैं यह हम लोगों की समझ में ही नहीं आता था। हम लोग तो स्नेह-प्रीति ही समझते हैं, इसीलिये दुःखी होते हैं। शरीर से जो कुछ भी प्रकट हो, वास्तव में वे किसी विषय में आसक्त नहीं है, जगत की कोई भी वस्तु उन्हें बाँध नहीं सकती, यह भाव इतनी स्पष्ट रीति से माँ के बाहरी व्यवहार में भी कभी-कभी अभिव्यक्त हो उठता था कि हम साधारण जीव उसे सहन न कर सकने के कारण छटपटा उठते थे।

समदर्शिनी माँ

अनेक बार माँ ने बातचीत के बहाने स्पष्ट रूप से इस पर प्रकाश डाला है, ''जो यह देखती हो, सब केवल शरीर का खेल है। वास्तव में किसी के भी साथ मेरा लेशमात्र भी सम्बन्ध या बन्धन नहीं है।'' एक दिन माँ ने नानीजी से हँसते-हँसते कहा था- ''देखो, यदि तुम्हारे ऊपर सम्बन्ध होने के कारण अन्य सब लोगों की अपेक्षा रत्ती भर भी मेरा भिन्न भाव होता तो बहुत दिन पहले ही मैं तुम सब लोगों को छोड़कर चली जाती। शरीर के आत्मीय अथवा अनात्मीय सभी के ऊपर मेरा एक भाव है। कोई भेदभाव मुझे प्रतीत नहीं होता है, यह समझकर ही सबके साथ हूँ। किसका त्याग करूँ, किसको साथ रखूँ। सभी मेरे लिये समान हैं।''

पुरी धाम में माँ की अनुरूप उक्ति

एक दिन पुरी में एक स्त्री ने माँ से कहा था- ''माँ, स्वामी के प्रति आपको भी कर्त्तव्य ज्ञान है, गुरु ज्ञान है, स्वामी तथा अन्य सब लोग क्या आपके समीप समान हैं?'' भोलानाथजी निकट ही बैठे थे। माँ ने

हँसकर कहा- ''इस प्रश्न का यदि सत्य उत्तर दूँ तो भोलानाथजी मेरे ऊपर नाराज होंगे।'' यह कहकर हँसने लगी। तदनन्तर माँ ने कहा- ''सब समान हैं, फिर भी जहाँ पर जिस भाव के प्रकट होने की आवश्यकता है वैसा ही हो जाता है। पहले बाल्यावस्था में माता-पिता ही गुरु थे। तदनन्तर उन्होंने स्वामी का गुरु के रूप में परिचय करा दिया। उस समय स्वामी के प्रति तीव्र गुरुभाव था। आज देख रही हूँ, सारा विश्व ही गुरु है। तुम भी मेरी गुरु हो। सभी तो उन्हीं के रूप हैं। एक के सिवा तो दूसरा है नहीं।'' माँ के मुँह से यह बात सुनकर वह स्त्री मुग्ध हो गई एवं साथ-ही-साथ चुप हो गई। वास्तव में माँ का भाव समझना भी हमारे लिये असम्भव है।

रमना आश्रम में श्री श्री माँ के दैनिक जीवन का संक्षिप्त परिचय

माँ रमना आश्रम में ही रह रही थी। भोर में मैदान में घूम आती थी। उसके बाद आकर कभी थोड़ा-सा फल खा लेती, नहीं तो पड़ी रहती। किसी दिन भोजन के समय उठकर कुछ खा लेती, कभी सोई ही रहती, प्रसाद ग्रहण न करने पर कोई भी कुछ नहीं खायेगा, यह सोचकर कहती कि थोड़ा-सा कुछ लाकर मेरे मुँह में देकर जाओ। वही हम लोग करते थे। माँ सम्भवत: सोई ही रहती, किसी दिन अपराह्न में उठती, कभी सन्ध्या के पहले उठती। किसी दिन सम्भवत: बैठी ही रहती, किन्तु कुछ खाने की इच्छा नहीं रहती थी। 'जब खाने की इच्छा होगी खाऊँगी' कह देती। मैं पहले लिख आई हूँ कि इस समय भोजन होगा या इस समय शयन होगा, इस तरह के नियम के बन्धन में माँ नहीं रह सकती। समय के परिवर्तन से माँ के भाव में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता था। इसीलिये सन्ध्या को उठते ही कहती- 'मेरा भोर अब हुआ।' यह कहकर हाथ-मुँह धोने जाती थी। तभी सम्भवत: कुछ खा लेती।

जाति-भेद के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का कथन

रसोई खूब शुद्धता के साथ ही बनती थी। मटरी बुआ ही निरामिष रसोई बनाती थी। नानी या मैं साधारणत: मछलियाँ बनाती थी। पहले-पहल शाहबाग में रसोई का जल भी ब्राह्मण ही खींचता था। अब अन्य सब जल खींचते है। माँ जाति-भेद के सम्बन्ध में कहती हैं, ''सभी का शुद्धता से खाना उत्तम है। जब तक जाति-ज्ञान है तब तक जाति-भेद मानकर

चलना ही अच्छा है। आगे चलकर यदि साधना के प्रभाव से वह सब चला जाये तो तब जो होना होगा।'' आश्रम में सदा प्राय: भक्त ब्राह्मण स्त्रियाँ ही रसोई बनाती थी। तदुपरान्त जब उत्सव के उपलक्ष्य में भण्डारे आदि आरम्भ हुये तब रसोई बनाने के लिये रसोइया बुलाया जाता था। परोसना आदि ब्राह्मण द्वारा ही कराया जाता था। माँ की इच्छानुसार ही इस प्रकार कार्य होता था। भोलानाथजी का भी इस विषय में खूब ध्यान था। अवश्य, माँ को सबके हाथ से खाने में कोई आपत्ति नहीं थी। किन्तु सबके कल्याण के लिये ही माँ इस नियम का पालन कर चलती थी। भोलानाथजी भी जाति-पाँति का भेद न मानकर चलना पसन्द नहीं करते थे।

सिद्धेश्वरी आश्रम में भोलानाथजी की साधना एवं उनके द्वारा दीक्षा प्रदान का सूत्रपात (सं. 1986 फाल्गुन)

बीमारी के बाद कई महीने बीत गये। सम्भवत: फाल्गुन मास से माँ ने भोलानाथजी से सिद्धेश्वरी के आश्रम के कमरे में बैठने को कहा। भोलानाथजी उस कमरे में बैठकर ही साधन-भजन करते थे। एक ब्रह्मचारी रमना आश्रम से भोग का प्रसाद उन्हें दे आता था एवं उनकी अन्यान्य जो भी आवश्यकतायें होती उन्हें कर आता था। वे सिद्धेश्वरी ही रहते थे। रात्रि में रमना आश्रम से एक ब्रह्मचारी उनके समीप जाकर सोता था। प्राय: अतुल ही उनके समीप रहता था। कभी-कभी माँ जाकर उनको देख आती थी। लगभग दो महीने वे इस तरह रहे। बीच-बीच में उनको वहीं भावावेश होता था। भावावस्था में वे लोट-पोट लेते थे। कभी-कभी दोपहर में रमना आश्रम में आते थे। वहाँ उनकी अनेक प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ होती थी। ब्रह्मचारियों को उन्होंने दीक्षा दी एवं इस अवस्था में अन्यान्य 2-4 लोगों को भी दीक्षा देने लगे।

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

रमना आश्रम में भोलानाथजी का श्रीकाली–पूजन और पंचवटी स्थापन (संवत् 1987 बैशाख)

संवत् 1987 बैशाख सौर 1 को भोलानाथजी ने आश्रम में आकर स्वयं ही श्रीकाली–पूजा की। उस दिन से फिर आश्रम में ही रहने लगे। उस समय श्रीकालीजी के छोटे मन्दिर के चारों ओर अस्थायी रूप से छप्पर डालकर पूजा का काम–काज चलता था। इसके कुछ दिन पहले ही पूजादि करके भोलानाथजी ने आश्रम की पंचवटी के पाँच पेड़ (बड़, पीपल, अशोक, बेल और आँवला – ये पाँच पेड़) स्वयं ही लगाये। इन पेड़ों को लगाने के समय भी भोलानाथजी को अनेक तरह की शारीरिक क्रियायें हुई थी। प्रत्येक पेड़ को रोपने का बीजमन्त्र उन्हें प्राप्त हुआ था। उस दिन 'पंचवटी' रोपने के समय, इस प्रकार भावावेश से जमीन पर लोट–पोट होते जा रहे थे कि उनका सारा शरीर धूल से सन गया था। माँ निकट ही खड़ी थी। माँ की ओर निहारकर, अनुमति लेकर उन्होंने प्रत्येक पेड़ लगाया। इस तरह 'पंचवटी' की स्थापना हुई। उसके अनन्तर बीच में माँ के बैठने के लिये चबूतरा बना दिया। इस पंचवटी के सम्बन्ध में एक विशेष घटना का यहाँ पर उल्लेख करती हूँ।

पंचवटी के सम्बन्ध में एक विशेष घटना

अशोक का पेड़ जब रोपा गया तब ज्ञात हुआ कि उसकी जड़ में मिट्टी बिल्कुल नहीं है। यह देखकर एक सज्जन ने कहा–''सम्भवत: यह लगेगा नहीं।'' भोलानाथजी ने जोर देकर कहा–''क्या लगेगा नहीं? यह कभी सूख नहीं सकता।'' यह कहकर जो बीजमन्त्र उन्हें मिला था, उस बीजमन्त्र द्वारा उन्होंने उसे रोप दिया और सदा जल देने का प्रबन्ध कर दिया। कुछ दिनों के बाद अशोक का पेड़ बिल्कुल मरा–सा दिखने लगा। कमलाकान्त ने सूखा पेड़ रखकर क्या होगा, यह सोचकर उसे उखाड़कर पास ही फेंक दिया। उन दिनों भोलानाथजी सिद्धेश्वरी आश्रम में रहते थे। वहाँ से एक दिन आकर उसे उखाड़कर फेंका हुआ देख वे बहुत बिगड़े।

उन्होंने फिर उस सूखी डाल को ही बटोर कर रोप दिया एवं जल देने का प्रबन्ध किया। उन्होंने कहा– ''यह पेड़ मर ही नहीं सकता।'' माँ ने एक दिन कहा– ''एक काम करो। एक और अशोक की डाल लाकर इस सूखी डाल के साथ मिलाकर लगा दो।'' भोलानाथजी ने वैसा ही किया। कुछ दिनों के बाद ही सूखी डाल पर पत्ते लग आये। सबको आश्चर्य लगा, भोलानाथजी को भी महान् आनन्द हुआ। धीरे-धीरे वह पेड़ लग गया।

संवत् 1987 में श्री श्री माँ का जन्मोत्सव

सं. 1987 वि. का माँ का जन्मोत्सव आ पहुँचा। जन्मोत्सव के कई दिन पहले माँ ने एकाएक बोलना बन्द कर दिया। पाँच-सात दिन तक बोलना बिल्कुल बन्द रहा। उसके बाद भी बहुत दिनों तक माँ का स्वर बहुत ही अस्पष्ट और धीमा था। प्राय: कोई भी माँ की बातें समझ नहीं सकता था। उत्सव में भी यही भाव चला था। उत्सव आरम्भ हुआ। इस बार भक्तों ने जन्मोत्सव में भण्डारा करने की व्यवस्था की। भक्तजन अनेक स्थानों से दाल, चावल आदि माँग लाकर भण्डार में जमा करते थे। सौर 19 बैशाख के कृष्णपक्ष की चतुर्थी तक कीर्तन करने की व्यवस्था हुई। जन्मोत्सव शुरू हुआ। बहुत से लोग एकत्र हुये। आश्रम के अन्दर जगह न होने के कारण माँ यदा-कदा मैदान में जा बैठती थी। माँ जहाँ जाती थी साथ-ही-साथ लोग वहाँ जमा हो जाते थे। माँ भली-भाँति बोल नहीं पाती थी।

संवत् 1987 के जन्मोत्सव के अवसर पर रमना आश्रम में सर्प दर्शन होने पर माँ की उक्ति

उक्त जन्मोत्सव के अवसर पर एक दिन सन्ध्या के समय मैं मैदान में गई, उस समय विशेष भीड़ न थी। माँ आश्रम के भीतर ही अपनी कुटी के बरामदे में बैठी थी। मैं आश्रम के भीतर जा रही थी। उस समय कुछ-कुछ चाँदनी थी। पहले मुझे दिखाई नहीं पड़ा, बाद में मैंने आश्रम के दरवाजे के पास ठीक अपने पैरों से सटा हुआ एक बड़ा भारी साँप देखा। अवस्था ऐसी थी कि मैं इधर-उधर नहीं जा सकती थी। न जाने क्यों इतना बड़ा साँप पैरों के साथ ही साथ चल रहा था। मैं एकाएक कुछ हट गई। साँप भी आश्रम के फाटक के पास गेंडली बाँधकर बैठ गया। जटु आदि कई

लड़के कुछ दूरी पर बातें कर रहे थे। मेरे पुकारते ही दौड़ आकर उन्होंने देखा– साँप वहीं बैठा था। मैंने जाकर माँ को खबर दी। माँ यो ही हँसकर हाथ से ताली बजाकर उठ खड़ी हुई। बोली– ''कल ही उसे मैंने देखा था।'' यह कहकर साँप को देखने गई। भोलानाथजी तथा अन्यान्य सभी गये। माँ ने कुछ देर तक एकटक से साँप को देखा। उस समय साँप मुँह फैलाकर इधर-उधर देख रहा था। सहसा माँ चली आई। इस बात पर माँ ने कहा था– ''मेरी इच्छा हो रही थी कि जाकर साँप को पकड़ लूँ। किन्तु उसके समीप जाने में ही तुम लोग रुकावट डालोगे यह सोचकर चली आई।'' जटु ने कहा– ''माँ साँप को मार डालूँ।'' माँ ने अपनी गर्दन पर हाथ रखकर इशारे से जो दिखाया, उससे हमने माँ निषेध कर रही हैं, यह निष्कर्ष निकाला। इतना बड़ा साँप दरवाजे के निकट बैठा था, कितने ही लोग आ-जा रहे थे, किन्तु साँप को कुछ नहीं किया गया। तदनन्तर साँप आश्रम के भीतर आकर चहारदीवारी के पास चला गया और किसी ने कुछ हस्तक्षेप नहीं किया। साँप के साथ माँ का क्या सम्बन्ध है? यह माँ ही जानें।

सिद्धेश्वरी के सर्प की कथा

एक-दूसरे दिन सिद्धेश्वरी के आश्रम में श्रीकालीजी के मन्दिर की छोटी कोठरी में माँ सोई थी। लगभग सारे दिन सोई रही। सन्ध्या के पहले बाहर आकर बैठी। कपड़े झटकारते ही शरीर के भीतर के कपड़े से एक साँप बाहर निकलकर चला गया। अँधेरी कोठरी में माँ इतनी देर तक भूमि पर उसी भाव में ही सोई रही।

सं. 1987 की श्री श्री माँ की जन्मतिथि के दिन पंचवटी वेदी के ऊपर भोलानाथजी द्वारा श्री श्री माँ का पूजन

संवत् 1987 का उत्सव चल रहा था। भण्डारे के दिन सभी लोग भोजन करने बैठे थे। माँ आकर खड़ी होकर देख रही थी। तत्पश्चात् भूमि पर लेटकर सबके प्रति उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। बोली– ''मैंने नारायण प्रणाम किया।'' महान् आनन्द से सबने सम्मिलित होकर उत्सव की पूर्ति की। जन्मतिथि के समय पंचवटी की वेदी के ऊपर ले जाकर माँ को रात्रि के समय बैठाया गया। माँ सो गई। भोलानाथजी ने वहाँ पर बैठकर माँ की

पूजा की। पूजा करते-करते भोर हो गया। बहुत दिन चढ़े माँ उठी। भक्तों ने उस दिन उस वेदी के ऊपर ही माँ को स्नान करा दिया। इस तरह उत्सव पूर्ण हुआ।

ढाका में हिन्दू-मुसलमानों के संघर्ष का पूर्वाभास

कुछ दिनों के अनन्तर ही माँ के दक्षिण देश जाने की बात स्थिर हुई। उत्सव के कुछ दिन बाद ही माँ एक दिन सोई थी। सहसा बोल उठी- ''घर-घर आतंक-रोना देख रही हूँ।'' इस घटना के कुछ ही दिन बाद ढाका में हिन्दू-मुसलमानों का भीषण दंगा आरम्भ हुआ। घर-घर रोना-धोना आरंभ हुआ। स्त्रियों की तो कौन कहे पुरुष भी घर से बाहर नहीं निकल सकते थे। आश्रम में कई दिनों तक कोई भी नहीं जा सका। माँ ने कहा- ''देखो, तुम लोगों के उत्सव के पूर्व यदि यह अवस्था होती तो कितना मुश्किल होता? स्त्रियों का दिन-रात आना-जाना लगा रहा, वह सब कुछ भी नहीं हो पाता।'' धीरे-धीरे दंगा कुछ कम हुआ।

जयदेवपुर में श्री श्री माँ का गमन,
प्रफुल्ल बाबू के घर निवास तथा ढाका लौटना

इसी समय प्रफुल्ल बाबू माँ को जयदेवपुर ले गये। वे उस समय जयदेवपुर में भुआल स्टेट के सहकारी मैंनेजर होकर आये थे। वे खूब धूमधाम से माँ को स्टेशन से ले जाने के लिये आये। माँ के ट्रेन से उतरते ही स्त्रियों के एक दल ने माँ के समीप आकर माँ के गले में माला पहनाई। कीर्तन-कर्त्ताओं का दल भी आया था, माँ जरा भावस्थ हो गई। मेरे शरीर का सहारा लेकर माँ धीरे-धीरे चली। माँ को गाड़ी में बैठाकर ले जाया गया। साथ-साथ बहुत से लोग चले। राजमहल के मन्दिर में माँ को ले जाया गया। माँ का फोटो लिया जा रहा था। माँ भावावस्था में ही थी, इसी तरह प्रफुल्ल बाबू के निवास-स्थान में जाना हुआ। प्रफुल्ल बाबू की स्त्री भी हम लोगों के साथ हो गई थी। उस घर में खूब कीर्तन हुआ। माँ की भावावस्था भी खूब हुई। माँ सोई रही। बहुत रात बीतने पर भूकम्प हुआ। माँ को लाद-फाँदकर बाहर ले जाया गया। दूसरे दिन माँ महिलाओं को लेकर एक शिव-मन्दिर देखने गई। जयदेवपुर के अनेक लोगों ने माँ के सत्संग का खूब आनन्द लिया। दो दिन वहाँ रहकर माँ ढाका लौट आई।

श्री श्री माँ का कलकत्ता होकर राजशाही और तारापीठ गमन और पुनः कलकत्ता आगमन

दो-चार दिनों के अन्दर ही माँ दक्षिण देश की यात्रा के लिये निकल पड़ी। साथ में भोलानाथजी, पिताजी, योगेश दादा, आशु, माँ की एक बुआ और मैं चली। ये ही बुआ, और भी एक बार माँ के संग बाहर गई थी। माँ कलकत्ते पहुँचकर सलकिया की बुआ के मकान में जाकर ठहरी। वहाँ से माँ एक दिन के लिये राजशाही घूम आई। इसी बीच एक दिन ब्रजेन्द्र गांगुलीजी, चारु बाबू, बुआ, मैं, बेबी दीदी आदि बहुत से लोगों को साथ लेकर माँ और भोलानाथजी तारापीठ गये। भोलानाथजी को तारा माँ का वर्ष में एक दिन तारापीठ में आकर रहना होगा, ऐसा आदेश प्राप्त हुआ था। वही हुआ - केवल एक ही दिन वहाँ रहकर सब कलकत्ता लौट आये। कलकत्ते में सब लोग अपने-अपने घर ले जाकर माँ को भोग देते थे। इस भोग के कारण ही सब लोग एकत्र होकर माँ के दर्शनों का आनन्द लूटते थे।

श्री श्री माँ का दक्षिण देश पर्यटन

कलकत्ते से माँ दक्षिण की ओर रवाना हुई। माँ पहले बाल्टेअर गई। 3-4 दिन वहाँ रहकर माँ ने सामने के पहाड़ पर भ्रमण किया। वहाँ से मद्रास गई। मद्रास में भी लगभग 7 दिन रही। इसके बाद और कहीं पर भी अधिक रहना नहीं हुआ। कावेरी, गोदावरी, पक्षितीर्थ, चिदम्बरम्, श्रीरंगम्, कांचीवरम्, मदुरा आदि अनेक स्थानों में पर्यटन किया। इन सभी जगहों में 2-1 दिन या कहीं एक समय रहकर ही माँ अन्यत्र रवाना हो जाती। रामेश्वर सेतुबन्ध जाकर 5-7 दिन रही।

इस अंचल के नाना स्थानों में भ्रमण कर कन्याकुमारी में स्थिति

इस ओर अनेक दर्शनीय स्थान हैं। यथासम्भव उन्हें देखते-देखते जाना हुआ। उसके बाद कन्याकुमारी जाना हुआ। यह स्थान अत्यन्त एकान्त है। समुद्र के किनारे ही धर्मशाला है। मनोहर स्थान देखकर सभी की कुछ दिन रहने की सलाह हुई। 15 दिन वहाँ रहना हुआ। उधर की तमिल और तेलगू भाषा का एक अक्षर भी समझने का हमारे पास कोई साधन न था।

किन्तु माँ उनके बीच में भी 2-4 शब्द बोल लेती थी। बाद में अनेक शब्द माँ ने मुझसे लिखवाये।

कन्याकुमारी त्याग सं. 1987 वि.

वहाँ समुद्र के किनारे ही कुमारी देवी का मन्दिर है। देवी के कुमारी रूप को चन्दन द्वारा अति सुन्दर रीति से सजाकर रखते हैं। सन्ध्या समय पण्डों की छोटी-छोटी कुमारी लड़कियाँ मन्दिर में घूम-घूमकर गाती हैं। माँ प्रतिदिन सवेरे-शाम दोनों समय समुद्र के किनारे घूमती थी। कुछ ही दिनों में उन छोटी-छोटी कुमारियों के साथ माँ का भाषा के द्वारा न सही पर भाव के द्वारा परिचय हो गया। वे धर्मशाला में आकर माँ को बीच में बैठाकर घूम-घूमकर गाती। हम लोग उन्हें नारियल और केले देते। वहाँ खूब नारियल और केले होते हैं। माँ की इच्छानुसार एक दिन पण्डों को और एक दिन कुमारियों को भोजन कराया गया। वहाँ कुमारियाँ घाघरा पहनती हैं। घाघरा पहनकर ही घूम-घूमकर नाच-नाचकर गाती हैं। मन्दिर में ले जाकर उन्हें माला, चन्दन, घाघरा और कुर्ती दी गई। सभी को महाआनन्द हुआ।* ये सब आनन्द के खेल करके माँ वहाँ से रवाना हुई। माँ के रवाना होते समय गाड़ी के निकट आकर छोटी-छोटी लड़कियाँ माँ को पुनः आने के लिये भाँति-भाँति के इशारों द्वारा समझाने लगी। माँ भी हँस-हँसकर उनके साथ इशारे करती जाती थी।

त्रिवेन्द्रम् गमन एवं पद्मनाभ-मन्दिर के दर्शन

हम लोग कन्याकुमारी से त्रिवेन्द्रम् आये। सन्ध्या के समय वहाँ पहुँचते ही माँ मन्दिरादि देखने बाहर चली गई। पद्मनाभ के मन्दिर में जाकर देखा

---

* कन्याकुमारी में पिताजी श्रीकुमारी देवी के मन्दिर में जप करने बैठे। एक कोने में बैठकर जप कर रहे थे। उन्होंने कहा, सहसा न जाने कैसे आँखें खुल गई। देखता हूँ कि दरवाजे के सामने एक गौरवर्ण की बालिका मूर्ति खड़ी है। मैंने सोचा यह क्या? यहाँ तो कोई स्त्री आती नहीं। यह कन्या कहाँ से आई? मेरी दृष्टि पड़ते ही कन्या-मूर्ति पीछे जाने लगी। मैं भी घबराकर उस मूर्ति को देख रहा था। मूर्ति पीछे हट रही थी। मैं भी अपनी दृष्टि मूर्ति पर ही लगाए रखने के लिए नाना प्रकार से देख रहा था। इस तरह जाते-जाते वह बालिका-मूर्ति एकाएक कन्याकुमारी की प्रस्तर मूर्ति में मिल गई। पिताजी अपने इन सब दर्शनों की बात कभी नहीं कहते थे, सहसा आज कई वर्षों के अनन्तर यह घटना उन्होंने सुनाई।

तो दरवाजे पर प्रहरी डटा था। हम लोगों से उसने पूछा कि आप लोग ब्राह्मण हैं या नहीं। ज्यों ही उसने यह सुना कि हम सब ब्राह्मण हैं, त्यों ही दरवाजा छोड़ दिया। इस ओर धर्मशाला में रहने के लिये जाने पर भी आप ब्राह्मण हैं या नहीं ऐसा प्रश्न करते हैं। यदि निवासार्थी ब्राह्मण हो तो फिर कोई आपत्ति नहीं करते। इसमें मन्दिर के भीतर जाकर देखा बहुत से लोग भोजन करने बैठे थे। मन्दिर के चारों ओर घुमा-फिराकर बहुत से लोगों के एक साथ बैठकर खाने का स्थान बनाया गया है। बाद में हमें मालुम हुआ कि प्रतिदिन लगभग 3000 हजार ब्राह्मण सपरिवार यहाँ पर दोनों समय प्रसाद पाते हैं। इतने लोग खा रहे थे, फिर भी किसी प्रकार का हो-हल्ला नहीं हो रहा था। वह उनका दैनिक कृत्य था। खूब पक्का प्रबन्ध है। हम लोगों को विदेशी देखकर उन लोगों ने अत्यन्त प्रयत्न से प्रसाद लेने के लिये अनुरोध किया। माँ के आदेश से हम लोगों के प्रसाद लेने के लिये राजी होने पर उन लोगों ने बड़ी शुद्धता के साथ एक ओर हम लोगों को बैठाकर प्रसाद दिया। माँ ने भी तनिक-सा मुँह में लिया। उसके पश्चात् हम सभी लोग प्रसाद ग्रहण कर धर्मशाला में लौट आये। 3-4 दिन हम लोग वहाँ रहे। वहाँ के मन्दिर के अधिकारी के सहयोगी एक सज्जन से हमारी बातचीत हुई। वे माँ के दर्शन कर माँ के प्रति श्रद्धावान हुये। उन्होंने घूम-घूमकर हमें सब दिखाया। उस ओर बंगालियों को प्राय: मन्दिरों में घुसने ही नहीं देते। वहाँ के मन्दिर में श्रीपद्मनाभ की मूर्ति है। शेष शय्या के तुल्य मूर्ति है। लाखों शालिग्राम शिलाओं से यह मूर्ति बनी है, ऐसा उन्होंने कहा। अत्यन्त विशाल मूर्ति है। तीन दरवाजे हैं। एक दरवाजे से मस्तक के भाग के, बीच के दरवाजे से शरीर के मध्य भाग के और अन्तिम दरवाजे से चरणों के दर्शन किये जाते हैं। एक दण्डी संन्यासी उस मन्दिर के पुजारी हैं। जब तक पुजारी आकर मन्दिर में प्रवेश नहीं करते तब तक मन्दिर में और कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। यदि राजा भी आ जाये तो उन्हें भी खड़ा रहना होगा। वहाँ का राजा भी पद्मनाभ का सेवक है। सारी सम्पत्ति पद्मनाभ की है। उक्त अधिकारी सज्जन ने ही माँ को और हम सब लोगों को ले जाकर श्रीपद्मनाभ का भण्डार घर दिखलाया। वह एक विराट कार्य है, जहाँ प्रतिदिन 3000 लोगों का भोजन होता है, वहाँ के भण्डार की अवस्था का सहज में ही अनुमान किया जा

सकता है। किन्तु माँ घूमते-घूमते स्वयं ही जाकर भण्डार घर में उपस्थित हुई थी। उक्त भद्रपुरुष वहाँ माँ को देखकर भीतर ले जाकर बोले- ''यह श्रीपद्मनाभ की भण्डारशाला है।'' मन्दिर के एक छोर पर हमने झूले में नारायण को वटपत्र पर सोये देखा। सृष्टि के प्रारम्भ में केवल यही मूर्ति थी। बिछौना बहुत ही मलिन था। माँ के कथनानुसार वहाँ पर नया बिछौना बना दिया गया। माँ वहीं से कई हाथी दाँत की बनी हुई नारायण की मूर्तियाँ, जो वटपत्र पर सोई हैं, ले आई। इधर आकर माँ ने वे मूर्तियाँ पूजा करने के लिये अनेक लोगों को दी थी। प्राय: सारा शहर लेकर ही वहाँ के बड़े-बड़े मन्दिर तैयार हुये हैं। श्रीरंगम् भी वैसा ही है। लगभग 3-4 महीने समुद्र के किनारे-किनारे ये सब स्थान घूम-घूमकर देखे गये।

द्वारका-गमन एवं श्री श्री माँ का श्रीकृष्ण, विग्रह को स्नान कराना कोई देख न सका

वहाँ से बैंगलोर होकर हम बम्बई गये। वहाँ से समुद्र के रास्ते द्वारका जाना हुआ। द्वारका मन्दिर में सब लोग दर्शन करने गये। श्रीकृष्ण को पैसा देकर स्नान कराने के लिये पंडों ने रोका, नवीन अंगोछा खरीदने को कहा। इस बीच में माँ सहसा मन्दिर में प्रवेश कर लोटे के जल से ही श्रीकृष्ण को स्नान कराकर अपने आँचल से ही शरीर को पौंछकर बाहर चली आई। पंडों को रोकने का भी अवसर नहीं मिला।

द्वारका से विन्ध्याचल आगमन और वहाँ से काशी और गया होकर जमशेदपुर गमन

श्रीद्वारका से हम लोग विन्ध्याचल आश्रम में आ पहुँचे। वहाँ पर दुर्गा-पूजा का प्रबन्ध पहले से ही किया गया था। श्रीकुंजमोहन मुखोपाध्यायजी भी कलकत्ते में हम लोगों के साथ सम्मिलित होकर हमारे साथ-ही-साथ भ्रमण कर रहे थे। उनके विशेष आग्रह से ही विन्ध्याचल में पूजा का आयोजन हुआ था। श्रीकाशीधाम से सभी भक्त आये थे। ढाका से भूपति बाबू भी उस समय विन्ध्याचल आये थे। बड़े आनन्द के साथ माँ की उपस्थिति में दुर्गा-पूजा हो गई। तत्पश्चात् सभी लोग काशी निर्मल बाबू के निवास-स्थान में माँ को लेकर गये। वे सभी पूजा के निमित्त काशी से आये थे। नेपाल दादा, शंकरानन्द स्वामी, सभी पूजा में उपस्थित हुये थे।

तदुपरान्त हम माँ के साथ काशी गये। काशी कई दिन रहकर गया धाम जाना हुआ। तरू और निर्मल बाबू अपना काम करने के लिये माँ के साथ ही गया धाम को चले। गया में सभी ने पिण्ड दानादि किया। माँ ने सबको साथ ले जाकर फल्गु नदी में स्नान किया। उसी दिन अपराह्न के बाद बुद्ध-गया गई। बौद्ध मन्दिर में पहुँचकर माँ ने वहीं रात्रि बितायेंगे कहा। खूब सुन्दर स्थान था। निर्जन बगीचा था। वृक्ष के नीचे सामान्य कुछ बिछाकर माँ के साथ हम लोगों ने रात बिताई। उक्त बगीचे में सर्वसाधारण को रहने की अनुमति नहीं दी जाती। अधिकारी को माँ का परिचय देने पर उन्होंने रहने की अनुमति दे दी एवं अन्यान्य प्रबध कर देने के लिये वे प्रस्तुत थे। किन्तु उनकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है, यों हमने उनको कहला दिया। माँ ने रात्रि में बगीचे में घूम-घूमकर बहुत-सा समय बिताया। भोर में उठकर माँ पैदल ही रवाना हुई। लगभग 3-4 मील पैदल जाने के बाद गाड़ी मिली। हम लोग गया आकर जमशेद्पुर को रवाना हुये।

जमशेदपुर निवास का वृत्तान्त

जमशेद्पुर में योगेश दादा के छोटे भाई कृष्ण बाबू नौकरी करते हैं। योगेश दादा की माँ आदि सारा परिवार वहीं था। हम लोग जमशेद्पुर जाकर कृष्ण बाबू के डेरे पर ही उतरे। वे अत्यन्त भले मानस हैं। माँ को इससे पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था। योगेश दादा के सब भाई वहीं थे। सभी माँ के दर्शन पाकर आनन्दित हुये। कृष्ण बाबू तभी से माँ के अत्यन्त भक्त हो गये हैं। इसके बाद छुट्टी लेकर भी वे कई बार ढाका माँ के दर्शनों के लिये गये। जमशेद्पुर में टाटा का लोहे का विशाल कारखाना जगत् विख्यात है। माँ को लेकर हम सब उस कारखाने को देख आये। वहाँ अधिकांश छोटी उम्रवाले उच्च जाति के लोग दिन भर कारखाने में परिश्रम करते हैं, धर्म की ओर वे कोई विशेष अभिरुचि नहीं रखते। माँ के वहाँ जाने के अनन्तर कीर्तन का प्रबन्ध किया गया। कीर्तन हुआ; माँ का खूब भाव हुआ। उक्त अवस्था देखकर मानो सबकी आँखें खुली। उस दिन बहुत रात बीतने तक सब माँ को घेरकर बैठे रहे। इसके पहले 2-3 दिन तक विशेष रूप से कोई आये नहीं थे। कीर्तन के दूसरे दिन भोर से ही लोगों का समागम होने लगा। देखते-देखते प्रतिदिन ही दूर-दूर से माँ के दर्शन करने के लिये लोग आने लगे। कृष्ण दादा के डेरे पर भीड़ लगी रहती थी। डेरे

में लोग समाते न थे, यह अवस्था थी। रात को 3–4 बजे तक सज्जन माँ के समीप बैठे रहते थे। कोई भी उठकर जाना नहीं चाहता था। इस प्रकार वहाँ उन लोगों में तनिक धर्मभाव का संकेत जगाकर माँ कलकत्ता चली आई। योगेश दादा की वृद्धा माता ने ''श्रीरामेश्वर'' दर्शन करने की इच्छा प्रकट की इसलिये माँ योगेश दादा को वहीं छोड़कर अपनी माता को रामेश्वर दर्शन करा लाने का उन्हें आदेश दे चली आई। किन्तु तभी से जमशेदुपर में कीर्तन शुरू हुआ। प्रत्येक घर में माँ का फोटो रखकर पूजा आरम्भ हुई। प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा को भोग देना आरम्भ हुआ। कृष्ण दादा के डेरे पर ही सब लोग एकत्र होते हैं। श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्याय महाशय के छोटे जामाता श्यामाकान्त* ने भी इसमें विशेष रूप में योग दिया। अश्विनी बाबू, लक्ष्मी बाबू, अमूल्य बाबू, अवनी बाबू, अतुल बाबू आदि अनेक सज्जनों ने योग दिया।

श्री श्री माँ का कलकत्ता आगमन

माँ कलकत्ते आई। कलकत्ते में तो माँ के समीप भीड़ लगी ही रहती थी। दिन–रात माँ प्राय: एक भाव से ही बैठी रहती थी। झुण्ड–के–झुण्ड लोग आते थे और जाते थे। श्रीयुत् यतीश गुहा** महाशय कुछ दिन पूर्व ही चण्डी बाबू के मकान में माँ के दर्शन कर गये थे। तदनन्तर वे ढाका में यतीश दादा के श्वसुरजी श्रीयुत् प्राणकुमार बाबू के घर में जाकर और माँ के आश्रम में जाकर माँ के दर्शन कर गये। उस समय प्राणकुमार बाबू की बदली पाबना को हो चुकी थी। इससे पहले अनुकूल ठाकुर का आश्रम दिखाने के लिये एक दिन के लिये ज्योतिष दादा माँ और भोलानाथजी को लेकर पाबना गये थे। किन्तु उस समय प्राणकुमार बाबू वहाँ नहीं थे। इस बार प्राणकुमार बाबू ने माँ को पाबना लिवा लाने के लिये अपने जामाता

---

* इनके विवाह के समय माँ उपस्थित थी। ये उस समय जमशेदपुर में नौकरी करते थे।

** ये प्राणकुमार बाबू के जामाता तथा कलकत्ता हाईकोर्ट के अन्यतम एडवोकेट हैं। ये श्री श्री माँ के विशेष कृपा–पात्र सन्तान हैं। इनका वर्तमान घर बालीगंज (कलकत्ते) में है। प्रतिदिन सन्ध्या को इनके मकान में सन्ध्या–आरती, भजन–गान और भोगादि होते हैं। कलकत्ते में प्रतिवर्ष श्री श्री माँ का जो जन्मोत्सव होता है, वह इनके उद्योग से उसी मकान में होता है। सदा ही कलकत्ता एवं उनके निकटवर्ती स्थानों के माँ के भक्त इस मकान में स्वत: एकत्र होकर माँ के समाचार पाते हैं एवं श्री श्री माँ के सम्बन्ध में वार्तालाप और चर्चा करते हैं।

यतीश गुहा को लिखा था। कलकत्ते में माँ को यतीश दादा आदि के मकान में ले जाकर खूब कीर्तन और भोग हुआ। यतीश दादा के छोटे भाई क्षितीश, नितीश सभी माँ के खूब भक्त हो गए। सारा का सारा परिवार ही माँ के लिये पागल है। इनके आत्मीय कुटुम्बी जनों में भी बहुत लोगों का माँ के समीप आना-जाना है।

श्री श्री माँ और पशुपति बाबू

क्षितीश दादा के श्वशूर श्रीयुत् पशुपति बसु महाशय योगिराज गम्भीरनाथ बाबाजी के शिष्य थे। पहले-पहले वे माँ के साथ जामाताओं के इस पागलपन को पसन्द नहीं करते थे। माँ के साथ उनकी कलकत्ते में ही भेंट हुई। उन्होंने माँ से कहा- ''आप इन सब बच्चों को इस तरह क्यों नचा रही हैं, कह सकती है?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया- ''बाबा, मुझे आप लाठी मार दीजिये।'' इत्यादि अनेक बातें हुई। बाद में वे माँ के इतने कट्टर भक्त हो गये कि माँ से कहते- ''माँ, सब तुमको माँ कहते हैं, मेरी तुम बाबा हो, क्योंकि मेरे बाबा (गुरु) और आप में मुझे अभेद प्रतीत होता है।'' उन्होंने भी खूब साधन-भजन किया था। वे कथावार्ता द्वारा भी सबको आनन्दित करते थे। माँ उनके साथ खूब आनन्द करती थी, प्राणकुमार बाबू और उनकी स्त्री के समान लोग भी संसार में बिरले ही हैं। किन्तु लगभग 6-7 वर्ष से प्राणकुमार बाबू की स्त्री के कमर में दर्द था, इसलिये वे किसी दूसरे के सहारे के बिना खड़ी भी नहीं हो सकती थी। इनकी छोटी बहन के पति श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ चौधरीजी एवं उनकी स्त्री सदा ही माँ के समीप आया-जाया करती थी। माँ को कलकत्ते में सबके घर-घर में ले जाया गया, कीर्तनादि हुये।

श्री श्री माँ और एक साधु

एक साधु भी कई दिनों से माँ के समीप आया-जाया करते थे। इसी समय कलकत्ते में माँ एक दिन ग्रे-स्ट्रीट में उपेन्द्र बाबू वकील के घर भोग ग्रहण करने गई। वहाँ उस साधु की स्त्री दो छोटे बच्चों को लेकर माँ के समीप उपस्थित हुई। स्वामी के घर लौटने के लिये विलाप करने लगी। माँ ने उस साधु से कहा- ''तुम इनके साथ जाकर इन्हें समझा-बुझाकर सान्त्वना दे आओ।'' माँ के आदेश से उन्होंने वैसा ही किया। दूसरे दिन लौटकर

फिर माँ के निकट उपस्थित हो गये। माँ ने जब स्त्री की बात पूछी तब बोले कि "मैं उसे समझा-बुझाकर आया हूँ। मैं तो उसे अनेक वर्षों से समझा रहा हूँ, क्यों नही समझेगी? उनके मंगल के लिये ही तो मैं घर से निकला हूँ।" माँ ने फिर और कुछ नहीं कहा।

* * *

बारहवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का पाबना गमन और प्राणकुमार बाबू के मकान में निवास

तदनन्तर श्रीयुत् यतीश गुहाजी के घर के सब लोग माँ को साथ लेकर पाबना चले। लगभग 30–40 मनुष्य माँ के साथ जाने के लिये तैयार हुये। जब हम लोग पाबना जाने के लिये स्टेशन आये तो देखा वह साधु भी लोटा–कम्बल लेकर हाजिर है, मालुम हुआ कि माँ के साथ पाबना जायेगा। सब लोग एकत्र होकर पाबना प्राणकुमार बाबू के मकान में गये। उन्होंने समाचार पाकर पहले से ही सब प्रबन्ध कर रखा था। वे माँ को पाकर बड़े आनन्द से घर ले गये। बहुत लोग साथ थे। सभी का खूब आदर–सत्कार किया। वहाँ भी इतने लोग माँ के दर्शनों के लिये आये कि घर में जगह नहीं रही। दिन–रात जहाँ कहीं से लोग चले आ रहे थे, किसी को खबर ही नहीं लगती थी। माँ साथ–साथ सबको लेकर एक ही कमरे में थोड़े समय के लिये विश्राम करती। एक दिन सब लोग सम्मिलित होकर माँ के साथ अनुकूल ठाकुर के आश्रम में गये। ठाकुर के साथ भेंट हुई। सबने चारों ओर घूम–घूमकर आश्रम देखा। आश्रम से प्रकाशित कई पुस्तकें माँ को भेंट की गई। सन्ध्या से पहले ही हम लोग लौटकर प्राणकुमार बाबू के मकान में आये। वहाँ के जज और मजिस्ट्रेट साहब (बंगाली) माँ के दर्शनों के लिये आये एवं बहुत देर तक उन्होंने माँ से वार्तालाप किया। माँ के मुँह से माँ के जीवन की पूर्व घटनायें सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। एक दिन माँ ने प्राणकुमार बाबू की स्त्री की आचार और अमावट की हाँड़ी खोज निकाली और सबको बाँट दी। मैंने माँ को भी थोड़ा–सा खिला दिया। हाँड़ी खाली कर प्राणकुमार बाबू की स्त्री के पास ले जाकर माँ ने कहा–''यह देखो, तुम्हारी हाँड़ी भरी सब चीज मैंने खा ली।'' उन्होंने कहा–''माँ तुमने तो जरा–सा खाया। माँ ने कहा– इसे सबके मुख से मैंने ही खाया।'' उन्होंने कलकत्ते से बहुत सारे फल मँगाये थे, धीरे–धीरे माँ को देती थी। पाबना में अधिक फल नहीं मिलते। किन्तु माँ ने एक दिन डलिया सहित सब फल मुझसे मँगाकर सब बाँट देने को कहा। बोली–

''इतने फल जमाकर धीरे-धीरे खाने नहीं चाहियें, जहाँ जो मिलता है वही खाना चाहिये।'' इस तरह नाना प्रकार से आनन्द कर फिर सबको रुलाकर पाबना से रवाना हुई। उस साधु को पाबना पहुँचने के दूसरे ही दिन ज्वर आ गया। एक दिन ज्वर में ही सब कुछ खा लिया था। उसके बाद उस भीड़-भाड़ में माँ के समीप नहीं आये। बैठक में उन्हें रहने को स्थान दिया गया था। माँ का भी उस ओर जाना नहीं हुआ। आते समय भी उन्होंने माँ के समीप आकर भेंट नहीं की। उनके मन में न मालुम किस प्रकार का क्षोभ हुआ था, उन्होंने सोचा हो जब माँ मुझे अपने दर्शन नहीं देती हैं तब मैं भी नहीं जाऊँगा। भीड़-भाड़ के कोलाहल में माँ को उस ओर ले जाने का किसी को ध्यान भी नहीं रहा। माँ पाबना से रवाना हुई। रास्ते में आकर माँ ने साधु का समाचार पूछा। तब आशु ने कहा- ज्वर के कारण वे नहीं आ सके तथा रीसवश ही वे माँ के साथ भेंट करने नहीं आये। माँ ने कहा- ''मुझे स्मरण नहीं रहा।'' उसके बाद सबसे माँ ने कहा- ''क्यों तुम लोगों ने एक बार मुझे स्मरण नहीं दिला दिया?''

कलकत्ते लौटकर श्री श्री माँ का काक्स बाजार गमन

हम लोग माँ के साथ कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ते से कुछ ही दिनों में काक्स बाजार को रवाना हुये। चटगाँव होकर हम लोग काक्स बाजार पहुँचे। माँ की बुआ जमशेदपुर में ही अपनी लड़की के समीप रह गई। आशु भी कलकत्ते रह गया। कलकत्ते से स्व. अतुलदत्तजी की स्त्री (टुनू की माँ) हम लोगों के साथ हो ली। माँ एक दिन के लिये पहले भी एक बार (संवत् 1986 को जब आदिनाथ गई थी) ज्योतिष दादा के साथ काक्स बाजार गई थी। काक्स बाजार के वकील श्रीदीनबन्धु चक्रवर्ती माँ को ट्रेन से उतारकर अपने मकान में ले गये तथा समुद्र के किनारे वाले अपने मकान में ही उन्होंने माँ के रहने की व्यवस्था की। हम लोग माँ के साथ उस छोटे से बंगले में ही रहे। खाना-पीना दीनबन्धु बाबू के रहने के मकान में ही होता था।

पावना के संन्यासी की मृत्यु का पूर्वाभास

एक दिन माँ समुद्र के किनारे घूमते-घूमते बालू में गड्ढ़ा खोदने लगी। मेरे पूछने पर बोली- ''अपनी समाधि बना रही हूँ।'' मैं रोककर माँ को

उठा ले आई। उसके 3-4 दिनों के बाद ही डाक आई। माँ उसे देखते ही जल्दी से दूसरे कमरे में चली गई, मैं भी साथ-ही-साथ गई। मुझसे माँ ने कहा- "किसकी चिट्ठी आई, जाकर देख। पाबना से मृत्यु का समाचार तो नहीं आया है?" हमारी ये बातें हो ही रही थी कि इतने में भोलानाथजी चिट्ठी लेकर माँ के समीप जाकर बोले- "देखो, प्राणकुमार बाबू की चिट्ठी आई है, पाबना में उन्हीं के मकान में वह साधु मर गया है।" माँ ने उस समय मुझसे कहा- "साधु को तो मृत्यु के बाद समाधि ही दी जाती है। उस दिन मैं समाधि-स्थान बना रही थी न?"

रमना की काली मूर्ति के हाथ के आभूषणों की चोरी का पूर्वाभास

हम लोग 20-22 दिन काक्स बाजार रहे। पूर्वोक्त घटना के कुछ दिन बाद ही एक दिन अमावस्या को माँ ज्ञान बाबू मुन्सिफ के मकान में भोग ग्रहण करने गई। मैं भी साथ गई। वहाँ से अपने बंगले में लौटकर आते ही माँ अपने एक हाथ से दूसरे हाथ को मरोड़ते-मरोड़ते बोली- "तोड़ डालूँगी।" मुँह पर हँसी की झलक रहते भी नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। मैंने सोचा माँ का क्या ठीक? कहीं हाथ तोड़ न डाले, इसलिये बाधा डालते हुये दोनों हाथ पकड़कर हाथ सहलाने लगी। सारी रात माँ की न जाने कैसी विचित्र अवस्था रही। दूसरे दिन भी नेत्र सजल रहे और बीच-बीच में हाथ मरोड़ती थी। क्या कारण है, यह समझ में नहीं आया। कुछ ही दिनों के बाद ढाका से ज्योतिष दादा के पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि उसी अमावस्या के दिन ढाका के रमना आश्रम की कालीमूर्ति के हाथ तोड़कर चोर गहने ले गया है। माँ हाथ का जो भाग मरोड़ रही थी, कालीजी की मूर्ति के भी हाथ का वही भाग तोड़कर चोर गहना ले गया था। इस तरह दूर की खबर बहुधा माँ शरीर के भाव से प्रकट कर देती हैं।

काक्स बाजार में ननी की अवस्था का विवरण

यहाँ पर काक्स बाजार की एक दूसरी घटना का उल्लेख कर रही हूँ। इस बार काशी से ननी (कुंजमोहन मुखोपाध्यायजी का चतुर्थ पुत्र) हमारे साथ गया था। काक्स बाजार आकर एक दिन गायत्री जप (वह माँ के कथनानुसार गायत्री जप करता था) करते-करते दोपहर के समय सहसा उसकी अद्‌भुत अवस्था हो गई। सारा शरीर रोमांचों से मानों फूल उठा था। नेत्र

बन्द थे, पद्मासन में बैठा था, निरन्तर नाम-जप चल रहा था, बन्द ही नहीं हो रहा था। दीनबन्धु बाबू आदि उस अवस्था को देखकर दंग रह गये। माँ को पुकारकर बुलाया गया। माँ के आते ही उसने दौड़कर माँ के चरणों में मस्तक रखकर नमस्कार किया। नेत्रों से झर-झर आँसू गिर रहे थे। सारा शरीर पस्त पड़ गया था। बहुत अधिक आविषृता का भाव था। माँ भी देख रही थी। 2-3 दिन तक वह भोजन भी नहीं कर सका। कभी शरीर को एकबारगी अवश के समान छोड़ देता था। कभी-कभी अन्यमनस्क की सी स्थिति हो जाती थी। एक दिन रात्रि में माँ ने उसे एकान्त में ले जाकर उससे न जाने क्या कहा। उसके बाद उसका यह भाव घट गया।

श्री श्री माँ का आदिनाथ गमन

कुछ दिनों के बाद माँ वहाँ से हम लोगों को साथ लेकर आदिनाथ गई। वहाँ कुछ दिन रही। आदिनाथ में ही एक दिन भोलानाथजी के साथ न जाने क्यों माँ की एक झड़प हो गई। कुछ दिनों से भोलानाथजी का स्वभाव क्रुद्ध हो रहा था। माँ चुप रहती थी। आदिनाथ में भी भोलानाथजी ने उसी स्वभाव से न मालुम क्या कह दिया, माँ ने सहसा ऐसा हुंकार किया कि सभी चकित रह गये। भोलानाथजी भी चुप हो गये। क्षणभर में माँ के भी उक्त भाव में परिवर्तन हो गया और माँ समाधि अवस्था में चली गई। बहुत देर तक उसी अवस्था में पड़ी रही। तदनन्तर बहुत प्रयत्नों से माँ उठाई जा सकी। मैं पहले ही लिख आई हूँ कि भोलानाथजी के क्रुद्ध होने अथवा किसी सत्य वस्तु के प्रति किसी का उपेक्षा-भाव प्रकट करने पर माँ में एक भीषण अवस्था का परिवर्तन देखा जाता था।

भोलानाथजी के क्रोध से माँ का बाह्य अवस्था भेद

शाहबाग में भी एक दिन माँ भोजन करने बैठी थी, मैं खिला रही थी। भोलानाथजी खा-पीकर उठ गये थे। वह किस कारण आशु और अमूल्य के ऊपर गुस्सा हुये और उनको पीटा। कमरे में आते ही माँ बोली- ''कितनी बार कह चुकी हूँ कि मेरे भोजन करने के लिये बैठने पर इस प्रकार क्रोध न करो। किसी प्रकार भी वह नहीं रह रहा है।'' यह कहकर माँ चुप हो गई। भोजन नहीं कर पा रही थी। यह देखकर भोलानाथजी को भी उस समय क्रोध चढ़ा था। माँ के इस भाव को लक्ष्य कर ही उपेक्षा-भाव से

उन्होंने कुछ कह दिया। इतने में माँ एकाएक उठ खड़ी हुई। दाहिना हाथ उठाकर भयानक मूर्ति से हुंकार छोड़कर भोलानाथजी के समीप आ खड़ी हुई। भोलानाथजी बिल्कुल चुप थे। मैं तो भय से काँप रही थी। बाउल बाबू भी वहाँ थे। वे और पिताजी हाथ जोड़कर माँ-माँ कहकर शान्त होने के लिये माँ से प्रार्थना करने लगे। किन्तु माँ ने हुँकार छोड़कर ही आँखें बन्द कर ली एवं खड़े-खड़े धड़ाम से एकाएक जमीन पर गिरकर समाधिस्थ हो गई। उस दिन फिर उठाई नहीं जा सकी, दूसरे दिन अनेक प्रयत्नों से उठी। उस दिन भी प्राय: वही अवस्था रही। इसके विपरीत कितनी बार मैंने देखा है कि भोलानाथजी ने कितना क्रोध किया, कितना भला-बुरा कहा उससे माँ के 'आनन्दमयी' भाव में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हुआ। अनेक बार देखा है कि भोलानाथजी सम्भवत: और भी खूब क्रुद्ध हुये हैं, माँ को खूब गालियाँ दे रहे हैं। माँ के निकट आने पर भोलानाथजी और भी अधिक क्रुद्ध हो जाते थे, इसलिये माँ ने उनके निकट से हटकर हँस दिया। बोली- ''कहना-सुनना कुछ भी नहीं लगता। मेरा जब तक यह आनन्द का भाव रहेगा तब तक वे शान्त नहीं होंगे। क्रोध से शरीर और मन को केवल खराब करते हैं। मेरा तो किसी प्रकार का कुछ नहीं बिगड़ता। शरीर की अवस्था में जब कुछ परिवर्तन देखते हैं, तब वे शान्त होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि परिवर्तन होने की आवश्यकता है। इसलिये हो जाता हैं। मैं तो इच्छा से कुछ करती नहीं, जिसकी जरूरत होती है वही शरीर के भीतर हो जाता है।'' फिर कभी भोलानाथजी को शान्त करने के लिये हँसी का भाव छिपाकर गम्भीर बन जाती या कभी एकदम उदास हो जाती। वास्तव में तब भोलानाथजी शान्त हो जाते। इस तरह माँ न जाने कितने खेल करती। श्री आदिनाथ में माँ का उक्त भाव होने पर भोलानाथजी बहुत शान्त हुये।

श्री श्री माँ का चटगाँव होकर चन्द्रनाथ आदि स्थानों में भ्रमण करने के उपरान्त ढाका गमन एवं माँ के वर्तमान जागतिक जन्म का विवरण

आदिनाथ से हम लोग चटगाँव शशि बाबू के घर आये। उन्होंने माँ और भोलानाथजी का फोटो लिया। फिर उन्होंने माँ के बहुत फोटो लिये। शशिबाबू को साथ लेकर ही हम लोग चन्द्रनाथ गये। वहाँ शशिबाबू की

एक धर्मशाला है। उसी में उन्होंने हमारा सब प्रबन्ध किया। श्रीचन्द्रनाथ, बड़वानल, सहस्रधारा आदि सब जगह दर्शन किये। तदुपरान्त कसवा श्रीकाली मन्दिर जाना हुआ। यहीं पर माँ की दादी ने पोते की कामना से जाकर पोती के जन्म ग्रहण की प्रार्थना कर डाली थी। उसके बाद ही माँ का जन्म हुआ। कसवा एक दिन रहे। बाद में चाँदपुर गिरिजा दादा के मकान में जाकर कई दिन रहे। वहाँ से ढाका लौट आये। लगभग 5-6 महीनों के बाद माँ ढाका लौटी। सभी लोग माँ के दर्शन करने आये। कुछ दिन बाद जन्मदात्री (माता) को रामेश्वर दर्शन कराकर योगेश दादा भी ढाका लौट आये।

श्री श्री माँ का कलकत्ता आगमन एवं भोलानाथजी के भाई रेवरेण्ड चक्रवर्ती के साथ बहुत वर्षों के बाद मिलन

उसके कुछ दिन बाद एकाएक कलकत्ते से चारु बाबू के एक पत्र से खबर मिली कि भोलानाथजी के भाई, जो लगभग 22 वर्षों से लापता थे, कलकत्ते में ही हैं। उन्होंने चारु बाबू के साथ भेंट कर उन्हें अपना परिचय दिया था एवं कहा था कि माँ और भोलानाथजी के समाचार मुझे प्राप्त हुये-इत्यादि-इत्यादि। यह खबर पाते ही भोलानाथजी माँ को और आशु को साथ लेकर कलकत्ता चले गये। 5-7 दिन वहाँ रहे। भाई के साथ भेंट हुई। वे ख्रीष्ट-धर्मावलम्बी होकर ख्रीष्टधर्म (ईसाई) के पुरोहित पद पर हैं। अब वे रेवरेण्ड के.के. चक्रवर्ती नाम से परिचित हैं। बहुत दिनों के बाद मिलने से सभी को प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा कि मैं बहुत दिनों से कलकत्ते में हूँ, कुशारीजी आदि सभी को देखता रहा, किन्तु मैंने अपना परिचय नहीं दिया। इस समय माँ की यह अवस्था सुनकर अपना परिचय देने की इच्छा हुई, इसीलिये चारू बाबू के मकान में जाकर मैंने अपना परिचय दिया। चारू बाबू माँ के भक्त हैं, माँ उस मकान में आती-जाती हैं, यह सब खबर मुझे मिली थी।

* * *

तेरहवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का कलकत्ते से ढाका गमन एवं ढाका आश्रम की भूमि में प्राचीन साधकों की समाधियों की बात

5-7 दिन कलकत्ते रहकर भोलानाथजी माँ को लेकर ढाका चले आये। इधर आश्रम में बड़ा मन्दिर बनने वाला था। काम आरम्भ हो गया था। नगेन्द्र बाबू ही काम की देखभाल कर रहे थे। वे मजदूरों से काम करा रहे थे कि जमीन खोदते समय बहुत-सी समाधियाँ निकली। यहाँ तक की शरीर की हड्डियाँ तक पाई गई। कहीं पर हाँड़ी के अन्दर भस्म और मिट्टी के दीये मिले। माँ ने ही उन्हें दिखलाया। तीन समाधियाँ बड़े मन्दिर के बीच पड़ी। पास की एक दूसरी समाधि के ऊपर शिवलिंग स्थापित हुआ। शिव-मन्दिर बना। एक दूसरी के ऊपर माँ का पादपद्म स्थापित हुआ। माँ बोली- ''इस आश्रम की प्राय: सम्पूर्ण भूमि में समाधियाँ हैं।'' माँ की जो कुटी बनी उसके नीचे भी समाधि है। बीमारी के बाद जब माँ ने उस कुटी में आकर सोना आरम्भ किया तब माँ केवल एक साधारण कम्बल का बिछौना बिछाकर सोई। माँ दक्षिण की ओर सोई थी और भोलानाथजी उत्तर की ओर सोये। उनके बिस्तर में तोषक (गद्दा), चादर, रजाई, मशहरी, तकिया आदि सब कुछ था। एक दिन रात्रि के समय सहसा उठकर माँ ने भोलानाथजी से कहा- ''तुम उठकर मेरे बिस्तर पर जाओ, मैं तुम्हारे बिस्तर पर सोऊँगी।'' भोलानाथजी उठकर माँ के कम्बल पर सोये, तकिया भी नहीं था। कई एक कपड़ों की तह लगाकर उन्होंने उसे सिर के नीचे रखा। माँ भोलानाथजी के बिस्तर पर गई, उसी बिस्तर पर सोई। 3-4 दिन सोकर बोली- ''इस बिस्तर को उठा दो।'' यह कहकर कम्बल बिछाकर अपना बिस्तर लगाया। किन्तु माँ उत्तर की ओर ही रह गई। माँ उस ओर भोलानाथजी को सोने न देकर स्वयं ही उस ओर सोती। उस दिन से भोलानाथजी का भी कम्बल का बिस्तर हुआ। माँ ने यह जो स्थान-परिवर्तन किया, उससे भी नीचे समाधि की कोई घटना है, ऐसा उन्होंने सूचित किया। माँ ने एक कंकाल मूर्ति देखी थी। पीछे उन्होंने निश्चय किया कि वह ज्योतिष दादा के पूर्वजन्म का समाधि स्थान है।

माँ आश्रम में ही थी। बीच-बीच में भक्त अपने-अपने घर भी ले जाते थे, भोर में मैदान में भ्रमण करती थी। शाम के समय भी सब स्त्रियों को साथ लेकर माँ मैदान में घूमती थी। तब भद्र पुरुष बहुत आते थे। वे मैदान में बैठे-बैठे माँ का घूमना देखते थे।

रायबहादुर योगेशचन्द्र घोषजी का वृत्तान्त

रायबहादुर वृद्ध थे, वे कहते थे कि माँ की लीला मेरे तो कुछ समझ में नहीं आती है, तो भी इतना जानता हूँ कि ये असाधारण हैं। यह जो इतनी महिलाओं में घूम रही हैं, सबके ऊपर मस्तक उठा है, मानो राजहंसी* हैं। वास्तव में माँ के चलने का ढंग और शरीर का गठन ही एक विशेष प्रकार का है। घूमकर माँ मैदान में बैठती या कभी अपनी कुटी के बरामदे में बैठती। सभी लोग वहाँ माँ को घेरकर खड़े हो जाते या बैठते। इस प्रकार रात के प्राय: 9-10 बजे जाते। तब सब लोग धीरे-धीरे विदा लेते। कोई-कोई तो बहुत रात बीतने तक रहते।

एक बार श्री माँ जब कलकत्ता थी, उस समय उक्त रायबहादुर तथा उनके पुत्र से सम्बन्ध रखने वाली एक घटना घटी थी। उसका यहाँ उल्लेख कर रही हूँ।

---

* इन रायबहादुर की (योगेश चन्द्र घोषजी की) चर्चा पर माँ ने एक बार कहा था, " इनका भीतर का भाव अच्छा है, यद्यपि ये बाहर से अनेक विपरीत भावों के पथिक हुए हैं। जब मैं पहले-पहल शाहबाग गई थी, इनके साथ परिचय हुआ। मैं तो इनकी मोटर का हार्न सुनते ही कमरे के अन्दर चली जाती थी। उस समय मैं विशेष रूप से किसी के भी सामने जाती नहीं थी।" यह कहकर हँसने लगी। आगे उन्होंने कहा, "ये आकर मुझे पुकारकर बाहर बुलाते। मेरे समीप अपने जीवन की अनेक बातें कहते। एक दिन उन्होंने कहा था, "मेरी बाल्यावस्था का एक बन्धु संन्यासी हो गया है और मैं कहाँ पड़ा रह गया।" यह कहते-कहते नेत्रों से झर-झर आँसू गिरने लगे और एक दूसरे दिन कहा था, "हम कई लोग एक बार जंगल में घूमने जाकर मार्ग भूल गये। उस विपत्ति में पड़कर हम लोगों ने भगवान् का स्मरण किया। सहसा क्या देखते हैं कि एक बालक समीप में खड़ा है। उससे पूछते ही वह हमारा मार्ग दिखाकर हमें जंगल के बाहर ले आया। उसे पुरस्कार देंगे यह सोचकर जैसे पैसे खोलकर उसे देने गये तो देखा कोई नहीं है। तब हमने समझा भगवान् का ही यह स्वांग है, यह कहकर बहुत देर तक निरन्तर आँसू बहाने लगे।"

· किसके भीतर क्या भाव है, यह देखकर माँ कृपा करती हैं। हम लोग उसे न समझकर माँ के सम्बन्ध में बहुधा विरुद्ध मत प्रकट कर बैठते हैं। जैसे बहुधा कुछ लोग कहते हैं कि माँ बड़े लोगों पर ही कृपा करती हैं। यह अत्यन्त गलत धारणा है।

सन् 1927 के अप्रैल में श्री माँ कुछ समय के लिये कलकत्ते आई थी। उस समय रायबहादुर (श्रीयुत् योगेशचन्द्र घोषजी) कलकत्ते में 36 नं. थियेटर रोड़ भवन के एक भाग में सपत्नीक निवास करते थे। उक्त भवन ढाका के नवाब रायबहादुर की कन्या नवाबजादी प्यारीबानू खानम साहिबा का है। रायबहादुर नवाब इस्टेट में अपनी नौकरी के सम्बन्ध से उक्त मकान में रहते थे। उनके पुत्र श्रीयुत् अतुलचन्द्र घोष सरकारी नौकरी के सिलसिले में उस समय बारकपुर रहते थे। नवाबजादी साहिबा माँ की एक विशिष्ट भक्त हैं। उनके विशेष आग्रह के कारण माँ उनके उक्त मकान में कभी-कभी आकर निवास करती थी। उस समय तक माँ ने गृहस्थ के घर में रात्रि-निवास का परित्याग नहीं किया था।

दूर से भी श्री श्री माँ भक्त की विनती जान जाती हैं

श्री माँ कलकत्ते में रायबहादुर के साथ एक जगह उक्त मकान में हैं, यह सुनकर अतुल बाबू के मन में यह इच्छा हुई कि एक दिन अपने बारकपुर के मकन में माँ को ले जायें। तदनुसार माँ को ले जाने का दिन और समय निश्चित करने के अभिप्राय से वे एक दिन उक्त थियेटर रोड स्थित भवन में आये। किन्तु आकर उन्हें मालुम हुआ कि उस दिन श्री श्री माँ भोलानाथजी के संग 7-8 मील दूर अपने एक भक्त के मकान में रायबहादुर और उनकी पत्नी को साथ लेकर कुछ देर पहले चली गई हैं। लौटने में बहुत रात बीत जायेगी, यह भी उन्हें ज्ञात हुआ। अतुल बाबू नवाबजादी के साथ दिन स्थिर करने के सम्बन्ध में परामर्श कर उनसे अनुरोध कर गये कि उनके पिताजी के (रायबहादुर के) लौटने पर उनसे यह कह दें कि अतुल बाबू श्री माँ को एक दिन बारकपुर ले जाने का प्रबन्ध करने आये थे।

इधर उक्त भक्त के मकान में श्री माँ के सम्मुख जिस समय कीर्तन हो रहा था उस समय माँ अनेक बार असंबद्ध तथा उदासीनता-पूर्वक बोल उठी कि मुझे जाना होगा, मुझे जाना होगा। रायबहादुर या वहाँ उपस्थित और कोई व्यक्ति उस समय उसका कुछ अभिप्राय न समझ सके। उसके बाद उक्त भक्त के मकान से वापस आने पर जब रायबहादुर ने नवाबजादी के मुँह से यह सुना कि आपके पुत्र अतुल बाबू माँ को बारकपुर ले जाने की व्यवस्था करने के लिये आये थे, तब उनके समझ में आया कि श्री माँ ने

7–8 मील दूर से अतुल बाबू की बातचीत का सूक्ष्म दृष्टि द्वारा अनुभव कर ''मुझे जाना होगा, मुझे जाना होगा'' कहा था। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस समय अतुल बाबू उक्त व्यवस्था की बातें नवाबजादी के साथ कलकत्ते में कर रहे थे, ठीक उसी समय श्री श्री माँ अपने उक्त भक्त के मकान में इस तरह की बातें बोल उठी थी।

उसके बाद निर्दिष्ट दिन (संभवत: अप्रैल 1927 की 4 तारीख थी) श्री श्री माँ और भोलानाथजी को बारकपुर ले जाना हुआ। श्री माँ के शुभागमन का समाचार पाकर बहुत से लोग एकत्र हुये तथा सबने मिलकर बड़े आनन्द के साथ कीर्तन आदि किया।

कीर्तन के समय श्री श्री माँ की अद्‌भुत–अद्‌भुत बाह्य अवस्थायें

कीर्तन के समय भावावेश में श्री माँ दालान में लोट-पोट लेने लगी एवं भावावस्था में ही माँ के कितने ही प्रकार के कष्टसाध्य आसन अनायास होने लगे। उन्हें देखकर समागत सभी लोग विस्मित और मुग्ध हुये। उस समय माँ के मुख की क्या अलौकिक छटा थी, क्या अपूर्व भाव था! उसका भाषा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्त में समाधि अवस्था में ही उनके मुख से संस्कृत भाषामय कितने ही स्तोत्र, कितने ही मन्त्र अपने आप निकलने लगे। सभी लोग चकित और चित्रवत् निश्चेष्ट हो गए। श्री श्री माँ को संस्कृत भाषा का कुछ भी लौकिक ज्ञान नहीं है। फिर भी इस प्रकार के स्तोत्र आदि निरन्तर धाराप्रवाह से शुद्ध रूप में प्रादुर्भूत हुये कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। श्री श्री माँ का सब कुछ ही अलौकिक है।

रात में लगभग 11 बजे तक कीर्तन आदि चला। तब तक माँ का समाधि–भाव अपनी पूर्ण मात्रा में विद्यमान था। किन्तु उसी रात लौटना था अतएव श्री माँ को प्राय: अर्ध–चेतनावस्था में अति क्लेश से गाड़ी में बैठाकर भोलानाथ, रायबहादुर और उनकी पत्नी के साथ कलकत्ता पहुँचाया गया।

श्रीयुत् रामठाकुर महाशय का श्री श्री माँ का दर्शन करना

एक दिन श्रीयुत् रामठाकुर महाशय को लेकर प्राणकुमार बाबू आदि अनेक लोग माँ के आश्रम में आये थे। रामठाकुर महाशय ने आकर माँ

को साष्टांग प्रणाम किया, माँ भी हाथ जोड़े रही। कुछ देर रहकर वे चले गये। रामठाकुर महाशय माँ के पिताजी के समवयस्क हैं। उन्होंने माँ को प्रणाम किया और माँ ने उन्हें प्रणाम नहीं किया इस पर कई भक्तों ने उनके समीप जाकर प्रश्न किया। प्राणकुमार बाबू ने यह सुनकर माँ के समीप आकर माँ को उसकी सूचना दी। माँ हँसकर बोली– ''तुम उनसे कहना कि ठाकुर महाशय के चरण सदा ही मेरे सिरमाथे हैं, किन्तु मैं साधारण रूप से प्रणाम नहीं कर सकती। क्या करूँ? शरीर न जाने कैसा हो जाता है।'' यह बात सुनकर फिर किसी के भी कुछ कहने का अवसर न रहा। उधर रामठाकुर महाशय से (ये एक उच्च कोटि के साधक पुरुष हैं) उनके एक भक्त ने पूछा– ''आनन्दमयी माँ आपकी लड़की की समवयस्क है। आपने उनकी चरणधूलि क्यों ली? सब तो लेते नहीं?'' उन्होंने इसके उत्तर में कहा था– ''जो मेरे प्रणाम पाने के योग्य हैं, उन्हीं को मैंने प्रणाम किया।'' रामठाकुर महाशय अनेक लोगों से कहते– ''तुम रमना आश्रम जाकर माँ के दर्शन करो, माँ तो साक्षात् भगवती हैं।'' रामठाकुर महाशय के जीवन का इतिवृत्त अत्यन्त अद्‌भुत है।

श्री श्री माँ के साथ माधवी माँ का मिलन

सम्भवत: इसी बीच एक दिन प्रात:काल ज्योतिष दादा, माँ, भोलानाथजी और मुझको साथ लेकर तेजगाँव माधवी माँ के आश्रम में गये। माधवी माँ ने माँ का अत्यन्त आदर किया। उसके बाद वे भी रमना आश्रम में आई थी।

शरीर की बाह्य अवस्था में भेद रहने पर भी भीतर माँ की सदैव एक ही अवस्था है

एक दिन माँ दिन भर पड़ी रही, अपराह्णोत्तर उठकर मैदान में जा बैठी। बहुत से लोग माँ के समीप बैठे थे। उनमें से ''सारस्वत सभा'' के शीतल बाबू ने माँ से कहा– ''आप इस प्रकार जो पड़ी थी, उस समय शायद भगवान के साथ मिली थी। अब उस अवस्था से उतरकर हम लोगों के साथ बातें कर पा रही हैं।'' माँ हँसकर बोली– ''तुम क्या भगवान् से अतिरिक्त हो? बाबा, मैं तो उतरना-चढ़ना कुछ नहीं जानती। सदा एक ही अवस्था है। केवल शरीर की विविध क्रियाएँ बाहर दिखाई देती हैं।'' सिद्धेश्वरी

में बीमारी के समय भी जबकि सारा शरीर अति कृश हो गया था, माँ हँसती, बातें करती, केवल शरीर ही पत्थर के समान निश्चेष्ट रहता था। उक्त अवस्था की बात भी एक दिन माँ ने हँसते-हँसते कही थी, "इस समय मैं बोल रही हूँ, हँस रही हूँ, आँखें खुली हैं न, इसलिये शरीर जो पत्थर के समान पड़ा है, उसे कहते हो अशक्त हो गया है। फिर यदि मैं आँखे बन्द किये रहती और बोलना बन्द हो जाता, पहले इस शरीर की ऐसी अवस्थायें न जाने कितनी हुई, तब तुम लोगों ने कहा समाधिस्थ हैं। बातें करने पर, आँखें खुली रहने पर तो समाधिस्थ हुआ नहीं जाता?" यह कहकर हँस पड़ी। उस समय हमने सोचा बात ठीक ही है। शरीर की इस प्रकार की अवस्था तो कितनी बार मार्ग में चलते-चलते, बातें करते-करते कीर्तन में हुई। 2-3 दिन तक भाव में विभोर अवस्था में बीते हैं। किन्तु तब माँ आँखें मींचकर पड़ी रहती। इसीलिये हम लोगों ने उसे समाधि अवस्था कहा। वास्तव में इन सब अवस्थाओं का वृतान्त भाषा द्वारा कहना ही हमारा पागलपन है।

'साधन-समर' आश्रम के अतुल ठाकुर महाशय द्वारा माँ की अर्चना

माँ के संग सभी लोग आनन्द के साथ दिन व्यतीत कर रहे हैं। "साधन-समर" आश्रम के अतुल ठाकुर महाशय आकर माँ के चरणों में उपस्थित हुये। वे प्रतिदिन भोर में माँ को पुष्पांजलि देते थे। डलिया भर फूलों से माँ की गोद भर देते थे।

उषा दीदी की बात

माँ की उषा दीदी वाजितपुर के जानकी बाबू की स्त्री भी ढाका आई। कभी-कभी आश्रम में आती थी। माँ भी उनके डेरे में 2-3 दिन गई, मैं भी साथ गई। मैंने उनके मुँह से भी माँ का पहले का वृतान्त सुना। उन्होंने माँ के हाथ का पकाया हुआ न जाने क्या खाऊँगी कहा था, वह खिलाया नहीं गया। एक दिन आश्रम में माँ ने उनके इच्छानुसार भोजन बनाया, उनसे खाने को कहा गया। माँ भोजन बना न सकी, हाथ मानो काबू से बाहर हो गया, फिर भी जितनी बना सकी, बनाया। इस तरह कितने ही खेल हुये। कभी-कभी माँ कहती- "जो दिन बीतता है वह फिर आता नहीं।"

ढाका में दार्शनिक पण्डितों के प्रश्न पर श्री श्री माँ का आत्म–परिचय प्रदान

एक बार एक सभा के सिलसिले में अन्यान्य स्थानों से बड़े–बड़े दार्शनिक विद्वान ढाका आये। कलकत्ते से श्रीयुत् महेन्द्र सरकार महाशय भी आये। माँ का नाम सुनकर वे सब आश्रम में आये। ढाका के भी कुछ प्रोफेसर साथ आये थे। वे सब माँ के साथ बैठे। विविध बातें हुई। उन्होंने माँ का प्रारम्भिक जीवन–वृतान्त सुनना चाहा। माँ जितना कह सकी उतना माँ ने कहा। कुछ लोग उन सब घटनाओं को लिखकर भी ले गये। चर्चा चली, माँ के ममेरे भाई निशि बाबू और जानकी बाबू ने वाजितपुर में माँ की भावावस्था में माँ से पूछा था– ''आप कौन हैं?'' माँ कहती जा रही थी, ''उसके बाद मुख से क्या निकल पड़ा'' यही कहकर माँ दूसरी बात कह रही थी। किन्तु महेन्द्र बाबू आदि ने इसी जगह विशेष रूप से पकड़ की, ''आपके मुँह से क्या निकला था?'' इस विषय में तभी से माँ की ओर से निषेध था कि मुँह से जो निकल पड़ा, उसे जिन लोगों ने सुना, वे उसे बाहर व्यक्त न करें। आज बहुत वर्षों के बाद वही बात उठ गई। माँ कुछ देर चुप रहकर बोली– ''मेरे कहने से क्या? मैं तो अपनी इच्छा से कुछ कहती नहीं। जो बाहर निकल गया'' यह कहते ही मुँह लाल हो उठा, नेत्रों में भी आँसू भर आये। माँ बोली– ''मेरे मुँह से उस समय निकला था, पूर्ण ब्रह्म नारायण।'' यह कहकर माँ जाने कैसी हो गई। किन्तु बातें चलती रही। उसके बाद माँ ने अपनी दीक्षा का वृत्तान्त कहा। भोलानाथजी के गुरु और उनकी दीक्षा के सम्बन्ध में सारा का सारा वृत्तान्त विस्तार से उन लोगों ने सुनना चाहा। माँ ने भोलानाथजी की ओर निहारकर जरा मुस्कराकर अनुमति की आकांक्षा की। भोलानाथजी के इशारे से निषेध करने पर माँ ने कहा– ''वे निषेध कर रहे हैं।'' उसके सम्बन्ध में फिर कुछ नहीं बोली। बहुत देर तक बातचीत होने के बाद वे चले गये। माँ कमरे में आकर न मालूम कैसी हो गई। अपने मुँह से अपना परिचय व्यक्त होने के कारण शरीर कैसा हो गया, लेटकर पड़ी रही। भोलानाथजी ने कहा– ''क्यों कहा? तुम्हीं ने तो निषेध कर रखा था।'' माँ बोली– ''मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं। प्रतीत होता है कि समय आ गया है, इसलिये इस प्रकार बाहर व्यक्त हुआ।'' बहुत देर तक माँ पड़ी रही और आँखों से आँसू गिरते रहे।

उषा दीदी के निकट उस प्रकार परिचय प्रदान

फिर एक दिन उषा दीदी आई। उनकी उपस्थिति में भी हमने यह बात उठाई थी। वे भी बोली– ''इतने वर्षों के बाद फिर बोलने में हानि क्या है? अब तो प्रकट हो ही चुका है। जगत् की माता के रूप में बाहर विख्यात हुई हैं।'' यह बात माँ से कहकर बोली– ''उस दिन आपने कहा था, 'पूर्ण ब्रह्म नारायण।'' माँ समीप ही बैठी थी। यह बात कहने के बाद ही माँ के नेत्र और मुख लाल हो गए। नेत्रों से झर-झर जल गिरने लगा। उषा दीदी माँ की यह अवस्था देखकर बहुत ही लज्जित हो गई। माँ के पैर पकड़कर क्षमा माँगने लगी। कहने लगी– ''यह बात कहकर क्या अपराध कर बैठी?'' माँ ने उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा– ''कुछ भी अपराध नहीं किया। जिस समय जो होने वाला होता है वह हो ही जाता है। अन्यथा इतने वर्षों के बाद तुम्हारे साथ ही इस प्रकार भेंट क्यों हुई। यह बात ही क्यों उठी?''

इस विषय में श्री माँ के मुँह से जैसा मैंने सुना है, उसका संक्षिप्त विवरण यों है–

श्री श्री माँ के श्रीमुख से उनके आत्मपरिचय का विवरण

वाजितपुर में माँ की अपने आप दीक्षा सम्पन्न हो जाने के अनन्तर एक दिन माँ अपने जप आदि कार्य में बैठी थी, शरीर में भाँति-भाँति की क्रियायें हो रही थी, जप भी होता जा रहा था। दीक्षा के बाद से नित्य नियमित रूप से थोड़ा बहुत काम हुये बिना माँ जल भी ग्रहण नहीं करती थी। यह सब देखकर माँ के ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्यजी ने भोलानाथजी से कहा– ''इसका (बाहर तो दीक्षादि हुये नहीं) यह सब क्या हो रहा है? दीक्षादि हुये नहीं, कुछ नहीं, यह सब क्या कर रही है? तुम क्या कुछ कह नहीं सकते?'' उसी समय सहसा माँ के भाव में कैसा एक विचित्र परिवर्तन हो गया। चेहरा भी बदल गया। बड़े भाई से बोल उठी– ''क्या कहेगा रे, क्या कहेगा?'' वे माँ की ओर देखकर मारे भय के पीछे हट गये। डरते हुये सहसा बोल उठे– ''आप कौन हैं?'' माँ के मुँह से निकला 'पूर्ण ब्रह्म नारायणी'', भोलानाथजी ने भी जिज्ञासा की, कि ''तुम कौन हो?'' माँ के मुँह से निकला, ''महादेवी''। इसी समय निशि बाबू ने पूछा–

''क्या आपकी दीक्षा हुई है?'' माँ बोली-''हाँ''। निशि बाबू बोले- ''क्या रमणी बाबू की दीक्षा हुई है?'' माँ ने उत्तर दिया-''नहीं।'' उन्होंने पूछा- ''कब होगी?'' माँ ने कहा- 5 महीने बाद, 15 सौर अगहन अमुक बार अमुक तिथि को, सब बतला दिया। वे तिथि नहीं समझ सके, यह समझकर माँ ने स्पष्ट रूप से कहा-''जानकी बाबू तालाब में मछलियाँ पकड़ रहे हैं, उन्हें पुकारकर बुला लो, वे समझेंगे।'' माँ जिस जगह बैठी थी वहाँ से जानकी बाबू दिखाई नहीं पड़ते थे। किन्तु माँ ने कह दिया कि तालाब में मछली पकड़ रहे हैं। उसी समय जानकी बाबू को पुकारकर बुलाया गया। जानकी बाबू ने आकर तिथि जान ली। जानकी बाबू ने भी जिज्ञासा की, कि ''आप कौन हैं?'' उनके निकट माँ के मुँह से निकला, ''पूर्ण ब्रह्म नारायण।'' उन्होंने भी ठट्ठे से कहा-''आप शैतान हैं।'' माँ कहती हैं-''उस समय मेरे शरीर की आसनासीन अवस्था थी। शरीर पर वस्त्र भी ठीक न थे। मैं जानकी बाबू के सामने घूँघट काढ़ती थी। भोलानाथजी भी बड़े भाई के निकट अत्यन्त लज्जाशील रहते थे। न जाने क्यों उस समय यह सब भाव नहीं रहा।* मैं जान रही थी कि शरीर में वस्त्र ठीक नहीं है। किन्तु ठीक कर देने के अनुरूप लज्जा का भाव ही नहीं था। मैं स्पष्ट रूप से सब बातें कह रही थी। इन सब बातचीतों के कारण वे उस दिन ऑफिस में भी कोई नहीं गये। लगभग सन्ध्या तक यही सब होता रहा।'' चर्चा छिड़ी कि माँ एक बार हुई ''नारायणी'', एक बार हुई ''नारायण'' और एक बार हुई ''महादेवी''; इसका कारण क्या है? इस पर माँ ने कहा-''आत्मीयों का स्त्रीभाव या भगिनीभाव है, इसलिये उनके निकट स्त्रीलिंग शब्द आविर्भूत हुआ, उनके भाव के अनुसार। किन्तु वास्तव में नारायण शब्द ही यथार्थतः

---

* संवत् 1979 वि. के वैशाख मास से ही माँ के भाव में विशेष परिवर्तन आरम्भ हुआ। संवत् 1979 के श्रावण मास से ही माँ की दीक्षा अपने आप सम्पन्न हो गई। इस दीक्षा के बाद ही माँ के मुख से स्तोत्रादि के समान संस्कृत भाषा में अनेक बीजादि प्रकट हुए। माँ ने कहा, इन सबके प्रकट होने के समय सर्वप्रथम ॐ शब्द प्रकट हुआ। छोटी अवस्था में गुरुजनों ने ॐ उच्चारण का निषेध कर रखा था, इसलिए माँ ॐ का उच्चारण नहीं करती थी। किन्तु उस समय निषेध की बात विस्मृत हो गई। भीतर से मानो धक्का देकर बाहर निकलने लगा। आसन और मुद्रादि दीक्षा के पूर्व से ही आरम्भ हुए। संवत् 1980 में जब माँ शाहबाग आईं, उस समय भी विशेष रूप से योग-क्रियादि शरीर के भीतर हो जाते थे। इन्हीं सब कारणों से उस समय 1 मास माँ का ऋतुधर्म बन्द रहा। तदुपरान्त कुछ दिन स्वाभाविक रूप से होकर 27-28 वर्ष की अवस्था में ही माँ का ऋतुधर्म एकदम बन्द हो गया।

व्यक्त हुआ था और महादेवी शब्द की अभिव्यक्ति का केवल यही कारण है कि जभी जिस किसी देवी या देवता की पूजा की जाती है उस समय पूजक को तद्भावापन्न होना पड़ता है। मैं उस समय पूजा कर रही थी, इसलिये ऐसा शब्द मुँह से प्रकट हुआ। किन्तु पूजा कर रही थी इसका अभिप्राय बाहर की किसी प्रकार की फूल, बेलपत्र की पूजा से नहीं है। दीक्षा के अनन्तर इसी प्रकार की कितनी ही क्रियाएँ हो जाती थी।

शाहबाग में एक बार जंगल में धूमते समय मैंने माँ का परिचय जानने के लिये माँ से बार-बार अनुरोध किया। माँ ने कहा- माँ की दीक्षा अपने आप सम्पन्न हो गई। इस दीक्षा के बाद ही माँ के मुख से स्तोत्रादि के समान संस्कृत भाषा में अनेक बीजादि प्रकट हुये। माँ ने कहा- इन सबके प्रकट होने के समय सर्वप्रथम ओम् शब्द प्रकट हुआ। छोटी अवस्था में गुरुजनों ने ओम् उच्चारण का निषेध कर रखा था, इसलिये माँ ओम् का उच्चारण नहीं करती थी। किन्तु उस समय निषेध की बात विस्मृत हो गई। भीतर से मानो धक्का देकर बाहर निकलने लगा। आसन और मुद्रादि दीक्षा के पूर्व से ही आरम्भ हो चुके थे। दीक्षा के बाद और भी विशेष रूप से आरम्भ हुये। संवत् 1980 में जब माँ शाहबाग आई, उस समय भी विशेष रूप से योग-क्रियादि शरीर के भीतर हो जाते थे। इन्हीं सब कारणों से उस समय एक मास माँ का ऋतुधर्म बन्द रहा। तदुपरान्त कुछ दिन स्वाभाविक रूप से होकर 27-28 वर्ष की अवस्था में ही माँ का ऋतुधर्म एकदम बन्द हो गया।

मुझे एक बार उस तरह के आत्मपरिचय का प्रदान

माँ ने कहा-''एक नींबू का काँटा ले आ।'' जंगल का न जाने कौन एक छोटा-सा फल था, उसका रस प्राय: बैंगनी रंग का था, उसका मुँह थोड़ा छीलकर दवात बनाई गई और नींबू का काँटा बना कलम। संग में और कोई दूसरा था नहीं। माँ ने मेरे हाथ में या कपड़े में उस दावात की स्याही और उस कलम से लिख दिया, ''नारायण''। किन्तु उस समय यह सब किसी से कहने का निषेध था, इसलिये मैंने इसे व्यक्त नहीं किया। अब तो प्रकट ही हो चुका है। इसलिये मैंने यह बात व्यक्त की है। उस काँटे और फल को मैंने रख छोड़ा था, इस समय वह सूखकर पिचक गया है।

ढाका के आश्रम के मन्दिर का इतिहास

इधर मन्दिर तैयार हो गया। निश्चय हुआ कि माँ के जन्मोत्सव के अवसर पर मन्दिर में देवता की प्रतिष्ठा होगी। मन्दिर का कैसा आकार-प्रकार होगा, यह भी माँ ने बतला दिया। काली-मन्दिर को गर्भस्थ कर मन्दिर चारों ओर से उठा। काली मन्दिर का नीचे का लगभग आधा भाग इस बड़े मन्दिर के मध्य में आ गया। जो भाग ऊपर रहा, उसमें एक ओर दरवाजा रखा गया। दरवाजा खोलने की जगह भी रख दी गई। काली-मन्दिर की छत के ऊपर ही जिन देवता की प्रतिष्ठा होने वाली थी, उनका सिंहासन बना। मन्दिर के अन्दर एक गुफा बना दी गई। सिंहासन के पीछे की ओर से ही उस गुफा में जाने के लिये सीढ़ियाँ बनाई गई। मन्दिर के बाहर की ओर ही तीन छोटी-छोटी कोठरियाँ भी बनाई गई एवं बरामदे के नीचे भी दोनों ओर कोठरियाँ तैयार की गई। केवल बैठकर साधन-भजन करने के लिये ही ये सब कोठरियाँ बनाई गई।

संवत् 1988 का श्री श्री माँ का जन्मोत्सव तथा मन्दिर में विविध देव-मूर्तियों की प्रतिष्ठा

संवत् 1988 वि. का उत्सव 19 सौर बैशाख से आरम्भ हुआ। कलकत्ते से फूफाजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी), बुआ तथा भोलानाथजी के भाई (जो लापता रहे, कामिनी बाबू या रेवरेण्ड चक्रवर्ती महाशय) गये। कामिनी बाबू सपरिवार गये थे। कलकत्ते से और भी अनेक भक्त गये। मन्दिर में अन्नपूर्णाजी की एक ओर श्रीशिवजी भिक्षा का खप्पर लेकर खड़े हैं, दूसरी ओर माँ ने जिस प्रकार की आकाश में सजीव काली-मूर्ति देखी थी उसी प्रकार की आकाश में सजीव सी काली-मूर्ति है (पैरों के नीचे माँ ने शिवजी को नहीं देखा था, इसलिये शिवजी नहीं रखे गये)। अन्नपूर्णा के ऊपर शिव-मूर्ति है। माँ के शरीर में जो सब आभूषण थे उनसे इन सब मूर्तियों के आभूषण बनाये गये। भोलानाथजी ने अपने हाथ से ही सबकी स्थापना की। माँ कुछ देर मन्दिर में रहकर भीतर की गुफा में जाकर पड़ी रही। माँ की जन्मतिथि के दिन इस बार यह अन्नपूर्णा मूर्ति स्थापित की गई एवं इस मूर्ति पर ही श्री माँ की जन्मतिथि की पूजा हुई। उस दिन से फिर ढाका में जन्मतिथि के दिन माँ के शरीर के ऊपर पूजा नहीं हुई, अन्नपूर्णा के ऊपर

ही पूजा होती है। इतने दिनों तक गुहा में स्थित कालीजी का भोग मटरी बुआ आदि सभी बना देते थे। इस दिन से माँ ने आदेश दिया कि योगेश दादा मन्दिर में पूजा करेंगे। योगेश दादा, अतुल, कमलाकान्त अथवा कुलदा दादा ही भोग बनायेंगे, भोग बनाने के लिये जल भी वे ही खींचेंगे। वे आज से किसी के हाथ का नहीं खायेंगे, शुद्धता से रहेंगे। योगेश दादा इतने दिनों तक अन्यत्र रहते थे। उस समय से उन्हें आश्रम में ही रहने का आदेश हुआ। मन्दिर की प्रतिष्ठा होने के पहले एक दिन माँ ने हम लोगों के द्वारा सिद्धेश्वरी में अति उत्तम रीति से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ बनवाकर ब्रह्मचारियों को खिलाने की व्यवस्था की। माँ का भोग भी उस दिन वहीं हुआ। कुलदा दादा, योगेश दादा, अतुल, कमलाकान्त और कानू को माँ ने स्वयं बैठकर खूब तृप्ति के साथ भोजन कराया, क्योंकि इसके बाद से ही वे लोग मन्दिर की सेवा का भार लेकर फिर किसी के भी हाथ का नहीं खा सकेंगें। भोलानाथजी ने स्वयं ही होमादि का विशेष रूप से अनुष्ठान किया।

यज्ञाग्नि की स्वतंत्र व्यवस्था एवं काली मूर्ति की भूगर्भस्थ मन्दिर में स्थापना और वर्ष में एक दिन जाति-पाँति के भेदभाव के बिना सबके लिये उस मन्दिर में प्रवेश की व्यवस्था

इस प्रतिष्ठा के बाद से ही कुण्ड में जो यज्ञाग्नि दिन-रात जल रही थी उसे बन्द कर दूसरे प्रकार से यज्ञाग्नि लाकर रखवाली की व्यवस्था की एवं प्रतिदिन कुण्ड में उसी अग्नि को लाकर यज्ञ होगा, ऐसी व्यवस्था हुई। काली मूर्ति की ही इतने दिनों तक पूजा होती थी। इस जन्मतिथि के दिन काली-पूजा करके भूगर्भस्थ काली मन्दिर का दरवाजा बन्द कर दिया गया। दरवाजे के सामने उक्त कालीजी का एक फोटो रखा गया। उस फोटो पर ही पूजा होती है और उसी पर प्रतिदिन अड़हुल की माला चढ़ाई जाती है। उक्त दरवाजे को खोलने और बन्द करने का भार योगेश दादा को सौंपा गया। निश्चय हुआ कि प्रतिवर्ष जन्मतिथि के समय एक दिन के लिये भीतर के काली-मन्दिर का दरवाजा खुला करेगा। दोपहर के समय पूजा के पश्चात् सभी लोग (जाति-पाँति के भेद-भाव के बिना) मन्दिर में प्रवेश कर सकेंगे। सन्ध्या के पहले मन्दिर की शुद्धि कर पुनः काली-पूजा करके

काली–मन्दिर का दरवाजा एक वर्ष के लिये बन्द हो जायेगा। योगेश दादा ही दरवाजा खोलेंगे एवं बन्द करेंगे, ऐसा माँ का आदेश हुआ।

श्री श्री माँ के नेतृत्व में सारी रात महिलाओं का नाम–कीर्तन, माँ की जल–क्रीड़ा तथा सबके साथ बालभोग ग्रहण, अपूर्व उत्सवानन्द

उक्त जन्मोत्सव में कलकत्ते से यतीश दादा के तीन भाई, नवतरु दादा* और ज्ञान दादा गये। माँ ने एक दिन कहा– ''बहुत रात्रियों से पुरुष जागरण कर नाम–कीर्तन कर रहे हैं, आज हम महिलाओं के साथ नाम–कीर्तन कर रात्रि व्यतीत करेंगी।'' यह बात सुनकर सब महिलाओं से हमने कहा। जो वहाँ उपस्थित थी, वे आनन्दपूर्वक सहमत हुई। उस दिन रात्रि में लगभग 30 स्त्रियों ने सम्मिलित होकर रात भर जागरण कर नाम–कीर्तन किया। माँ ने भी साथ–साथ नाम–कीर्तन किया। दूसरे दिन यह खबर पाकर अनेक स्त्रियों ने पुनः रात्रि–जागरण के लिये माँ से अनुरोध किया। माँ भी राजी हो गई। स्त्रियों ने सम्मिलित होकर फिर एक दिन रात भर नाम–कीर्तन कर रात्रि–जागरण किया। उस दिन 100–150 स्त्रियाँ एकत्र हुई थी। माँ भी महा–आनन्द से सारी रात सबके साथ जागी, कितना आनन्द किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नाम–कीर्तन पुरुषों को सौंपकर माँ स्त्रियों को लेकर स्नान करने चली। उस समय एक अत्यधिक सुन्दर दृश्य हुआ। महाआनन्द से सबको साथ लेकर माँ ने सिद्धेश्वरी के काली मन्दिर के पोखरे में स्नान किया। बहुत देर तक जल–क्रीड़ा हुई। स्नान के बाद बाहर निकलकर माँ ने कहा– ''अब हमें बाल भोग दो।'' पिताजी तथा और भी अनेक लोग उपस्थित थे, वे बालभोग का बन्दोबस्त करने लगे। माँ ने सबके साथ सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर कीर्तन आरम्भ किया। तदनन्तर दही, च्यूड़ा और फरवी इत्यादि जो वहाँ मिल सका जुटाकर बालभोग दिया गया। बहुत लोग मैदान को भरकर प्रसाद पाने बैठ गये। माँ भी उन्हीं के साथ बैठी। इस तरह आनन्दोत्सव कर माँ सबको साथ लेकर रमना आश्रम आई। सभी स्त्रियाँ प्रायः विदा लेकर अपने–अपने घर चली गई। एक दिन और

---

* नवतरू दादा श्री माँ के एक बड़े विशिष्ट भक्त हैं एवं उनके विशेष कृपा–भाजन सन्तान हैं। इन्होंने विवाहादि नहीं किया एवं माँ के लिए पागल से हैं। ज्ञान दादा भी अविवाहित एवं नवतरु दादा के प्रिय मित्र हैं। ये परमहंस देव की सहधर्मिणी श्री माँ शारदा देवी के दीक्षित शिष्य हैं। आनन्दमयी माँ के प्रति भी इनकी तीव्र भक्ति और अनुराग है।

रात्रि में माँ ने स्त्रियों के साथ कीर्तन कर रात्रि-जागरण किया। उस बार भी सिद्धेश्वरी के पोखरे में स्नान और वहाँ पर पूड़ी और मिठाई द्वारा बालभोग हुआ। इस प्रकार महिलाओं को साथ लेकर पहले कीर्तन आरम्भ हुआ। उसके बाद स्त्रियाँ कभी-कभी दिन में भी माँ के समीप बैठकर कीर्तन करती। जब माँ स्त्रियों को साथ लेकर रात्रि में कीर्तन करती उस समय सब पुरुषों को बाहर हटा दिया जाता। आश्रम का फाटक बन्द कर दिया जाता। केवल माँ के निर्वाचित दो-चार व्यक्ति फाटक के बाहर मैदान में बैठे रहते। माँ सभी काम इसी प्रकार सुश्रृंखला के साथ करती। इतनी अधिक स्त्रियाँ (बहुत-सी अल्प-वयस्का लड़कियाँ भी थी) मैदान में रहेंगी, इसीलिये 2-4 पुरुषों के पहरे के समान बाहर मैदान में बैठाये रखती। इस प्रकार उत्सव समाप्त हुआ।

पिताजी का और मेरा गृह-त्याग

उत्सव के कुछ दिन पहले ही माँ के आदेश से पिताजी ने और मैंने मकान छोड़कर सिद्धेश्वरी में स्थान ग्रहण किया। उस दिन से फिर पिताजी ने मकान में प्रवेश नहीं किया और मैंने भी नहीं किया। उत्सव समाप्त हो गया। मन्दिर में सायंकाल की आरती देखने के लिये माँ अक्सर स्त्रियों को साथ लेकर मन्दिर के बरामदे में खड़ी रहती। ब्रह्मचारी ही भोग बनाते थे। प्रतिदिन माँ जाकर भोग बनाने के लिये बैठती। निश्चय हुआ कि सप्ताह में दो दिन खिचड़ी, तीन दिन तरकारी चावल मिलाकर पकाया जाय, भात तथा दो दिन पाँच तरकारियों द्वारा अन्नपूर्णा का भोग होगा। नियमानुसार ही सब काम होने लगे। अटल दादा भी इस उत्सव में सपत्नीक आये थे।

* * *

चौदहवाँ अध्याय

ढाका त्याग और वाजितपुर गमन (संवत् 1988 ज्येष्ठ)

उत्सव के अन्त में संवत् 1988 के ज्येष्ठ मास में माँ के बाहर जाने की चर्चा चल रही थी। कुछ दिनों के बाद ही माँ और भोलानाथजी का वाजितपुर होकर दार्जिलिंग जाना निश्चित हुआ। साथ में जाने वाले थे पिताजी, ज्योतिष दादा, अटल दादा (सपत्नीक) और भी 2-1 व्यक्ति तथा मैं। हम लोग आश्रम से स्टेशन जाने के लिये मोटर में बैठे। इसी बीच श्रीयुत् राजेन्द्र कुशारीजी की स्त्री, श्रीयुत् यतीन्द्र मजूमदारजी की स्त्री और भी 2-1 स्त्रियाँ माँ के साथ भेंट करने आई। बातें करते-करते वे भी उस एक वस्त्र से ही माँ के साथ मोटर में बैठ गई, वे भी वाजितपुर जायेंगी। यह पागलपन देखकर लोग क्या कहेंगे यह सोचकर माँ हँसने लगी। साथ में अनेक लोग हो गये। हम लोग इस बार पहले ही वाजितपुर गये। रास्ते में जाते समय श्रीपुर पड़ता है। माँ वहाँ जेठजी के समीप रहती थी। विवाह के बाद श्वशुरजी एक वर्ष तक रहे उसके बाद मर गये। माँ विवाह के बाद 3-4 वर्ष जेठजी के समीप ही रही, यह पहले ही लिखा जा चुका है। वे श्रीपुर में स्टेशन मास्टर थे। स्टेशन का मकान दिखाकर माँ ने कहा- ‘‘इसी मकान में हम लोग रहते थे।’’ पोखरा दिखलाकर माँ बोली- ‘‘इस पोखरे में मैंने स्नान किया है।’’ इत्यादि-इत्यादि। हम लोग मैमनसिंह कालीपद् बाबू के मकान होकर गये थे। वाजितपुर में भी दर्शनार्थियों की खूब भीड़ लगी। तात्कालिक नायब सुरेन्द्र बाबू के मकान में माँ उतरी। उनके मुँह से तथा अन्यान्य अनेक लोगों के मुँह से भी माँ ने पहले वाजितपुर की जो-जो घटनाएँ कही थी, वे सब दूसरी बार हमें सुनने को मिली। माँ पहले सुरेन्द्र बाबू के मकान के पास ही जिस मकान में रहती थी वह खाली पड़ा था। घर गिर गया था, दीवारे अभी भी खड़ी थी। माँ के जिस जगह बैठकर 5 मास तक आसन आदि हुये थे उस जगह की मिट्टी लाकर रमना आश्रम की पंचवटी की वेदी के भीतर रखी गई। माँ ने जो कटहर का पेड़ लगाया था, उस पर कटहर फले थे। भक्त लोग उससे एक-दो कटहर ले आये। उस पेड़ का कटहर उनके लिये कितने आदर की वस्तु है। माँ जहाँ रसोई बनाती

थी उस स्थान को भी हम लोगों ने देखा। जो औरत माँ का काम कर देती थी उसे भी माँ ने दिखलाया। माँ जिस समय मौन रहती थी वही स्त्री उस समय अत्यन्त सुन्दर रीति से सब काम-काज कर जाती थी। माँ ने और भी कई पुराने चिह्न दिखलाये। माँ का आगमन सुनकर सभी माँ के दर्शन करने आये। 2-3 दिन वहाँ रहे, खूब आनन्द आया।

वहाँ से मैमनसिंह होकर दार्जिलिंग गमन (सं. 1988 ज्येष्ठ)

उसके बाद हम पुनः मैमनसिंह कालीपद बाबू के घर आये। वहाँ से बहुत से साथी ढाका चले गये। हम लोग माँ के साथ दार्जिलिंग गये। दार्जिलिंग पहुँचकर हम स्टेशन पर बैठे थे, कहाँ जाना होगा कुछ ठीक न था। इसी बीच वीरेन्द्र महाराज सहसा स्टेशन पर उपस्थित हुये। वे माँ को वहाँ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं अत्यन्त आग्रह के साथ माँ को अपने निवास स्थान पर ले गये। हम लोग वहीं रहे। एक दिन खूब कीर्तन हुआ। 4-5 दिन दार्जिलिंग रहकर माँ सबको साथ लेकर नीचे उतर आई।

कलकत्ता और चूँचुड़ा होकर नवद्वीप गमन (सं. 1988 ज्येष्ठ)

कलकत्ते की ओर माँ चली। रास्ते से ही ज्योतिष दादा और अटल दादा ढाका चले गये। हम लोग माँ के साथ कलकत्ता गये। बालीगंज में यतीश दादा के मकान में ठहरे। वहाँ से प्राणकुमार बाबू के बुलाने पर चूँचुड़ा जाना हुआ। यतीश दादा आदि अनेक लोग साथ गये। वहाँ भी सबने माँ के साथ कीर्तनादि कर खूब आनन्द लूटा। प्राणकुमार बाबू की स्त्री के कमर में दर्द था, यह पहले ही लिख चुकी हूँ। माँ एक दिन सबको लेकर गंगा स्नान करने गई। माँ गंगा में तैरकर सबके साथ स्नान कर रही थी, अनेक स्त्रियाँ माँ को गोद में ले रही थी, फिर माँ से चिपटकर माँ की गोद में जा रही थी। इस तरह कितने ही खेल हो रहे थे। प्राणकुमार की स्त्री ने भी माँ को किसी प्रकार गोद में लिया एवं माँ की गोद में बैठी। चूँचुड़ा से गिरीन्द्र दादा का मकान समीप ही है। वे आकर अपने मकान 'आखूना' में माँ तथा अन्यान्य सबको ले गये। दो दिन वहाँ रहकर सब लोग माँ के साथ पुनः चूँचुड़ा लौट आये। 2-3 दिन चूँचुड़ा रहकर तदुपरान्त नवद्वीप जाना हुआ। प्राणकुमार बाबू की स्त्री भी साथ गई। कलकत्ते का दल भी साथ ही था।

प्राणकुमार बाबू की स्त्री की आश्चर्यजनक रोग–मुक्ति

नवद्वीप जाकर भी माँ ने सबको साथ ले गंगाजी में स्नान किया। उस समय भी माँ ने प्राणकुमार बाबू की स्त्री को हाथ पकड़-पकड़कर जल में ही घुमाया एवं कहा– ''तुम बरामदे की रेलिंग पकड़–पकड़कर थोड़ा–थोड़ा घूमने की चेष्टा करो। प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्या को चेष्टा करो।'' उसके बाद से वे वैसा ही करने लगी। उसी दिन से आश्चर्यजनक फल देखा गया। वे थोड़ा–थोड़ा करके कम से अधिक टहल सकती थी। भोलानाथजी ने भी उन्हें दो बार(एक बार पाबना और एक दूसरे स्थान में, स्थान का स्मरण नहीं है) मन्त्र पढ़कर झाड़ दिया था। उन्होंने 7–8 वर्ष के रोग से मुक्ति पाई। लगभग 9–10 महीनों के बाद कलकत्ते जाकर हमने उन्हें स्वाभाविक रूप से ही चलते–फिरते देखा।

नवद्वीप में मन्दिरादि दर्शन और ललिता सखी का कीर्तन श्रवण

इससे पहले भी माँ तीन बार नवद्वीप जा चुकी थी। अन्तिम बार माँ हम लोगों को साथ लेकर ही गई थी। केवल एक ही दिन वहाँ रहे थे, कुछ विशेष देखा–वेखा नहीं। इस बार यतीश दादा वहाँ थे। वे नवद्वीप का कोना–कोना जानते हैं, बड़े–बड़े वैष्णवों के साथ भी उनका परिचय है। उन्होंने अनेक स्थानों के दर्शन कराये। ज्ञान दादा भी साथ थे। वे **श्री माँ शारदा देवी के (श्री रामकृष्णदेव की स्त्री)** के शिष्य हैं। **श्रीरामकृष्णदेव** की शिष्या चिरकुमारी श्री श्री गौरी माँ उस समय कई स्त्रियों को साथ लेकर नवद्वीप में अपने आश्रम में थी। ज्ञान दादा के प्रति उनका बहुत स्नेह है। ज्ञान दादा माँ को और हम सब लोगों को गौरी माँ के पास ले गये। वे अत्यन्त वृद्धा हैं, माँ ने उनके साथ कुछ देर आनन्द किया। वहाँ से राधेश्याम के मन्दिर में जहाँ बहुत स्त्रियाँ एकत्र होकर नाम–कीर्तन करती हैं, जाना हुआ। माँ वहाँ पर भी कुछ देर ठहरकर फिर अन्यत्र चली गई। इस प्रकार मन्दिरादि और सब प्राचीन स्थान देखे। सन्ध्या समय ललिता सखी के स्थान में भी गये। उनके साथ ही यतीश दादा का परिचय है। निश्चय हुआ कि वह रात्रि में 12 बजे माँ को कीर्तन सुनायेंगी। एक मन्दिर में खाने–पीने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ से खा–पीकर ललिता देवी के स्थान में जाकर नाट्य मन्दिर में बैठे। रात्रि में 12 बजे उन्होंने सुन्दर कीर्तन किया। यतीश

दादा ने भी साथ–साथ कीर्तन किया। रात बहुत बीत गई। माँ के आदेशानुसार हम सभी लोग उस रात्रि में माँ के साथ उक्त नाट्य मन्दिर में ही सोये रहे। दूसरे दिन माँ ने सबको साथ लेकर गंगा–स्नान किया। उस दिन प्राणकुमार बाबू की स्त्री को माँ ने जल में घुमाया था। अपराह्न के बाद भी माँ गंगा किनारे घूमने गईं, वहाँ बैठकर यतीश दादा की बड़ी लड़की लतिका ने गाना गाकर माँ को सुनाया। लतिका ने **'सुरधुनीर तीरे ओ के हरि बले नेचे जाय'** इत्यादि पद गाया।

नवद्वीप से कलकत्ते आगमन और यतीश दादा के मकान में अवस्थान

(सं. 1988 ज्येष्ठ)

संभवत: उसके दूसरे ही दिन माँ ने सबको साथ लेकर कलकत्ते को प्रस्थान किया। कलकत्ता पहुँचकर यतीश दादा के मकान की दूसरी मन्जिल के हाल में ही माँ ठहरी। सभी लोग रात्रि में माँ के साथ उसी हाल में सोते थे। कीर्तनादि भी उसी कमरे में होता था। एक दिन ब्रजेन्द्र गांगुली महाशय आदि अनेक लोग आयेंगे, कीर्तनादि होगा, बहुत से लोग प्रसाद भी पावेंगे, यह सब व्यवस्था हुई। वे आए और कीर्तन शुरू हुआ। बहुत दिनों के बाद उस दिन माँ का खूब भाव हुआ। माँ की वैसी अवस्था थी। इसलिये दिन भर किसी ने खाया नहीं। सन्ध्या को बहुत रात बीतने पर माँ के कुछ स्वस्थ होने पर भोग लगाया गया। तदनन्तर सबने प्रसाद पाया। हाल के कमरे में माँ का भाव हुआ था, इसलिये यतीश दादा आदि ने उस कमरे को माँ के तथा अन्यान्य देवी–देवताओं और सन्त–महात्माओं के चित्रों से मन्दिर के समान सजा दिया। तब से प्रतिदिन सन्ध्या के समय आरती और कीर्तन उसी कमरे में होता है। कलकत्ते के अनेकों भक्त आकर वहाँ सम्मिलित होते हैं। कलकत्ते पहुँचकर देखा कि सपरिवार निर्मल बाबू तथा हरेन्द्र डॉक्टर महाशय की स्त्री काशी से माँ के दर्शनार्थ आई है।

पुरी गमन और हरलाल बाबू के मकान में निवास एवं निर्मल बाबू के पुत्र सन्तोष की मृत्यु का पूर्वाभास

कुछ दिन बाद ही माँ ने हम लोगों को लेकर पुरी को प्रस्थान किया। साथ में निर्मल बाबू सपरिवार चले। काशी के हरेन्द्र डॉक्टर महाशय की

स्त्री भी माँ के साथ पुरी गई। हम लोग पुरी पहुँचकर हरलाल बाबू के निवास-स्थान में ठहरे। हरलाल बाबू यतीश दादा के ही कुटुम्ब के हैं। माँ सब लोगों के साथ उसी मकान में रही। एक दिन माँ सबके साथ छत पर बैठी थी, एकाएक बोल उठी- विपत्ति आ रही है, तुम लोग उसका निवारण कैसे करते हो, देखती हूँ।'' सभी लोग भयभीत हुये, किन्तु उपाय क्या था? कौन विपत्ति आने वाली है, यह किसी को भी पता न लगा। माँ ने और कुछ नहीं कहा किन्तु माँ के संकेत से हमें प्रतीत हुआ कि यहाँ पर कोई न कोई विपत्ति आएगी।

पुरी में मन्दिरादि दर्शन

रथ-यात्रा के उत्सव में कोई विशेष विलम्ब न था। अतएव मन्दिर उस समय बन्द रहा। देवता के दर्शन नहीं किये जा सके। माँ अक्सर शाम-सवेरे सभी को साथ लेकर समुद्र के किनारे घूमने जाती। बहुत समय वहीं बिताकर आती। किसी-किसी दिन हरिदास ठाकुर के समाधि-मन्दिर या अन्य किसी मन्दिर में जाती। जगन्नाथजी के मन्दिर में भी जाकर बाहर ही बाहर घूम आती।

पुत्र सन्तोष को पुरी छोड़कर निर्मल बाबू का काशी गमन

कुछ दिनों के बाद निर्मल बाबू आदि सभी चले जायेंगे, भोलानाथजी की इच्छा के अनुसार हम लोग भी उन्हीं के साथ चले जायेंगे, यह निश्चय हुआ। माँ पुरी में हैं, यह खबर पाकर अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये वहाँ आ रहे थे। सभी माँ से अनुरोध कर रहे थे कि आप इस समय न जाकर रथयात्रा के बाद जायें। माँ को इसमें कोई आपत्ति न थी, किन्तु भोलानाथजी चले आना चाहते थे। हम लोगों का चले आने का ही निश्चय था। जिस दिन प्रस्थान करने वाले थे उस दिन तड़के भोर में शय्या छोड़ने के पहले बिछौने पर बैठे-बैठे भोलानाथजी ने माँ से कहा- ''देखो, सभी रथयात्रा के बाद जाने को कह रहे हैं, इसलिये उसके बाद ही जायेंगे।'' हम लोगों का जाना स्थगित हो गया, किन्तु निर्मल बाबू आदि सभी का उसी दिन काशी जाने का निश्चय रहा। इस बीच में निर्मल बाबू का बड़ा लड़का सन्तोष किसी प्रकार काशी जाने को राजी नहीं हुआ। वह माँ के साथ ढाका आश्रम जाना चाहता था। भोलानाथजी राजी हो गये, किन्तु माँ

ने हाँ या ना कुछ नहीं कहा। सन्तोष के माता और पिता ने सन्तोष को श्री माँ के समीप ही छोड़कर जाने का निश्चय किया। उनकी एकमात्र विधवा लड़की तरु थी। निश्चय हुआ कि रथयात्रा देखने के लिये वह भी रहेगी, बाद में उसे कलकत्ते से काशी पहुँचा दिया जायेगा। प्रात:काल के समय माँ एक कमरे में जाकर लेटी थी। उक्त रहने का निश्चय होने के कारण मेरा मन भी न मालूम कैसा खराब हो गया। मैंने माँ से जाकर कहा- ''यहाँ और रहना ठीक हुआ क्या? तुम्हारे भाव से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ कोई विपत्ति आयेगी, यहाँ से चले जाना ही उत्तम था।'' माँ बोली- ''सभी तो चले जा रहे हैं, केवल हम ही कुछ लोग रहेंगे।'' मैं, माँ, भोलानाथजी, पिताजी और मरणी केवल इतने ही लोग रहेंगे, पहले यही निश्चय था। तदनन्तर जब यह निश्चय हुआ कि तरु और सन्तोष भी रहेंगे तब माँ ने मुझसे कहा- ''वे भी रहेंगे न? अच्छा, तुम देख-भाल रखना।'' माँ के इस कथन से मुझे न मालुम कैसा खटका-सा लगा। मैंने कहा- ''तुम्हारे भरोसे रखकर जा रहे हैं, हम देखभाल रखेंगे, यह कैसी बात है?'' माँ ने कुछ नहीं कहा। मैंने सन्तोष की माँ के पास जाकर कहा कि माँ ऐसा कह रही है। उन्होंने आकर माँ से बहुत कहा। उसके बाद माँ के हाथ में लड़के और लड़की का हाथ रखकर कह गई- ''तुम्हारे हाथ में रख गई हूँ।'' माँ ने केवल जरा हँस भर दिया और कहा कुछ भी नहीं। सब चले गये।

सन्तोष की आकस्मिक मृत्यु सं. 1988 की रथ-यात्रा के कुछ पहले

सन्तोष सदा ही माँ के साथ-साथ रहता था। निर्मल बाबू के रवाना होने के 8 दिन बाद एक दिन सवेरे सब लोग समुद्र के किनारे माँ के साथ घूमने गये। उसके पहले दिन ही ज्योतिष दादा ढाका से किसी कार्यवश कलकत्ता आकर यहाँ से माँ के दर्शनों के लिये पुरी आये थे। केवल दो ही दिन रहने वाले थे। सभी समुद्र के किनारे घूमने गए। लगभग 8 बजे सब लोग डेरे पर वापिस आए। भोलानाथजी विमला माँ के मन्दिर में चले गये। माँ थोड़ा-सा जलपान कर लेटे-लेटे ज्योतिष दादा आदि सबके साथ बातें करने लगी। सन्तोष भी घूमकर आया, किन्तु उसके बाद उसे न देख बहुतों ने पूछा- ''सन्तोष कहाँ है?'' तरु ने कहा- ''मालूम होता है कि भोलानाथजी के साथ मन्दिर गया है।'' सभी उस विश्वास से चुप रह गये।

इस बीच में माँ आँखे बन्द कर चुपचाप लेटी रही। लगभग 1 बजे का समय होगा तब भोलानाथजी मन्दिर से लौट आये। साथ में सन्तोष को न देखकर सभी को सन्तोष के लिये चिन्ता हुई। संतोष के बायें अंग में दर्द था और मिरगी रोग भी था। माँ भी उठकर बिछौने पर ही बैठ गई। खोज करते-करते मकान के पीछे कुएँ में सन्तोष का शव मिला। उस समय सन्तोष की अवस्था 27-28 वर्ष की होगी। इस अचिन्त्य घटना से सभी लोगों को गहरी चोट लगी। पिताजी तथा अन्य 2-1 आदमी मिलकर शव को उठा लाये। भोलानाथजी तथा डेरे में रहने वाले सभी लोग अत्यन्त अस्थिर हो उठे। किन्तु माँ स्थिर धीर रही, तनिक भी घबड़ाहट नहीं थी। एक बार उसके पास जाकर देखा तक नहीं। जिस तरह बैठकर बातें कर रही थी वैसे ही बातें करती रही। माँ-बाप माँ के समीप ही रख गये थे, आज उन्हें गये केवल 8 दिन हुये इस बीच में यह घटना हो गई। परन्तु उसके कारण माँ के मुँह पर तनिक भी परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। माँ के दर्शनों के लिये आये हुये बहुत से लोग उक्त अवस्था देखकर लौटे जा रहे थे, किन्तु जब उन्होंने यह सुना कि माँ उपस्थित सब लोगों के साथ पूर्ववत् ही बातें कर रही हैं, तब सभी माँ के समीप ऊपर गये। माँ स्वाभाविक रीति से सबके साथ वार्तालाप करती रही। मकान में इतनी बड़ी दुर्घटना हुई थी किन्तु उनके भाव से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो कुछ भी नहीं हुआ। **श्री विजय गोस्वामीजी** के आश्रम से गोसाईजी का एक दौहित्र तथा शिष्य माखन बाबू एवं अन्यान्य कई लोग आकर शव ले गये। भोलानाथजी गये। उत्कल महात्म्य में लिखा है, 'पुरी में चाहे जिस प्रकार भी मृत्यु हो वह अपमृत्यु नहीं कही जाती, श्राद्धादि हो सकता है। वहाँ पर अपमृत्यु होने पर भी बैकुण्ठ-प्राप्ति होती है।' पण्डित लोगों ने भी यही सम्मति दी। शव दाह किया गया।

उक्त मृत्यु के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति

बहुत रात बीतने पर सभी ने कुछ जलपान कर विश्राम किया। माँ ने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। इस दुर्घटना पर माँ का यह स्थिर भाव देखकर उन्हें पाषाणमयी ही कहा जाता, किन्तु बाद में रात्रि में माँ का दूसरा भाव निखर उठा। जिस समय सभी लोग शान्त होकर सोये थे उस समय मैं और तरु माँ के समीप बैठी थी। उस समय माँ सन्तोष की कितनी ही बातें

कहने लगी। उसके पहले दिन रात्रि में रात भर माँ छटपटा रही थी, जरा भी नहीं सो सकी थी। तदनन्तर कमरे से बरामदे में आकर बैठी थी। फिर एक बार वे बोली थी– ''सोमवार'' हम लोगों की समझ में कुछ भी नहीं आ सका, किन्तु माँ की उक्त अवस्था देखकर और सुनकर हमें शीघ्र ही किसी विपत्ति की आशंका हुई थी (दूसरे ही दिन सोमवार को सन्तोष की मृत्यु हुई)। तब हम लोगों की समझ में माँ के ''सोमवार'' कहने का मतलब आ सका। मृत्यु के दिन रात्रि में माँ हम लोगों से केवल सन्तोष की ही बातें कहती रही। उस समय हमें ऐसा लगा कि माँ का हृदय मानो करुणा से भरा हो। कठोरता और कोमलता का ऐसा सुन्दर समन्वय यदि न रहता तो इतने लोग आकर माँ कहकर क्यों चरणों में पड़ते? सारी रात इसी तरह बीती। भोर में उठते ही कुएँ के समीप जाकर किस तरह गिर पड़ा, यह देखने गई। सन्तोष मेरा शरीर ऐसा है यह समझकर कभी भी अकेले कुएँ के पास नहीं जाता था। उस दिन वृष्टि में क्यों अकेले गया, यह कौन जाने? माँ ने यह भी कहा कि जब माँ उस दिन समुद्र के किनारे से लौटकर जलपान कर लेटे-लेटे बातें कर रही थी तब सहसा किसी ने मानो गला दबा दिया हो ऐसी साँस रुकने की सी स्थिति हो उठी थी। माँ ने अपने शरीर की उक्त अवस्था से ही जान लिया था कि उसी समय सम्भवत: सन्तोष की भी जल में गिरकर साँस बन्द हो गई होगी। माँ आखें बन्द कर लेटी रही। माँ बोली– ''उस समय में कुछ भी बोल नहीं सकी और उस समय यदि कहती भी तो उसे जीवित नहीं निकाला जा सकता था। कुएँ में गिरते ही प्राण निकल गये थे। जो होने वाला होता है वह अवश्य होकर ही रहता है। पहले कुछ भी नहीं कह सकी। मुँह से कुछ निकला ही नहीं। कहकर भी क्या होता? नियति पूर्ण होना चाहती थी। इसी जगह सन्तोष की मृत्यु होने वाली है, यह मैं पहले से ही देख रही थी।

पुरीधाम त्याग की तैयारी

इस घटना के बाद भी माँ ने कहा था, ''इस जगह और अधिक देर न करो। रथयात्रा के दिन रात्रि को ही रवाना होना है।'' रथयात्रा का अवसर तथा माँ के पुरी में विद्यमान रहने के कारण कलकत्ते से यतीश दादा अपनी माँ और स्त्री को साथ लेकर आये। और भी 2-4 आत्मीय जन उनके

साथ थे। बाल-बच्चे भी थे। रथयात्रा के दिन माँ सबको साथ लेकर रथ के दर्शनों के लिये जाकर एक जगह बैठी रही। न जाने क्यों उस दिन ठाकुरजी रथ पर चढ़े तो सही परन्तु रथ खींचा नहीं गया। निश्चय हुआ कि रथ अग्रिम दिन खींचा जायेगा। यतीश दादा की माता आदि बहुत से लोगों की इच्छा थी कि दो दिन ठहरकर रथ का खींचना आदि देखकर जायें। किन्तु माँ ने पहले ही कहा था कि मैं रथयात्रा के दिन रवाना होना चाहती हूँ। इसलिये हम लोग घबरा उठे। उस दिन रात में सब लोग डेरे पर लौटे। दिन भर फाँका रहा। पिताजी उसी समय खाने का प्रबन्ध करने के लिये स्टेशन गये। खबर लाये कि रात को अब कोई गाड़ी नहीं जायेगी, कल भोर में एक गाड़ी मुगलसराय की ओर जायेगी। हम लोगों ने यतीश दादा आदि से कहकर उन्हें राजी कर लिया। उसी समय सब लोग स्टेशन चले आये। माँ के कथन का स्मरण कर उन्हें भी अधिक रहने का साहस नहीं हुआ। किन्तु माँ उस समय और कुछ विशेष नहीं कह रही थी। सारी रात हम लोग स्टेशन पर बैठे रहे।

मुगलसराय होकर विन्ध्याचल गमन

भोर की गाड़ी से मुगलसराय को चले। निश्चय हुआ कि वहाँ से तरु को काशी भेजकर माँ हम लोगों के साथ विन्ध्याचल चली जायेंगी। पहले पुरी से जमशेदपुर जाने की बात थी किन्तु फिर वहाँ जाना नहीं हुआ। काशी को टेलिग्राम कर दिया गया। मुगलसराय स्टेशन पर जितेन्द्र दादा की स्त्री और हरेन्द्र डॉक्टर आये थे। तरु को उनके साथ काशी भेजकर माँ हम लोगों को लेकर विन्ध्याचल चली गई। यतीश दादा आदि भी सभी लोग माँ के साथ ही विन्ध्याचल गये। माँ की सभी ओर दृष्टि रहती है। काशी के पण्डितों ने इस प्रकार मृत्यु हुई है, यह सुनकर श्राद्ध की आज्ञा नहीं दी। काशी में इस प्रकार मरने पर अपमृत्यु होने से श्राद्ध नहीं होता। माँ ने सोचा श्राद्ध न होने से माता-पिता के हृदय में न जाने कितना क्लेश होगा इसलिये माँ ने विन्ध्याचल से पुरी को टेलिग्राम कर व्यवस्था मँगाई एवं विन्ध्याचल से काशी को बार-बार आदमी भेजे। बाद में यह स्थिर हुआ कि श्राद्ध होगा। काशी के पण्डितों ने ही भली-भाँति श्राद्ध कराया। उस समय वरिशाल के प्रात: स्मरणीय स्वर्गीय अश्विनीकुमार दत्त महाशय की बहन कालाचाँद बाबू की वृद्धा माता एवं भानजे कालाचाँद बाबू विन्ध्याचल

आश्रम में माँ के आदेश से ही रहते थे। वे लोग माँ को पाकर बहुत प्रसन्न हुये। यतीश दादा के परिवार के भी सभी लोग थे। मरणी भी उस बार साथ ही थी।

विन्ध्याचल से काशी गमन

कुछ दिन विन्ध्याचल रहकर यतीश दादा आदि कलकत्ते लौट गये, वे मार्ग में काशी विश्वनाथजी के दर्शन करते गये। माँ भी हम लोगों को लेकर उन्हीं के साथ काशी गई। उक्त मृत्यु के 12 दिन बाद माँ सन्तोष के माता-पिता के पास गई। माँ को देखते ही सन्तोष की माँ आकर माँ से लिपटकर रोने लगी। निर्मल बाबू धैर्यपूर्वक ही जरा हँसते-हँसते माँ से बोले- "माँ दो आपको सौंप आये थे, एक को आपने ग्रहण कर लिया। फिर एक को क्यों लौटा दिया?" माँ समझ गई, हृदय की कितनी गहरी व्यथा को उन्होंने दबाकर हँसते-हँसते यह बात कही थी। माँ उनकी ओर निहारकर इस प्रकार करुणा से रोने लगी कि सन्तोष की माँ रोना बन्द कर माँ को ही शान्त करने लगी। बहुत देर बाद माँ शान्त हुई। बाद में एक दिन निर्मल बाबू ने माँ से पूछा था- "माँ, उस दिन आप क्यों रोई थी?" माँ ने उत्तर दिया था- "तुम न रोओ, इसलिये मैंने तुम्हारे हृदय की पीड़ा हल्की की थी।" माँ ने सन्तोष की माँ से अनेक सान्त्वना के वचन कहे। माँ 15 दिन उसी मकान में रही। आश्चर्य की बात है कि उक्त 15 दिन सन्तोष के माँ-बाप खूब शान्त रहे। जिनका इतना बड़ा लड़का कुछ दिन पहले मर गया और उनका ऐसा शान्त भाव, यह देखकर सभी लोग चकरा उठते थे। दिन-रात माँ के समीप लोग आते रहे। कीर्तन होता रहा, मकान में महोत्सव चलता रहा।

पुनः विन्ध्याचल गमन तथा मिर्जापुर के उपेन्द्र बाबू और कुलदा बाबू की पहले-पहल माँ से भेंट

यतीश दादा आदि के कलकत्ता चले जाने के बाद माँ हम लोगों को साथ लेकर फिर विन्ध्याचल गई। इस बार स्वामी शंकरानन्दजी, माणिक आदि भी साथ गये। एक दिन माँ विन्ध्याचल आश्रम के बरामदे में बैठी थी, पहाड़ पर कई भद्र पुरुष घूमने के लिये आकर मिठाई की एक पोटली और जल का बर्तन आश्रम के निकट ही पहाड़ पर रखकर जरा दूर चले

गये। माँ ने मुझसे कहा– ''ये सब चीजें ले आ तो।'' मैं ले आई। उस पोटली को खोलकर एक मिठाई माँ ने अपने मुँह में देने के लिये मुझसे कहा। इधर यह आनन्द हो रहा था, इतने में उक्त भद्र पुरुषों ने आकर अपनी पोटली नहीं देखी। उनके खोजते ही आश्रम से एक व्यक्ति जाकर उन्हें बुला लाया। बाद में यह सब वृत्तान्त सुनकर उन्हें भी महान् आनन्द हुआ। माँ को प्रणाम कर वे उस समय चले गये।

दूसरे ही दिन फिर वे माँ के दर्शन करने के लिये आकर उपस्थित हुये। उनमें से एक व्यक्ति डॉक्टर (श्रीयुत् उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय) थे। वे अपनी स्त्री को भी साथ ले आये। वे सभी लोग मिर्जापुर के थे। उनमें से एक दूसरे व्यक्ति अविवाहित थे, उनका नाम था कुलदा प्रसाद चट्टोपाध्याय। वे उसी दिन से वहाँ प्राय: नित्य ही माँ के समीप आने-जाने लगे। ढाका एवं अन्यान्य स्थानों पर भी माँ के दर्शनों के लिये गये। विन्ध्याचल से एक दिन उपेन्द्र बाबू (डॉक्टर) माँ को मिर्जापुर अपने मकान में ले गये। मिर्जापुर में ही गंगाजी के किनारे उनका एक बाग और एक मकान है। वहीं पर उन्होंने माँ के रहने का बन्दोबस्त किया। माँ हम लोगों के साथ दो दिन वहाँ रहकर फिर विन्ध्याचल चली आई। निर्मल बाबू भी सपरिवार विन्ध्याचल आकर कई दिन माँ के समीप रहे। यद्यपि निर्मल बाबू को बाहर से कुछ भी प्रकाश नहीं था, फिर भी भीतर में उनके खूब लगन है यह माँ जानती थी। इसीलिये माँ ने उनसे विन्ध्याचल आने को कहा था। वे काशी लौट गये एवं काशी के केवल शंकरानन्द स्वामी ही रह गये।

विन्ध्याचल में श्री श्री माँ के शरीर में अद्भुत क्रियाओं का आविर्भाव– ''देवी का अष्टांग योग''

एक दिन रात्रि में माँ बरामदे में सोई थी। रात बहुत बीत चुकी थी, सभी लोग सो गये थे। केवल मैं ही माँ के समीप बैठी थी। इसी बीच माँ के शरीर में परिवर्तन होना शुरू हुआ। यह अवस्था देखकर मैंने सबको बुला लिया। सब लोग माँ को धर-पकड़कर भीतर ले गये। माँ के शरीर में अत्यन्त अद्भुत अनेक क्रियायें दिखाई देने लगी, किन्तु माँ स्थिर भाव से एक ही जगह में रही। एक के बाद एक अवस्था हो रही थी। कम्बल के ऊपर माँ को लिटा दिया गया। माँ कम्बल के ऊपर ही रही। अस्थिर भाव

बिल्कुल भी न था, स्थिर भाव से ही एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था होती गई। उसके पश्चात् स्थिर हो गई। सब लोग चुपचाप बैठकर यह सब देख रहे थे। माँ के शरीर को पकड़ने की भी जरूरत नहीं रही। कुछ देर बाद उसी अवस्था में आँखें मूँदकर मृदुस्वर में बोली– ''देवी का अष्टांग योग।'' पहले कभी इस प्रकार आसनादि क्रियाएँ होना अथवा इस प्रकार कहना मैंने नहीं सुना था। हम लोगों ने समझा, यह अष्टांग योग है, शरीर के भीतर हो गया है। उसके बाद माँ चुप होकर लेट गई।

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

विन्ध्याचल से अयोध्या, काशी और कलकत्ता होते हुये ढाका गमन

कई दिनों के बाद माँ हम लोगों को साथ लेकर अयोध्या होती हुई काशी गई। इससे पहले हम अयोध्या नहीं गये थे। माँ एक बार हरिद्वार से आशु को साथ लेकर अयोध्या गई थी। माँ कहाँ जाकर ठहरी थी, आशु ने कहाँ भात बनयाया था, सब माँ ने हम लोगों को दिखलाया। हम लोग काशी से कलकत्ता होकर ढाका गये।

श्री श्री माँ के हाथ से मुझे दण्ड और गेरुआ वस्त्र की प्राप्ति एवं उसे गुप्त रखने का आदेश

बुआजी और फूफाजी (कालीप्रसन्न बाबू) चाँदपुर पुत्र के पास से ढाका आश्रम में माँ के साथ भेंट करने आये। बुआजी जब से आई, माँ प्रायः हर रोज उन्हीं के साथ खाती एवं खूब आनन्द करती। धार्मिक भाव उनका भी बड़ा प्रबल है। नाम-कीर्तन में उनकी बड़ी अच्छी अवस्था होती है। वे माँ की आज्ञा का भी यथासाध्य पालन करती हैं। उनके हाथ से ही माँ ने यज्ञोपवीत लिया था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। इस बार फिर माँ और वे बैठकर बातें कर रही थी। बुआजी के हाथ में एक छोटी-सी बाँस की लाठी थी। कहीं से शायद उन्हें मिली थी, उनके हाथ में ही रहती थी। न जाने क्यों बात-ही-बात में उस बाँस के डण्डे को मेरे हाथ में देकर उन्होंने कहा-''यही है न तेरा दण्ड।'' माँ ने उनसे कहा-''शीघ्र ही दण्ड ले जाकर कुलदा हवन कर रहे हैं, उनके पास हवन की अग्नि से छुआकर ले आवें।'' बुआजी ने वैसा ही किया। तदुपरान्त उन्होंने उसे माँ के हाथ में दिया। माँ ने उस बीच में अपनी पहनी हुई रेशमी साड़ी से कुछ सूत निकालकर डण्डे के बीच में बाँध दिया। तदनन्तर डण्डा मेरे हाथ में देकर कहा-''आज इस दण्ड को छोड़कर तुम बोलना मत।'' खेल-खेल में सब हो रहा था। किन्तु माँ की बात को खिलवाड़ समझकर हम उड़ा नहीं देते। क्योंकि मैं जानती हूँ कि इसी तरह कितने बड़े-बड़े काम कर

डालती हैं। मैंने वैसा ही किया। रात्रि में माँ ने कहा–''इस दण्ड को एक कपड़े से लपेटकर सिद्धेश्वरी में ही ऊपर टाँगकर रख दे।'' मैंने वैसा ही किया। बुआजी दण्ड देते ही बोली– ''यहाँ ब्रह्मचारी का कोई गेरुआ वस्त्र है?'' बेबी दीदी वहाँ उपस्थित थी। उन्होंने उस समय रोज ही आश्रम में आना आरम्भ किया था। माँ ने उनकी ओर देखकर कहा–''ब्रह्मचारी का गेरूआ वस्त्र बेबी ले आवेंगी।'' थोड़े दिनों के बाद ही बेबी दीदी एक वस्त्र गेरुए रंग में रंगकर ले आई। माँ अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्दकर पहले उस वस्त्र को पहनकर कुछ देर बैठी रही। उसके बाद मुझे उक्त वस्त्र देकर बोली– ''तू इस कपड़े को पहनकर कुछ देर तक इस कमरे में बैठकर जप कर, उसके बाद इस कपड़े को बदलकर बाहर जाना।'' मैंने वैसा ही किया। किसी दूसरे को पता नहीं लगा। माँ ने उस वस्त्र को भी रख देने के लिये कहा और यह भी कहा जैसे कोई देखे नहीं, कभी-कभी इस वस्त्र को पहनकर रात्रि में तू जप करना। इस तरह माँ ने एक खेल खेला।

श्री श्री माँ का ज्योतिष दादा को ब्राह्मण के रूप में ग्रहण तथा आगे चलकर उन्हें अपने हाथ से यज्ञोपवीत प्रदान

इधर माँ के गले में वह सोने का हार यज्ञोपवीत (जनेऊ) की तरह था और पुराना जनेऊ भी, जो गले में डाला था, विद्यमान था। पाबना में शायद किसी-किसी ने उन्हें देखा होगा। माँ के पाबना से ढाका आने के बाद, किसी भद्र महिला ने एक जनेऊ हाथ से बनाकर पाबना से माँ के पास भेज दिया था। माँ बोली– ''सब कुछ अपने आप ही होता जा रहा है, देख रही है।'' यह कहकर जनेऊ में ग्रन्थि दिलाकर अपने गले में डाल लिया और पुराना जनेऊ उतारकर रख दिया। कुछ दिनों के बाद ही उस सोने के हार को ज्योतिष दादा का जनेऊ बना दिया। सर्वसाधारण को इसका पता नहीं चला।

पहले एक दिन शाहबाग में माँ, ज्योतिष दादा और नन्दू एक कमरे में बैठे थे। एकाएक माँ बोल उठी–''इस कमरे में हम तीन ब्राह्मण हैं।'' वैद्यकुल में उत्पन्न ज्योतिष दादा के सम्बन्ध में भी 'ब्राह्मण' ऐसा एक भाव उस समय प्रकट हो उठा था किन्तु उस समय और कुछ नहीं हुआ। इस समय माँ ने उनके गले में उक्त सोने का जनेऊ डाल दिया। सम्भवत: उसी दिन

से उन्हें अपने हाथ से बनाई हुई रसोई खाने का भी आदेश दिया। बहुत दिनों तक ज्योतिष दादा ने अपने हाथ से बनाकर ही खाया। एक दिन माँ ने मुझसे भी कहा था– ''ज्योतिष दादा का भाव खूब अच्छा है, संसार में है, सब लोग जान नहीं सकते।'' इस प्रकार माँ ने जनेऊ का खेल खेला। खेल–खेल में माँ अनेकों काम कर डालती हैं।

वकील पण्डित साहब के मकान से श्री श्री माँ का कमण्डलु ग्रहण

एक और घटना लिख रही हूँ। ढाका में 'पण्डित साहब' नाम से प्रसिद्ध एक वकील रहते थे। उनकी स्त्री 'श्यामला देवी' माँ के समीप आया–जाया करती थी। वे बहुत वर्षों तक मौन रही, खूब साधना करती। उत्तम अवस्था होती। माँ के पास आकर सब कहती। माँ भी उनके साथ खूब आनन्द करती। एक दिन उनके मकान में हम माँ को ले गये। मैं और भोलानाथजी साथ गये। उन्होंने अपना पूजा का कमरा माँ को ले जाकर दिखलाया। माँ बहुत देर तक वहाँ बैठी रही। वहाँ उनका एक कमण्डलु था। माँ ने उसे देख हाथ में लेकर कहा– ''खुकुनी, इस कमण्डलु को हमारे साथ ले जाना। मैं जल पीऊँगी'' श्यामला देवी भी हँसकर राजी हो गई। किन्तु आते समय हम कमण्डलु को लाना भूल गए। उन दिनों माँ उत्तमा कुटीर में रहती थी। पिताजी ज्यों ही मकान से माँ के समीप पहुँचे त्यों ही माँ ने पिताजी को श्यामला देवी के पास से कमण्डलु ले आने के लिये भेज दिया। पिताजी उस मकान में कभी गये न थे। उनके साथ पिताजी का कुछ परिचय भी न था। क्योंकि पण्डित महाशय कभी भी माँ के समीप आते न थे। माँ के आदेश से उन्होंने वहाँ जाकर कमण्डलु माँग लाकर माँ को दिया। माँ ने कुछ दिनों तक उसी कमण्डलु से जल पीया। उसके बाद वह कहीं पड़ा था। इधर वह कमण्डलु एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर सिद्धेश्वरी आश्रम में पहुँचा दिया गया। उसके बाद फिर किसी ने भी उसकी खोज नहीं की।

श्री श्री माँ का मेरे पिताजी को उक्त कमण्डलु प्रदान

कई दिनों के बाद एक दिन सिद्धेश्वरी में बैठकर मैं पूजा कर रही थी, एकाएक मुझे कमण्डलु की याद आई। बहुत दिनों तक फिर किसी को कमण्डलु का स्मरण नहीं रहा। मैं पूजा समाप्त कर काली मन्दिर की भैरवी से उसकी पूछताछ करने गई, क्योंकि वही हमारे आश्रम में धूपबत्ती करती

थी। आश्चर्य की बात है, मैं दरवाजे पर जाकर खड़ी हुई ही थी कि उसी समय पोखरे में एक आदमी तैर रहा था उसके पैर में कुछ लगा। उसने उठकर देखा तो एक कमण्डलु। वह काला हो गया था। किसका है यह पूछते ही, मैं वहीं पर खड़ी थी, देखते ही मैंने पहचान लिया कि माँ का वही कमण्डलु है। भैरवी से फिर पूछा नहीं, मैंने कमण्डलु को लेकर आश्रम में जाकर माँ से सारा वृतान्त कहा। माँ ने कहा- "इसे माँजकर जल से भरकर मेरे बिछौने के पास रख दे। मैं जल पीने के लिये ही लाई थी।" वैसा ही किया गया, फिर ढक्कन तैयार किया गया। माँ ने उससे दो-एक दिन जल पीया। इस बीच में एक दिन पिताजी और अन्यान्य कुछ लोग आश्रम के कमरे में बैठे थे, माँ बिस्तर पर लेटकर बातें कर रही थी। बातचीत के सिलसिले में पिताजी ने कहा- "मैं अलग से (ओठ लगाये बिना) जल नहीं पी सकता।" इत्यादि बातें होते ही माँ ने कहा- "यह कमण्डलु लेकर अगल से जल पीने का अभ्यास करो।" यह कहकर कमण्डलु पिताजी को दे दिया। पिताजी ने माँ की दी हुई वस्तु अति श्रद्धा के साथ ग्रहण की। तभी से पिताजी कमण्डलु से जल पीने लगे। असुविधा होने पर भी माँ का आदेश समझकर वैसा ही अभ्यास करने लगे। उस समय यह शौक से किया। बाद में उसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ। क्योंकि अन्त में माँ ने पिताजी को संन्यासी बनाकर कमण्डलु ही पकड़ा दिया था। इसी प्रकार माँ खेल-खेल में कितने काम कर डालती हैं।

श्री श्री माँ का काक्स-बाजार गमन

माँ ढाका ही थी। दुर्गापूजा आई। पूजा के समय निशि बाबू माँ को अपने घर (सामसिद्धि गाँव में) ले गये। यहाँ 'सिद्धी माँ' नाम से प्रसिद्ध एक माँ हैं। उनके साथ माँ की ढाका में 2-3 बार भेंट हो चुकी थी। उनका ससुराल भी 'आठपाड़ा' में भोलानाथजी के मकान के निकट ही है। एक दिन वहाँ रहकर माँ ढाका लौट आई। फिर ढाका के एक भक्त (प्रमथ बाबू वकील) माँ को अपने गाँव के मकान में ले गये। बहुत से भक्त साथ गये। खूब आनन्द रहा। इसी बीच माँ को योगेश बाबू (रायबहादुर) दूसरी बार अपने घर पारुलदिया ले गये थे। कार्तिक मास में काली-पूजा के कुछ दिन पहले ही माँ फिर काक्स-बाजार को रवाना हुई।* इस बार आदिनाथ

---

* संवत् 1988 में काक्स बाजार जाते समय कुलदा दादा के रमना आश्रम में आकर रहने की बात

और चन्द्रनाथ दर्शन करने के लिये मटरी बुआ, नानीजी आदि भी माँ के साथ गई। ढाका की साधना, वासना दोनों बहनें माँ के समीप नित्य ही कीर्तनादि करती थी। इस बार बड़ी बहन 'साधना' भी साथ चली। यतीश गुहा और उनके छोटे भाई नितीश भी माँ के संग चले। नेपाल दादा भी उस समय छुट्टी लेकर माँ के समीप ढाका में थे। उनकी भी माँ के साथ काक्स-बाजार जाने की बात थी, किन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण न जा सके। माँ के काक्स-बाजार जाने के बाद ही कुलदा दादा गृह-त्यागकर रमना आश्रम में वास करने लगे। माँ सबको साथ लेकर पहले ब्राह्मण बाडिया में अनाथ के बड़े भाई उपेन्द्र बाबू के डेरे में गई। वहाँ से कुमिल्ला जिले के अन्तर्गत सुलतानपुर (माँ के ननिहाल) जाने का निश्चय हुआ। किन्तु पीछे संयोगवश वहाँ जाना नहीं हो सका। माँ के बड़े मामा बहुत बड़े पण्डित थे, आर्थिक अवस्था भी अच्छी थी। बाल्यावस्था में प्रतिवर्ष दुर्गापूजा के अवसर पर माँ ननिहाल जाती थी। वे सब बातें भी माँ ने कही। ननिहाल की ठाकुर बाड़ी (ठाकुरजी का कमरा) माँ को बहुत अच्छा लगता था। वहाँ के फूलों और चन्दन की सुगन्ध से माँ खेल-कूद छोड़कर बहुत देर तक वहाँ बैठी रहती। सिद्धेश्वरी के पुजारी जहाँ रहते हैं, उस मकान में ठाकुरजी के कमरे से भी माँ को वैसी ही सुगन्ध प्राप्त होती है जैसी कि ननिहाल के ठाकुरजी के कमरे से प्राप्त होती थी। उस दिन की पूजा से पिताजी की बाह्य पूजा समाप्त हुई, ऐसा माँ ने कहा था। उस दिन की पूजा के दिन भी माँ ने कहा था कि आज की इस पूजा से भी मामाजी के घर के ठाकुरजी के कमरे की जिस सुगन्ध में मैं बैठी रहती थी, वैसी ही सुगन्ध मुझे मिल रही है। माँ ब्राह्मणवाडिया से हम लोगों को साथ लेकर चटगाँव होकर काक्स बाजार चली गई।

काक्स बाजार में श्री श्री माँ का अवस्थान

इस बार भी हम लोग वहाँ पहुँचकर दीनबन्धु बाबू के समुद्र के किनारे वाले छोटे बंगले में ही ठहरे। खाना-पीना दीनबन्धु बाबू के मकान में ही होता था। काक्स-बाजार पहुँचने के कुछ दिन बाद ही माँ को ज्वर आ

हुई। माँ के काक्स बाजार जाने के बाद वे गृह-त्यागकर आश्रमवासी हुए। छोटे-छोटे बाल-बच्चे थे, इसलिए नौकरी नहीं छोड़ी। आश्रम से ऑफिस में जाते और ऑफिस से आश्रम में ही लौट आते थे। फिर घर नहीं गये। उन्होंने कई दिनों तक मौन धारण किया था।

गया। सूर्योदय के कुछ देर बाद ही ज्वर आता, कई घण्टे खूब अधिक ज्वर रहता, अपराह्न के बाद उतर जाता, माँ समुद्र के किनारे घूम आती, जो खाने को बनता खाती। कुछ दिन इसी तरह बीतने पर भोलानाथजी और दीनबन्धु बाबू ने औषध खाने के लिये माँ से आग्रह किया। माँ ने कहा– ''यह (ज्वर) आया है, कुछ दिन शरीर में खेलकर चला जायेगा। अच्छा, अमुक दिन (बार या तारीख का मुझे स्मरण नहीं है) तक प्रतीक्षा करो, उस दिन भी यदि ज्वर आ जाय तो तुम लोगों के कथनानुसार औषध खाऊँगी।'' किन्तु माँ ने जिस दिन का वादा किया था उस दिन से फिर ज्वर नहीं आया। इस बार काक्स–बाजार में बहुत दिन ठहरे। दीनबन्धु बाबू के परिवार के साथ भी खूब घनिष्ठता हो गई। दीनबन्धु बाबू माँ को पुत्री के रूप में देखते थे। वे सन्ध्या–पूजा कुछ भी नहीं करते थे। माँ ने उनको गायत्री का जप करने के लिये कहा एवं बोल दिया– ''तुम यदि गायत्री जप करो तो तुम्हारी इस लड़की का शरीर अच्छा रहेगा, यह निश्चय समझो।'' तभी से उन्होंने गायत्री जप आरम्भ कर दिया।

वहाँ की एक विचित्र घटना

एक दिन एक घटना हुई। यतीश दादा दीनबन्धु बाबू के मकान से खा–पीकर समुद्र के किनारे के बंगले में आकर बैठे थे। माँ और हम सभी दीनबन्धु बाबू के मकान में ही थे। एकाएक यतीश दादा के मन में आया, ''अच्छा माँ यदि यहाँ अकेली आकर उपस्थित हों, तो मैं जानूँ।'' इस तरह का एक विचार उनके मन में उठा, वे बैठे थे। माँ कभी भी उस मकान से अकेली आती न थी। दो घरों के बीच व्यवधान भी कुछ कम नहीं है। हर रोज ही माँ को खिलाकर मैं भोजन करने बैठती। माँ थोड़ी प्रतीक्षा करती, हम लोगों का भोजन होने पर ही माँ हम लोगों को साथ लेकर चली आती। पिताजी भी मार्ग के पास बैठक में खा–पीकर प्रतीक्षा करते। आते समय उन्हें भी बुला लाते। भोलानाथजी भी प्राय: सबके साथ ही आते। उस दिन माँ ने मुझे न मालुम किस काम के लिये कमरे में भेजा, लौट आकर मैंने देखा माँ वहाँ नहीं हैं। सारा मकान छान डाला, माँ नहीं मिली। बैठकखाने में जाकर देखा तो पिताजी माँ की बाट जोह रहे थे। माँ कहाँ गई, मैं खोज रही थी, बँगले में चली गई हों ऐसा विश्वास ही नहीं होता था। क्योंकि माँ कभी इस प्रकार अकेले जाती न थी। किन्तु

हमें खोजते देखकर एक आदमी ने कहा- माँ अकेले-अकेले बँगले की ओर गई हैं। हम लोगों ने जल्दी-जल्दी बँगले में आकर देखा तो माँ और यतीश दादा बैठे थे। माँ हँस रही थी। यतीश दादा ने उस समय उक्त घटना की बात कही। वे बैठे-बैठे उक्त बात सोच रहे थे कि सहसा माँ अकेली जाकर उनके पास खड़ी होकर हँसने लगी। वे हकबकाकर उठ खड़े हुये, उसी समय उन्होंने माँ के चरणों की धूलि मस्तक पर धारण की। माँ ने इस तरह उनके सन्देह का भंजन किया। किन्तु हम लोगों का सन्देहाक्रान्त मन विश्वास करना नहीं चाहता। स्थिर भाव से विश्वास होना सहज नहीं है उसके लिये बहुत बड़ी साधना की आवश्यकता है।

अन्यत्र की तद्नुरूप दो-चार घटनायें- काक्स बाजार त्याग

एक बार कलकत्ते में रहते समय माँ सलकिया में बुआजी के मकान में थी। एक दिन बैठे-बैठे बातें कर रही थी, सहसा मुँह से 'आः उः' इत्यादि पीड़ाभिव्यंजक शब्द 2-1 बार निकल गये। 2-4 दिनों के बाद खबर मिली कि कुलदा दादा के दामाद को कालरा हुआ है। माँ के मुँह से जिस समय वैसे शब्द निकले थे, उस समय ढाका में उनका दामाद भी रोग की पीड़ा से वैसा ही शब्द कर रहे थे। इस तरह की घटनायें और भी कई घटी हैं। माँ शायद मोटर द्वारा कहीं जा रही हों, सहसा उनके मुँह से 'आः' शब्द निकल गया। माँ दाँतों तले जीभ दबाकर तनिक हँसते हुये हम लोगों की ओर निहारकर मृदुस्वर में कहती-"फिर इस प्रकार का शब्द आरम्भ हुआ। मैं क्या करूँ? मैं तो इच्छा करके कुछ करती नहीं।" थोड़े ही दिनों में किसी के रोग की अथवा किसी विपत्ति की खबर मिल जाती। इस प्रकार के भावों से माँ के मुँह से कुछ न कहने पर भी दूर की जिन घटनाओं को माँ जानती वे शरीर से ही प्रगट हो जाती। कभी-कभी 2-1 बातें कह डालती। ऐसा भी होता- कहीं जाने की बात है। वहाँ से लेने के लिये आदमी के आने का निश्चय है, कब आयेगा ठीक नहीं। उसके सम्बन्ध में अनुमान से सब लोग कुछ बातचीत भी करते। माँ चुपचाप सुनती अथवा उन लोगों की बातचीत में योग देती। कभी अकेले-अकेले घूमते या बिछौने पर लेटे-लेटे सहसा बोल उठती-"सोमवार" या "पाँच दिन"। कितनी बातें मन-ही-मन कहती, कोई विशेष ध्यान नहीं देता। अन्त में ज्ञात होता कि माँ के मुँह से जिस दिन की बात निकली थी उसी दिन

आदमी आया या वहाँ से रवाना हुआ। फिर भी सदा यह सब न होता। फिर याद करके हमेशा मिलाकर देखा भी नहीं जाता था। बहुत दिन बीतने पर तो हम लोग भूल ही जाते। माँ के मुँह से जो अनेक प्रकार के शब्द प्रकट होते उनका अन्त नहीं। कभी-कभी रात्रि में सोई रहती सहसा इतने जोर से एक-दो शब्द बाहर निकलते कि सब लोगों की गाढ़ी निद्रा टूट जाती। मैंने बहुत बार अर्धरात्रि के आसपास माँ के समीप बैठे-बैठे उन शब्दों को स्पष्ट रूप से सुना है, किन्तु मुझे उनका कुछ भी अर्थ लगा नहीं। कभी माँ शब्द उच्चारण करके संभवत: आँखे खोलकर जरा देखती, कभी पूर्ववत् आँखे बन्द ही किये रखती। इस प्रकार के भाव में कभी-कभी स्तोत्रों का भी प्रादुर्भाव होता था। माँ सोई रहती, धीरे-धीरे स्तोत्र का उच्चारण हो जाता, बाद में उसी भाव में उठकर आसन लगाकर बैठ जाती। क्रमश: ही ऊँचे स्वर से स्तोत्र निकलता रहता। पीछे धीरे-धीरे बन्द हो जाता। रमना आश्रम में एक दिन रात्रि के समय अपने मन की मौज से माँ घूम रही थी, मन्दिर के दरवाजे पर जा बैठी। रात्रि बहुत बीत चुकी थी, माँ का बैठे-बैठे स्तोत्र शुरू हुआ। नेत्रों से जल गिरने लगा। शब्द क्रमश: उच्च से उच्चतर हुआ। फिर धीरे-धीरे शान्त हो आया। माँ समाधिस्थ हो गई। जहाँ बैठी थी वहीं सो गई। सारी रात उसी तरह व्यतीत हुई। दूसरे दिन उठी। कितना समय इसी भाव में कट जाता- ठीक नहीं। माँ की भावावस्था का वृतान्त लिखकर समाप्त नहीं किया जा सकता, सम्भव ही नहीं है। नानीजी, यतीश दादा आदि कई लोग चले गये। बाकी हम कई लोग माँ के साथ रहे। एक-डेढ़ महीने रहने के बाद काक्स बाजार से चले आये।

* * *

सोलहवाँ अध्याय

आदिनाथ और चन्द्रनाथ गमन

लगभग एक या डेढ़ महीना काक्स बाजार रहकर हम लोग माँ के साथ आदिनाथ और चटगाँव होते हुये चन्द्रनाथ आये। दीनबन्धु बाबू की स्त्री कभी घर से बाहर नहीं गई थी। बूढ़ी हो चली थी, किन्तु गंगा-स्नान तक उन्होंने नहीं किया था। माँ के समीप उन्होंने यह सब दुःख प्रकट किया। माँ दीनबन्धु बाबू को राजी कर उन्हें सपरिवार साथ ले आई। पहले चन्द्रनाथ के दर्शन कराये।

कलकत्ता और तारापीठ होकर काशी गमन

उसके बाद चाँदपुर होकर कलकत्ता गई। इस बार संग में अनेक लोग थे। इसलिये माँ इस बार सबको साथ लेकर बालीगंज के सुरेश बाबू का एक दो-तल्ले मकान में जो खाली था, ठहरी। बाद में अन्यान्य घरों में भी गई। भोलानाथजी का तारापीठ जाने का भी समय उपस्थित हुआ। इसलिये माँ सब लोगों को साथ लेकर तारापीठ गई। पूर्व आदेश के अनुसार भोलानाथजी केवल एक दिन तारापीठ में रहे। दूसरे ही दिन सब लोग कलकत्ता लौट आये। कलकत्ते में कई दिन खूब आनन्द रहा। माँ सबके घर-घर जाती थी। चाचाजी (कामिनी बाबू) के मकान में भी गई। जहाँ कहीं भी माँ जाती थी, सब भक्त वहीं इकट्ठे हो जाते थे। वहाँ बहुधा माँ के अमृतमय उपदेश-वचन सभी लोग बैठकर सुनते थे। सन्ध्या समय जहाँ माँ रहती कीर्तन होता था, किन्तु पहले के समान कीर्तन में माँ की अवस्था में परिवर्तन नहीं होता था। माँ चुपचाप बैठकर कीर्तन सुनती। कभी जरा भाव की झलक होती भी तो सब लोग उसे समझ न पाते थे। माँ स्वयं ही सम्हाल लेती थी। कुछ दिन कलकत्ता रहकर दीनबन्धु बाबू की स्त्री को काशी दर्शन कराने के लिये सब संगी-साथियों को साथ लेकर माँ काशी को रवाना हुई। कलकत्ते से बुआजी भी हम लोगों के साथ चली। काशी में कुछ दिन रहकर दर्शनादि किये गये।

विन्ध्याचल से जमशेदपुर गमन

तदनन्तर श्री श्री माँ विन्ध्याचल को गई। दो ही दिन विन्ध्याचल ठहरकर जमशेद्पुर को रवाना हुई। इस बार काशी से माँ के साथ योगेन्द्र रायजी भी आये थे। चाँदनी रात्रि में विन्ध्याचल के खुले पहाड़ पर माँ को बैठाकर रात्रि के लगभग 12 बजे तक योगेन्द्र बाबू ने खूब कीर्तन किया। श्रोता 5–7 व्यक्ति हमीं लोग बैठे रहे। बीच में माँ चुपचाप बैठी रही। हम लोग भी चारों ओर सबके सब मौन रहे। योगेन्द्र रायजी ने मधुर कण्ठ से कीर्तन किया। स्थान, काल, पात्र सब कुछ भाग्यवश अनुकूल होने के कारण हम लोग भी आनन्द में विभोर हो उठे। बहुत दिनों से जमशेद्पुर के भक्त लोग एक बार माँ के दर्शन करने के लिये उत्सुक थे।

जमशेदपुर में श्री श्री माँ

माँ को पाकर उन्होंने महा आनन्द से उत्सव आरम्भ किया। इस बार भी माँ कृष्ण दादा के ही मकान में ठहरी। सब लोग उसी मकान में इकट्ठे होते थे। एक दिन वे सब माँ को घर–घर ले गये। प्रत्येक घर में माँ का चित्र स्थापित कर पूजा का आसन बिछाया हुआ था। सभी मकानों में जाकर देखती हूँ कि माँ के लिये आसन बिछाकर फल, मिठाई का भोग सजाकर गृह–स्वामिनी माँ की प्रतीक्षा में बैठी हैं। इतने अल्प समय में ही सब घरों में माँ की चरण–धूलि जिस प्रकार पड़ सके उसके लिये पहले से ही उन्होंने स्वयं समय निर्दिष्ट कर लिया था। तद्नुसार माँ को सभी घरों में इस थोड़े से समय में ही वे घुमा लाये। माँ केवल 2–3 दिन वहाँ रही। कीर्तन भी खूब हुआ। बंगाल में सभी स्त्रियाँ अपने सौभाग्य को अक्षय रखने की कामना से माँ को मछली खिलाना चाहती थी। पहले–पहल 1–2 मकानों में माँ ने थोड़ी–थोड़ी खाई। किन्तु तदनन्तर जिस–जिस मकान में जाती वहाँ माँ ने मछली मुँह में लेना भी पसन्द नहीं किया। मैं भी बहुत थोड़ा–सा उनके मुँह में दे देती। इसी तरह सांमजस्य रक्षा की जा रही थी। किन्तु मैं यह खूब जानती थी कि सब घरों में मछली की ही तरकारी अधिक मात्रा में होगी और थोड़ा–सा एक बार माँ के मुँह में उसे छुआ देने से ही किसी को तृप्ति नहीं होगी, परन्तु माँ की इच्छा से ही वैसा कर रही थी।

जमशेदपुर में स्थिति

एक दिन जमशेदपुर में भोलानाथजी तथा अन्य लोगों के कहने से मैंने माँ को मछली और भात जरा अधिक खिला दिया था। माँ भात भी बहुत ही कम खाती, मैं भी उतना ही खिलाती। किन्तु उस दिन जरा अधिक खिला दिया गया। मुँह धोकर आते ही माँ ने मुझसे कहा– ''आज सभी कुछ अधिक खिलाया है न?'' मैंने कहा– ''मैं इस तरह थोड़ा-थोड़ा करके तुम्हारे मुँह में देती हूँ उसमें सभी को दुःख होता है। वे इतना बन्दोबस्त करते हैं तुम कुछ भी नहीं खाती हो, सब लोग तो जानते नहीं, वे सोचते हैं कि यह खिलाती ही नहीं, इसलिये तुम नहीं खाती हो। यदि यह खिलाती तो सम्भव है तुम कुछ और भी खाओ, यह सब विचार कर आज जरा अधिक खिलाया है।'' इतने में माँ गम्भीर बनकर बोली– ''तुम नित्य खिला देती हो, तुम जानती हो मैं कितना खाती हूँ। इस निंदा और प्रशंसा की ओर दृष्टिपात न कर अपना काम नियमित रूप से करते जाना ही तुम्हारे लिये उचित है। बाहर की ओर देखने पर कभी भी अपने काम की ओर ध्यान नहीं रहता है। आज अधिक खाकर मेरा शरीर न जाने कैसा कर रहा है।'' मैंने समझा माँ की बात ही ठीक है। मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ। मुझे ज्ञात हुआ कि बाहर की ओर लक्ष्य कर मैंने माँ की सेवा में त्रुटि की है।

वहाँ से कलकत्ता गमन

2-3 दिन जमशेदुपर रहकर माँ सबको साथ लेकर कलकत्ते को रवाना हुई। मालुम हुआ गाड़ी रात्रि में छूटेगी। स्टेशन जाने के लिये 5-7 मोटर गाड़िया की गई, फिर भी सब लोग अट नहीं सके। नर-नारी सभी माँ के साथ स्टेशन जाने के लिये प्रस्तुत थे। गाड़ी में स्थान न था, गाड़ी से अनेक लोगों को उतार देना पड़ा, उस समय रात्रि में अन्य गाड़ी मँगाने का भी समय न था, माँ की मोटर जब रवाना हुई उस समय जो लोग नहीं आ सके थे उनमें जो घबराहट हुई उस दृश्य की आज भी याद आने पर मुझे दुःख-मिश्रित आनन्द का अनुभव होता है। कितने थोड़े दिनों में ही उन लोगों की माँ के लिये ऐसी व्याकुलता हुई थी। माँ सबको साथ लेकर कलकत्ता आई।

ढाका में श्री श्री माँ

2–1 दिन में ही माँ दीनबन्धु बाबू आदि सबको लेकर ढाका पहुँची। कलकत्ते में सबको रुलाकर फिर ढाका आई, वहाँ सबको आह्लादित करने लगी। सम्भवत: उस समय माघ का महीना था, माँ रमना आश्रम में ही रही।

उसी समय अर्थात् उत्सव के कुछ दिन पूर्व, एक दिन माँ के लिये मैं एक नवीन मसहरी तैयार कर लाई। प्रात:काल मैं गई, ज्योतिष दादा भी वहाँ थे, माँ ने एकाएक अपनी कुटी में जाकर नूतन मसहरी डाल देने को कहा। मसहरी डाल देने के बाद माँ उस मसहरी पर जा बैठी एवं मुझसे और ज्योतिष दादा से उसके भीतर आने को कहा। हम लोग गये। माँ ने हम दोनों जनों को अपनी गोद में लेटाकर कहा– "तुम भाई–बहन हो।" दरवाजा बन्द कर लिया था। कुछ देर बाद उठ गई। कितनी प्रकार की कितनी ही लीलायें माँ ने की, उनकी सीमा नहीं है।

पिताजी को अद्‌भुत दर्शन

मैं और पिताजी माँ के आदेश से सिद्धेश्वरी आश्रम में ही रहते थे। मैं प्रतिदिन भोर में उठकर माँ के पास आती थी। ज्योतिष दादा माँ को साथ ले जाकर घुमा लाते। मेरे आने के कुछ समय बाद ही वे अपने निवास-स्थान को चले जाते थे। पिताजी, श्री श्री माँ के आदेशानुसार सिद्धेश्वरी के आसन के समीप ही बहुत देर तक बैठे रहते थे। भोर में उठते ही तालाब में स्नान कर जप में बैठते थे, दोपहर में उठकर थोड़ा–सा जलपान कर फिर बैठ जाते थे। लगभग 5 बजे रमना आश्रम में जाकर माँ का प्रसाद जो कुछ भी रहता वही ग्रहण करते थे। तदनन्तर रात्रि में 9 से 10 बजे तक माँ के समीप रहकर मुझे साथ लेकर सिद्धेश्वरी आश्रम में आते थे। फिर जप करने बैठते थे, रात्रि में 12–1 बजे तक बैठे ही रहते थे। एक दिन जप में बैठे–बैठे पिताजी ने स्पष्ट रूप से देखा कि श्री माँ मानो (रमना आश्रम स्थित) अपनी कुटी से उठकर बाहर आई फिर सो गई। रात्रि में लगभग 12 बजे यह देखा। उस दिन माँ संध्याकाल से ही भावावस्था में पड़ी थी। दूसरे दिन आकर पिताजी ने भोलानाथजी से पूछा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि सचमुच माँ रात्रि में 12 बजे के समय एक बार उठकर गई थी, तदुपरान्त आकर फिर सो गई थी। पिताजी ने एक दिन अपने मुँह से कहा

था- ''जिस दिन मुझे माँ के दर्शन हुये उसके बाद से यदि मैं किसी जगह प्रणाम करता तो मुझे ऐसा लगता कि मानो माँ के चरण-युगल से ही मेरे मस्तक का स्पर्श हुआ।''

पिताजी की साधना-मार्ग में क्रमोन्नति

पिताजी कभी-कभी सारी रात बैठे रहते। भोर में आकर बिस्तर पर थोड़ा-सा विश्राम कर फिर उठ जाते थे। श्री माँ के उपदेश के अनुसार प्राणायाम करते थे। माँ सबको एक-सा उपदेश नहीं देती हैं। जो जैसे अधिकारी होते हैं, उनको उसी तरह का उपदेश देती हैं।

ज्योतिष दादा का उत्तरोत्तर अधिक मातृसंग

ज्योतिष दादा बड़े विचारशील पुरुष थे। शाहबाग से ही मैं देख रही हूँ, जब माँ के निकट कोई नहीं है यह देखते तब वे आकर माँ के चरणों में उपस्थित होते। उनके साथ माँ उसी भाव से विविध बातें करती। वे बहुत दिन सबके चले जाने के बाद 11 या 12 बजे माँ के समीप आकर रात बिता जाते। किसी दिन यदि माँ को सिद्धेश्वरी जाने की इच्छा होती (उस समय हम लोग सिद्धेश्वरी नहीं रहते थे। कमरे का ताला बन्द रहता) उसी समय भोलानाथजी को साथ लेकर भाड़े की गाड़ी से सिद्धेश्वरी चली जाती। उस समय कभी-कभी ज्योतिष दादा को भी उनके डेरे से ले जाती। कभी तो माँ के साथ उनकी बातचीत होती, कभी माँ वहाँ जाकर सम्भवत: पड़ी रहती। वे पैरों के पास बैठकर रात्रि बिता आते। इस तरह हर एक आदमी को अधिकारी देखकर माँ शिक्षा देती हैं। किसी की खबर कोई दूसरा विशेष रूप से नहीं जानता। माँ कहती हैं- ''जिस-जिसकी जो बात है उसको उस-उसके समीप रखो।''

सिद्धेश्वरी तथा रमना आश्रम के स्थानों का वृत्तान्त

सिद्धेश्वरी आश्रम और रमना आश्रम के स्थानों के सम्बन्ध में माँ ने कहा- ''ये स्थान सर्वसाधारण के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं।'' किन्तु स्थानों के सम्बन्ध में कुछ विवरण तब तक नहीं बतलाया। माँ ने जब इन स्थानों को लेने के लिये कहा था तब तक इन स्थानों के सम्बन्ध में किसी को कुछ पता न था। बाद में ज्ञात हुआ कि इन सब स्थानों में अनेक साधु-

संन्यासी कठोर तपस्या कर गये हैं। रमना का काली-मन्दिर बहुत बाद में बना, पहले इस आश्रम की भूमि में ही दुर्गा-मन्दिर था, इत्यादि-इत्यादि। इन सब इतिहास के अलावा भी माँ ने बातचीत के सिलसिले में स्वयं ही कहा- ''यहाँ अनेक तपस्वी कठोर तपस्या कर गये हैं एवं उनमें कई लोगों को मैंने (सूक्ष्म शरीर में) देखा है।

अवनी दत्तजी की स्त्री का वृत्तान्त

उन दिनों ढाका गेण्डरिया के अवनी दत्त महाशय की पत्नी माँ के साथ भेंट करने आया करती थी। वे गृहस्थी में रहकर भी खूब साधन-भजन करती थी। उनमें गुरु-भक्ति भी अत्यधिक थी। माँ का वृतान्त सुनकर माँ से भेंट करने आई। प्रथम दर्शन से ही उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसलिये वे और अधिक न आती उन्हें डर लगा कि कहीं माँ की आकर्षणी शक्ति के प्रभाव से गुरु से माँ के ऊपर ही अधिक स्नेह न हो जाय। किन्तु आए बिना रह भी नहीं सकती थी। घर में माँ के दर्शनों के लिये छटपटाया करती। इसलिये बाध्य होकर आश्रम में आती। इन सब बातों को लेकर माँ के साथ खूब आनन्द होता। एक बार जब उनके गुरुदेव ढाका आये तब उन्होंने माँ की सब बातें उनसे कही। माँ के प्रति उनका जो आकर्षण हुआ वह भी कहा, ''मैं माँ के पास जाऊँ या नहीं''- गुरुजी से ऐसी जिज्ञासा की। गुरुजी ने कहा- ''सब एक ही तो है, तुम्हारी जाने की इच्छा हो, जाओ।'' यह अनुमति पाने के बाद वे नित्य ही आती। अपनी सुन्दर अवस्थाओं का वृतान्त माँ से कहती। उनका केवल एक लड़का है। वह उस समय देश के स्वतन्त्रता संग्राम के सिलसिले में जेल में बन्द था। केवल एक लड़की है, उसका विवाह हो गया है। वे खूब साधन-भजन करती हैं। माँ ने ज्योतिष दादा को उनका धर्म-पुत्र बना दिया। अटल दादा को बेबी दीदी का धर्म-पुत्र बना दिया। कह दिया कि तुम लोग परस्पर एक-दूसरे के धर्म-काम में सहायता किया करो।

नये-नये भक्तों का समागम

अनेक नये-नये लोग भी माँ के श्रीचरणों में आ रहे हैं। उनमें से शचीन्द्रबाबू, प्रभात बाबू आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी उच्च श्रेणी के भद्र पुरुष प्रायः प्रतिदिन ही माँ के चरण दर्शन करने

आते थे। वकीलों में से भी बहुत से आते थे। प्रमथ बाबू, अवनी बाबू, राधिका बाबू आदि सब प्रायः रोज ही आते थे। दिन-पर-दिन लोगों की संख्या बढ़ रही थी। माँ ढाका में उस समय विशेष नहीं रहती थी। इसलिये आश्रम में माँ के आते ही लोगों की खूब भीड़ लग जाती थी। कोई-कोई प्रायः सबके चले जाने पर रात्रि में माँ के समीप निराले में जाकर कुछ समय बिता जाते थे। गणेश बाबू और उनकी स्त्री दोनों अपराह्न में आकर एक बार माँ के दर्शन कर जाते, फिर दूसरी बार कुछ अधिक रात बीतने पर माँ के समीप आकर बैठते। उस समय माँ के साथ एकान्त में बातें करने का अवसर मिलता। दीनबन्धु बाबू सपरिवार ढाका आकर 3-4 दिन ठहरकर चले गये। माघ महीने में अतुल ठाकुर महाशय ने आश्रम में सरस्वती पूजा की। विनय बाबू ने अपनी मृत कन्या के स्मारक रूप में जिस कीर्तन-गृह का निर्माण किया था, उसी में पूजा हुई। उसके बाद फाल्गुन के महीने में अतुल ठाकुर महाशय ने शिवरात्रि के दिन सिद्धेश्वरी आश्रम में शिव-पूजा की। उन्होंने सारी रात जागरण कर प्रत्येक पहर में पूजा की। बेबी दीदी, सत्य बाबू की स्त्री आदि ने सारी रात वहाँ पूजा की। खूब आनन्द रहा।

संवत् 1988 में श्री श्री माँ की दोल-लीला

संवत् 1988 की दोल (होली) पूर्णिमा के दिन राजेन्द्र कुशारी महाशय की स्त्री के आग्रह पर माँ ने सब स्त्रियों के साथ होली खेली। उस दिन बड़ा आनन्द आया। सब माँ के शरीर पर रंग डाल रही थी। माँ भी बीच-बीच में सबके शरीर पर पिचकारी से रंग डाल रही थी। अबीर और रंग से सभी लाल हो गई। दोपहर के समय माँ सबको साथ लेकर कीर्तन-गृह में जा बैठी। 3-4 घण्टे कीर्तन हुआ। उसके बाद माँ सबको साथ लेकर तालाब में स्नान करने उतरी। बहुत देर तक जलक्रीड़ा हुई। इधर प्रसाद भी तैयार हो रहा था। माँ के आदेशानुसार बेलू की माँ (राजेन्द्र बाबू की स्त्री) को 'होली का राजा' बनाया गया। क्योंकि उनके आग्रह से ही उक्त खेल हुआ था। माँ सबको स्नान करा लाकर कीर्तन-गृह में बैठी। माँ ने चन्दन घिस लाने के लिये कहा। चन्दन लाने पर सबके कपाल पर चन्दन लगा दिया गया। तदुपरान्त सबको साथ लेकर खाने बैठी। प्रातःकाल से रात तक यह दोल-उत्सव (होली) चला। तदनन्तर स्त्रियों ने माँ को प्रणाम कर विदा ली।

ढाका से मैमनसिंह और राजशाही होकर कलकत्ता गमन (सं. 1988 चैत्र)

चैत्र के महीने में माँ ने राजशाही को प्रस्थान किया। दिनेश बाबू (मुन्सिफ) उस समय मैमनसिंह में थे। वे एकाएक बीमार पड़ गये। उनकी स्त्री और बाल-बच्चों के अनुरोध से माँ का जाते समय मैमनसिंह होकर जाना स्थिर हुआ। इस बार माखन (श्री श्री माँ का छोटा भाई) और बेलू की माँ साथ चली। हम लोग माँ के साथ मैमनसिंह जाकर 2-3 दिन रहकर राजशाही गये। मरणी भी साथ थी। रास्ते से मरणी, पिताजी और मैं श्री श्री माँ के आदेश से कलकत्ता चले गये। माँ और भोलानाथजी, माखन और बेलू की माँ को लेकर राजशाही गये। 2-3 दिन वहाँ रहकर कलकत्ते में चाचा बाबू (भोलानाथजी के भाई), कामिनी बाबू के वास-स्थान पर आये।

कलकत्ते में स्थिति एवं श्रीरामपुर के गोवर्धन और उसकी माता का वृत्तान्त (संवत् 1989 बैशाख)

संवत् 1989 सौर 1 बैशाख को कलकत्ते में बुआजी के मकान में माँ भोग के लिये गई। वहाँ भी खूब आनन्द रहा। एक मुसलमान भद्र पुरुष ने माँ को नारंगी खिला दी। श्री श्री माँ ने अपने गले की एक लड़ की माला सौर 1 वैशाख को पिताजी को दी। पिताजी ने आज भी उसे जतन से रख छोड़ा है। इधर रामपुर से गोवर्धन की माता, माँ कलकत्ते आई हैं यह खबर पाकर आ उपस्थित हुई। किन्तु माँ कहाँ हैं यह उन्हें मालूम न था। धूप में भक्तों के घर-घर खोजते-खोजते रास्ते में बेहोश होकर गिर पड़ी। उसके बाद अत्यन्त कष्ट से सुरेश बाबू के मकान में आकर माँ की प्रतीक्षा करती रही। माँ उस समय भी बुआजी के मकान से लौटी नहीं। ये सुरेश बाबू और उनकी स्त्री दोनों माँ के खूब भक्त हैं। दोनों व्यक्ति माँ के समीप जाकर चुपचाप दूर बैठकर माँ के मुँह की ओर निहारते हुये बैठे रहते हैं। उनको न तो कोई जिज्ञासा है और न कोई प्रार्थना, दर्शन करके ही तृप्त हैं। बीच-बीच में अपने घर ले जाकर माँ को भोग देते हैं।

अन्तर्यामिनी श्री श्री माँ

एक दिन की घटना है कि सुरेश बाबू के मकान में माँ के जाने की

बात थी। उनकी स्त्री इस आशा में प्रात:काल से सब साफ-सुथरा कर माँ के लिये भोग बनाकर बैठी थी। किन्तु संयोगवश फिर वहाँ जाना नहीं हुआ। माँ चाचाजी के मकान में बैठी थी, अथाह भीड़ थी। सहसा सन्ध्या के कुछ पहले माँ ने मुझे बुलाकर कहा- "पिताजी से कहो, एक गाड़ी लाकर मुझे एक बार सुरेश बाबू के मकान में ले जायें। वे शायद मेरी प्रतीक्षा में बैठे हैं।" पिताजी तुरन्त एक मोटर से माँ को लेकर सुरेश बाबू के मकान में गये। जाकर देखते हैं कि सचमुच उन्होंने खाया नहीं, बैठे हैं। उनकी स्त्री का विश्वास था कि "माँ निश्चय ही आयेंगी, माँ के आने पर उनके मुँह में कुछ देकर प्रसाद पावेंगें;" इसी भरोसे बैठी रही। अन्तर्यामिनी माँ जाकर उपस्थित हुई। माँ को पाकर उन्हें कितना आनन्द हुआ! माँ को थोड़ा-सा खिला दिया, तदनन्तर सबने प्रसाद पाया।

गोवर्धन की माँ के साथ श्री श्री माँ के प्रथम परिचय का विवरण

उधर गोवर्धन की माँ ने भी बहुत प्रयत्न करने के बाद माँ के दर्शन पाये। गोवर्धन की माँ के साथ माँ की जिस समय पहले-पहल भेंट हुई वह भी एक सुन्दर घटना है। एक बार किसी स्टेशन के वेटिंग-रूम में प्रविष्ट होकर देखा तो बैठने की जगह न थी। उसी रूम में गोवर्धन की माँ भी बैठी थी। माँ को खड़ी देखकर गोवर्धन की माँ ने कहा- "बैठो न।" माँ उन्हीं की ओर बढ़कर बोली- "कहाँ बैठूँ? जगह तो नहीं है।" उन्होंने माँ के मुँह की ओर देखकर कह डाला, "जगह नहीं है? तो मेरी गोद में ही बैठो।" माँ इस पर कुछ कहे बिना तुरन्त जाकर उनकी गोद में बैठ गई। उन्होंने चिपटाकर गोद में ले लिया। सभी लोगों ने इस घटना को देखकर माँ को 'पागल' समझा। क्योंकि मस्तिष्क में विकार हुये बिना क्या कोई भद्र महिला इस प्रकार किसी अपरिचित भद्र महिला की गोद में जाकर बैठ सकती है? थोड़ी ही देर बाद गाड़ी आई। माँ और गोवर्धन की माँ गाड़ी में जा बैठी। थोड़ी देर तक दोनों साथ रही। कुछ देर बाद गोवर्धन की माँ ही पहले उतर गई। माँ हावड़ा उतरी।

संयोगवश गोवर्धन की माँ बहुत-सी चाबियाँ गाड़ी में छोड़ गई। माँ के साथ वीरेन्द्र दादा आदि थे। वे उन चाबियों को गाड़ी में से ले गये। किन्तु माँ ने गोवर्धन की माँ का पता कुछ नहीं पूछा। श्रीरामपुर में रहती हैं

केवल इतना ही जानती थी। तदनन्तर उक्त चाबियों के कारण ही एक महीने तक खोज करते–करते माँ के साथ फिर गोवर्धन की माँ की भेंट हुई। उस समय वे माँ का समाचार पाकर माँ को अपने घर रामपुर ले गई। उनके लड़के गोवर्धन की उस समय छोटी अवस्था थी। वह भी माँ का बहुत बड़ा भक्त हो गया। तभी से माँ कलकत्ता जाते समय अक्सर गोवर्धन के घर रामपुर जाती हैं, हम लोग भी माँ के साथ वहाँ गये हैं। पहले–पहल भेंट होने के समय हम लोग माँ के साथ न थे।

अज्ञात भाव से प्राप्त कमल के फूलों द्वारा माँ के उद्देश्य से पूजा

एक बार माँ की पूजा करने के लिये गोवर्धन ने इधर-उधर कमल के फूलों की खोज की, किन्तु कमल के फूल मिले नहीं। उसके बाद माँ जब चली आई, माँ को गाड़ी में बैठाने के लिये वे भी सब स्टेशन आये। मकान में ताला लगा आये। स्टेशन से घर जाकर देखते क्या हैं कि जंगल से कोई बहुत से कमल के फूल कमरे में फेंक गया है। इस घटना से वे चकित हो गये। उन्होंने उक्त पद्म फूलों से माँ के निमित्त पूजा की।

श्री श्री माँ नियमानुवर्तित्व के बाहर

माँ इस बार कलकत्ते में चाचा बाबू के मकान में ही ठहरी। माँ के प्रत्येक बार कलकत्ता जाने पर फिर दिन और रात्रि के बीच कभी भी माँ को विश्राम के लिये समय नहीं मिलता। यह सब विचार कर इस बार बुआजी, चाचा बाबू आदि ने निश्चय किया कि दिन में 12 बजे के बाद कुछ घण्टे और रात्रि में 9 बजे के बाद भोर तक माँ के समीप कोई नहीं रह सकेगा, माँ को विश्राम करने दिया जायेगा अन्यथा इस प्रकार शरीर नहीं टिकेगा, इत्यादि–इत्यादि। ढाका में भी दो–एक बार ज्योतिष दादा ने इस प्रकार नियम करने की चेष्टा की थी, किन्तु सफल नहीं हुये। लोगों का आग्रह देखकर उन्हें रोकना सम्भव नहीं हुआ। माँ भी नियम में बन्द रहने वाली नहीं हैं, इसलिये कोई भी नियम चलता नहीं है। इस बार भी ऐसा नियम बना। दिन में 12 बजे के बाद ही चाचा बाबू ने सबसे मुँह से नहीं कहा जा सकता यह सोचकर घड़ी रखा दी। माँ के शरीर के लिये ही उक्त व्यवस्था हुई थी, इसलिये किसी ने भी कुछ आपत्ति नहीं की।

दिन का नियम–भंग

सभी जाते हैं, जाते हैं, कहकर प्राय: 12 बजे उस दिन विदा हुये। उसके पश्चात् माँ को विश्राम करने के लिये एक कमरे में सुलाकर हम 2-4 व्यक्ति समीप बैठकर पंखा झलने लगे। बाहर भीषण धूप थी। बैशाख का महीना था, गर्मी भी खूब पड़ रही थी। चाचा बाबू, भोलानाथजी आदि भी दूसरे कमरे में जाकर विश्राम कर रहे थे। किन्तु माँ उठ बैठी। कुछ ही देर बाद चाचा बाबू के कमरे में जा पहुँची। उन्हें उठाकर सड़क पर घूमने निकल पड़ी। चाचा बाबू ने कहा– ''यह क्या हुआ! सब लोगों को कितने प्रयत्न से हटाकर हम लोगों ने आपके विश्राम की व्यवस्था की है, फिर आप उठकर धूप में बाहर निकली। सब लोग आकर मुझसे क्या कहेंगे?'' किन्तु ये सब बातें कौन सुनता? माँ ने हँसते हुये कहा– ''मेरा माथा विकृत है यह तो आप जानते ही हैं न? मैं आप लोगों को भी विश्राम नहीं करने दे रही हूँ।'' यह कहकर सड़क ही सड़क घूमने बाहर निकल पड़ी। एक दुकान में जाकर कुछ भिक्षा माँगी। उसने शायद कुछ दिया। उसे लेकर फिर दूसरी एक जगह दे आई। इस प्रकार लीला कर रही थी। हम केवल थोड़े से व्यक्ति साथ थे। यतीश दादा (गुहा) माँ के बिना सुस्थिर न रह सकने के कारण फिर चाचा बाबू के मकान में उपस्थित हुये। अपराह्न में 4 बजे के बाद माँ के साथ भेंट होगी, ऐसा नियम बनाया गया। किन्तु उन्होंने दोपहर में ही आकर माँ को घर में नहीं पाया। सड़क ही सड़क माँ बाहर गई हैं यह खबर पाकर उन्होंने भी जाकर माँ का संग लिया।

भक्त की आकुल प्रार्थना से श्री श्री माँ की कृपा

इस प्रकार आनन्द करते-करते माँ क्षितीश दादा के श्वसुर पशुपति बाबू के मकान में जा पहुँची। उन दिनों पशुपति बाबू की स्त्री बहुत बीमार थी। वे आकर माँ के दर्शन तक नहीं कर सकती थी। केवल लेटे-लेटे प्रार्थना कर रही थी– ''हे माँ, यदि तुम अन्तर्यामिनी माँ हो तो आकर दर्शन दो।'' इसी बीच में दोपहर के समय टहलते-टहलते माँ जाकर उनके समीप उपस्थित हुई। वे तो माँ को देखते ही आश्चर्य में पड़ गई। तत्क्षण भूमि पर लेटकर उन्होंने माँ को प्रणाम किया। पशुपति बाबू ने इस बात को लेकर बहुत देर तक विचार किया। सभी दंग रह गये। माँ कभी भी इस प्रकार दोपहर के

समय सड़क से नहीं जाती हैं। उसी दिन बाहर निकलकर उस घर में गई। कुछ देर उस घर में रही। उसके बाद कहाँ से (ठीक स्मरण नहीं है) माँ को लेने के लिये मोटर आई। माँ दूसरे किसी मकान में चली गई।

रात्रि का नियम–भंग

सन्ध्या के बाद माँ चाचा बाबू के मकान में वापस आई। दिन का नियम तो इस तरह तोड़ दिया। रात्रि में भी 9 बजे के बाद सबको उठा दिया गया। किन्तु माँ ने उस दिन भी सारी रात जो लोग वहाँ उपस्थित थे, उनको सोने तक नहीं दिया। बुआजी के साथ, चाचाजी के साथ, तदनन्तर चाचीजी के साथ गपशप हँसी–मजाक कर सारी रात बिता दी। दूसरे दिन भक्तों ने आकर सुना कि माँ का विश्राम इस प्रकार हुआ। इस प्रकार माँ सब नियम तोड़ डालती। माँ कभी भी किसी नियम की परिधि में बन्द नहीं रह सकती। ढाका में आश्रम बनने के बाद माँ बोली– ''तुम लोगों ने यह सोचा है कि इस चहारदीवारी से घिरी छोटी–सी जगह में इसे (मुझे) उलझा रखेंगे। आश्रम बनाया है, तुम सब लोग सद्‌भाव से यहाँ आकर एकत्र होगे। मैं तो कहाँ रहूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ भी ठीक नहीं।'' वास्तव में देखने में आ रहा है कि जितने ही आश्रम बन रहे हैं, माँ बाहर से बाहर ही घूम–फिर रही हैं।

कलकत्ते से राजशाही होकर ढाका गमन

कलकत्ते में कुछ दिन रहने के बाद दूसरी बार राजशाही जाने की बात उठी। माँ ने कहा– ''इस बार आते समय राजशाही में गिरिजा बाबू ने एक दिन अपने मकान में रहकर आने का बहुत आग्रह किया था, किन्तु रहना नहीं हुआ। इसलिये फिर राजशाही जाकर एक दिन उनके घर ठहरकर ढाका जायेंगे।'' वही हुआ। माँ पुन: राजशाही गई। तदुपरान्त सबको साथ लेकर ढाका आई। इस बार भी हम लोग राजशाही नहीं गये। कलकत्ते से पोड़ादह आकर माँ के साथ होकर ढाका आये।

राजशाही में अटल दादा के मकान में पहले की एक घटना

राजशाही पहले एक बार माँ हम लोगों को साथ लेकर गई, अटल दादा के मकान में ही हम सब ठहरे। किसी एक मकान में रात्रि के समय

कीर्तन होने वाला था, माँ को वहाँ ले गये। हम लोग भी साथ गये, किन्तु अटल दादा नहीं गये। माँ ने लौट आकर देखा तो अटल दादा खा-पीकर सो रहे थे। माँ के आने पर उठे। माँ ने उनसे कहा- "तुम तो अच्छे आदमी हो? हम लोग कीर्तन में गये, तुम नहीं गये, यहाँ हमारे खाये बिना ही तुम खा-पीकर सोये हो।" उन्होंने कहा, "मेरे खा लेने से ही तो तुम्हारा भी खाना हो जाता है, पुत्र की भूख शान्त रहने पर ही माँ का पेट भरा रहता है।" माँ ने कहा- "इसलिये न? बहुत अच्छा, इस बात का स्मरण रहे।" अनन्तर जब माँ को जलपान करने को दिया गया तब माँ थाली का भोजन अटल दादा को देने के लिये कहकर बोली- "अटल के भोजन करने से ही जब मेरा भोजन हो जाता है तब अटल को ही यह सब खाने को दो।" अटल दादा भी हँसकर उसे खा गये। माँ सोई नहीं, बोली- "अटल के सोने से ही तो मेरा सोना हो जायेगा।" अटल दादा ने भी मजाक में कहा- "बहुत अच्छा तुम बैठी रहो, मैं सोने जाता हूँ।" यह कहकर जाकर सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर माँ ने कहा- "अटल के मकान में रहने से ही तो मेरा रहना हो जायेगा, चलो हम लोग दूसरी जगह जायें।" यह कहकर हम लोगों को साथ लेकर पैदल ही रवाना हुई। अटल दादा की बहू भी हम लोगों के साथ चली। माँ सबको लेकर नदी के किनारे एक छोटे मंदिर पर जाकर बैठी। बोली- "इसी जगह भोजन बनाओ।" वैसा ही किया। भोलानाथजी और पिताजी बाजार से सब सामान ले आये। मैंने और अटल दादा की बहू ने नदी के किनारे पत्थर में ही भोजन बनाया। खीर बनाई गई। मैंने एक छोटी हाँडी में थोड़ी खीर उड़ेलकर नदी के जल में उसे जमाकर रख दिया एवं माँ को खिचड़ी खिलाना शुरू किया। मैंने सोचा इतने में खीर ठण्डी हो जायेगी। खिचड़ी खिला दी गई। मैं उस हाँड़ी से थोड़ी खीर एक गिलास में लेकर माँ के मुँह में अलग से डाल दी। माँ उस समय गिलास में मुँह लगाकर पानी तक नहीं पीती थी। अलग से उड़ेल देना पड़ता। ज्यों ही मैंने डाला, त्यों ही माँ उसे उगलती हुई अत्यन्त घबराहट के साथ मुझसे बोली- "अब तुम इस गिलास से जल्दी जरा खीर अपने मुँह में डाल दो।" माँ इतनी घबराहट और जल्दी से बोली कि मुझे कुछ विचारने का समय ही नहीं मिला।

तुरन्त गिलास से खीर मैंने अपने मुँह में डाल दी। मुँह में देते ही मुझे प्रतीत हुआ इतनी गर्म थी कि मुँह जल जाने की नौबत आ गई। मैं उसे अच्छी तरह निगल न सकी। मैंने मुँह से जमीन पर फेंक दिया। माँ हँसने लगी। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मैंने ठण्डा हुआ या नहीं यह देखे बिना ही माँ के मुँह में डालकर कितना अन्याय किया। आज इसीलिये माँ ने मुझे खिलाकर शिक्षा दी। वास्तव में उससे मुझे तो शिक्षा मिली ही। अटल दादा की बहू कहने लगी– ''मुझे भी शिक्षा मिली, मैं तो मधुर भोजन (खीर) बनाकर गरम ही भोग माँ को निवेदन करती हूँ। आज से बिना देखे, बिना ठण्डा किये माँ को भोग निवेदन नहीं करूँगी।'' माँ बोली– ''कभी भी देवता के लिये भोग इतना गरम देना नहीं।'' माँ ने इस तरह न जाने कितने प्रकार से हम लोगों को शिक्षा दी है, किन्तु फिर भी शिक्षा होती है क्या?

* * *

सत्रहवाँ अध्याय

ढाका में संवत् 1989 का जन्मोत्सव

संवत् 1989 के बैशाख महीने में माँ ढाका आई। थोड़े दिनों के बाद ही माँ का जन्मोत्सव आरम्भ हुआ। इस बार जन्मोत्सव के कुछ महीने पहले से ही अन्नपूर्णा, विश्वेश्वराय, काली आदि की मूर्तियाँ बदल दी गई। ज्योतिष दादा के ऊपर ही यह सब भार था। वे ही करा रहे थे। इस बार जन्मोत्सव के समय नई मूर्तियाँ तैयार होकर आई, उनकी प्रतिष्ठा की गई। इस बार की मूर्तियाँ खूब सुन्दर बनी। अष्टधातु की मूर्तियाँ थी, विश्वनाथ की मूर्ति चाँदी की थी। माँ के शरीर के पहने हुए सब गहनों को गलाकर इन सब देवताओं के गहने बनवाये गये। भोलानाथजी ने प्रतिष्ठा की। हवन आदि भी विशेष रूप से हुआ। काशी से पिताजी ने सफेद पत्थर की शिवमूर्ति मँगाई थी, दूसरे मन्दिर में शिवजी की भी प्रतिष्ठा की गई।

कुमारी–पूजा

माँ के आदेशानुसार एक दिन कुलदा दादा ने अपनी कन्या की ही कुमारी देवी के रूप में पूजा की। फिर एक दिन उत्सव में ही पिताजी, मैं, योगेश दादा, अतुल, कमलाकान्त और कानू – इन छः आदमियों ने मिलकर माँ के आदेशानुसार हर एक ने एक-एक करके भिन्न–भिन्न कुमारी की पूजा की। माँ ने कहा– ''इस मार्ग में आने के लिये यह बहुत आवश्यक है।'' उसके पश्चात् एक दिन माँ ने कुमारी भोजन कराया। हवन भोलानाथजी ने ही किया। किन्तु हम 5–7 व्यक्तियों को रोज ही फल–फूलों की आहुति देने की आज्ञा दी।

इक्कीस दिनों तक अखण्ड नाम–कीर्तन

इस बार जन्म की तारीख से जन्म–तिथि का 21 दिन का अन्तर पड़ा। इन इक्कीस दिनों तक लगातार नाम–कीर्तन हुआ। माँ के आदेश से उक्त 21 दिनों जो चरु पकाया जाता, उसी को खाकर हम 5–7 व्यक्ति रहे। माँ और भोलानाथजी भी उसी को खाकर रहते। भोलानाथजी पूजार्चना

में बहुत ही अधिक परिश्रम करते किन्तु बहुत थोड़ा चरु और फल खाकर स्वस्थ रहते। बेबी दीदी ने एक दिन कुमारी-पूजा की। कुमारी को सोने के विविध आभूषणों से सजा दिया।

108 प्रकार के दाल–तरकारी आदि से युक्त अन्नपूर्णा माँ का भोग

एक दिन माँ के आज्ञानुसार श्रीअन्नपूर्णा को 108 प्रकार के दाल, साग, तरकारी आदि से युक्त खाद्य पदार्थों से भोग लगाया गया। ब्रह्माणों ने ही उसके लिये जल खींचा, मसाले पीसे। खूब शुद्धता के साथ यज्ञ की अग्नि द्वारा उक्त भोग तैयार किया गया। लगभग 8–10 स्त्रियों ने रसोई बनाई। उस दिन के उस भोग का प्रसाद ब्रह्मचारियों ने भी ग्रहण किया। माँ सब स्त्रियों को साथ लेकर आश्रम के भीतर के मैदान में खाने बैठी। खूब आनन्द से खाना–पीना हुआ। इस बार भी माँ ने दो रात्रियाँ महिलाओं के साथ नाम–कीर्तन कर बिताई। इस प्रकार प्रतिदिन एक–एक उत्सव विशेष रूप से मनाकर माँ आनन्द करती रही।

वृष्टि में अपूर्व कीर्तनानन्द

108 पदार्थों के भोग के दिन रात्रि में खूब वृष्टि हुई। माँ वृष्टि में ही कीर्तन करने लगी। जो बरामदे में बैठे थे, माँ ने दोनों हाथों से वृष्टि का जल छिड़ककर उन्हें भिगो दिया। बाध्य होकर वे भी वृष्टि में उतर पड़े। माँ एकाएक जल में कीचड़ में लोट–पोट दे उठी। बहुत रात बीतने तक यह लीला चली।

जटू भाई द्वारा श्री श्री माँ की अद्‌भुत आरती

उसके बाद माँ के कपड़े बदलाकर मैंने अपने कपड़े बदले। जटू खूब सुन्दर आरती करता है। इस बार भी उसने माँ की अपूर्व आरती की। महिलाओं ने फूलों के हार आदि से माँ को सजाया। मारे आनन्द के उत्सव में सब मस्त हो उठे।

श्री श्री माँ की सब विषयों पर सतर्क दृष्टि और परस्पर के अज्ञात भाव से व्यवस्था का निर्देश

माँ ने मन्दिर के कार्यादि के सम्बन्ध में जो कहना था वह ब्रह्मचारियों

से कहा– पूजा–अर्चना के सम्बन्ध में जो कहना था भोलानाथजी से कहा– सभी ओर माँ का लक्ष्य था। जिससे जो कहना था, कह रही थी, वही सुन रहा था, दूसरों को उसका पता तक नहीं चल सकता था। आवश्यक बातें कहकर ही माँ साधारण रूप से सब स्त्रियों के बीच में जाकर इस प्रकार पूजा और हवन देखने बैठ गई कि मानो वे कुछ भी जानती न हों, सब लोग जैसे देख रहे थे वे भी वैसे ही देख रही थी। सच तो यह है कि प्रत्येक काम के प्रति उनका कैसा अद्भुत ध्यान रहता है। उनके निर्देश के अनुसार ही सब काम सुन्दर ढंग से हो रहे थे। किन्तु बाहर से कोई भी माँ के व्यवहार से यह समझ नहीं सकता था। शिशु के समान ही आनन्द करती थी, घूमती–फिरती थी।

अन्तिम दिन का महोत्सव–सिन्दूर की डिबियों और रेशमी साड़ियों का वितरण

अन्तिम दिन महोत्सव हुआ। इस बार भी जन्म–तिथि के दिन की पूजा अन्नपूर्णा की मूर्ति पर ही हुई। भक्तों द्वारा दी गई सिन्दूर की डिबियाँ सन्दूक भरकर बहुत जमा थी, माँ के आदेश से वे डलिया में भरकर स्त्रियों में बाँट दी गई। रेशमी कपड़े, जिन्होंने भोग बनाया था, उनमें बाँट दिये गये। लोगों की अथाह भीड़ थी। माँ मैदान में सबके साथ घूम रही थी। दिन–रात प्राय: इसी तरह बिता रही थी।

सम्भवत: उत्सव के बीच में ही भूपति दादा की लड़की के विवाह का दिन पड़ा। विवाह के पहले दिन वे माँ को अपने घर ले गये, हम लोग भी साथ गये। माँ के लौटकर आश्रम में आते ही महिलाओं में से एक सहसा उलू–ध्वनि (मधुर मंगल ध्वनि) कर उठी। माँ तुरन्त मेरी ओर देखकर बोली– ''यह क्या? उलू–ध्वनि जो हो रही है, इससे ज्ञात होता है कि आश्रम में कोई शुभ कार्य होगा, क्या कहती हो?'' मैंने इस बात का कुछ भी मतलब नहीं समझा।

चिनू के साथ मरणी के भावी विवाह का वाग्दान

दूसरे ही दिन भूपति दादा की लड़की का विवाह होने वाला था। इधर आश्रम में दूसरे दिन सन्ध्या से ही एक पाला कीर्तन हो रहा था। विवाह

का लग्न जरा रात का था। माँ प्राय: दिन भर मन्दिर के भीतर सिंहासन के पीछे फर्श पर पड़ी रही। सन्ध्या समय उठकर अपनी कुटी में जाकर माँ ने भोलानाथजी को बुला भेजा। दोनों में देर तक बातें हुई। कुछ देर के बाद ही कुलदा दादा उस बरामदे में गये। उनकी स्त्री भी घर से आकर वहाँ गई। माँ ने उन दोनों स्त्री-पुरुषों से जाकर पंचवटी में बैठने को कहा। कुछ देर के बाद ही माँ भोलानाथजी को साथ लेकर वहाँ गई। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। इधर कीर्तन समाप्त हो गया। बहुत से लोग विदा लेकर अपने घर चले गये। जो वहाँ रह गये थे, माँ ने उन सबसे पंचवटी जाने को कहा। सब उपस्थित हुये। इधर मरणी* को वस्त्र-आभूषणों से सजाकर लाया गया। सबके सामने शुभ लग्न में मरणी का कुलदा दादा की पुत्र-वधू के रूप में वाग्दान किया गया। कुलदा दादा का पुत्र चिनू भी वहाँ उपस्थित था। माँ ने कहा- ''इस समय मरणी की केवल आठ वर्ष की अवस्था है। उपयुक्त अवस्था में यदि सब लोग मंगलपूर्वक रहें तो चिनू के हाथ में ही मरणी का दान किया जायेगा।'' कुलदा दादा और उनकी स्त्री ने पुत्र-वधू के रूप में मरणी को गोद में लिया। पंचवटी के अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर ही माँ ने यह कार्य सम्पन्न कराया। भोलानाथजी मरणी को बहुत प्यार करते थे। सहसा इस घटना से वे रोने लगे। माँ धीर, स्थिर रही। जरा हँसकर माँ ने कहा- ''रोने की कौन-सी बात है? जिसका जो होने वाला है, होगा ही, इसमें घबराने की क्या बात है?'' उसी समय तीन दिन के लिये मरणी को, चिनू और उसकी माँ के साथ उनके मकान में भेज दिया गया। तीन दिन के बाद मरणी पुन: आश्रम में आकर मटरी बुआ के पास ही रही। उत्सव समाप्त हो गया।

श्री श्री माँ के साथ भक्तों के घरों से हमारा भिक्षा-ग्रहण

एक दिन सवेरे के समय गाड़ी करके माँ विनय दादा (वन्द्योपाध्याय) के घर गई। साथ में भोलानाथजी, मैं, मनोरमा दीदी और ज्योतिष दादा गये। माँ कभी भी विनय दादा के मकान में गई नहीं थी, यही सब बातें

---

* मरणी को बाल्यावस्था से ही निरामिष भोजन खिलाया जाता एवं किसी के पत्तल की वस्तु खाने नहीं दी जाती थी। बचपन से ही उसे शिव-पूजा की शिक्षा दी गई थी। वह प्रतिदिन शिव-पूजा करती। बचपन से ही मरणी सुन्दर कीर्तन कर सकती। इस प्रकार खूब शुद्धता के साथ उसका पालन किया गया था।

हो रही थी। विनय दादा के मकान में माँ कुछ देर ठहरी। आते समय उनकी माँ ने कुछ अच्छी मूँग की दाल और तरकारी माँ को भोग लगाने को दे दी। मैंने कपड़े के छोर में उसे बाँध लिया। इधर कुछ दिन पहले से ही माँ के निर्देशानुसार कमलाकान्त और अतुल सप्ताह में एक दिन भिक्षा करने के लिये बाहर निकलकर चावल, दाल जो कुछ पाते ले आते। उस बात का स्मरण हो आने के कारण मैंने हँसकर कहा– "आज देखती हूँ कि हम भिक्षा में क्या पाते हैं?" विनय दादा के घर से हम लोग कुलदा दादा के मकान में गये। जाते ही मैंने उनकी स्त्री से हँसकर कहा– "आज हम लोग भिक्षा के लिये निकले हैं, कुछ भिक्षा दीजिये। यह कहकर मेरे आँचल फैलाते ही उन्होंने भी चावल, तरकारी और कुछ पैसे दिये। उसके बाद हम फीलखाना में प्रताप बाबू के मकान में पहुँचे। वहाँ भी भिक्षा माँगी गई। उन्होंने बहुत तरकारी दी, मेरे आँचल में न अँटते देख माँ ने भोलानाथजी और ज्योतिष दादा से कहा– "तुम लोग भी कपड़े फैलाकर भिक्षा लो, वह अकेली कितना लेगी?" तब उन्होंने भी कपड़े में भिक्षा की वस्तुयें बाँध ली। इसी प्रकार रायबहादुर भूदेव बाबू, सुरेन्द्र बाबू आदि अनेक घरों में माँ उस दिन गई। क्रमश: प्राप्त भिक्षा की वस्तुयें लाने के लिये एक दूसरी गाड़ी की गई। इधर माँ ने सभी से दोपहर के समय आश्रम में आकर प्रसाद ग्रहण करने को कहा। इस प्रकार भिक्षा की सब वस्तुयें लेकर हम आश्रम में आये।

ज्योतिष दादा की स्त्री का वृत्तान्त

रास्ते से ही ज्योतिष दादा किसी कार्यवश अपने घर चले गये। माँ ने उन्हें भी भिक्षा के लिये कुछ दाल, चावल दे देने को कहा एवं उनसे बोली– "आज ही पकाकर खा लेना।" माँ के आदेश से वे बहुत दिनों से स्वयं अपने हाथ से बनाकर खाते थे। अवश्य, ज्योतिष दादा की स्त्री यह सब पसन्द नहीं करती थी। इन्हीं सब कारणों से वे माँ के प्रति क्रुद्ध हो गई थी। आश्रम में आना भी बन्द कर दिया था। करुणामयी माँ ने सन्तान के कल्याण के लिये दो रात जाकर ज्योतिष दादा के मकान में रहकर उनकी स्त्री को समझाया, किन्तु फल कुछ नहीं हुआ। ज्योतिष दादा को भी जो स्वयं सत्य प्रतीत हुआ उसी मार्ग के वे पथिक बने। उनकी स्त्री

का भी असन्तोष दिन-पर-दिन बढ़ता गया। बाद में वे माँ की अनेक निंदायें करने लगी। किन्तु निंदा और स्तुति में समबुद्धि हमारी माँ गंगाजल के समान सब कुछ को समान रूप से अपने में मिला ले गई। आनन्द से सब कुछ ग्रहण करने लगी। इसके कारण उनमें तनिक भी नाराजी प्रकट नहीं होती थी बल्कि उत्सव में ज्योतिष दादा की स्त्री को लाने के लिये माँ ने पिताजी को उनके समीप भेजा। किन्तु माँ का यह अनुग्रह भी उनकी समझ में नहीं आया। किस कारण से क्या हुआ? यह माँ समझती थी, इसलिये उनके ऊपर माँ का असन्तुष्ट होने का कोई कारण न था।

भिक्षा से प्राप्त अन्नादि द्वारा आश्रम में श्री श्री माँ का भोग और भक्तों का प्रसाद ग्रहण

माँ ने आश्रम में पहुँचते ही मुझे पूजा-अर्चना करने के निमित्त सिद्धेश्वरी भेज दिया। सभी लोग आश्रम में आकर आनन्द लूट रहे थे। भिक्षा में प्राप्त पदार्थों की रसोई बनी। इधर उस दिन मनोरमा दीदी की इच्छा हुई कि मैं थोड़ा कुछ बनाकर माँ को भोग दूँ। माँ की अनुमति लेकर एक तरफ उन्होंने भी बिना नमक की तरकारी (ब्राह्मण के सिवाय अन्य जातिवालों के हाथ से सामान्य नमक डाली हुई तरकारी माँ के भोग में नहीं दी जाती है, यद्यपि सभी वर्ण वालों द्वारा घी एवं सैंधा नमक द्वारा पकाया भोग माँ को दिया जा सकता है।) और पूरियाँ बनाकर माँ को भोग लगाया। माँ के लिये भोग तैयार होते ही माँ वीरेन्द्र दादा को साथ लेकर मुझे लिवा ले जाने के लिये सिद्धेश्वरी आश्रम में जा उपस्थित हुई। माँ आते समय वहाँ के काली-मन्दिर में जाकर कालीजी का स्पर्श कर आई और बाहर आकर पीपल वृक्ष का भी स्पर्श कर मुझे ले रमना आश्रम में चली आई। मनोरमा दीदी का भोग तैयार हो चुका था। उन्होंने उसे माँ के समीप लाकर रख दिया। माँ अपनी कुटी में ही बैठी रही। मैंने ही माँ को खिला दिया। पीछे माँ ने कहा- ''तुमको भी दूँ क्या?'' मैंने कहा- ''यहाँ फिर कौन देगा?'' माँ ने एक पूरी और तरकारी मेरे हाथ में दी। उस समय और भी अनेक लोगों के हाथ पसारते ही उनके हाथ में भी माँ ने पूरी और तरकारी दी। मनोरमा दीदी ने माँ का हाथ ही चाट लिया। माँ उठ गई। तदनन्तर माँ ने मुझसे कहा- ''सबके साथ प्रसाद लेने को बैठ जा।'' शाम होने वाली थी। हम सब लोग प्रसाद पाने को उठे। माँ मैदान में सबको ले गई।

श्री श्री माँ का अपने हाथ से बेबी दीदी के दिये हुये भोग का वितरण

उत्सव को समाप्त हुये थोड़े ही दिन बीते थे। लोगों की भीड़-भाड़ अभी भी चल ही रही थी। उसी बीच एक दिन बेबी दीदी ने माँ को 108 पदार्थों का भोग दिया। उस दिन माँ ने सन्ध्या के समय एक बड़े से बर्तन में सब तरकारियों से प्रसाद सानकर सबके हाथ में स्वयं वितरण किया। उस दिन जाति-भेद नहीं रहा। माँ ने कहा- ''आज यज्ञ की अग्नि से यह भोग प्रस्तुत हुआ है, आज श्रीक्षेत्र है।''

सिद्धेश्वरी की वेदी में शिवलिंग की प्रतिष्ठा

एक बात लिखना मैं भूल गई हूँ। उत्सव के बीच में ही सिद्धेश्वरी में जो वेदी बनाई गई थी, उसके ऊपर काले पत्थर का एक शिवलिंग स्थापित किया गया। यह शिवलिंग कृष्ण दादा ने मँगाया था। भोलानाथजी ने ही सब प्रतिष्ठा कृत्य किया। एक बात मैंने देखी- माँ ने प्रतिष्ठा की सारी विधि बतला दी; वहीं पर खडी रही; जब सब काम हो चुके, शिवलिंग की प्रतिष्ठा होने ही वाली थी, माँ एकाएक कमरे से बाहर चली गई। फिर प्रतिष्ठा के बाद जब ब्राह्मणों के साथ भोलानाथजी ने शिवलिंग को स्नान कराना आरम्भ किया तब अपने आप कमरे में माँ उपस्थित हुई। इसका क्या कारण है? यह जिज्ञासा करने पर माँ ने कहा- ''न जाने क्यों नहीं रह सकी, सब बातें तो स्पष्ट रूप से कह नहीं सकती। इसका कारण भी नहीं कह पा रही हूँ।''

रमना आश्रम के शिव-मन्दिर के ऊपर बनाये गये साँप की बात

रमना आश्रम में जो शिवमन्दिर बना है, माँ की इच्छानुसार उसके ऊपर एक बड़ा साँप बना दिया गया है। साँप जिस प्रकार घूमकर चढ़ेगा, यह भी माँ ने बतला दिया। एक दिन उत्सव से कुछ पहले माँ सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर सोई थी। अमूल्य बाबू और गणेश बाबू माँ के दर्शनार्थ वहाँ जा पहुँचे। मैं माँ के समीप बैठी थी। पिताजी देवी के निकट बैठकर साधना कर रहे थे। अमूल्य बाबू और गणेश बाबू से माँ पुरानी अनेक कथायें कह रही थी। साँप की बात भी आई। सहसा अमूल्य बाबू बोल उठे-''माँ, मालूम पड़ता है साँप इसी जगह कोई महापुरुष थे। इसीलिये शिवमन्दिर के

ऊपर साँप की मूर्ति बनाई गई है?'' माँ ने हँसकर कहा- ''तुम फिर ये सब कैसी बातें कर रहे हो?'' यह कहकर जरा मुस्कराकर मानो अमूल्य बाबू की बात का समर्थन करके चुप रह गई। थोड़ी ही देर बाद स्त्रियों का झुण्ड माँ के दर्शनार्थ यहाँ आया। माँ लेटे-लेटे कह रही थी- कौन किसका दर्शन करता है? स्वयं ही अपने दर्शन करने आई हो।'' दोपहर का समय वहाँ पर व्यतीत कर अपराह्न में माँ रमना आश्रम में आई। प्राय: माँ इस प्रकार सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर लेटी रहती थी।

लगभग आधी रात के समय श्री श्री माँ के ढाका त्याग का आयोजन एवं उपस्थित भक्तों को यथायोग्य उपदेश

संवत् 1989 के उत्सव के बाद पूर्वोक्त रीति से भिक्षा में प्राप्त वस्तु आदि द्वारा भोग के पश्चात् साँझ तक सबने प्रसाद पाया था (उत्सव के समय ही कानू को अतुल ठाकुरजी के साथ साधन समर आश्रम में भेज दिया था)। माँ सन्ध्या के पश्चात् आकर अपनी कुटी के बरामदे में बैठी। उसके बाद मन्दिर के बरामदे में जा बैठी। धीरे-धीरे प्राय: सभी लोग विदा लेकर अपने-अपने घर चले गये। हम आश्रमवासी कई लोग एवं बाहर के केवल 2-4 व्यक्ति रह गये। रात्रि में लगभग 11.30 बजे तक दिनेश बाबू की स्त्री, वीरेन्द्र दादा और नन्दू माँ के साथ मन्दिर के बरामदे में बैठे थे। कुछ देर बाद माँ सहसा उठ आई। वे भी साथ ही रहे। माँ ने बाहर खड़ी होकर अस्पष्ट स्वर में कहा- ''अब जाती हूँ।'' वीरेन्द्र दादा को न जाने क्यों एकाएक इस बात से खटका हुआ। उन्होंने कहा- ''माँ, इस समय बिस्तर पर जाकर सो रहो।'' माँ कुछ नहीं बोली। तदनन्तर वे प्रणाम कर विदा हुये। सुरेन्द्र बाबू और गिरिजा बाबू आश्रम में ही रहे। मनोरमा दीदी भी उस दिन आश्रम में ही रहने के ही खयाल से आई थी। उत्सव के समय गिरीन्द्र दादा कलकत्ते से अपने भाई की बहू को साथ लेकर आये थे, वे भी आश्रम में ही थे। इस बार माँ ने बहुत लोगों से उत्सव में ढाका आने को कहा था, इसलिये बहुत लोग सम्मिलित हुये थे। इसीलिये कलकत्ते से यतीश दादा सपरिवार आये थे। बुआजी, नवतरु दादा, शाम दादा आदि अनेक लोग आये थे। सबके साथ सिद्धेश्वरी जाकर भी माँ आनन्द कर आई। गिरीन्द्र दादा को इस बार उत्सव के अवसर पर बातचीत

के सिलसिले में माँ ने अपने ही हाथ से बनाकर खाने को कह दिया। कलकत्ते के सभी लोग विदा लेकर चले गये थे। केवल गिरीन्द्र दादा रह गये थे। सबके चले जाने पर माँ मन्दिर के बरामदे में जा खड़ी हुई एवं मुझसे बोली- ''भोलानाथजी को बुला ला तो।'' भोलानाथजी गहरी नींद में सोये थे। इतने दिनों के उत्सव के परिश्रम से सभी थक गये थे। माँ के आदेश से मैं भोलानाथजी को बुला ले गई। माँ भोलानाथजी को लेकर मन्दिर में प्रविष्ट हुई। कुछ देर बाद भोलानाथजी बाहर आकर कुर्ता, जूता पहनकर तैयार होने लगे। इस बीच में योगेश दादा से ज्योतिष दादा के मकान में जाकर उन्हें बुला लाने के लिये कह दिया गया। माँ आकर पंचवटी वेदी के ऊपर बैठी। कुलदा दादा, अतुल, कमलाकान्त आदि ब्रह्मचारियों को बुलाकर माँ ने न जाने क्या कहा।

श्री श्री माँ का मुझे सान्त्वना प्रदान

पंचवटी के पास ही साधन-भजन करने के लिये पिताजी ने एक कमरा बनवाया था। उत्सव के अवसर पर पिताजी उसी कमरे में रहते थे। मैं और पिताजी तथा और भी 2-1 व्यक्ति वहाँ बैठे थे। एकाएक मेरे कानों में आवाज आई, खुकुनी! माँ पंचवटी से मुझे पुकार रही थी। माँ की आवाज सुनते ही मैं दौड़ी गई। मैंने माँ को अकेली चुपचाप बैठे हुये देखा। मेरे समीप में जाने के बाद माँ कहने लगी- ''देख, धैर्य ही साधना का प्रधान अंग है। धैर्य धरना चाहिये। पहले से ही माँ के व्यवहार से हमें आशंका हो रही थी कि माँ बाहर जायेंगी। इस बात से और भी सन्देह बढ़ गया। मैं घबरा उठी, समीप में दूसरा कोई न था। माँ बोली ''घबराओ मत, मैं कितनी ही बार बाहर गई। तुम लोग इस प्रकार घबराये हो जानकर लौट आई। मुझे अपने मार्ग में चलने दो। यदि तुम बाधा डालोगे तो मैं नहीं जी सकूँगी। देखो, पहले दिन जब मैंने तुम्हें देखा था, मैंने तुमसे कहा था, तुम इतने दिनों तक कहाँ थी? उसके बाद प्राय: सभी लोग कहते हैं कि तुम्हारा और मेरा चेहरा मिलता-जुलता है, बहुत लोग तुमको मेरी छोटी बहन समझते हैं। क्या इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं है?'' यह कहकर माँ चुप हो गई, किन्तु उस समय मेरे कानों को ये सब बातें अच्छी नहीं लग रही थी। मेरा जी घबरा उठा। मैं खूब समझ रही थी कि माँ बाहर चली जायेगी, यद्यपि माँ स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कह रही थी। मैं रो पड़ी।

माँ ने मनोरमा दीदी को बुलाकर कहा– ''तुमने अपनी क्या बात है, कहा था, कहो।'' उन्होंने मुझे हट जाने को कहा। किन्तु माँ जानती थी कि यह इस समय रो रही है, कोई भी बात इसके कानों में नहीं पड़ेगी। इसलिये बोली– ''उसे रहने दो तुम बोलो।'' उनके अपनी बात कह लेने के अनन्तर गिरीन्द्र दादा माँ के समीप जा बैठे। उस समय तक भी किसी को कुछ ज्ञात न था। पिताजी तो अपनी कुटी में ही बैठे थे। थोड़ी ही देर बाद सुरेन्द्र बाबू (वन्द्योपाध्याय) माँ को प्रणाम कर विदा लेने आये। माँ बोली– ''तुम जा रहे हो? मैं आज ही बाहर जा रही हूँ।'' इसी समय मैंने स्पष्ट रूप से सुना कि माँ आज ही जायेंगी। सुरेन्द्र बाबू ने कहा– ''कहाँ जायेंगी? कब लौटेंगी?'' माँ ने कहा–''कुछ ठीक नहीं।'' माँ ने पिताजी को बुलाने को कहा। पिताजी के आने पर बोली– ''मैं आज बाहर जा रही हूँ।'' पिताजी एकाएक इस खबर से विशेष विस्मित नहीं हुये। क्योंकि कुछ दिनों से उनकी भी माँ बाहर जायेंगी, ऐसी निश्चित धारणा बँध चुकी थी। उन्होंने भी कहा– ''कब लौटेंगी?'' माँ बोली– ''कुछ ठीक नहीं।'' प्रत्येक बार माँ बाहर जाते समय साधारणतः कहती– ''मैं तनिक घूम आती हूँ। तुम लोग जब बुलाओगे, फिर आ जाऊँगी।'' किन्तु इस बार वे सब बातें माँ ने नहीं कही।

श्री श्री माँ का मुझे यज्ञोपवीत प्रदान एवं भोलानाथजी और ज्योतिष दादा के साथ ढाका त्याग (संवत् 1989, 19 ज्येष्ठ)

ये सब बात होते न होते ज्योतिष दादा भी आ पहुँचे। उनके कुछ पूछने के पहले ही माँ ने कहा– ''तुम्हें अभी हमारे साथ बाहर चलना होगा।'' यह कहने के अनन्तर ज्योतिष दादा को चुप देखकर बोली– ''क्या नहीं चल सकोगे? चलना ही पड़ेगा।'' उन्होंने कहा– ''चलूँगा, किन्तु मकान में गये बिना रुपये–पैसे का प्रबन्ध कैसे होगा? माँ बोली– ''पुनः मकान में जाने की जरूरत नहीं है, यहीं से प्रबन्ध कर लो।'' वे चुप होकर मन्दिर की ओर चले गये। सब लोग चुपचाप माँ के समीप खड़े थे। गिरीन्द्र दादा ने कहा– ''मैं आज ही तुम्हारे साथ यहाँ से जाकर कलकत्ते की ओर चला जाऊँगा।'' माँ ने कहा– ''आज नहीं, कल जाना'' सभी लोग खड़े थे। मैं चरणों के समीप बैठकर सिर झुकाकर रो रही थी। थोड़ी ही दूरी पर

मनोरमा दीदी भी बैठी थी। माँ ने सबकी दृष्टि बचाकर अपने गले से सोने का यज्ञोपवीत मेरे गले में पहना दिया। कुछ दिनों से ज्योतिष दादा को सूत का यज्ञोपवीत पहनाकर माँ ने सोने का यज्ञोपवीत अपने गले में डाल लिया था एवं चुपके-चुपके मुझसे कहा- ''गले में रखना।'' मैं सब जान गई। मनोरमा दीदी निकट ही बैठी थी, पर उन्होंने भी न कुछ देखा और न सुना ही। माँ की जो इच्छा थी, वही पूर्ण हुई। थोड़ी देर बाद ही जाने का समय हुआ। माँ उठ खड़ी हुई, जरा हटकर इस यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में जो कहना था वह मुझसे कहकर रवाना हुई। हम लोगों ने स्टेशन जाना चाहा, किन्तु माँ ने मना कर दिया। एक भी गाड़ी मँगाने नहीं दी, पैदल ही रवाना हुई। संवत् 1989 जेठ में माँ बाहर गई। रवाना होने से पहले नानाजी और नानीजी को खबर दी गई। नानीजी आई, किन्तु एकाएक इतनी रात माँ के रवाना होने की बात से दुःख और क्षोभवश नानाजी नहीं आये। माँ ने नानीजी को प्रणाम कर कहा- ''पिताजी नहीं आये, पीछे दुःखी होंगे। मैं तो इस समय अब किसी के मकान में जाऊँगी नहीं, इसलिये इस वक्त पिताजी के साथ भेंट नहीं हुई । यह कहकर बाहर चली गई। साथ में योगेश दादा, मथुरा बाबू, सुरेन्द्र बाबू और गिरिजा बाबू स्टेशन तक गये। हम लोग सड़क तक जाकर माँ के आदेश से आश्रम में लौट आये। उस समय की मन की अवस्था व्यक्त करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। माँ प्रायः एक वस्त्र से ही बाहर गई। संवत् 1989 जेठ 19 सौर बृहस्पतिवार को माँ ढाका से रवाना हुई।

* * *

अठारहवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का रायपुर (देहरादून) में अवस्थान

फिर बहुत दिन तक माँ की खबर नहीं मिली। इस बार केवल माँ, भोलानाथजी और ज्योतिष दादा बाहर गये। इस उत्सव के अवसर पर कुंजमोहन मुखोपाध्याय और डॉ. उपेन्द्र बाबू ढाका गये थे। उपेन्द्र बाबू कुछ दिनों के बाद माँ को खोजते-खोजते हिमालय पर्वत के भीतर अनेक जगह घूमे। तदुपरान्त देहरादून जाकर एकाएक उन्हें खबर मिली कि माँ देहरादून शहर से 5-7 मील दूर रायपुर नामक एक स्थान पर हैं। वे तत्क्षण वहाँ से रवाना हुये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक शिव-मन्दिर से सटे हुये कमरे के बरामदे में माँ, भोलानाथजी और ज्योतिष दादा को देखा। उन्होंने माँ के साथ रहना चाहा। किन्तु माँ ने उन्हें लौटा दिया। उपेन्द्र बाबू के पत्र से ही हमें माँ की खबर मिली। बाद में ज्योतिष दादा की चिट्ठी प्राप्त हुई। ज्योतिष दादा की छुट्टी पूरी हो जाने के कारण कमलाकान्त को वहाँ भेज दिया गया। कमलाकान्त को वहाँ रखकर ज्योतिष दादा ढाका चले आये।

उस समय की एक अलौकिक घटना

उस समय एक घटना घटी। मेरी समझ में उसका यहाँ उल्लेख कर देना उचित होगा। ज्योतिष दादा के ढाका को रवाना होते समय माँ ने उनको काशी में उतरकर गंगा स्नान कर विश्वनाथ दर्शन करने का आदेश दिया था। वे जब दोपहर के समय गंगा स्नान करने गये तब घाट पर प्राय: कोई न था। वे एक तख्ते पर पैर रखते ही एकाएक गंगा में जा गिरे। एक प्रकार से डूब ही चुके थे कि इतने में एक आदमी ने घाट से उतरकर उनका हाथ पकड़कर उन्हें ऊपर खींच लिया। थोड़ी मीठी फटकार भी सुनाई। वे वहाँ से उठकर श्रीविश्वनाथ और श्रीअन्नपूर्णा के दर्शन कर उसी दिन ढाका को रवाना हो गये। रायपुर जाकर उन्होंने सुना कि उस दिन उसी समय माँ रायपुर के मन्दिर के पीछे बैठी थी, कमलाकान्त ने जाकर देखा तो माँ के सब कपड़े, जम्पर आदि भीग गये थे। इस प्रकार भीगे थे कि

मानो माँ स्नान करके निकली हों। बाद में उन्हें बदल दिया। पहले एक बार यक्ष्मा रोग से, जब सब डॉक्टरों ने आशा छोड़ दी थी, माँ की कृपा से ही ज्योतिष दादा की जीवन-रक्षा हुई थी। यह दूसरी बार माँ ने ज्योतिष दादा की जीवन रक्षा की।

देहरादून होकर रायपुर-वास का वृत्तान्त

माँ हम लोगों से सिद्धेश्वरी आश्रम में ही रहने को कह गई थी। मैं और पिताजी सिद्धेश्वरी में ही हैं। ज्योतिष दादा ने माँ के समीप से आते ही हम लोगों से भेंट कर माँ के सब समाचार हमें दिये। माँ ढाका आश्रम से सीधे देहरादून की ओर चली गई। कहाँ जायेंगी कुछ भी निश्चय नहीं। अकस्मात् देहरादून में एक आदमी की जबानी खबर मिली कि रायपुर नामक एक स्थान है, वहाँ मन्दिरादि में रहने की जगह है। यह खबर पाकर माँ रायपुर को रवाना हो गई। वहाँ पहुँचकर वहीं रहने लगी। भोलानाथजी बैठकर अपना साधन-भजन करते, माँ अपनी इच्छानुसार बैठी रहती या घूम-फिरकर टहलती। बातचीत करने के लिये और कोई नहीं था। कभी थोड़ी तरकारी जल में उबालकर खाती, कभी यदि वह न मिलती तो 2-1 रोटी ही खा लेती, यह अवस्था थी। ढाका में भी माँ केवल जल में तरकारी उबालकर उसी को खाकर अनेक दिनों तक रही थी।

रायपुर जाने के पहले ढाका में श्री श्री माँ का विभिन्न भक्तों के प्रति विभिन्न उपदेश प्रदान

माँ के चले जाने के बाद जब सब लोगों की आपस में बातें हुई तब मालूम हुआ कि जिससे जो कहना था माँ सब कह गई। किन्तु कोई भी यह नहीं समझ सका कि माँ इतनी जल्दी चली जायेंगी। जाने के 2-1 दिन पूर्व मैदान में घूमते-घूमते पिताजी से कौपीन पहनने की बात एकान्त में कह गई। माँ के चले जाने के बाद ही पिताजी ने गृहस्थ के घर जाना भी बन्द कर दिया। कौपीन पहनकर ही बैठे रहते थे। बाहर जाते समय एक कपड़ा लपेट लेते थे। बहुत दिन पहले से ही जूते व्यवहार में नहीं लाते थे। कुर्ते को भी बहुत ही कम व्यवहार में लाते थे। माँ इस प्रकार धीरे-धीरे सब कुछ छुड़ा रही थी। पिताजी और मैं सिद्धेश्वरी आश्रम के कमरे में रहते। माँ ही कह गई- ''इस बार तुम लोग साथ में नहीं जाओगे।

एक जगह स्थिर रूप से बैठकर काम करना आवश्यक है।'' किन्तु माँ के लिये मन अत्यन्त ही अस्थिर रहता था। माँ को पाने के बाद हम लोग अक्सर सदा माँ के ही साथ रहे। यद्यपि 2–3 बार माँ हमें छोड़कर ढाका से बाहर गई, किन्तु इस प्रकार कभी बाहर नहीं गई। कब लौटेंगी कुछ भी ठीक नहीं। ज्योतिष दादा के मुँह से सुना कि माँ प्राय: एक ही वस्त्र पहनकर रहती हैं। ज्योतिष दादा के रायपुर रहते समय काशी से नेपाल दादा भी माँ के समीप गये थे, किन्तु माँ ने उन्हें दूसरे ही दिन लौटा दिया। किसी को भी वहाँ जाने की अनुमति नहीं दी।

रायपुर–वास कालीन निर्भीक जीवन

सावन या भादों के महीने में रायपुर में भोलानाथजी बीमार पड़े। उसके बाद माँ को भी ज्वर हो गया। कमलाकान्त वहाँ था। कुँआर के महीने में ज्योतिष दादा कुछ दिनों की छुट्टी लेकर रायपुर गये। देहरादून से डॉक्टर ले जाकर भोलानाथजी को दिखलाया। छुट्टी बीत जाने के कारण ज्योतिष दादा ढाका लौट आये। माँ वैसी ही रही। ज्वर आता था, बाल जटा बंध जाने के कारण काट दिये थे। उजाले तक का प्रबन्ध नहीं करने देती थी। सन्ध्या के पहले ही सब लोग अपने कम्बलों के भीतर स्थान ग्रहण करते थे। पहाड़ के बीच पुराना दालान, साँप तथा अन्यान्य विषैले जीवों का पूरा भय था। किन्तु आश्चर्य है, उनके रोक–थाम की कोई व्यवस्था नहीं थी।

रायपुर से तारापीठ तथा वहाँ से नलहाटी गमन

5–7 महीने वहाँ रहकर, तारापीठ के पूर्व आदेशानुसार कमलाकान्त को साथ लेकर माँ और भोलानाथजी कार्तिक या अगहन के महीने में तारापीठ आये। किन्तु खबर किसी को नहीं दी गई क्योंकि खबर देने पर सभी तारापीठ पहुँच जाते। माँ तारापीठ आई हैं, यह समाचार गुप्त नहीं रहा। किन्तु माँ का निषेध था, अतएव कलकत्ते से भी किसी को जाने का साहस नहीं हो रहा था। नन्दू माँ का निषेध न मानकर ढाका से तारापीठ जा पहुँचा। माँ और भोलानाथजी लगभग एक या डेढ महीना तारापीठ में रहे। इस बीच में बड़े दिन की छुट्टियों में मनोरमा दीदी को साथ लेकर ज्योतिष दादा तारापीठ गये। उपेन्द्र बाबू (डॉक्टर) भी माँ के साथ भेंट करने के लिये पांडिचेरी से कलकत्ता आकर कुछ दिनों के लिये तारापीठ

गये। तदुपरान्त माँ के आदेशानुसार पुनः पाण्डिचेरी चले गये। पौष महीने में बड़े दिन की छुट्टियों में माँ और भोलानाथजी, कमलाकान्त, नन्दू, ज्योतिष दादा और मनारेमा दीदी को साथ लेकर नलहाटी (पीठस्थान में) गये।

श्री श्री माँ की अनुमति मिलने पर अनेक स्थानों के भक्तों का नलहाटी गमन और निवास

नन्दू ने माँ और भोलानाथजी से बहुत अनुनय-विनय कर सबके वहाँ जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। उसने हम लोगों को टेलिग्राम किया एवं कलकत्ते के भक्तों के घर-घर जाकर माँ की अनुमति का समाचार दिया। तब सभी महान् आनन्द के साथ कलकत्ते से नलहाटी को रवाना हुये। मैं और पिताजी ढाका से नलहाटी गये। बाद में नानाजी तथा नानीजी भी वहाँ गई थी। वहाँ भी मन्दिर से सटे हुये एक पुराने दालान में माँ ठहरी हुई थी। हम लोग सन्ध्या के बाद माँ के समीप पहुँचे। उससे पहले ही कलकत्ते से यतीश दादा आदि सपरिवार पहुँच चुके थे। बेबी दीदी और गिरीन्द्र दादा सपरिवार जाकर उपस्थित हुये थे। वहाँ जाकर हमने माँ को छत पर एक कम्बल ओढ़कर बैठी देखा। सिर के बाल कटे थे, चेहरा अत्यन्त रुग्ण मालूम होता था। सभी माँ के चारों ओर बैठे थे। माँ मृदु स्वर में धीरे-धीरे बातें कर रही थी। अधिक जोर से नहीं बोल पा रही थी। भोलानाथजी कमरे में बैठे थे। उन्होंने बाहर जाने के कुछ दिन बाद से ही मौन धारण किया था। ज्योतिष दादा बड़े दिन की छुट्टी बीत जाने के कारण ढाका वापस चले गये। मनोरमा दीदी टेलिग्राम से ही स्वामी का आदेश लेकर साधन-भजन की सुविधा के लिये काशी चली गई। यहीं से वे गृहत्यागी हुई। माँ के बाहर जाने के बाद आषाढ़ या सावन के महीने से ही उन्होंने भी मौन ले रखा था। माँ लगभग 14-15 दिन नलहाटी रही। नाना स्थानों से भक्तों के वहाँ पहुँचने के कारण सदा भीड़ लगी रहती थी।

मेरे और पिताजी के लिये विशेष उपदेश

फिर माँ रायपुर की ओर ही जायेंगी। हम लोगों से ढाका ही लौट जाने को कह रही हैं, क्या करूँ? माँ का आदेश पालन करना ही होगा। रवाना होने के पहले मुझे एकान्त में ले जाकर पूजा-अर्चना आदि तथा गायत्री सन्ध्या के सम्बन्ध में जो-जो करना चाहिये, वह सब माँ ने बतला

दिया। पिताजी से ही सब सीख लेने का आदेश दिया। अमावस्या और पूर्णिमा के दिन पिताजी को और मुझको हवन करने का भी आदेश हुआ। रमना आश्रम से ही यज्ञाग्नि मँगाकर हवन करना होगा। पिताजी से यह भी कहा– ''यह सिद्धेश्वरी का स्थान साधना के लिये अत्यन्त उपयोगी है। स्थान बहुत ही अच्छा है एवं पहले किसी दूसरे ने यहाँ इस प्रकार बैठकर काम नहीं किया। तुम्हीं पहले–पहल बैठकर काम कर रहे हो। स्थान को जाग्रत कर देना चाहिए। मैं तो इच्छापूर्वक कुछ करती नहीं हूँ। प्रतीत होता है कि तुम्हारा ही यह काम था, अतएव तुम्हीं को यहाँ बैठाया गया है, इत्यादि–इत्यादि।'' माँ ने सबके साथ कुछ दिन आनन्द किया। नलहाटी में ही एक दिन मेरे साथ बैठकर खाया। वहाँ खाने–पीने का बन्दोबस्त बहुत सुविधापूर्ण न था किन्तु उस ओर किसी का भी ध्यान न था। माँ को लेकर ही सब आनन्द में विभोर रहे।

श्री श्री माँ निरामिष आहार की पक्षपातिनी

रायपुर में इन कतिपय महीनों में मछली खाने का अवसर नहीं आया। तारापीठ से मछली का भोग हो रहा था। भोलानाथजी बहुत बड़े शाक्त मतावलम्बी हैं। इसलिये वे बंगाल की ओर आते ही मछली और प्रसादी का माँस खाते थे। माँ का भी कुछ निषेध न था, यह ठीक है। किन्तु पहले ही लिख आई हूँ कि माँ कुछ वर्षों से सबके अनुरोध करने पर थोड़ी–सी मछली मुँह में लेती। अब मैं देखती कि माँ प्रायः मछली मुँह में ही नहीं डालती। फिर भी किसी–किसी दिन (भोलानाथजी के कहने पर) तनिक–सा खा लेती। ब्रह्मचारियों के लिये भी माँ ने ढाका आश्रम में मछली–माँस खाने का निषेध कर दिया है। अवश्य भोलानाथजी के आदेश से श्री कालीजी के समीप एक मछली का भोग दिया जाता है। किन्तु उक्त प्रसाद बाँट दिया जाता है। कई ब्रह्मचारी निरामिष भोग का प्रसाद ही लेते थे। मैंने भी 3–4 वर्ष तक माँ के आदेश से माँ की प्रसादी मछली का प्रसाद लिया था। तदुपरान्त माँ की अनुमति प्राप्त कर ही उसे लेना बन्द कर दिया था। पिताजी को भी निरामिष आहार ग्रहण करने का ही आदेश हुआ था। मरणी के लिये बचपन से ही माँ ने मछली का माँस बन्द कर दिया था। इसी से प्रतीत होता है कि माँ निरामिष आहार की ही पक्षपातिनी हैं। मैंने देखा, ढाका और कलकत्ते में माँ को जिस तरह की बड़े पाड़ (किनारे)

की साड़ी पहनाते इस समय माँ के पहनावे में उस तरह की साड़ी नहीं है, छोटे लाल किनारे की साधारण-सी धोती पहनती हैं। कुछ ही दिनों में वहाँ के स्थानीय लोग भी माँ के समीप आने लगे। कीर्तनादि आरम्भ हुआ। किन्तु माँ ने उसी समय नलहाटी छोड़ दिया।

नलहाटी त्याग और पुनः रायपुर गमन एवं भक्तों के प्रति उपदेश

(माघ सं. 1989)

नलहाटी से सब लोगों को साथ लेकर माँ हावड़ा स्टेशन आई। उसके बाद स्टेशन से ही देहरादून को रवाना हो गई। देहरादून से रायपुर चली गई। साथ में केवल भोलानाथजी और कमलाकान्त थे। हम लोगों को ढाका सिद्धेश्वरी में ही रहने की आज्ञा दे गई। हाँ, यदि इच्छा हो तो काशी तथा विन्ध्याचल जा सकते हो, यह भी कह गई। किन्तु माँ जहाँ छोड़ गई थी, पिताजी वहीं पड़े रहे, अन्यत्र कहीं भी नहीं गये। माँ के चले जाने के बाद ही हम लोग सिद्धेश्वरी आश्रम में चले गये एवं माँ के आदेशनुसार पूजा, सन्ध्या आदि करने लगे। रमना आश्रम में अन्नपूर्णा के मन्दिर की पूजा का भार योगेश दादा के ऊपर है। शिव-पूजा, दुर्गा-पाठ, गीता-पाठ इत्यादि कुलदा दादा करते हैं। पाद-पीठ पूजा, भोग और पाठ आदि अतुल करता है। सिद्धेश्वरी की शिव-पूजा माँ पिताजी से करने को कह गई। बाद में मैंने भी कुछ दिन की। रमना आश्रम में प्रतिदिन ही हवन और चरुपाक होता है। प्रतिदिन आश्रमवासियों में से प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक दिन वही चरु खाने का माँ आदेश दे गई हैं। जिस दिन जो चरु खायेगा उस दिन वह फल और कच्चे दूध के सिवा और कुछ भी नहीं खा सकेगा, यह माँ का आदेश है। ढाका रहते समय माँ स्वयं भी सप्ताह में एक दिन चरु खाकर इस नियम का पालन कर गई हैं। पिताजी प्रति शनिवार को चरु का प्रसाद लेने सिद्धेश्वरी जाते हैं। उसके सिवा हम दोनों सिद्धेश्वरी आश्रम के कमरे में ही दिन-रात रहते, कहीं भी बाहर न जाते। माँ के आदेश से पिताजी प्रति मास दो दिन 24 घण्टे आसन लगाकर बैठे रहते। प्राणायाम की क्रिया भी माँ ने पिताजी को नियमानुसार कराई थी। उससे पिताजी का शरीर खूब स्वस्थ रहता और बहुत देर तक आसन पर बैठ भी सकते थे। माँ ने यह सब विषय कभी पुस्तक में पढ़े नहीं और न किसी

साधु के मुँह से ही इन सब प्राणायाम की क्रियाओं की बातें सुनी। फिर भी ये सब विषय माँ को ज्ञात हैं। मैं पहले ही लिख चुकी हूँ कि साधना के सम्बन्ध में जभी जो बातें उठी हैं, माँ ने सभी बातों का स्पष्ट उत्तर देकर समझा दिया। भले ही पुस्तकगत विद्या न होने के कारण भाषा की सुश्रृंखलता न हो- माँ ने अपने ही अन्दर सब-कुछ उपलब्ध किया है। इसलिये साधारण भाषा में उपलब्धि की सब बातें कह जाती। सभी लोग सुनकर आश्चर्य में पड़ जाते।

रायपुर-वास और देहरादून होकर मसूरी गमन एवं भोलानाथजी को श्री बद्रीनारायण के दर्शनों के लिये प्रेरणा (सं. 1990 बैशाख)

संवत् 1989 के माघ महीने में माँ नलहाटी से रायपुर जाकर ही रही। बीच-बीच में भोलानाथजी की चिट्ठी यहाँ आती रहती थी। सम्भवतः माँ के जाने के एक महीने बाद ही अर्थात् संवत् 1989 के फाल्गुन महीने में ही ज्योतिष दादा पुनः रायपुर गये। इस बार भी छुट्टी लेकर ही गये। किन्तु सभी ने अनुमान किया कि इस छुट्टी के बाद ही वे पैन्शन ले लेंगे एवं माँ के साथ ही रहेंगे। चैत के महीने तक मालूम होता है, माँ रायपुर ही रही। तदुपरान्त देहरादून होकर मसूरी गई। रायपुर में ही श्रीयुत् हरीराम जोशी के साथ परिचय हुआ। ये अल्मोड़ा के रहने वाले हैं, देहरादून में नौकरी के सिलसिले में रहते हैं। पीछे धीरे-धीरे देहरादून के और भी कई लोगों के साथ परिचय हुआ। कुछ दिन मसूरी रहने के बाद माँ ने भोलानाथजी को संवत् 1990 के बैशाख में श्री बद्रीनारायण भेज दिया। कमलाकान्त को उनके साथ कर दिया।

ढाका में संवत् 1990 का माँ का जन्मोत्सव

इधर ढाका में नियमित रूप से ही संवत् 1990 के बैशाख महीने में माँ का जन्मोत्सव हो गया। माँ के जाने के दिन कायस्थों का (मनोरमा दीदी का) जैसा भोग हुआ था, बेबी दीदी के उद्योग से (ब्राह्मणों को छोड़) कायस्थ और वैद्यों ने मिलकर उसी तरह अलूनी तरकारी और पूड़ियों से माँ के निमित्त भोग दिया। अखण्ड रूप से नाम-संकीर्तन, चरु खाकर रहना आदि सब-कुछ नियमित रूप से ही सम्पन्न हुआ।

उत्तरकाशी गमन, वहाँ से लौटकर नाना तीर्थ–स्थानों में भ्रमण

ज्योतिष दादा माँ के साथ ही रहे। माँ उनको साथ लेकर पैदल ही एक बार उत्तरकारशी तक गई। मसूरी से उत्तरकाशी की दूरी लगभग 60–65 मील है। पहाड़ी मार्ग है। एक दिन माँ 25 मील चली। बाद में वहाँ से लौटकर फिर मसूरी आई एवं वहाँ से देहरादून आई (पहले टपकेश्वर रही थी)। इस प्रकार माँ देहरादून, हरिद्वार, लक्ष्मणझूला, ऋषिकेश घूमकर पर्यटन करने लगी। कश्मीरी, पंजाबी, सिन्धी आदि नाना देशों के लोग माँ के समीप आने–जाने लगे एवं माँ को देवी समझकर श्रद्धा भक्ति करने लगे।

उक्त समय का विवरण (संवत् 1990 बैशाख–पौष)

(इस समय की घटनाओं का मैं विस्तार से उल्लेख नहीं कर सकूँगी क्योंकि मैं साथ न थी। जितना सुना है उतना लिख रही हूँ।) भोलानाथजी, बद्रीनारायण, केदारनाथ, यमुनोत्री होकर उत्तरकाशी आ पहुँचे। शायद पहले ही माँ के साथ उनकी इस तरह की बात हो चुकी होगी। माँ भी इससे पहले ही उत्तरकाशी हो आई हैं। अनेक साधु–संन्यासियों के साथ भी माँ का परिचय हो रहा है। पहले–पहल स्त्री समझकर वे माँ के समीप विशेष आते न थे, किन्तु फिर तो माँ के समीप आकर अनेक साधु–संन्यासी अपनी जीवनी खुलकर कहते एवं साधना के सम्बन्ध में अनेक उपदेश ग्रहण करते।

लक्ष्मणझूला और हरिद्वार–वास

नलहाटी से आते समय हावड़ा स्टेशन पर एक गुजराती लड़के ने माँ के दर्शन किये। वह दन्त–चिकित्सक था। कुछ दिनों के बाद वह माँ के समीप जा पहुँचा एवं उसने माँ के अनेक समाचार ढाका और कलकत्ता लिख भेजे। उसके बाद भोलानाथजी के उत्तरकाशी से लौट आने पर संवत् 1990 वि. के कुँवार के महीने में निर्मल बाबू सपरिवार माँ के पास देहरादून गये। वहाँ माँ को न पाकर हरिद्वार, ऋषिकेश घूमकर खोजते–खोजते लक्ष्मणझूला गये। वहाँ उन्हें माँ मिली। माँ गंगा के तट पर धर्मशाला में ज्योतिष दादा के साथ थी। वहाँ माँ उस बार कुछ दिन पहले ही गई थी। निर्मल बाबू आदि के जाने के दूसरे ही दिन उनको साथ लेकर चली आई एवं गंगा–मन्दिर में ठहरी। निर्मल बाबू आदि से एक धर्मशाला में रहने को

कहा। दूसरे ही दिन भोर में ज्योतिष दादा उनके समीप जाकर माँ के समीप ही भोजन बनाने के लिये उन्हें बुला ले गये।

देहरादून–वास

इस तरह कुछ दिन रहकर सहसा माँ सबको साथ लेकर देहरादून जा उपस्थित हुई। माँ देहरादून आनन्द चक में मनोहर मन्दिर में ही अधिकतर रहती थी। अन्यान्य स्थानों में भी कभी–कभी जाकर रहती। देहरादून में उस समय बहुत से लोग माँ के भक्त हो गये। माँ के आदेश से वे कीर्तन आदि करते, उपवास आदि भी रहते। निर्मल बाबू ने वहाँ जाकर देखा, वहाँ पहले से ही माँ के आदेश से यज्ञ, कीर्तनादि हो रहे थे। माँ को पाकर वे मारे आनन्द के फूले न समाये। माँ श्रीदुर्गा–पूजा के मध्य में वहाँ पहुँची। कुमारी–पूजा और कुमारी–भोजन के उत्सावादि सबने मिलकर किये। इस प्रकार उत्सवादि कर कुछ दिन माँ वहीं रही।

पुनः हरिद्वार–वास

पूजा के अनन्तर ही ज्योतिष दादा को ज्वर आ गया। उक्त ज्वर के न उतरने से ही (पूर्णिमा से पहले) माँ ज्योतिष दादा और निर्मल बाबू आदि को साथ लेकर हरिद्वार चली आई एवं गंगा–मन्दिर में ठहरी। दन्त–चिकित्सक लड़का साथ ही था। कोजागर पूर्णिमा के दिन माँ को भोज आदि देकर निर्मल बाबू सपरिवार काशी चले गये। उनके पत्र से ही हमें उपर्युक्त सब समाचार प्राप्त हुये। उनके पत्र से हमें यह भी ज्ञात हुआ कि माँ इस समय नाखूनी किनारे की धोती पहनती हैं। शरीर में कुर्ती जम्पर भी नहीं पहनती हैं। बास्कट की तरह कुर्ती व्यवहार में लाती हैं। सिर पर वस्त्र नहीं रखती। सिर के बाल बड़े होकर कन्धे पर पड़े हैं। पहाड़ी मार्ग में भीषण पत्थरों से पैर छिल जाते हैं अतएवं माँ के पैरों में सबने जूता पहनाया है। शरीर पर चादर भी माँ अधिकतर पुरुषों की तरह ही ओढ़ती हैं। सड़क से सदा ही इधर–उधर जाती हैं। देखने पर युवक ब्रह्मचारी–सी दिखाई देती हैं। साथ में विशेष साज–सामान कुछ नहीं, बस लोटा, कम्बल और दो–एक कपड़े मात्र हैं। ज्योतिष दादा ने भी जूता, कुर्ता छोड़ दिया है, 9 हाथ कपड़ा पहनते हैं। कम्बल और चादर से ही शरीर की रक्षा करते हैं। माँ के रहने का कोई निश्चित नहीं, एकाएक रात्रि में 10 बजे

या 12 बजे एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती हैं। वहाँ के अनेकों लोग इस समय माँ के लिये खूब उत्कण्ठित हैं, इत्यादि इत्यादि।

पिताजी का देहरादून आह्वान (पौष, सं. 1990)

चिट्ठी लिखकर 'हमें क्यों नहीं बुला रही हैं,' यह जिज्ञासा करने पर माँ ने उत्तर दिया, ''बाबा ने तो किसी चिट्ठी में आने की बात नहीं लिखी। बाबा शायद यह निश्चय करके ही बैठे हैं कि माँ जब बुलायेंगी तभी जायेंगे।'' यह बात सुनते ही पिताजी ने जाने की अनुमति की इच्छा से पत्र लिखा। इतने दिनों तक पिताजी, 'माँ छोड़ गई हैं फिर जब कृपा करके समीप में आने के लिये आदेश देंगी तभी जाऊँगा, अपनी इच्छा से माँ की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करूँगा', इसी भाव को लेकर ही बैठे थे। भीतर से माँ के लिये व्याकुल रहने पर भी उन्होंने कभी जाने की जिज्ञासा भी नहीं की। यह चिट्ठी पाकर, अनुमति के लिये लिखा और भी कई बातें लिखी थी। माँ ने ज्योतिष दादा से लिखवाया, माँ के समीप आये बिना सब बातों की मीमांसा नहीं होगी, अतएव पत्र पाते ही चले आने का आदेश दिया। वह सं. 1990 का पूस का महीना था। गत पूस के महीने में नलहाटी में माँ के साथ भेंट हुई थी। उसके बाद एक वर्ष से माँ के दर्शन नहीं हुए। पत्र पाकर हम लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा एवं दो-एक दिन में ही माँ के समीप रवाना हो गये। बेबी दीदी भी हम लोगों के साथ गई एवं काशी से मनोरमा दीदी भी हमारे साथ हो ली। माँ ज्योतिष दादा की बीमारी में कुछ दिन हरिद्वार ही रही। तदुपरान्त घूमते-फिरते देहरादून चली गई। हम लोगों ने माँ को देहरादून मनोहर मन्दिर में जाकर देखा।

देहरादून के जीवन का विवरण

माँ कुछ दिन तक वहीं रही। मैंने देखा, माँ बहुत दुर्बल हो गई हैं। चिट्ठी से हमें जो समाचार मिले थे वे सब ठीक निकले। माँ की वेशभूषा में बहुत परिवर्तन हो गया था। धीरे-धीरे ही यह परिवर्तन हुआ था, किन्तु इन थोड़े ही दिनों में यथेष्ट परिवर्तन हो गया था। माँ को उस समय विदेशी लोग ही सदा घेरकर बैठे रहते थे। बंगाली भी 2-4 आदमी रहते, उनमें मन्मथ बाबू, निमाई बाबू, रमेश बाबू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये कुछ ही लोग हमेशा आते। माँ हिन्दी में बातें करती।

आनन्द चक के द्वारकानाथ रयना (और उनकी स्त्री), काशी बाबू (और उनकी स्त्री), प्रकाश बाबू (और उनकी माँ तथा स्त्री), त्रिलोकी बाबू सपरिवार और भी दो-एक आदमी सपरिवार (इन्हीं के आत्मीय), ये सदा ही माँ के समीप आते। ये सभी कश्मीरी हैं। माँ ने काशी बाबू की स्त्री का नाम लक्ष्मी और द्वारका बाबू की स्त्री का नाम मीरा तथा प्रकाश बाबू की माँ का नाम कौशल्या रख छोड़ा है।

ज्योतिष दादा का श्री श्री माँ के धर्मपुत्र और ब्राह्मण रूप से परिचय

सभी प्रायः वेदान्त की आत्मा, परमात्मा की बातें ही कहती। इस ओर के लोग उसे ही अच्छी तरह समझते हैं। सब पुरुष ही माँ की सेवा करते। जो-जो कुछ लाता स्वयं ही थोड़ा-सा माँ के मुँह में देकर प्रसाद लेकर चला जाता। मैंने सुना माँ और ज्योतिष दादा इतने दिनों तक मन्दिर के बरामदे में ही रहे। शीत के कारण अब एक छोटी-सी कोठरी में स्थान ग्रहण किया है। यह कोठरी भी मन्दिर से मिली हुई है। माँ बाहर आने के बाद से किसी गृहस्थ के घर नहीं जाती। धर्मशाला और मन्दिर में ही रहती हैं। ज्योतिष दादा के पास भी जूता, कुर्ता कुछ नहीं है। उस शीत में चादर और कम्बल ही शरीर पर ओढ़े रहते हैं। माँ रोटी और तरकारी ही खाती, ज्योतिष दादा भी वही प्रसाद पाते हैं। कुछ दिनों तक सप्ताह में एक दिन ज्योतिष दादा के लिये भिक्षा माँगकर खाने का आदेश था। जिस दिन कुछ न पाते उस दिन उपवासी रहना पड़ता। माँ ने ज्योतिष दादा का अपने 'धर्मपुत्र' के रूप से परिचय दिया है एवं शाहबाग में माँ का ज्योतिष दादा के प्रति 'ब्राह्मण' ऐसा जो एक भाव आविर्भूत हुआ था, तदुपरान्त रमना आश्रम में माँ ने अपना यज्ञोपवीत ज्योतिष दादा को दिया था (ये सब बातें पहले लिखी जा चुकी हैं), इस समय इसीलिए ज्योतिष दादा ब्राह्मण रूप से ही परिचित हुए हैं। वहाँ के सभी लोग माँ का धर्मपुत्र जानकर ज्योतिष दादा को 'भाईजी' कहकर पुकारते एवं प्रायः सभी लोग खूब स्नेह करते। माँ भी उनके साथ सन्तान की तरह ही व्यवहार करती। 'तू' कहकर ही पुकारती। माँ के इस व्यवहार से उनका भी बहुत कुछ लड़के का सा स्वभाव हो गया था। वे सरकार के एक उच्च पदस्थ कर्मचारी थे, विचार-बुद्धि खूब थी। ये सब भाव बहुत कुछ घट गये थे। माँ के लड़के के समान ही माँ के साथ-साथ रहकर माँ की सेवा में ही जीवन

बिता रहे थे। उन्होंने छुट्टी के बाद पेन्शन ले ली। फिर गृहस्थाश्रम में जाने की इच्छा नहीं रही। माँ के आदेश से स्त्री को भी घर-गृहस्थी त्यागकर हरिद्वार या काशी में अपने साथ रहने को लिखा था, किन्तु वे राजी नहीं हुई। माँ ने भी उनको चिट्ठी लिखी थी, किन्तु उन सब उपदेशों से कोई फल दिखाई नहीं दिया। स्त्री ढाका छोड़कर आने को राजी नहीं हुई। एकमात्र पुत्र रामानन्द के साथ वे ढाका में ही रहती हैं। ज्योतिष दादा की स्त्री और पुत्र ने भगवान् ब्रह्मचारी महाशय के निकट दीक्षा ली है। ये भी गुरु के उपदेशानुसार साधन-भजन करते हैं।

* * *

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोहर मन्दिर में जन्माष्टमी के दिन हवन

माँ देहरादून में जहाँ-जहाँ रहती थी हम लोगों को वे सब स्थान दिखा लाई। देहरादून में माँ के आदेश से यज्ञ की अग्नि की रात-दिन रक्षा हो रही थी। माँ उसे भी एक दिन हमें दिखा लाई। मनोहर मन्दिर में ही माँ के स्मारक रूप में एक यज्ञ-मन्दिर बन रहा था, उसे भी हमने देखा। हमने सुना कि एक बार माँ ऋषिकेश या लछमनझूला गई थी। देहरादून से भी कई भक्त जाकर वहाँ उपस्थित हुये। जन्माष्टमी के दिन माँ की शुभ सन्निधि में रहेंगे यह सोचकर उक्त तिथि के 2-1 दिन पहले ही माँ के समीप गये। इधर जन्माष्टमी के पहले दिन एकाएक माँ सबको साथ लेकर मनोहर मन्दिर में आ पहुँची। मनोहरलाल के एक मन्दिर में राधाकृष्ण और एक दूसरे मन्दिर में शिवलिंग स्थापित है। प्रति वर्ष जन्माष्टमी के दिन ही इस मन्दिर में खूब उत्सव होता है। इस बार भी सब व्यवस्था हुई है। माँ के आदेश से उस दिन हवन का भी प्रबन्ध किया गया। कहीं पर भी जगह ठीक नहीं हुई। बाद में इन दो मन्दिरों के बीच में जहाँ माँ सोती थी, वहीं के दो-चार पत्थर हटाकर कुण्ड बनाया गया एवं उसी कुण्ड में हवन किया गया।

इस स्थान के सम्बन्ध में भी एक घटना है। कुछ दिन पहले एक दिन माँ उस बरामदे में लेटी थी। इतने में एक काला छोटा-सा साँप उस बरामदे में आया। ज्योतिष दादा घबराकर हट गये। माँ बैठे-बैठे देखती रही। साँप आकर एक जगह बैठा। कुछ देर बाद न मालूम कहाँ चला गया, दिखा नहीं। ज्योतिष दादा भली-भाँति खोजने के लिये आदमी बुलाना चाहते थे। माँ ने मना कर दिया। जन्माष्टमी का यज्ञ-स्थान और कहीं न होकर ठीक वहीं पर हुआ जहाँ साँप आकर बैठा था। माँ ने यह बात कही। इसके भीतर क्या रहस्य है, माँ ही जानें।

मन्दिर के निकट श्री श्री माँ के स्मृति-मन्दिर स्थापना का इतिहास

जन्माष्टमी के दिन हवन हो जाने के बाद ही माँ राजपुर रोड के पास

जाखम मन्दिर में चली गई। दूसरे दिन प्रातःकाल माँ उस मन्दिर में बैठी थी। वृष्टि हो रही थी। कुछ देर बाद माँ पैदल ही मनोहर मन्दिर को रवाना हुई। मार्ग में हरीराम आदि गाड़ी से माँ के समीप जा रहे थे। मार्ग में माँ दीख गई। माँ उसी गाड़ी में बैठकर मनोहर मन्दिर आई। आकर देखा हवन-स्थान की सफाई आरम्भ कर दी थी। तत्क्षण माँ ने कहा- ''इस यज्ञ की थोड़ी विभूति रख देना।'' माँ के मुँह से ही यह घटना सुनी है। माँ ने कहा- ''देख, रास्ते में यदि गाड़ी न मिलती तो पैदल आते-आते यज्ञ-कुण्ड की सब विभूति फेंककर साफ कर डालते। किन्तु जो होना होता है वह इसी तरह हो जाता है।'' बाद में यह विभूति ले जाकर एक जगह जमीन में गाड़ दी गई। उसी के ऊपर मन्दिर बन रहा है। उसी जगह यज्ञकुण्ड बनाया जायेगा एवं प्रति वर्ष जन्माष्टमी के दिन उस कुण्ड में हवन होगा। अन्य समय में भी यदि किसी को हवन करने की इच्छा होगी तो उसी कुण्ड में यज्ञ कर सकेगा। उन्होंने उस मन्दिर के ऊपर लिखा है- **''श्री श्री माँ आनन्दमयी के शुभागमन के उपलक्ष्य में'** एवं मन्दिर के अन्दर माँ का चित्र बड़ा बनाकर टाँग रखा है।

श्री श्री माँ और कमला नेहरू- अम्बिका-मन्दिर में श्रीमती नेहरू का यज्ञ

इस हवन के कुछ दिन पहले से ही **पण्डित जवाहरलाल नेहरूजी** की पत्नी श्रीमती **कमला नेहरू** का माँ के समीप आना-जाना आरम्भ हो गया था एवं वे माँ की अत्यन्त अनुरक्त हो गई थी। उन्होंने एक बार देहरादून आकर, माँ ने जन्माष्टमी के दिन हवन कराया एवं सभी ने उसमें फल-फूल की आहुति दी इत्यादि खबर सुनी तो इस पर माँ से प्रश्न कर बोली- माताजी मुझे उस समय आपने क्यों उपस्थित नहीं किया? मैं कुछ देख न सकी। माँ बोली- ''ठीक तो है, शुभ कार्य जब इच्छा हो किया जा सकता है। तुम भी एक दिन करो।'' वे उससे खूब उत्साहित होकर हवन का आयोजन करने लगी। माँ उनको साथ लेकर राजपुर की सड़क में पहाड़ के ऊपर अम्बिका-मन्दिर में गई एवं वहीं उन्होंने माँ के आदेशानुसार हवन आदि किया। उस हवन के अवसर पर देहरादून से बहुत से स्त्री-पुरुष वहाँ एकत्र हुये। खूब समारोह के साथ यज्ञ हो गया। माँ के आदेश से वहीं तीन दिन तक हवन की अग्नि की रक्षा की गई। बाद में वह हवन की अग्नि मनोहर मन्दिर में लाकर रखी गई। सवेरे-शाम दोनों समय उसमें आहुति

दी जाने लगी। फिर उस अग्नि को अल्मोड़े के एक भक्त (भैरवजी) माँ के आदेश से अपने घर ले जाकर उक्त अग्नि की रक्षा करने लगे। ये सब घटनायें मैंने सुनी हैं।

कश्मीरी, पंजाबी आदि महिलाओं द्वारा श्री श्री माँ की अर्चना और उनका उपदेश

मैंने कश्मीरी, पंजाबी- सब महिलाओं को मालाओं से माँ को सजाकर कर्पूरादि द्वारा आरती करते देखा। माँ ने वहाँ किसी का नाम 'गोपालजी', किसी का नाम 'बाल-गोविन्द', किसी का नाम 'लक्ष्मी' और किसी का नाम 'मीरा' रख छोड़ा है। **'एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति'** वेदान्त की इस उक्ति का ही प्रचार कर रही हैं। माँ समझाती- ''देख, हम लोगों की एक में ही स्थिति है। एक पग, एक पग करके टहलते हैं, एक ग्रास, एक ग्रास करके खाते हैं, एक-एक अक्षर लिखते हैं इत्यादि।'' ज्योतिष दादा ढाका में 'माँ'-'माँ' नाम का कीर्तन आरम्भ करके ही गये थे। वहाँ भी 'माँ'- 'माँ' नाम का कीर्तन होता है। मैंने सुना, हमारे जाने के कुछ दिन पहले ही शंकरानन्द स्वामी और रमा दीदी आकर माँ के साथ लछमनझूला में कुछ दिन रह गए। मिर्जापुर से कुलदा दादा भी गये थे।

पिताजी, मनोरमा दीदी और मेरा नाम और वेश परिवर्तन कराकर हम लोगों को देहरादून से विदा करना (माघ सं. 1990)

हम लोगों के लगभग एक महीना रहने के बाद माँ ने हम लोगों से लौट आने की बात कही। सान्त्वनापूर्ण स्वर में बोली- ''तुम लोगों को जो दूर रख रही हूँ, वह भी मंगल के लिये है। यह बाद में तुम्हारी समझ में आ सकेगा।'' आने के कुछ दिन पहले पौष संक्रान्ति के दिन माँ ने पिताजी के, मेरे और मनोरमा दीदी के वस्त्रादि परिवर्तन कराकर पीले रंग के वस्त्र पहनने का आदेश दिया। पिताजी का कुर्ता पहनना एकबारगी छुड़ा दिया। माँ ने मुझे कई दिन पहले से ही अपनी नाखूनी किनारे की धोती और फतूही पहनाई थी। उस समय उन्हीं को केवल पीले रंग से रंग दिया। इस तरह वस्त्रादि का परिवर्तन तथा और भी जिन-जिन नियमादि का पालन आवश्यक था, बतला दिये। मेरा नाम रखा **'गुरुप्रिया'**, मनोरमा दीदी का

नाम रखा 'कृष्णप्रिया', पिताजी का नाम रखा 'अखण्डस्वरूप।' हम लोगों को विन्ध्याचल आश्रम में रहने का आदेश दिया एवं मुझे प्रतिदिन हवन करने का आदेश दिया और ब्रह्मचारिणी के रूप में ही रहने को कहा। विन्ध्याचल में एक यज्ञ-मन्दिर बनाने के लिये पिताजी से कह दिया। किस प्रकार का बनाना होगा, सब बतला दिया। यह भी कहा- "तुम बनवाकर तैयार रखो, जब काम आरम्भ होने वाला होगा, हो जायेगा।" ये सभी बातें माँ ने एकान्त में ले जाकर पिताजी से और मुझसे कही थी। मैं पहले कह आई हूँ कि माँ जो काम कराती हैं, केवल उसी के समीप उसे प्रकट करती हैं। इसलिये माँ की सब घटनायें जानने का उपाय नहीं है। माघ के महीने में ही माँ ने हम लोगों को विदा कर दिया।* भोलानाथजी उत्तरकाशी में ही थे। साथ में केवल कमलाकान्त ब्रह्मचारी ही रहा।

स्त्रियों के यज्ञोपवीत ग्रहण की बात तथा बाद में (संवत् 1992 के माघ महीने में) तारापीठ में मेरा और मरणी का उपनयन

आते समय माँ ने और एक बात कह दी, "काशी में पण्डितों से जिज्ञासा करना कि स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत का विधान शास्त्र में है या नहीं?" कितने ही वर्षों से महिलाओं के यज्ञोपवीत का विषय माँ के मन में उठा था, स्वयं भी उन्होंने यज्ञोपवीत लिया था, किन्तु उस समय माँ के गले में यज्ञोपवीत न था। ढाका से आते समय उसे मेरे गले में डाल आई थी, फिर नया यज्ञोपवीत नहीं पहना। पहले ही लिखा जा चुका है कि माँ के सभी नियम शरीर में ही हो जाते किन्तु स्थायी कुछ नहीं रहता। हमने काशी में आकर पण्डितों के घर-घर जाकर स्त्रियों के यज्ञोपवीत के विषय में जिज्ञासा की। सभी ने कहा- "पूर्वकाल में यह प्रथा थी, यह पाया जाता है किन्तु वर्तमान समय के लिये हम मत नहीं दे सकते।" इस विषय

---

* इस विषय में एक विशेष बात यह है कि हम लोगों के आने का एक दिन ठीक हुआ। दूसरे ही दिन हम लोग रवाना होने वाले थे। माँ ने तब तक यज्ञ-मन्दिर बनाने की बात कुछ नहीं कही थी। किन्तु संयोगवश उस दिन आना नहीं हुआ। दो दिन बाद रवाना होने का निश्चय हुआ। उस समय आने के पहले दिन माँ ने एकान्त में ले जाकर पिताजी से और मुझसे यज्ञ-मन्दिर की बात विशेष रूप से कही। नाम इत्यादि सब कुछ बलता दिया और इस बात को गुप्त रखने को कहा। इसीलिए कहा गया है कि माँ का पहले से कोई संकल्प नहीं रहता, समयानुसार एक-एक कारण से माँ के अन्दर से एक-एक घटना हो जाती है।

में **महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज** एम.ए. महाशय ही सबकी अपेक्षा अधिक सुन्दर व्यवस्था दे सकेंगे, यह विचार कर उनके समीप जाना हुआ। माँ ने भी उनको निर्देश कर दिया था। उन्होंने अन्वेषण कर निश्चय किया कि स्त्रियों का यज्ञोपवीत प्राचीन काल में होता था इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। उन्होंने कहा- ''माँ यदि इच्छा करती हैं तो इस समय भी दे सकती हैं। माँ की इच्छा ही शास्त्र है, अन्य मत की आवश्यकता नहीं है।'' माँ को सब लिखकर जता दिया। माँ ने लिखा- 'और प्रमाण लेने की आवश्यकता नहीं है। मेरे मन में एक इच्छा उठी है, वह शास्त्र में है या नहीं, सबके मन में यह सन्देह उठ सकता है, इसीलिये जिज्ञासा की थी। मैं सर्वसाधारण में इसे चलाना नहीं चाहती। अधिकारी भेद से होना आवश्यक है।'' पीछे मैंने सुना, इस समय भी किसी-किसी ने स्त्रियों को यज्ञोपवीत दिया दिया है। हम लोगों के लिये माँ का कथन ही पर्याप्त है। फिर जो माँ ने करने को कहा था वह किया गया। इस बात की कोई चर्चा फिर उस समय नहीं हुई। बाद में सन् 1942 ई. के माघ महीने में तारापीठ जाकर माँ ने उसे कार्य रूप में परिणत किया। वहीं माँ ने मुझे और मरणी को यज्ञोपवीत दिलाया।

* * *

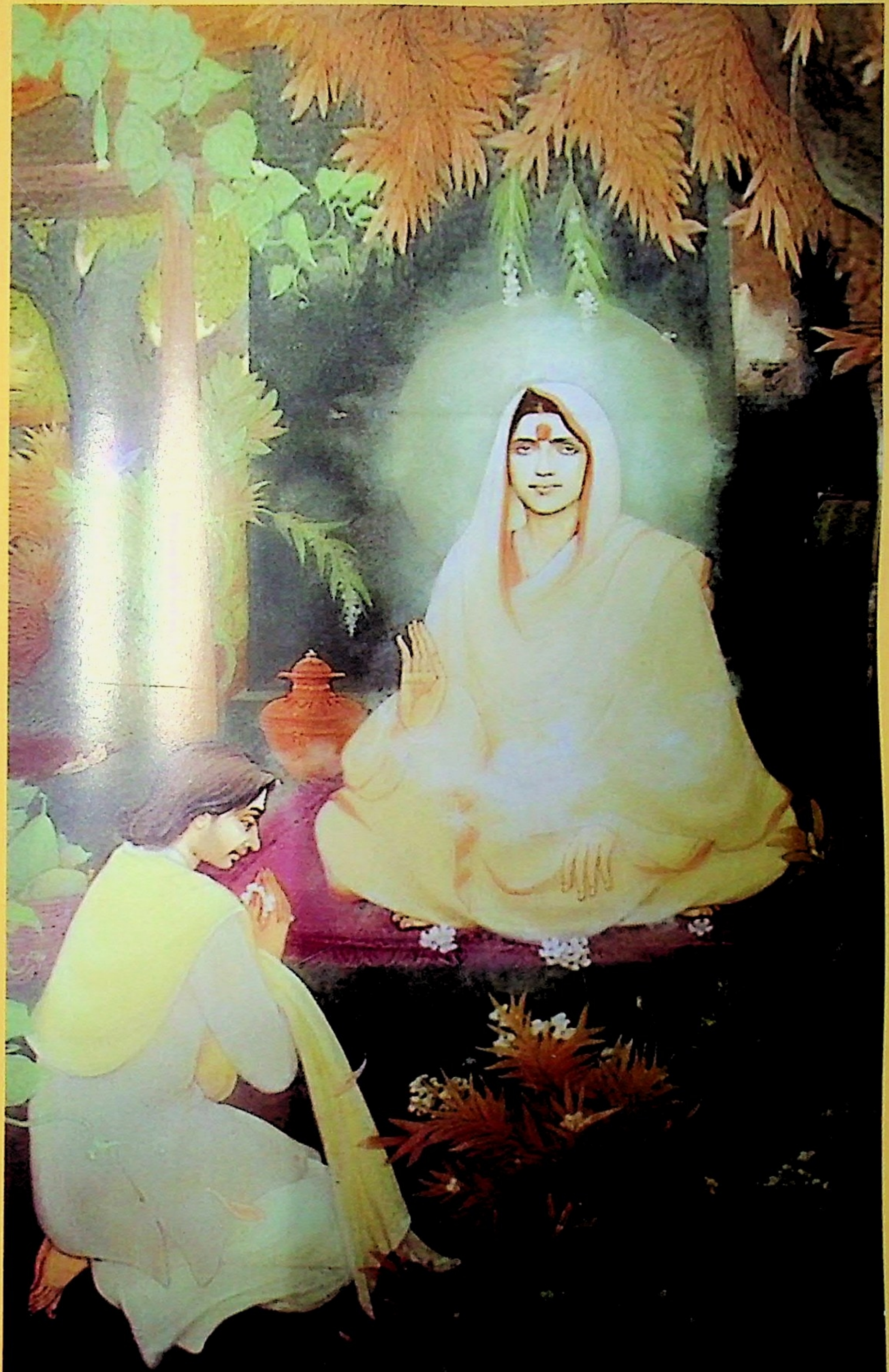

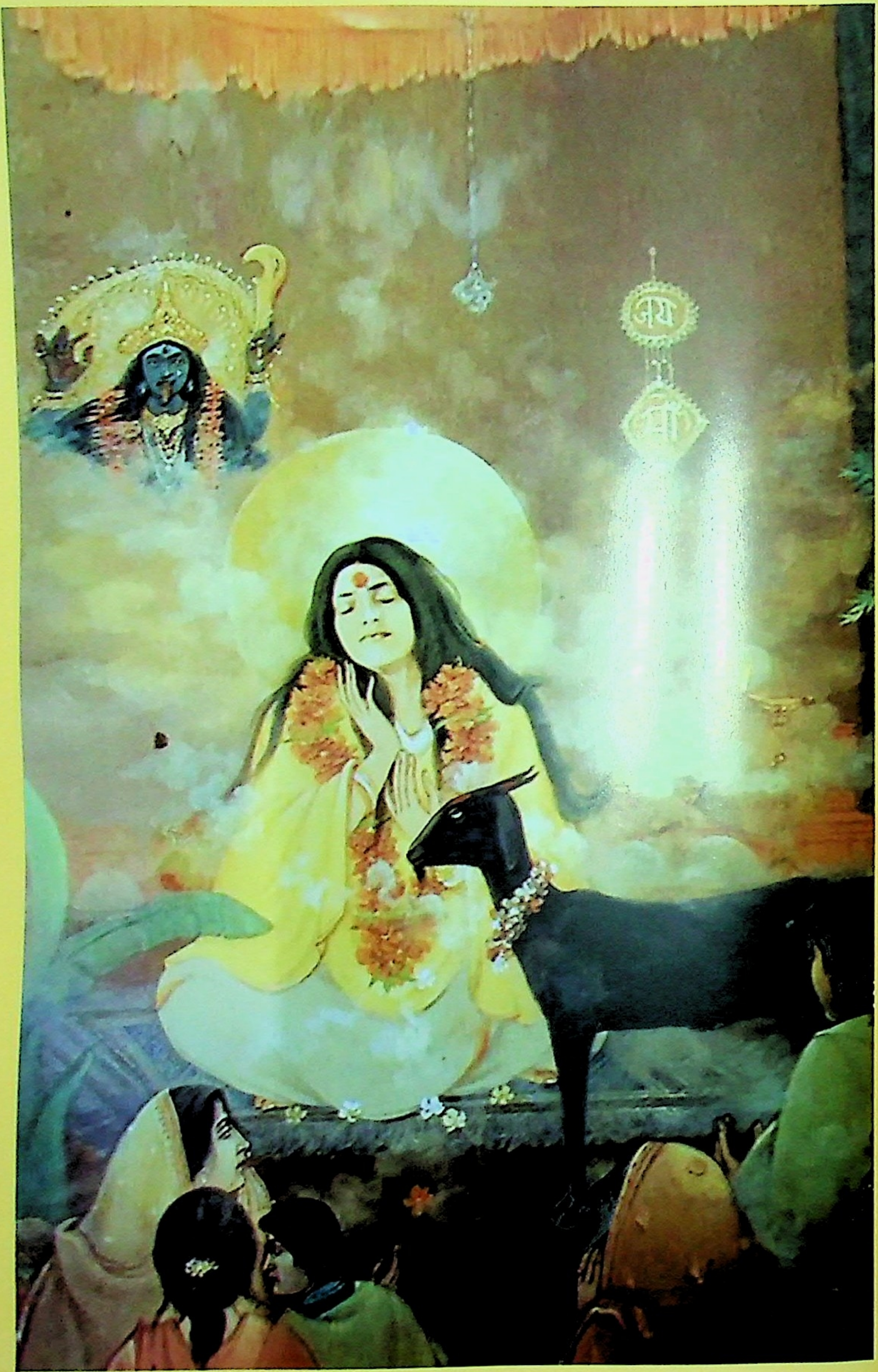
জয

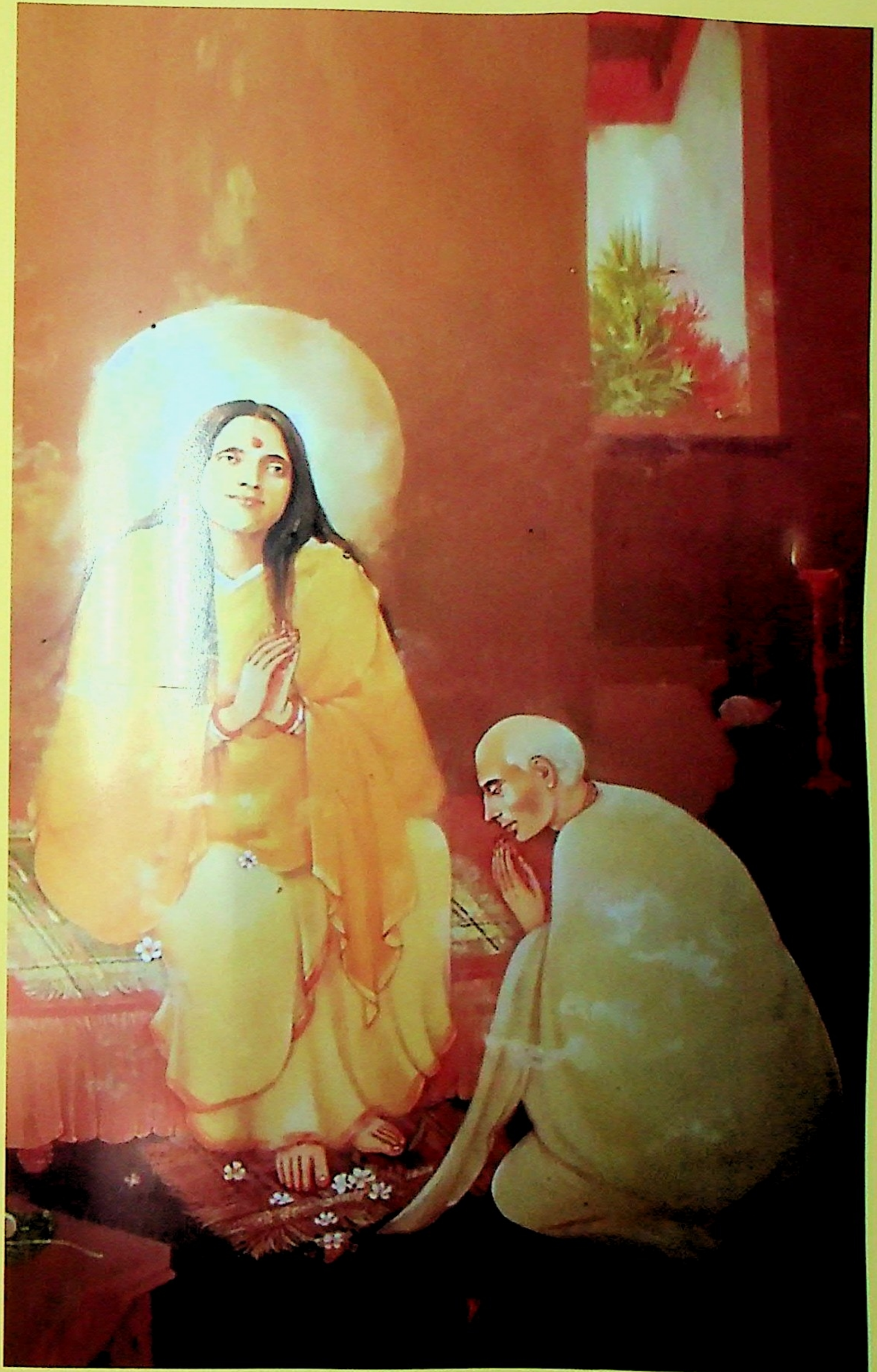

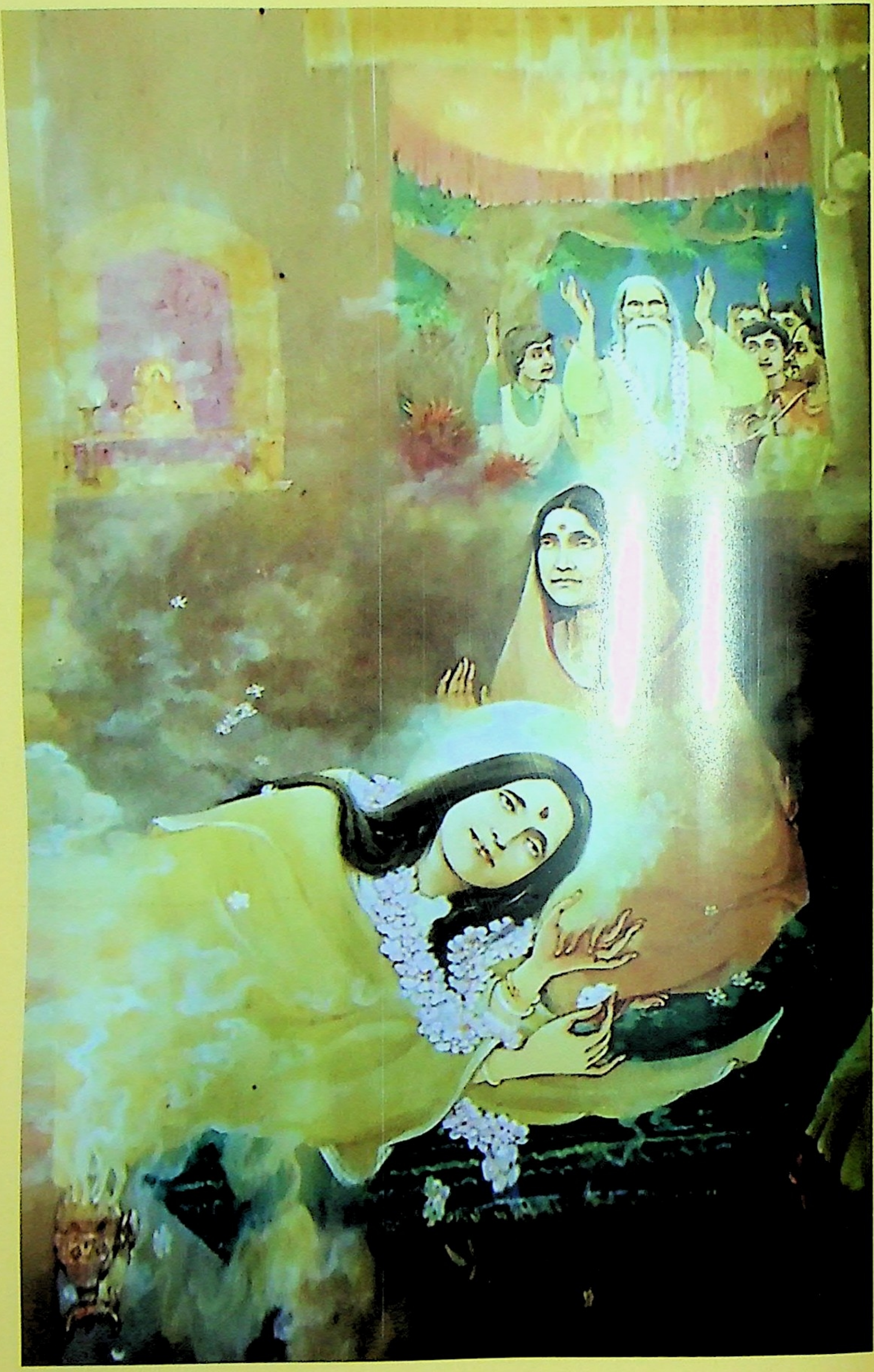

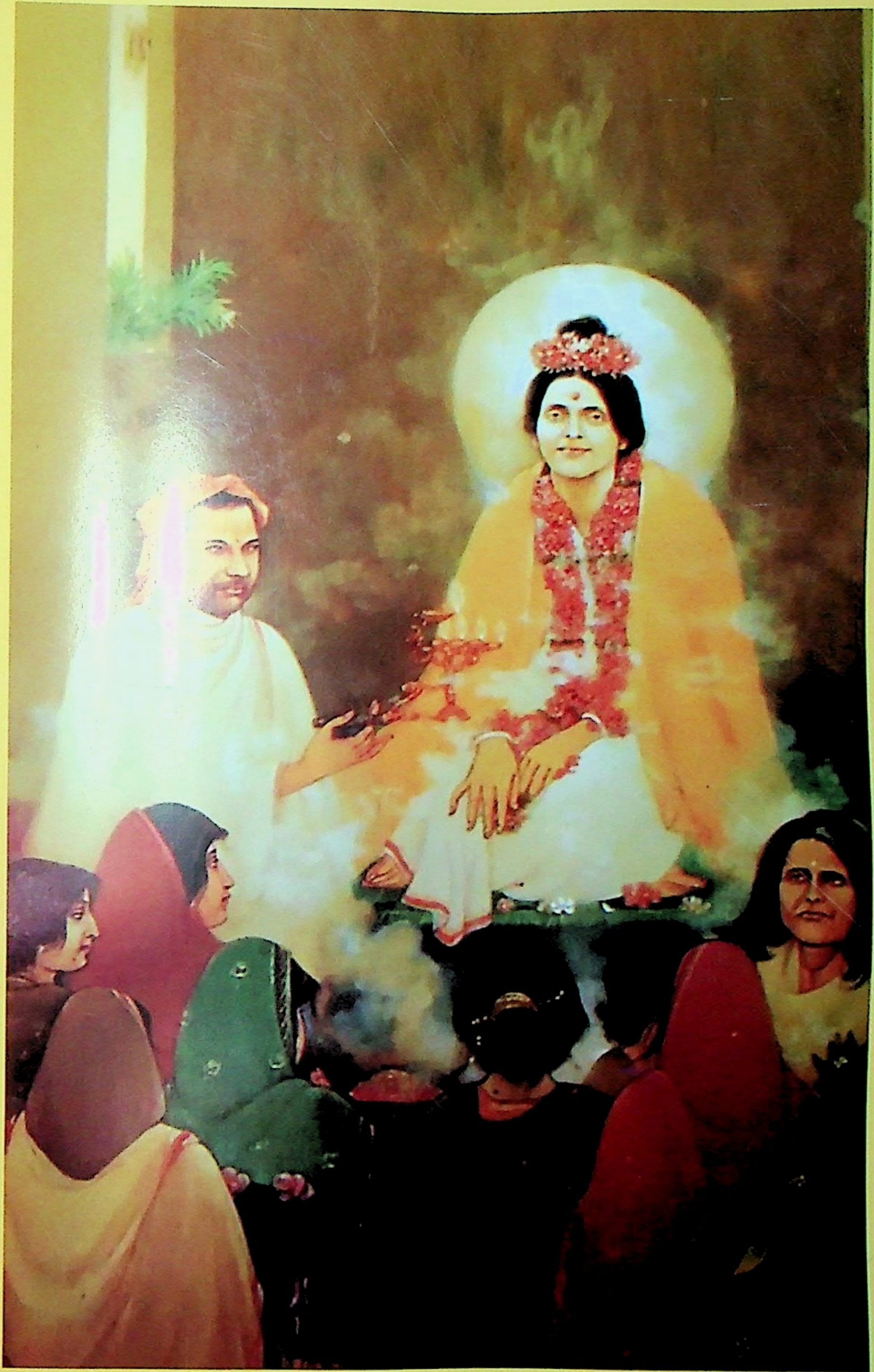

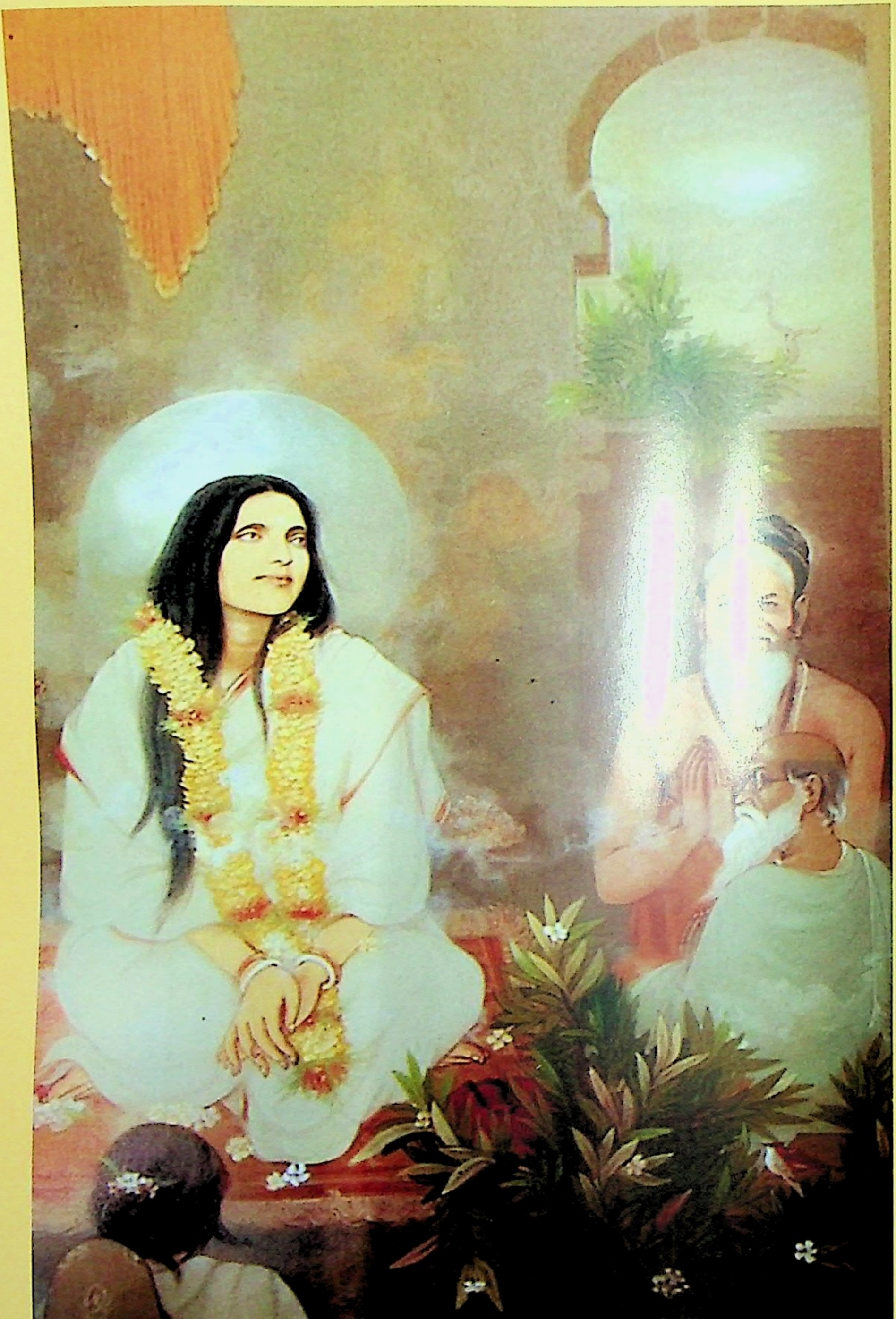

बीसवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का सोलन पहाड़ पर गमन (सम्वत् 1990 चैत) पिताजी के संन्यास ग्रहण का पूर्वाभास और तदुपरान्त हरिद्वार में उसका आयोजन

हम लोग जाकर विन्ध्याचल में रहे। माँ भी देहरादून से निकलकर घूमते-घूमते 'सोलन' (शिमला पहाड़ के निकट) गई। वह सं. 1990 का चैत का महीना था। एकाएक पिताजी के समीप ज्योतिष दादा की एक चिट्ठी आई, ''माँ ने चैत के महीने की.........तारीख के अन्दर (तारीख का मुझे ठीक स्मरण नहीं है) आपको हरिद्वार आने का आदेश दिया है। माँ भी उस अवसर पर वहाँ उपस्थित रहेंगी। आते समय शंकरानन्द स्वामी और मनोरमा माँ को काशी से लेते आवें।'' इस पत्र को पाकर हम लोग काशी होकर हरिद्वार को रवाना हो गये। साथ में शंकरानन्द स्वामी और मनोरमा दीदी भी गई। हम लोग ज्योतिष दादा के लेखानुसार हरिद्वार की एक धर्मशाला में जाकर देखते हैं, माँ दो दिन पहले ही वहाँ पहुँच गई हैं। हमारी गाड़ी बड़े भोर में हरिद्वार पहुँची, हम लोग जिस समय धर्मशाला में गये उस समय माँ सोई हुई थी। हमने जाकर माँ के चरणों की धूली ली। माँ लेटे-लेटे ही बातें करने लगी। कुछ देर बाद माँ उठ बैठी। गंगाजी के ऊपर ही यह धर्मशाला बड़ी सुन्दर है। दोपहर के समय भोजन किया।

संन्ध्या के बाद गंगा के तट पर पत्थरों से पटी एक जगह पर माँ ने पिताजी को और मुझे बुला लिया तथा कहने लगी- ''मैं तो जानते ही हो अपनी इच्छा से किसी से भी कुछ नहीं कहती। जब गत बार पूस के महीने में तुम लोगों को देहरादून बुलाया था तभी मुझे तुम्हारे (पिताजी के) संन्यास ग्रहण की बात का खयाल हुआ था। किन्तु उस समय मालूम होता है, समय नहीं आया था। इसीलिये उस समय वे सब बातें नहीं उठी। केवल वस्त्रादि का परिवर्तन कराकर संन्यास का भाव लेकर तुम्हें (पिताजी से ही सब कह रही थी) रहने की बात कही गई थी। उसके बाद घूमते-घूमते ही हम सोलन गये। वहाँ एक गुफा में हम लोगों के कुछ दिन रहने का प्रबन्ध किया गया। किन्तु जिस दिन वहाँ पहुँचे उसके दूसरे ही दिन मैं

पड़ी थी, तुमको मैंने संन्यासी के वेश में देखा। उसी समय मन में आया कि समय हो गया हैं। ज्योतिष के द्वारा उसी समय तुम्हारे पास हरिद्वार आने के लिये पत्र लिखवाया। भोलानाथजी को चिट्ठी लिखवा दी कि चैत संक्रान्ति के दिन बाबा संन्यास-मंत्र की दीक्षा लेंगे। सम्भव है तुम्हारे भीतर संन्यास का संस्कार है। तुम्हारे लिये चिट्ठी लिखवाकर मैं भी साथ-ही-साथ पहाड़ से उतर आई। सोलन में कुछ दिन रहने का सब प्रबन्ध किया था। सहसा न मालूम क्यों यह सब करके चली आई। ज्योतिष भी नहीं जानता है, मैं क्या करूँगी? मैं भी अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती, जो होनहार होता है हो जाता है।'' यह सब कहकर आगे बोली- ''हरिद्वार, लक्ष्मणझूला, ऋषिकेश - इन सब जगहों में ही संन्यास-मन्त्र देने के लिये योग्य व्यक्ति हैं। खोज करने पर मिल जायेंगें। कल ही शंकरानन्द को उसी खोज में भेजना चाहिये।'' पिताजी ने सब सुना। माँ कह रही थी, इसलिये उन्होंने संन्यास-मंत्र लेने में कोई आपत्ति नहीं की। किन्तु बोले- ''माँ मैं जानता हूँ, मेरा जो कुछ करने योग्य है, वह तुम्हीं करोगी, फिर एक व्यक्ति को गुरु बनाना होगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।'' माँ ने कहा- ''जानते ही हो कि मैं अपने हाथ से कुछ नहीं कर सकती।'' पिताजी ने कहा- ''जब पहले-पहल आपके दर्शन हुये, उसी समय मैंने कह दिया था, मेरे लिये जो कुछ भी आवश्यक हो, तुम कर दो। मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। नाव का डाँड़ा खींचने को कहो, डाँड़ा खींच ले जाऊँगा। तुमने भी कहा था, यथासाध्य करूँगी। फिर आज दूसरे के निकट क्यों फेंक रही हो। तुम जिसको न कर सको उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है।'' यह कहकर पिताजी चुप हो गये।

माँ ने कहा- ''ठीक है, यदि ऐसी बात है तो फिर कुछ करने की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने जो देखा था, कहा।'' यह कहकर माँ चुप हो गई। किन्तु मैंने देखा, माँ जरा गम्भीर हो गई। जिस आनन्द के भाव से पहले बोलना शुरू किया था, उस भाव में परिवर्तन हो गया। पहले ही लिखा जा चुका है कि माँ के भीतर कुछ भी परिवर्तन न होने पर भी बाहर शरीर में एक परिवर्तन दीख पड़ता है। माँ कहती- ''उसकी आवश्यकता है।'' और सचमुच में देखती, उसी से बहुधा अनेक काम सुसम्पन्न होते हैं। आज भी मुझे बाहरी परिवर्तन दिखाई दिया। यह बातचीत सन्ध्या समय हो गई।

पिताजी का संन्यास ग्रहण (चैत्र संक्रान्ति सं. 1990) नाम पड़ा 'अखण्डानन्द गिरि'

जरा अधिक रात बीच चुकी थी, माँ अकेले-अकेले टहल रही थी। पिताजी सन्ध्या से ही मालूम होता है इस विषय में विचार कर रहे थे। माँ को एकान्त में देखकर पिताजी उस समय माँ के समीप जाकर प्रणाम कर बोले- ''माँ, मेरे मन में जो भाव उठा था, वही मैंने आपसे कहा। अब तुम्हारा जो भी आदेश हो उसी को पालन करने के लिये मैं प्रस्तुत हूँ।'' माँ ने यह बात सुनकर खूब प्रसन्नता व्यक्त कर कहा- ''ठीक है, यदि ऐसा है तो कल ही शंकरानन्द उपयुक्त व्यक्ति का अन्वेषण करना आरम्भ करे। संक्रान्ति के केवल 5-7 दिन शेष हैं।'' यह कहकर आगे और भी उन्होंने कहा- ''देखो, एक दूसरे गुरु के समीप भेज रही हूँ, ऐसा क्यों सोच रहे हो? मैं तो अपने हाथ से कुछ भी नहीं करती हूँ। मेरा जो कुछ भी हो वह तुम्हारे समीप ही हो, ऐसी तुमने प्रार्थना की थी, इसीलिये मैं आई हूँ। सभी तो एक हैं। एक के अतिरिक्त दो कहाँ हैं। फिर संन्यासी गुरु के साथ गुरु-शिष्य का कोई बन्धन या सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये दूसरा गुरु हो रहा है ऐसा खयाल ही मत करो,'' इत्यादि अनेक बातें कहकर माँ ने पिताजी को शान्त किया।

किन्तु पिताजी के मन में यह विचार खूब ही उछल-कूद मचा रहा था। दूसरे ही दिन माँ ने शंकरानन्द स्वामी को एक अच्छे व्यक्ति की खोज में जाने का आदेश दिया। उन्होंने इधर-उधर अन्वेषण कर कनखल के 'मंगलानन्द गिरि' महाराज को ही उपयुक्त व्यक्ति समझकर माँ को खबर दी। उसके बाद माँ ने ज्योतिष दादा और पिताजी को कनखल मंगलानन्द गिरि के निकट भेज दिया। वे भी उनको देख आये। पिताजी ने श्री माँ से कहा- ''माँ, मैं क्या देखूँ, तुम देखकर जो करो, करूँगा।'' संयोगवश उसी दिन वह धर्मशाला छोड़नी पड़ी। माँ हम लोगों को साथ लेकर कनखल मंगलानन्द गिरि के आश्रम में चली गई। वहीं हम लोगों के रहने के लिये स्थान की व्यवस्था हुई। माँ ने भी देखकर 'मंगलानन्द गिरि' को संन्यास मंत्र देने के लिये उपयुक्त व्यक्ति ही समझा।

''मंगलानन्द गिरि' महाराज की अवस्था लगभग 80 वर्ष की होगी। वे बालब्रह्मचारी थे, पूर्वाश्रम का मकान मथुरा था। लगभग 40 वर्षों से उस

आश्रम में थे। वह उनके गुरु का आश्रम है। हम लोग 5-7 दिन वहाँ रहे। संन्यास की सम्पूर्ण व्यवस्था की गई। तदनन्तर सं. 1990 की चैत्र-संक्रान्ति के दिन शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पिताजी ने संन्यास ग्रहण किया। संन्यास लेने के पहले ब्रह्मचारी होना पड़ता है। मुण्डन कर ब्रह्मचारी बना देते हैं। पिताजी को भी ब्रह्मचारी बनाया गया। उस दिन श्री श्री माँ पिताजी को 24 घण्टे बैठने का आदेश देकर गायत्री जप कराया। तदनन्तर अपने श्राद्धादि कर्म स्वयं कर रात्रि खुलते समय संन्यास मन्त्र में दीक्षित होना पड़ता है। गिरि महाराज कमरे में किसी को भी जाने नहीं देते थे। माँ, पिताजी के नेत्रों के सामने ही खिड़की के पास खड़ी रही। वहाँ उस दिन कोई भी गृहस्थ न था। माँ के समीप बहुत से भक्त रहते हैं, किन्तु आश्चर्य है, उस दिन कोई नहीं रहा। इस बात का माँ ने निर्देश किया। माँ के पहले दिये हुये नाम के अनुसार ही पिताजी का 'अखण्डानन्द गिरि' नाम पड़ा। संन्यास लेने पर ही नाम के साथ 'आनन्द' जोड़ दिया गया। जिस समय भोर हुआ उस समय पिताजी ने संन्यास-मंत्र ग्रहण कर नवीन संन्यासी की वेश-भूषा पहनकर माँ के चरणों में लोटकर नमस्कार किया। माँ ने भी आशीर्वाद दिया, "तुम अखण्ड रूप से घर-गृहस्थी कर आये हो, इस समय भी तुम्हारा यह काम अखण्ड रूप से हो।" इस तरह से आशीर्वाद माँ विशेष नहीं करती हैं। पिताजी कृतार्थ होकर पुनः श्री श्री माँ के चरणों में लोट गए। माँ की कृपा से असंभव ही संभव हुआ। कितने वर्षों से ही माँ धीरे-धीरे पिताजी को इस मार्ग में अग्रसर करा रही थी। कुर्ता, जूता के बिना जो कभी न रहते, यदि रहते भी तो बीमार पड़ जाते, खाने-पीने का कितना संयम कर जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन बिताया था, 60 वर्ष की अवस्था में (श्री श्री माँ के साथ जिस समय प्रथम भेंट हुई उस समय पिताजी की अवस्था 60 वर्ष की थी) उनका सब परिवर्तन होने लगा एवं माँ की कृपा से इस वृद्धावस्था में भी सब सहन होने लगा। बाद में माँ ने कमण्डलु और कौपीन भी दे दिया था। इस तरह धीरे-धीरे सब कराया गया। अपने साथ-ही-साथ रखकर न जाने उनके कितने बन्धन कटाए। पीछे कृपा कर घर से बाहर कर कतिपय वर्षों तक आश्रम में रखा। इस समय लगभग 68-69 वर्ष की अवस्था में संन्यासी बना दिया। माँ की शिक्षा की शैली कितनी सुन्दर है। खेल-खेल में उन्होंने न जाने कितने काम कर डाले। एक विशेष शक्ति की सहायता पाये बिना जीवन में इस प्रकार परिवर्तन होना सम्भव नहीं है।

श्री श्री माँ की कृपा से ज्योतिष दादा की आश्चर्यजनक स्वास्थोन्नति

उधर ज्योतिष दादा क्षय रोग से उठे हैं। उस भीषण शीत में कुर्ता नहीं, जूता नहीं, सब कुछ सहन कर पा रहे हैं। उनका भी इतने वर्षों का अभ्यास था, इस वृद्धावस्था में रुग्ण शरीर से वह परिवर्तन सहन करना क्या सम्भव होता? यदि शक्तिमयी माँ अपने साथ-ही-साथ रखकर शक्ति संचार न करती, अन्यथा इस प्रकार कदापि जीवन-रक्षा न होती। किन्तु वे नौकरी के जीवन में जब खूब सुख-स्वच्छन्दता से रहते थे उसकी अपेक्षा इस समय ही उनका शरीर अधिक अच्छा है, यह बात उनके आत्मीय कुटुम्बियों ने भी कही।

मनोरमा दीदी का संन्यास ग्रहण (1 सौर बैशाख सं. 1991)

मनोरमा दीदी ने भी चैत्र संक्रान्ति के दिन सारी रात बैठकर जप किया। सं. 1991 सौर 1 बैशाख को प्रात:काल मंगलानन्द गिरि के समीप वे संन्यास-मन्त्र से दीक्षित हुई। मनोरमा दीदी की एकाग्रता देखकर गिरि महाराज ने स्त्री होने पर भी संन्यास मन्त्र से दीक्षित करने में कोई आपत्ति नहीं की।

विराजमोहिनी दीदी का वृत्तान्त

इस प्रकार कनखल में सब काम सम्पन्न हो जाने के बाद भी माँ कुछ दिन कनखल रही। विन्ध्याचल से विराजमोहिनी दीदी वहाँ गई। ये (कलकत्ते के) माँ के भक्त ज्ञान ब्रह्मचारी की आत्मीय है। कुछ दिनों से विन्ध्याचल आश्रम में आई है। ये विधवा हैं। 2 लड़के हैं, विवाह हो चुका है। अब इसी तरह साधन-भजन कर जीवनयापन करने की इच्छा है।

दूर-स्थित कमला नेहरू का आश्चर्य-जनक मातृदर्शन

भगवान ब्रह्मचारी महाशय के एक शिष्य विकास बाबू हैं। वे भी माँ के दर्शन करने कनखल गये। वीरेन्द्र दादा आगरा से गये। नन्दू ढाका से गया। ढाका से प्रमथ बाबू (वकील) के बड़े भाई और लड़की दोनों तीर्थ करते-करते कनखल गये। उन्होंने माँ को एक अधिक चौड़े किनारे की साड़ी पहनाई। माँ उस समय नाखूनी किनारे की धोती ही पहनती थी। बंगाली लोग उसको पसन्द क्यों करेंगे? माँ की किसी में भी आपत्ति नहीं है। माँ दिनभर इस साड़ी को ही पहनकर रही। बाद में उतार दी। आश्चर्य की बात

है कि कुछ दिन बाद ही श्रीमती कमला नेहरू का ज्योतिष दादा के पास एक पत्र आया। उन्होंने लिखा था – ''भाईजी, आप मुझे माँ की खबर सदा नहीं देते। किन्तु मेरा मन सदा ही माँ के दर्शन पाने के लिये आकुल रहता है। मैं माँ को यहीं से कभी-कभी देख लेती हूँ। कुछ दिन हुये, मैंने देखा माँ एक बड़े लाल किनारे की धोती पहनकर बैठी हैं।'' उस पत्र को पढ़कर हम आश्चर्य में पड़ गये। माँ के प्रथम दर्शनों के बाद से वे जब-जब देहरादून आती, माँ को खोजकर मसूरी, ऋषिकेश या लक्ष्मणझूला में माँ के दर्शन किये बिना न लौटती। इसके बाद ही माँ मसूरी जाकर लगभग डेढ़ महीना वहाँ रही। भोलानाथजी भी वहाँ आ गये थे। उस समय कमला नेहरु माँ के दर्शनों के लिये मसूरी जाकर एक रात माँ के समीप ही रही थी। सम्भवत: वह माँ के साथ उनकी अन्तिम भेंट थी।

श्री श्री माँ का हम लोगों को बद्रीनारायण जाने का आदेश एवं स्वयं मसूरी गमन (संवत् 1991 बैशाख)

माँ लगभग 19-20 दिन कनखल रही। मुझे और अखण्डानन्द स्वामीजी को श्री बद्रीनारायण जाने का आदेश दिया। माँ स्वयं नहीं जायेंगी, इसलिये हम जाने के लिये राजी नहीं हो रहे थे। किन्तु माँ बोली- ''मैं कहती हूँ तुम लोग जाओ।'' क्या करते बाध्य होकर राजी हुये। शंकरानन्दजी तथा विराजमोहिनी दीदी भी हमारे साथ चली। भोलानाथजी की चिट्ठी आई, वे अस्वस्थ थे। इसलिये माँ मसूरी गई। वहाँ जाकर भोलानाथजी की, जो उचित होगा व्यवस्था करेगी, यह निश्चय हुआ। हम लोगों को लेकर माँ लक्ष्मणझूला गई। सभी साथ गये। लक्ष्मणझूला में माँ जिस धर्मशाला में पहले रही थी, वहीं गई। जिस दिन लक्ष्मणझूला पहूँची उसके दूसरे ही दिन माँ ज्योतिष दादा को साथ लेकर सम्वत् 1991 के बैशाख में मसूरी को रवाना हुई। हम लोग ऋषिकेश तक साथ-साथ आये। माँ के रवाना हो जाने के अनन्तर लक्ष्मणझूला लौटकर बद्रीनारायण जाने का प्रबन्ध करने लगे।

हम लोगों की बद्रीनारायण यात्रा (19 सौर बैशाख, 1991 वि.) तथा प्रत्यावर्तन (आषाढ़ 1991) कनखल पहुँचकर निर्मल बाबू के मृत्यु संवाद की प्राप्ति

19 सौर बैशाख हम लोग बद्रीनारायण को रवाना हुये। कुंजमोहन मुखोपाध्याय भी देवप्रयाग, श्रीनगर आदि स्थानों में साधन-भजन करने के

लिये गये थे। माँ के कनखल आने की खबर पाकर वे भी कनखल आकर माँ के साथ-साथ लक्ष्मणझूला आये थे। इस समय माँ के साथ ही हरिद्वार गये। वे वहीं रहेंगे। माँ ने मसूरी पहुँचकर भोलानाथजी को भी वहाँ बुला लिया। वहीं उनकी चिकित्सा होने लगी। हम लोग बद्रीनाथ, केदारनाथ घूमकर लक्ष्मणझूला, ऋषिकेश होकर कनखल मंगलानन्द गिरिजी महाराज के आश्रम में आषाढ़ के महीने में लौटे। माँ के समीप जाने की अनुमति माँ से माँगी। माँ ने उसके उत्तर में कुछ दिन कनखल रहकर ही विश्राम करने की अनुमति दी। माँ के आदेशानुसार हम लोग कनखल ही रहे। इधर खबर मिली कि निर्मल बाबू सपरिवार माँ के समीप मसूरी गए हैं। कलकत्ते से श्रीयुत् शचीकान्त घोष भी उसी समय माँ के समीप गये थे। उनके ये ही माँ के प्रथम दर्शन थे। ये कलकत्ते के असिस्टेण्ट इनकम टैक्स कमिश्नर हैं। कुछ ही दिनों के अन्दर टेलिग्राम से हमें ज्ञात हुआ कि निर्मल बाबू नहीं रहे। नेपाल दादा, बच्चू, तरु (निर्मल बाबू का लड़का तथा लड़की) और उनकी माँ को लेकर कनखल हो आये। उस आश्रम में ही निर्मल बाबू का श्राद्धादि कृत्य सम्पन्न हुआ। तदनन्तर वे लोग काशी चले गये।

निर्मल बाबू के सम्बन्ध में दो-एक बातें

माँ गिरिडीह होकर एक बार काशी आकर उतरी। सम्भवत: यह चैत्र का महीना था। एक दिन रात में निश्चय हुआ कि सारी रात कीर्तन हो। श्रीयुत् कुंजमोहन महाशय भी माँ के आगमन के उपलक्ष्य में निर्मल बाबू के मकान में ही ठहरे थे। किन्तु उनकी स्त्री घर बाल-बच्चों की तबीयत ठीक न होने के कारण रात्रि में निर्मल बाबू के मकान में न रह सकी। रात्रि में भोलानाथजी, माँ और अन्यान्य अनेक लोग सोये थे। श्रीयुत् हरेन्द्र डॉक्टर की स्त्री और श्रीयुत् निर्मल बाबू की स्त्री बैठकर नाम-कीर्तन कर रही थी। वे नाम-कीर्तन करते-करते झपकी ले रही थी। रात्रि को जब 2.30 या 3 बजा होगा, उस समय कुंज बाबू की स्त्री फिर मकान में न रह सकी। माँ के लिये उनका मन व्याकुल हो उठा। उन्होंने दोतल्ले से नीचे उतरकर देखा, उस समय नौकर-नौकरानी सब गहरी नींद में सोये थे। उन्होंने निद्रा-भंग करना उचित नहीं समझा और इधर माँ के समीप जाने के लिये उनका मन व्यग्र था। माँ की आकर्षणी शक्ति से स्थिर न रह सकने

के कारण उन्होंने ऐसा काम किया कि जिसकी उससे पहले या पीछे कल्पना तक नहीं कर सकती थी। उन्होंने खूँटी से लड़कों का कोट निकालकर पहना। चादर से सिर पर साफा बाँधा और हाथ में एक लाठी लेकर बाहर निकल पड़ी। गलियों के भीतर से निर्मल बाबू के मकान में आ पहुँची। कुंज बाबू काशी के एक संभ्रान्त व्यक्ति हैं। वे अपनी स्त्री को गाड़ी के बिना कभी गंगा नहाने भी नहीं जाने देते। सच बात तो यह है कि कुंज बाबू की स्त्री घर के बाहर विशेषतः जाती ही नहीं। किन्तु आज माँ के आकर्षण से यह सब भाव न मालूम कहाँ चला गया। वे निर्मल बाबू के मकान में पहुँचते ही बाहर से बोली– ''आज तो नाम–कीर्तन कर रात में जागरण करने की बात थी, नाम–कीर्तन तो नहीं सुन रही हूँ?'' उनकी आवाज से निर्मल बाबू की स्त्री की नींद की झपकी निकल भागी। उन्होंने हक–बकाकर उठते हुये दरवाजा खोल दिया। माँ भी तनिक मुस्कराकर उठ बैठी। कुंज बाबू की स्त्री की पौशाक देखकर सभी स्तब्ध हो गये। उन्होंने माँ के चरणों में गिरकर प्रणाम किया और अपनी सब अवस्था के सम्बन्ध में निवेदन किया। थोड़ी ही देर बाद माँ कमरे से बाहर निकलकर दक्षिण की ओर के बगीचे के पक्के आँगन में जाकर टहलने लगी। माँ के भाव में कुछ अस्वाभाविकता देखकर निर्मल बाबू की स्त्री और कुंज बाबू की स्त्री माँ के एकदम निकट न जाकर जरा दूर खड़ी होकर ही नाम–कीर्तन करने लगी। निर्मल बाबू भी सोये थे, उस समय एकाएक आँगन की ओर का दरवाजा खोलकर वे भी बाहर आँगन में आये। दरवाजे पर ही माँ को देखकर साष्टांग प्रणाम कर उठ खड़े होते ही न मालूम कैसे भाव में विह्वल हो गए। वे माँ के चारों ओर घूम–घूमकर, नाच–नाचकर, हिल–डुलकर तथा दोनों हाथ ऊपर उठाकर नाम–कीर्तन करने लगे, ''हृदय का जोर लगाकर बोलो।'' उनकी अवस्था उस समय 57–58 वर्ष की थी। वे थियोसॉफिकल सोसायटी के अति गंभीर स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें इस प्रकार की भाव विह्वलता अभिव्यक्त हो सकती है, इसकी उनके आत्मीयजन ही क्यों, जो उनको जानते थे वे कभी कल्पना तक नहीं कर सकते थे। किन्तु वे उस दिन मानो भाव विभोर थे। उनका यह भाव देखकर घर भर में एक तहलका मच गया। घर के सब लोग जाग उठे। सब लोग मिलकर जोर–जोर से कीर्तन करने लगे। माँ निश्चल हो खड़ी रही तथा निर्मल बाबू एक भाव से

'हृदय का जोर लगाकर बोलो' कहते हुये नाच-नाचकर माँ की प्रदक्षिणा कर रहे थे। देखते-देखते भोर हो गया, दरवाजा खुला पाकर बाहर के बहुत से लोग भी कीर्तन सुनकर उसमें योग देने लगे। माँ का शरीर भी हिलने-डुलने लगा। माँ गिर न पड़े इस भय से 2-3 व्यक्ति जाकर माँ के पीछे खड़े हो गये। लगभग 2 या 2:30 घण्टे इस प्रकार से बीत गये। उसके बाद निर्मल बाबू के तनिक स्वस्थ होकर पुनः साष्टांग प्रणाम करते ही माँ भूमि पर गिर पड़ी। निर्मल बाबू भी लेटकर कुछ देर तक लोट-पोटकर उठ बैठे। किन्तु माँ समाधिस्थ हो गई। दिन बहुत चढ़ गया था। धूप आ जाने के कारण सब लोग माँ को लाद-फाँदकर कमरे में ले गये। लगभग 12 बजे तक माँ इसी प्रकार पड़ी रही। तदनन्तर माँ उठ बैठी। उस दिन घर के सभी लोगों का मानो एक विचित्र भाव रहा।

भोग का उस समय तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। 12 बजे के बाद झटपट भोग की व्यवस्था भी की गई। निर्मल बाबू का भाव उस दिन जरा दूसरे ढंग का ही रहा। इस बीच में निर्मल बाबू की स्त्री और हरिदास, निर्मल बाबू के साथ उक्त भाव विह्वलता के निमित्त ठट्ठा करने लगे। क्योंकि वे इस भाव विह्वलता के लिये सभी का ठट्ठा करते थे। उनका ऐसा भाव किसी ने नहीं देखा था। उस दिन समय पाकर सब लोग ठट्ठा करने लगे। माँ ने उस समय उन लोगों को इस तरह ठट्ठा करने से मना कर दिया। इस घटना के कुछ दिन बाद निर्मल बाबू अपनी स्त्री और कन्या से कहते- "माँ ने मेरे भीतर के दूध का पनाला खोल दिया है।" सचमुच उक्त घटना के बाद से माँ की बात-चीत से अक्सर उनके नेत्रों से आँसू की बूँदे गिर पड़ती। उसके एकमात्र जामाता की मृत्यु से अथवा 27-28 वर्ष के जेठे लड़के की मृत्यु से भी किसी ने उनके नेत्रों में एक बूँद भी आँसुओं की नहीं देखी। माँ ने मानो उनके हृदय को एकदम द्रवीभूत कर दिया था। माँ की इस प्रकार की शक्ति का परिचय अन्यत्र भी देखने में आया है।

एक बार और भी निर्मल बाबू का यह भाव देखा गया था, उस समय माँ देहरादून थी। निर्मल बाबू अपने परिवार के साथ दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में माँ के समीप गये थे। उस समय एक बार उन लोगों को साथ लेकर माँ टपकेश्वर गई थी। वहाँ भी नाम-कीर्तन से निर्मल बाबू के फिर इसी प्रकार के भाव के लक्षण दृष्टिगोचर हुये, माँ ने कीर्तन बन्द करा दिया।

मसूरी से श्री श्री माँ का देहरादून आगमन और हम लोगों का वहाँ आह्वान

हम लोग भी कुछ दिन महानन्द मिशन में जाकर रहे। कुछ ही दिनों में 'तरु की अवस्था खराब है' इस आशय का तार माँ के पास और हम लोगों के पास आया। शंकरानन्द स्वामी इस तार को पाकर काशी चले गये। इस परिवार के साथ उनका घनिष्ठ परिचय था। इस विपत्ति के ऊपर फिर विपत्ति की खबर पाकर वे चले गये। माँ का आदेश पाये बिना पिताजी कहीं भी जाने वाले न थे। इसलिये हम लोग कनखल ही रहे। 2-3 दिन के बाद मसूरी से ज्योतिष दादा का टेलिग्राम आया कि माँ देहरादून जा रही हैं। वहीं पर माँ के दर्शन करने का हम लोगों को आदेश दिया। टेलिग्राम पाते ही देहरादून मनोहर मन्दिर में जाकर हमने सुना कि माँ उसी दिन मसूरी से आकर यहाँ एक बार आई थी, फिर मिलीटरी कॉलेज में ही रहेंगे, कहकर चली गई। हम लोग भी वहाँ चले गये, इसके पूर्व भी दो-एक बार माँ वहाँ रही थी। हम लोग गत वर्ष जब देहरादून आये थे तब माँ उक्त स्थान हमें दिखाने ले गई थी। इसलिये स्थान हमारा देखा हुआ था। रात में लगभग 9 बजे हम लोग वहाँ पहुँचे। जाकर देखा तो माँ और ज्योतिष दादा सो गये थे। हमारे जाने पर उठे। 2-4 बातें करने के बाद ही रात्रि अधिक बीत जाने से सब लोग सो गये। आषाढ़ के महीने में ही भोलानाथजी मसूरी चले गये और माँ देहरादून आई। दूसरे दिन भी हम लोग माँ के समीप ही रहे। उसके अगले दिन माँ ने रात्रि की गाड़ी से हम लोगों को विन्ध्याचल रहने का आदेश देकर भेज दिया एवं काशी में तरु को देखकर जाने को कहा। हमने सुना कि माँ ने दो-चार दिन से हर तीसरे दिन खाना आंरभ किया है। बाबू हरीराम जोशी स्टेशन आकर हमें गाड़ी में बैठा गये।

काशी में तरु की मृत्यु- हमारा विन्ध्याचल गमन (श्रावण सं. 1991 वि.)

हम लोग काशी आकर तरु को देखकर 2-1 दिन ठहरकर विन्ध्याचल चले गये। तरु बालविधवा थी। माँ के आदेश से जप-तप करके उसने खूब उन्नति की। जप-तप में उसको बड़ा आनन्द मिलता था। माँ का उस पर बड़ा स्नेह था। वह सदा ही पूजा-तप में ही बैठी रहती एवं माँ के प्रति उसमें प्रगाढ़ भक्ति थी। मसूरी में पिता की मृत्यु के बाद ही उस शोक से तथा विविध प्रकार के रोगों से वह खाट पर पड़ गई। पिता की मृत्यु के

6-7 महीने बाद ही लगभग 25 वर्ष की अवस्था में काशी में उसका शरीर छूटा। मालूम होता है, सावन के महीने में हम लोग विन्ध्याचल आये।

श्री श्री माँ का देहरादून से ऋषिकेश, सोलन और बैजनाथ भ्रमण

इसके अनन्तर ही हमने सुना, माँ देहरादून से ऋषिकेश जाकर गंगा के किनारे एक कुटी में डेढ़ मास रही थी। वहाँ से सोलन गई थी। तदनन्तर एक बार पंजाब की ओर बैजनाथ भी गई थी। वहाँ तारानन्द स्वामी के यहाँ ठहरी थी। माँ के ऋषिकेश रहते समय भूपति दादा एक बार ढाका से जाकर माँ के समीप कुछ दिन रह आये। क्षितीश दादा भी अपने परिवार के साथ कलकत्ते से माँ के दर्शनों के लिये वहाँ गये थे।

विन्ध्याचल से अखण्डानन्द स्वामीजी का और मेरा ढाका रमनाश्रम में निवास (माघ या फाल्गुन सं. 1991 वि.)

विन्ध्याचल की यज्ञशाला उस बार तैयार नहीं हुई, इस बार वह तैयार की गई। तदनन्तर माँ ने हम लोगों को एक बार ढाका जाने का आदेश दिया। अखण्डानन्दजी से बोली- ''जिन लोगों का यहाँ आना-जाना है, उनमें से तुम्हीं प्रथम संन्यासी हुये। इसके बाद फिर जिसके भाग में बदा रहेगा, होगा और कैसा योगायोग है देखो, रमना आश्रम में भी पहले गिरि सम्प्रदाय के साधु ही रहते थे। तुम भी गिरी सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही हुये हो। तुम्हें कुछ दिन रमना आश्रम में जाकर रहना आवश्यक है।'' वहाँ जाकर किस तरह कहाँ बैठकर साधना करनी होगी, वह भी बतला दिया और कनखल में जो ये मंगलानन्द गिरि महाराज हैं उनके साथ रमना आश्रम का योगायोग है। वे पूर्वजन्म में इसी स्थान पर रहते थे, माँ ने बातचीत के बहाने ही इस प्रकार प्रकाश डाला। हम लोग सम्भवत: माघ या फाल्गुन के महीने में माँ के आदेश से ढाका जाकर रमनाश्रम में रहे।

भोलानाथजी का उत्तर-काशी गमन और वहाँ मन्दिर निर्माण

उधर भोलानाथजी मसूरी से फिर उत्तरकाशी चले गये। कमलाकान्त ढाका चला आया। ढाका से अतुल ब्रह्मचारी वहाँ गया। वहाँ भोलानाथजी एक मन्दिर बना रहे थे। माँ के उस ओर के भक्तों ने ही मन्दिर निर्माण के लिये आर्थिक सहायता की।

इक्कीसवाँ अध्याय

सम्वत् 1992 वि. बैशाख, श्री श्री माँ का जन्मोत्सव (ढाका, कलकत्ता और देहरादून में) – शची बाबू का वृत्तान्त

ढाका में संम्वत् 1992 वि. के वैशाख महीने में माँ का जन्मोत्सव हुआ। हम लोग भी उसमें उपस्थित थे। हमने सुना कि कलकत्ता यतीश गुहा महाशय के मकान में भी शची बाबू आदि ने मिलकर माँ का जन्मोत्सव मनाया है। माँ कलकत्ते में इन्हीं शचीकान्त घोष महाशय के मकान में गई, उनकी मोटर से माँ ने पर्यटन किया, किन्तु उन्होंने माँ के साथ भेंट नहीं की। माँ जिस समय मसूरी में थी उस समय एकाएक माँ के समीप जाने की उनकी इच्छा हुई। वे छुट्टी लेकर माँ के समीप मसूरी पहुँचे। कुछ दिन यहाँ रहे एवं उसी समय माँ के प्रति अत्यन्त अनुरक्त हो गए। अपने जीवन की अनेक घटनायें भी उन्होंने माँ से कही। इन्होंने छोटी उम्र में विदुर होकर भी विवाह नहीं किया था। देहरादून में भी माँ का जन्मोत्सव हुआ।

नवनिर्मित मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर विशाल भक्तजन–सेना के साथ माँ की उत्तरकाशी की यात्रा (आषाढ़ सं. 1992 वि.)

संवत् 1992 वि. के आषाढ़ महीने के अन्तिम सप्ताह में उत्तरकाशी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर जो जाना चाहें उन सबको साथ लेकर जाने के लिये अखण्डानन्दजी के पास चिट्ठी आई। हम लोग चिट्ठी पाते ही रवाना हुये। हमारे साथ प्रभात बाबू और खगेन्द्र भी रवाना हुये। कलकत्ता पहुँचकर हमने सुना कि यतीश दादा के परिवार के प्राय: सभी लोग जा रहे हैं। शची दादा, ज्ञान दादा, नवतरु दादा आदि अनेक लोग कलकत्ते के लोगों की प्रतीक्षा में बैठे रहे। उनके काशी पहुँचने पर इकट्ठे हो सभी ने देहरादून के लिये प्रस्थान किया। स्टेशन पर हरीराम आदि अनेक सज्जन उपस्थित थे। उनके मुँह से माँ मसूरी को रवाना हो गई हैं, सुनकर हम सभी लोग मसूरी को रवाना हो गये। मार्ग में ही माँ के साथ भेंट हो गई। माँ के साथ एक पंजाबी महिला (महारतन) आई थी। हमने सुना वे देहरादून

के डिप्टी बाबू की स्त्री हैं। माँ को मसूरी पहुँचाने के लिए आई हैं। डॉक्टर भार्गव भी माँ के साथ आये थे। ये मसूरी से वापस आ जाने वाले थे। गोपालजी (पण्डित द्वारकानाथ रैना, ये देहरादून के वकील, कश्मीरी ब्राह्मण हैं) माँ के साथ ही उत्तरकाशी तक जाने वाले थे। वहाँ के और भी कई लोग माँ के साथ चले। कलकत्ते से भी बहुत से लोग आये थे। इसलिये डाँडी, कण्डी, खच्चर आदि अनेक सवारियाँ करनी पड़ी। चटगाँव से शशी बाबू और बंकिम बाबू आये थे। केवल एक ही दिन मसूरी ठहरकर माँ ने उत्तरकाशी को प्रस्थान किया। नवनिर्मित मन्दिर में जो सब देवमूर्तियाँ प्रतिष्ठित होने वाली थी एवं पूजा के सब बासन-बर्तन, जो नेपाल दादा ने काशी से भेजे थे, वे भी इसी संग में चले। पर्वतीय ऊँचे-नीचे ऊबड़-खाबड़ मार्ग से इस विशाल सेना के साथ माँ ने उत्तरकाशी की यात्रा की।

श्री श्री माँ का संग होने से सबका महानन्द के साथ पर्वतीय मार्ग में आरोहण और उत्तरकाशी में उपस्थिति

जाते समय सभी को विशेष कष्ट प्रतीत हुआ क्योंकि बहुत से लोग कभी इस तरह चले ही न थे। केवल माँ साथ थी इसी एक आनन्द से सब लोग इतना कष्ट होने पर भी आनन्द का अनुभव करते-करते चले। धीरे-धीरे मार्ग-क्लेश सबको बहुत कुछ सह्यय हो उठा। माँ कुछ आगे बढ़ते ही फिर बैठकर सबके लिये प्रतीक्षा करती रहती। पीछे के सब लोगों के आ पहुँचने पर फिर चलती। कभी डाँडी में, कभी पैदल ही चलती। मार्ग में जगह-जगह पर शशी बाबू ने तरह-तरह के माँ के फोटो खींचे। दल में बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी थे। 5-6 दिन में हम लोग माँ के साथ उत्तरकाशी पहुँचे।

उत्तरकाशी में समारोह के साथ मन्दिर-प्रतिष्ठा (सं. 1992, वि. आषाढ़)

मन्दिर-प्रतिष्ठा के उस समय भी कई दिन बाकी थे। मन्दिर का निर्माण कार्य हो रहा था, भोलानाथजी ही सब देख-भाल कर रहे थे। गत जन्मोत्सव के समय एकाएक योगेश दादा को टेलिग्राम कर माँ के समीप देहरादून बुलाया गया। तदुपरान्त वे उत्तरकाशी भेज दिये गये। वे भी उत्तरकाशी ही थे। लगभग दो वर्ष से उन्होंने भी मौन धारण किया था। योगेश दादा को बुला लेने के बाद कुलदा दादा के ऊपर ही ढाका के अन्नपूर्णा के मन्दिर

की पूजा का भार सौंपा गया। मन्दिर की प्रतिष्ठा का दिन आया। समारोह के साथ मन्दिर में देवादि की प्रतिष्ठा की गई। काली, शिवलिंग, लक्ष्मी, नारायण, गणेश की मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई। साधुओं को भण्डारा दिया गया। माँ के साथ हम लोग जिस धर्मशाला में ठहरे थे, वह एकदम गंगाजी के ऊपर थी। गंगाजी के प्रवाह का इतना शब्द होता कि किसी की बातें सुनने में न आती।

उत्तरकाशी से भोलानाथजी का गंगोत्री गमन

भोलानाथजी जिस स्थान में रहते थे वह भी गंगा के तट पर ही था। वह साधुओं के रहने का एक छोटा-सा दालान है। दो वर्षों से भोलानाथजी वहीं हैं। गर्मी के दिनों में भी गंगाजी के जल में हाथ नहीं डाला जा सकता इतना ठण्डा जल है। उन्होंने जाड़े के दिन भी वहीं काटे। रात-दिन अपने साधन-कृत्य में रहते। खाने-पीने का भी अत्यधिक संयम कर रखा था। वहाँ के बहुत से लोगों की उनके ऊपर खूब श्रद्धा थी। मन्दिर प्रतिष्ठा के बाद ही वे अतुल और कुलगुरु के पुत्र को साथ लेकर गंगोत्री चले गये। मन्दिर-प्रतिष्ठा के अवसर पर कुलगुरु के पुत्र वहाँ गये थे एवं कलकत्ते से यतीश दादा के पुरोहित लक्ष्मी ठाकुर महाशय भी गये थे।

श्री श्री माँ के नेतृत्व में उत्तरकाशी से सबका प्रत्यावर्तन

माँ हम लोगों को साथ लेकर और भी कई एक दिन उत्तरकाशी में ठहरकर मसूरी को रवाना हुई। आने के पहले एक दिन बंगाली साधुओं को भी विविध प्रकार की रसोई बनाकर खिला आई। योगेश दादा के ऊपर मन्दिर की पूजा का भार दे आई। उपेन्द्र बाबू (डॉक्टर) भी साथ गये थे। वे वहीं रह गये। ढाका के निशि बाबू की स्त्री का देहावसान हो गया था, इस कारण कुछ वर्षों के बाद वे काशी चले गये थे। पीछे माँ ने उन्हें देहरादून बुला भेजा। वहाँ से उन्हें साधना करने के लिये रायपुर शिवमन्दिर में रख दिया था। वे भी माँ के साथ उत्तरकाशी गये थे एवं माँ के साथ ही वापस आकर फिर रायपुर ही जाकर रहने लगे। माँ के मुँह से मैंने सुना कि विकास बाबू ने भी संन्यास लेकर 'असीमानन्द' नाम ग्रहण किया है, वे भी माँ के आदेश से रायपुर में ही रहते हैं। माँ सबको लेकर 3-4 दिन में ही मसूरी पहुँची। मार्ग में इस बार किसी को भी विशेष कष्ट नहीं हुआ

क्योंकि बहुत–कुछ कष्ट सहन करने का अभ्यास हो गया था एवं उतरने में कष्ट भी कम ही होता है। सब लोग अत्यन्त आनन्द के साथ मार्ग में चले। बीच–बीच में यतीश दादा, क्षितीश दादा आदि सबने मिलकर कीर्तन आरम्भ किया। माँ की डाँडी आगे चली। पहाड़ में घूम–घूमकर उनकी कीर्तन–ध्वनि पहुँच रही थी। माँ कभी–कभी बहुत आगे बढ़ जाने पर अपनी डाँडी रोककर पीछे वाले सब लोगों के लिये बैठी रहती। सब लोग दूर से ही माँ को बैठी हुई देखकर आनन्द से **'माँ आनन्दमयी की जय'** ध्वनि कर उठते।

लौटती बार भीषण पर्वतीय मार्ग होने पर भी माँ के संग रहने से सबको अपूर्व आनन्दानुभव

राह में खाने–पीने का अत्यन्त कष्ट रहा। किसी का पैर फूल गया था तो किसी के माथे पर वेदना होती थी। किन्तु फिर भी आनन्द की सीमा न थी। कलकत्ते के दल में अनेक लोगों ने कभी पहाड़ देखा तक न था – इस प्रकार चलना तो दूर रहा। फिर भी माँ के साथ चले, इस आनन्द से ही सबका मन विभोर हुआ था। माँ को रास्ते में कहीं कच्चा आम या कच्चा कोहड़ा दीख पड़ता तो किसी के द्वारा संग्रह कर ले चलती। चट्टी में पहुँचकर मुझसे कहती– ''पकाकर सबको दो।'' उस समय जिस अवस्था में खाना–पीना चल रहा था, उसमें उक्त वस्तु को ही खाने के लिये छीना–झपटी होती रहती। इतने अधिक लोग थे, इसलिये सबको तनिक–तनिक–सा मिलता। इस तरह आनन्द लूटते हुये रवाना हो रहे थे। मार्ग में एक चट्टी में पहुँचकर हमें जगह नहीं मिली। सुनने में आया कि एक बारात के बराती टिके हुये हैं। परिचय हुआ, वरपक्षीय सोलन के राजा के (राज्य के अधिकारी वर्ग) और कन्यापक्षीय देहरादून के वकील थे। दोनों ही पक्ष माँ के विशेष रूप से अनुगामी थे। उन लोगों ने आकर माँ की चरण–धूलि ग्रहण की तथा सोलन के राजा का पत्र ज्योतिष दादा को दिया। उन्होंने उस पत्र में उत्तरकाशी के मन्दिर की विशेष सेवा का भार कुछ महीनों के लिये अपने ऊपर लेने की प्रार्थना की थी। उसी समय भोलानाथजी को उत्तरकाशी पत्र लिख दिया गया, जिससे कि वे इस सेवा का उत्तम प्रबन्ध कर आवें। गंगोत्री से लौटते ही भोलानाथजी मसूरी चले आवेंगे, यह पहले से निश्चित था।

श्री श्री माँ का मसूरी होकर देहरादून शुभागमन

माँ सबको साथ लेकर मसूरी आई। दो दिन वहाँ ठहरकर सबको साथ लेकर शहर में घुमा लाई। तदनन्तर सबको लेकर देहरादून आकर मनोहर मन्दिर में ठहरी। गोपालजी और किशनजी का मकान मन्दिर के निकट ही है। वे माँ के साथ उत्तरकाशी गये थे। उन्होंने जरा पहले देहरादून पहुँचकर सबके रहने के लिये सुन्दर व्यवस्था कर दी थी। वहाँ के भक्तों ने इन बंगाली भक्तों का खूब आदर-सत्कार किया। किन्तु माँ के इस चिड़ियाखाने में यह विशेष आनन्द रहा कि सब लोग सबकी बातें नहीं समझ सकते थे। नानाजी को भी हम लोग अपने साथ ही ढाका से ले आये थे। वे भी उत्तरकाशी गए थे।

देहरादून में श्री श्री माँ– मिस शारदा शर्मा, नरसिंह एवं अन्यान्य कतिपय भक्तों का वृत्तान्त– शारदा शर्मा का नारायण के साथ विवाह

इस बार देहरादून आकर लेडी डॉक्टर मिस शारदा शर्मा के साथ मेरा परिचय हुआ। ये मथुरा की रहने वाली हैं, विवाह नहीं किया। अवस्था लगभग 33-34 वर्ष की है। खूब अच्छी सच्चरित्र महिला हैं। हमने माँ का इन पर अत्यधिक स्नेह देखा। पहली बार जब हम लोग आषाढ़ के महीने में मिलिटरी कॉलेज में माँ के दर्शन कर चले गये। उसके 2-1 दिन बाद से ही हरीराम बाबू के साथ वे माँ के दर्शनों के लिये आने लगी। बाद में धीरे-धीरे माँ की अत्यन्त अनुगत हो गई। इनको माँ के समीप आये प्रायः एक ही वर्ष हुआ होगा। सुनने में आया कि पहले ये सुन्दर पोशाक पहन बन-ठनकर रहती थी, किन्तु अब माँ के आदेश से सब छोड़ दिया है, साधारण सादी पौशाक में ही रहती है। माँ ने इनका नारायण के साथ विवाह कर दिया है। ये भी माँ के समीप ऋषिकेश जाकर (छुट्टी लेकर) कुछ दिन रही थी।

डॉक्टर शारदा के विवाह की कथा के सिलसिले में माँ ने कहा था– ''शारदा बहुत अच्छी महिला है। विशुद्ध ब्रह्मचारिणी कहने से जिसका बोध होता है, वही है। अवस्था 32-33 वर्ष की हुई किन्तु एक दिन के लिये भी कुभाव उसके मन में नहीं आया। बहुत ही सरल लड़की है, मेरे साथ भेंट होने के पहले उसका देवी-देवता या धर्म में विशेष अनुराग नहीं दिखता

था।'' किन्तु अन्यान्य गुण सत्यवादिता और कर्त्तव्यनिष्ठा उसमें खूब कूट-कूटकर भरी थी। वे दो बहनें हैं। माँ नहीं है। पिता अभी जीवित हैं। शारदा जब मेरे निकट आती, उस समय शान्ति नाम की एक स्त्री मुझसे अक्सर ही कहती- ''माँ, तुम इसका विवाह करोगी या नहीं?'' मैं उस समय हँसकर कहती- वर की चेष्टा में हूँ। मैंने अनेक बार शारदा से पूछा कि तुम विवाह करोगे या नहीं? किन्तु उसके उत्तर में शारदा कहती- ''माँ मैं क्या कहूँ? यदि कहती हूँ विवाह नहीं करूँगी, बाद में संस्कारवश यदि विवाह हो जाये तब तो मेरी बात मिथ्या हो जायेगी।' फिर कभी-कभी वह स्वयं ही कहती- ''माँ मुझे एक लड़के की लालसा है। बी.ए., एम.ए. पढ़ाऊँगी।' एक दिन शारदा और प्रकाशजी की लड़की मेरे समीप आई। उस समय शान्ति ने पुनः कहा- 'माँ तुम शारदा का विवाह करोगी या नहीं?'' उसकी बात सुनकर मैंने शारदा से पूछा- 'क्या तुम विवाह नहीं करोगी?' इस प्रश्न पर शारदा बोल उठी, ''माँ, तुम सब-कुछ जानती हो, तुम मुझसे जो करने को कहोगी मैं वही करूँगी।' मैंने कहा- ''मैं यदि तुमसे एक मेहतर से विवाह करने को कहूँ तो तुम करोगी?'' शारदा ने कहा- 'तुम जो कहोगी वही करूँगी।' जब मैंने शारदा की बहन से प्रश्न किया कि तुम विवाह करोगी या नहीं, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। अस्तु, मैंने उस दिन शारदा और प्रकाशजी की लड़की को फूल की दो मालायें दी एवं कहा- 'कल जब तुम मेरे पास आओ तब इन फूलों की मालाओं को साथ लेते आना।' शारदा जतन से फूल की माला अपने घर ले गई एवं उसे एक कमरे में ताला बन्द कर रख दिया। प्रकाशजी की लड़की ने भी माला को ले जाकर जतन से ही रखा था, किन्तु उसने ताला नहीं लगाया।

''दूसरे दिन शारदा मेरे समीप आते समय जब ताला खोलकर माला लेने गई तब उसे मालूम हुआ कि कमरे की सभी वस्तुयें ज्यों-की-त्यों हैं, ताला भी बन्द ही है किन्तु केवल माला नहीं है। प्रकाशजी की बड़ी लड़की की माला की भी वही दशा हुई थी। किस तरह वे दोनों मालायें अदृश्य हुई, यह कुछ भी समझ में न आ सका। शारदा मेरे पास आकर बैठी, उसका मुँह उदास था क्योंकि माला खो गई थी। मैंने कुछ कहा नहीं। उसी दिन सवेरे आनन्द चक के मन्दिर का पुजारी जीव के संस्कार के सम्बन्ध में बातचीत कर रहा था। शारदा उस समय वहीं थी, वह

अत्यन्त मनोयोग से सुन रही थी। पुजारी कह रहा था कि यदि जीव का संस्कार शेष रह जाय तो मुक्ति नहीं होती। भोग द्वारा उस संस्कार को समाप्त करने के लिये उसे बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इन सब बातों को सुनकर शारदा विचार करने लगी, इतनी बड़ी भयावह स्थिति है। यदि मेरा विवाह का संस्कार रह जाता है तब तो जीवन भर साधन-भजन करने पर भी उस संस्कार को पूर्ण करने के लिये मुझे जन्म लेना पड़ेगा। शारदा मेरे समीप इन सब बातों को कहने के लिये व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगी। उसी दिन प्रातःकाल प्रकाशजी की स्त्री शान्ति भी मुझे प्रणाम करने आई थी। उसने मुझसे कहा- ''माँ मुझे उत्कट इच्छा हो रही है कि शारदा की चोटी गूँथ दूँ।' मैंने कहा- ''अच्छा तो है गूँथ दो।'' उसने बड़े प्रेम से शारदा की चोटी बाँध दी एवं कपाल के बीचोंबीच माँग काढ़ दी। ऐसी माँग इस देश में विवाहित स्त्रियाँ ही काढ़ती हैं। इतने में प्रकाशजी की माँ एक फूल की माला लेकर आ पहुँची। कभी भी वे उस समय मेरे पास नहीं आती थी। इस तरह विवाह का सम्पूर्ण आयोजन होने लगा। जरा दिन चढ़ने पर, जबकि सब लोग चले गये, शारदा ने मुझे एकान्त में पाकर कहा- 'माँ पुजारीजी कह रहे थे कि जीव का संस्कार भोग हुये बिना मुक्ति नहीं होती। यदि मैं जीवन भर साधन-भजन करूँ तो भी मेरा विवाह-संस्कार यदि शेष रह जाय तो मुझे केवल उक्त संस्कार को पूर्ण करने के लिये जन्म ग्रहण करना पड़ेगा या नहीं?' मैंने कहा- 'वह तो करना ही पड़ेगा।' यह सुनकर शारदा को बड़ा दुःख हुआ। उसके दुःख की निवृत्ति करने के लिये मैंने कहा- 'आ, इस जन्म में ही तेरा नारायण के साथ विवाह कर देती हूँ जिससे तुझे संसार (गृहस्थी) भी करना न पड़ेगा एवं विवाह का संस्कार भी चला जायेगा।'' उसके बाद माँ ने क्या किया यह माँ किसी के सामने प्रकट नहीं करती, शारदा और माँ ही जानती हैं। शारदा को नारायण के साथ विवाह करने के बाद माँ ने शारदा से कहा- ''पहले जाकर शान्ति को प्रणाम कर आ क्योंकि इस विवाह में वही प्रथम निमित्त हुई थी।'' शारदा शान्ति को प्रणाम करने के निमित्त उसके घर गई एवं ज्यों ही शारदा ने प्रणाम किया त्यों ही शान्ति ने कमरे से सिन्दूर लाकर शारदा की माँग भर दी। माँ ने कहा- ''क्यों उसने ऐसा किया यह वह भी नहीं बतला सकेगी, तब तक शारदा के विवाह की बात का उसे

पता नहीं था। मेरे और शारदा के सिवा दूसरा कोई भी नहीं जानता था। इसके बाद विवाह की बात फैलने पर किसी-किसी ने समझा नारायण नाम के एक लड़के से शारदा का विवाह हुआ है और किसी-किसी ने कहा- 'ये नारायण भगवान् हैं। इनमें से किसी-किसी ने मेरे निकट आकर पूछा- ''माँ हम लोगों को शारदा का पति दिखलाओ।'' मैंने कहा- ''देखो जब वर घर आता है तब तुम लोग उसे छिपकर देखने की कितनी चेष्टायें करते हो, उसी तरह यदि शारदा के स्वामी को देखना हो तो साधन-भजन करो अवश्य दर्शन होंगे। वे शारदा के स्वामी, तुम्हारे भी स्वामी हैं। मनुष्य वर तक प्रयत्न किये बिना जब नहीं दिखाई देता, फिर उसे देखने की इच्छा हो तो थोड़ा बहुत कष्ट झेलना ही पड़ेगा, इसमें आश्चर्य क्या।'' तदनन्तर शारदा के विवाह के उपलक्ष्य में सबने मिलकर एक दिन कीर्तन आदि किया और भोजन आदि हुआ।

शारदा के कुमारी-पूजन कृत्य के सम्बन्ध में एक दिन माँ ने कहा- ''देहरादून में एक दिन किसी बात पर शारदा और हरीराम की बहस चल रही थी, साथ ही लक्ष्मी और शंकरानन्द ने उसमें भाग लिया। दूसरे दिन मेरे सामने ही यह बातचीत होती रही। थोड़ी देर बाद सब चुप हो गये। किन्तु मेरा कैसा खयाल हुआ, हरीराम से कहा गया कि तुम कल जाकर शारदा को बुला लाओगे। दो जनों के बीच बहस करते-करते जरा मन-मुटाव हो गया था, इसीलिये हरीराम से कहा गया कि तुम्हीं जाकर शारदा को बुला लाओ। उसने मेरे कथनानुसार वैसा ही किया। लक्ष्मी भी आई। तब मैं मनोहर मन्दिर में रहती थी। कहा गया कि तुम लोगों ने ऐसा तर्क-वितर्क किया है, इसलिये तुम और शारदा कुमारी पूजा करो। लक्ष्मी और शंकरानन्द ने उसमें भाग लिया था, इसलिये लक्ष्मी भी पूजा करेगी और शंकरानन्द सबकी पूजा करेंगे। मेरे कथनानुसार कुमारी-पूजा की व्यवस्था कर तीनों कुमारी-पूजा करेंगे, यह निश्चय हुआ। इधर मन्मथ बाबू का लड़का नरसिंह सवेरे कभी आता न था। वह भी उस दिन पूजा देखने आयेगा या नहीं यों पूछने पर कहा गया कि इच्छा हो तो आ जाय। दूसरे दिन तीनों व्यक्ति पूजा करने बैठे। मेरे मन में कैसा विचार आया कि शारदा कृष्णभावापन्ना है और कराई जा रही है कुमारी-पूजा। अस्तु इतना ही भाव रहा। उसके बाद पूजा समाप्त होने पर मैंने लक्ष्मी से कहा- देवी की पूजा करने पर तो लोक में वरदान मिलता है। तुम भी इस लड़की को पा गई।

मैं तुम्हारी लड़की हूँ। यह कहकर छोटे बच्चे की तरह उसकी गोद में जाकर सो गई। उसके बाद नरसिंह के वहाँ आ पहुँचते ही मैंने उसका हाथ पकड़कर शारदा की गोद के समीप बैठाकर कहा- यह ले अपना एम.ए. पास लड़का। (शारदा ने एक बार कहा था यदि मेरा लड़का हो तो मैं उसे एम.ए. पास कराऊँगी। इस तरह की उसकी इच्छा थी। मेरी उसी समय स्मृति जागी।) इधर इन सब कुमारियों का फोटो लेने की उन लोगों की इच्छा हुई। फोटो खींचा गया। जिस समय शारदा और उसकी कुमारी के बीच में फोटो लेने के लिये मुझे बैठाया गया उस समय मेरा एक अस्वाभाविक भाव जागा। शारदा कृष्णभावापन्न है, कुमारी-पूजा कराई जा रही है। एक यह भाव, दूसरे मैं बच्ची की तरह लक्ष्मी की गोद में सोई थी वह शिशु भाव भी भीतर खेल रहा था, तीसरे नरसिंह पुत्र बनाकर दिया गया था। उसके बचपन का चेहरा भी भीतर खेल रहा था। इन तीनों भावों की क्रीड़ा भीतर चल रही थी। इसी अवस्था में मेरे शरीर की दाहिनी तरफ से न जाने कैसा एक भाव हुआ, एक छोटा बच्चा वा:- इस भाव के साथ-ही-साथ शरीर के अन्दर मानो एक बिजली चमक गई (माँ इस वृतान्त का जभी वर्णन करती- एक बच्चा वा:- तभी माँ के सारे शरीर में न जाने कैसा एक अपूर्व भाव का उद्‌गम होता, मानो सारे शरीर से इस भाव को बतलाना चाहती, भाषा द्वारा माँ के उस प्रकार के भाव को मैं व्यक्त न कर सकूँगी)। मेरे शरीर में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हुआ। मैंने उसी भाव में कुमारी का स्पर्श किया। तदनन्तर ठीक होकर फोटो खींचने के लिये बैठ गई, किन्तु उस समय अस्वाभाविक भाव को सम्हालने से पहले ही फोटो उतारा गया। दूसरे दिन फोटोग्राफर ने कहला भेजा कि यह फोटो खराब हो गया है। मैंने कहा जैसा उतारा हो वैसा ही लाने को कहो, फोटो आया। पहले तो कोई कुछ समझ न सका। पीछे धीरे-धीरे साफ दीख पड़ा कि कुमारी मूर्ति को ढककर एक बालक की मूर्ति उतरी है।

माँ की इस फोटो को देखते ही प्रतीत हो जाता है कि कृष्णभावापन्न शारदा को कुमारी-पूजा कराई है, ऐसा सोच रही थी। इसलिये कुमारी को ढककर बालक (शिशु) की मूर्ति खड़ी हुई। दूसरी बात यह भी देखने में आती है कि माँ का दाहिना अंग दिखाई नहीं देता, कुमारी को छिपाकर बच्चे की मूर्ति खड़ी है। माँ का दाहिना अंग ही कुमारी की ओर हिला था। अतएव माँ का दाहिना अंग दिखाई नहीं देता। माँ का जो एक

अस्वाभाविक भाव हुआ था वह थोड़ा-बहुत उस समय भी विद्यमान था, यह बात फोटो में माँ की हँसी देखकर ही ज्ञात हो जाती है। भावावस्था में अपने शरीर से मूर्ति का प्रकट होना कैसी आश्चर्यजनक घटना है। माँ ने इस घटना का वर्णन करते-करते यह भी कहा कि ''किसी दूसरी जगह से यह मूर्ति आई हो सो बात नहीं है,'' केवल इतना ही कहकर चुप हो गई तथा इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं बोली। इसके पश्चात् माँ ने कहा- ''इस घटना के दूसरे ही दिन लड़की को ज्वर आ गया। मुझे उसी समय प्रतीत हुआ कि एक अस्वाभाविक घटना के कारण ही लड़की को ज्वर आया है। ज्वर बहुत तेज था किन्तु मेरा खयाल हुआ कि कुछ होगा नहीं।'' मैंने कहा- ''माँ, तुम्हारे स्पर्श से लड़की के भीतर ही सम्भव है कृष्ण-मूर्ति प्रकट हुई हो। इसलिये लड़की उस भाव को स्पष्ट नहीं कर सकी, इसलिये लड़की को ज्वर आया है।'' माँ ने कहा- ''इस बात का उसके आत्मीय लोग भी अनुमान न कर सके।'' अस्तु, फोटो की बात भी कोई तनिक भी न जान सका। कुछ दिनों के बाद ढाका से अमूल्य बाबू ने जाकर फोटो देखते-देखते सहसा एक दिन कहा- ''माँ, क्या यह फोटो नरसिंह के बचपन का फोटो तो नहीं है?'' माँ मुस्कराकर बोली- ''आज तक यह बात और किसी ने नहीं कही।'' यह कहकर माँ हँसने लगी।

महारतन को भी मैंने इसी बार देखा। उन्हें भी मैंने माँ की अत्यन्त भक्त पाया। माँ यदि कहीं भी जाती तो ये रोना आरम्भ कर देती। माँ ने शारदा को लक्ष्मी रानी की सहेली बना दिया। प्रकाश बाबू की माँ कौशल्या माँ (वृद्धा) आकर तरह-तरह से माँ को प्यार करने लगी, खिलाने लगी। माँ के देहरादून पहुँचते ही सबने माँ को माला पहनाई, चन्दन लगाया तथा कपूर आदि से माँ की आरती उतारी। मन्मथ बाबू के लड़के नरसिंह को भी मैंने इसी बार पहले-पहल देखा। नरसिंह को भी मैंने माँ का अत्यन्त भक्त देखा। वह एम.ए. पास कर नौकरी की खोज कर रहा था। सदा ही माँ के समीप आता था। माँ ने उसे शारदा का 'धर्मपुत्र' बना दिया था। माँ कहती- ''यह जो धर्म-सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है, यह भी पूर्वजन्म के योगायोग के अनुसार होता जा रहा है।''

देहरादून में श्री श्री माँ और भोलानाथजी, आनन्द-चक में भोलानाथजी का यज्ञ

इस बार मैंने देखा कि बहुत से बंगाली भद्रपुरुषों का भी सपरिवार माँ

के समीप आना-जाना हो रहा है। देहरादून पहुँचकर ही शची बाबू आदि कई लोग छुट्टी समाप्त हो जाने के कारण कलकत्ते को रवाना हो गये। 3-4 दिन के बाद माँ, भोलानाथजी के साथ हुये पूर्व वादे के अनुसार उन्हें लेने मसूरी गई। उसी दिन कलकत्ते के सभी लोग हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला देखने के लिये देहरादून से रवाना हो गये। माँ भोलानाथजी को साथ लेकर दूसरे ही दिन देहरादून आ पहुँची। देहरादून के प्रायः किसी भी भक्त ने भोलानाथजी को न देखा था, इसलिये ज्योतिष दादा उन्हें और माँ को साथ लेकर भक्तों के घर-घर गये। सभी को अत्यन्त आनन्द हुआ। तदुपरान्त आनन्दचक में यज्ञ-मन्दिर में आकर भोलानाथजी ने हवन किया। लगभग एक वर्ष पहले ही इस यज्ञ-मन्दिर की प्रतिष्ठा कर वहाँ माँ का फोटो रखा गया था। सभी भक्त जन आ-जा रहे थे। कोई-कोई भक्त माँ की नियमित रूप से पूजा कर रहे थे। पहले माँ की इस प्रकार की पूजा करते-करते ही वे विचित्र ढंग से समाधिस्थ हो पड़ती, अब वे कुछ भी नहीं बोलती। चुपचाप लेटी अथवा बैठी रहती हैं।

श्री श्री माँ का देहरादून से हरिद्वार गमन

4-5 दिन देहरादून रहकर माँ ने हम लोगों को साथ ले हरिद्वार को प्रस्थान किया। पहले से ही यह निश्चय हो चुका था कि कलकत्ते के लोग वहाँ माँ की प्रतीक्षा करेंगे। माँ के कथनानुसार वे माँ की एक पंजाबी भक्त नानकी बाई की धर्मशाला में टिकनेवाले थे। माँ भी हम लोगों को साथ लेकर उसी धर्मशाला में गई। वहाँ भी माँ ने सब लोगों को साथ लेकर गंगा के किनारे और सड़क पर पर्यटन किया। एक दिन पंजाबी भक्त किशनजी सबको साथ ले ऋषिकेश से आगे एक जगह एक साधु के आश्रम में ले गये। वहाँ सबने स्नान कर खाया-पीया फिर सब लोग हरिद्वार चले आये। इस तरह आनन्द करते हुये कुछ दिन बिताये। तदुपरान्त सब लोग कलकत्ते को रवाना हो गये। नानीजी भी उन्हीं के संग गई।

हरिद्वार से पंजाब की ओर यात्रा, श्री श्री माँ का बैजनाथ में और भोलानाथजी का ज्वालामुखी में अवस्थान

ज्ञान दादा रह गये। कलकत्ते वालों के रवाना होने के 2-1 दिन बाद ही माँ भोलानाथजी, ज्योतिष दादा और अतुल ने पंजाब की ओर प्रस्थान

किया। माँ मुझे और अखण्डानन्दजी को कुछ दिन कनखल रहकर विन्ध्याचल जाने का आदेश दे गई। किस कारण माँ बार-बार इस तरह मुझे छोड़कर जा रही थी, वह माँ ही जानें। माँ के रवाना होने के अनन्तर ही हम लोग कनखल जाकर मंगलानन्द गिरिजी के आश्रम में रहे। ज्ञान दादा भी माँ के साथ गये। कुछ दिनों के बाद ही छुट्टी समाप्त होने के कारण वे कलकत्ता वापस चले गये। ज्योतिष दादा के पत्र से हमें मालूम हुआ कि माँ अमृतसर, कुल्लू, ज्वालामुखी तथा पंजाब के और भी अनेक स्थानों पर भ्रमण कर बैजनाथ गई हैं। वहीं कुछ दिन रहेंगी। भोलानाथजी अतुल को साथ लेकर ज्वालामुखी गये, वे कुछ दिन वहाँ रहकर साधना करेंगे। माँ बैजनाथ पहुँचकर तारानन्द स्वामी के वहाँ ही है।

इस बार उत्तरकाशी से उतरने के बाद सभी लोग माँ से बंगाल की ओर जाने के लिये विशेष अनुरोध कर रहे थे। माँ की इस विषय में विशेष असहमति न थी किन्तु भोलानाथजी राजी नहीं हुये। उन्होंने कुछ दिन और इस ओर रहकर साधना करने के बाद नीचे उतरेंगे कहा। इसलिये फिर जाना नहीं हुआ। तारापीठ का आदेश तीन ही वर्षों के लिये था। तीन वर्षों तक प्रति वर्ष एक दिन के लिये जाना हुआ। इस बार भी दो वर्ष उत्तरकाशी में बिताये। सुनने में आया कि इस बार नीचे उतरने पर पुनः तारापीठ जायेंगे। नारायण के साथ शारदा के विवाह की कथा (जो पहले लिखी जा चुकी है) मोटी-मोटी बाहर ही बाहर जनश्रुति के रूप में हमने सुनी। किन्तु वास्तविक बात माँ और शारदा ही जानती हैं। सर्वसाधारण के निकट वह बात प्रकट नहीं की गई। हम लोग लगभग एक महीना कनखल रहकर विन्ध्याचल चले गये। हमारे विन्ध्याचल चले जाने के कुछ दिन बाद ही माँ हरिद्वार आई।

श्रीमती भ्रमर घोष का वृत्तान्त एवं शिव के साथ उसका विवाह

इधर श्रीमती भ्रमर घोष (रायबहादुर की पोती) उत्तरकाशी जाने के लिये ही प्रस्तुत थी। किन्तु संयोगवश उसका उत्तरकाशी जाना नहीं हुआ। वह बचपन से ही माँ को देख रही है, उसका धार्मिक भाव भी बहुत अच्छा है। कुछ दिनों से ही वह माँ को खूब चिट्ठी-पत्र लिखती एवं उत्तर में माँ के निकट से उसे अनेक उपदेशपूर्ण पत्र मिलते। सब पत्रों को वह एकत्र करके रखती। माँ ने उसे एक बार एक शिवलिंग दिया था। (माँ ने काशी

से कई बार कई एक शिवलिंग मँगाकर अनेकों को बाँटे थे) वह उसी शिवलिंग की पूजा करती है। उसने शिवालय के नमूने की एक आलमारी बनाई है। माँ के आदेश से उसका नाम रखा है 'योगाश्रम'। एम.ए. पास कर उसने माँ के पास समाचार भेजा था। माँ ने उसके उत्तर में लिखा था, "अब इधर का भी एम.ए. पास करना चाहिये।" माँ जब कलकत्ते जाती तब भ्रमर अधिकतर माँ के समीप बैठी रहती, माँ को कीर्तन सुनाती। उसकी कोई वेशभूषा नहीं, बड़ी सादगी से रहती। उत्तरकाशी न जा सकने के कारण उसने माँ को लिखा था, माँ यदि एक जगह स्थिर हो तो मैं आकर कुछ दिन आपके समीप रहूँ। माँ ने बैजनाथ से ही उसको हरिद्वार आकर मिलने को पत्र लिखा। उसके अनुसार वह हरिद्वार सं. 1992 वि. के कुँआर के महीने में आकर माँ के साथ भेंटकर, माँ के साथ ही देहरादून गई।

श्रीमती भ्रमर घोष श्री श्री माँ की बड़ी माँ

इधर शंकरानन्द स्वामी और मनोरमा दीदी भी देहरादून गई। माँ कुछ दिन देहरादून ही रही। ढाका से अमूल्य बाबू सपरिवार माँ के समीप देहरादून जाकर कुछ दिन बिताकर लौट आये। वे पूजा की छुट्टियों में गये थे। भोलानाथजी भी ज्वालामुखी से देहरादून गये। चिन्ताहरण समादूदार महाशय भी सपरिवार देहरादून जाकर माँ के समीप कुछ दिन रहे। मनोरमा दीदी उनके साथ ही वृन्दावन आदि स्थानों पर घूमकर काशी चली आई। शंकरानन्द स्वामी माँ के समीप ही रहे, भ्रमर भी माँ के समीप ही रही। बाद में मैंने सुना, माँ ने भ्रमर का शिव के साथ विवाह किया है। वास्तविक घटना का मुझे पता नहीं है। माँ भ्रमर को खूब प्यार करती एवं बड़ी माँ कहकर पुकारती। कुछ दिन देहरादून रहने के बाद माँ सबको साथ लेकर नीचे उतरी। तारापीठ जाने का निश्चय हुआ। स्थिर हुआ कि वहाँ जाकर कुछ दिन रहना हो सकता है। माँ ने शंकरानन्द स्वामी, अतुल और निशि बाबू को काशी भेज दिया। माँ के साथ भोलानाथजी, ज्योतिष दादा, भ्रमर, हरीराम, लक्ष्मी और शारदा थी (शारदा का नाम सेवा रख छोड़ा था)।

* * *

बाईसवाँ अध्याय

सम्वत् 1992 वि. का अगहन काशी धाम में श्री श्री माँ का विद्वद्वर बाबू भगवानदासजी के साथ परिचय तथा श्रीमद् विशुद्धानन्द स्वामी के साथ श्री श्री माँ की भेंट

माँ देहरादून से उतरकर फैजाबाद, इटावा, सुलतानपुर, इलाहाबाद आदि स्थानों में भक्तों के साग्रह बुलाने पर घूमकर संवत् 1992 वि. के अगहन महीने के अन्त में काशी पहुँची। काशी में माँ पांडे की धर्मशाला में रुकी। मुझे और अखण्डानन्दजी को विन्ध्याचल से काशी जाकर इस धर्मशाला में मिलने के लिये माँ ने पहले ही टेलिग्राम करा दिया था। हमारे काशी जाकर दो दिन उक्त धर्मशाला में रहने के बाद माँ काशी आ पहुँची। काशी में निर्मल बाबू की स्त्री और पुत्र हमारे साथ माँ की प्रतीक्षा में इस धर्मशाला में ही ठहरे थे। देहरादून से हरीराम, शारदा और काशी बाबू की स्त्री (लक्ष्मी रानी) माँ के साथ-साथ आई थी। माँ लगभग चार वर्ष से गृहस्थ के घर नहीं रहती, धर्मशाला या मन्दिर में ही रहती हैं। मैंने माँ की अवस्था स्वाभाविक नहीं देखी। बोलना अस्पष्ट और मुँह सूखा था। सुनने में आया कि फैजाबाद में स्वाभाविक अवस्था में परिवर्तन हो गया था, शरीर भी अशक्त हो गया था। काशी के बाबू भगवानदास महाशय ने, जो वहाँ के एक विख्यात और महान् विद्वान व्यक्ति हैं, माँ के साथ भेंट की और बातचीत कर प्रसन्न हुये। माँ काशी आई हैं, यह खबर पाकर बहुत से लोग माँ के दर्शन करने आये। रात-दिन बेशुमार भीड़ रहती। **गोपी बाबू** एक दिन माँ को अपने गुरु **विशुद्धानन्द स्वामीजी** के आश्रम में ले गये। साथ में हम सभी लोग गये थे। माँ को देखकर वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुये। माँ के कहने पर उन्होंने फूल को स्फटिक बनाकर दिखलाया एवं एक रूमाल में एक गुलाब के फूल की गन्ध प्रकट की। माँ 5-6 दिन काशी रही। एक दिन विश्वनाथ दर्शन को गई। काशी से भ्रमर कलकत्ता चली गई। देहरादून के काशी बाबू के लड़के रज्जू को माँ ने भ्रमर का धर्मपुत्र बना दिया था। उसके साथ ही भ्रमर कलकत्ता चली गई। माँ 5-6 दिन काशी

रहकर तारापीठ को रवाना हुई। हरीराम और लक्ष्मी भी काशी से ही लौट गये। माँ ने काशी की धर्मशाला में सबसे नाम-कीर्तन कराया, स्वयं भी किया। माँ से गोपी बाबू आदि ने जब 2-1 गाने गाने को कहा- तब माँ ने स्वाभाविक मधुर स्वर में नीचे उद्धृत दो गाने गाये।

श्री श्री माँ के मुँह के कुछ गाने

1. ''(आमार) कि नाम कोथाय वा से धाम,
स्थिर नाहि तार, बलि कि करे।
बलिब किआर, आमि नहि कार,
केउ नहे आमार, ए तिन पुरे।।
पिता माता हीना, के छिलो जानि ना,
केह त बले ना, कोथाओ ना सुनि।
पति गुणाधार, कपाले आमार,
श्मशाने मशाने, कि हलो कि जानि।।
ए यातना भुगि, हये गृहत्यागी,
संसार विरागी, फिरी बने-बने।
आनिल से बने, जीवन धारणे,
आछि एकाकिनी, प्रीति समरे।।''

2. ''मा आमारे दया करे, शिशुर मतन करे राख,
शैशवेर सौन्दर्य छेड़े, बड़ होते दिओ ना को।
शास्त्र पढ़े ज्ञानी हते, साध नाई मा आर मने ते,
लुकिये थाकब तोर कोले, डाकते चाई मा शिशुर डाक।
क्षुधा पेले कातर स्वरे, शिशु जेमन मा, मा, करे,
भय पाइले नाहि डरे, पाइले से मायेर लाग।।
एमनि आमार शिशुर धारा, करे राख मा जन्म भरा,
शरीर बाडूक ताय क्षति नाइ, मनटि आमार शिशु राख।''

माँ अक्सर गाने बैठने पर ये दो गाने गाती। एक और गाना भी माँ गाती, गाना यह है -

आराम हलो कि व्याराम। केवल हरि राम दूर्वादल श्याम जटाधारी।
विमाने धराते, सम्मुखे पश्चाते, दक्षिणे वामेते, राम धनुकधारी।।

कोथा गेलो तेज, इन्द्रिय निस्तेज, कफ पित्त आयु हइलो सतेज।
ये मकरध्वजे, नाशिबे से तेजे। कालक्रमे से जे अन्तरे बिसरि।।

सुषुम्ना इड़ा, पिंगला त्रिशिरा, वेगे बहे तारा, राखिते नारि।
कि करि कि करि, किसे प्राण धरि, हइलो दुर्बल, सबला नाड़ि।।

सम्बित आवल्ये, नयन मुदिले, राम बोले प्राण उठे शिहरि।
बटि तार राम, पथ्य तार राम, राम अनुपाने भुवने तरि।।

राम कष्ट रोगे राम काल भोगे, राम बिन कि आर औषध आछे तारि।
भाविले से राम त्रिदोष व्याराम, कत जे आमार बलिते नारि।।

माँ के पिता विपिनबिहारी भट्टाचार्य महाशय वृद्धावस्था में भी खूब सुन्दर गाना गा सकते थे। अन्तिम गाना माँ ने पिता के समीप ही सीखा था। माँ सबको साथ बैठाकर कभी हरिनाम कीर्तन करती थी। तदुपरान्त 'हरे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण'' केवल इस नाम को ही इतने मीठे स्वर में गाती कि सुनते–सुनते सभी का मन थोड़ी देर के लिये स्थिर हो जाता था। भ्रमर के साथ भी माँ ने अनेक बार यह नाम–कीर्तन किया था। भ्रमर भी खूब सुन्दर कीर्तन करती थी। माँ पंजाबियों के साथ और भी कितने ही ढंग से नाम–कीर्तन करती – सभी मधुर लगते। बंगालियों के बीच आकर भी वैसे ही नाम–कीर्तन करती। एक नमूना यहाँ दे रही हूँ–

1 ''भज रे भइया राम गोविन्द हरे,
राम गोविन्द हरे, राम गोविन्द हरे, राम गोविन्द हरे।
भज रे बहिना राम गोविन्द हरे,

जो मुख राम नाहिं सो मुख धूल पड़े,
खोलत गँठरी, भजरे, भइया, राम गोविन्द हरे।।''

2 ''रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम।।
सीताराम जय सीताराम, जय रघुनन्दन जय सीताराम।।

गौरीशंकर सीताराम, ब्रजवासी जय राधेश्याम।
जयतु शिवा शिव जानकी राम। जय रघुनन्दन जय सीताराम।।''

3 ''हरि बोल, हरि बोल, हरि हरि बोल,
केशव माधव गोविन्द बोल।।''

इस तरह के बहुत नाम–कीर्तन करती एवं सबसे करने को कहती। माँ कहती– ''नाम–कीर्तन से स्थान पवित्र होता है, जो नाम–कीर्तन करता है वह तो पवित्र होता ही है जो उसे सुनता है, वह भी पवित्र हो जाता है।''

कीर्तन के समय वीरेन्द्र दादा को अद्भुत दर्शन और अवस्था

एक बार ढाका रमनाश्रम में वीरेन्द्र दादा के मन में संशय उठा कि नाम–कीर्तन से क्या होता है? उसके बाद किसी एक दिन कीर्तन–गृह में खूब कीर्तन हो रहा था। भोलानाथजी भी कीर्तन में खूब रमे थे। उस समय वीरेन्द्र दादा भी कीर्तन के पास खड़े थे, उनके भीतर नाम–कीर्तन भी चल रहा था। एकाएक न जाने कैसे हो गये। एक ज्योति नेत्रों के सामने भासित हो उठी (उन्होंने आँखें बन्द कर रखी थी)। कुछ देर बाद ज्योति के बीच में केवल श्रीकृष्ण का मुख भासित हो उठा। उनके सारे शरीर से पसीना झर–झर गिरने लगा, वे खड़े ही थे। सहसा माँ ने जटू से कहा– ''वीरेन्द्र को जरा हवा करो।'' जटू ने वही किया। कुछ देर बाद वीरेन्द्र दादा स्थिर हुये। किन्तु एक प्रकार का नशे का–सा भाव था। वे जिस समय कमरे से निकलकर मैदान में जा रहे थे, अमूल्य दादा ने उन्हें पुकारा। किन्तु उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया, चले गये। दूसरे दिन उन्होंने कहा था– ''अमूल्य बाबू, आपने जिस समय मुझे पुकारा था उस समय मेरा एक विचित्र नशे का–सा भाव था, इसलिये मैं बोल न सका।

''हरि बोल' ''हरि बोल'' कहने के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति

कीर्तन के बाद वीरेन्द्र दादा कुछ देर मैदान में ठहरकर जब माँ के कुटीर के बरामदे में माँ के पास आये, उस समय माँ ने केवल जरा हँस दिया तथा कहा– ''बाबाजी, आज जो आपने देखा, वह केवल छाया थी।'' दादा स्तब्ध रह गये, उसी दिन अनाथ ने पूछा– ''माँ ''हरि बोलो' न कहकर 'हरि बोल बोलो' क्यों?'' इसके उत्तर में माँ ने कहा– ''हरि बोल कहते–कहते प्रणव आ जाता है।'' यह कहकर माँ ने वीरेन्द्र दादा से कहा– ''तुमने आज जो देखा वह प्रणव की केवल छाया है।''

* * *

तेईसवाँ अध्याय

काशी धाम से श्री श्री माँ का पुनः तारापीठ आगमन

काशी से माँ सब लोगों को साथ लेकर तारापीठ गई। माँ ने हमें भी अपने संग लिया। साथ में मैं, अतुल, नेपाल दादा, अखण्डानन्दजी, ज्योतिष दादा और शंकरानन्दजी गये। तारापीठ में माँ पहले से ही परिचित थी। माँ के तारापीठ में आने की खबर पाकर झुण्ड के झुण्ड लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। माँ तारापीठ जाकर सिद्धाश्रम में रही। हम लोग भी सबके सब वहीं रहे। भोलानाथजी ने वहाँ तारा माँ के मन्दिर के बरामदे में अपना व्याघ्रचर्म बिछाया। वे अधिकतर वहीं रहते। कलकत्ते में खबर पाकर वहाँ के अनेकों भक्त आये। यतीश गुहा महाशय सपरिवार आये, प्राणकुमार बाबू सपरिवार आये, पशुपतिनाथ बाबू की स्त्री, नवतरु दादा, ज्ञानदादा सभी आये। प्राय: प्रतिदिन रामपुरहाट से बैलगाड़ी में बैठकर भक्त लोग नाना स्थानों से माँ के दर्शनों के लिये आते थे। तारापुर में केवल कुछ ही घर पण्डों के हैं और सब श्मशान है। इस श्मशान में आनन्द का बाजार लग गया। इतने अधिक लोगों के समागम से दुकानें भी लग गई। यतीश गुहा महाशय ने एक दिन बड़े समारोह के साथ तारा माई की पूजा की। शची बाबू आये। वे तारा माई के लिये रेशमी वस्त्र और नया बिस्तर ले आये थे। वहाँ भोलानाथजी के पण्डा श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ पण्डा ठाकुर भी माँ के बड़े भक्त हैं। कुछ दिनों के बाद माँ ने मुझे और ज्योतिष दादा को चटगाँव भेज दिया। इसका कारण आगे कह रही हूँ।

संवत् 1992 वि. के पूस के महीने में माँ ने ज्योतिष दादा को चटगाँव भेजा, साथ में मुझे कर दिया। माँ बोली– ''धर्म भाई की सेवा करने जाओ, केवल पिताजी की ही सेवा करनी चाहिये ऐसी तो बात नहीं है, इस रास्ते में आने पर धर्म–सम्बन्ध ही बड़ा है।'' हम लोगों को रवाना होने के एक घण्टा पहले भी यह ज्ञात न था कि आज हमें माँ को छोड़कर जाना होगा। माँ ने स्वयं ही गाड़ी का प्रबन्ध हमारे पण्डेजी (यतीन्द्रनाथजी पण्डाजी) के मार्फत करा रखा था। दिन भर माँ तारा माई के मन्दिर में लेटी रही।

भोलानाथजी ने उस समय अनेक लोगों को दीक्षा दी। सन्ध्या के पहले माँ ने उठकर मन्दिर में हमें बुला लिया। 2-4 बातें की, "मैं जो कहती हूँ उसे किये जाओ, उसमें आपत्ति मत करो, उसे अपने मंगल के लिये ही जानो।" इत्यादि-इत्यादि।

तारापीठ में श्री श्री माँ द्वारा ज्योतिष दादा और मेरे बीच भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापन

तारापीठ से हम लोगों को चटगाँव भेजने के पहले ही यतीश गुहा आदि सपरिवार पूजा करने आये थे, प्राणकुमार बाबू भी सपरिवार आये थे, पशुपति बाबू की स्त्री, शची बाबू के घर की लड़कियाँ, शची बाबू सभी आये थे। अनेक प्रकार की खाने की वस्तुयें लेकर तारा माई के नाटमन्दिर* में जाकर माँ को बैठाकर सबने मिलकर भोग की व्यवस्था की। न जाने क्यों माँ बात-ही-बात में भीषण हँसी हँसते-हँसते फिर रोने लगी। न मालूम कैसे भाव का परिवर्तन हो गया। सभी को डर लगा। बहुत देर बाद फिर माँ की स्वाभाविक अवस्था हुई। तारापीठ में प्रायः दो-तीन बार ऐसी अवस्था हुई है। मन्दिर के भीतर ही माँ ने ज्योतिष दादा का और मेरा हाथ मिलाकर कहा- "तुम दोनों धर्म के भाई-बहन हो, आपस में एक दूसरे की देख-रेख करना।" श्रीयुत् सुरेन्द्र ठाकुरजी की स्त्री श्रीमती संज्ञा देवी भी कुछ दिनों से आकर माँ के समीप थी।

उक्त सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दोनों को साथ-साथ चटगाँव जाने के लिये सहसा माँ का आदेश

जिस समय माँ ने यह धर्मसम्बन्ध स्थापित किया उस समय भी मैं नहीं जानती थी कि क्या आदेश होगा। सन्ध्या के कुछ बाद मन्दिर से उठकर सिद्धाश्रम में जाकर माँ ने मुझे और ज्योतिष दादा को कुछ खाने का आदेश दिया। हम लोगों के खा चुकने पर माँ हम लोगों को तारा माई के नाट-मन्दिर के कीर्तन में ले गई। उस समय वहाँ कलकत्ते के बाबू यतीश गुहा के परिवार के लोग, शची बाबू, सपरिवार प्राणकुमार बाबू, ज्ञान ब्रह्मचारी, नवतरु दादा आदि बहुत से भक्त उपस्थित थे। वे लोग कुछ

---

* देव मन्दिर के सामने का एक विशेष प्रकार का प्रासाद।

दिन पूर्व माँ के दर्शनों के लिये आये थे। महाआनन्द चल रहा था। एकाएक रात्रि में लगभग 8 बजे के समय माँ ने सिद्धाश्रम में (तारापीठ के सिद्धाश्रम में जहाँ माँ रहती थी) लौट आकर आदेश दिया कि अभी ज्योतिष को चटगाँव जाना होगा और साथ में तुझे जाना पड़ेगा। ज्योतिष दादा का शरीर अच्छा न था। उनके साथ जाने वाले आदमियों की कमी न थी, माँ ने मुझे ही साथ जाने का आदेश देकर पिताजी (स्वामी अखण्डानन्दजी) की ओर देखकर कहा– ''तुम्हारी क्या राय है?'' पिताजी ने कहा– ''तुम जो कहो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। लेकिन ज्योतिष का शरीर अस्वस्थ है। इसलिये साथ में यदि कोई एक पुरुष जाता तो उत्तम होता न?'' माँ ने मेरी ओर लक्ष्य कर कहा– ''खुकुनी ही तो पुरुष है, उसे तो बहुत से लोग ब्रह्मचारी दादा कहते हैं। उसे ही जाना पड़ेगा।''

वहाँ पर उपस्थित प्रायः सभी को यह आदेश कुछ अच्छा न लगा। किन्तु माँ दृढ़ता के साथ हँसते–हँसते बैठकर हम लोगों के जाने की व्यवस्था कर रही थी। उसमें दुविधा रत्ती भर भी न थी। रात्रि में 9 बजे के समय हम दोनों जने बैलगाड़ी में बैठकर रवाना हुये। रामपुरहाट से रात की गाड़ी पकड़कर प्रात:काल कलकत्ते पहुँचे। उस दिन कलकत्ते में ही रहे। रात्रि में कलकत्ते के भक्तों ने तारापीठ से वापस आकर हम लोगों के साथ भेंट कर हमें सूचित किया कि माँ 2–1 दिन में ही कलकत्ता आ रही हैं। किन्तु कलकत्ता रहेंगी नहीं, ढाका चली जायेंगी। ढाका 7 दिन रहेंगी, कलकत्ता आकर कुछ समय रहने के बाद फिर तारापीठ चली जायेंगी क्योंकि भोलानाथजी शीघ्र ही तारापीठ लौट जाना चाहते हैं। कारण, शची बाबू तारा माई को पूजा देंगे और भोलानाथजी स्वयं अपने हाथों से श्रीतारा माई की उक्त पूजा करेंगे। हम लोग दूसरे ही दिन चटगाँव को रवाना हो गये।

ढाका में श्री श्री माँ और ज्योतिष दादा तथा मेरा ढाका लौटना

चटगाँव में टेलिग्राम से हमें खबर मिली कि माँ ढाका पहुँच गई हैं। इस बार लगभग 4 वर्षों के बाद माँ ढाका लौटी थी। 7 दिन बाद ही माँ फिर चली जा रही थी। इसीलिये ढाका में माँ के दर्शनों के लिये सभी पागल थे। भीड़ का कोई ठिकाना न था। रात्रि में अनेक महिलायें माँ के पास आश्रम में ही रहती थी। माँ के ढाका आने के छठे दिन मैं और

ज्योतिष दादा चटगाँव से ढाका पहुँचे। दूसरे ही दिन माँ ढाका छोड़कर जाने वाली थी। हमें आश्रम में अथाह भीड़ दिखाई दी, माँ के समीप जाना भी कठिन था। बंगदेश ने माँ को सिन्दूर से लाल कर दिया। चौड़े लाल किनारे की साड़ी पहनाई। माँ के दर्शन कर मानो किसी की आकांक्षा ही नहीं मिट रही थी। माँ बाहर मैदान में जाकर बैठी, आश्रम में जगह नहीं हो रही थी। बार-बार माँ के सिन्दूर से लथपथ मुख और नेत्र धो दिये जा रहे थे। कपड़े-कुर्ती सब सिन्दूर से लाल हो गये थे। माँ को सिन्दूर लगाकर भी किसी को तृप्ति नहीं हो रही थी। सभी में मानो उन्माद व्याप्त था। बाबा भोलानाथजी सबके साथ वार्तालाप कर रहे थे। सबका हृदय मारे आनन्द के फूला न समा रहा था किन्तु कल ही माँ चली जायेंगी, फिर कब लौटेंगी कौन जाने, यह आशंका भी सभी के हृदय में जागरुक थी।

ढाका से पारुलदिया गमन

अस्तु, सोमवार को हम सब लोग ढाका रवाना होकर पारुलदिया गाँव में पहुँचे। क्योंकि रायबहादुर बाबू योगेश घोष के साथ वादा हो चुका था कि जाते समय माँ उनके मकान में होकर जायेंगी एवं वहाँ योगेश बाबू ने श्री राधाकृष्ण का जो मन्दिर बना रखा था उसके संचालन की सुव्यवस्था कर भोलानाथजी अपने हाथों से मूर्ति प्रतिष्ठा कर जायेंगे। योगेश बाबू अत्यन्त वृद्ध थे। वे बहुत दिनों से आशा लगाये बैठे थे कि माँ को एक बार मन्दिर में ले जायेंगे। माँ ने उनकी यह आशा अपूर्ण नहीं रखी। वहाँ जाते समय माँ के दर्शन करने अनेक लोग आये। माँ विक्रमपुर, पारुलदिया गाँव में 2-1 दिन ठहरेगी, सुनकर बहुत से स्त्री-पुरुष पारुलदिया गाँव को चले। बहुत से तो केवल एक वस्त्र से ही चले, क्योंकि बहुत से लोगों का माँ के दर्शन कर घर लौट जाने का निश्चय था, किन्तु ऐसा न कर सके, साथ-ही-साथ चल दिये। लगभग 50-55 व्यक्तियों के साथ पारुलदिया जाना हुआ।

वहाँ रायबहादुर योगेश बाबू के राधाकृष्ण मन्दिर की भोलानाथजी के द्वारा प्रतिष्ठा

वहाँ पर भी योगेश बाबू ने महोत्सव कराया। मन्दिर की मूर्तियों की भोलानाथजी ने अपने हाथों से प्रतिष्ठा की एवं सेवा के लिये ढाका से

कमलाकान्त को ले गये। योगेश बाबू, उनकी स्त्री एवं अन्यान्य अनेक लोगों ने वहाँ भोलानाथजी से दीक्षा ली। माँ ने भोलानाथजी को लक्ष्य कर कहा- ''मेरे गोपाल आज बहुत पूजादि करेंगे, खूब अच्छा काम करते हैं, इसलिये मैं ही कपड़ा पहना देती हूँ।'' यह कहते-कहते जैसे अपने छोटे बच्चे पर माँ स्नेह करती है, कपड़े पहना देती है वैसे ही माँ ने किया। भोलानाथजी ने माँ के पैरों में झुककर प्रणाम किया। माँ ने भी कहा- ''गोपाल तो नारायण है, मैं भी प्रणाम करती हूँ।'' यह कहकर माँ ने भी प्रणाम किया। मन्दिर में विधिपूर्वक मूर्ति-प्रतिष्ठा आदि के बाद रात्रि में कीर्तन आदि हुआ। हम लोग दो दिन पारुलदिया रहकर कलकत्ते को रवाना हुये।

पारुलदिया से कलकत्ता आगमन

माँ कलकत्ते पहुँची। बहुत से भक्त स्टेशन पर उपस्थित थे। हम लोग मेल ट्रेन मिस हो जाने के कारण रात्रि में कलकत्ता आ पहुँचे। माँ के ठहरने के लिये धर्मशाला में जगह ठीक कर रखी थी। बाबू यतीश गुहा के घर किसी ने खाया नहीं था, वहीं भोग बनाया गया था। स्टेशन से मोटर द्वारा माँ को बाबू यतीश गुहा के मकान के दरवाजे पर लेकर जाना हुआ।

बाबू यतीशचन्द्र गुहा महाशय के बालीगंज के मकान में माँ का पदार्पण – क्षितीशचन्द्र गुहा महाशय का वृत्तान्त

हम लोग जानते थे कि माँ लगभग 4 वर्षों से किसी गृहस्थ के मकान में जाती नहीं हैं। किन्तु जब सब कहने लगे- ''माँ, कोई खाता नहीं, भोग की रसोई तैयार है, तुम और किसी में मत जाना, केवल हाल के कमरे में जहाँ हम लोग केवल कीर्तन आदि करते हैं, जो आपके ही चित्रों से सजाया गया है, उस कमरे में जाने में क्या आपत्ति है?'' उस समय माँ ने कुछ विशेष आपत्ति नहीं की और किसी कमरे में न जाकर उसी कमरे में बैठी। बहुत से भक्त वहाँ एकत्र हुये थे। आश्चर्य की बात है माँ के उस घर में पहुँचते ही बिजली की सब बत्तियाँ मन्द पड़ गई। सभी कहने लगे- ''यह क्या हुआ?'' यतीश गुहा तीन भाई हैं। यह परिवार अत्यन्त भक्त परिवार है। वृद्धा माँ है, बहुएँ, बच्चे, लड़के, लड़कियाँ सभी इकट्ठे होकर माँ की आरती करते हैं। कलकत्ते के सभी भक्त इनके मकान में सम्मिलित होकर माँ का नाम-कीर्तन करते हैं। माँ गई। मध्यम भक्त

क्षितीश दादा को उस समय कुछ दिनों से ज्वर आता था। उन्होंने उस कमरे में आकर माँ को प्रणाम किया। क्षितीश दादा में इतनी अधिक भक्ति थी कि माँ का नाम-कीर्तन करते ही नेत्रों से झर-झर आँसू गिरते थे। बालीगंज में उन्होंने अपना मकान बनवाया था। माँ उसी मकान में आई। लगभग रात के 12 बजे भोग आदि हो चुकने के बाद माँ को लेकर हम लोग कालीघाट की धर्मशाला में रात्रि रहने के लिये गये। दूसरे दिन भी कीर्तन के उपलक्ष्य में माँ का उक्त गुहा महाशय के मकान में आना हुआ। माँ उस समय लगभग डेढ़ वर्ष से एक दिन छोड़कर हर तीसरे दिन भोजन करती थी। इसलिये उस दिन माँ को खाना न था। भोलानाथजी और अन्यान्य भक्तों ने उसी मकान में भोजन किया। माँ बैठकर भक्तों के साथ वार्तालाप करती रही। **स्वामी योगानन्द** ने (राँची और अमेरिका में जिनके आश्रम हैं) आकर माँ का फोटो लिया और माँ के साथ बातें की। बीच-बीच में कीर्तनादि भी होता रहा। पास के कमरे में क्षितीश दादा सोये थे। वे अस्वस्थ थे, किन्तु इस कोलाहल से तनिक भी अप्रसन्न नहीं हो रहे थे। बल्कि माँ हमारे घर आई एवं हमें उनके दर्शन प्राप्त हुये इससे उनको महाआनन्द हो रहा था। रोगी की देख-रेख प्राय: कोई भी नहीं कर रहा था, माँ को पाकर मकान के सभी लोग महानन्द में मग्न थे। 3-4 दिन कलकत्ता रहकर जिस दिन तारापीठ जाने का निश्चय था, उसके पहले दिन रात्रि में लगभग 9 बजे तक माँ यतीश दादा आदि के मकान बालीगंज में रही। उस दिन क्षितीश दादा की अवस्था विशेष अच्छी न थी। माँ रात्रि में धर्मशाला आते समय यतीश दादा से कह आई, ''अच्छी तरह से चिकित्सा कराओ, बड़े डॉक्टर को दिखाओ, माँ के (यतीश दादा की माता के) चित्त में किसी प्रकार क्लेश न रहे।'' मैं यह बात सुनकर चौंक पड़ी। भय हुआ कि माँ इस बार फिर क्या कह रही हैं? जो होने वाला है वह तो होगा ही। उस दिन माँ सारी रात धर्मशाला में भ्रमर के साथ (भ्रमर कलकत्ते से कई मास पहले देहरादून माँ के समीप गई थी, काशी तक माँ के साथ ही आकर काशी से कलकत्ता चली आई। तदनन्तर फिर माँ के तारापीठ जाने पर भ्रमर भी वहाँ जाकर माँ के साथ ही थी) बातें कर रही थी, सोने का भाव ही न था। बहुत बार मैंने देखा है कि किसी विपत्ति की सम्भावना के पूर्व माँ का ऐसा भाव होता है। इसलिये ऐसी अवस्था देखकर क्षितीश दादा

के लिये मुझे चिन्ता हो रही थी। रात को 3 बजे खबर मिली कि उनकी अवस्था बहुत खराब है। माँ कह रही थी, ''सब लोग भली-भाँति सेवा करो।'' शंकरानन्द स्वामी और जटू से माँ ने रात्रि को उसी घर में रहने को कहा। प्रात:काल माँ को अन्यान्य घरों में ले गये।

क्षितीश दादा की मृत्यु एवं श्री श्री माँ का पुन: तारापीठ गमन

हम लोग दोपहर के समय जब शची बाबू के घर गये तब समाचार मिला कि क्षितीश दादा की मृत्यु हो गई है। किन्तु माँ स्थिर-धीर रही। मुख में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। सुनने में आया कि क्षितीश दादा की मृत्यु के पहले दिन-रात में एक सफेद बकरा दोतल्ले में चढ़कर क्षितीश दादा की स्त्री की गोद के पास गया, तदनन्तर क्षितीश दादा की चौकी के नीचे बैठ गया। मृत्यु के बाद शव को श्मशान ले जाते समय वह बकरा भी साथ-ही-साथ गया। कहाँ से वह बकरा आया यह किसी को ज्ञात नहीं। यह बात सुनकर माँ ने कहा था- ''पवित्र आत्माओं को लेने के लिये महात्मा लोग इस प्रकार नाना रूप धारण करके आते हैं। देखो किस तरह शरीर के नीचे, चौकी के नीचे जाकर बैठा रहा।'' अपराह्णोत्तर हम लोग विनय बाबू मुन्सिफ के मकान में गये। वहाँ माँ का भोग हुआ। सन्ध्या की गाड़ी से तारापीठ को रवाना होने की बात थी। प्राय: सभी भक्त क्षितीश दादा का संस्कार करने तथा उनके परिवार के लोगों को सान्त्वना देने के लिये उसी मकान में गये थे। कोई-कोई कह रहे थे कि ''माँ आज तारापीठ जाने की जरूरत नहीं है, यह विपत्ति आई है।'' माँ कह रही थी, ''जब पहले से ही निश्चय हो चुका है तब आज ही जाना होगा।'' वही हुआ। आते समय बालीगंज के यतीश दादा आदि के मकान के सामने मोटर में माँ को बैठाकर यतीश दादा की माँ को और क्षितीश दादा की स्त्री तथा उनकी माँ को लेकर सब लोग माँ की मोटर के निकट आये। पुरुष सभी श्मशान गये हुये थे, कैसी भीषण स्थिति थी। माँ ने क्षितीश दादा की माता और स्त्री को बहुत सान्त्वना दी, कहा-''क्षितीश की आत्मा बहुत पवित्र थी।'' क्षितीश दादा की सास इस शोक में भी कह रही थी- ''माँ, उस समय समझ में नहीं आया, किन्तु अब मालूम हो रहा है कि तुम उस महापुरुष को विदा करने ही आई थी।'' माँ ने और भी कई बातें क्षितीश दादा की स्त्री से चुप्पे-चुप्पे कही। यह भी कहा- ''क्षितीश के लिये ही

प्रतीत होता है कि मेरा कमरे में जाना हुआ था। वह तो बाहर आ नहीं सकता था। मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं हूँ, जो हो जाय।'' माँ के घर में पैर रखते ही जो बिजली की बत्तियाँ मन्द पड़ गई थी उस बात का भी क्षितीश दादा की मृत्यु होने पर अनेकों को स्मरण हो गया। उक्त शोकयुक्त घटना को समाप्त कर हम लोग रात्रि की ट्रेन से ही तारापीठ को रवाना हुये। दूसरे दिन तारापीठ पहुँचे।

भ्रमर की छोटी बहन के कठिन रोग के सम्बन्ध में भ्रमर के प्रति माँ का गुप्त उपदेश एवं उसके पालन से उसके रोग की शान्ति

आते समय माँ भ्रमर को कलकत्ते छोड़ आई। भ्रमर की छोटी बहन टुन्टी अधिक बीमार थी। माँ भ्रमर से उसके लिये बहुत से नियम बतलाकर भ्रमर को कुछ दिनों के लिये कलकत्ते में ही रहने के लिये कह आई। माँ किसी की भी बात दूसरे किसी से नहीं कहती हैं। जिसको जिसकी जरूरत होती है, उसके निकट वही कहती है। इसलिये भ्रमर को क्यों छोड़ा गया, क्या नियम बतलाये गये, यह कोई नहीं जानता। आश्चर्य की बात है कि इसके बाद से ही टुन्टी चंगी होने लगी। माँ अपने शरीर का अलवान भी उसे दे आई। यह सब जो हो जाता है, वह माँ इच्छापूर्वक नहीं करती। किसी-किसी के लिये हो जाता है। प्रतीत होता है कि जिसके जिस तरह के कर्म होते हैं, उसके अनुसार ही माँ के शरीर से काम हो जाता है। माँ प्रायः कहती हैं, ''तुम लोग जैसा करा लो।''

(पुनश्च - तारापीठ जाकर वहाँ रहते समय जो-जो घटनायें घटी थी उनका उल्लेख पचीसवें अध्याय में किया गया है। अगले अध्याय (अर्थात् 24वें अध्याय) में पहले की कतिपय घटनायें लिखी गई हैं।)

* * *

चौबीसवाँ अध्याय

कलकत्ते में श्री श्री माँ के भोग के सम्बन्ध में एक आश्चर्यमय घटना

एक बार माँ कलकत्ते में सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्यायजी के मकान में थी। उनकी वृद्धा माता ने विविध प्रकार के भोग बना दिये। वीरेन्द्र दादा उस समय वहीं थे। उस समय का यह नियम था कि भोलानाथजी भोग लगाते, माँ समीप बैठी रहती। उस दिन माँ ने वीरेन्द्र दादा से कहा– ''आज तुम्हीं भोग निवेदन कर दो।'' यह कहकर माँ ऊपर ही बैठी रही। नीचे भोग निवेदन करके वीरेन्द्र दादा ऊपर आकर माँ और भोलानाथजी को भोजन के लिये बुला ले गये। ज्यों ही एक तरकारी, न मालूम किसकी थी, माँ के मुँह में रखी, माँ बोल उठी– ''क्या यह अरबी के पत्तों का शाक है?'' किन्तु उस तरकारी को खाने से उसमें अरबी के पत्तों के शाक की भ्रान्ति होने की कोई सम्भावना न थी। वीरेन्द्र दादा इससे आश्चर्य में पड़ गये। घटना यह हुई कि अनेक तरकारियाँ बनाकर भोग दिया गया था। कलकत्ते के प्राय: सभी घरों में नीचे के कमरों में अधिकतर अन्धकार रहता है, उक्त तरकारी का बर्तन कुछ दूर था। वीरेन्द्र दादा को दूर से भली–भाँति दिखाई नहीं पड़ता इसलिये उन्होंने निवेदन करते समय उसे अरबी का साग समझकर निवेदित किया था। किन्तु माँ जहाँ पर खाने बैठी थी वहाँ प्रकाश की कोई कमी न थी। माँ ने उसी तरकारी को मुँह में रखते ही कहा– ''अरबी के पत्तों का शाक है क्या?'' वीरेन्द्र दादा ने उस समय सबके सामने घटना कही। माँ हँसने लगी।

कलकत्ते में एक लड़के के पूर्व–जन्म के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति

कुछ वर्ष पूर्व की बात है, एक दिन कलकत्ते में माँ राजेन्द्र स्ट्रीट .में श्रीयुत् दीनेश वन्द्योपाध्यायजी के मकान में गई थी। रात्रि में वहीं रहना हुआ। भोर में माँ सोई ही थी। इतने में एक प्रोफेसर, अपने एक छोटे लड़के को लेकर माँ के समीप आये। प्रोफेसर साहब बैठे रहे। बहुत देर बाद उठते ही माँ ने लड़के की ओर देखा। सहसा माँ रो उठी एवं माँ ने यह प्रकट किया कि यह लड़का पूर्व–जन्म में इस शरीर का सहोदर भाई

था। आगे यह भी कहा– उस भाई के मरने के कुछ दिन पहले पिताजी ने गुस्से में आकर उसे पटक दिया था। उस समय उसके हाथ में बहुत चोट लगी थी, कुछ दिनों के बाद ही उसका देहान्त हो गया। इसलिये हाथ चोट लगने के कारण टेढ़ा हो गया, इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इस जन्म में उस चिह्न को लेकर ही इसने जन्म लिया है, यह कहकर लड़के को अपनी ओर खींचकर दिखलाया कि लड़के का एक हाथ थोड़ा टेढ़ा है। इसके बाद ही लड़के के पिता ने कहा– ''जन्म से ही ऐसी हालत है। इसीलिये माँ को दिखाने लाया हूँ।'' माँ ने कहा– ''पूर्वजन्म के चिह्नों के और भी अनेक लक्षण देख रही हूँ। यह चिह्न छूटने वाला तो नहीं है, यदि इसे बचा सको तो भी गनीमत है।'' यह कहकर माँ चुप हो बैठी रही। लड़के के पिता तथा अन्यान्य सभी लोग लड़का जिस प्रकार बचा रहे उसके लिये माँ के निकट कितनी ही प्रार्थनायें करने लगे। किन्तु माँ ने कुछ नहीं कहा। उस मकन से माँ योगेन्द्र रायजी के मकान में गई। लड़के को लेकर पिता माँ के जाने के बाद वहाँ माँ के समीप उपस्थित हो गये। उन्होंने जो बात सुनी थी उससे लड़के के जीवन के सम्बन्ध में उन्हें बड़ी आशंका हो गई थी। इसलिये माँ के मुँह से एक ढाढस की बात लिये बिना वे जाना नहीं चाहते थे। टेढ़ा हाथ दिखाने के लिये पहले आये थे, किन्तु अब कह रहे थे, ''माँ, हाथ भले ही ऐसा ही रहे पर जिस प्रकार भी हो दीर्घजीवी हो जाय। सबके द्वारा मिलकर बहुत अनुनय-विनय करने पर माँ ने अपने हाथ से अंगूठी निकालकर लड़के को दी एवं कह दिया कि यह सदा साथ रहे। तदनन्तर कई एक नियम पालन करने के लिये भी भोलानाथजी ने बतला दिये। उसके बाद वे माँ को प्रणाम कर चले गये। पीछे 2–3 बार और भी उनके साथ भेंट हुई। लड़के को भी मैंने देखा। उसके बाद फिर खबर नहीं मिली।

भक्तगणों के रखे हुये श्री श्री माँ के अनेक नाम

माँ ने बंगाल में आकर भी तारापीठ में बैठकर भक्तों में से अनेकों के नये-नये नाम रखे तथा भक्तों ने भी माँ का एक-एक नाम रखा। पारुलदिया से ही माँ के नाम का यह खेल चल रहा था। माँ का सभी एक-एक नाम रख रहे थे। माँ ने पारुलदिया में श्रीमती भ्रमर से उन्हें लिखवाया। तदुपरान्त तारापीठ में सबने माँ के जो नाम रखे, वह सब नाम माँ ने मुझसे लिखवा

डाले। सम्भवत: 100-150 नाम हुये होंगे। मैंने सुना है कि माँ के बचपन में 5 नाम थे, जैसे- 'दाक्षायणी', 'तीर्थवासिनी', 'गजगंगा', 'विमला' और 'कमला'। नानीजी ने 'निर्मला' नाम रखा था। निर्मला नाम से ही माँ विख्यात थी। बाद में **ज्योतिष दादा** ने **'आनन्दमयी'** नाम रखा। भक्तों में माँ इसी नाम से परिचित हैं।

श्री श्री माँ की शारीरिक क्रिया का परिचय

माँ ने एक बार कहा था- ''मेरी जिस समय शारीरिक क्रियाएँ आरम्भ हुई, एक दिन रीढ़ में एक प्रकार का खट्-खट् शब्द होने लगा, मानो कुछ ऊपर चढ़ रहा हो। उस समय मुझे श्रीपुर की एक घटना की याद आ गई। श्रीपुर में जिस समय मैं अपने जेठजी के मकान में रहती थी, वे स्टेशन मास्टर थे, इसलिये स्टेशन के निकट ही हम लोगों का डेरा था। कभी-कभी गाड़ी के लाइन से हट जाने पर जब वह लाइन पर चढ़ाई जाती उस समय जैसा खट्-खट् शब्द होता, मुझे उसी बात का स्मरण हो उठता।''

साधन और गृहस्थ पदों का श्री श्री माँ द्वारा किया हुआ अर्थ

माँ बहुधा कहती- ''साधन'' के माने मैं तो कहती हूँ, 'स्वधन', इस धन का कभी क्षय नहीं होता। फिर कहती- 'गृहस्थ' का अर्थ है घर जिसके हाथ में हो। पहले के लोग ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करने के बाद गृहस्थ होते थे, इसलिये घर उनको हाथ में नहीं कर सकता था। घर ही उनके हाथ में रहता था। इसीलिये वे गृह-धर्म का पालन कर फिर यथासमय वानप्रस्थ और संन्यास ले सकते थे। घर उन लोगों को बन्धन में नहीं डाल सकता था।

वाजितपुर की एक घटना – भोलानाथजी की अचरज-भरी रोग-निर्मुक्ति

माँ की वाजितपुर की एक घटना की मुझे याद आ गई है। उसे माँ ने अपने मुँह से कहा था। एक दिन वाजितपुर में भोलानाथजी की अवस्था पेट खराब होने के कारण अत्यन्त शोचनीय हो गई थी, उस समय माँ की अवस्था छोटी ही थी। रात्रि में भोलानाथजी बेहोश हो गए। माँ उस समय अकेली थी। माँ भोलानाथजी का सिर गोद में रखकर बैठी एवं माँ के मुँह से ऊँचे स्वर से स्तोत्रादि अपने आप बाहर निकलने लगे एवं उसके साथ-

ही-साथ भोलानाथजी के सिर से पैर तक सारे शरीर को माँ अपने हाथ से झाड़ने लगी (माँ ने कहा- ''हाथ से स्वतः ही ऐसी क्रिया होने लगी'')। कुछ देर बाद ही भोलानाथजी को कुछ आराम हुआ। दूसरे ही दिन माँ ने भोलानाथजी को अन्न पथ्य दिया। पड़ौसियों ने इसका विरोध किया। किन्तु अन्न पथ्य पाते ही भोलानाथजी क्रम से चंगे हो उठे।

श्री श्री माँ कृत गायत्री महामन्त्र का अर्थ

माँ ब्राह्मणों के गायत्री-जप के लिये खूब जोर देती। जो जितना कर सकता है उससे उतना गायत्री-जप करने को कहती। गायत्री का अर्थ एक बार माँ ने मुझे सोलन में समझाया था। वह नीचे उद्घृत किया गया है।

गायत्री का अर्थ

''जो सृष्टि, स्थिति और लय करते हैं, जो विश्वरूप हैं, वे ही हमारी बुद्धि-वृत्ति को प्रेरणा देते हैं, वे ही परब्रह्म अन्तर्यामी हैं उनकी वरणीय ज्योति का मैं ध्यान करता हूँ।''

श्री श्री माँ के रूप और गुणों के सम्बन्ध में कतिपय प्रत्यक्षदर्शियों के मन्तव्य

ढाका में भूदेव बाबू ने माँ का वाजितपुर का वृतान्त कहते-कहते यह भी कहा- ''माँ बहुत अच्छी रसोई बना सकती हैं, यहाँ तक कि चप्, काटलेट आदि बड़े आदमियों का खाना भी उन्होंने बनाकर हम लोगों को खिलाया है। और हैं वे गरीब की लड़की और गरीब ब्राह्मण की ही स्त्री। किन्तु किस प्रकार इन सब खाद्यों को ऐसे उत्कृष्ट बनाती हैं कि मैं बखान नहीं कर सकता।'' मैंने ढाका में माँ की उच्च अवस्था प्रकट होने के उपरान्त ठट्ठा कर कहा- ''आपकी इस प्रकार की अवस्था होने से हमारा खाना नष्ट हुआ।'' माँ ने इस कथन के कुछ दिन बाद मुझे निमन्त्रण देकर अपने हाथ से भाँति-भाँति के पदार्थ बनाकर खिलाये।'' भूदेव बाबू की स्त्री ने कहा- ''वाजितपुर में माँ के रूप की बड़ी ख्याति थी। उस समय माँ ऐसी अत्यन्त सुन्दरी थी कि यदि घाट में जाती तो घाट उज्ज्वल हो उठता।'' इसी कारण बहुत से लोग माँ को **रांगा दीदी** कहते। बचपन से ही यह देखने में आता है कि माँ को सभी लोग स्नेहभरी दृष्टि से देखते थे और बाह्य दृष्टि से यदि देखा जाय तो उसका कोई कारण न था। माँ की अनुपम

सुन्दरता और आनन्दमयी मूर्ति ही सम्भवत: उसका कारण था। अनेक लोग माँ को **'खुशी की माँ'** कहते थे।

काशी की एक घटना

काशी में एक बार एक घटना घटी। माँ सोई हुई थी, उन्होंने देखा एक मूर्ति आकर निर्मल बाबू की स्त्री से सोना माँग रही है। माँ ने (यह सोना माँगने का मतलब देश की जनश्रुति के अनुसार माँ ने लड़का माँगना कहा) उसे लौटा दिया एवं जाने का मार्ग भी बतला दिया। बाद में माँ ने उस रास्ते का समाचार लेने को कहा। ज्ञात हुआ कि उस रास्ते में दो आदमी शीतला होने के कारण मर गये हैं। पर उस समय शहर में शीतला का कोई प्रकोप न था। माँ ने कहा- रोग की मूर्ति साफ दिखाई देती है।

माँ सब घटनाओं को दूर से ही जान जाती हैं, इस सम्बन्ध में दो-एक उदाहरण-

श्री श्री माँ के अन्तर्यामित्व और सर्वदर्शित्व के उदाहरण दूसरे कतिपय वृत्तान्त

शाहबाग में एक बार दुर्गापूजा के समय नानाजी और माखन (श्री श्री माँ के पिता और भाई) शाहबाग में माँ के समीप थे। नानीजी विद्याकूट थी। माँ ने एक दिन माखन से कहा- "पिताजी और तुम शीघ्र घर जाओ, माँ तुम लोगों के लिये अत्यन्त व्याकुल हुई हैं। मैंने देखा-"माँ तुलसी में दीया जला रही हैं, माँ के नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं।" इसके बाद ही माखन और नानाजी घर चले गये और माँ की उपर्युक्त बात उनसे कही। इस पर नानीजी ने कहा- "सचमुच पूजा में तुम लोगों के न आने से मेरे मन में अत्यन्त कष्ट और चिन्ता हो रही थी। तुलसी तले दीपक जलाने के लिये जाकर मन बहुत खराब होने से एक दिन आँसू निकल आये थे।

ढाका की घटना (सं. 1992 वि. अगहन) अधूरी बात पूरी करने का आदेश

और एक बार जिस समय सं. 1992 वि. के अगहन महीने में माँ ढाका गई उस समय माँ ढाका से आने के पहले दिन लोगों की भीड़ के बीच आश्रम में बैठी थी। मैं और ज्योतिष दादा उसी दिन चटगाँव से आये थे। मैं मैदान में बैठकर अमूल्य दादा आदि के निकट माँ की बातें कर

रही थी। इसके बीच में नगेन्द्र ने मुझे बुला लिया इस कारण उस समय जो माँ की बातें कर रही थी वह पूरी न हो पाई। मेरे चले जाने के कारण अमूल्य दादा आदि भी उठ गये। कुछ देर बाद माँ के समीप जाने पर माँ ने मुझसे कहा– ''तू कथा कह रही थी पूरी नहीं हुई, जा पूरी कर आ।'' मैं अचम्भे में पड़ गई। मैं मैदान में कथा कह रही थी एवं वह पूरी नहीं हुई, यह माँ ने कैसे जाना। ऐसी घटनाओं का होना कोई नई बात नहीं है। माँ की दृष्टि से मानो कुछ भी अगोचर नहीं, इसके मुझे अनेक प्रमाण मिले हैं। फिर भी यह लीला नित्य ही नूतन प्रतीत होती। इसलिये उससे नित्य ही हमें आनन्द मिलता और आश्चर्य भी होता है। मैंने बाहर जाकर देखा परन्तु उस समय वहाँ कोई न था। दूसरे दिन अमूल्य दादा से यह बात मैंने कही। अमूल्य दादा ने इस पर कहा– ''हमारी माँ केवल अन्तर्यामी नहीं हैं, वे विश्वतश्चक्षु भी हैं।''

भवगत् कृपा और कर्मफल के सम्बन्ध में तर्क–वितर्क पर घटना

फिर एक दिन कृपा और कर्मफल के विषय में हम लोगों में चर्चा चली। उस समय प्रायः ही इस विषय को लेकर हम लोगों में वैमत्य और बहस होती थी। वह माँ के सानिध्य में ही होती। किन्तु उस समय एक दिन मैंने देखा कि माँ सबके बीच बैठकर कर्मफल की बात स्वयं उठाकर कह रही हैं, ''जिसका जिस तरह का कर्म रहता है वह उसी तरह का फल पाता है। भगवान् की कृपा भी कर्मफल का ही अनुसरण करती है।'' उस समय मैं बोली– ''यदि ऐसा है तो कुछ लोग कहते हैं कि कृपा के बिना कुछ भी नहीं होता। यदि कृपा स्वीकार करें तो इसका मतलब हुआ कि भगवान् का पक्षपातित्व दोष स्वीकार किया।'' माँ ने उत्तर दिया– ''कर्मफल से ही सब कुछ होता है यह बात कहनी ही पड़ेगी। जिसका जैसा कर्म होगा वह वैसा ही फल पावेगा। फिर भी साधक की एक ऐसी अवस्था आती है कि जिस समय वह भगवान् की कृपा का अनुभव करता है। उसी समय वह कहता कि कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। किन्तु वास्तव में उसके निज के कर्मफल ने ही उसे उस कृपा का अधिकारी बनाया।'' हम लोग समझ गये कि माँ मन–ही–मन सोचकर हमारी बहस का अन्त कर रही हैं।

पच्चीसवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का तारापीठ में पुनः आगमन (23वें अध्याय का शेषांश देखें)

तारापीठ में दक्षिणेश्वर आद्यापीठ की विमला माँ और आनन्द भाई माँ के समीप पहले दो बार आये थे। आद्यापीठ में ही माँ के साथ उनकी पहले-पहल भेंट हुई थी। शची बाबू उनको साथ लेकर तारापीठ माँ के पास गये थे। कुछ दिन बाद फिर कलकत्ते से शची बाबू आदि अनेक लोग आये। मंगलवार को या शनिवार को, ठीक स्मरण नहीं है, शची बाबू तारा माँ की पूजा करने वाले थे। किन्तु पूजा हुई नहीं। बाद में की जायेगी, यह निश्चय हुआ। कारण यह हुआ कि शची बाबू उसी दिन चले जा रहे थे। माँ ने इतने में कहा- "देखो, तुम्हीं लोग कहते हो कि काली, तारा ये बड़े भयंकर देवता हैं, जिस दिन पूजा करने का निश्चय किया है उस दिन पूजा न करना ठीक नहीं है। यदि किसी विशेष कारणवश न कर सको तो कम-से-कम मन-ही-मन उस दिन कुछ करना चाहिये। यह तो देखो जिस दिन पूजा करने का निश्चय किया था उस दिन पूजा नहीं की गई। इससे हमारे क्षितीश ने शरीर छोड़ दिया। दूसरा दिन स्थिर किया पर वह भी नहीं सधा।" यह कहकर माँ ने ज्योतिष दादा से कहा- "कैंची ले आओ तो। मेरे सिर के एक गुच्छे बाल काटो। उन बालों को इस पीपल के पेड़ के नीचे (माँ उस समय सिद्धाश्रम के समीप विशाल पीपल के पेड़ के नीचे ही बैठी थी) जमीन खोदकर जमीन में गाड़ दो।" वही किया गया। माँ बोली- "इस समय मैं मर गई हूँ, मुझे जिस-जिस ने छुआ है चलो सब मिलकर 'जीवित पुष्करिणी' में (तारापीठ में जीवित पुष्करिणी का बड़ा इतिहास है। वामाक्षेपा की जीवनी में मिलता है।) स्नान करके जीवित होती हूँ।" सबको लेकर फिर कमरे में नहीं गई, धुले कपड़े तक किसी को छूने नहीं दिये, सब लोग सम्मिलित होकर पुष्करिणी में स्नान कर आये। शचि बाबू कोट, पैंट पहनकर कलकत्ता जाने के लिये तैयार हुये थे, वे भी सब कपड़ों के साथ ही डुबकी लगा बैठे। जहाँ पर माँ के सिर के बाल गाड़े गये थे, स्वामी अखण्डानन्दजी ने उस जगह पर एक वेदी बनवाकर उस पर माँ के

चरण-चिह्न स्थापित कर दिये। वहाँ प्रतिदिन दीपक जलाने तथा फूल चढ़ाने का प्रबन्ध कर दिया।

श्री श्री माँ के तारापीठ निवासकाल में तारापीठ की उन्नति

तारापीठ में माँ भोर में उठकर प्राय: नित्य ही ज्योतिष दादा को साथ लेकर मैदान में घूम आती। जिस दिन खाना न रहता उस दिन तो 8-9 बजे से सन्ध्या के पहले तक मैदान में घूमती, तदनन्तर माँ का नाम सुनकर निकटवर्ती सब गाँवों के लोग दर्शन करने आने लगे उससे सदा भीड़ लगी ही रहती। मानो नित्य ही मेला रहता। नई-नई दुकानें लगी और खूब चलने लगी। इस तारापीठ में माँ और भोलानाथजी लगभग 7-8 वर्ष पहिले से ही आ रहे हैं। भोलानाथजी को यह स्थान अत्यन्त प्रिय है। वहाँ उनको अति उत्तम अवस्था हुई थी (उसका अन्यत्र उल्लेख किया गया है)। पहले यहाँ दुकान, व्यापार आदि कुछ भी न था। माँ के आने के बाद धीरे-धीरे मन्दिर का, गाँव और तालाब का बहुत कुछ संस्कार हो रहा है। यह अनेक जगह देखने में आया है कि माँ के जाने के बाद से ही पुराने मन्दिरों को जीर्णोद्धार हुआ (श्रद्धेय प्रमथनाथ वसु महाशय कहते हैं कि प्रतीत होता है माँ के जन्म ग्रहण का यह भी एक उद्देश्य है कि जो विशिष्ट-विशिष्ट तीर्थ-स्थान और मन्दिर लुप्तप्राय हो गये हैं उनका पुन: जीर्णोद्धार करना)। किसान कहते कि एक बार अनावृष्टि के समय माँ के यहाँ आने से खूब वृष्टि हुई थी। इस बार मैदान में माँ को घूमती देखकर उनके मन में खूब आनन्द हुआ। माँ मैदान ही मैदान चाहे जितनी ही दूर तक जाती वहीं 'किसानों की माँ' को देखते ही हिन्दू-मुसलमानों की भीड़ लग जाती।

चन्द्रग्रहण के दिन श्री श्री माँ के दर्शनार्थ जनता की अपार भीड़

इस बार एक दिन चन्द्र-ग्रहण पड़ा। बहुत से लोग तारा माई के दर्शनों के लिये आये। किन्तु सभी के मुख से सुनाई दे रहा था कि ग्रहण के कारण कभी भी तारापीठ में इतनी भीड़ नहीं हुई है। आज ढाका की माँ को देखने के लिये ही इतनी दूर से हम सब लोग आये हैं। दरवाजे बन्द कर नहीं रखे जा रहे थे। दर्शनों के लिये ऐसी अधीरता थी। केवल दर्शन करेंगे-एक बार देखेंगे। बाहर खड़े होकर सब मुख की ओर देखते थे।

फूलों के साज–सामान से श्रीकृष्ण वेश में और श्रीरामचन्द्र के वेश में श्री श्री माँ

कभी–कभी वहाँ एक गृहस्थ माँ को फूल के साज से कृष्ण रूप में सजा देते। हाथ में फूल की बंशी, सारे शरीर पर फूलों के गहने, माँ भी बाँकी हो बैठकर भाव में विभोर रहती। किसी–किसी दिन फूल की मालाओं से ही जटा बनाकर माँ के सिर पर रखकर राम के रूप में सजाते, हाथ में फूल के धनुष–बाण रहते, कितना सुन्दर वह दृश्य होता।

तारापीठ की एक घटना

तारापीठ में एक दिन माघ के महीने में रात्रि को लगभग 10 बजे सड़क पर श्री माँ घूम रही थी। एकाएक जीवित पुष्करिणी में जाकर कूद पड़ी। अलवान, गरम कुर्ती सब पहने ही तैरने लगी। ज्योतिष दादा कुछ दूरी पर खड़े थे। ज्योतिष एकाएक शब्द सुनकर देखते हैं तो यह तमाशा। थोड़ी देर बाद माँ ने बाहर निकलकर मुझे (मैं सिद्धाश्रम में माँ के लिये भोजन बना रही थी) बाहर से भीगे कपड़ों में खड़ी हो पुकारा ''खुकुनी''। मैं दौड़कर गई। मुझे देखकर हँसकर कहने लगी– ''मैंने सोचा सब कुर्ती–कपड़ों के साथ जल में उतरने से कैसा लगता है और जल बुला रहा था, मैं जल के समीप ही जा रही थी, कुछ छोड़कर गई नहीं, सब कुछ लेकर ही जल से चिपट गई।'' यह कहकर हँसने लगी। हम लोगों ने झटपट कपड़े बदलाकर कुछ खिलाया। उस दिन रात भर सुस्थिर नहीं हुई।

तारापीठ में घटी एक अन्य घटना

तारापीठ में और एक दिन रात में लगभग 10 बजे सबको सिद्धाश्रम में बैठाकर भोलानाथजी के पास माँ मन्दिर में गई। कह गई– ''यदि मैं आज रात को न आऊँ तो कोई ढूँढने के लिये बाहर न निकलना। जिस समय होगा, मैं आ जाऊँगी।'' किन्तु सारी रात बीत गई माँ लौटी नहीं। हम लोग बैठे–बैठे सोच रहे थे कि माँ सम्भव है मन्दिर में ही हों। किन्तु कदाचित् वहाँ न हों, यह सोचकर चिन्ता हो रही थी। माँ ने मना कर रखा था, अतएव कोई खोजने नहीं जा सका था। सवेरे माँ आ पहुँची। माँ की जबानी हमें ज्ञात हुआ कि इस अँधेरी जाड़े की रात में अकेले ही माँ

ने सारे मैदान में भ्रमण किया, बाद में मस्जिद में जाकर रात खुलने तक वहाँ बैठी रही, प्रातःकाल उठकर चली आई। क्यों ऐसा किया, यह हममें से किसी को भी ज्ञात नहीं है।

तारापीठ में घटी दूसरी एक घटना–माणिक का अकस्मात् आगमन एवं माँ के मुँह से उसकी पूर्व सूचना

तारापीठ रहते समय और एक घटना घटी। माणिक नाम का एक लड़का माँ का बड़ा भक्त था। वह काशी में नौकरी करता था। तारापीठ में जिस समय विभिन्न गाँवों से झुण्ड के झुण्ड नर-नारी माँ के दर्शन करने के लिये आने लगे, उनमें एक महिला को देखकर माँ ने हम लोगों से कहा– ''देखो, इस स्त्री का चेहरा माणिक की माँ के चेहरे से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, क्या नहीं मिलता?'' इस कथन के बाद साँझ के समय घूमने जाकर एक जगह बैठी और फिर बोली– ''माणिक यदि आज आ जाता तो इस महिला को माणिक की माँ बना देती।'' दूसरे ही दिन उस महिला के चले जाने की बात थी। माणिक के आने की कोई सम्भावना न थी। उसी दिन रात खुलते समय माणिक अकस्मात् आ पहुँचा। इस घटना से सभी को आश्चर्य हुआ। माणिक की माँ कुछ दिन पहले मर चुकी थी।

तारापीठ में यज्ञकुण्ड निर्माण तथा उसमें यज्ञारम्भ (संवत् 1992 वि. पौष संक्रान्ति)

कभी-कभी माँ सबको पुकारकर किसी को माँ कहकर, किसी को खाने को देकर, किसी का बच्चे की तरह नया नाम रखकर बहार करती थी। एकाएक एक दिन एक लड़के के यज्ञोपवीत का दिन देखना था, माँ ने कहा– ''हमारे लिये भी एक यज्ञोपवीत का दिन देखो।'' उसके बाद फिर बोली– ''एक विवाह का दिन भी देखो।'' यतीन्द्र पण्डाजी ने दिन देखा। फिर सुनने में आया कि तारा माई के मन्दिर के सामने एक यज्ञकुण्ड बनाया जायेगा एवं उसमें हवन आरम्भ होगा। माँ के आदेशानुसार सब प्रबन्ध हो रहा था। माँ के सभी काम आश्चर्यजनक ढंग से ठीक-ठीक ही हो जाते हैं। इसी बीच में भोलानाथजी एक बार कलकत्ता जाकर कीर्तनादि करके गुहा-परिवार को कुछ सान्त्वना दे आये थे। आते ही वे फिर कलकत्ते के भक्तों को साथ लेकर गंगासागर स्नान के लिये चले गये। साथ में विराजमोहिनी

दीदी और स्वामी अखण्डानन्दजी को भी ले गये। ज्योतिष दादा के घर से एक चिट्ठी आई कि उनका एक बार घर आना आवश्यक है। माँ ने कहा- ''आज ही तुम्हें जाना होगा और तुम्हारी एक बार पुरी जाने की इच्छा हुई थी, सब पूर्ण कर आना।'' ज्योतिष दादा ने कहा- ''अखण्डानन्दजी, भोलानाथजी कोई यहाँ नहीं हैं, शीघ्र ही यज्ञ आरम्भ होगा, इस समय मैं नहीं जाऊँगा।'' किन्तु सुनता कौन है? माँ ने कहा- ''कुछ रुकेगा नहीं, सब हो जायेगा।'' वही हुआ। रात्रि में ज्योतिष दादा को और साथ में यतीन्द्र पण्डाजी के लड़के श्याम को माँ ने भेज दिया। माँ का कोई काम रुकता नहीं, ठीक समय पर यज्ञ आरम्भ हुआ (सन् 1935 पौष संक्रान्ति सं. 1992 वि.)। यहाँ माँ के हाथ में फूल की बंशी देकर एक दिन माँ को कृष्ण रूप में सजाया गया था, माँ ने वही बंशी पुरी में श्रीजगन्नाथजी के हाथ में रखकर फिर वापस ले आने को कहकर ज्योतिष दादा के हाथ में दी।

उक्त यज्ञ-कुण्ड के सामने एक छोटे से पक्के मकान का निर्माण - श्री श्री माँ की अद्भुत कार्य-प्रणाली और कार्य-समाधान

उस समय सुनने में आया कि यहीं पर मरणी का (मरणी का वृतान्त पहले लिखा जा चुका है) विवाह तथा मेरा उपनंयन होगा। माँ ने यज्ञ-कुण्ड के सामने ही एक छोटा-सा पक्का मकान बनाने का आदेश दिया। माँ ने कहा- ''यज्ञोपवीत होने पर तुम रह सकोगी।'' उसी समय मिस्त्रियों ने आकर काम आरम्भ कर दिया। माँ का सब-कुछ अद्भुत होता है। जो काम करेंगी उसमें विलम्ब कदापि न हो सकेगा। विशेष पहले भी कुछ नहीं कहेंगी। जो सामने आ जाय उसके अनुसार सब व्यवस्था होती है। आश्चर्य की बात है कि सब सांगोपांग हो भी जाता है जैसा कि होना चाहिये। सम्भवत: ठीक-ठाक न भी हो, किन्तु निश्चय जानो कि उपस्थित के अनुसार माँ के काम के समय सब-कुछ हाजिर हो जाता है। एक बार नहीं अनेक बार ऐसी घटना मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। पूर्व निश्चित दिन में माँ ने हवन कराया एवं देखते-देखते पक्का मकान भी बन गया।*

---

* पहले किसी प्रकार का प्रबन्ध न रहने पर भी माँ का काम भली-भाँति हो जाता है। यह बात मरणी के विवाह के समय भी देखने में आई। एक तो श्मशान के मध्य तारा माई के मन्दिर में विवाह हुआ, वहाँ कुछेक पण्डों के घरों के सिवा और कोई भी नहीं। विवाह होने वाला था,

गंगासागर स्नान के उपरान्त भोलानाथजी का तारापीठ लौटना

कुछ दिन बाद भोलानाथजी गंगासागर स्नान करके लौट आये। पिताजी को यज्ञोपवीत का साज-सामान खरीदने के लिये कलकत्ते छोड़ आये। ज्योतिष दादा भी कुछ दिनों बाद आ पहुँचे। उपनयन के कुछ दिन पूर्व ही एक दिन मैदान में जाकर माँ ने वन-भोजन किया। गरीब देश था, प्रसाद बहुत लोगों ने पाया।

तारापीठ के मैदान में वन-भोजन और बेरोक-टोक प्रसाद वितरण

वीरेन्द्र महाराज तथा अन्यान्य कई एक लड़के भिक्षा माँगकर बहुत-सा सामान लाये थे। खाने के बाद ही खूब वृष्टि हुई -इतनी कि सिद्धाश्रम में रहना कठिन हो गया। माँ ने मैदान से आकर शिव-मन्दिर में आश्रय लिया। मैं और भ्रमर दोनों माँ के साथ शिव-मन्दिर में रही। दो-एक दिन के बाद ही एकाएक ज्योतिष दादा की छाती में श्वास-कष्ट होने के कारण मरणान्त दशा हुई। माँ की कृपा से बच गये। बहुत दिनों तक खाट पर पड़े रहे।

मरणी भोलानाथजी की दत्तक पुत्री

मरणी को भोलानाथजी ने दत्तक पुत्री के रूप में ग्रहण किया था।

किन्तु स्त्रियों का मंगलाचार करने वाली स्त्री हम लोगों में कोई भी न थी। आत्मीम-कुटुम्ब की जो स्त्रियाँ आई थी उनमें कोई विधवा थी, कोई वृद्धा इत्यादि। विवाह के पहले दिन विक्रमपुर की ही दो सधवा स्त्रियाँ अकस्मात् आ पहुँची। हम लोगों के साथ उनकी रिश्तेदारी है सही, किन्तु माँ के समीप वे पहले कभी भी नहीं आई थी और मैं भी नाना स्थानों में घूमती-फिरती हूँ, इसलिए मेरे साथ भी उनकी बहुत दिनों से भेंट-मुलाकात न थी। उसी समय वे तारापीठ में एकाएक आ पहुँची। तारापीठ में वे इसी बार पहले-पहल आई थी। मरणी को उन्होंने कभी देखा तक न था। किन्तु मरणी के विवाह में उन दो बहनों ने ही सब स्त्री-व्यवहार किया। एक देश की होने के कारण मरणी के सब लौकिक आचार उन्हें ज्ञात थे। इस तरह से उन्होंने काम किया था कि मालूम होता था मानों वे अपने घर में विवाह-कार्य के लिए ही आई हों। एक दिन रहकर ही वे चली जायेंगी ऐसा निश्चय था। किन्तु विवाह के सब-काम करके प्राय: लड़की और जामाता के साथ ही साथ वे विदा हुई। मानों वे यही काम करने आई हों। माँ को भी एक दिन रसोई बनाकर खिला गई। माँ ने हँसकर कहा, "देखो, तुम लोगों के विवाह में स्त्रियों का मंगलाचार करने वाली स्त्रियाँ न थी। ठीक समय पर माइयाँ आकर उपस्थित हुई।" यह कहकर हँसने लगी। मरणी का पालन आश्रम में ही हुआ था, उसके विवाह का काम भी अपरिचिताएँ आकर कर गई। माँ के इसी तरह सब काम हो जाते हैं। कोई अंग अपूर्ण नहीं रहता।

क्योंकि मरणी के पिता तथा माता से मरणी का जिसके साथ विवाह करने के लिये कहकर माँ ने निश्चय कर रखा था (कुलदा दादा के लड़के के साथ) वे एक ही गोत्र के थे। पहले भी यह चर्चा उठी थी, किन्तु माँ बोली– ''जिसके साथ जिसका निश्चित है, वह होगा ही।'' अतएव भोलानाथजी दत्तक कन्या के रूप में ग्रहण कर कन्यादान करें, यह निश्चय हुआ। क्योंकि ऐसा होने पर वर और कन्या की समानगोत्रता नहीं रहेगी। इस विवाह के अवसर पर मरणी के पिता, दादी, मटरी बुआ, ढाकुरिया से फूफाजी (कालीप्रसन्न कुशारीजी), बुआजी, नानाजी, माखन (श्री श्री माँ के भाई) आदि सब लोग उपस्थित हुये। भक्त भी अनेक आये। बहुत पहले 'उमा महेश्वर व्रत' का वादा बुआजी ने माँ के साथ कर रखा था। यहाँ वह व्रत बुआजी ने किया। भोलानाथजी ने व्रत कराया। विराट् व्रत है, व्रत में आनन्द भी खूब आया।

पहले एक भक्त के लड़के का उपनयन हुआ। बाद में सौर 19 माघ को मेरा और मरणी का यज्ञोपवीत हुआ। भोलानाथजी मरणी के तथा श्रीयुत् दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य मेरे गुरु बने। लड़कियों का उपनयन विशेषत: देखने में नहीं आता। आज अनेक वर्षों से ही माँ का यह खयाल चल रहा था।

मेरा और मरणी का उपनयन (सं. 1992 वि. माघ 19 सौर)

माँ का यह जो उपनयन का भाव जगा था, उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। आज उसे माँ ने पूर्ण किया। उस समय श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय (इनकम टैक्स कमिश्नर, कलकत्ता) महाशय के पुत्र 'पंचू' और कन्या 'ननी' माँ के दर्शन करने तारापीठ आए थे। यज्ञोपवीत के बाद पंचू ने माँ का और हमारा फोटो (चलचित्र) लिया। चित्र बहुत सुन्दर उतरा था।

मरणी का विवाह (सं. 1992 वि. माघ 24 सौर)

सौर 24 माघ को मरणी का विवाह हुआ। वर दो दिन पहले ही आ पहुँचा था। वह भी आश्रम के लड़के के समान ही था, इसलिये खूब ही आनन्द का विवाह हुआ। भोलानाथजी ने कन्यादान किया। विवाह के समय आसपास के गाँवों के बहुत से लोगों के एकत्र होने से बहुत लोगों का जमाव हो गया था। मरणी को भोलानाथजी बहुत प्यार करते थे। इसलिये

दान करते ही रोने लगे। विवाह के दूसरे ही दिन रात्रि को कन्या जामाता के साथ आत्मीय, इष्ट-मित्र प्राय: सभी चले गये। प्रतिदिन होम करने का आदेश देकर कन्या और जामाता के साथ यहाँ के होम की अग्नि दे दी गई। यहाँ पर माँ ने जो यज्ञ आरम्भ कराया था, उस यज्ञ के मध्य में ही उपनयन के कार्य आदि हुये। फिर मुझसे उपनयन के बाद माँ ने कहा- ''यह यज्ञोपवीत जो दिया गया है यह खेल की बात नहीं है, तुम्हें आदर्श ब्रह्मचारिणी होना चाहिए। मरणी का तो विवाह हो गया है। तुम खाना-पीना सब-कुछ उपनयन के समय जैसा कर रही हो वैसा ही सदा करना।'' (बहुत दिनों तक मेरा नमक, चीनी तक खाना बन्द करा दिया था।) सुहाग-रात कलकत्ता फूफाजी के मकान में होगी, यह निश्चय हुआ। 25 माघ को वे चले गये।

श्री श्री माँ का तारापीठ त्याग (सं. 1992 वि. माघ 26 सौर)

26 सौर माघ की रात्रि में ही लगभग 15-20 बैलगाड़ियाँ भरकर भक्तों के साथ माँ ने भी तारापीठ छोड़ा। चाँदनी रात थी और था गाँव का निर्जन मार्ग। रात्रि में नौ बजे के बाद रवाना होकर लगभग 1-1.30 बजे के समय रामपुरहाट स्टेशन पहुँचे। इस गहरी रात में माँ के साथ भक्तों की यात्रा अत्यन्त ही मनोहर हुई थी। उस पर हारमोनियम लेकर बैलगाड़ी पर भ्रमर ने नाम-कीर्तन आरम्भ किया। अन्यान्य भक्त भी साथ-साथ नाम-कीर्तन करने लगे। गाँव वाले उस समय निद्रादेवी की गोद में सो रहे थे, चाँदनी सारे मैदान में छिटकी थी। माँ के साथ सुर मिलाकर भक्तों का सुमधुर नाम-कीर्तन चल रहा था। मैदान के बीच बैलगाड़ियाँ धीरे-धीरे चल रही थी। सभी आनन्द में विभोर होकर नाम-कीर्तन कर रहे थे। हम लोग रामपुर-हाट स्टेशन पहुँचे। रात्रि में लगभग 2 बजे की गाड़ी से श्रीरामपुर जाने का निश्चय हुआ।

* * *

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रीरामुपर के गौरांग मन्दिर में श्री श्री माँ

दूसरे दिन सवेरे श्रीरामपुर पहुँचे। सभी भक्त इकट्ठे होकर माँ को गौरांग के मन्दिर में ले गये। वहीं माँ को रहने का स्थान दिया गया। पहले गोवर्धन गोसाईं आदि के घर में रहने का प्रबन्ध हुआ था। (ये लोग भी माँ के पुराने भक्त हैं।) किन्तु माँ गृहस्थ के घर नहीं जाती, इस कारण गौरांग के मन्दिर में माँ को लाये। खूब कीर्तन और भोगादि हुये। यहाँ के भक्तों में गोवर्धन गोसाईं, सुचारु बाबू, त्रिगुणा बाबू आदि के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं। ये लोग सदा ही माँ की सेवा में तत्पर रहते थे। यहाँ भी भोलानाथजी से कई लोगों ने मन्त्र-दीक्षा ली।

नवद्वीप में श्री श्री माँ

दूसरे दिन हम लोग नवद्वीप को रवाना हुये। वहाँ गिरीन्द्र डॉक्टर के भतीजे के साथ माँ के भाई माखन का बन्धुत्व स्थापित हुआ। गिरिन्द्र बाबू का भतीजा उससे भेंट करने आया था। नवद्वीप में शची बाबू बहुत-से अपने आत्मीय जनों के साथ माँ को ले गए। नवद्वीप में माँ ने आने के दिन सबके साथ गंगा स्नान किया। शचीबाबू की विधवा बहन के सिर के बाल बड़े सुन्दर थे, इतने लम्बे बाल विशेष नहीं दिखाई देते। माँ ने स्नान करके बाहर निकलकर उन बालों को अपने गले में लपेटकर कहा- "अब मेरी खाँसी घट जायेगी। यह मेरा गरम कपड़ा है।" इन बालों की एक लर काटकर कमरे में बाँधकर रखने के लिये माँ ने शचीबाबू से कह दिया।

बरहमपुर तथा टाटानगर में श्री श्री माँ

माँ नवद्वीप के बरहमपुर (श्रीयुत् अवनी शर्माजी की कातर पुकार पर) गई। वहाँ माँ को ले जाने के लिये उन्होंने तारापीठ में बहुत दिनों तक प्रतीक्षा की थी। हम लोग भी साथ गये। बरहमपुर रहते समय मुर्शिदाबाद आदि स्थानों में घूम आये। बरहमपुर 5-7 दिन रहकर टाटानगर जमशेदपुर जाना हुआ। वहाँ भी माँ के शुभागमन के लिये 3-4 वर्षों से वहाँ के

भक्तगण अत्यन्त अनुनय-विनय कर रहे थे। कुछ लोग माँ को बुलाने के लिये तारापीठ भी गये थे। वहाँ के काली-मन्दिर में माँ के रहने की व्यवस्था की गई। बहुत से भक्त घर छोड़कर वहीं अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे। कीर्तनादि में भी खूब आनन्द आया था। माँ के साथ लगभग 8-9 व्यक्ति थे। वहाँ के भक्त यथाशक्ति आदर-सत्कार करने में प्रयत्नशील रहे। वहाँ भी लगभग 19-20 व्यक्तियों ने भोलानाथ से मन्त्र दीक्षा ली।

विन्ध्याचल जाते समय मार्ग में हावड़ा स्टेशन पर श्री श्री माँ और वहाँ भक्तजनों की अपार भीड़

टाटानगर में 5-7 दिन रहकर माँ सब लोगों को साथ लेकर विन्ध्याचल के लिये रवाना हुई। मार्ग में हावड़ा स्टेशन पर माँ 2-1 घन्टा रही। भक्त लोग स्टेशन पर माँ के भोजन के लिये विविध पदार्थ लेकर उपस्थित हुये। उन्होंने अत्यन्त आग्रह के साथ माँ को खिलाया, भोलानाथजी को खिलाया, भक्तों के लिये खाना दिया। सभी ने माँ से 2-1 दिन कलकत्ते में रहकर जाने के लिये अनुरोध किया, किन्तु माँ राजी नहीं हुई। माँ ने हँसते हुये सबसे कहा- ''इस समय यहाँ रहना नहीं होगा।'' यतीश गुहा आदि के घर पर विपत्ति आने के बाद फिर माँ के साथ यतीश दादा की भेंट नहीं हुई। कुछ हद तक तो सांसारिक झंझटों में उलझे रहने के कारण और कुछ अंश में रीस से वे फिर माँ के समीप नहीं गये। उस दिन स्टेशन पर भी वे नहीं आये। उनकी माँ, क्षितीश दादा की बहू, यतीश दादा की बहू एवं घर की लड़कियाँ सब आई थी। माँ ने उनसे सान्त्वनापूर्ण वचन कहे। किन्तु इतनी अधिक भीड़ थी कि कुछ अधिक कहने-सुनने का अवसर नहीं मिला। प्राणकुमार बाबू भी सपरिवार आये थे। कलकत्ते के प्रायः सभी भक्त आये थे, केवल यतीश दादा (गुहा) उस समय भी नहीं आये।

हावड़ा स्टेशन पर यतीश दादा का विशेष आदर

गाड़ी छूटने के कुछ पहले यतीश दादा (गुहा) ने आकर कहा- ''क्षितीश के लड़कों को परीक्षा के लिये भेज आया हूँ। घर पर और तो कोई है नहीं।'' माँ के ऊपर अधिक रीस थी। गंभीर भाव से एक बार प्रणाम करके दूर खड़े रहे। भीड़ इतनी अधिक थी कि माँ भी विशेष ध्यान न दे सकी। इस बीच में माँ चारों ओर दृष्टि डालकर बोली- ''यतीश कहाँ है? उसे

बुलाओ।'' मैंने बुला लिया। माँ बोली– ''ज्योतिष (राय) तो तुम्हारा भाई है। उसके पास सदा चिट्ठी भेजना।'' इस आदर से वे फिर रह नहीं सके। दौड़ते हुये आकर उन्होंने माँ के चरणों में माथा टेक दिया। आँखों से झर–झर आँसू गिरने लगे। सारी रीस मानो आँसुओं से घुलकर न मालूम कहाँ बह गई। उसी समय गाड़ी ने छूटने की सीटी दी। सब लोग गाड़ी से उतर गए। सब लोग रोने लगे, सोचने लगे कि फिर न मालूम कब माँ के दर्शन होंगे। माँ के मुँह की ओर सबकी दृष्टि लगी थी। उन सब दृष्टियों से कैसी निराली व्याकुलता टपक रही थी। माँ भी सबकी ओर निहार रही थी, वह दृष्टि करुणापूर्ण थी।

विन्ध्याचल आश्रम में आगमन

गाड़ी छूट गई। माँ लेट गई। इतने अधिक भक्तों के कातर क्रन्दन से माँ के हृदय पर भी आघात पहुँचा या नहीं, कौन जाने? बाहर से तो वे धीर–स्थिर रही, काठिन्य और कोमलता का एक जगह समावेश का क्या अपूर्व दृश्य था। ऐसा अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। बहुत से लोगों ने माँ से जिज्ञासा की– ''माँ हम तुम्हें इतना प्यार करते हैं और क्या तुम जरा भी प्यार नहीं करती?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया – ''मैं प्यार करती हूँ इसीलिये तो तुम प्यार करते हो। मैं जितना प्यार करती हूँ तुम लोग मुझे उसका एक कण भी प्यार नहीं करते। वह तो तुम लोग जानते नहीं।'' तीन दिन बाद हम लोग विन्ध्याचल आश्रम में आ पहुँचे।

विन्ध्याचल निवास का वृत्तान्त

हम लोग विन्ध्याचल आते समय रास्ते में बेतिया के गिरीन्द्र डॉक्टर के मकान में हो आये। वहाँ पर भी उन्होंने एक मन्दिर के सामने तम्बू तानकर माँ के रहने के लिये स्थान बनाया था। हम लोग दो दिन वहाँ रहे। इस बार माँ विन्ध्याचल में कुछ दिन रही। प्रात: प्रतिदिन भोर में माँ पहाड़ पर घूमने के लिये निकल जाती। खाने के दिन घूमकर आने के बाद कुछ खाती। यदि खाना न होता तो ऊपर की कोठरी में लेटी रहती या बैठकर भक्तजनों के साथ वार्तालाप करती। यहाँ माँ के साथ, भोलानाथजी, मैं, अखण्डानन्दजी, ज्योतिष दादा, शंकरानन्द, भ्रमर, विराजमोहिनी दीदी और मौसीजी (माँ की ममेरी बहन) ये सब रहे। देहरादून से माँ के वहाँ आने

के लिये चिट्ठी आई थी, उन्होंने माँ के लिये आश्रम बनवाया था, माँ के वहाँ पहुँचने पर उसकी प्रतिष्ठा होने वाली थी।

विन्ध्याचल आश्रम में यज्ञशाला की प्रतिष्ठा (वि.सम्वत् 1992, फाल्गुन होली पूर्णिमा के दिन)

विन्ध्याचल में लगभग डेढ़ वर्ष से माँ के आदेशानुसार स्वामी अखण्डानन्दजी ने एक यज्ञशाला का निर्माण करा रखा था। उसके भीतर माँ के आदेशानुसार ही एक वृहत्काय कुण्ड का भी निर्माण कराया था। इतने दिनों तक वह बन्द थी, क्योंकि माँ ने कहा था– ''तुम्हारा यह काम अवशिष्ट है, तुम यज्ञशाला तैयार कर रखो, जब यज्ञ आरम्भ होने का अवसर आवेगा तब आरम्भ होगा। वैसा ही किया गया। इस समय माँ ने उसी यज्ञ का आयोजन करने को कहा। काशी से 8–10 पण्डित बुलाये गये। एक लक्ष गायत्री मन्त्र से आहुतियाँ पड़ने वाली थी। तारापीठ के उपनयन के होम की अग्नि जटू (एक भक्त) के द्वारा टेलिग्राम करके मँगाई गई। वही अग्नि वहाँ स्थापित की गई। सन् 1936 ई. संवत् 1992 वि. के फाल्गुन की होली पूर्णिमा को विन्ध्याचल में यज्ञ आरम्भ हुआ। तदनन्तर भोलानाथजी और अन्यान्य ब्राह्मणों ने मिलकर 5 दिन हवन किया। आहुतियों के साथ-साथ गायत्री जप करने के लिये माँ ने भक्तों को भी नियुक्त किया। डॉ. उपेन्द्र बाबू, नेपाल दादा आदि ने इस काम का भार अपने ऊपर लिया। एक लक्ष आहुतियों की पूर्ति हुई। अग्नि-रक्षा की व्यवस्था की गई। काशी से एक ब्राह्मण बुलाये गये। वे गृहत्यागी ब्रह्मचारी की तरह रहते थे। उन्हीं को अग्नि रक्षा का भार सौंपा गया। उनका नाम अनंगमोहन भट्टाचार्य था। प्रतिदिन आहुति देने का प्रबन्ध किया गया।

जिस समय विन्ध्याचल में यह यज्ञ हो रहा था उस समय एक दिन माँ ने उक्त आश्रम की छत से सटे हुये सबसे ऊपर के कमरे में बैठकर निम्नलिखित संगीत की स्वयं ही रचना करते हुये अपने स्वाभाविक अतीव सुमधुर कण्ठ से अपने मन से अपने आप उसे गाया था। उसे सुनने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था वे पुलकित, विस्मित और मुग्ध हुये थे। गाना ये है–

श्री श्री माँ का स्वविरचित संगीत –

जीवरे भाग्ये, अवैराग्ये परम पद मिलिबे ना रे ।
(ताई) करो सार एक वैराग्य, विवेक, परिहरि वासना रे।।

वैराग्येर मात्रा कत, बूझबि काजे ह'ले रत,
तखन देख्बि अविरत, कोन् दिके तोर मन टाने रे।।

सँपे तारे सब कर्म, आचर मानव धर्म,
(तुमि) नित्य निर्विकार ब्रह्म, चिन्त चित्ते बारे बारे ।।

बाहिर ह'ते डाकि मन, हृदे राख अनुक्षण,
(करि) ब्रह्मभेलाय आरोहण, तरह भव सागरे ।।

ह'ले अहंकार हत, सब द्वन्द्व निवारित,
देख्बि स्वभाव हबे स्थित, ज्ञेय सत्य परात्परे।।''

विन्ध्याचल में श्री श्री माँ के निकट श्रीयुत् महेशचन्द्र भट्टाचार्य

श्रद्धेय श्रीयुत् महेशचन्द्र भट्टाचार्य महाशय ने उक्त आश्रम के समीप में ही मकान बनाया है। वे माँ के पास आते। माँ ने उनको भी एक वर्ष तक कोई एक नियम पालन करने के लिये कहा एवं विन्ध्याचल स्थित अपने मकान के सामने एक पंचवटी बनाकर 24 घण्टों में अधिक नहीं तो थोड़ी देर के लिये ही पंचवटी के निकट बैठने का उन्हें आदेश दे दिया। मिर्जापुर से अनेक लोग आते थे। अभय बाबू, गोपाली बाबू आदि कई एक लोग सपरिवार भोलानाथजी के समीप वहाँ दीक्षित हुये।

विन्ध्याचल में गेरुवा परिधान से युक्त क्षेत्र बाबू

क्षेत्र बाबू नामक एक भद्र पुरुष गेरुवा वस्त्र पहनकर आये। संसार की अत्यन्त अशान्ति से विरक्त होकर उन्होंने गेरुवा वस्त्र धारण किया था। माँ ने उनसे कहा– ''गेरुवा वस्त्र पहनना खिलवाड़ नहीं है। तुम्हारे मन की जो अवस्था है, उसके अनुसार गेरुवा वस्त्र त्यागकर सादे कपड़े पहनना ही अच्छा है। खूब सत् आचरण से रहो। जप, तप आदि करो, बाद में जैसा होगा देखा जायेगा।'' वैसा ही हुआ। उन्होंने गेरुवा वस्त्र छोड़कर सादे कपड़े पहने और भोलानाथजी के निकट दीक्षा ली। (अनन्तर क्षेत्र बाबू का मन अपने घर के लिये व्याकुल हो उठा इसलिये वे गृहस्थी में लौट गये। यह सुनकर

माँ ने हँसते–हँसते कहा था– "देखो, गत बार ही मैं उसके गेरुवा वस्त्र छुड़ा गई थी। सब लोग गेरुवा पहनाते हैं और मैं गेरुवा छुड़ाती हूँ।") क्षेत्र बाबू इसी आश्रम में रहेंगे यह निश्चय हुआ। उन्होंने भिक्षान्न द्वारा जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न किया। जो अग्नि–रक्षा कर रहे थे वे मौनी थे, इसलिये आवश्यकता पड़ने पर क्षेत्र बाबू उनकी सहायता करेंगे यह तय हुआ। स्वामी तुरियानन्द, क्षेत्र बाबू जिन्होंने अग्नि रक्षा का भार लिया था (अनंगमोहन भट्टाचार्य) इन तीन जनों को आश्रम में रखकर माँ और भोलानाथजी हम लोगों को साथ लेकर चित्रकूट को रवाना हुये। भ्रमर यहीं से कलकत्ता चली गई। विन्ध्याचल में ही कलकत्ते से शची बाबू के भाई की बहू आदि ने आकर भोलानाथजी के निकट दीक्षा ली। उसके बाद विन्ध्याचल में ही यतीश गुहा, शची बाबू, प्राणकुमार बाबू आदि एक दिन के लिये आकर माँ के दर्शन कर गये। हमारे साथ मिर्जापुर से कुलदा बाबू और श्रद्धानन्द स्वामी चित्रकूट चले।

* * *

सत्ताईसवाँ अध्याय

इलाहाबाद, चित्रकूट और आगरा गमन

हम लोग इलाहाबाद गये वहाँ जाकर काली-मन्दिर में रहे। वहाँ के हाईकोर्ट के वकील श्रीयुत् जितेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी ने माँ के लिये सब प्रबन्ध कर रखा था। एक दिन वहाँ रहकर माँ चित्रकूट गई। दो-दिन चित्रकूट के विविध स्थानों में घूमीं। तीसरे दिन वहाँ से फिर इलाहाबाद आकर दो दिन वहाँ रहकर आगरा को रवाना हुई। वहाँ हम लोग सन्ध्या के समय पहुँचे। वहाँ के प्रोफेसर श्रीयुत् वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय माँ के पुराने भक्त हैं। उन्हीं ने माँ के लिये सारा प्रबन्ध कर रखा था। आगरा में भी माँ काली-मन्दिर में ही ठहरी। काली-मन्दिर में ही माँ के रहने का स्थान ठीक किया था। चैत्र का महीना था, गर्मी बहुत अधिक थी। वृष्टि होने के कारण कुछ ठण्डा हुआ। धीरे-धीरे माँ के आने का समाचार पाकर अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये आने लगे। माँ के साथ वार्तालाप कर बहुत लोग अत्यन्त आनन्दित हुये। एक दिन सब लोग माँ को एक बगीचे में ले गये। माँ वहीं रही। कॉलेज के लड़के, बहुत से प्रोफेसर वहाँ माँ के दर्शन करने आये। बातचीत हुई। सन्ध्या के समय माँ काली-मन्दिर में न जाने कैसे आई। सबके अनुरोध से प्राय: 8-9 दिन वहाँ रहना हुआ।

मथुरा, वृन्दावन और जयपुर गमन

आगरे से माँ मथुरा गई। तदनन्तर वे वृन्दावन गई। 3-4 दिन वृन्दावन में रही। वहाँ वर्धमान राजा का एक मन्दिर और उसके साथ एक धर्मशाला के सदृश घर है। माँ हम लोगों को लेकर वृन्दावन में वहीं ठहरी थी, वहाँ के मैनेजर वीरेन्द्र दादा के मित्र थे। उन्होंने माँ का खूब आदर किया। परिचय होने पर विदित हुआ कि वे काक्स बाजार के दीनबन्धु बाबू के आत्मीय हैं। वृन्दावन में साधुओं के बहुत आश्रम हैं। माँ को लेकर भक्त लोग साधुओं के आश्रमों में घुमने गए। भले-बुरे सभी जगह हैं, किन्हीं साधुओं के व्यवहार से भक्त बहुत प्रसन्न हुये, किसी-किसी साधु के व्यवहार से भक्त लोग प्रसन्न न हो सके। माँ के निकट तो सभी अच्छे हैं। वृन्दावन से

हम लोग माँ के साथ जयपुर गये। वहाँ **गोविन्दजी का मन्दिर** और अन्यान्य स्थान देखे। एक दिन वहाँ रहकर हमने दिल्ली के लिये प्रस्थान किया।

दिल्ली और देहरादून गमन

दिल्ली में भी माँ के बहुत भक्त हैं। एक कश्मीरी वृद्धा ने कलकत्ते से आकर तारापीठ से ही माँ का साथ पकड़ा था एवं माँ के साथ-साथ चल रही थी। हम सब लोग उसे 'नानी' के नाम से पुकारते थे। माँ के साथ पहले देहरादून में उसका परिचय हुआ था। देहरादून के वकील श्रीयुत् द्वारकानाथ रैना की वे दादी हैं। दिल्ली में उनके लड़के की बड़ी भारी दुकान है। उन्हीं ने सब प्रबन्ध किया। दो दिन दिल्ली रहकर हम लोग देहरादून को रवाना हुये। दूसरे दिन सवेरे हम देहरादून पहुँचे।

देहरादून में अवस्थान

देहरादून के भक्त (श्रीयुत् हरिराम जोशी, श्रीयुत् द्वारकानाथ रैना आदि) स्टेशन से माँ को कृष्णाश्रम ले गये। किसी भद्र पुरुष ने अपने गुरु के लिये यह स्थान बनाया था। माँ देहरादून रहते समय कभी-कभी यहाँ आकर रहती थी। कुछ दिन माँ कृष्णाश्रम में रही। देहरादून के सब भक्त धीरे-धीरे आकर भेंट कर रहे थे। माँ के पुराने भक्त श्रीयुत् निशिकान्त मित्र माँ के आदेश से देहरादून गये थे। माँ ने उन्हें देहरादून के निकट रायपुर में रहने की आज्ञा दी थी। नीचे उतरते समय वे भी माँ के साथ ही आये थे। इतने दिनों तक वे माँ के साथ थे। विन्ध्याचल में भी मौसीजी* के बीमार होने के कारण माँ निशि बाबू और विराजमोहिनी दीदी को (वे भी उस समय घर-गृहस्थी का त्यागकर माँ के साथ-साथ रहती थी। वे विधवा थी) मौसीजी के पास रख गई थी और कह गई थी कि मौसीजी के रोगमुक्त हो जाने पर उन्हें काशी विश्वनाथजी के दर्शन करवाकर वे रायपुर** (देहरादून) जाकर रहें।

---

* माँ की ममेरी बहन। वे घर-गृहस्थी का त्यागकर माँ के ही साथ आ गई थी। वे बालविधवा थी। माँ ने विन्ध्याचल में ही निशि बाबू, विराजमोहिनी दीदी, मौसीजी, नानीजी, जटू और काशी के निर्मल बाबू की स्त्री का माथा मुंड़ाकर उन्हें पीला वस्त्र पहना दिया था।

** माँ ढाका से रवाना होकर 10 महीने रायपुर में ही रही। भोलानाथजी यहाँ बैठकर जप-तप करते। यहाँ शिव-मन्दिर में माँ रहती। यहाँ सभी लोग माँ और भोलानाथजी के प्रति खूब श्रद्धा-भक्ति करते हैं। माँ कभी-कभी यहाँ निर्जन में तपस्या आदि करने के लिए किसी-किसी को भेज देती हैं।

माँ देहरादून आ गई हैं यह खबर पाकर वे भी कृष्णाश्रम में आकर माँ के दर्शन कर गये। अन्यान्य रायपुर के भक्त, स्वामी असीमानन्द आदि सभी आये। कुछ दिन माँ शान्त भाव से ही रही।

एक रात के लिये सहसा देहरादून त्याग और रायपुर अवस्थान

कुछ दिनों के बाद ही न जाने माँ कैसी चंचल हो उठी। एक दिन अकस्मात् सन्ध्या के समय बहुत लोग माँ के दर्शन करने आये थे। माँ ने भोलानाथजी से जाकर कहा कि मैं अभी रायपुर जाऊँगी। रायपुर देहरादून से 6-7 मील दूर है और यह भी ज्ञात हुआ कि साथ में भोलानाथजी, ज्योतिष दादा या मैं और कोई नहीं जा सकेंगे। माँ उस रात वहीं रहेंगी। कल सवेरे फिर लौट आवेंगी। माँ जो कहती हैं वह अवश्य ही करेंगी। कह रही थी- ''मंगल के लिये ही जो कुछ हो जाय।'' उसी समय एक आदमी की मोटर से नरसिंह और एक दूसरा लड़का (माँ का भक्त) माँ को देहरादून पहुँचा आये। वहाँ विराजमोहिनी दीदी, मौसीजी और निशि बाबू थे। माँ को देखकर उन्हें महाआनन्द हुआ। उस समय माँ का कई दिनों से पेट खराब हुआ था। उस दिन 'आज माँ को खाना नहीं देंगे' देहरादून में हमने ऐसा निश्चय कर रखा था, किन्तु हमने सुना कि रायपुर में भक्तों ने जो कुछ दिया माँ ने बिना हिचकिचाहट के वही खा लिया एवं वह रोगी के लिये कथमपि पथ्य न था।

देहरादून वापस आना और वहाँ माँ का अस्थिर भाव देखने से विपत्ति की आशंका एवं उसके बाद ही भोलानाथजी के दूसरे भानजे की मृत्यु के समाचार की प्राप्ति

दूसरे दिन भोर में लेडी डॉ. शारदा देवी जाकर अपनी गाड़ी में माँ को बैठाकर कृष्णाश्रम पहुँचा गई। किन्तु वहाँ भी आकर माँ सुस्थिर नहीं हुई। माँ बोली- ''मैं लोट-पोट लूँगी।'' यह कहकर जमीन पर लोटने लगी। सारा दिन इसी तरह बीता। रात्रि में सो गई। ज्योतिष दादा पैरों के पास और मैं शरीर के समीप ही सो गई। एकाएक माँ का शरीर लोट-पोट करने लगा। कुछ देर के बाद स्थिर हुई। दूसरे दिन भी हँस रही थी, किन्तु नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। मैं यह सदा से देखती आ रही हूँ कि माँ का ऐसा भाव किसी भावी विपत्ति को सूचित करता है, इसीलिये चिन्ता हो रही

थी। कुछ दिनों के बाद गोपालजी ने (श्रीयुत् द्वारकानाथ रैनाजी का नाम माँ ने गोपालजी रख छोड़ा था) आकर विनती की, कि माँ आनन्दचक मनोहर मन्दिर में चलो। इस मनोहर मन्दिर में माँ अक्सर रहती हैं। एक यज्ञकुंड भी वहाँ स्थापित हुआ है। ये सब बातें पहले ही लिखी जा चुकी हैं। गोपालजी के मकान के पास ही यह मन्दिर है। इस घटना के दूसरे ही दिन माँ ने कहा- ''कल गोपालजी मनोहर मन्दिर में चलने को कह रहे थे। चलो आज ही जाते हैं।'' और कोई बात नहीं कही, हम लोगों ने खाने-पीने की सामग्री बाँधकर साथ-ही-साथ मनोहर मन्दिर भेज दी। सन्ध्या समय माँ सबको साथ लेकर टहलते-टहलते मनोहर मन्दिर में गई। वहाँ पहुँचते ही चिट्ठी मिली कि भोलानाथजी का भानजा, श्रीयुत् कालीप्रसन्न कुशारीजी का सुयोग्य दूसरा लड़का, दो बच्चों को छोड़कर मर गया है। हिसाब लगाकर देखा गया तो जिस दिन रात्रि को सहसा माँ रायपुर चली गई थी उसी दिन मृत्यु हुई थी।

देहरादून (किशनपुर) के नवीन आश्रम के उद्घाटन का आयोजन

जन्मोत्सव अति सन्निकट था। जन्मोत्सव के समय ही देहरादून के आश्रम की प्रतिष्ठा होने वाली थी। माँ की जन्मतिथि (सौर 19 वैशाख) से देहरादून के नवीन आश्रम में भोलानाथजी अन्य चार ब्राह्मणों के साथ यज्ञ आरम्भ करने वाले थे। यहाँ भी एक लाख आहुतियाँ देने का निश्चय था। आश्रम में विशाल यज्ञ-कुण्ड बनाया गया था। हंस, हरीराम आदि सब भक्त प्रबन्ध कर रहे थे। इसी बीच में एक दिन माँ मनोहर मन्दिर से सबको लेकर टहलते-टहलते रायपुर चली गई। दूसरे दिन भोर ही में फिर श्रीमती शारदा देवी की गाड़ी से मनोहर मन्दिर में चली आई। उस दिन बैशाख 18 सौर था। माँ आज ही किशनपुर (देहरादून) आश्रम के निकट एक मन्दिर में जाकर रहेंगी, अन्यान्य सब भक्त आश्रम के निकट ही एक मकान में रहेंगे, यह सब व्यवस्था हुई। दूसरे दिन से ही यज्ञ आरम्भ होने वाला था। माँ बैशाख सौर 18 के अपराह्न में जाखन मन्दिर जाकर रही। अन्यान्य भक्तों ने एक मकान खाली पड़ा था उसमें आश्रय लिया। निश्चय हुआ कि आगामी बैशाख कृष्ण चतुर्थी को (माँ की जन्मतिथि को) माँ नवीन आश्रम में प्रवेश करेंगी।

* * *

अट्ठाईसवाँ अध्याय

देहरादून आश्रम के उद्‌घाटन के पहले नाना स्थानों की भक्तमण्डली का अपूर्व सम्मिलन, आनन्द और यज्ञ द्वारा उद्‌घाटन आरम्भ (सं 1993 वि. बैशाख सौर 19)

पूर्व निश्चय के अनुसार 19वीं बैशाख से नवीन आश्रम में यज्ञ आरम्भ हुआ। श्रीयुत् भोलानाथजी ने अन्य चार ब्राह्मणों के साथ यज्ञ आरम्भ किया। बैशाख सौर 18 को ही मिर्जापुर से उपेन्द्र डॉक्टर महाशय और तुरियानन्द स्वामीजी आ पहुँचे। उसी दिन ढाका से कमलाकान्त ब्रह्मचारी भी आ पहुँचा। उसका मन अत्यन्त अधीर हो उठा था, इसीलिये वह ढाका छोड़कर माँ के पास चला आया। यहाँ माँ का जो आदेश होगा वही करेगा। यज्ञ में जप करने का भार मेरे और उपेन्द्र डॉक्टर के ऊपर रहा। धीरे-धीरे नाना स्थानों से भक्तजन उत्सव के निमित्त आकर उपस्थित होने लगे। श्रीरामपुर से प्रोफेसर त्रिगुणानाथ वन्द्योपाध्याय, आगरे से प्रोफेसर श्रीयुत् वीरेन्द्रचन्द्र, मुखोपाध्याय, काशी से श्रीयुत् नेपालचन्द्र चक्रवर्ती एवं निर्मल बाबू के पुत्र, पत्नी और मानिक, मिर्जापुर से श्रीयुत् श्रद्धानन्द स्वामी, कलकत्ते से भ्रमर घोष, वीरेन्द्र महाराज आदि सब धीरे-धीरे देहरादून में माँ के श्रीचरणों में उपस्थित हुये। माँ किसी दिन प्रात:काल एक बार यज्ञदर्शन के लिये जाकर फिर आश्रम मन्दिर में लौट जाती। खाना-पीना सब कुछ जाखन मन्दिर में ले जाती। देहरादून शहर से भी अपराह्न समय बहुत से भक्त आकर मातृदर्शन कर जाते। शारदा (लेडी डॉक्टर), नरसिंह*, हरीराम, हंस, गोपालजी आदि भक्त प्राय: रोज ही आते। हरीराम और हंस ने ही इस आश्रम के निर्माण में खूब परिश्रम किया था। उनके उत्साह से ही यह आश्रम तैयार हुआ था। उत्सव के समय भी उत्सव की व्यवस्था करने में वे ही अग्रणी रहे। देहरादून

---

* यह लड़का भी बड़ा अच्छा है, माँ इसे खूब प्यार करती हैं। एम.ए. पास करके नौकरी की तलाश में है। इस समय भी विवाह नहीं करता। बचपन में माँ का वियोग हो गया था। श्रीयुत् मन्मथनाथ महाशय देहरादून में काम करते हैं। उनका ही एकलौता बेटा है। माँ ने उसे शारदा का धर्मपुत्र बना दिया था।

के भक्तों में से हरीराम ही सबसे पहले रायपुर जाकर माँ से परिचित हुए थे। उनसे खबर पाकर ही और बहुत से लोगों को माँ के चरणों में आने का सुयोग प्राप्त हुआ था। माँ के चरणों के समीप किसी के भी आ सकने पर उन्हें महान् आनन्द होता था। माँ के नाम पर मानो वे पागल थे। दिल्ली से कश्मीरी वृद्धा महिला (माँ के देहरादून आने के समय वे दिल्ली में ही थी) कन्या और जामाता के साथ आ पहुँची।

देहरादून (किशनपुर) आश्रम की प्रतिष्ठा एवं महाआनन्द की लहर प्रवाहित कर शंख, घण्टा और उलू–ध्वनि के बीच भक्तों के साथ श्री श्री माँ का आश्रम में प्रवेश

(सं. 1993 वि. बैशाख की 25वीं सौर तिथि के रात्रि शेष में)

आज बैशाख महीने की 25वीं सौर तिथि है। हंस आदि भक्त भाँति-भाँति की फूल–पत्तियों और कागज से आश्रम को सजाने में व्यस्त हैं। केले के पेड़ और मंगल कलश स्थापित हुये हैं। बीच का हाल का कमरा कीर्तन के लिये रिजर्व रखा गया है। उसी कमरे में माँ का विशाल चित्र रखा हुआ है। रात्रि शेष (माँ के जन्म समय) में मन्मथ बाबू उस चित्र के ऊपर ही माँ का पूजन आरंभ करेंगे, यह निश्चय हुआ है। सभी लोग उत्सव के विविध कार्यों में अत्यन्त व्यस्त हैं। इतना कष्ट उठाकर माँ के लिये आश्रम बनाया है, आज वह सार्थक होगा। क्योंकि माँ उस आश्रम में पदार्पण करेंगी। जिनके उद्योग से वह निर्मित हुआ वे सब भी कृतार्थ होंगे। रात्रि के दो पहर बीतते ही देहरादून से भक्तों का आना आरम्भ हुआ, देहरादून शहर से यह स्थान लगभग 4 मील दूर है। माँ के जन्म समय (अर्थात् रात्रि शेष में) भोलानाथजी और माँ के साथ भक्तों ने नूतन आश्रम में प्रवेश किया। दनादन शंख, घण्टे की ध्वनियाँ और उलू ध्वनियाँ होने लगी। बंगाली भक्त महिलायें भी कई एक थी। इसीलिये उलू ध्वनि का अभाव नहीं रहा। भोलानाथजी और माँ को बीच के कीर्तन वाले कमरे में (नीचे की मंजिल में) बैठाया गया। सब फूलों की माला और कर्पूर आदि से आरती करने लगे।

आश्रम के उद्घाटन के अवसर पर श्री श्री माँ की षोड़शोपचार से पूजा और उस समय माँ के अपूर्व मनोहारी रूप का विकास

श्रीयुत् मन्मथ बाबू ने पूजा आरम्भ की। षोड़शोपचार से माँ की पूजा

हुई। सिंदूर, माला और नूतन वस्त्रों में माँ का रूप झकझका उठा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो रूप की छटा से स्थान को उज्ज्वल कर एक अनिन्द्य सुन्दरी देवी की मूर्ति प्रकट हुई हो। कैसा सुन्दरतम रूप था, उसके विषय में और क्या कहूँ? रूप मानो बिखर रहा था। जिसने नहीं देखा, उसने जीवन का एक बड़ा सुअवसर खो दिया। समय हुआ। धीरे-धीरे बहुत लोग विदा हुये। नये बहुत लोग फिर आये। बड़ी भीड़ थी, माँ की चरणरज लेने के लिये सभी उत्सुक थे। कुछ देर बाद कीर्तन आरम्भ हुआ। माँ कीर्तन के कमरे में ही बैठी थी। कभी हँस-हँसकर सबके साथ बातें कर रही थी। कभी समाधिस्थ अवस्था में बैठी रहती थी। सब लोग चित्र-लिखित के तुल्य माँ के मुख की ओर एकटक से निहार रहे थे। आश्रम के बीच में कीर्तन का बड़ा हाल और चारों कोनों में छोटे-छोटे चार कमरे हैं। उत्तर के कोने के एक कमरे में माँ के सोने के लिये स्थान बनाया गया है और एक कमरा बन्द रखा गया है। माँ का आदेश था कि इस कमरे में कोई बोलने नहीं पायेंगे। बाद में माँ के ही आदेश से इस कमरे में ही व्यास गद्दी लगाई गई। इस कमरे में प्रवेश करने के पूर्व सबको मौन होकर जाना पड़ेगा। सर्वदा ही इस कमरे में ताला बन्द रहेगा। ऐसी व्यवस्था की गई। कुछ देर कीर्तन होने के बाद माँ सोने के कमरे में जाकर लेटे-लेटे भक्तों के साथ वार्तालाप करने लगी। भक्तों को प्रसाद दिया जा रहा था। दिन भर आनन्द उत्सव करने के बाद सभी लोग अपने-अपने घर गये। गोपालजी का परिवार, काशीनारायणजी का परिवार (काशीनारायण बाबू कन्ट्रैक्टर हैं, उन्हीं ने इस आश्रम के निर्माण का भार लिया था) आदि कतिपय लोग रह गये। हरीराम की स्त्री नहीं है, केवल दो छोटे-छोटे बच्चें हैं। उस दिन हरीराम उन्हें साथ लेकर आश्रम में ही रहा।

यज्ञ की पूर्णाहुति एवं भक्तजनों का शान्ति-जल-ग्रहण (1993 वि. बैशाख सौर 27)

दूसरे दिन (बैशाख सौर 27) यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। श्रीयुत् भोलानाथजी और अन्यान्य ब्राह्मणों ने समागत भक्तजनों के ऊपर शान्ति जल छिड़क दिया। वह माँ का भोजन का दिन था। दोपहर के समय दक्षिण की ओर के कोने की एक कोठरी में माँ और भोलानाथजी का भोग हुआ। उसके बाद सबने प्रसाद पाया।

भक्तों पर अनुग्रह करने वाली माँ श्रान्तिशून्य– आश्चर्यजनक दृश्य

उसके पश्चात् माँ को तनिक विश्राम कराने का प्रबन्ध किया गया किन्तु विश्राम करना वश के बाहर की बात थी। झुण्ड के झुण्ड भक्तगण माँ के चरण-दर्शनों के लिये आ रहे थे। माँ भी सबके साथ हँस-हँसकर वार्तालाप कर रही थी। थकावट का नाम-निशान न था। माँ का सभी कुछ अद्भुत होता है। मैंने अनेक बार ढाका, कलकत्ता, काशी आदि स्थानों में माँ को दिन-रात एक तार से बैठकर भक्तों के साथ वार्तालाप करते देखा है, थकावट का चिह्न तक दिखाई नहीं पड़ा। भक्त लोग झुण्ड के झुण्ड आ-जा रहे थे, रात्रि के 2 बजे 3 बजे तक भी भक्तों का ताँता टूटा नहीं। मैंने देखा, माँ एक भाव से बैठी हैं। एक ही दिन नहीं बहुत दिनों तक यह क्रम चलते हुये मैंने देखा है। यहाँ पर रात्रि में माँ ने विश्राम किया। अन्यान्य दूर देशों से जो लोग आये हैं, सभी आश्रम में रहे।

श्री श्री माँ के साथ 'राम-मूर्ति' की भेंट और महान् आनन्द की प्राप्ति

उत्सव के 3-4 दिन बाद विख्यात् पहलवान श्रीयुत् राममूर्तिजी ने माँ को अपने 'शक्ति आश्रम' में ले जाने के लिये मोटर द्वारा आदमी भेजे। माँ अपराह्न में वहाँ गई। उन्होंने माँ का अत्यन्त आदर-सत्कार किया। राममूर्ति स्वयं एक दिन अपने भक्तों को साथ लेकर माँ के आश्रम में आये। माँ ने 'बाबा' कहकर उन्हें पुकारा। जलपान के लिये मिठाई दी गई, उन्होंने माँ को अपने हाथ से खिला दिया, माँ भी उन्हें खिलाये दे रही थी। खूब आनन्द रहा। आनन्दमयी के सम्पर्क में आकर सभी आनन्द में मग्न हो जाते हैं। उसके बाद उन्होंने कीर्तन सुनने की इच्छा व्यक्त की, त्रिगुणा बाबू ने कीर्तन सुनाया। कुछ देर बाद माँ को प्रणाम कर वे चले गये। पैर में चोट लगने के कारण राममूर्ति चल नहीं पा रहे थे। बड़ी कठिनाई से दूसरों का सहारा लेकर मोटर से उतरे और चढ़े।

अस्वस्थ भोलानाथजी को छोड़कर माँ का देहरादून त्याग तथा सोलन-यात्रा

कुछ दिन बाद एकाएक भोलानाथजी के पेट में भयानक दर्द हुआ। उनका शरीर अत्यन्त अस्वस्थ हो गया। डॉक्टर भार्गव माँ के एक विशिष्ट

भक्त हैं। वे सहारनपुर से माँ के दर्शन करने के लिये उसी दिन सपरिवार आये थे। हरीराम जाकर भार्गव बाबू, शारदा देवी आदि को बुला लाया। सारी रात वेदना से भयानक कष्ट हुआ। प्रात:काल दर्द कुछ कम हुआ किन्तु भोलानाथजी रोग शय्या से उठे नहीं। माँ छत पर टहल रही थी, कभी रोगी के कमरे में जाकर बैठ रही थी। दूसरे दिन भोलानाथजी को नीचे की मंजिल के एक कमरे में लाया गया। त्रिगुणा बाबू, माणिक, श्रद्धानन्द आदि भक्तों ने माँ से विदा ली। शंकरानन्द स्वामी बद्रीनाथ गये। यह उनकी तीसरी बार बद्रीनाथ यात्रा थी। 2–3 दिन के बाद भोलानाथजी का पेट दर्द कुछ कम हुआ किन्तु उस समय भी उन्होंने शय्या नहीं छोड़ी थी। माँ ने सवेरे के समय दरवाजा बन्दकर भोलानाथजी के साथ कुछ बातें की। फिर 11 या 12 बजे (दोपहर के समय) दरवाजा बन्द करके कुछ बातें की। कुछ देर बाद ज्योतिष दादा को बुला भेजा। उसके बाद माँ बाहर आ गई। हमें मालूम हुआ कि माँ आज ही 5 बजे की ट्रेन से (शाम को) सोलन जा रही हैं। साथ में भ्रमर, मैं और नेपाल दादा जा रहे हैं। उसके बाद माँ ने सबसे कहा–''भोलानाथजी के स्वस्थ होने पर तुम लोग उन्हें साथ लेकर सोलन जाना।'' बाद में हमारे सुनने में आया कि कब भले–चंगे होकर जा सकेंगे यह भी माँ भोलानाथजी से कह गई थी। निर्मल बाबू के लड़के बाबूराम ने 'माँ चली जायेंगी' सुनकर माँ के साथ जाने के लिये खूब रोना–धोना आरम्भ किया। वह अपनी माँ का एकमात्र पुत्र है, उसकी माँ उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। किन्तु उसने ऐसी अवस्था उत्पन्न कर दी कि माँ उसे छोड़कर न जा सकी। वह भी साथ चला। प्रोफेसर श्रीयुत् वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय ने माँ से कहा– ''हम तो इसका मतलब कुछ भी नहीं समझ रहे हैं। 3–4 दिन बाद भोलानाथजी के स्वस्थ होने पर हम सब साथ ही जाते, उससे तुम्हारी क्या हानि होती? आज ही तुम जाना चाहती हो इसका क्या मतलब है? मैं भी गर्मी की छुट्टी तुम्हारे साथ बिता आता, हम लोगों को भी छोड़कर जा रही हो, इसका अर्थ क्या है?'' माँ ने अपनी स्वाभाविक धीर मूर्ति से हँसते-हँसते कहा– ''मैं भी इसका अर्थ तुम लोगों को कुछ समझा नहीं सकती। यह निश्चय जानो कि मैं अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती हूँ। जब जो हो जाय तुम लोगों के कल्याण के लिये ही। तुम चिन्ता क्यों करते हो। भोलानाथजी के स्वस्थ होते ही तुम भोलानाथजी को साथ लेकर सोलन चले जाना। मैं आज ही

जाऊँगी।'' माँ की आज्ञा को टालने की क्षमता किसी में भी नहीं है, उसी समय बन्दोबस्त हुआ।

सोलन गमन

सोलन के राजा दुर्गासिंह माँ के परम भक्त हैं। उनको कालका स्टेशन पर मोटर भेज देने के लिये फोन कर दिया गया। देहरादून में किसी को भी यह खबर नहीं लगी। हरीराम, शारदा, लक्ष्मी (काशीनारायण की स्त्री का यह नाम माँ ने रखा है), गोपालजी आदि खबर पाकर उपस्थित हुये। उन दिनों कई दिनों से गोपालजी का परिवार तथा नानी (कश्मीरी वृद्धा), उनकी लड़की सभी माँ के समीप आश्रम में ही रहते थे। सभी लोग उदास होकर माँ को विदा कर रहे थे। यह ऐसा उत्सव! इसके मध्य में माँ चली जा रही हैं, कौन जानता है कब लौटेंगी? माँ का तो कुछ भी ठीक नहीं रहता किन्तु वश भी तो कुछ नहीं। माँ जिस समय जो करूँगी कहती हैं, प्राय: उसमें फर्क नहीं पड़ता। परन्तु भोलानाथजी के आदेश के पालन के लिए कभी-कभी अन्तर पड़ जाता है। किन्तु भोलानाथजी भी माँ की इच्छा में विशेषकर बाधा नहीं डालते। हम लोग सन्ध्या समय देहरादून से रवाना होकर भोर में कालका पहुँचे। राजा की मोटर उस समय भी वहाँ पहुँची न थी। माँ के स्नान करने की इच्छा प्रकट करने पर मैंने उन्हें नल के नीचे स्नान करा दिया। उस दिन माँ के खाने की पारी थी। साथ में कुछ थोड़े से फल थे। मैंने वहीं फल माँ को सड़क के किनारे बैठाकर खिला दिये। इतने में राजा की मोटर आ पहुँची। हम लोग राजा की मोटर से लगभग डेढ़-दो घण्टे में सोलन पहुँचे। वहाँ ''शोगी बाबा'' के नाम से प्रसिद्ध एक अत्यन्त वृद्ध साधु रहते थे। माँ पहले सोलन आकर उन्हें देख गई थी। (माँ इससे पहले भी 2-3 बार सोलन आई थी। उस बार आकर माँ एक गुफा में रही थी)।

देव मन्दिर से सटे हुये कमरे में निवास

माँ ही राजा के राधाकुंज के पास ही और दो मन्दिरों का निर्माण करवाकर शिवजी और दुर्गाजी की मूर्तियाँ स्थापित कर गई थी। उनके सिलसिले में और भी कतिपय कमरे तैयार किये गये थे। बहुत-से कमरे खाली ही पड़े थे। माँ किसी गृहस्थ के घर नहीं जाती हैं, यह सोचकर राजा साहब

ने उन कमरों को ही माँ के रहने के लिये सफा करवा रखे थे। हम लोगों के पहुँचते ही राजा के कर्मचारी लोगों ने सब प्रबन्ध कर दिया। हरीराम का छोटा भाई मदनमोहन जोशी इस स्टेट का डॉक्टर है। वह भी आया। किसी बात की कमी न थी। राजा साहब ने माँ के लिये सब प्रबन्ध कर रखा था।

सोलन के राजा, राजमाता, रानी आदि द्वारा मातृचरण वन्दना

थोड़ी देर बाद ही राजा ने आकर माँ के चरणों में प्रणाम किया। राजा अति शान्तमूर्ति हैं। माँ ने राजा का नाम रखा है "योगीराज"। सुनने में आया कि राजाओं में इस तरह का सच्चरित्र व्यक्ति दिखाई नहीं देता। दु:ख इसी बात का है कि राजा की कोई सन्तान नहीं है, किन्तु ऐसे धर्मभीरु हैं कि सबके कहने पर भी पुन: विवाह करने की अभिलाषा नहीं है। राजा साहब ने पूछा कि मकान से भोजन आयेगा या नहीं। किन्तु हम लोगों को किसी दूसरे के हाथ का भोजन करने का निषेध था। इसीलिये कह दिया गया कि यहीं पर रसोई बनेगी। भोजन-सामग्री सब कुछ राजकर्मचारी दे गये। इस पहाड़ में भी इस बंगाली माताजी की असीम शक्ति दिखाई दी। राजा, वजीर (ये एक विलायत से लौटे बैरिस्टर हैं), डॉक्टर सभी माँ के आदेश की प्रतीक्षा में मानो खड़े हों। अपराह्न में पर्दे से सड़क को आवृत कर रानी और राजमाता ने आकर माँ के चरणों के दर्शन किए। दासियाँ भी सब आई। सभी माँ के दर्शनों की इच्छुक थी, माँ ने भी हँस-हँसकर सबसे कुशल-वृत्त आदि पूछा। उस दिन माँ के खाने की पारी थी। रानी अपने साथ कुछ फल ले आई थी, उन्होंने माँ को अपने हाथ से खिला दिया।

नवीन-नवीन भक्तों का समागम

सन्ध्या के समय सभी चले गये। उसके अनन्तर भक्त धीरे-धीरे आने लगे। माँ का नाम सुनकर प्रतिदिन नये-नये लोग माँ के चरण दर्शनों के लिये आ रहे थे। पंजाबी भक्त माँ के लिये भोग ले आ रहे थे। माँ को स्वयं खिलाते जा रहे थे। ऐसा लगता था कि माँ भी मानो उसी देश की हों। उनकी तरकारी खाकर माँ कहती थी कि "वाह क्या चमत्कार हुआ।" उन लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता होती।

भोलानाथजी आदि का आगमन–ज्योतिष दादा की अस्वस्थता की बात

7 दिनों के बाद भोलानाथजी, अखण्डानन्द स्वामी, वीरेन्द्र दादा बच्चू की माँ आ पहुँचे। सुना कि ज्योतिष दादा को माँ देहरादून आश्रम में ही रहने का आदेश दे आई थी। उनके साथ कमलाकान्त ब्रह्मचारी था। आज लगभग 3–4 वर्षों से ज्योतिष दादा साथ-साथ हैं, सहसा उनके लिये ऐसा आदेश क्यों हुआ? माँ ही जानें। ज्योतिष दादा के मन की स्थिति पर इस आदेश का बुरा असर पड़ा, किन्तु करें क्या? माँ के आदेश का पालन करना ही होगा। उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल था, रक्त शून्य हो गया था। माँ ने नियमानुसार चिकित्सा करने को कहा। इंजेक्शन लेना आरम्भ किया है, ऐसी उन्होंने खबर दी।

* * *

उन्तीसवाँ अध्याय

सोलन से शिमला यात्रा

लगभग 15 दिन वहाँ रहकर माँ ने शिमला जाने का निश्चय किया। शिमला में कोई परिचित न था। माँ ने कहा- "जाने पर ही कोई प्रबन्ध हो जायेगा।" मैंने देखा है, वैसा ही होता है, माँ की कृपा से कुछ अटकता नहीं है। कितनी ही अपरिचित जगहों में माँ ने ऐसा ही कहा है, प्रबन्ध करने का निषेध कर दिया है। भक्तों के अपने आप कोई प्रबन्ध करने पर वह विफल हो गया है। आखिर वे माँ के ऊपर ही निर्भर होकर अनेक बार चले हैं। मैंने देखा है कि विशेष असुविधा होना तो दूर रहा, आशातीत सुन्दर व्यवस्था हो गई। सचमुच उनके ऊपर निर्भर हो सकने पर किसी बात की भी कमी नहीं होती। किन्तु हम निर्भर कहाँ रह सकते हैं? सोलन से राजा ने अपने शिमला-स्थित एजेन्ट को माँ के लिये स्थान का प्रबन्ध करने के लिये फोन किया। उन्होंने शिमला काली-मन्दिर में माँ का प्रबन्ध करूँगा, ऐसा समाचार दिया। हम लोग राजा की मोटर से शिमला के लिये रवाना हुये।

शिमला जाने के मार्ग में दो मृत्यु घटनाओं का पूर्वाभास- कालीमन्दिर में अवस्थान

पर्वतीय मार्ग है और है दो घण्टे का रास्ता। पहाड़ पर घूम-घूमकर रास्ता गया है, अहा क्या सुन्दर दृश्य है! क्यों शिमला जा रहे थे, यह तो माँ ही जानें। क्यों देश-विदेश में घूम-फिर रही हैं, कौन बताये। माँ भी कुछ नहीं बतलाती हैं। केवल कहती हैं, "जो होने वाला होता है वह होकर रहता है। तुम लोग जैसा चाहो वैसा करा लो। मैं तो कुछ जानती नहीं।" वास्तव में माँ का संकल्प-विकल्प कुछ भी नहीं है फिर वे क्या बतलायेंगी? कुछ देर बाद माँ ने हँसते-हँसते कहा- "दो शव देख रही हूँ।" यह कहकर मुस्कराने लगी, दृष्टि बाहर की ओर थी। मैंने सोचा, वे फिर किस का शव देख रही हैं। भोलानाथजी की छोटी बहन मटरी बुआ ढाका में बहुत बीमार हैं, ऐसा समाचार आया था, वे सोच रही हैं, उन्हीं

को क्या कुछ हो गया है कौन जाने? हम दो बजे रवाना हुये। 4 बजे शिमला पहुँचकर काली–मन्दिर में गये। काली–मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है, उसमें बहुत लोगों के रहने का प्रबन्ध है। थियेटर हाल, लाइब्रेरी, क्लब सभी कुछ हैं। खूब पक्का प्रबन्ध है।

उक्त काली–मन्दिर में साधु दयाल बाबा की मृत्यु का संवाद

हम लोगों के काली–मन्दिर में पहुँचते ही सैक्रेटरी महाशय (सुधीर सेन) ने आकर खबर दी कि अभी दयालबाबा नाम के एक 84 वर्ष के साधु ने यहाँ देह त्याग किया है। बहुत वर्षों से उनका इस काली–मन्दिर में आना-जाना रहा। सब लोगों से मिलना–जुलना और उनका इस काली–मन्दिर में आना–जाना रहा। सब लोगों की उन पर असीम श्रद्धा भक्ति थी। माँ तुरन्त ही वह शव जिस कमरे में था, उस कमरे में दाखिल हो गई। हम लोग भी साथ गये। ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो साधु करवट लेकर सो रहा हो। एक ब्रह्मचारी ने कमरे में गीता–पाठ आरम्भ किया। धीरे–धीरे बंगाली भद्र पुरुष उपस्थित होने लगे। मातृदर्शन के लिये भी वे आ रहे थे और साधु के संस्कार की भी व्यवस्था कर रहे थे। अनेक लोग कह रहे थे कि साधु ने मृत्यु के पहले जिज्ञासा की थी कि आनन्दमयी के आने की खबर थी, क्या वे आई हैं? राजा के एजेन्ट जो आकर माँ के लिये कमरा ठीक कर गये थे उन्हीं से किसी–किसी को खबर लगी थी कि आनन्दमयी माँ आ रही हैं।

काली–मन्दिर के प्रधान पुरोहित की मृत्यु का संवाद

हम लोगों ने वहाँ पर इकट्ठे हुये भद्र पुरुष से कहा- माँ ने आते समय रास्ते में कहा था, दो शव, एक तो देख लिया। उन्होंने तुरन्त कहा- आज लगभग एक महीना हुआ काली–मन्दिर का प्रधान पुरोहित यहीं पर मर गया। माँ के मुख से भी हमने सुना, माँ ने यही देखा था कि एक स्थान पर पड़ा है और एक हाल ही में मरा है। माँ इस तरह अनेक बातें अस्पष्ट रूप से पहले ही कह देती। किन्तु हम लोग सदा उसे समझ नहीं पाते। पीछे किसी घटना के घटने पर माँ समझा देती।

शिमला में मातृदर्शन के लिये बहुत भक्तों का समागम

हम लोग जिस दिन शिमला पहुँचे उस दिन रात्रि में ही 2–4 बंगाली भद्र पुरुष आकर माँ के समीप बैठकर, थोड़ा वार्तालाप करके चले गये। दूसरे दिन प्रात:काल माँ जरा घूम आई। मैंने देखा कि धीरे-धीरे क्रम से 2–4 आदमी आ रहे हैं। माँ से कह रहे हैं, "ये जो दयालबाबा ब्रह्मीभूत हुये हैं, इन पर हमारी बड़ी श्रद्धा थी और थी प्रगाढ़ भक्ति। इनकी मृत्यु से हम लोगों के हृदय को अत्यन्त आघात पहुँचना निश्चित था। किन्तु उसके साथ-साथ आपके शुभागमन से हमें उस आघात का अनुभव नहीं हुआ। आपके दर्शन से हमें अत्यन्त ही आनन्द हो रहा है।" माँ भी सबके साथ इस प्रकार बातचीत कर रही थी कि मानो सभी की पूर्व-परिचित हों, कह रही थी– "मैं तुम लोगों की छोटी बच्ची हूँ। लड़की को देखकर पिता को तो आनन्दित होना उचित ही है, जबकि इतने दिनों के बाद लड़की आई।" मानो वास्तव में ही उनकी चिरकाल की लड़की बन बैठी। फिर तो कोई उठना नहीं चाहता था। धीरे-धीरे लोगों की संख्या बढ़ने लगी। छोटा-सा कमरा स्त्री-पुरुषों से भर जाता था। रात्रि में भी धीरे-धीरे लोगों का आना बढ़ने लगा। अन्त में यहाँ तक हुआ कि रात में एक बजे तक अनेक लोग बैठे रहते, घर न जाते। प्रात:काल भी ऑफिस जाने के पहले कुछ लोग आकर माँ के दर्शन करके जाने लगे। कैसी मोहनी माँ की आँखों में है कि ऑफिस का समय हो जाने पर भी बाबू लोग जाता हूँ, जाता हूँ, कहकर भी जा नहीं सकते थे। अनेक लोग कहते कि शिमला में इतने दिनों से काली-मन्दिर बनाकर कीर्तन कर आज वह फल प्राप्त हुआ। देखो, माँ स्वयं ही यहाँ उपस्थित हुई हैं। सब लोग दिन-पर-दिन माँ के दर्शन कर, माँ के साथ वार्तालाप कर कृतार्थ हो रहे थे।

पहाड़ी तथा बंगाली महिलाओं की व्याकुलता भरी माँ के चरणों में उपस्थिति – माँ की अद्‌भुत आकर्षण शक्ति

दोपहर के समय महिलायें आने लगी। उनकी संख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। पहाड़ के सब लोग माँ के आगमन का समाचार पाकर माँ के दर्शन करने आ रहे थे और आकर ऐसे मुग्ध हो रहे थे कि पहाड़ को लाँघकर बहुत दूर से भी रोज माँ के चरणों में उपस्थित हो जाते थे। वे

लोग कहते थे– "माँ को देखे बिना हम रह ही नहीं सकते, इसीलिये इतनी दूर से हर रोज आते हैं।" बंगाली स्त्रियाँ भी बहुत दूर से रोज ही आ रही थी। पहाड़ चढ़ने का क्लेश, वृष्टि आदि कुछ भी उनकी उपस्थिति में विघ्न–बाधा उपस्थित नहीं कर सकते थे। माँ मानो सबको खींच ला रही थी। दिन–पर–दिन ही लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही थी, माँ के उस छोटे से कमरे में दिन–रात आनन्द का बाजार लगा रहता था। माँ स्त्रियों से कहती– "क्या माँ लड़की को देखे बिना रह सकती है? इसीलिये इतना कष्ट उठाकर भी आना होता है।" वे सब कहती– "कष्ट तो कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। माँ, बाबू लोगों को खिलाकर ऑफिस भेजकर केवल चन्द क्षणों के लिये हम आवेंगी, इसी चिन्ता से हम अधीर हैं।" कैसी व्याकुलता थी! दो दिनों के परिचय से क्या यह व्याकुलता हो सकती है? वीरेन्द्र दादा कहते थे– "माँ, मालूम होता है, गोपियाँ इस तरह स्वामियों को किसी प्रकार बाहर भेजकर कृष्ण के साथ आ मिलने के लिये व्याकुल रहती होंगी।" सबकी इतने अल्प समय में ऐसी व्याकुलता देखकर हम लोग भी मुग्ध थे। माँ की कृपा मानो सबके ऊपर चिपट पड़ी। सभी लोग माँ के दर्शन पाकर कृतार्थ हुये।

गृहस्थों के लिये सहज साधना के प्रकार के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का उपदेश

पर्वतीय प्रदेश है, चारों ओर पहाड़ों का मनोहर दृश्य है। माँ सवेरे–शाम घूमने बाहर जाती। शाम के समय बहुत से भक्त साथ–साथ जाते। माँ के अमूल्य उपदेश सुनकर सभी अत्यन्त आनन्दित होते। एक दिन माँ दोपहर के समय भोजन आदि से निवृत्त होकर विश्राम करने के लिये बिछौने पर जा बैठी। कतिपय पंजाबी स्त्रियाँ आई। उन्होंने माँ से पूछा– "अच्छा माँ गृहस्थ की साधना का क्या उपाय है?" माँ ने कहा– "सेवा और मन्त्र–जप ही गृहस्थ की साधना का उपाय है।" उन्हीं स्त्रियों ने पूछा– "अच्छा, मन्त्र– जप क्या एक ही समय करें? या दोनों, तीनों समय करना चाहिए?" माँ ने कहा– "रोज दोनों समय शरीर–रक्षा के लिये जैसे खाना पड़ता है, वैसे ही प्रतिदिन प्रात:काल और सायंकाल स्मरण और जप आदि नियमित रूप से यथासाध्य अवश्य ही करना चाहिये। उसके बाद दिन भर बीच–बीच

में जैसे जल पीते हो, पान खाते हो, फल खाते हो वैसे ही सदा जितना बन जाय, उनका स्मरण करने अथवा नाम-जप करने की आवश्यकता है। वह भी सत्पथ की सहायता करता है।

एक पंजाबी महिला के प्रश्न पर माँ का उपदेश – एकान्त में वास, सत्संग और सदालोचना की नितान्त आवश्यकता है

स्त्रियों ने फिर पूछा- ''किसी-किसी दिन मन नाम-जप करते समय खूब जम जाता है और कभी-कभी बिल्कुल ही नहीं जमता या उचट जाता है, ऐसा क्यों?'' माँ ने कहा- ''देखो, इसके अनेक हेतु हैं। तुम्हारे आहार-विहार में ऐसा कोई दोष निश्चय ही रहता है जिससे तुम्हारा मन विक्षिप्त हो उठता है, नाम जपने नहीं देता। और तो क्या, किसी दृश्य वस्तु के दोष से अथवा किसी आदमी के संस्पर्श से या उसके साथ बातचीत से और भी अनेक प्रकार से तुम्हारी अजानकारी में भी तुम्हारे मन में विक्षेप पड़ जाने का कारण घट सकता है। इसीलिये मैं कहती हूँ यदि किसी को इस ओर आना हो तो उसे सबका संग छोड़कर एकान्त में रहना नितान्त आवश्यक है। पहले-पहल तो सदा उसे उस ओर ध्यान रखने की आवश्यकता है जिससे कि उसके मन को भगवान् की ओर अग्रसर होने में बाधा न पहुँचे। हाँ, गृहस्थों के लिये सबका संग छोड़ना सम्भव नहीं है। वे सर्वदा सत्संग करें, सद् आलोचना करें। सत्पुरुषों से मिलने अथवा उनकी जीवनी पढ़ने से भी चित्त शुद्ध होता है, भगवान् की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है। बहुधा पूर्वजन्म के कर्म भी इस जन्म में सत्पथ पर अग्रसर होने में साधक या बाधक होकर सामने आते हैं। पूर्वजन्मों के कर्मों का प्रभाव भी इस जन्म में प्रकट होता है। उससे भी कभी-कभी कोई भाव प्रबल होकर सामने उपस्थित होता है। हमेशा ही हम जो काम कर रहे हैं, वह भगवान् की ही सेवा कर रहे हैं, इस प्रकार उनका सदा स्मरण रखा जाय तो वह पेड़ के नीचे पत्ते निकलते समय जैसे पुराने पत्ते अपने आप ही झड़ जाते हैं वैसे ही संसार से आसक्ति हटाकर उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न कर बहिर्मुखी भावों को अन्तर्मुखी कर देता है। यही उसकी स्वाभाविक गति है। फिर देखना पुराने पत्ते जमीन पर गिरकर फिर वृक्ष की खाद बन जाते हैं। कुछ भी निष्फल नहीं जाता, इसे जानते रहो।''

मन को स्थिर करने के उपाय के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का उपदेश

शिमला में ही फिर किसी दूसरे दिन दोपहर के समय बहुत-सी स्त्रियाँ आई। माँ सबके साथ हँस-हँसकर बातें कर रही थी। एक स्त्री बोली- ''माँ मन तो किसी तरह भी स्थिर नहीं होता। मन के स्थिर होने का क्या उपाय है?'' माँ हँसते-हँसते बोली- ''जैसे घड़े में जल भरा रहता है, जितनी देर तक घड़े को हिलाओ-डुलाओ उतनी ही देर तक भीतर का जल भी हिलेगा। घड़े को कुछ देर तक एक जगह स्थिर रूप से रख दो तो तुम्हें मालूम पड़ेगा कि जल भी स्थिर हो गया है। उसी प्रकार शरीर को अधिक देर तक स्थिर रूप से रखने की चेष्टा करो। जितनी देर तक एक लक्ष्य से स्थिरतापूर्वक बैठ सकोगे उतना ही मन भी स्थिर हो आयेगा। एक ओर मन का जैसे चंचलतायुक्त स्वभाव है वैसे ही दूसरी ओर शांत भाव भी मन का ही स्वभाव है। जो जितने अधिक समय तक बैठकर उनका नाम ले सको, उसकी चेष्टा करो। मन भले ही इधर-उधर भागे किन्तु तुम अपना प्रयत्न कदापि न छोड़ो। मन जब अपना धर्म नहीं छोड़ता है तो तुम अपना धर्म क्यों छोड़ो?

श्री श्री माँ का प्रचण्ड आकर्षण

शाम के समय ऑफिस से. सब भद्र पुरुष आये। कोई-कोई तो जल पीने तथा कपड़े बदलने के लिये भी घर नहीं जाते थे। माँ हम लोगों से कहती थी- ''यदि कुछ खाने को हो तो लाकर उन्हें दो।'' फल, मिठाई जो कुछ भी रहता, सब थोड़ा-थोड़ा खाकर माँ की वाणी सुनने के लिये बैठ जाते थे। माँ के दर्शन पाकर मानो फिर किसी के मन में कोई चाह ही नहीं रहती थी। माँ कहती- ''तुम लोग क्या पागल हुये हो? कहाँ गया ऑफिस से आकर जलपान करना, कहाँ गया टहलने के लिये बाहर निकलना, मालूम होता है तुम लोग सब भूल गये हो। मैं तुम्हारी बच्ची हूँ। तुम्हारे ही रक्त-माँस का शरीर है। तुम्हारी ही एक सन्तान हूँ, क्या देखने आते हो?'' वह इस बात का क्या उत्तर दें? माँ के मुँह की ओर सब देखते रहते। किस आकर्षण से वे आते थे, यह वे भी नहीं जानते थे। सब कहते- ''न जाने क्या एक नशा लग गया है, कह नहीं सकते।''

'समाधि' पद का अर्थ

एक दिन सब लोग शाम के समय बैठे थे। माँ भी अपने बिछौने के ऊपर ही बैठी थी। एक कम्बल के ऊपर एक छोटी चादर बिछाई थी। खिड़कियाँ खोल दी थी। दूर तक पहाड़-ही-पहाड़ का मनोरम दृश्य था तथा बीच-बीच में पहाड़ पर घर और खेत दिख रहे थे। दूर से ऐसा लगता था जैसे पहाड़ भी मानो आकाश से मिल गये हों। सब लोग चुपचाप माँ की आलोकमयी आनन्दमयी मूर्ति देख रहे थे। कभी-कभी माँ और भक्तों की आनन्द-ध्वनि से छोटा-सा कमरा गूँज उठता था। सभी अवस्थायें मानो मन को पवित्र कर डालती थी। सभी लोग थोड़ी देर के लिये ही सही माँ के समीप आकर घर-गृहस्थी भूलकर बैठे रहते। विविध प्रकार का वार्तालाप होना आरम्भ हुआ। किसी एक व्यक्ति ने कहा- ''माँ, समाधि किसे कहते हैं?'' माँ बोली- ''मैं तो कहती हूँ- बाबा, भाव और कर्मों के सम्पूर्ण समाधान का - समाप्ति का नाम ही समाधि है।'' फिर बोली- ''सांसारिक दृष्टिकोण से कहती हूँ, तुम लोग जैसे दिन भर काम-धाम करते हो, खाते हो, पीते हो, उसके पश्चात् रात की गाढ़ी नींद लेते हो।''

* * *

तीसवाँ अध्याय

श्री श्री माँ का एक उपदेश – हृदय की अधीरता स्पन्दन रूप है, यह स्पन्दन भगवान् की स्वयं प्रकाशरूपता का परिचायक है

आज 21वीं जून, 7 सौर आषाढ़ है। रविवार होने के कारण भद्र पुरुष दोपहर में ही माँ के समीप आ गये हैं। माँ अपने छोटे बिछौने पर बैठकर ही भक्तों के साथ अपनी स्वाभाविक मुस्कान से बातें कर रही हैं। हाराण बाबू कह रहे हैं– "हम लोगों के निस्तार का क्या उपाय है माँ, कह दो।" फिर तनिक देर बाद बोले– "अच्छा माँ, वे तो स्वयं प्रकाश हैं। फिर हम उन्हें पुकारें क्यों? माँ ने कहा– "पिताजी, मैं तो कुछ जानती नहीं। तो भी जो बुलाते हो वही बोलती हूँ। देखो न भूमि के अन्दर रहते समय बीज की एक ऐसी शक्ति प्रकट होती है जिससे जमीन में भी एक स्पन्दन होता है और अंकुर के बाहर निकलने के साथ–ही–साथ जमीन भी फट जाती है। ठीक वैसे ही तुम लोगों की 'हमारा क्या उपाय है' इस तरह की जो हृदय की व्याकुलता है, उसी को समझो जमीन का स्पन्दन। यह स्पन्दन उनके स्वयं प्रकाश होने का कारण ही होता है। उनको चाहना जीवमात्र का ही स्वभाव है।"

मंत्रप्रद गुरु अभिज्ञ हो चाहे अनभिज्ञ, बीजमंत्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में माँ की उक्ति

फिर दूसरे दिन सब आये। कुलगुरु से दीक्षा लेने के सम्बन्ध में चर्चा चली। अनेक लोग कुलगुरु कुछ भी नहीं जानते हैं यह समझकर उनसे दीक्षा लेना नहीं चाहते थे। उन्हें कुलगुरु का त्याग करने में भय लगता था। बीजमन्त्र की चर्चा भी छिड़ी। माँ ने इन सब चर्चाओं पर कहा– "देखो न, जैसे बीज को जमीन में बोकर मिट्टी से ढक दिया जाता है, बीज यदि निरन्तर ऊपर रहता है तो फिर उससे अंकुर नहीं निकलता। चाहे जिस किसी से हो **यदि तुम्हें बीजमन्त्र प्राप्त हो, फिर उसे मन के भीतर गुप्त करके रखने के नियमानुसार जप करते जाओ तो समय पर तुम्हारे उसी बीज से**

वृक्ष निकलकर फूल, फल उत्पन्न करेगा, इसमें सन्देह नहीं। वृक्ष के बीज के समान उसे ढककर जल से सींचते रहो। समय पर वृक्ष अवश्य ही बाहर प्रकट होगा। गुरु चाहे जैसा भी हो, तुमने जो बीज पाया है वह तो उनका नाम है इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। तब काम नहीं होगा, यह क्यों? यदि कोई नन्हा-सा बच्चा एक बीज तुम्हें दे जाय, बच्चा नहीं जानता है कि यह किसका बीज है, संभवतः तुम भी नहीं जानते। किन्तु तुम्हारे हृदय से यत्न करने पर समय पर जब वृक्ष के बाहर निकलने के बाद फूल-फल होंगे तभी तुम जान सकोगे कि वह किसका बीज था। बीज के न पहचानने के कारण क्या नियमानुसार काम करने पर वृक्ष प्रकट न होगा? वैसे ही गुरु चाहे जैसा भी हो तुम यदि बीज ग्रहण कर नियमानुसार काम करो तो निश्चय ही फल होगा।''

उक्त उपयोगिता की पौषक एक शिक्षाप्रद कहानी

इस बात पर एक कहानी भी माँ ने कही- ''एक समय एक आदमी दीक्षा लेने के लिये अत्यन्त उत्सुक होकर एक साधु के निकट गया। साधु किसी तरह भी दीक्षा देने को तैयार नहीं हुये। उस आदमी ने भी उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। अन्त में साधु ने एक प्रकार गुस्से में आकर ही कह दिया- ''जा ले गोपिया नन्दन।' वह आदमी परम श्रद्धा से साधु को प्रणाम कर 'गोपिया नन्दन' नाम का दिन-रात जप करने लगा। वह खाना-पीना भूल गया, नींद भी उसे नहीं आती थी। केवल बैठे-बैठै जप करता था- 'गोपिया नन्दन'। सबने विचार किया कि इस तरह भोजन और निद्रा का त्याग करने पर तो यह पागल हो जायेगा। उसके एक आत्मीय व्यक्ति ने उसके पास जाकर कहा- ''तुम्हारे बदले मैं नाम-जप करता हूँ। तुम थोड़ा-सा भोजन करके सो जाओ। मैं तब तक बैठकर तुम्हारा 'गोपिया नन्दन' नाम का जप करता हूँ।'' वह किसी तरह भी टस-से-मस नहीं हुआ। अन्त में अनेक लोगों के दबाव से उसको वैसा करना पड़ा। उस नाम को आत्मीय के हवाले कर वह कई दिनों के पश्चात् थोड़ा भोजन कर सो गया। उसके आत्मीय व्यक्ति ने देखा कि वह सो रहा है, इसलिये उसने सोचा अब नाम-जप क्यों करूँ। 'गोपिया नन्दन' क्या कोई बीजमन्त्र है? मैं उठ जाता हूँ। यह सोचकर वह नाम-जप छोड़ उठ गया। इतने में जपकर्त्ता साधक उठ बैठा और देखा कि मेरा नाम-जप बन्द हो गया हैं। वह पागल

के समान उस आत्मीय के पास जाकर बोला- ''मेरा नाम मुझे दो।' एक बार मैंने उसे नाम दिया है, इसलिये जब तक वह फिर उसे लौटा न दे तब तक मैं उसे ले नहीं सकता, ऐसा उसका विश्वास था। आत्मीय ने अत्यन्त अनादर से कहा- ''ले अपना घण्टानन्दन''। किन्तु उसने इसको अनादर नहीं समझा। जिसको उसने नाम दिया था, उससे उसे जो नाम मिला उसी का वह बड़े आनन्द के साथ जप करने लगा। वह बस्ती छोड़कर एक पेड़ के तले बैठकर जपने लगा- 'घण्टानन्दन'। उधर श्रीकृष्ण का आसन डगमगाने लगा। उन्होंने राधा से कहा- ''चलो तुम्हें अपने एक भक्त को दिखा लायें। इतना बड़ा मेरा भक्त और कोई नहीं है।' राधा ने भी सोचा, देख तो आऊँ, कौन इतना बड़ा भक्त है। दोनों चले। श्रीकृष्ण का स्वभाव छिपकर रहने का है। वे दूर एक पेड़ के नीचे खड़े रहे। राधा ने एक साधारण स्त्री के वेश में उस साधु के पास जाकर देखा कि वह आँखें मूँदकर जप कर रहा है-'घण्टानन्दन'। राधा ने उससे पूछा-''तुम किसका नाम जप रहे हो? बार-बार पूछने पर साधु आँखें बन्द किये ही राधा को पहचान गया। हँसकर बोला-''तुम्हारे पति का नाम जप रहा हूँ।'' राधा ने फिर प्रश्न किया-''कहो तो मेरे पति कहाँ है?'' नाम-जप के प्रभाव से उसकी दिव्य दृष्टि हो गई थी। साधु ने हँसकर दिखा दिया-''वह जो पेड़ दिखाई दे रहा है, उसके नीचे खड़े हैं।'' तदनन्तर राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के दर्शन कर उसी समय साधु की मुक्ति हो गई।'' यह कहानी कहकर माँ ने कहा-''देखो, एकाग्र साधन और सरल विश्वास ही भगवान् की प्राप्ति का साधन है। 'गोपियानन्दन', 'घण्टानन्दन' जपकर भी उसको मुक्ति मिली। विविध वार्तालापों के बाद लगभग एक बजे माँ थोड़ा दूध और फल ग्रहण करके सो गई।

शिमला में श्री श्री माँ के दर्शनेच्छुक भक्तों की सर्वदा ही भीड़

दूसरे दिन फिर सब लोग आये। भद्रपुरुष अधिकतर अपराह्न के बाद ही आते थे। ऑफिस के बाद सब आये। माँ दोपहर में थोड़ी देर सो रहती। यदि कभी-कभी महिलायें आ जाती तो फिर नहीं सोती। उनके साथ वार्तालाप करती। 4 बजे वे चली जाती, बाबू लोग आकर बैठते। अक्सर 5 बजे माँ थोड़ा घूमने के लिये बाहर निकलती। टहलकर आने के बाद माँ छोटे से कमरे में बिछौने पर बैठती, फिर झुण्ड-के-झुण्ड भक्त आते।

कमरे में सबके बैठने की जगह होती न थी, इसलिये बहुत-से लोग खड़े रहते। दरवाजा, बरामदा सब भर जाता। माँ उस समय हँसते-हँसते भाँति-भाँति की वार्तायें कहती। सभी लोग भीड़ के बीच माँ की एक झलक देखने के लिये कितने व्याकुल रहते। रात के लगभग एक बजे तक ऐसा ही क्रम चलता।

'ऋषि', 'मुनि', 'दुनिया', 'संसार', 'घर' आदि पदों का माँ के द्वारा किया हुआ अर्थ

उसी समय एक दिन विविध बातें हो रही थी, माँ कह रही थी– ''देखो, 'ऋषि' मैं तो कहती हूँ कि **जो भगवान् के रस में रसिक हो, वे ही ऋषि हैं। और 'मुनि' जिनका मन एकदम भगवान् में ही लीन होकर एक हो गया हो,** मैं तो उन्हीं को मुनि कहती हूँ। 'दुनिया' के सम्बन्ध में कहती– ''जो दो को लेकर चले, उसी को कहते हैं 'दुनिया'। तुम लोग इस 'दुनिया' (दो को लेकर चलना) का भाव छोड़कर, एक भाव को लेकर रहने का प्रयत्न करो, तभी क्रमशः धीरे-धीरे शान्ति प्राप्त होगी। एक भाव से रहने पर तो फिर कोई कमी नहीं रहती, कभी न रहने पर अशान्ति भी नहीं आ सकती। वही एक मंत्र है, एक में ही सत्य, शान्ति और आनन्द है। 'संसार' पद के सम्बन्ध में माँ कहती– 'संसार' का अर्थ है 'सं+सार' अर्थात् सं जिसका सार है, वही 'संसार' है। जब तक तुम अपने में जो तत्व है उसे भूलकर खूब सज-धजकर (बन-ठनकर) रहोगे तब तक शान्ति क्या आ सकती है? तुम वास्तव में जो हो, जब तक वह न बनो तब तक शान्ति कहाँ? इसलिये कहती हूँ कि अपने को पहचानने की चेष्टा करो।'' प्रायः सभी से हँस-हँसकर पूछती हैं, ''तुम्हारा घर कहाँ है?'' कोई-कोई तो बात का असली अर्थ न समझकर अपने सांसारिक घर की बात कहते। माँ तुरन्त हँसते-हँसते कहती– ''वह तो साँस का घर है, जब तक साँस है तभी तक उस घर में रहने देगा। उसके बाद क्या कोई अपने घर की खबर लेते हो?'' इस तरह साधारण-सी बातों से गम्भीर विषय समझा देती।

सूर्यग्रहण के समय नाम-कीर्तन (सं. 1993 वि. आषाढ़)

आषाढ़ 5 सौर शुक्रवार को सूर्यग्रहण पड़ा। उस दिन सूर्यग्रहण के समय माँ के समीप सब लोगों ने नाम-संकीर्तन किया।

वृक्ष और छाया के दृष्टांत से आत्मा और परमात्मा की व्याख्या

एक दिन सब लोग सन्ध्या समय आकर बैठे, चारु बाबू आदि अनेक प्रश्न पूछ रहे थे। आत्मा और परमात्मा की बात माँ कर रही थी, ''देखो जैसे पेड़ और छाया है, यदि ध्यान लगाकर पेड़ को देखो तो फिर छाया नहीं दिखाई पड़ेगी। और यदि छाया की ओर ध्यान रहेगा तो वृक्ष नहीं दिखाई देगा। यदि ध्यान स्थिर नहीं हुआ तो वृक्ष भी देखोगे और छाया भी देखोगे। वैसे ही जब तक पेड़, छाया और देहात्मबुद्धि है तब तक आत्मा भी कह रहे हो, परमात्मा भी कह रहे हो, इसलिये गमनागमन, आना-जाना चल रहा है। जब लक्ष्य स्थिर हो जायेगा तब प्रतीत होगा कि एक के सिवा दूसरा नहीं है। वृक्ष की ही छाया है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

भक्ति-श्रद्धा के साथ नाम-जप करने से मन धीरे-धीरे द्रवीभूत होता है

एक आदमी ने कहा- ''माँ मेरा मन पूजा, जप इत्यादि किसी से द्रवीभूत नहीं होता।'' माँ ने हँसते-हँसते कहा- ''देखो न, खजूर के पेड़ से पहले-पहल काटते ही क्या रस बाहर निकलता है? अनेक बार काटने के उपरान्त उससे झर-झर करके रस बाहर निकलता है। उस रस से फिर कितने सख्त पदार्थ बनाये जाते हैं। वैसे ही श्रद्धा-भक्ति के साथ नाम-जप करने से ही मन धीरे-धीरे द्रवीभूत होगा। तुम नियमानुसार जप आदि करते जाओ।''

* * *

इकतीसवाँ अध्याय

शिमला में वार्षिक नाम–संकीर्तन की अधिवास आदि प्राथमिक तैयारी

आज जून की 22वीं तारीख, आषाढ़ 5 सौर सोमवार है। माँ के समीप सभी भक्त इकट्ठे हुये। निश्चय हुआ कि कल नाम–कीर्तन होगा। यहाँ प्रतिवर्ष भक्त लोग एकत्र होकर एक दिन काली–मन्दिर में प्रातःकाल 6 बजे से सन्ध्या 6 बजे तक 12 घण्टे अखण्ड नाम–कीर्तन करते हैं। कल वही नाम–संकीर्तन होगा। आज सन्ध्या को उसके लिये अधिवास किया जायेगा (यज्ञारम्भ के पूर्व देवता- स्थापन)। माँ को उस दिन उपस्थित रखने के लिये सबने मिलकर इससे पहले माँ को जाने नहीं दिया। भक्तों ने अत्यन्त अनुरोध–आग्रह से माँ को रोक रखा है। बाबा भोलानाथजी को भी कीर्तन में बड़ा आनन्द मिलता है। उनके साथ सब लोग कीर्तन करेंगे। आज सन्ध्या को अधिवास–संस्कार आरम्भ हुआ। माँ को वहाँ ले जाकर बैठाया गया। पहले माँ को और भोलानाथजी को माला, चन्दन और दही का टीका लगाया गया तदुपरान्त पखावज और करताल बजाते हुये चन्दन आदि लगाये गये। सब भक्तगण माला–चन्दन से सज गये। कीर्तन के कमरे के बीच में फूल–पत्तियों से मंच सजाया गया। उसके चारों ओर श्रीकृष्ण तथा गौरांग महाप्रभु (निताई) आदि के भाँति–भाँति के चित्र टाँगे गये। माला–चन्दन आदि से सब चित्र सजाये गये। काली–मन्दिर के सामने ही कीर्तन का कमरा है। काली माई का मन्दिर भी फूल–पत्तियों से सजाया गया। भीतर–भीतर लाइट लगाई गई। माँ के आगमन की स्मृति चिरस्थायिनी करने के लिये श्रीयुत् देवेन्द्र बाबू ने कीर्तन के कमरे के लिये एक बहुत बड़ा झाड़–फानूस दिया। झाड़ बहुत ही सुन्दर था। माँ काली–मन्दिर के बरामदे में बैठी। भक्त लोग कीर्तन के कमरे में मंच के चारों ओर घूम–घूमकर कल जिस नाम का संकीर्तन दिन भर होगा उसी नाम का कीर्तन कर रहे थे और वैष्णवों की वन्दना गा रहे थे। सभी वैष्णवों के साजबाज से सुसज्जित होकर गा रहे थे:–

''श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द ।।

भोलानाथजी सबका साथ देकर नाच रहे थे। रात्रि में लगभग 9 बजे अधिवास आरम्भ हुआ। हारान बाबू खूब सुन्दर नाम-कीर्तन करते हैं, साथ-साथ वीरेन्द्र और अन्यान्य भक्त भी नाम-कीर्तन कर रहे थे। माँ उपस्थित थी। पर्वतीय प्रदेश था और था रात्रि का समय, भक्तों के मुख से नाम अत्यन्त मधुर सुनाई दे रहा था। सबकी वेश-भूषा, कमरे की साज-सज्जा सभी अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। कुछ देर नाम-कीर्तन करने के उपरान्त नाम-कीर्तन बन्द हुआ। कल प्रातःकाल छः बजे से पुनः आरम्भ होगा। सब लोग माँ को प्रणाम कर चले गये। माँ भी अपने कमरे में आकर सो गई।

शिमला में 'नाम-कीर्तन-यज्ञ' (सं. 1993 वि. आषाढ़ सौर 1) माँ के द्वारा की गई 'तपस्या' की व्याख्या

23 जून, 9 आषाढ़ मंगलवार। आज प्रातः 6 बजे से नाम-कीर्तन शुरू हुआ। कभी भी प्रातःकाल उठ नहीं सकते, वे प्रतिवर्ष दोपहर में आकर नाम-कीर्तन में योग देते, उन्होंने भी आज प्रातःकाल 6 बजे उपस्थित होकर ही नाम-कीर्तन में योग दिया। माँ ने कल रात जाते समय कह दिया था-''पिताजी, कल सवेरे ही आना, एक दिन कष्ट उठाना है। यह भी तो तपस्या है। तपस्या का अर्थ ही है ताप-सहन।'' माँ के कथन से आज प्रातःकाल ही प्रायः सब लोग आ पहुँचे। माँ जाकर बरामदे में बैठी। माँ और भोलानाथजी को प्रणाम कर आज भी सब लोग नवीन मालाओं और चन्दन से सज-धजकर नाम-कीर्तन में योग दे रहे हैं। भोलानाथजी भी सबके साथ-साथ नाम-कीर्तन में नाच रहे हैं। कीर्तन में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। भाव में विभोर होकर नाच रहे हैं। उनकी उपस्थिति से सबको बड़ा आनन्द आ रहा है। महान् आनन्द से सब लोग कीर्तन कर रहे हैं। नाम-संकीर्तन की ध्वनि चारों ओर मधुरिमा की सृष्टि कर रही है। झुण्ड के झुण्ड लोग आकर कीर्तन में योग प्रदान कर रहे हैं। स्त्रियाँ चिक की आड़ में मन्दिर के बरामदे में बैठी हैं। नाम-कीर्तन चल रहा है-

''श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द ।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द ।।

कीर्तन के ताल-ताल में पखावज और करताल बज रहे हैं और उसी ताल-ताल में भक्त नाच रहे हैं। श्रोताओं का हृदय भी नाच रहा है। दुर्गादास बाबू सबको माला चन्दन चढ़ाकर नमस्कार कर रहे हैं। आगन्तुक सभी का माला-चन्दन द्वारा ही आज सत्कार किया जा रहा है। सभी आकर नाम-कीर्तन में योग दे रहे हैं। उधर शाम को सबके भोजन का प्रबन्ध हो रहा है। खाने-पीने का विराट आयोजन है। ऊपर के कमरे में गौर-निताई आदि के भोग का पृथक प्रबन्ध हो रहा है। वैष्णवों के अनुरूप 'मालसा भोग' इत्यादि किसी की भी कमी नहीं है। सब शिक्षित उच्च पदस्थ व्यक्ति ही सम्मिलित होकर कीर्तन कर रहे हैं। इसलिये नियम आदि सब कुछ सर्वांग सुन्दर है। माँ की उपस्थिति के कारण आनन्द और भी बढ़ गया है। माँ कीर्तन शुरू होने के पहले से ही कीर्तन के सामने काली माता के मन्दिर के बरामदे में जा बैठी हैं। नाम-कीर्तन आरम्भ हुआ।

नाम-कीर्तन यज्ञ में कीर्तन सुनकर श्री श्री माँ का अद्भुत भावावेश

माँ लगभग दो घण्टे वहाँ बैठी रही। नाम-कीर्तन से माँ के शरीर में परिवर्तन का थोड़ा-सा आभास पाकर बाबा भोलानाथजी ने माँ को उठाकर ले जाने को कहा इसलिए मैं वहाँ से उठा लाई। आज माँ के खाने की पारी थी। माँ को मुँह धुलाकर थोड़ा-सा भोजन करा दिया। मुझे मालूम हुआ कि माँ का शरीर काँप रहा है। पैर ठीक तरह नहीं रख पा रही हैं। आज से लगभग 5 वर्ष पहले ढाका, कलकत्ता, काशी आदि स्थानों में कीर्तन के समय माँ के विविध भावों का प्राकट्य मैं देख चुकी थी। किन्तु इधर कुछ वर्षो से वह भाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर नहीं हुआ। आज फिर उस भाव का थोड़ा-थोड़ा आभास दिखाई दे रहा है। किन्तु माँ उस भाव को सम्हाल लेने के लिये अभी बैठकर नाना प्रकार की बातें कर रही थी, कभी सड़क पर घूमने के लिये बाहर चली गई, कभी बिछौने पर जाकर लेट रही थी, किन्तु मुख और नेत्र अस्वाभाविक रूप से लाल हो उठे थे। सब व्यवहारों में और चेहरे पर मानो एक बिजली चमक रही थी। अपने को अधिक नहीं सम्हाल पा रही थी। लगभग एक बजे के समय मैंने माँ को खिलाने के लिये बैठाया किन्तु कुछ भी नहीं खा पा रही थी। माँ बोली- ''खा नहीं पा रही हूँ, शरीर न जाने कैसा हो रहा है, ठीक नहीं है।'' दो बार पैर काँपने के कारण गिर पड़ी थी। उठकर एक बार कीर्तन

के समीप जा बैठी, एक बार कमरे में आकर बैठी। इस प्रकार लगभग दो बज गये। सभी समझ रहे थे कि माँ अपने को खूब सम्हाले जा रही हैं। एक बार माँ कीर्तन के पास महिलाओं के बीच में जाकर चारु बाबू की स्त्री की गोद में जा बैठी। उन्होंने माँ को गोद में चिपका लिया। मानो नन्ही बच्ची हों। माँ के अश्रुपूर्ण नेत्र डबडबा रहे थे, मुँह में हँसी ज्यों-की-त्यों थी। भोलानाथजी कीर्तन में ही घूम रहे थे, प्रातःकाल 6 बजे से फिर बैठे नहीं। जल तक नहीं पीया, सब लोग उन्हें देखकर अचम्भे में पड़ रहे थे। इस अवस्था में इतनी शक्ति और कीर्तन में इतना आनन्द! उन्होंने ऐसा दूसरा देखा न था। माँ की अवस्था देखकर भोलानाथजी को भय हो रहा था क्योंकि वे जानते थे कि इस भाव-समाधि में एक बार माँ की कैसी भीषण अवस्था हुई थी। माँ को उठाना ही मुश्किल हुआ था।

सावधान रहने पर भी श्री श्री माँ का अभूतपूर्व भावावेश

पहले एकाध बार ऐसा हुआ था कि समस्त मृत्यु के लक्षण शरीर में प्रकट हो गये थे। हम सब मारे भय के अधीर हो उठे थे, सबने सम्मिलित होकर जोर-जोर से केवल नाम-कीर्तन किया था। कुछ लोगों ने माँ के पैरों के पास बैठकर मन-ही-मन इष्ट नाम का जप किया था, किन्तु तिस पर भी शरीर में परिवर्तन नहीं हुआ था। इसी से भोलानाथजी ने कमरे में आकर माँ से कहा- "देखो, तुम कीर्तन के आसपास अधिक जाओ मत जिससे कि तुम्हारा ऐसा कोई भाव न हो" माँ ने कहा- "तुम तो बराबर देखते आ रहे हो मैं अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं हूँ, फिर ऐसा क्यों कहते हो?" वे बोले- "सो तो जानता हूँ, फिर भी इस तरह का भाव होगा, ऐसा आभास पाते ही उठ आओ।" माँ बोली -"मैं तो वही कर रही हूँ तो भी अपने आप ऐसा हुये जा रहा है।"

श्री श्री माँ की बाहरी क्षणिक चंचलता

उधर नाम की धुन अति सुन्दर ढंग से जमकर चारों ओर बिखर रही थी। भक्तजन पखावज, करताल के ताल-ताल में नाच रहे थे। सारा दिन माँ ने बाहर की ओर से देखने पर जरा चंचल भाव से बिता दिया। सन्ध्या के कुछ पहले माँ कीर्तन के निकट महिलाओं के बीच गई। सुरेश बाबू की स्त्री (बाद में मालूम हुआ कि इन्होंने महिलाओं में एक गीता-समिति

स्थापित की हैं। महिलाओं को साथ लेकर एक अच्छी आलोचना करने के काम में अग्रसर हैं। सभी इनके ऊपर श्रद्धा रखते हैं) ने माँ को बुलाकर गोदी में बैठा लिया, माँ भी बच्चे की तरह उनकी गोद में जा बैठी, कुछ देर बैठकर माँ फिर अपने आसन पर आ बैठी।

शिमला में महिला–कीर्तन का अद्‌भुत ढंग से सूत्रपात

कुछ दिन पहले ढाका में माँ के आदेश से महिलाओं ने सुन्दर कीर्तन किया था और आज भी वे सब मिलकर प्रत्येक रविवार को कीर्तन चला रही हैं, यह बात माँ ने भद्र पुरुषों के निकट कही। किन्तु किसी ने भी उस पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि महिलाओं का कीर्तन किसी ने विशेष सुना न था। किन्तु माँ ने कहा– ''देखो, स्त्रियों को छोड़कर मत जाओ, यदि जाओगे तो तुम्हारे काम में भी विघ्न–बाधा आवेगी। उन्हें भी इस काम में योग देने की शिक्षा दो। तुम्हें भी बल मिलेगा।'' इसीलिये माँ जगह–जगह पर स्त्रियों में कीर्तन का भाव जगा आई हैं। ढाका और कलकत्ता में स्त्रियाँ बहुत अच्छा कीर्तन करती हैं। यहाँ भी उन्होंने ये सब बातें कही, किन्तु किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। पर माँ की इच्छा को कौन जानता है? सुरेश बाबू की स्त्री स्वयं कह उठी– ''माँ, आज तुम्हारे लड़कों ने तुम्हें नाम–संकीर्तन सुनाया, कल हम (लड़कियाँ) नाम–संकीर्तन सुनायेंगी।'' माँ ने कहा– ''कब सुनाओगी?'' उन सबने मिलकर निश्चय किया कि कल दोपहर को 12 बजे से 4 बजे तक सब माँ को नाम–कीर्तन सुनायेंगी। सब स्त्रियों से उसी समय कह दिया गया। उन सभी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। ये सब बातें हो गई।

कीर्तन सुनते–सुनते श्री श्री माँ के शरीर में अद्‌भुत अस्वाभाविक क्रिया

उसके बाद माँ चुपचाप आसन पर बैठकर नाम–कीर्तन सुनने लगी। एकाएक माँ उठ खड़ी हुई और किसी के देखते न देखते बिजली के समान दौड़कर अपने सोने के कमरे में जाकर सो गई। मैं भी साथ ही साथ गई। मुझसे केवल अस्पष्ट रूप से कहा– ''दरवाजा बन्द कर दो।'' मैंने चुपचाप दरवाजा बन्द कर दिया। कुछ देर बाद ही स्वामी अखण्डानन्दजी और बच्चू की माँ कमरे में आई। उन्होंने ज्यों ही आकर तबियत का हाल पूछा त्यों ही माँ ने बिछौने पर ही लोट–पोट लगाना आरम्भ कर दिया। आश्चर्यजनक

ढंग से शरीर की विविध अवस्थायें एक के बाद एक होने लगी। प्रोफेसर वीरेन्द्र दादा खबर पाकर दूसरे कमरे से भागे आये। माँ की यह अवस्था देखकर उन्होंने दरवाजा खोल दिया। बच्चू की माँ ने दौड़कर भक्तों को खबर दी कि आकर माँ की अवस्था देखें। खबर पाकर उनके पहुँचते न पहुँचते माँ का शरीर मानो चक्र की तरह घूम-घूमकर कीर्तन के कमरे की ओर जाने लगा। कपड़े, बाल सब इधर-उधर बिखर रहे थे। मैं ठीक नहीं कर पा रही थी क्योंकि शरीर पहिये की तरह अत्यन्त द्रुत गति से घूम रहा था और प्रतिक्षण मालूम हो रहा था कि कहीं गिरकर चोट न खा जाये। किन्तु जमीन का स्पर्श करते ही शरीर फिर तुरन्त घूम जाता था। इसी प्रकार वीरेन्द्र दादा और मैं दोनों ओर दोनों ही अगल-बगल में चल रहे थे। माँ का शरीर इसी तरह घूमते-घूमते सीढ़ी पार करके मानो नाम-कीर्तन की आवाज के साथ-साथ घूम रहा हो, कीर्तन के कमरे के दरवाजे पर जाकर भूमि पर गिर पड़ा। उस समय लगभग 7.30 बजे होंगे। सभी लोग उक्त अवस्था देखकर अवाक् और मुग्ध थे। वे और भी दुगुने उत्साह से ऊँचे स्वर में नाम-संकीर्तन करने लगे। माँ का शरीर भी धीरे-धीरे ताल-ताल पर उठने लगा। शरीर इतना हल्का दीख पड़ता था कि मानो वायु के साथ उड़ रहा हो, उठता था, गिरता था, मानो शरीर में कुछ वजन ही न हो। फिर गिर गई। जमीन पर अत्यन्त तेजी से लोट-पोट लेने लगी। हवा में उड़ रहे कपड़े के समान ही शरीर कभी गिरता, कभी उठता था, कभी जमीन में लोट-पोट लेता था, कभी घूम-घूमकर लुढ़कता था। शरीर की इस तरह से विविध प्रकार की क्रियायें होने लगी। वहाँ के लोगों में किसी ने भी ऐसा दृश्य पहले कभी नहीं देखा था। किन्तु सभी प्राय: उच्च शिक्षित तथा भागवत थे, चैतन्य चरितामृत आदि ग्रन्थों का उन्होंने भलीभाँति अभ्यास किया था। उन्हें यह समझने में देर न लगी कि यह भाव कोई साधारण भाव नहीं है। अवाक् होकर वे सब माँ की यह अवस्था देख रहे थे और भीड़ को ठेल रहे थे। माँ के चारों ओर घूमकर सब कीर्तन कर रहे थे। माँ वायु के साथ-ही-साथ उत्थित अवस्था से एकबारगी नेत्रों के पलक गिरते न गिरते जमीन पर गिरकर चक्राकार में घूमने लगी। मैं शरीर की रक्षा के लिये समीप में ही थी। अधिकतर मेरे शरीर के ऊपर ही गिर रही थी। किन्तु माँ का शरीर इतना हल्का हुआ था और इतने वेग से गिर रहा था

कि उससे गहरी चोट लगने की सम्भावना थी, किन्तु कुछ भी चोट नहीं लग रही थी। क्षण भर के बाद माँ बैठ गई।

श्री श्री माँ के मुँह से स्वत: ही स्तोत्रादि का निर्गमन

उसके बाद पहले की तरह स्तोत्रादि* धारा-प्रवाह मुख से निकलने लगे। क्या ही सुन्दर उच्चारण था। अत्यन्त स्पष्ट रूप से वे निकल रहे थे। किन्तु वह भाषा किसी की समझ में नहीं आ रही थी। उच्चारण करते समय माँ की जिह्वा नाना प्रकार की हुये जा रही थी। माँ कहती– ''यह अपने आप ही मानो अन्दर से ठेलकर बाहर निकलते हैं और अपने आप ही धीरे-धीरे बन्द हो जाते हैं। वैसा ही हुआ। धारावाहिक रूप से स्तोत्र बाहर निकल रहे थे। माँ ने पैर पसार दिये, सारा शरीर पसारकर बैठ गई। धीरे-धीरे दाहिना हाथ उठ गया। भौंहों के बीच दो अंगुली से दबाया। स्तोत्र भी धीरे-धीरे बन्द हुये। माँ ने कहा– ''यह जो दाहिना हाथ उठ गया अथवा भौंहों के मध्य को अंगुली से दबाया, यह कुछ भी मैं इच्छापूर्वक नहीं करती हूँ। जैसे स्तोत्र अपने आप आरम्भ होते हैं वैसे ही शब्द होते समय अपने आप ही हाथ उठ जाता है, इसी तरह की कोई क्रिया हो जाती है। फिर अपने आप स्तोत्रादि बन्द हो जाते हैं।''

कीर्तन में तरह-तरह के स्तोत्रादि का निकलना आदि सब कुछ शरीर की केवल बाहरी क्रिया-मात्र है – भीतर से श्री श्री माँ स्थिर, धीर सदा एक ही भाव से अवस्थित

माँ ने अनेक बार कहा है– ''मैं कहीं पर भी बैठकर शरीर की इन सब क्रियाओं को देखती हूँ। कीर्तन के समय जो सब भाव होते हैं, वे भी

---

* इन स्तोत्रादि के विषय में पहले लिखा जा चुका है। आज तक इस भाषा को कोई समझ नहीं सका है। अपने आप ही यह मुँह से बाहर निकलती और फिर अपने आप ही बन्द हो जाती है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी ने कहा, यह वर्तमान युग की संस्कृत भाषा नहीं है। देवभाषा है। माँ के मुख से जिस समय स्तोत्रादि अपने आप बाहर निकलते लगे उस समय सबसे पहले प्रणव शब्द बाहर निकला। माँ कहती हैं, ''बचपन में मैं सुनती थी कि ॐ शब्द का स्त्रियाँ उच्चारण नहीं करती हैं। मैं भी गुरुजनों के आदेश के अनुसार प्रणव का उच्चारण नहीं करती थी। बाद में वे शब्द मेरे भीतर से मानो ठेलकर बाहर निकलते। शब्दों का स्वर भी भीतर से ही आता। उस समय फिर तो इनका उच्चारण नहीं करना चाहिए, यह भाव भी नहीं जागता।''

हैं सब केवल शरीर के कार्य। मैं स्वयं ही शरीर को इन भावों में देख पाती हूँ।'' माँ ने एक बार नहीं बार-बार कहा है- ''शरीर की क्रिया हो रही है, मैं तो स्थिर एक भाव में ही हूँ। मैं देखती हूँ कि शरीर में इस प्रकार से विविध क्रियायें हो रही हैं।'' माँ सब विषयों में कहती हैं, ''शरीर के भीतरी हिस्से में क्रियाएँ हुये जा रही हैं।'' अपने में ही हँसना, रोना, चलना, फिरना आदि सभी व्यापारों को माँ ने हमें इसी प्रकार समझाया है कि ये केवल शरीर की क्रियायें हुये जा रही हैं। देहात्मबुद्धि उनकी नहीं है। यह बात अनेक व्यवहारों से हमारे देखने में आई है और स्वयं उन्होंने भी कहा है। किन्तु हम समझते नहीं हैं।

भावावस्था में श्री श्री माँ की मूर्ति की बाहर से भिन्नता

स्तोत्रादि बन्द होने के साथ-साथ नमस्कार के लिये धक्का-मुक्की हो गई। जिनके परिवार के लोग उपस्थित न थे उन्होंने आदमी भेजे, क्योंकि सबको माँ की चरण-धूलि लेनी है। माँ ने धीरे-धीरे पैर बटोर लिये, आँखे बन्द ही थी, बीच-बीच में आँखें खुल रही थी किन्तु वह दृष्टि पलकहीन थी। वह दृष्टि क्या सुन्दर थी! देखे बिना उस सुन्दरता का अनुभव करने का कोई उपाय नहीं। पहले तो माँ की दृष्टि ही हृदयस्पर्शी है। उस पर भाव की उस अवस्था में और भी सुन्दर दिखाई देती थी। मुख का रंग लाल आभायुक्त था। भाव की इस अवस्था में कभी-कभी काला भी हो जाता था। थोड़ी देर बाद माँ जमीन पर सो गई। पस्त हो गई। ठण्डा देश तिस पर पत्थरों पर सोई। सब लोगों ने उठा-उठूकर बिछौने पर लाकर माँ को सुला दिया। आँखे मुँदी हुई थी और शरीर ठण्डा। कुछ लोग हाथों पर, कुछ लोग पैरों पर हाथ फेर रहे थे। बहुत देर बाद माँ ने आँखें खोली, किन्तु दृष्टि उसी तरह पलकहीन थी। थोड़ी देर बाद नेत्रों से झर-झर आँसू गिरने लगे। माँ ने आँखे बन्द कर ली। सारे शरीर पर हाथ फेरते-फेरते बहुत देर के बाद माँ उठ बैठी। कमरे में लोग नहीं समा रहे थे। भद्र पुरुष कह रहे थे - ''इतने दिनों से हम लोग जो इस काली-मन्दिर में कीर्तन करते आ रहे हैं, आज वह सार्थक हुआ। शिमला-वासियों का यह महासौभाग्य है कि माँ स्वयं दया कर सबको दर्शन देने, शिमला पवित्र करने आई। आज हम लोग धन्य हुये।''

कीर्तन में भोलानाथजी की श्रान्ति-विहीनता

भोलानाथजी ने दिनभर जल तक ग्रहण नहीं किया और इन 12 घण्टों के बीच वे बैठे भी नहीं। कीर्तन में नाचते रहे। वे भी उस समय थोड़ा विश्राम ले रहे थे। सभी कह रहे थे - "कीर्तन में भोलानाथजी के रहने से हमें आज बड़ा आनन्द मिला।" कुछ देर विश्राम कर वे भोजन करने लगे।

श्री श्री माँ के व्युत्थान की पूर्वावस्था

माँ बैठी थी। दृष्टि उस समय भी एक ही प्रकार से स्थिर थी। सब लोग माँ के मुख की ओर निर्निमेष दृष्टि से निहार रहे थे। माँ की जीभ स्तब्ध थी। बोली नहीं निकल रही थी। हम लोग बुलवाने के लिये कोशिश कर रहे थे। मैंने सबसे कहा- "माँ को पुकारो।" हारान बाबू, दुर्गादास बाबू, चारु बाबू आदि माँ को जोर-जोर से बार-बार पुकारने लगे। माँ डबडबाये नेत्रों से हँसते-हँसते उनकी ओर क्रमशः देख रही थी किन्तु आवाज बाहर नहीं निकल रही थी। फिर विचित्र आवेशपूर्ण अवस्था से अपने आप ही आँखें मुंदी जा रही थी। कुछ समय इसी अवस्था में व्यतीत हुआ। तदुपरान्त धीरे-धीरे अस्पष्ट स्वर में दो-एक बात बोलने लगी। बोली अच्छी तरह समझ में नहीं आती थी किन्तु बच्चे की तरह वह सरल दृष्टि और तोतली बोली देखते-सुनते ही बनती थी, सब लोग मुग्ध होकर देखने और सुनने लगे। मुख उस समय भी लाल था, एक अलौकिक ज्योति से उस समय भी मुख उज्ज्वल दिखाई दे रहा था। कुछ देर बाद फिर माँ सो गई। सब लोग लगभग 12 बजे रात को उठकर चले गये।

व्युत्थान के पहले की अद्भुत अवस्था

रात्रि को 1 बजे के समय माँ को कुछ खिलाने की चेष्टा की गई। भोग के सब पदार्थ माँ के लिये भक्तों ने रख छोड़े थे। माँ को तनिक खिलायेंगे ऐसी सबके मन में अभिलाषा थी। किन्तु माँ कुछ निगल ही नहीं पा रही थी, हमने अनेक बार ऐसा देखा है। किन्तु जो पहली बार देख रहे थे वे कह रहे थे "तनिक मिठाई मुँह में रखकर देखो न क्या होता है।" वैसा ही किया गया। मैंने एक मिठाई मुँह में डाल दी। किन्तु उसे माँ किसी तरह निगल ही नहीं पा रही थी, मुँह में रखकर ही बैठी रही। थूक

देने के लिये कहने पर वह भी नहीं कर पा रही थी अथवा यों समझिये कि मानो बात ही नहीं समझ रही थी, यों ही भावशून्य दृष्टि से मुख की ओर ताक रही थी। इस तरह ताक रही थी कि मालूम पड़ता था कि क्या करना चाहिये, यह भी न समझ रही हों। अद्भुत अवस्था थी। बड़ी कठिनाई से मैंने मुख की मिठाई बाहर फेंक दी। तदुपरान्त माँ को उठा ले जाकर मैंने सुला दिया। छोटे से बच्चे के समान – तो मैं सोऊँ, कह कर सो गई। दूसरे दिन कुछ खायेंगी नहीं, क्योंकि वह उपवास का दिन है। इसलिये रात्रि में 2 बजे के समय फिर जरा-सा गरम दूध पिलाने की चेष्टा की गई। अनेक बार झकझोरकर नींद तोड़ने के अनुरूप जोर-जोर से पुकारने पर बहुत थोड़ा दूध मुँह में लिया। फिर नींद में मग्न हो गई, यह अवस्था थी। वह सारी रात और दूसरे दिन के 11 बजे तक पत्थर के समान पड़ी रही।

* * *

बत्तीसवाँ अध्याय

श्री श्री माँ के नेतृत्व में शिमला में महिला–कीर्तन महाआनन्द अद्‌भुत दृश्य (संवत् 1993 वि. आषाढ़ 10 सौर)

आज सौर आषाढ़ बुधवार है। आज महिलायें माँ को नाम–कीर्तन सुनायेगी, यह बात स्थिर है। 11 बजे से ही स्त्रियाँ भीगती–भीगती आकर उपस्थित हो रही हैं। 12 बजे से ही माँ सबको साथ लेकर कीर्तन के कमरे में गई। माँ की इच्छा से इतनी स्त्रियाँ आई कि कमरे में समा न सकी। आज भी सब स्त्रियाँ माला–चन्दन से विभूषित की गई। छोटे–छोटे 23 लड़के पखावज और करताल बजा रहे हैं। आज भी माँ ने मंच तैयार कराया है। पहले नाम-कीर्तन विशेष जम नहीं रहा था क्योंकि स्त्रियाँ कीर्तन करना जानती न थी। अन्त में माँ उठ खड़ी हो नाम–कीर्तन करने और साथ–साथ मंच के चारों ओर घूम–घूमकर नाच–नाचकर चलने लगी। साथ में स्त्रियाँ भी वैसा ही करने लगी। वह एक अपूर्व दृश्य था। नाम–कीर्तन जम उठा। कुछ देर बाद तो ऐसी अवस्था हुई कि थोड़ी देर के लिये सभी अपने को भूल गई, लज्जा शरम कुछ नहीं दोनों हाथ उठाकर गले में डाल–डालकर, नाच–नाचकर सब ऊँचे स्वर से नाम–कीर्तन करने लगी। झर–झर पसीना गिरने लगा। कुलवधुओं का इस तरह का नाम–कीर्तन मालूम होता है कि और किसी ने देखा नहीं। माँ नाच रही थी, नाम के ताल–ताल में नाच–नाचकर मानो शिक्षा दे रही हों। यदि कभी किसी को गले में बाँह डालकर पकड़ रही थी तो वह कृतार्थ हुये जा रही थी। तदनन्तर उसे देखकर शेष सब स्त्रियाँ माँ के हाथ के समीप अपना मस्तक लगाये दे रही थी। माँ भी किसी की अभिलाषा अपूर्ण नहीं रख रही थी। एक–एक करके सभी गले लगकर नाम–कीर्तन कर रही थी। कमरे में बिजली की बत्तियाँ जला दी गई। बाहर वर्षा हो रही थी। ऐसा अपूर्व दृश्य और किसी ने देखा नहीं। बहुत–सी बहनें कह रही थी– ''माँ, रास–लीला की कथा सुनी थी, तुमने आज रास–लीला दिखा दी।'' सब आनन्द में मग्न थी। 4 बज गये फिर भी नाम–कीर्तन बन्द नहीं हुआ। 4.30 बजे नाम–कीर्तन बन्द हुआ। प्रसाद वितरण के बाद सब माँ को प्रणाम कर अपने–अपने घर चली गई।

इसके मध्य में एक प्रस्ताव रखा गया कि यदि सबकी इच्छा हो तो माँ के शिमला आने के स्मारक रूप में प्रतिवर्ष ही 'नाम-कीर्तन यज्ञ' के बाद इसी तरह महिलायें भी एक दिन कीर्तन करें। सभी ने आनन्द के साथ इस प्रस्ताव के प्रति अपनी सम्मति व्यक्त की।

श्री श्री माँ के मुँह से महिला-कीर्तन की प्रशंसा एवं "सविकल्प समाधि" अवस्था और काल का निर्देश

महिलाओं के चले जाने के बाद माँ आकर अपने बिस्तर पर बैठी। बाबू लोग ऑफिस के उपरान्त आकर माँ से मिले। माँ ने बातचीत के सिलसिले में कहा- "आज लड़कियों ने खूब सुन्दर कीर्तन किया। कुछ समय के लिये किसी को भी यह भान न रहा कि वे किस तरह नाच रही हैं। किसी के भी सिर पर कपड़ा तक न था।" बाबू लोगों में से जिनका ऑफिस निकट था उन्होंने अपने ऑफिस में बैठकर ही नाम-कीर्तन सुना था। उन्होंने कहा- "माँ हमने ऑफिस में बैठकर ही नाम-कीर्तन सुना, बहुत सुन्दर कीर्तन हुआ।" रात को अनेक लोग चले गये। चारु बाबू के साथ माँ बातें कर रही थी। माँ कह रही थी- "देखो जब अखण्ड दर्शन होता है एवं अखण्ड भाव समझ में आता है, उसके अनन्तर ही अखण्ड सत्ता के बोध से अखण्ड स्थिति होती है। तभी उसकी सविकल्प समाधि का आविर्भाव होता है। जैसे भाव और कर्म की पूर्ण निवृत्ति। डुबकी लगाकर स्नान करना और क्या है। कोई भी अंग सूखा नहीं रह जाता।

महिला-कीर्तन में अनुपस्थित महिलाओं का दु:ख-प्रकाश एवं उनके साथ माँ का नाम-कीर्तन

आषाढ़ सौर 11 बृहस्पतिवार। आज भी माँ अपने बिस्तर पर बैठी हैं। दोपहर के समय लड़कियाँ (महिलायें) आकर माँ के समीप इकट्ठी हुई। जो कीर्तन में योग न दे सकी थी (उन्हें पहले खबर ही नहीं मिली) उन्होंने आकर खूब दु:ख प्रकट किया। आज भी माँ की वाणी पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हुई है। भली-भाँति नहीं बोल पा रही हैं। महिलाओं में आज भी कीर्तन की उमंग खूब है। वे कह रही हैं-"माँ, आज भी थोड़ा कीर्तन हो जाय।" माँ ने हँसकर कहा-"अच्छा तो है, करो।" सब कह रही हैं, "माँ तुम कह दो कि साथ-साथ मैं भी कीर्तन करूँगी।" माँ मधुर स्वर में

'हरि बोल' कहने लगी। महिलायें भी साथ ही साथ बोलने लगी। बहुत देर तक नाम-कीर्तन किया गया। जो कल कीर्तन में सम्मिलित नहीं हो सकी थी, उनका कुछ दु:ख मिट गया। कल कीर्तन के अनन्तर घर जाकर क्या-क्या बातें हुई वे सब कहकर महिलायें माँ के समीप खूब आनन्द ले रही थी। सबके मुँह पर अत्यन्त प्रसन्नता झलक रही थी। मानो उनका एक बड़ा भारी संकोच माँ की कृपा से दूर हुआ। कभी भी वे इस प्रकार कीर्तन न कर सकी थी। आज माँ आकर कीर्तन का यह आनन्द उन्हें दे गई, ये ही बातें वे माँ से विविध प्रकार से कह रही थी।

श्री श्री माँ के सोलन गमन का प्रस्ताव – श्री श्री माँ की प्रचण्ड आकर्षिणी शक्ति

दूसरे दिन माँ का सोलन जाने का निश्चय हुआ। सभी लोग जाने में रुकावट डालने लगे। कुछ लोग कह रहे थे- "हमको भी ले जाओ, नहीं तो हम तुम्हारे जाने के मार्ग में सो जायेंगे, तुम्हें जाने नहीं देंगे।" भक्ति-भाव की मानो बखेर हो रही थी, दो दिन के परिचय में ही माँ उनकी कितनी आत्मीय हो गई। किस आकर्षण से सब ऐसे पागल हुये? माँ की आकर्षिणी शक्ति अद्‌भुत है। सभी मानो माँ का सत्संग पाने के लिये पागल थे। अस्थाई होने पर भी इन भावों को सुनकर बहुत आनन्द हो रहा था। सन्ध्या समय माँ थोड़ा टहलने आकर अपने छोटे-से बिस्तर के ऊपर बैठ गई। सब भक्त आकर चारों ओर से घेरकर बैठे। दूसरे दिन सोलन जाने की चर्चा उठी, सबने जबरदस्त विरोध किया कि किसी प्रकार भी माँ को इतनी जल्दी जाने न देंगे। माँ मीठी वाणी में उन्हें समझा रही थी कि कल जाना ही ठीक है। वे कभी प्रार्थना कर, कभी गम्भीर बनकर न जाने कितने प्रकार से माँ से रहने के लिये कह रहे थे। जब उन्होंने देखा कि माँ रहने का कुछ भी संकेत नहीं कर रही हैं तब हारान बाबू ने प्रस्ताव किया- "माँ कल मत जाओ। शनिवार को हम सब मिलकर तुम्हारे साथ सोलन जायेंगे तथा सन्ध्या के 6 बजे से सवेरे 6 बजे तक 12 घण्टे तुम्हें नाम-कीर्तन सुनायेंगे।" भोलानाथजी कीर्तन का नाम सुनते ही रहने को राजी हो गये, माँ भी अगत्या राजी हुई। निश्चय हुआ कि आगामी शनिवार को सब माँ के साथ जाकर रातभर कीर्तन कर रविवार को चले आयेंगे। सोलन के राजा को फोन से समाचार दिया गया। दो-तीन दिन और भी माँ का संग

रहेगा, यह सोचकर सबको महाआनन्द हुआ। यह सब निश्चय कर रात्रि में लगभग 1 बजे माँ और भोलानाथजी को प्रणाम कर सब घर लौटे। माँ भी सो गई।

श्री श्री माँ के उपदेश का ''व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करना ठीक नहीं'' स्मरण अत्यावश्यक है

आषाढ़ 12 सौर शुक्रवार। आज भोर में उठकर माँ चारु बाबू आदि के साथ थोड़ा टहल आई। आज माँ का उपवास का दिन है। टहलकर वापस आने के बाद माँ बिस्तर पर बैठी हैं। भक्तजन दो-दो एक-एक करके छिटपुट आ-जा रहे हैं। ऑफिस जाने के पहले कुछ लोग आकर माँ की चरण-धूलि ले जाते। क्रम से सबके चले जाने पर माँ ऊपर जाकर अपनी इच्छानुसार चहल-कदमी करने लगी। कुछ देर बाद आकर बिस्तर पर लेट गई। थोड़ी देर बाद ही महिलाओं का आना आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे कमरा भर गया। माँ उठ बैठी। महिलायें यह सोचकर दुःख प्रकट कर रही थी कि हम सोलन नहीं जा सकेंगी। आज सबने मिलकर माँ के निकट थोड़ा कीर्तन किया। माँ ने कहा- ''खाली मुख से बैठे रहना ठीक नहीं, कुछ न कुछ करो। चाहे नाम-कीर्तन करो, नहीं तो पाठ करो, नहीं तो कुछ अच्छी चर्चा चलाओ, कुछ करना आवश्यक है। व्यर्थ की बातों में समय गँवाना उचित नहीं है।'' लगभग 4 बजे के समय महिलायें उठ गई तथा बाबुओं का आना आरम्भ हुआ।

श्री श्री माँ के साथ सोलन जा सकने की आशा में सबको महाआनन्द - कीर्तन की चर्चा

लगभग 5 बजे माँ थोड़ा टहलने बाहर निकली। बहुत से लोग साथ चले। सन्ध्या समय माँ वापस आकर बिछौने पर बैठी। प्रतिदिन के अनुसार ही भक्तजन घेरकर बैठे। लगभग 30-35 लोग सोलन जायेंगे, यह निश्चय हुआ। सभी को महाआनन्द हुआ, क्योंकि माँ के साथ कीर्तन करने जायेंगे। माँ कह रही थी- ''तुम लोगों का देहरादून का कीर्तन-घर भी अच्छा बना है। वहाँ तुम लोगों की तरह कीर्तन करना कोई नहीं जानता कि खड़े होकर भी कीर्तन किया जाता है। तुम लोग अच्छी तरह पहले से अन्त तक खड़े होकर कीर्तन करते हो। अच्छा हो! सुविधा होने पर तुम सब

लोग एक बार देहरादून अपने आश्रम में जाकर कीर्तन कर आओ।'' सभी कह रहे थे- ''माँ, हम लोगों ने तो यह पहले ही निश्चय किया है कि दिल्ली से लौटकर तुम्हारे देहरादून पहुँचने की खबर पाते ही हम लोग देहरादून जाकर मन भरकर कीर्तन कर आवेंगे। फिर तुमको भी दिल्ली ले जायेंगे।'' माँ ने कहा- ''शरीर यदि रहे, समय आवे तो जो होने वाला होगा, होगा ही। तुम सब लोग मिलकर कीर्तन करोगे, सो तो आनन्द की बात है।'' नाना प्रकार की बातचीत के बाद लगभग 1 बजे सब चले गये। माँ भी थोड़ा विश्राम करने के लिये सो गई।

* * *

तैतीसवाँ अध्याय

भक्तों के साथ माँ का सोलन गमन (सं. 1993 आषाढ़ 13 सौर)

आषाढ़ सौर 13, शनिवार। आज सबको साथ लेकर माँ का सोलन जाने का निश्चय है। सोलन के राजा ने 3 मोटरें भेजी हैं। खाने-पीने के बाद लगभग तीस-पैंतीस भक्तों के साथ माँ सोलन को रवाना हुई। मोटरों में सबके लिये जगह नहीं हुई, अनेक लोग ट्रेन से गये। सन्ध्या के पहले ही माँ सोलन पहुँची। राजा ने आकर चरणों में प्रणाम किया। डॉक्टर मदन बाबू आकर जो कमरा कीर्तन के लिये सजाया गया था, माँ को उसे दिखाने ले गये।

सोलन में श्री श्री माँ के साथ अपार कीर्तनानन्द

मन्दिर से सटे हुये एक बड़े कमरे में कीर्तन का बन्दोबस्त किया गया था। वह फूल-पत्तियों से सुन्दरता के साथ सजाया गया था और बीच में वेदी बनाकर श्री राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित की गई थी। भक्तों के रहने के लिये भी अन्यान्य कमरों में प्रबन्ध किया गया था। खाने-पीने की सब सामग्री तैयार थी। राज-कर्मचारी सब लाकर मन्दिर में पहुँचा रहे थे। सब लोग एकत्र होकर कीर्तन के कमरे में गये। माँ के लिये भी आसन बिछाया गया। माँ कीर्तन के कमरे में जाकर बैठी। माँ को प्रणाम कर, माला-चन्दन धारण कर सबने कीर्तन आरम्भ किया। राजा ने भी प्रजाजनों के साथ कीर्तन में योग प्रदान किया। वजीर साहब ने लड़कों को साथ लेकर कीर्तन में योग दिया। रानी, राजमाता भी राजपरिवार की महिलाओं को साथ लेकर चिक की आड़ में मन्दिर के भीतर बैठी। शिमला के कीर्तन में देखा था कि कीर्तन करते-करते कोई बैठे नहीं। आरम्भ से लेकर अन्त तक खड़े-खड़े कीर्तन करते रहे। आज भी कभी वेदी के चारों ओर चक्कर लगाकर, कभी स्थिर भाव से खड़े होकर सब लोग कीर्तन कर रहे हैं। बाहर खूब वर्षा हो रही है। माँ भी सारी रात कीर्तन में बैठी हैं। भोलानाथजी सबके साथ कीर्तन में नाच रहे हैं। उन्होंने आज लगभग 4 वर्षों का मौन लिया

है। इसलिये जोर से नामोच्चारण नहीं करते हैं। महाआनन्द के साथ रात-भर कीर्तन हुआ।

भक्तवांच्छा-कल्पतरु श्री श्री माँ के सम्बन्ध में एक आश्चर्यमयी घटना

इधर प्रोफैसर वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्यायजी जिस कमरे में कीर्तन हो रहा था उस कमरे से कुछ दूर एक कमरे में, श्रीयुत् सुधीर सरकार आदि कई एक भद्र पुरुषों को माँ का पूर्व वृतान्त सुना रहे थे। वे लोग माँ की लीला-कथा सुनते-सुनते इतने मुग्ध हुये कि कीर्तन में जाते हैं, जाते हैं कहकर भी जा नहीं पा रहे थे। वे आपस में कह रहे थे, ''अच्छा, यहाँ पर यदि सहसा माँ उपस्थित हो जायें तो कैसा हो, इस प्रकार उनके अन्दर एक प्रार्थना जाग्रत हुई कि देखें माँ कीर्तन से इस समय यहाँ आती हैं कि नहीं, हम लोग भी तो माँ का ही कीर्तन कर रहे हैं।'' उस समय रात के लगभग 2 बजे होंगे, खूब वृष्टि हो रही थी। माँ एकाएक कीर्तन से उठकर रास्ते में वर्षा से भीगते-भीगते उस कमरे में आ पहुँची। वे तो अवाक् थे। माँ ने हँस दिया। मैंने माँ को कपड़े बदलवा दिये। फिर माँ कीर्तन में चली गई।

राजा प्रजा सभी का समान रूप से कीर्तन में योगदान और नृत्य -अद्भुत दृश्य

रात में लगभग 4.30 बजे तक राजा, रानी सभी उपस्थित रहे। माँ की अनुमति लेकर 4.30 बजे के करीब राजा, रानी, वजीर साहब चले गये। कीर्तन के गाने में जो **''मिले चाकरे, नौकरे भूपाल कृषके सबाई बले हरिबोल''** है, माँ ने भी आज वैसा ही कराया। राजा से लेकर साधारण नौकर-चाकर तक इस कीर्तन में योग देकर नाचे। 6.30 बजे कीर्तन समाप्त हुआ। कीर्तन में भोग लगाने के लिये राजमहल से भाँति-भाँति की जो खाद्य सामग्री तैयार होकर आई थी, वह भी देखने योग्य वस्तु थी।

सोलन में वार्षिक कीर्तन का उपदेश

आषाढ़ सौर 14 रविवार। कीर्तन के बाद आवश्यक काम में बाधा होने से जलपान करके ही अधिकतर लोग शिमला लौट गये। भीषण वृष्टि हो रही थी। कुछ लोग रह गये, वे खा-पीकर अपराह्न के बाद जायेंगे। माँ 10 बजे के करीब सो गई। फिर डेढ़ बजे उठ बैठी। माँ ने भक्तों के साथ

बातें की। 2–1 गाने भी भक्तों के अनुरोध से माँ ने गाये। माँ बोली– ''इस तरह 12 घण्टे का कीर्तन इस जगह और किसी ने सुना नहीं, तुम लोगों को यदि सुविधा हो तो प्रतिवर्ष इस प्रकार का कीर्तन किया जाये तो बुरा नहीं है। शोगी बाबा के नाम से प्रसिद्ध यहाँ पर एक साधु रहते थे। उन्होंने परम पद प्राप्त किया। वे ही इस मन्दिरादि का निर्माण कर गये हैं। उनकी इच्छा से ही तुम लोग यहाँ नाम–कीर्तन करने आये हो।'' मन्दिर में राधाकृष्ण की मूर्ति है। माँ ने कहा– ''मालूम होता है कि श्रीराधाकृष्ण को तुम लोगों के मुँह से नाम–कीर्तन सुनने की इच्छा हुई थी। इसी से तुम लोगों ने आकर नाम सुना दिया।'' इस प्रकार नाना प्रकार की बातें कहकर माँ आनन्द कर रही थी।

राजा के मन में अनुरूप प्रेरणा और उसके कारण राजा का अनुरोध

5 बजे के आस–पास भक्तजन शिमला को रवाना होने वाले थे। 'रानी' और 'राजा' भी माँ के दर्शनों के लिये आये। उस समय राजा ने भक्तों से अनुरोध किया कि प्रतिवर्ष आप लोग सुविधानुसार एक दिन आकर यदि इस प्रकार कीर्तन कर जाये तो हमें बड़ा आनन्द हो। माँ ने जिस समय भक्तों से प्रतिवर्ष आकर कीर्तन करने को कहा था, उस समय राजा वहाँ उपस्थित नहीं थे। राजा ने उसे सुना भी न था। माँ राजा की बातें सुनकर खूब प्रसन्न होकर बोली– ''अच्छा तो है, यदि यह शरीर (अपने शरीर को दिखाकर कह रही थी) यहाँ उपस्थित न भी रहे तो भी तुम लोग आकर कीर्तन कर सकते हो।'' सब लोगों ने कहा– ''सो न होगा माँ, तुम्हें आना ही पड़ेगा। नहीं तो कीर्तन न होगा।'' सब चले गये। माँ, रानी और राजमाता के साथ बातें कर रही थी। रानी और राजमाता को सर्वसाधारण लोग न देख सकें इसलिये माँ एक कमरे में दरवाजा बन्द कर उनके साथ बैठी। उनके चले जाने के बाद रात में करीब 10 बजे माँ सो गई। हम लोग भी अपने–अपने कम्बल लेकर माँ के चारों ओर सो गये।

श्री श्री माँ के भाव में परिवर्तन – पहले के कठोर वैदान्तिक भाव के स्थान पर इस समय प्रेम से लबालब भाव

आषाढ़ 15 सौर, सोमवार। आज माँ लगभग 10 बजे तक सोई रही। आज माँ का खाने का दिन है, इसलिये मैंने माँ को पुकारकर जगाया। माँ

का शरीर मानो पस्त है। कीर्तन का असर चल रहा है। शिमला के कीर्तन के बाद से ही माँ के भाव में विचित्र परिवर्तन देख रही हूँ। बहुत पहले माँ का जैसा अन्यमनस्क भाव रहता, दोनों आँखे लाल और सजल रहती, मुख लाल आभा से दमकता रहता वैसा ही इस समय भी देख रही हूँ। 4-5 वर्ष यह भाव बहुत कम रहा। इन कतिपय वर्षों में खूब चटपटे भाव रहे। कभी खूब गम्भीर भाव, वेदान्त का उपदेश ही कर रही हैं। ज्ञानवादियों के समान कठोर भाव ही अधिकतर दिखाई देता। इधर फिर भाव में मानों अस्थिर ही बहुधा अपने भाव से ही नाच-नाचकर कह रही हैं-**"जय राधे जय राधे।"** हाथ-पैर के तलुवे इतने लाल हैं कि मालूम होता है मानो सिन्दूर चुपड़ा हो। हाथ पर हाथ रखते ही मालूम होता है कि वह मानो मोटा और खूब नरम हो गया है, खाने को बैठी हैं, उस समय भी यह भाव है, इसलिये खा नहीं सकती हैं। दोनों आँखें आँसुओं से डबडबाई हैं। मुख में हास्य-रेखा लगी है। क्या मधुर हँसी है, जिसने नहीं देखी वह उसकी मधुरिमा समझ नहीं सकेगा। मैं कहती हूँ, "माँ, खाना तो कुछ भी नहीं खाया।" किन्तु माँ हँसते-हँसते कह रही हैं, 'जय राधे जय राधे' और दोनों हाथों से ताली बजा रही हैं। महाआनन्द है। हम लोगों को चिन्ता हो रही है, शरीर कैसे टिकेगा? किन्तु करें क्या? उनके भाव में हस्तक्षेप करने का सामर्थ्य किसमें है। कह रही हैं- "तुम लोगों के सद्भाव से काम करने पर ही मेरा शरीर अच्छा रहेगा। इसे खाने से क्या होगा?"

शिमला के एक लड़के का माँ और भोलानाथजी का फोटो ग्रहण (सं. 1993 वि. 16 सौर आषाढ़)

आषाढ़ 16 सौर, मंगलवार। आज भी माँ सवेरे थोड़ा टहल आई हैं। आते ही मैंने मुख-हाथ धुला दिये हैं। कुछ देर अपनी इच्छानुसार चहल-कदमी करके लेट गई। दोपहर को माँ बैठी ही हैं। भक्त लोगों का माँ के दर्शनों के लिये आना-जाना लगा है। अपराह्न के बाद एक लड़का आया। वह स्वयं ही माँ का फोटो खींच ले जाने वाला था। माँ और भोलानाथजी उसके साथ फोटो खिंचवाने गये। इधर रानी और राजमाता आकर माँ की प्रतीक्षा में बैठी हैं। माँ लौट आई। उनके साथ बातें करते-करते रात के 9 बज गये। वे चली गई। रात में 10 बजे के अनन्तर माँ सो गई। हम लोग भी माँ के बिछौने के किनारे ही कम्बल बिछाकर सो गये।

श्री श्री माँ की प्रेरणा से समागत उत्तर तथा पश्चिम प्रान्त की महिलाओं द्वारा नाम–कीर्तन

आषाढ़ सौर 17, बुधवार। आज माँ प्रात:काल टहलने बाहर नहीं गई। अपनी इच्छानुसार कभी बैठ रही हैं, कभी लेट रही हैं। कभी खड़ी होकर टहल रही हैं। जनता जो आ रही है, सभी के साथ 2–4 बातें कर रही हैं। दोपहर में महिलायें सब आई। अल्मोड़ा की, कश्मीर की, सभी देशों की महिलायें उपस्थित हुई। बंगाली यहाँ नहीं हैं, यह कहना ही पड़ेगा। माँ कह रही हैं– "तुम लोग कीर्तन करो। खाली मुँह बैठे रहना ठीक नहीं है।" मुझसे माँ ने कहा– "तुम पहले बोल दो, वे लोग साथ–साथ कहें।" यह कहकर माँ ही पहले नाम बोलने लगी। साथ में हम सब लोग भी नाम–कीर्तन करने लगे। थोड़ी देर बाद ही माँ चुप हो गई। माँ के आदेश से हम कीर्तन करने लगे। बहुत देर तक कीर्तन हुआ। एक बात मैं यह देख रही हूँ कि शिमला के नाम–कीर्तन यज्ञ के बाद से माँ के निकट रोज ही कुछ न कुछ नाम–कीर्तन हो रहा है। कभी राम–नाम कीर्तन, कभी हरि–नाम–कीर्तन और कभी माँ–नाम–कीर्तन सभी होते हैं। अपराह्नोत्तर प्रतिदिन के समान ही राजा, रानी, दोनों राज–मातायें परिचारिकाओं के साथ माँ के दर्शनों के लिये आई। बातचीत में लगभग 9.30 बज गये। वे लोग माँ को प्रणाम कर विदा हुये। माँ खड़ी होकर टहल रही हैं और उपस्थित सब लोगों के साथ बातचीत कर रही हैं। रात्रि में करीब 10 बजे माँ सो गई।

श्री श्री माँ की रात्रि बिताने की प्रणाली

कभी–कभी माँ लेटते ही एकदम चुप रहती हैं फिर हिलती–डुलती भी नहीं। फिर कभी–कभी सो तो गई पर थोड़ी देर बाद ही उठ बैठती हैं। कहती हैं– "आज सोने का भाव ही नहीं है। कभी–कभी तो रातभर बैठे–बैठे झूमती हैं। किसी–किसी दिन हम सब सोए हैं। माँ धीरे–धीरे उठकर टहलती हैं। कभी–कभी जाग उठती तो मुझे यह दृश्य दिखाई देता। पर कभी–कभी तो जानती भी नहीं। दूसरे दिन माँ के मुँह से रात्रि का समाचार मिलता।

* * *

चौंतीसवाँ अध्याय

अरबी का पेड़ देखकर एकाएक अरबी का शाक खाने की इच्छा

आषाढ़ सौर 18, बृहस्पतिवार। आज माँ को खाना नहीं है। लगभग 9 बजे तक सोई रही। तदनन्तर उठी। मैंने हाथ-मुँह धुला दिये। कपड़े बदलते-बदलते एकाएक खिड़की के पास जाकर बाहर पहाड़ पर कुछ दूरी पर अरबी का पेड़ देख बोल उठी- ''ऐ देख, अरबी का पेड़। अरबी का शाक खाऊँगी।'' यह कहकर हँस उठी। हम सब हँस पड़े।

नाम-जप और कीर्तन के सम्बन्ध में श्री श्री माँ का उपदेश

तदनन्तर धीरे-धीरे महिलाओं का आना आरम्भ हुआ। माँ ने सबसे अपने साथ नाम-कीर्तन कराया। माँ केवल नाम वितरण कर रही हैं। सभी से केवल कह रही हैं, ''नाम-कीर्तन करो, नाम के जप और कीर्तन से सब कुछ होता है।'' एक व्यक्ति ने कहा- ''माँ, नाम-जप और कीर्तन से क्या होता है?'' माँ ने कहा- ''नाम-जप से चित्त शुद्ध होता है। वह स्थान भी पवित्र होता है। कीर्तन से ही, जो कीर्तन करता है, उसका चित्त शुद्ध होता है। जहाँ पर कीर्तन होता है, वह स्थान पवित्र होता है। जो कीर्तन सुनता है वह भी पवित्र होता है।''

श्रीभगवान् का स्मरण करने के लिये यथासम्भव दैनिक समय निर्दिष्ट कर रखना चाहिये

किसी को तीन घण्टे, किसी को दो घण्टे, किसी को एक घण्टा, किसी को आधा घण्टा (24 घण्टों में) समय, उनके लिये देने को माँ कह रही थी। इसके अलावा माँ 24 घण्टों में प्रतिदिन निर्दिष्ट 10 मिनट देने को कह रही थी। माँ ने सभी के प्रति कहा- ''प्रतिदिन ही किसी एक नियत समय में 10 मिनट भगवान की प्रार्थना करनी चाहिये। यदि सांसारिक झंझटों के कारण एक जगह चुप होकर न बैठ सको तो भी कम से कम उस नियत समय पर मौन रहकर (हाथों से काम करो) जिसकी जैसी अभिरुचि हो, उनका स्मरण करो। इसमें शुद्ध-अशुद्ध का विचार नहीं है। कपड़े बदलकर

पवित्र होने की जरूरत नहीं है। यहाँ तक कि उस नियत समय पर यदि पाखाना जाओ तो भी कोई रुकावट नहीं है। वहाँ बैठकर ही 10 मिनट उनकी प्रार्थना करो। समझ लो कि ये 10 मिनिट उनको दे दिये हैं। पशु-पक्षी जिस तरह नियत समय पर पुकार उठते हैं। किसी विघ्न-बाधा से रुकते नहीं, तुम लोग भी उसी प्रकार एक नियत समय उन्हें देने की चेष्टा करो। यह समय मैंने उनके अर्पण किया है, ऐसा भाव रखो।''

इन सब उपदेशों का मधुरतम वास्तविक फल

माँ के इस मधुर उपदेश का ऐसा सुन्दर फल हुआ कि सम्भवत: किसी का स्वामी किंवा पुत्र मर गया है। उसका शव तक घर में पड़ा है अथवा किसी का सत्कार किया जा रहा है। उस समय भगवत् स्मरण के लिये नियत किया हुआ दस मिनट का समय ज्यों ही हुआ त्यों ही माँ के उपदेश का स्मरण कर वह उठ बैठी, दस मिनट नाम स्मरण करने लगी। दस मिनट के बाद फिर रोना-धोना। माँ ने जो कहा है- ''स्मरण रखो कि यह समय उनके अर्पण किया है।'' इस भीषण शोक में भी उनकी उस वाणी का स्मरण कर वह आदेश पालन करने की चेष्टा रही है।

श्री श्री माँ के इसी प्रकार के अन्यान्य उपदेश

माँ ने कह दिया है- ''तुम लोग सांसारिक सुख-दु:ख में उस समय उन्हें पुकारना कदापि न भूलना। स्मरण रखो, यह समय उनके अर्पण कर दिया गया है।'' माँ ने आगे कहा- ''शुद्ध बन्धन स्वीकार किये बिना अशुद्ध बन्धन नहीं छूटेगा।'' घर-घर उनके इस अमूल्य उपदेश का पालन करने की चेष्टा हो रही है। माँ कहती हैं- ''देखो एक निश्वास का तो विश्वास नहीं है, इसका मन में ध्यान रखकर उनका स्मरण करो, आयु तो पूरी हो आई, प्रत्येक निश्वास में आयु क्षीण हो रही है।'' ये सब उपदेश माँ सदा ही देती रहती हैं।

श्रीकृष्णलीला अप्राकृत लीला है – प्रकृति से परे हुये बिना यह समझ में नहीं आ सकती

रात्रि में लगभग 10 बजे माँ लेट गई। श्रीयुत् भाई वीरेन्द्रजी के साथ विविध बातें होते-होते कृष्णलीला की चर्चा छिड़ी। माँ बोली- ''यह जो

कृष्णलीला है, यह अप्राकृत लीला है। जब तक प्रकृति के स्तर से ऊपर न उठा जा सके तब तक समझ में ही नहीं आ सकती। इस लीला में प्रकृति का अधिकार नहीं है। जो लोग प्रकृति के अधीन हैं, वे केवल अपने भाव से इस लीला का रस लेने की चेष्टा करते हैं। किसी के मुख से मैंने सुना है, सब ऋषियों ने गोपियों के रूप में जन्म लिया।''

श्रीकृष्ण और गोपियाँ वास्तव में एक ही हैं – पहले की वासना से उत्पन्न प्रारब्ध से ऋषियों का प्रादुर्भाव होना है – पूर्ण वैष्णवों का लक्षण

भाई वीरेन्द्रजी ने कहा –''माँ ऋषिगण तो ब्रह्मज्ञानी होते हैं, फिर उन्हें इस लीला में योग देने की वासना कहाँ से हुई? फिर यह कहा जाता है कि जो ब्रह्मज्ञ हैं वे ब्रह्मस्वरूप ही हैं। इसलिये कृष्ण में और ऋषियों में भेद नहीं है। फिर यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं ही नाना मूर्तियाँ धारण कर लीलाएँ की। गोपी और कृष्ण एक ही थे।'' माँ बोली– ''यह तो सच्ची बात है। फिर वासना कहाँ से आई, इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि पहले की वासना ही प्रारब्ध के रूप से काम करती है। जीवन्मुक्त अवस्था में तो कोई वासना रहती नहीं। किन्तु प्रारब्ध की क्रिया होती है। उससे उनको सुख–दुःख कुछ नहीं होता। किन्तु यह भी निश्चय जानो कि यह भी अखण्ड नित्य लीला है।'' माँ ने आगे कहा– ''देखो कात्यायनी की पूजा करके गोपियों ने कृष्ण को पाया। आजकल देखो वैष्णवजन क्या देवी की उस प्रकार आराधना करते हैं? परन्तु जो पूर्ण वैष्णव हैं उनके अन्दर सभी भाव पूर्णरूप से प्रकट होंगे।'' रात को लगभग 12 बजे बातें समाप्त हुई। सब लोग सो गए।

पहले दिन अरबी का साग खाने की इच्छा और दूसरे दिन एकाएक उसके साग का भोग

आज माँ का भोजन करने का दिन है। माँ लगभग 7 बजे तक सोई रही। कभी–कभी खाने के दिन (कल माँ ने जल तक ग्रहण नहीं किया है, यह सोचकर आज उठते ही यह (मैं) खाने को कहेगी इसलिए) चुप–चाप आँखें मूँदकर पड़ी रहती। और कभी भोर में बहुत तड़के ही उठकर टहलने के लिए बाहर निकल जाती, 8 बजे से पहले अक्सर लौटती न थी। माँ सोई ही थी। कल अरबी का साग खाने की चर्चा छिड़ी थी। सवेरे राजमाता

ने माँ के भोग के लिए विविध प्रकार की भोजन-सामग्री भिजवा दी और आश्चर्य है कि उक्त भोजन-सामग्री में कुछ अरबी का साग भी भेज दिया। यहाँ इतने दिनों से हम लोग आए हैं किन्तु कभी अरबी का साग किसी ने दिया नहीं। उसे देखकर कल की बातों का स्मरण कर हम लोग अवाक् रह गये। हाँ, माँ की ऐसी अवस्थाएँ हमने और भी देखी हैं। माँ भी जब खाने को बैठी तब अरबी का साग देखकर हँसते-हँसते बोली- ''अरबी का साग भी है क्या? मुँह से निकलते ही तुरन्त उपस्थित हुआ।''

भोजन करने के उपरान्त माँ थोड़ा विश्राम ले रही हैं। आज माँ का शरीर विशेष अच्छा नहीं है, सर्दी-सी हो रही है। शाम के वक्त प्रतिदिन की भाँति राजा और रानी आए। राजा प्रतिदिन दिन में एक बार 11-12 बजे के समय आकर माँ के चरण दर्शन कर जाते हैं; फिर सायंकाल आते हैं। रात में लगभग 8 बजे के समय वे चले गये। माँ थोड़ी देर बातें कर करीब 10 बजे सो गई।

अपने शरीर की बीमारी के सम्बन्ध में श्री श्री माँ की उक्ति

दूसरे दिन माँ का उपवास था। प्रात:काल उठकर थोड़ा घूम आई। तदनन्तर लेट गई। दोपहर के समय उठी। महिलाएँ भी बहुत-सी आई। माँ बातचीत करने लगी। थोड़ा कीर्तन हुआ। शाम के समय राजा-रानी आए। रात में लगभग 8.30 बजे वे चले गये। सर्दी से माँ का शरीर अच्छा नहीं है, बैठी हैं। ज्वर-सा मालूम हो रहा है। हँसते-हँसते कह रही हैं- ''तुम सब लोग जैसे मेरे समीप आते हो वैसे ही ये रोग आदि की भी मूर्ति है। वे भी इस शरीर में कभी-कभी आकर क्रीड़ा करते हैं। कुछ दिन रहकर चले जाते हैं। जैसे तुम लोगों को दुतकारती नहीं हूँ तुम्हारे आने पर जैसे मुझे किसी तरह का कष्ट नहीं होता वैसे ही इन बीमारी आदि के आने पर भी मुझे कोई कष्ट नहीं होता। जब तुम लोगों को नहीं दुतकारती हूँ तो इनको ही क्यों दुतकारूँ? सब आनन्द है।'' बड़ी-बड़ी बीमारियों में भी माँ ने यही कहा। कभी भी बीमारी के समय माँ को झुँझलाते मैंने नहीं देखा है। सदा ही आनन्द में रहती हैं। कहती है, ''बीमारी का स्वरूप भी मैं स्पष्ट रूप से देखती हूँ।'' रात्रि में लगभग 10 बजे माँ लेट गई। लेटे-लेटे एक आध भजन गाती रहीं। बहुत देर बाद चुप होकर आँखे मूँद ली।

भक्तवत्सला श्री श्री माँ हृदय की मौन अधीर प्रार्थना पूर्ण करने वाली हैं – पंजाबी महिला के हाथ से अपने आप भोग–ग्रहण

आज माँ के खाने का दिन है। माँ सवेरे थोड़ा टहल आई हैं। टहलकर लौट आने के बाद मैंने माँ के हाथ–मुँह धुलाकर थोड़ा दूध और फल दिया। आज एक पंजाबी स्त्री माँ के लिये खाना ले आई है। उसकी माँ के ऊपर बड़ी श्रद्धा है, माँ के लिये वह बड़ी अधीर रहती है। उक्त स्त्री खाना लाकर बैठी है। लगभग 10 बजे का समय होगा, हम लोगों की रसोई उस समय तक नहीं हुई थी। किन्तु माँ हमारी रसोई की प्रतीक्षा न कर उक्त स्त्री के हाथ से ही, वह जो लाई थी, उसे लेकर खा–पीकर बैठकर गई। बोली– ''वह बैठी हैं, वह खिलाये बिना जायेगी नहीं।'' थोड़ा–सा ही खाया। किन्तु वह स्त्री कृतार्थ हो गई। उसने कहा– ''इस भोग को ग्रहण करें इसके लिये सवेरे से बाल–बच्चों के साथ में कितनी प्रार्थना कर रही हूँ।'' माँ भी अपार कृपामयी हैं। माँ ने विलम्ब किये बिना उनका परिष्कृत भोग अपने आप ग्रहण किया और कहा– ''यह तरकारी अद्भुत स्वादिष्ट हुई है, रोटी बड़ी सुन्दर है।'' इधर हम सब लोग सोच रहे थे, ''रसोई होते ही यदि माँ हम लोगों के साथ ही खाने को बैठती तो उत्तम होता। इतनी जल्दी क्यों कर रही होंगी?'' किन्तु हमारी माँ तो अन्तर्यामिनी हैं। उन्हें मालूम हुआ कि इस पंजाबी महिला का हृदय माँ को खिलाने के लिये कितना अधीर है, साहस करके विशेष कुछ बोल भी नहीं पा रही है। इसलिये माँ विलम्ब न कर खाने को बैठ गई। हम लोगों से भी माँ ने कहा– ''तुम लोग रसोई में प्रस्तुत सब वस्तुयें रख दो। मैं शाम को खाऊँगी।'' माँ समझ रही थी कि यहाँ की रसोई न खाने से इन लोगों को दुःख हो रहा है, इसी से उन्होंने यह बात कही। खा–पीकर बिस्तर पर जाकर लेट गई। लगभग 5 बजे के समय हम लोगों की रसोई की वस्तुओं से भोग लगाया गया। उसे भी माँ ने थोड़ा ग्रहण किया।

सोलन छोड़ने का प्रस्ताव एवं भक्तों को विशेष दुःख

आज जाने की चर्चा चली। निश्चय हुआ कि कल यहाँ से रवाना हो जायेंगे। यहाँ के राजा माँ के परम भक्त, अति सच्चरित्र और निष्ठावान् हैं। माँ के जाने का वृतान्त सुनकर राजा को बड़ा दुःख हुआ, किन्तु उन्हें

रोकने का साहस नहीं हुआ। केवल माँ से प्रार्थना की, कि मुझे पुनः दर्शन मिले। डॉक्टर मदनमोहन जोशी ने आकर यह वृतान्त सुना तो उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ। महिलायें सब आई। आश्चर्य की बात है कि पहाड़ी स्त्रियों को केवल इन्हीं चन्द दिनों में माँ के दर्शनों का अवसर मिला, इतने ही दिनों में माँ के जाने की बात से उन्होंने रोना आरम्भ कर दिया। माँ ने हँसते-हँसते बहुत कह-सुनकर उन्हें समझाया। साथ-ही-साथ विविध उपदेश दिये। अमूल्य उपदेश पाकर अनेक लोग कृतार्थ हुये। उन्होंने अपने को धन्य समझा (यद्यपि कार्यरूप से पूर्णतया हम लोग माँ के उपदेश का परिपालन कर उन्नति नहीं कर सकते)। शाम को रानी और राजमाता आई। माँ एक कमरे में दरवाजा बन्द कर उनके साथ बैठी। एक आदमी माँ को कीर्तन सुनाने आये। उन्होंने दूसरे कमरे में बैठकर माँ को कीर्तन सुनाया। लगभग 10 बजे सब चले गये।

सोलन छोड़ने के पहले माँ और भाई वीरेन्द्रजी का मधुर संलाप

माँ बिस्तर पर लेटे-लेटे भाई वीरेन्द्रजी के साथ विविध वार्तायें कर रही थी। वीरेन्द्र दादा ने कहा- ''मैंने शिमला में सबसे कह दिया है कि माँ एक यन्त्र के सदृश हैं। जो जिस प्रकार बजायेगा उसे वैसा ही शब्द मिलेगा। जिस-जिस भाव को संग लाकर माँ के साथ जिस तरह की बातें करेंगे माँ भी उसे समझ जायेंगी, उनके साथ उसी तरह की बातें करना आरम्भ करेंगी। यदि कोई आकर गप-शप करता है तो माँ भी उसके साथ खूब गप-शप ही करती हैं। यदि कोई अपने को सन्तान समझकर सन्तान-भाव से आता है तो आप देखेंगे कि उनके साथ माँ मातृ-भाव से बातें कर रही हैं। यदि कोई शिष्य-भाव लेकर आते हैं तो माँ उनके साथ गुरुभाव से ही बातें कर रही हैं। माँ इन सब बातों को सुनकर हँसने लगी।

श्री श्री माँ स्वातन्त्र्यरहित एक प्रकार का यन्त्र हैं, श्री श्री माँ नाम-कीर्तन की उपदेशिका हैं

माँ लेटे-लेटे गाने लगी, **''गौरी शंकर सीताराम, हरे कृष्ण हरे राम।''** भाई वीरेन्द्रजी ने हँसकर कहा-` ''मैं शिमला में सबसे कह ही सकता था कि माँ दीक्षा देती हैं।'' यदि कह देता तो तुम्हें छुटकारा पाने का कोई उपाय न था, सभी तुम्हें दीक्षा के लिये धर पकड़ते। यह जो नाम का गान करती

हैं, यही तो नाम का वितरण है। जिसकी इच्छा हो वही मन्त्ररूप में ले सकता है।'' माँ सुनकर हँसने लगी। फिर एक आदमी के भाव के सम्बन्ध में बातें हुई। भाई वीरेन्द्रजी ने कहा- ''जो सन्तान समय की प्रतीक्षा न कर खाने की वस्तु के लिये माँ को अधीर कर डाले, वही जल्दी-जल्दी खाने की वस्तु पाता है।''

श्री श्री माँ निर्भर और चुप रहने वाली सन्तान के प्रति अधिक वात्सल्य रखती हैं

माँ बोली- ''और जो लड़का माँ को क्रोधित नहीं करता, चुपचाप बैठे हुये माँ की राह देखता है, माँ का ध्यान उसी की ओर अधिक आकृष्ट होता है। उसी को यथासम्भव शीघ्र खिला देती हैं। इसलिये साधना दो प्रकार की होने पर भी फल एक ही है।'' विविध प्रकार की बातों के बाद रात को लगभग 12 बजे माँ चुप होकर सोई।

सोलन से देहरादून गमन

आज सौर आषाढ़ 2 जुलाई, बृहस्पतिवार है। आज सोलन से माँ के साथ सब लोगों के रवाना होने का निश्चय है। सन्ध्या को सब रवाना होंगे। 1 बज चुका है। माँ सोई हैं। लगभग 1.30 बजे माँ उठी। कहाँ जाना होगा, यह निश्चय नहीं हो रहा है। एक बार काश्मीर की बात भी चली। दोपहर में देहरादून से फोन आया। एक बार माँ से देहरादून आने के लिये विशेष अनुरोध के साथ हरीराम बाबू फोन कर रहे हैं। माँ हम लोगों के साथ देहरादून को रवाना हुई। श्री भाई वीरेन्द्रजी, बच्चू रास्ते से ही चले जायेंगे। कॉलेज खुल जाने के कारण वे वापस जा रहे हैं। माँ, मैं, भोलानाथजी और स्वामी अखण्डानन्दजी देहरादून को रवाना हुये। रवाना होने के थोड़ी देर पहले शिमला से कई भद्र पुरुष वहाँ आ पहुँचे। वे लोग माँ को शिमला ले जाने के लिये आये थे। वहाँ उन्होंने दूसरी बार नाम-कीर्तन का बन्दोबस्त किया है। आगामी आषाढ़ 21 सौर रविवार नाम-कीर्तन यज्ञ का दिन निश्चित किया है। बहुत कहने-सुनने के अनन्तर यह स्थिर हुआ कि आज सब देहरादून को रवाना हो चुके, इसलिये उधर ही जायेंगे। शुक्रवार को देहरादून पहुँचेंगे, शनिवार को फिर रवाना होकर रविवार को 10 बजे तक शिमला पहुँच जायेंगे, जिससे नाम-कीर्तन-यज्ञ आरम्भ किया जा सके।

वैसा ही हुआ। राजा की मोटर से रात को लगभग 9 बजे हम लोग कालका को रवाना हुए। वहाँ से रात को 12 बजे की गाड़ी पकड़कर दूसरे दिन (आषाढ़ 19 सौर 3 जुलाई, शुक्रवार) लगभग 11 बजे देहरादून आश्रम में पहुँचे।

* * *

पैंतीसवाँ अध्याय

3 जुलाई, 1936 शुक्रवार–आज हम लोग माँ के साथ सोलन से देहरादून आये। यह तय हुआ है कि कल 20 तारीख को फिर शिमला जाना होगा। माँ की आज्ञा से ज्योतिष दादा इतने दिनों से यहीं थे। इतने दिनों बाद माँ के चरणों के दर्शन किये। देहरादून के भक्त भी धीरे-धीरे आकर माँ के दर्शन करने लगे। करीब डेढ़ महीने बाद माँ लौटी हैं। उत्सव के बाद माँ अचानक चली गई थी, किसी को खबर भी नहीं थी। आज माँ आई हैं, सुनकर सभी आ रहे हैं। आज माँ के भोजन का दिन था। माँ ने खाने-पीने के बाद जरा-सा आराम किया। सर्दी और बुखार भी खूब मालूम होता था। सभी ने जब यह सुना कि माँ अगले दिन ही चली जायेंगी तो उनकी प्रसन्नता में विघ्न पड़ गया। परन्तु माँ के खयाल में जो आ जाय उसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता था। केवल भोलानाथजी के अनुरोध से कभी-कभी कुछ परिवर्तन अवश्य हो जाता था। बड़ी रात बीतने पर सब अपने-अपने घर चले गये। माँ सो गई।

4 जुलाई शनिवार

सवेरे ही उठकर माँ थोड़ा-सा अहाते में ही घूम आई। आज शाम को 6 बजे की गाड़ी से माँ की शिमला जाने की बात थी। झुंड-के-झुंड लोग माँ के दर्शन कर रहे थे। माँ भी सबसे कुशल-मंगल पूछ रही थी। अनेक मधुर बातों से सबको संतुष्ट कर रही थी। साधारण बातों में ही उपदेश दे रही थी। देखते-देखते जाने का समय हो गया। इस बार ज्योतिष दादा भी हमारे साथ चले। शारदा, लक्ष्मी, हरिराम, हंस आदि अनेक लोग स्टेशन आये थे। माँ को फिर कब देखेंगे यह सोचकर सभी उदास थे। हम लोग 6 बजे की गाड़ी से देहरादून से रवाना होकर सवेरे कालका पहुँचे, वहाँ से मोटर द्वारा शिमला रवाना हुए।

5 जुलाई, रविवार

रास्ते में ही डॉक्टर जोशी से सोलन में भेंट हुई। सुना कि माँ की

शिमला जाने की खबर पाकर राजा साहब भी शिमला जा रहे थे। माँ और हम चले गये। बाद में सोलन से और सब लोग आ पहुँचे। करीब 10 बजे हम लोग शिमला पहुँचे। रास्ते के किनारे ही पंचू बाबू, जितेन्द्र बाबू आदि भक्त खड़े थे। माँ को देखते ही वे लोग बड़े आनन्द से माँ को मोटर से उतारकर रिक्शा में ले गये। मैं भी रिक्शा में गई। रास्ते से ही नाम–कीर्तन की ध्वनि सुनाई देती थी। माँ श्रीकाली–मन्दिर में पहुँची। भक्त लोग महाआनन्द से खूब ऊँचे स्वर में नाम–कीर्तन करने लगे। सबने आकर माँ और भोलानाथजी के चरणों की धूल ली। माँ जाकर कीर्तन के पास मन्दिर के बरामदे में बैठ गई। बड़ा सुन्दर कीर्तन हो रहा था। माँ अपना भाव सम्हाले हुए चुपचाप बैठी थी। मैंने देखा कि हर साल जिस प्रकार भाव सहित नाम–कीर्तन यज्ञ का प्रबन्ध होता था, माँ की कृपा से उसमें कोई कमी नहीं पड़ी थी। माँ कुछ देर बाद उठकर स्त्रियों को साथ लेकर काली माँ के मन्दिर में घूमकर कीर्तन करने लगी। सन्ध्या को नाम–कीर्तन समाप्त हुआ। सब लोग माँ से बातचीत करने के लिये माँ के कमरे में आकर बैठ गये। माँ कहने लगी– ''खूब कीर्तन किया, बड़ा आनन्द दिया।'' स्थिर हुआ कि कल स्त्रियाँ माँ के पास कीर्तन करेंगी।

6 जुलाई, सोमवार–आज सवेरे माँ बाहर नहीं गई। आज 12 बजे से स्त्रियों के कीर्तन की बात थी। खूब पानी बरस रहा था। कोई आ नहीं सका। किन्तु बात निश्चित रखने की ओर माँ का खूब ध्यान था। माँ, मैं और दो छोटी–छोटी लड़कियाँ उपस्थित थी। इन्हीं तीनों जनों को लेकर माँ 12 बजते ही कीर्तन के कमरे में पहुँच गई और दोनों लड़कियों के साथ मुझे कीर्तन आरम्भ करने की आज्ञा दी। कीर्तन आरम्भ हो गया। धीरे–धीरे स्त्रियाँ आकर कीर्तन में शामिल होने लगी। बड़ा ही आनन्द था। आज भी माँ सबके साथ घूम–घूमकर कीर्तन करने लगी। माँ के भाव में थोड़ा परिवर्तन दिखाई देने लगा। नाच–नाचकर घूम–घूमकर कीर्तन कर रही थी। सभी के साथ घूम रही थी। माँ के हाथ–पैर ठण्डे हो गये और नेत्र स्थिर हो गये। अचानक माँ पृथ्वी पर गिर पड़ी। मैंने पकड़कर साध लिया, चोट नहीं लगी। गिरते ही फिर गिरती–पड़ती उठकर खड़ी हो गई। हवा के साथ–साथ मानो शरीर हिलता था। शरीर में जरा भी बोझ नहीं जान पड़ता था। मानो हवा में शरीर को छोड़ दिया है। शरीर हवा के साथ कभी इधर, कभी उधर

कागज या कपड़े की तरह उड़कर गिरता था। आज बहुत जल्दी खड़ी होकर अपने को संभाल लिया, फिर कीर्तन करने लगी। स्वयं नाम–कीर्तन कराके दूसरों से कराती थी। कभी हाथ से ताली बजाकर, कभी हाथ उठाकर, कभी किसी का गला पकड़कर माँ कीर्तन में नाचती थी। भाव से गद्गद अवस्था थी। आँखें दोनों लाल थी और जल भरा था। वह अवस्था बिना देखे समझ में नहीं आ सकती। कोई–कोई **श्रीचैतन्य देव** की तरह उन्हें देखते थे। 5 बजे कीर्तन समाप्त हुआ। मिठाई और बताशे बाँट दिये गये।

माँ कमरे में आकर बिछौने पर बैठी थी। बाबू लोग आकर माँ के पास बैठते थे। बात उठी कि माँ अगले दिन सोलन चली जायेंगी। बहुत से लोग बाधा डालने लगे। एक व्यक्ति ने कहा– ''माँ तुमने स्त्रियों का जो कीर्तन आरम्भ किया है, उसे कुछ दिन रहकर स्थायी किये जाओ।'' एक व्यक्ति कहता था कि, ''कल कैसे जाना होगा, पिछले रोज तो हम लोगों ने दिनभर कीर्तन ही किया। आज भी तुम स्त्रियों सहित कीर्तन करती रही, हम लोग तो जरा देर पास बैठक़र बात भी नहीं कर पाये। यदि तुमने कल ही जाने का निश्चय किया है तो हम लोगों को सारा दिन कीर्तन में क्यों अटका रखा? तुमसे जरा देर बात भी नहीं कर सके। इसी प्रकार बहुत से लोग आपत्ति करने लगे। माँ ने कहा– ''कीर्तन ही तो मुख्य काम है, देखो, कीर्तन करते समय तुम लोग अधिकतर किसी दूसरी तरफ मन नहीं लगा सकते हो।'' एक व्यक्ति ने कहा– ''माँ तुमने आज खाया नहीं तुम बड़ी दुर्बल हो रही हो।'' माँ ने कहा– भोजन न करने के कारण जो दुर्बलता समझते हो वह नहीं है, उनसे (भोलानाथजी को और मुझे दिखाकर) पूछकर देखो जब मैं भोजन नहीं करती थी तब शरीर खूब अच्छा रहता था।'' एक व्यक्ति ने कहा– ''माँ दो साल हो गये, इस प्रकार भोजन कर रही हो। अब से रोज भोजन करना आरम्भ करो।'' माँ ने कहा– ''यह भोजन न करना तो कोई तपस्या नहीं है। मालूम होता है कि जरूरत थी इसी से हो रहा है और मैं तो बिना खाये नहीं रह रही हूँ। तुम जिस प्रकार दोपहर और रात को खाते हो तो कई घण्टे बाद खाते हो। इसी तरह मैं भी 48 घण्टे बाद खाती हूँ। मेरी समझ में वह सुबह शाम की तरह है। इसी से मैं बिना खाये तो रहती नहीं हूँ, न मैं किसी तपस्या के लिये यह करती हूँ।'' एक व्यक्ति बोला– ''माँ तुम्हारे लिये अब तपस्या

क्या है? और यह सब नियम करने की भी क्या आवश्यकता है? यह सब तो हम लोगों के लिये हैं।'' माँ इस पर बोली– ''ठीक कहते हो। पिताजी, मैं तो सब बात स्पष्ट रूप से कह नहीं पाती हूँ, तुम्हारे ही लिये यह सब है, तुम्हीं लोग करवा लेते हो।'' दूसरे एक सज्जन ने उत्तर दिया, ''यह तो सच बात है तुम जो कुछ करती हो, हम लोगों के लिये करती हो, हम लोगों की तो बिल्कुल इच्छा नहीं, फिर तुम शरीर को दुर्बल करके क्या करोगी? माँ ने कहा– ''तुम लोगों की इच्छा ना सही, मैंने ही शरीर जरा सुखा लिया तो उसमें दोष क्या हुआ? अच्छा तुम्हारी भी बात सुन ली, जल्दी ही यह नियम भी छूट सकता है। यही सब बातचीत होती थी और सब लोग कुछ दिन और ठहरने के लिये अनुरोध कर रहे थे। लेकिन माँ के रुकने का कुछ भी लक्षण दिखाई नहीं देता था। जिस समय जो कहती थी सदैव प्राय: उसी के अनुसार कहती थी।''

सात बजे शाम को पंकज बाबू माँ को अपने घर कीर्तन में ले गये। इस बार ढाका से माँ के एक पुराने भक्त (श्रीयुत् विनयभूषण वन्द्योपाध्याय) सरकारी काम से शिमला आये थे। कमलाकान्त ब्रह्मचारी भी इस बार हम लोगों के साथ देहरादून से आये थे। ज्योतिष दादा के कहने से उन लोगों ने इस बार कीर्तन में जाकर ''माँ–माँ'' नाम कीर्तन कुछ देर किया। माँ को ले जाने के कारण सभी उपस्थित लोग दु:खी थे। रात को 10.30 बजे माँ लौट आई। हर सोमवार को पंकज बाबू के घर पर कीर्तन हुआ करेगा, यह निश्चित हुआ। माँ के साथ-साथ कालीबाड़ी तक बहुत से लोग आये थे। रात को एक बजे वे लोग माँ को प्रणाम करके लौट गये।

* * *

छत्तीसवाँ अध्याय

आज माँ के रवाना होने की बात थी। परन्तु घटनाक्रम से वह रुक गई। आज नहीं जायेंगी, इससे भक्त लोगों को बड़ा आनन्द था। आज माँ के खाने का दिन था। सवेरे से ही लोग आ रहे थे और माँ के खाने की वस्तुयें ला रहे थे। माँ सभी के हाथ से थोड़ा-थोड़ा-सा खाकर सबको सन्तुष्ट कर रही थी। जो कोई जिस भाव से आता था, उसी भाव के अनुसार उससे बात करती थी। इसी से सब लोग मन में समझते थे कि माँ सबसे अधिक मुझी को प्यार करती हैं। कई लोगों ने अपने मुख से भी यही बात कही। महात्माओं में यही बात तो एक अद्‌भुत शक्ति होती है। दोपहर को सब स्त्रियाँ आई। माँ भी खा-पीकर कालीबाड़ी के ऊपर के कमरे में जाकर बैठ गई। इसी कमरे में थियेटर इत्यादि होते थे। खूब बड़ा कमरा था।

जप और साँस

इसी कमरे में आकर माँ स्त्रियों से खूब हँसकर बहुत-सी बातें कर रही थी। वे भी मोहित-सी होकर माँ के मुख को देख रही थी। दो एक भद्र महिलाओं ने माँ से पूछा कि ''माँ, मन कैसे स्थिर हो? यह खूब समझाकर बता जाइये। किसी भी तरह तो मन स्थिर नहीं होता।'' माँ ने कहा- ''तुम लोग एक काम करना, नाम जप करते समय साँस की ओर ध्यान रखना, जब मन इधर-उधर भागे तो फिर खींचकर उसे साँस की गति के साथ बाँध देना, देखोगी कि धीरे-धीरे काम बन जायेगा और मन स्थिर हो जायेगा।''

एक विषय में दृढ़ निष्ठा की आवश्यकता

फिर बहुत-सी बातें होती रही, माँ ने हँसकर कहा- ''अच्छा, एक कहानी कहती हूँ, सुनो। एक ब्राह्मण का पुत्र बड़ा ही धर्मपरायण था। उसको धन की कमी नहीं थी परन्तु उसने विवाह नहीं किया था। उसने सुना था कि अतिथि नारायण के ही रूप होते हैं, इसी से प्रतिदिन वह बिना अतिथि

सेवा किये भोजन नहीं करता था। सम्बन्धी लोगों ने उसको विवाह करने के लिए विवश करना आरम्भ किया, किन्तु वह किसी तरह राजी नहीं होता था। अन्त में उनके अनुरोध से विवश होकर उसने कहा कि तुम्हारे अनुरोध से मैं विवाह करना स्वीकार करता हूँ, किन्तु मेरी यह शर्त रहेगी कि जिस दिन मेरी स्त्री मेरी बात की अवहेलना करेगी उसी दिन मैं उसका गला काट डालूँगा। लोग इस पर भी राजी हो गये। उन्होंने सोचा कि यह केवल कहने की बात है। कहीं विवाह हो जाने पर कोई स्त्री को मार सकता है? यही समझकर सबने मिलकर उसका विवाह करा दिया। ब्राह्मण पुत्र ने पहले ही अपनी स्त्री से यह बात कह दी कि देखो प्रतिदिन तुम पहले एक अतिथि की सेवा करोगी। अतिथि की सेवा हो जाने पर मुझे भोजन करने बुलाओगी, इसके बाद तुम भोजन करोगी और अतिथि जो कुछ आज्ञा दें उसका उसी क्षण पालन करना होगा। यही मेरा आदेश है। इसकी अवज्ञा करने पर उसी समय तुम्हें काट डालूँगा। वधू बिचारी क्या करे, लड़की ही तो थी, रोज ही भोजन बनाकर बैठी रहती। किसी-किसी दिन अतिथि के आने में देर होने के कारण उसे बड़ी भूख लगती, रुलाई आने लगती किन्तु उपाय कुछ नहीं था। पति की आज्ञा का पालन करना ही होगा, नहीं तो मृत्यु अवश्य होगी। एक दिन कोई अतिथि आया ही नहीं, वधू बिचारी बैठी थी। बहुत विलम्ब हो रहा था, तभी देखा कि एक भयंकर आकृति का पुरुष मोटी लाठी के सिरे पर गाय का मस्तक बाँधकर पीठ पर लादे हुये आकर उपस्थित हुआ। उसके मस्तक से टप-टप करके रक्त बह रहा था। ऐसे अतिथि को देखकर वह डर से घबराकर सन्न रह गई किन्तु कोई उपाय नहीं था। पति की आज्ञा समझकर डरते-डरते आकर उसने अतिथि के पैर धोये और आसन देकर भोजन के लिये अनुरोध किया। अतिथि ने गम्भीर भाव से कहा कि पहले इस गाय के मस्तक को पकाकर लाओ। वधू ने कभी यह काम किया नहीं था क्योंकि वह ब्राह्मण की कन्या थी। गऊ के मस्तक को काटकर पकाने के नाम से सिहर उठी, लेकिन कोई उपाय नहीं होने के कारण उसने वैसा ही किया अर्थात् उस मस्तक को काटकर बनाया और अतिथि को भोजन करने को दिया। अतिथि ने कहा कि पहले तुझको भी यह माँस खाना पड़ेगा वरना मैं भी नहीं खाऊँगा। क्या करे! अतिथि की आज्ञा से उसने वही किया। जैसे ही उसने माँस को उठाकर मुँह में डालना चाहा वैसे ही अतिथि ने रोककर कहा कि

ठहरो पहले अपने स्वामी को बुला लाओ। वधू स्वामी को बुलाने चली गई। जाते समय मन में सोचती जाती थी कि इतना करने पर भी न जाने क्या कमी रह गई जो स्वामी को बुलाने भेज रहे हैं। कमी होने के कारण मेरे स्वामी अवश्य ही मुझे काटकर फेंक देंगे। जाने दो मुझे तो स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही है। यही सोचकर उसने स्वामी के पास जाकर अतिथि का आदेश कह सुनाया। स्वामी ने पूछा कि अतिथि का भोजन हो चुका? वधू ने कहा, नहीं। उन्होंने तुम्हें बुलाने को भेजा है। स्वामी ने सोचा कि आज अवश्य ही कोई त्रुटि हो गई है। स्वामी और स्त्री दोनों ने अतिथि के भोजन के स्थान पर आकर देखा कि उसी आसन पर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति है। ये मूर्तियाँ ही उनकी उपास्य देवता थी। उनके दर्शन से उनको उसी समय मुक्ति प्राप्त हुई।''

माँ इसी प्रसंग पर कहने लगी कि ''किसी एक विषय में दृढ़ निष्ठा होने से ही काम होता है। बिना विचारे आज्ञा-पालन करने की आवश्यकता है।''

एक को पकड़ लेने से सब हो सकता है

माँ ने और भी एक कहानी कही। एक आदमी चोरी करने जाता था। चोरी ही उसकी जीविका थी। वह एक दफा एक साधु के पास दीक्षा लेने गया। साधु ने उसे दीक्षा देकर कहा कि ''अब तुम झूठ मत बोलना और चोरी भी मत करना।'' उसने गुरु की आज्ञा से चोरी करना बन्द कर दिया। झूठी बात भी नहीं बोलता था। उसकी जीविका का कोई और उपाय था ही नहीं। कुछ दिन बाद साधु ने देखा कि बिना भोजन के चोर का सारा परिवार मर जायेगा। तब साधु ने कहा कि ''अच्छा, तुम चोरी करके अपने परिवार का पालन करो किन्तु झूठ नहीं बोलना।'' वह गुरु के आदेश से चोरी करने लगा, किन्तु झूठ नहीं बोलता था।

एक दिन वह चोर राजा के यहाँ चोरी करने गया। राजा ने आहट सुनी, उन्होंने भी जाने क्या सोचकर गुप्त रूप से मामूली पोशाक पहनकर उसी चोर के पास जाकर कहा कि ''देखो भाई, मैं भी चोरी करने आया हूँ किन्तु मेरा इस काम का आरम्भ आज से ही है, इसलिये तुम हमें सिखा देना। जो कुछ मिलेगा उसका दो हिस्सा तुम ले लेना और एक

हिस्सा मुझको दे देना।'' वह भी राजी हो गया। राजा बाहर खड़ा था और वह चोर भीतर जाकर राजा का सन्दूक तोड़कर मोहरों की थैली बाहर निकाल रहा था। उसने ऐसे हिसाब से मोहर निकाली कि जिससे ठीक-ठाक एक भाग राजा को दिया जा सके। सवेरा होते देख जल्दी से उसने बाहर आकर एक भाग राजा के पास डालकर बाकी दो भाग लेकर अपना रास्ता पकड़ा। राजा ने सभी कुछ देखा। कुछ ही दूर जाने पर राजा के आदमियों ने उसको पकड़ लिया। दूसरे दिन राज-सभा में राजा ने उस चोर को दण्ड का निर्णय करने के लिये बुलाया। राजा ने पूछा, तुमने चोरी की है? उसने उत्तर दिया, ''हाँ महाराज, मैंने चोरी की है। राजा ने पूछा कि तुमने क्या पाया है? उसने जितनी मोहरें पाई थी उनकी संख्या ठीक-ठीक बतला दी। राजा ने देखा कि यह आदमी बिल्कुल सच बात कह रहा है। जो चुराया है वह ठीक-ठीक बता रहा है। राजा ने फिर पूछा कि तुम्हारे पास तो इतनी ही मोहरें है और बाकी मोहरों का क्या हुआ? उसने सब हाल बताकर कहा कि वह आदमी बाहर खड़ा था, मैं एक भाग उसके पास डालकर चला गया। राजा ने वे सब मोहरें भी मँगाई और देखा तो मालूम हुआ कि चोर ने एक बात भी झूठ नहीं कही थी। राजा ने पूछा कि यदि तुम चाहते तो जो कुछ तुमने पाया था उसका एक भाग साथी को ना देते। तुम चोर थे, चोरी ही तुम्हारा धंधा है, तुमने और ज्यादा क्यों नहीं लिया? तब वह चोर कहने लगा कि, ''महाराज, यह सच है कि मैं चोर हूँ, लेकिन मेरे गुरु ने झूठ बोलने को मना कर दिया है। इसीलिये मैं झूठ नहीं बोलता। चोरी न करने से हमारी जीविका का निर्वाह नहीं होगा, यह समझकर उन्होंने चोरी करने की इजाजत दे दी है। लेकिन झूठ बोलने को मना कर दिया है। इसी से मैं अपने साथी से जो कुछ कह चुका था उसके विरुद्ध नहीं कर सकता था। आपसे भी एक अक्षर झूठ नहीं बोल रहा हूँ। तब राजा ने उस आदमी की सत्यवादिता और गुरु के प्रति निष्ठा देखकर कहा कि आज से तुम्हारे परिवार का भार मैं लेता हूँ, तुम चोरी भी छोड़ दो। तभी से उसने चोरी छोड़ दी और राजा को प्रणाम करके चला गया और गुरु-सेवा में अपना जीवन लगाकर मुक्ति प्राप्त की।''

माँ यह कहानी सुनाकर कहने लगी, ''देखो, एकमात्र सत्य का आश्रय लेने से सत्य ने ही उसकी सब ओर से रक्षा की। एक ही को पकड़ लेने से धीरे-धीरे सब हो जाता है।''

माँ ने और भी एक कहानी कही, वह यह है-

एक राजा था। उसे धन-दौलत की कोई कमी नहीं थी किन्तु फिर भी उसे जरा-सी भी शान्ति नहीं मिलती थी। उसने लोगों के मुँह से सुना कि गुरु से मंत्र लेकर काम करने से शान्ति मिलती है। तब वह कुलगुरु की खोज करने लगा। इतने दिन से गुरु की कोई खबर नहीं ली थी। गुरु बेचारे बड़ी दीन दशा में दिन काट रहे थे। राजा ने उन्हें स्मरण किया है, यह जानकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। गुरु ने आकर राजा को विश्वास दिलाया कि उनसे मंत्र लेकर जप-तप आदि साधन करने से शान्ति मिलेगी। गुरु ने शुभ दिन देखकर राजा को मंत्र दिया और उसी उपलक्ष्य में गुरु की आर्थिक दशा बदल गई, परन्तु गुरु से मंत्र लेकर यथा रीति से साधना करने पर भी राजा को शान्ति प्राप्त नहीं हुई।

तब उन्होंने गुरु को फिर बुलाकर कहा कि देखिए आपके कहे अनुसार मैंने मंत्र लिया। आपने कहा था कि मंत्र लेकर साधना करने से शान्ति मिलेगी। परन्तु आपके कथन के अनुसार मंत्र लेकर यथा रीति से जप-तप करने पर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। मैं आपको सात दिन का समय देता हूँ। यदि इसके बीच में आप मुझे शान्ति का मार्ग ना बता सकेंगे तो मैं आपका और आपके परिवार का वध करवा दूँगा। यह बात सुनकर गुरु को बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें भोजन में अरुचि हो गई, नींद जाती रही और चिन्ता से वे मृत्यु के निकट पहुँचे से जान पड़ने लगे।

गुरु के केवल एक पुत्र था। वह भी महामूर्ख था। लिखना-पढ़ना वह कुछ नहीं जानता था। उसे लिखना-पढ़ना अच्छा ही नहीं लगता था। वह सारे दिन जंगलों में घूमकर जीवन बिताया करता था। केवल भोजन करने घर आता था। बाकी समय वह बाहर ही बिताता था। इधर एक-एक दिन करके छः दिन बीत गये। सातवें दिन गुरु के घर में भोजन बनने के भी लक्षण दिखाई नहीं देते थे। चिन्ता के कारण गुरु और उनकी स्त्री अधमरे से पड़े थे। ऐसे समय में उनके लड़के ने घर में आकर देखा कि भोजन की कोई तैयारी ही नहीं है। वह खूब क्रोध करने लगा। तब उसके माता-पिता भी उसे बुरा-भला कहने लगे। यह सब देखकर उसने पूछा कि आखिर बात क्या है? क्यों वे लोग भोजन आदि बिना किये पड़े हैं और उल्टा उसे डांट रहे हैं? तब उसके पिता ने सारा हाल उसे बताया। यह भी कहा

कि अगले दिन राजा को शान्ति का मार्ग न बता सकने पर सबका प्राण जायेगा।

यह सुनकर लड़का बोला, ''इसकी क्या चिन्ता? मैं राजा को शान्ति का मार्ग बतला दूँगा। आप लोग भोजन की तैयारी करें। राजा जब आपसे पूछे तो आप मुझे ही दिखा देना। जो कुछ होगा मैं कर लूँगा।'' लड़के की बात से माता-पिता को कुछ शान्ति हुई और उठकर भोजन आदि किया।

दूसरे दिन पिता-पुत्र साथ-साथ राजमहल गये। राजा ने कहा- ''हे गुरुदेव! आज अन्तिम दिन है। मैंने आपकी आज्ञानुसार पिछले सात दिन तक साधन करके देखा किन्तु तनिक भी शान्ति नहीं मिली। आज भी यदि आप शान्ति का मार्ग नहीं बता सकेंगे तो आप सबका सिर काट दिया जायेगा।'' गुरु ने अपने पुत्र को दिखाकर कहा कि, महाराज! आपकी बात का उत्तर मेरा पुत्र देगा। राजा ने लड़के से कहा- तुम इसका उत्तर दे सकोगे? लड़के ने कहा- हाँ महाराज! मैं ही उत्तर दूँगा। तब आपको मेरे कहे अनुसार काम करना पड़ेगा। करते ही आपको शान्ति का मार्ग दिखाई देगा। राजा सहमत हो गये।

तब उस लड़के के कहने के अनुसार राजा और गुरु दोनों दो रस्सी लेकर लड़के के साथ जंगल में गये। बहुत दूर जाकर देखा कि तीन बड़े-बड़े पेड़ पास लगे हुये हैं। लड़के ने कहा कि हमको इसी स्थान पर आना था और दोनों डोरी से राजा और गुरु को दो पेड़ों से खूब कसकर बाँध दिया फिर स्वयं बीच वाले पेड़ पर चढ़कर आनन्द से गाने और झूमने लगा। उधर बन्धन के कष्ट से दुःखी होकर राजा ने लड़के को बुलाकर बन्धन खोलने को कहा। किन्तु लड़के ने उधर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह मजे में गाता नाचता रहा, मानो आनन्द का पार ही नहीं है। तब राजा ने गुरु की तरफ देखकर कहा कि, ''आप मेरा बन्धन खोल दीजिये।'' तब गुरु ने कहा कि जब मैं स्वयं ही बँधा हुआ हूँ तब तुम्हारा बन्धन कैसे खोल सकता हूँ?''

दुःख से चिल्लाते-चिल्लाते राजा को अकस्मात् दिव्य ज्ञान हुआ। उन्होंने सोचा कि मैं बन्धन के बीच में रहकर शान्ति की आशा क्यों करता हूँ? और जो स्वयं ही बँधा हुआ है वह मुझे कैसे मुक्त कर सकता है? मैं

राज करते हुये विषय–जाल में बँधकर शान्ति की आशा करता हूँ, मुक्ति की इच्छा करता हूँ मेरे समान मूर्ख कौन है? तब राजा ने गुरुपुत्र को बुलाकर कहा कि अब मेरा बन्धन खोल दो, मैंने शान्ति का मार्ग पा लिया। तब गुरुपुत्र ने उनका बन्धन खोल दिया। राजा फिर घर नहीं लौटे वे संन्यासी होकर जंगल में चले गये।

माँ यह कहानी कहकर बोली– ''बन्धन का दुःख असह्य होने पर ही शान्ति का मार्ग मिलता है और विषयों से बँधे रहने पर शान्ति किस प्रकार मिलेगी? मैं यह नहीं कहती हूँ कि सभी लोग जंगल में चले जायें। संसार में रहकर भी मुक्ति प्राप्त होती है। संसार उन्हीं के लिये दुःखमय है जो 'सं' को 'सार' मान बैठे हैं। और जो जानते हैं कि हम लोग केवल स्वांग बनाये हैं, हमारा वास्तविक रूप यह नहीं है, उन्हें संसार दुःख नहीं दे सकता। तीनों तापों की ज्वाला मिटाने के लिये ही तपस्या की जाती है। तपस्या का अर्थ मैं तो लगाती हूँ कि ताप सह्य। एक ताप ग्रहण करके दूसरा ताप या दुःख नष्ट किया जाता है। शुद्ध बन्धन लेने से अशुद्ध बन्धन दूर हो जाता है फिर सभी छूट जाता है।''

* * *

सैंतीसवाँ अध्याय

यही सब बातचीत होते-होते करीब एक बज गया। सोलन के राजा माँ से मिलने आये थे। भोलानाथजी उन्हें ऊपर माँ के पास ले गये। माँ ने उनसे कह दिया कि अगले दिन सवेरे 8 या 10 बजे सोलन रवाना होंगी। राजा ने सुनकर बहुत आनन्द प्रकट किया। सवेरे ही उन्होंने माँ को ले जाने के लिये मोटर भेजने को कहा। स्त्रियों से बातचीत करके शाम को 4 बजे माँ नीचे उतर आई। थोड़ा घूमने को बाहर गई। थोड़ी देर में ही लौट आई। भक्त लोग आकर दर्शन करने लगे। कल सोलन जाने का निश्चय हो गया है, यही सब बातचीत हो रही थी। अनेक लोगों ने कहा कि माँ के सोलन में रहने पर छुट्टी में हम भी सोलन जायें। नाना प्रकार की बातों के बाद विनय़ बाबू उसी दिन ढाका लौट जायेंगे, इसलिये उन्होंने माँ से एकान्त में कुछ बात करने की इच्छा प्रकट की। माँ उनके साथ एक कमरे के कोने में जाकर बैठी। कुछ देर बात करने के बाद माँ अपने आसन पर आकर बैठ गई। रात को लगभग एक बजे सबने विदा ली। हरिदास बाबू ने उस दिन माँ के पैरों के पास ही स्थान लिया। घर नहीं गये।

बुधवार 8 जुलाई-आज सवेरे से ही सब लोग आने लगे क्योंकि आज माँ सोलन जायेंगी। सभी माँ के चरणों की धूल लेते थे, दुबारा दर्शनों की इच्छा प्रकट करते थे और शीघ्र दर्शन देने की प्रार्थना करते थे। भोलानाथजी सबको आश्वासन और आशीर्वाद देते थे। नौ बजे हम लोग कालीबाड़ी से रवाना हुये। अनेक लोग साथ चले। मोटर के पास बहुत से स्त्री-पुरुष एकत्र हो गये। माँ को विदा करते समय सभी का मुख उदास था। माँ को हार पहनाकर बार-बार चरणधूलि लेते थे। तब भी मानों तृप्ति नहीं होती, सबको प्रसन्न मुख से विदा देकर माँ मोटर में चल दी। 11 बजे हम लोग सोलन पहुँचे।

सोलन के राजा एवं डॉक्टर सब आये थे। माँ बिछौने पर बैठकर उन लोगों से कथा-वार्ता करने लगी। जब सब उठ गये तो माँ लेट गई। शाम को राजा, रानी और राजमाता आई। 8 बजे तक माँ उनसे बातचीत करती रही। दस बजे रात को माँ लेट गई।

9 जुलाई गुरुवार– आज भी ज्योतिष दादा के साथ माँ थोड़ा-सा घूम आई। लौट आने पर मुँह धुला दिया। आज माँ के खाने का दिन था। थोड़ा-सा दूध-फल मैंने खिला दिया। माँ अपनी तबीयत से कमरे के भीतर टहलने लगी। कुछ देर बाद उपस्थित लोगों से बातचीत करने लगी। दोपहर को खाने-पीने के बाद माँ ने थोड़ा-सा विश्राम किया। फिर भक्त लोग आने लगे और माँ उनसे बातें करने लगी। पाँच बजे रानी आई। सभी माँ के पास से उठ गये। रात को आठ बजे रानी चली गई। माँ अपने बिछौने पर बैठी रही।

मिरजापुर के उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय डॉक्टर महाशय इस बार देहरादून से माँ के साथ ही आये थे। संसार से अलग रहकर वे साधना की चेष्टा करते थे। कई बार संसार छोड़कर आये थे, किन्तु छोटे-छोटे लड़के-लड़की थे, स्त्री थी। बीच-बीच में मन चंचल होने के कारण फिर संसार में लौटने को विवश हो गये। बड़े सज्जन आदमी थे। मुखाकृति देखने से ही श्रद्धा उत्पन्न होती थी। अवस्था 50 या 60 बरस के लगभग होगी। इस बार भी कुछ दिन से (उत्सव के पहले) मिरजापुर से आकर माँ की आज्ञा से एक एकान्त स्थान में थे। अब सोलन में रहेंगे यह सोचकर आये थे। किन्तु मन फिर चंचल हो गया। रानी के चले जाने पर उपेन्द्र बाबू, ज्योतिष दादा आदि माँ के पास जाकर बैठ गये। माँ उपेन्द्र बाबू को लक्ष्य करके कहने लगी– 'तुम कहाँ रहना चाहते हो? यह स्थान कैसा लगता है?' उपेन्द्र बाबू की स्त्री ने घर लौटने के लिये अनुरोध करके चिट्ठी लिखी थी। माँ ने कहा– ''इसी समय घर चिट्ठी लिखकर पूछो, ''माँ (अर्थात् तुम्हारी स्त्री) भी तुम्हारे साथ आकर साधन-भजन करने का राजी है या नहीं। वरना इस तरह बार-बार आने-जाने से क्या लाभ? इससे कोई काम नहीं होगा। समय तो बीत गया अब कुछ ठीक कर लेने की जरूरत है। छोटे बच्चों का कुछ इन्तजाम कर दिया जायेगा। अभी चिट्ठी लिख दो। देरी मत करो''

माँ को कभी-कभी देखा है कि जो कुछ कहती हैं उसे उसी समय करा लेती हैं। फिर कहने लगी– ''तुम्हारा सभी का देखती हूँ कि उपेक्षा का भाव है। यह भी कहते हो और उधर भी जाते हो। कोई एक काम दृढ़ संकल्प से आरम्भ करो तो देखूँ? किसी तरफ का काम शायद तुम लगकर नहीं कर सकते हो। कुछ लोग उस ओर के साधन में दृढ़ संकल्प

से लगो तो मैं भी देखूँ। फल की इच्छा न रखना केवल नित्य ही नियमित साधन करते जाओ।'' इसी प्रकार अनेक बातचीत के बाद माँ करीब 11 बजे सो गई। मैं भी पैरों के पास ही अपना कम्बल बिछाकर सो रही।

10 जुलाई, शुक्रवार– आज सवेरे माँ थोड़ा-सा घूम आई। सुना है कि रास्ते में राजमाता माँ को बुला ले गई थी और वहाँ बातचीत होती रही। माँ ने लौटकर मुँह नहीं धोया, कहने लगी कि कोई नियम नहीं है। हाथ-मुँह धोने और कपड़े बदलने की कोई जरूरत नहीं है। अनेक बार वे मेरे कहने से यह सब करती थी और कभी-कभी मेरे कहने से भी नहीं करती थी। बिछौने के ऊपर बैठी थी। पास ही ज्योतिष दादा, स्वामी अखण्डानन्दजी, उपेन्द्र बाबू बैठे थे। सबके साथ बातचीत करके लगभग एक बजे सो गई। चार बजे उठी उस समय भाव खूब नवीन था। उठकर भोलानाथजी से बोली- 'कहो यहाँ से कब जाओगे? उन्होंने कहा- क्या मैं साथ नही जाऊँगा?' माँ ने कहा- 'नहीं, सदा ही क्या सब लोग साथ रह सकते हैं? मैं कहाँ ठहरूँगी, कहाँ जाऊँगी, क्या ठीक है?' ज्योतिष दादा को सोलन ही छोड़ जाने की बात हो रही थी।

कुछ देर बाद ज्योतिष दादा से खाने-पीने की बातचीत चली। ज्योतिष दादा ने कहा कि, 'हमारे मन में तो आता है कि भोग को भोग कर ही समाप्त कर देना चाहिये। आँख-मूँदकर रखना ठीक नहीं होता।' माँ ने कहा- ''तब तो सारे जीवन भर में भी भोग समाप्त नहीं होंगे।'' ज्योतिष दादा ने कहा- 'न हों, अगले जन्म में हो जायेंगे।' माँ ने कहा- ''यह बात तो मैं नहीं मानती हूँ।''

भोग समाप्त करने के लिये केवल भोग करना ही तो उपाय नहीं है, उससे तो प्रवृत्ति और भी बढ़ जायेगी। भोग में त्याग ही ठीक है। जिस प्रकार किसी के पेट में दर्द हो और केवल खाना ही माँगे तो यदि उसे खाना दे दिया जाय तो उसका दर्द कभी अच्छा नहीं होगा। खाने से दर्द नहीं जायेगा। यथासम्भव त्याग करने से मन और शरीर स्वस्थ रहता है। धीरे-धीरे वास्तविक भोग को बढ़ाने की प्रवृत्ति वाले कर्मों को ग्रहण करो। देखोगे कि त्याग करने से भोग आदि अपने आप ही छूटते जायेंगे। ये सब भी भोग होंगे किन्तु त्याग लिये होंगे। जैसे पेड़ की रक्षा करते रहने पर भी सब नये पत्ते समय आने पर झड़ जाते हैं। हाथ से तोड़ डालने से तो वृक्ष

के नष्ट होने की संभावना रहती है। उसी प्रकार हठपूर्वक कुछ न कुछ करना चाहिये और उपेक्षा करके भी बैठना ठीक नहीं, यह संसार कर्मभूमि है। विधिपूर्वक कर्मों को संयमित करने की आवश्यता है।

इस बातचीत के बाद राजा, रानी और राजमाता आदि आ गये। राजमाता ने माँ से पूछा– ''माँ वृत्ति को रोकने का क्या उपाय है?'' माँ ने कहा– ''केवल उसी एक वृत्ति में लग जाना। उसी एक वृत्ति को धारण किये बिना बाहरी प्रवृत्ति जायेगी नहीं। एक नियमित समय अधिक से अधिक उसके लिये दो। जैसे दोनों समय भोजन करने में नियमित समय न देने से भोजन ठीक नहीं होता। उसी प्रकार समझो। इसके बाद सारे दिन पान, सुपारी, फल जो कुछ भी खाते हो, वह बातचीत करते हुये भी खा सकते हो। इसी तरह नाम–जप या जिसकी जैसी उपासना हो, सब काम करते समय उसी को धारण किये रहने में कोई हानि नही है। किन्तु विशेष रूप से दो–तीन घण्टा सब कार्य से दूर हटकर एकाग्र मन से एकान्त स्थान में बैठकर उसकी उपासना करने से मन पुष्ट होता है। तुम्ही में सब है। व्यक्त, अव्यक्त, अनन्त सब तुम्ही में है। जैसे किसी ने तुम से पूछा कि यह फूल कैसा है? तुम जितना कुछ उसका वर्णन कर सको उतना ही व्यक्त है और वास्तविक फूल को देखकर तुम्हारा भाव कैसा हुआ या फूल का वास्तविक रूप जो तुम भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते उतना हुआ अव्यक्त। अब रहा अनन्त। जैसे यदि तुमसे पूछा जाय कि 10 मिनट से तुम्हारा मन क्या–क्या चिन्तन कर रहा था? कहाँ–कहाँ गया था तो तुम बता नहीं सकोगे। इन 10 मिनटों में वह कितनी दूर गया था, क्या–क्या चिन्तन किया था इसका अन्त नहीं। यहीं देखो तुम्ही में अनन्तत्व भी है। और भी देखो, तुम्हारे शरीर का कोई अंग पकड़े तो वह तुम्ही को पकड़ना हुआ। तुम्हारा हाथ पकड़े तो तुम्ही को पकड़ना हुआ। तुम्हारे बाल पकड़े तो तुम्हीं को पकड़ा, तुम्हारे पैर पकड़े तो तुम्हीं को पकड़ा। सब में तुम्हीं हो। इसी तरह और भी समझने पर देखोगे कि सब में तुम्ही हो। स्थूल शरीर में ही देखो एकमात्र तुम्हें छोड़कर और कुछ नहीं है। व्यक्त, अव्यक्त, अनन्तत्व, एकत्व, चिन्तन करते ही समझ आ जाता है। एक और बात है, महात्मा लोग जीव और जगत क्या है, इसे विशेष भाव से जानते हैं। इसी से वे एकदम भावापन्न हो जाते हैं। कोई पेड़ देखते ही एकदम पेड़ के भाव को ग्रहण

कर सकते हैं, कोई जन्तु अथवा जीव देखा तो उसके वास्तविक स्वरूप को जानकर उस जन्तु के भावापन्न हो सकते हैं। इसी तरह कोई मनुष्य देखकर पूर्ण रूप से उसके भाव अपने में ला सकते हैं। इसी से उनके लिये कोई बात न जानने योग्य नहीं रह जाती।'' इसी प्रकार अनेक बातचीत के बाद रात को साढ़े नौ बजे वे लोग चले गये।

शिमला से चार सज्जन माँ के दर्शन करने आये कि आज शुक्रवार, शनिवार और इतवार तक माँ के साथ ठहर सकेंगे। दो-एक दिन की छुट्टी होते ही शिमला से सज्जन लोग माँ के पास आकर उपस्थित हो जाते थे। वे लोग कहते थे कि हम लोगों को माँ को छोड़कर रहना मुश्किल जान पड़ता है। महात्मा लोगों के इसी आकर्षण से साधारण लोग व्याकुल हो जाते हैं। वे लोग न तो छोड़ सकते हैं न बिल्कुल साथ ही रह सकते हैं। रानी के चले जाने पर सभी लोग माँ के पास जा बैठे। डॉक्टर मदन और उनके भाई तथा और भी दूसरे कई भक्त आये। सबने मिलकर माँ के पास कुछ देर कीर्तन किया। माँ कुछ देर बाद उठकर टहलने लगी। कभी-कभी माँ इसी तरह अपने आप टहलने लगती हैं। मन में होता है कि क्या माँ बहुत चिन्ता करती हैं। किन्तु माँ ने स्वयं ही अपने मुख से कह दिया कि तुम् लोग अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता न करना। जब जो होना होगा अपने आप हो जायेगा। रात 11 बजे सबने माँ को प्रणाम करके विदा ली और माँ सो गई।

सोने के सम्बन्ध में माँ ने स्वयं ही बताया है। हम साधारण लोग जैसे सोते हैं वैसी नींद तो नहीं आती है। कभी तो लेटी रहती हैं। कभी-कभी देखा है कि रात में उठकर बैठी-बैठी झूमती रहती हैं, कभी-कभी सारी रात घूम-घूमकर ही काट देती हैं। सवेरे जब हम लोग उठे तो उस समय माँ सिर ढककर लेट रही थी। उनका सोने का कोई समय नहीं है। माँ का आजकल भाव गंभीर-सा है। हाँ, बाहर से हँसी-खुशी की कोई कमी नहीं जान पड़ती।

* * *

अड़तीसवाँ अध्याय

11 जुलाई शनिवार– आज भी सवेरे माँ घूमने को बाहर गई। साथ में ज्योतिष दादा और शिमला के दो-एक सज्जन थे। साढ़े सात बजे लौट आई। आज खाने का दिन था। इसी से मुख धुलाकर कुछ जलपान करा दिया। शिमला के सज्जन लोगों से बैठकर बातें करने लगी। ग्यारह बजे वजीर साहब के घर से माँ के लिये भोग आया। बड़ा विशाल आयोजन था, अनेक प्रकार की खाने की सामग्री थी। वजीर साहब भी परिवार सहित आये। आज माँ का भोग विशेष प्रकार का होगा। इसी से आज बच्चों ने भी कुछ खाया नहीं था। वजीर साहब की स्त्री ने अपने हाथ से माँ को थोड़ा खिलाया। इसके बाद वजीर साहब आदि सभी माँ का प्रसाद पाने के लिये बैठ गये। सबने प्रसाद पाया। फिर माँ ने थोड़ा विश्राम किया। वजीर साहब के घर के सब लोग चले गये।

दो बजे माँ उठकर बैठी और मुझसे बोली– ‘‘वेद पढ़कर सुनाओ।’’ मैंने सुनाया। सामवेद साथ ही में था क्योंकि माँ ने मुझे रोज ही थोड़ा-थोड़ा पढ़ने का आदेश दिया था। रोज मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ती थी। माँ की पूर्व लीला की कथा शिमला के सज्जन लोग सुनना चाहते थे, इसी से उनके समीप कुछ सुनाना आरम्भ करते ही माँ उठकर दूसरे कमरे में चली गई। उपेन्द्र बाबू, ज्योतिष दादा आदि जो लोग थे, साथ-साथ वहीं जाकर बैठ गये।

आज कई रोज से माँ साँप-साँप कहती थी। हम लोग जानते थे कि जब माँ साँप-साँप कहती हैं तब चाहे जहाँ हो साँप दिखाई देता है। माँ के साथ मानो साँप की भेंट होनी ही चाहिये। आज भी जैसे ही माँ बिछौना छोड़कर ऊपर कमरे में गई वैसे ही बाँसुरी बजाता हुआ सपेरा माँ को खेल दिखाने के लिये आया। माँ हँसकर बोली– ‘‘मेरा उसी समय मन करता था कि साँप और सपेरा आवेंगे।’’ सपेरे ने साँप को बाहर निकाला। साँप एक बार खेल करते-करते माँ की ओर मुँह करके चारों तरफ घूमा। माँ ने अपने मन में ही मानो (खूब धीरे-धीरे) कहा– ‘‘प्रदक्षिणा की है।’’ मैं माँ

के बिल्कुल पास खड़ी थी, इसी से केवल मैंने यह बात सुनी। सपेरा चला गया।

माँ फिर आकर अपने बिछौने पर बैठ गई। सभी उपस्थित लोग माँ के पास बैठे थे। कल जो भोग और त्याग की बात उठी थी, उसी बात को लेकर माँ फिर कहने लगी– ''देखो भोग में त्याग की आवश्यकता है। लड़के जब लिख–पढ़कर तैयार हो जाते हैं तब उनके नम्बर काटे जाते हैं। जो एकदम बे–पढ़ा होता है वह जैसा कुछ भी लिखता है मास्टर कहते हैं अच्छा लिखा है, किन्तु जब वह सीख चुकता है तब थोड़ी–सी भी भूल हो जाने पर नम्बर काट लिये जाते हैं, यही शिक्षा का नियम है। एक बात और है – कुछ पढ़ने पर अगर थोड़ी भूल भी रह जाये तो भी मास्टर नया पाठ उसे दे देते हैं और यह नया पाठ पढ़ते समय जो पुराना है वह भी याद हो जाता है और गलती दूर हो जाती है। एक गलती है यह समझकर उसे पकड़कर बैठे रहना ठीक नहीं। इसी तरह कामना समाप्त करने पर भोग का त्याग करेंगे यह सोचकर बैठे नहीं रहना चाहिये। एक बार भोग, एक बार त्याग इसी तरह ग्रहण–त्याग करते–करते धीरे–धीरे कामना समाप्त हो जाती है। जितना ही शुद्ध भाग टिकेगा उतना ही काम बनेगा। इसी प्रकार उपाय न करने पर वृद्धावस्था में पश्चाताप होता है कि कुछ भी न कर पाया। यह संस्कार दृढ़ कर लेना भी ठीक नहीं है। भोग का त्याग करने से ही धीरे–धीरे वासना नष्ट हो जाती है, इसलिये चुपचाप बैठे रहना ठीक नहीं है।''

एक स्त्री एक बच्चे को लेकर माँ के दर्शन करने आई किन्तु बच्चा उसको बैठने नहीं देता था। बहुत परेशान कर रहा था। स्त्री ने माँ से कहा कि मैंने मन में सोचा था कि थोड़ी देर आपके पास बैठूँगी किन्तु यह बालक बहुत तंग कर रहा है। बैठने ही नहीं देता। यह कहकर उसने माँ को प्रणाम करके विदा ली। माँ इस तरह हँसकर कहने लगी कि– ''ऐसा ही तो होना चाहिये। तुम लोग भी तो बालक हो तुम भी क्यों अपनी माँ को (भगवान को) तंग नहीं करते? क्या तुम नहीं कह सकते कि– हे भगवान! जब तक तुम हम लोगों को वह आनन्द नहीं दोगे तब तक हम लोग तुमको दिन–रात तंग करते रहेंगे, छोड़ेंगे नहीं। हम लोग तो बालक हैं। हम लोगों को वह आनन्द नहीं दोगे तब तक हम लोग सेवा करना

क्या जानें। हम लोग केवल आनन्द के लिये भगवान को तंग करेंगे।'' माँ इसी तरह मामूली बातों में ही कितने अमूल्य उपदेश दे देती हैं किन्तु हम लोग सुनते ही नहीं और समझने की भी चेष्टा नहीं करते।

शाम को राजा साहब आये, साथ में उनके प्रधान पण्डित थे। कई रोज पानी बरसने के बाद आज खूब धूप निकली थी। माँ ने कहा कि– ''आज अच्छी धूप निकली है।'' पण्डितजी ने कहा – ऐसी धूप निकलने से दो–तीन दिन में ही खेतों में सब जमीन तैयार हो जायेगी। माँ ने हँसकर कहा– जमीन तैयार ही तो चाहिये, इसी के लिये तो इतने उपाय हैं। ऐसी तैयार करनी चाहिये कि जिसमें बीज पड़ते ही पेड़ उगकर फल–फूल से शोभित हो जाये। कुछ देर बातचीत होने के बाद रानी आई। सब लोग उठ गये। रात को लगभग 8 बजे रानी चली गई।

माँ साधारणत: रात को विशेष कुछ खाती नहीं हैं। आज शिमला से भक्त लोग आये थे। इसीलिये भोजन तैयार था। सब लोग भोजन करने बैठे।

भोलानाथजी भी बैठे। माँ घूमती फिर रही थी। अकस्मात् आकर भोलानाथजी के पास बैठ गई और बोली कि, ''हमें जरा–सा भात खिला दो।'' उनके दो–एक कौर खिलाने के बाद माँ उठकर बोली– ''मैं उठती हूँ अब और नहीं खाऊँगी।'' शिमला के भक्त लोग आज पिता व माँ के प्रसाद की भावना एक साथ ही पाकर आनन्द में मग्न हो गये। सभी माँग–माँगकर प्रसाद खाने लगे। पहले भोलानाथजी के साथ माँ ने अनेक बार भोजन किया था। कभी–कभी एक ही पत्तल में बैठते थे और भोलानाथजी खिला देते थे। कभी एक पत्तल में बैठते थे और मैं खिला दिया करती थी। इधर बहुत दिन से नहीं बैठती थी। इसी से भक्त लोग नया दृश्य देखकर बड़े आनन्दित हुये। खाने–पीने के बाद रात को प्राय: 11 बजे माँ लेट गई।

12 जुलाई, रविवार– रोज की तरह आज भी सवेरे माँ थोड़ा घूमने गई। आकर कुछ खाया भी नहीं और मुख भी नहीं धोया। बिछौने पर बैठे–बैठे आये हुये लोगों से बातचीत करने लगी। आजकल प्राय: हर समय कहा करती थी कि, ''अपने घर की भी खबर लो, समय तो चला जा रहा है, उसे पुकारो।'' दोपहर को माँ जरा–सा लेट गई। शाम को शिमला के भक्त लोग चले गये।

रानी, राजा और राजमाता आई थी। आज माँ ने बातों-बातों में उन्हें नवद्वीप के एक मौनी साधु की कहानी सुनाई। माँ एक बार नवद्वीप गई थी। साथ में भोलानाथजी और अन्य लोग भी थे। वे लोग एक मौनी साधु को देख आये थे। साधु के घर के भीतर कोई जाने नहीं पाता था। दूर से सबने देखा कि साधु एक आसन पर बैठे हैं किन्तु इतने शान्त थे कि बहुत से लोग कहते थे कि यह मिट्टी की मूर्ति हैं। कृष्णनगर की कारीगरी है। क्योंकि किसी ने उन्हें नेत्र के पलक तक डालते नहीं देखा। लेकिन माँ को यह ठीक नहीं जान पड़ा। कुछ दिन बाद घूमते-घूमते माँ फिर नवद्वीप गई। उस समय साथ में गिरीन्द्र दादा, जितेन्द्र दादा और गिरीन्द्र दादा की विधवा भातृवधू (भावज) भी थी। गिरीन्द्र दादा विलायत से लौटे हुये एक एम.बी. डॉक्टर थे। ये माँ के बहुत दिन के पुराने भक्त थे। जितेन्द्र दादा इलाहाबाद हाईकोर्ट के वकील थे। ये भी माँ के पुराने परिचित थे। माँ की आज्ञा से ये दोनों माँ को और गिरीन्द्र बाबू की विधवा भावज को नवद्वीप में छोड़कर कलकत्ता लौट आये।

माँ ने उसी मौनी साधु के आश्रम में निवास किया। एक कमरे में ठहर गई। दो-एक रोटी और एक साग रात को खाती थी। माँ से कोई बात छिपी नहीं रह सकती। मौनी बाबा की शिष्या एक वृद्धा थी। उन्होंने पहले माँ को बताया कि- "बाबा कुछ भी खाते नहीं हैं। थोड़ा-सा दूध मुख के पास रखने से कभी-कभी पी लेते हैं।" वे माँ को वहाँ ठहरने देने को राजी नहीं थी। माँ ने बरामदे में ही ठहरने को कहा, इस पर उन्होंने कुछ दूरी पर एक कमरे में ठहर जाने दिया। कुछ दिन बाद ही साधु दोनों समय खाने लगे और बात भी की। सभी लोगों को मालूम हुआ। वृद्धा एक दिन आकर माँ को साधु से बातचीत करने के लिये ले गई। बाद में माँ के साथ साधु की बहुत बातचीत हुई। सभी को आश्चर्य हुआ कि वह साधु अब तक इतनी बातचीत किसी से भी नहीं करते थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने जीवन की समस्त कथा भी माँ से कही। वे माँ को "माँ" कहकर पुकारने लगे। अन्त में उन्होंने यह भी बताया कि उन्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता था और इस तरह साधु का कारोबार भी उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं था। लेकिन वही वृद्धा उन्हें कुछ भी खाने को नहीं देती थी क्योंकि उसमें वृद्धा का स्वार्थ था। माँ ने भी कहा, "पिछली दफा तुमको देखकर बहुत

लोगों ने मूर्ति समझा था किन्तु तभी मेरे मन में था कि तुमसे बातचीत एवं परिचय होना चाहिये। इसी से मैं घूम-फिरकर फिर यहाँ आ गई। अब मैं चली जाऊँगी।'' साधु से जो कुछ कहना था, कहकर चली आई। इसके बाद हम लोगों ने माँ के साथ नवद्वीप में जाकर देखा कि साधु कहीं दूसरे स्थान पर चले गये हैं। माँ ने यही सब बातें राजमाता को सुनाई। रात को आठ बजे वे चले गये। दस बजे माँ लेट गई।

* * *

उन्तालीसवाँ अध्याय

13 जुलाई, सोमवार– आज भी माँ सवेरे घूमकर आ गई। मुँह-हाथ धोकर कुछ थोड़ा खाया। खाने में मानो कमी होती जाती थी। खाने बैठने पर बच्चों की तरह अनमनी- सी होकर कभी झूमती थी, कभी कुछ लेकर धरा-उठाई करने लगती थी और उसी तरफ मानो पूरा ध्यान लगा देती थी, खाने की ओर लक्ष्य ही नहीं रहता था। इसी से भोजन ठीक नहीं होता था। जल पीकर फिर ज्योतिष दादा को लेकर बाहर चल दी। छः बजे लौटी। सुना कि आज भी राजमाता के घर बुला ली गई थी। माँ किसी के घर के भीतर जाती नहीं हैं। बाहर ही जाकर बैठ जाती हैं। वहाँ से लौटकर आये हुये लोगों से बातचीत करने लगी। 12 बजे भोग तैयार हुआ। माँ को भोग के लिये बैठाया गया। बैठते ही बोली- ''खाने की इच्छा नहीं है।'' जबरदस्ती कुछ थोड़ा-सा मैंने खिला दिया और 1.30 बजे फिर लेट गई।

शाम को बिछौने पर उठकर बैठ गई थी। उपेन्द्र बाबू को लक्ष्य करके कह रही थी- ''दृढ़ संकल्प के साथ कार्य में लग जाने की आवश्यकता है। चाहे मरें चाहे बचें, लक्ष्य को नहीं छोड़ेंगे। नित्य नियमित भाव से आध्यात्मिक उन्नति के लिये चेष्टा करो तो देखूँ? सुनो, देखो गायन करती हूँ।'' यह कहकर मुझसे गाने की कापी लाने को कहा। माँ को याद नहीं रहते हैं इसलिये थोड़े से गाने एक कापी में लिख रखे थे। माँ कभी-कभी गाने गाती थी। कापी ले आई। माँ ने कई एक सुन्दर-सुन्दर गाने गाये। मुझे मौन रखने का आदेश दिया था।* इसी से उपेन्द्र बाबू ही कापी देखकर माँ को गाने बता रहे थे। माँ भी भाव-विभोर होकर गा रही थी। उपस्थित लोग मुग्ध होकर गाना सुन रहे थे।

---

* जनेऊ होने के बाद से ही माँ ने मुझे मौन रहने का अभ्यास कराया था। पहले 3 घण्टा मौन रखती थी। बाद में सारे दिन मौन रहकर शाम को बोलने की आज्ञा हुई। फिर चौबीस घण्टे के बीच में केवल दिन में 12 से 5 बजे तक पाँच घण्टे बोलने का आदेश था। फिर जब श्री विन्ध्याचल में इक्का गिर गया तब से 12 से 2 बजे तक केवल बोलने एवं चिट्ठी पत्री लिखने का आदेश दिया गया। माँ का सभी विषयों में इसी तरह धीरे-धीरे अभ्यास कराने का नियम है।

गाना आरम्भ करते ही माँ की आँखों में जल भर आता और वे लाल हो जाती थी। आँखे बन्द करके झूम-झूमकर गाना गाती थी। माँ के मुख से उस भाव के गाने सुनकर थोड़ी देर के लिये सबका मन उदास हो गया। माँ भी कह रही थी- ''देखो यही जो गाना हो रहा है, यही हम साधना करते हैं। यह जो थोड़ी देर के लिये भी गाना सुनकर उदास हो जाता है यह भी 'महासाधना' है।'' बड़ी देर तक गाना गाया। साधारणत: माँ इतनी देर तक गाना नहीं गाती थी। एक अति वृद्ध सधवा पहाड़ी स्त्री माँ के दर्शन करने आई थी। उन्हें दिखाकर माँ ने कहा- ''इन्हीं माँजी के लिये इतना गाना हुआ, यह माताजी बड़ी भाग्यवती हैं।'' यह कहकर स्वाभाविक मधुर हँसी से हँसने लगी।

सायंकाल प्रतिदिन की तरह राजा-रानी आकर माँ के दर्शन करके शाम के बाद ही चले गये। आज भी उपस्थित लोगों ने मिलकर माँ के पास थोड़ा सा कीर्तन किया। 'माँ'-'माँ' नाम का कीर्तन हुआ। भक्तों की 'माँ'-'माँ' ध्वनि द्वारा वायुमंडल भी पवित्र हो गया। माँ ने भी चुपचाप ऊँचे बैठे वह पुकार सुनी। सोलन बहुत ही निर्जन स्थान है। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखाई देते हैं। पहाड़ के ऊपर ही यह मन्दिर है। शाम के बाद तो बिल्कुल ही नीरव और निस्तब्ध वातावरण हो जाता था। उस शान्ति के बीच में कई एक भक्त लोग बैठकर माँ के पास 'माँ'-'माँ' कीर्तन करते थे। इसी से अधिक मधुर जान पड़ता था। रात को लगभग 11 बजे सब चले गये। माँ भी लेट गई किन्तु आज मानो चुप नहीं हो रही थी।

कभी-कभी माँ की यही दशा होती थी। किसी दिन तो एकदम चुप होकर पड़ी रहती थी और किसी दिन बार-बार लेटती थी किन्तु चुप नहीं होती थी। कभी लेटे-लेटे गाती थी। कभी मानो किसी अदृश्य व्यक्ति के साथ बातचीत कर रही हो, ऐसा भाव रहता था। मैंने यही बात कहकर इसके सम्बन्ध में कुछ पूछा तो कहने लगी- ''जिस प्रकार तुम लोग मेरे नेत्रों के निकट प्रत्यक्ष सत्य हो वैसे ही वह भी है। तुम उसे नहीं देख पाते किन्तु मेरे निकट प्रत्यक्ष सत्य है।'' फिर एक दिन ऐसे ही बातचीत करते-करते उसी विषय के प्रसंग में कहने लगी- ''तुम लोगों की अपेक्षा वे अधिक अच्छे हैं। वे तुम्हारी तरह सब बातों में प्रति उत्तर नहीं करते हैं।'' बहुत रात बीतने पर कुछ चुप होकर सो गई।

आज भी नित्य की तरह थोड़ा घूम आई। आज उपवास का दिन था। माँ बिछौने पर बैठी। थोड़ी ही देर में लेट गई। दोपहर को उठकर बैठी। मुझसे कहने लगी– ''देखो किसी कमरे में अगर खूब सामान भरा हो उस कमरे में आवाज करने पर भी प्रतिध्वनि नहीं होती और किसी खाली कमरे में शब्द करने से प्रतिध्वनि होती है। इसी तरह मन को शुद्ध रख सको तो स्व-स्वरूप अपने-आप में प्रकट हो जायेगा। प्रतिध्वनि में अपनी ही आवाज तो सुनाई देती है। उसी प्रकार स्व-स्वरूप शुद्ध चित्त में प्रकट होता है। इसी से कहती हूँ कि मन को ही शुद्ध करने का प्रयत्न करो। नियमित उपासना द्वारा ही मन शुद्ध होता है। जिसे जैसी उपासना रुचिकर होती है, वैसी ही करनी चाहिये। नाम-जप, कीर्तन आदि, सद्ग्रन्थ पाठ, सदालोचना जिसे जो अच्छा लगे, उसी के द्वारा चित्त की शुद्धि करने का प्रयत्न करें। रोज सोते समय सोचना चाहिये कि आज हमने कौन-कौनसा अनुचित कार्य किया। इसी प्रकार विचार करते दोषों को दूर करने की चेष्टा करने से मन धीरे-धीरे शुद्ध होने लगता है।''

प्राणायाम के बारे में कहती थी कि, ''प्राणायाम का अर्थ है प्राणों का आयाम। नाम-जप यदि ठीक-ठीक कर सको तो देखोगे कि उससे अपने आप प्राणायाम हो जाता है। श्वासों की तरफ ध्यान रखकर जप करने से बड़ा लाभ होता है।'' यही सब बातचीत होती रही।

माँ आजकल अनेक अंग्रेजी शब्द बोलकर स्वयं ही हँसती थी। किन्तु बोलती ठीक-ठीक थी। बहुत से लोग कहा करते थे कि-''माँ तुम तो अंग्रेजी जानती नहीं हो किन्तु तुम्हारे मुख से दो-चार अंग्रेजी के शब्द सुनकर कोई यह बात जान नहीं पाता, क्योंकि तुम्हारा उच्चारण बिल्कुल शुद्ध होता है और ऐसे उपयुक्त स्थान पर बोलती हो मानो खूब अंग्रेजी जानती हो।'' माँ हँसकर कहती– ''माँ तो कुछ जानती नहीं जैसे हिन्दी बोली जाती है उसी प्रकार यह भी मुख से निकल जाती है।'' अखण्डानन्द स्वामीजी ने पूछा– ''माँ! ऐसा जान पड़ता है कि तुम इच्छा करने से सभी भाषाओं में बोल सकती हो।'' माँ उत्तर देती– ''मैं यह नहीं कहती कि बोल सकती हूँ या नहीं किन्तु एक स्थिति ऐसी है जहाँ पर पहुँचने से इच्छानुसार ही सारी भाषायें बोली जा सकती हैं, जैसे देखो न इसी शरीर द्वारा स्तोत्र आदि प्रकट हो जाते हैं। अंग्रेजी, हिन्दी सभी इसी तरह है और क्या है।'' रोज की तरह आज भी माँ लगभग 11 बजे सो गई।

चालीसवाँ अध्याय

आज भी रोज की तरह माँ थोड़ा-सा घूम आई। आज ज्योतिष दादा अपने रक्त की परीक्षा कराने कसौली जायेंगे। राजा की दो मोटर जा रही थी। माँ और भोलानाथ वहाँ घूमने जा रहे थे। हरिराम कल देहरादून से आया था। शिमला से हरिराम का भाई बद्री आया था। सभी माँ के साथ कसौली घूमने जा रहे थे। वजीर साहब ही लिवा गये थे। हम लोग आठ-नौ जने साथ में गये। खाना-पीना करके 12 बजे हम लोग रवाना हुये। शाम को 6 बजे लौट आये। रात को हरिराम के सारे परिवार ने और वजीर साहब एवं उसके लड़के सबने यहीं माँ का प्रसाद पाया। हरिराम के घर से ही (डॉक्टर मदन के स्थान से) पूरी, तरकारी बनकर आई थी। सबने मिलकर बड़े आनन्द से प्रसाद पाया। खाने-पीने के बाद सब लोग थोड़ी देर माँ के पास जाकर बैठे। रात को 11 बजे सब लोग माँ को प्रणाम करके विदा हुये। माँ भी सो गई।

16 जुलाई, बृहस्पतिवार– आज भी माँ सवेरे घूमने को बाहर गई। खूब वर्षा हुई। कहीं खड़ी हो गई थी, भीगी नहीं। माँ आकर अपने बिछौने पर लेट गई। हरिराम आदि सब बैठे थे। माँ उन लोगों से एक-दो बात करती जाती थी। माँ के लेटने का कोई समय नहीं था। जब इच्छा होती सवेरे के समय ही लेट जाती। कभी रात-दिन बैठी रहती, सोने का भाव ही नहीं होता। बहुत साल से साधारण लोगों की सी नींद नहीं आती थी। अपने मुख से कहती थी- 'जान पड़ता है सोऊँगी नहीं क्योंकि नींद आने पर आँखों की पलकें जैसी भारी हो जाती हैं, वैसे मेरी नहीं होती। बहुत पहले मेरे भी हो जाती थी, इसी से मैं जानती हूँ और तुम्हें भी बता सकती हूँ।'' फिर मैं यह भी लक्ष्य करती थी कि लेटी होती और किसी कारणवश अचानक यदि मैं जगा देती तो देखती कि जबान मानो बन्द हो गई है। कीर्तन आदि में खूब भाव होता था तब जैसे जबान बन्द हो जाती थी, बात नहीं कर पाती थी, अस्पष्ट आवाज ही निकलती थी। बिल्कुल ठीक उसी तरह इस समय भी पाती थी।

माँ ने अनेक बातों में कहा कि, ''सदा मानो एक सी ही अवस्था रहती है। बाहर शरीर की नाना प्रकार की क्रियायें होती हैं किन्तु भीतर कोई भी परिवर्तन नहीं होता।'' ढाका में रहने के समय अनेक बार देखा है कि भोजन बनाने गई और बहुत जल्दी भोजन बनाकर चली आई। मुख पर खूब पसीना आ रहा होता और मुख लाल होता। मन में सोचा कि मालूम होता है कि माँ को कोई बड़ा परिश्रम हुआ है, किन्तु पूछने पर हँसकर बोली- ''किस प्रकार तुम लोगों की समझ में आवेगा कि जो भोजन बना आई हूँ, क्या-क्या कर आई हूँ, कुछ समझ में नहीं आता। लेटे और पड़े रहने पर जिस अवस्था में रहती हूँ यह भी ठीक-ठीक वही अवस्था है, कुछ अन्तर नहीं।''

मैं इसकी धारणा भी नहीं कर पाती थी, किन्तु माँ अनेक बार यह समझाने की चेष्टा करती थी।

माँ लेटे-लेटे एक-दो बात करती जाती थी। आज खाना भी नहीं था, माँ लेटी ही थी। दो-एक लोग दर्शन करते जाते थे। माँ आज कुछ चुपचाप थी। इसी से उपस्थित लोग भी चुपचाप बैठे थे। शाम को राजा-रानी और राजमाता आई। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी थी। राजा आज सारे दिन से व्रत किये थे। सन्ध्या को मन्दिर में श्री शिवजी की पूजा करके जल पीयेंगे। शाम को राजा श्री शिवजी के मन्दिर में गये, पूजा की। आज आषाढ़ की संक्रान्ति थी (दो साल पहले आषाढ़ के महीने से ही माँ एक दिन छोड़कर रात-दिन भोजन करने लगी थी)। आज राजा के लिये हमारे यहाँ थोड़ा जलपान तैयार किया गया था। जलपान तैयार करके माँ को देखने के लिये बुलाया। माँ ने कहा- ''यहाँ लेती आ।'' राजा, रानी, राजमाता और भोलानाथजी सभी वहाँ बैठे थे। जैसे ही मैंने जलपान का थाल झुकाकर माँ को दिखाया। माँ हँसकर बोली- ''मेरे लिये तो कभी तुमने इस प्रकार की तैयारी नहीं की?'' यह कहकर राजा की तरफ देखकर बोली- ''आज मैं भी खाऊँगी'' भोलानाथजी से बच्चों की तरह पूछने लगी, ''खा लूँ!'' भोलानाथजी ने सिर हिलाकर खाने को कहा। माँ राजा की तरफ देखकर बोली- ''बच्चा पहले वह खाये उसके बाद माँ-बाप खाये।'' यह कहकर भोलानाथजी से बोली- ''तुम थोड़ा-सा मेरे मुख में दे दो।'' उन्होंने जरा सा कुछ उनके मुख में दे दिया। राजा से माँ ने कहा- ''क्या तुम नहीं

खिलाओंगे?'' राजा ने बड़े आनन्द से माँ को थोड़ा खिला दिया। माँ बहुत ही थोड़ा-सा मुख में ले लेती थी। बाद में रानी ने थोड़ा जल पिलाया। राजमाता ने एक इलायची खिलाई। राजा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, कि माँ आज तुमने कृपा करके जो अपना नियम भंग किया है, वैसे आज यह नियम आगे फिर न करियेगा। अब से रोज ही भोजन करना आरंभ करें यही हमारी प्रार्थना है। माँ ने हँसकर कहा- ''देखा जायेगा।'' राजा, रानी चले गये।

सब लोग आकर माँ के पास बैठे थे। ज्योतिष दादा ने कहा- ''तब आज अखण्डानन्द स्वामीजी के हाथ से भी थोड़ा-सा खाइये।'' स्वामीजी ने भी बड़े आनन्द के साथ माँ को थोड़ा खिला दिया। 11 बजे रात को माँ लेट गई। सोने के पहले भोलानाथजी से बोली- ''हरिराम कल देहरादून जायेगा। हम लोग भी कल यहाँ से रवाना हो जायें। क्या कहते हो?'' भोलानाथजी राजी नहीं हुये। बातचीत के बाद निश्चय हुआ कि अगले सोमवार सावन की तारीख 20 जुलाई को यहाँ से रवाना होना होगा। रात को आँखें बन्द किये-किये ही कह रही थी। ''एक मूर्ति देखती हूँ।'' कभी रोग और मृत्यु माँ देखती थी तब इस तरह कहती थी। इसी से चिन्ता भी हुई कि माँ क्या देख रही हैं।

आज भी माँ सवेरे घूमकर आई और थोड़ा-सा जल पीकर लेटी थी। आज सवेरे उठते ही भोलानाथजी ने बताया कि आज उनको सारी रात पेट के दर्द के कारण नींद नहीं आई, सवेरे भी दर्द रहा। चेहरा भी उदास मालूम होता था। माँ ने दोपहर को कहा- ''कल मैंने रात को ही कहा था न कि एक मूर्ति देखती हूँ। देखो आज सवेरे ही भोलानाथजी का मुख उदास है।''

माँ खा-पीकर जरा-सा विश्राम भी न कर पाई थी कि लोग आने लगे। माँ सबसे बातचीत करने लगी। शाम को राजा, रानी, राजपरिवार की ओर से भी कई स्त्रियाँ आ गई, राजमाता भी आई। उन लोगों से माँ बात करने लगी। अनेक प्रकार की बातचीत हो रही थी। माँ अपने हाथ से खाती नहीं थी। किस प्रकार हाथ से खाना बन्द हो गया, यही सब बात छिड़ी हुई थी। माँ ने कहा- ''मैं तो इच्छा करके कुछ करती नहीं। एक दिन खाने बैठी, देखा कि भात मुख में नहीं ले पाती हूँ। हाथ मुख तक

उठता नहीं था, नीचे झुक जाता था। अपनी इच्छा-शक्ति इसमें जरा-सी भी नहीं थी। जैसे रोगी को मस्तक में चक्कर आता है तो वह गिर पड़ता है, अपनी इच्छा-शक्ति उसमें कुछ नहीं रह जाती। यह भी लगभग उसी प्रकार था। तब भी विशेषता यही है कि इसके कारण कोई दु:ख नहीं होता, न कोई इच्छा ही जागृत होती है जो हो जाता है देखा जाता है। तभी से हाथ से खाना बन्द हो गया।''

फिर मिर्च खाने की बात करने लगी। ''ढाका में जब काम-काज ज्यादा नहीं कर पाती थी, शरीर हमेशा उठता ही नहीं था, ऐसी अवस्था थी। तब एक सज्जन ने यह सोचकर कि (जो यहाँ आया-जाया करते थे) हमको मसाला पीसने आदि में कष्ट होगा, अपने घर से सब मसाला, धुलाकर कुटवा कर शाहबाग में लेकर आये। मिर्च भी कुटी हुई थी। भोलानाथजी बातों-बातों में मुझसे कहने लगे- ''अच्छा तुम्हें तो कुछ लगता नहीं है, लाल मिर्च भी कुटी हुई खाने से नहीं लगेगी? मैंने कहा- ''अच्छा तुम्हारा जब मन हो तब खिलाकर देखो न क्या होता है? मैं भी देखूँ तुम भी देखो।'' भोलानाथजी ने कहा- ''आँखों में जल न आये और सी-सी भी नहीं करना।'' मेरी मुट्ठी में जितना आया उठाकर मुख में डाल लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो सत्तू खा रही हूँ। इसी से खाने के बाद अच्छी तरह बैठी रही। कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। करीब एक घण्टे बाद मैं उठकर काम-काज करने चली गई।

''उसके बाद क्या हुआ कि भोलानाथजी को जैसा बुखार वैसी ही पेट में जलन। मैं ही सब सेवा करने लगी। बड़े-बड़े डॉक्टरों ने देखा किन्तु कुछ लाभ न हुआ। 18-19 दिन तक दिन-रात इस प्रकार बैठे-बैठे सेवा होती रही, जरा-सी देर को भी शरीर में आलस्य नहीं आता था। जैसे खाना बन्द था वैसे ही नींद और लेटना भी बन्द था। एक दिन रात के वक्त जब भोलानाथजी की हालत ज्यादा खराब हो गई तो मटरी, आशु और बाउल रोने लगे। बेहोशी की हालत में भोलानाथजी उठकर बैठ गये तब मेरे मुख से निकला कि ''तुम्हें कितनी बार बताया है कि इस शरीर की परीक्षा न लिया करो।'' तब भोलानाथजी ने कहा- ''अब नहीं लूँगा।''

तब मैंने थोड़ा-सा भिगोया हुआ चिवड़ा पानी में घोलकर भोलानाथजी को खाने को दिया। उनका खाना-पीना तो बिल्कुल बन्द था। बराबर के

होती थी। चिवड़ा खाने के बाद ही लेट गए। यह चिवड़ा मैंने एक दिन पहले ही मँगवाकर भिगो रखा था। सारे दिन कुछ भोजन बना नहीं था, इसी से वही चिवड़ा निकालकर खिला दिया। दूसरे दिन से ही भोलानाथजी की कै बन्द हो गई। बुखार अधिक रहा लेकिन धीरे-धीरे कम होकर अच्छे हो गये।'' यह सब कहकर माँ हँसने लगी।*

अनेक बातचीत के बाद रात को साढ़े आठ बजे रानी इत्यादि चली गई। माँ रात को ग्यारह बजे लेट गई।

माँ आज 9.30 बजे उठी। आज उपवास का दिन था किन्तु संक्रान्ति के दिन यह नियम कुछ टूट गया था। इसी से आज भी क्या करेंगी यह सोचकर खाने की तैयारी करके खाने के लिये माँ को बुलाया। किन्तु माँ ने कहा इस समय नहीं खाऊँगी जब खाने की प्रेरणा होगी तब खाऊँगी। लेकिन उन्होंने दिनभर कुछ नहीं खाया। शाम को राजा माँ को अपने घर ले गये। मैं, ज्योतिष दादा और भोलानाथजी संग गए। वहाँ जाकर माँ ने रानी के हाथ से थोड़े से फल खाये और सात बजे मन्दिर में लौटकर मेरे हाथ से थोड़े फल खाये और दूध पीया।

आज शिमला से हारान बाबू आदि परिवार के साथ आये और भी दो-तीन सज्जन आये। इन्हीं हारान बाबू से शिमला में माँ के खाने का नियम भंग होने की बात हुई थी। हारान बाबू को दिखाकर माँ ने कहा- ''आज मैंने थोड़ा खा लिया, तुम्हारी बात रख ली, हमारी बात भी तुम्हें रखनी होगी।'' इसी तरह अनेक प्रकार से आनन्दपूर्वक बातचीत हो रही थी। शिमला के सज्जन लोगों के लिये भोजन बनाया गया। वे लोग और भोलानाथजी भोजन करने बैठे। भोलानाथजी एवं उन लोगों के कहने से माँ ने थोड़ा-सा भोजन किया। कह रही थी- ''मुँह में देने पर भी मानो चबा नहीं पाती हूँ। आज खाने का दिन नहीं था इसी से मानो बन्द-बन्द सा जान पड़ता है।'' रात को लगभग दस बजे खाना-पीना हो गया।

माँ सबके साथ बैठी-बैठी बात कर रही थी। आज शनिवार था, इसीलिये शिमला से भक्त लोग आये थे। अगले दिन ही फिर सब चले जायेंगे। माँ

---

* यह सब बाउल बाबू से मालूम करके प्राण गोपाल बाबू ने लिखा कि, ''माँ तुमने गुरुमारण विद्या कहाँ से सीखी है?'' माँ ने सुनकर कहा-''गुरु के पास से ही गुरुमारण विद्या सीखी है।''

भी सोलन से चली जायेंगी फिर दर्शन न होंगे इसी से भक्त लोग माँ को सोने के लिये नहीं जाने दे रहे थे और स्वयं भी सोने नहीं जाते थे। जी भर माँ के दर्शन करते थे और बात सुनते थे। अनेक प्रकार की बातें हो रही थी। बातों ही बातों में हारान बाबू कह देते, ''माँ भगवान का परिचय तो दो कि वे कैसे हैं।'' माँ ने उत्तर दिया- ''जो जिस भाव से उसे चाहता है वे उसके लिये वैसे ही हो जाते हैं।'' और भी बहुत सी बातचीत हुई। रात को लगभग दो बज गये लेकिन जरा भी थकावट नहीं। मानो दिन में बैठी बातें कर रही हों। दो बजे सब लोग चले गये। माँ भी बिछौने पर लेट गई।

तीन तारीख सावन की

19 जुलाई, इतवार–आज भी रोज की तरह माँ सवेरे ज्योतिष दादा, हारान बाबू इत्यादि के साथ थोड़ा घूमने बाहर चली गई। लौट आने पर हाथ-मुँह धुलाकर थोड़ा दूध-फल खिला दिया। भक्तों ने और सभी ने प्रसाद लिया। माँ सबसे बातचीत करने लगी। इधर भोजन तैयार हो रहा था। दोपहर को माँ भोजन करेंगी। इसी समय हारान बाबू एवं उनकी स्त्री और चारु बाबू की स्त्री ने कहीं से कुम्हड़े की बेल का रसेदार साग बनाकर माँ को दिया। माँ को यदि न दिया जाता तो जो लोग लाए थे उन्हें दुःख होता। माँ का और भोलानाथजी का भोग हो जाने के बाद सबने प्रसाद पाया। खाने के बाद सब माँ के पास जाकर बैठे। आज ही शाम को सब शिमला लौट जायेंगे। अनेक बातें हो रही थी। भक्त लोग शीघ्र ही दुबारा दर्शन देने के लिये प्रार्थना कर रहे थे। फिर भी मानो तृप्ति नहीं हो रही थी। माँ और भोलानाथजी प्रसन्न मुख से विदा दे रहे थे। माँ कहती थी- ''मेरी वही बात मन में ठहराने की चेष्टा करो जितना अधिक समय मिले उसके नाम में देना। सब लोग यह याद रखना कि समय जा रहा है, जो दिन जाता है वह फिर वापिस नहीं आता।'' सब लोग माँ को प्रणाम करके कहते थे कि ''माँ! शक्ति दो जिससे नाम-जप कर सकें।''सब लोग विदा लेकर चले गये। राजा-रानी आये थे, माँ उनसे बात कर रही थी। रात को नौ बजे वे भी चले गये। माँ अन्य उपस्थित लोगों से बात करके रात को लगभग 11 बजे लेटी।

* * *

इकतालीसवाँ अध्याय

20 जुलाई सोमवार– आज माँ हम लोगों के साथ श्री विन्ध्याचल जायेंगी, यह निश्चय हुआ। ज्योतिष दादा को माँ राजा के पास छोड़ आये। इस गर्मी में ठंडा देश छोड़कर क्यों नीचे जा रही हैं यह कौन जाने। रात को 9 बजे जाने की बात थी। पानी बरस रहा था। माँ और भोलानाथजी राजा की मोटर में ज्योतिष दादा को बैठाकर जहाँ उनको ठहरना था वहाँ पहुँचा आये। बाद में हम लोग कालका रवाना हुये। साथ में भोलानाथजी, डॉक्टर उपेन्द्रबाबू, अखंडानन्द स्वामीजी, कमलाकान्त और मैं थी। डॉक्टर मदनमोहन जोशी और उनके भाई जानकी जोशी माँ को पहुँचाने कालका तक आये। रात को करीब 11 बजे हम लोग कालका पहुँचे। 12 बजे हमारी ट्रेन का समय था। कुछ देर बाद डॉक्टर आदि माँ से विदा लेकर चले गये। हम लोग 12 बजे की गाड़ी में कालका से रवाना हुये।

सावन की 5 तारीख, 21 जुलाई, मंगलवार–आज सवेरे हम लोग देहली पहुँचे। जो कश्मीरी वृद्धा स्त्री माँ के साथ कुछ दिन रही थी, वे अपने लड़के के घर देहली में ही थी। हम सब लोग उनको नानी कहकर पुकारते थे। माँ ने उनका नाम ''राधा रानी'' रखा था। वृद्धा पहले ही समाचार पाकर माँ और भक्तों के लिये खाने का सामान लेकर आ गई। माँ को पाकर व्याकुल हो रोने लगी। सोलन जाने के बाद माँ की इस वृद्धा से फिर भेंट नहीं हुई थी। माँ के चले जाने के बाद यह भी देहरादून से देहली चली आई थी। इन्होंने माँ को हार पहनाकर थोड़ा-सा खिला भी दिया। उनके साथ उनका लड़का और नातिन भी आये थे। पिछली बार दिल्ली में माँ ने इसी नातिन से बराबर अवस्था की होने के कारण (या कोई दूसरा कारण था मैं नहीं जानती) मेरी मित्रता करा दी थी। कुछ देर में गाड़ी छूट गई और नानी ने रोते-रोते विदा ली।

रात को लगभग आठ बजे मिरजापुर उतरकर हम लोग 9 बजे विन्ध्याचल माँ के आश्रम पर पहुँच गये। डॉक्टर उपेन्द्र बाबू मिरजापुर से ही अपने घर चले गये। उक्त आश्रम का कुछ पक्का प्रबन्ध करके कहीं

बाहर जाने की इच्छा थी। माँ ने कहा– "यही उचित है नहीं तो बार-बार मन चंचल होने पर लौटकर आना पड़ता है। इसी से कोई काम अच्छी तरह नहीं हो पाता।" आश्रम में अग्नि की रक्षा के लिये दो ब्रह्मचारी थे। उन लोगों को पहले ही खबर दे दी गई थी। उपवास के दिन तब भी माँ कुछ खा नहीं पाती थी। रात में भोजन बनाते खाते लगभग 12 बज गये। बड़ी तेज गर्मी थी। सभी लोग गर्मी से व्याकुल थे। माँ ने कहा– "सभी हालत में सहन करना चाहिये। केवल आराम करना ठीक नहीं।" मैंने कहा– "बड़ी गर्मी है कल ही तुमको स्नान करा दूँगी।" माँ अक्सर स्नान नहीं करती थी कभी-कभी ध्यान आने पर ही करती थी। माँ ने हँसकर कहा– "कल स्नान नहीं करूँगी कुछ दिन गर्मी भी खा लूँ तो स्नान होगा।" फिर कहने लगी– "जब जिस प्रकार रहना पड़े उसी में आनन्द मानने की जरूरत है।" रात को करीब एक बजे सब लोग सो गये तो माँ भी सो गई।

22 जुलाई, बुधवार–माँ आज सवेरे उठी नहीं, लेटी ही थी। 8 बजे उठकर नीचे आई। आते ही भोलानाथजी से बोली–"पंचांग, पैन्सिल और कागज लेकर ऊपर चलो, एक काम है।" बड़ी देर तक दोनों जनों में बातचीत होती रही। मैंने सुना है कि माँ दो-चार दिन में ही विन्ध्याचल से कलकत्ता रवाना हो रही हैं। किसलिये इस प्रकार चंचल चित्त से घूमती-फिरती हैं वह माँ ही जानें। आज माँ के भोजन का दिन नहीं था। अब भी उपवास के दिन कुछ खा नहीं पाती थी। केवल नियम की रक्षा के लिये सन्ध्या के समय थोड़ा-सा फल या दूध ले लेती थी। आज दोपहर को भोलानाथजी खाने को बैठे थे, माँ अकस्मात् उनके पास जाकर बैठ गई और बोली– "जरा-सा कुछ मुँह में दे दो।" भोलानाथजी भी जरा-सा मुख में देते ही, "अब और नहीं" कहकर उठ गये और मुख धोकर ऊपर चले गये और लेट गये। मैंने देखा कि भोलानाथजी का मन प्रसन्न नहीं था। यहाँ और कोई विशेष लोग नहीं थे। शाम के बाद ही माँ भी सो गई। जिन लोगों को अग्नि रक्षा के लिये नियत किया था उनसे माँ की कुछ बातचीत हुई जिससे स्थिर हुआ कि अगले दिन वे लोग एक बार काशीजी जाकर अपने गुरुदेव के दर्शन करेंगे।

23 जुलाई, बृहस्पतिवार– माँ आज सवेरे थोड़ा घूम आई। हाथ-मुँह धोकर थोड़ा जल पीया। बड़ा चंचल भाव था, क्या करेंगी यह मुझे नहीं मालूम

था। भोलानाथजी का मन भी उदास था। पेट के दर्द का उन्हें थोड़ा-थोड़ा अनुभव हो रहा था। माँ दोपहर के भोजन के बाद नीचे ही कमरे में लेटी। थोड़ी देर बाद उठी और उपस्थित लोगों से बातचीत करने लगी।

शाम को मिरजापुर से बहुत से लोग माँ के दर्शन को आये। माँ उनसे बातचीत कर रही थी। मिरजापुर के महेन्द्र बाबू की नातिन आई थी। इस लड़की की अवस्था लगभग 20 साल की थी। मैट्रिक पास थी। उसे देखते ही कुछ देर बाद वह माँ से एकान्त में बातचीत करने लगी। बड़ी देर बाद मेरे वहाँ जाते ही माँ ने कहा- "खुकुनी। इस लड़की को अपनी साथिन बनाओ।" लड़की भी मेरी ओर देखकर बोली- "माँ ने मुझे आपका पता लेने को कहा है और अपना पता आपको देने को कहा है।" यह लड़की अपनी नानी (महेन्द्र बाबू की स्त्री) के साथ आई थी। माँ ने, "अच्छा तो है लड़की को अपने ही भाव में रहने दो न?" वह भी बोली- "इतने दिन तक तो विवाह का प्रयत्न हुआ 20 साल की अवस्था हो गई। अच्छा तो यही होगा कि इसी तरह रह सके।" अपनी नानी से लड़की कहने लगी- "मैंने तो माँ से कुछ कहा नहीं। माँ ही तो मुझे देखकर यह बात कहने लगी।" माँ ने लड़की से कहा- "देखो जो कुछ करो दृढ़ निश्चय के साथ होना चाहिये। यदि विवाह करो तो ठीक है वही करो और यदि न करो, इसी मार्ग पर आना चाहो तो इसके लिये तैयारी की जरूरत है। और अब तुम बड़ी हो गई हो। इच्छा न होने पर कोई भी कुछ काम तुम से क्या करा सकता है? अपने ही मन का दृढ़ संकल्प चाहिये।" इन सब बातों के बाद रात के दस बजे वे लोग चले गये। माँ भी थोड़ा जल पीकर लेट गई।

सावन की 8 तारीख, 24 जुलाई शुक्रवार- आज भी माँ सवेरे घूमकर आई और सबके साथ बात करने लगी। आज भी यही बात हो रही थी कि माँ हम लोगों के साथ अगले सोमवार को कलकत्ता के लिये रवाना हो जायेंगी। राजशाही जाने की बात माँ ने आप ही उठाई। भोलानाथजी से बोली- "सवेरे अगर कलकत्ता पहुँचने पर गाड़ी हो तो उसी समय राजशाही चले जायेंगे और दो-एक दिन वहाँ ठहरकर कलकत्ता आ जायेंगे। वहाँ जितने दिन हो सकेगा, ठहरेंगे। पिछली बार अटल ने राजशाही न जाने के कारण बड़ा दुःख प्रकट किया था। क्या कहते हो? राजशाही जाओगे या

नहीं?'' भोलानाथजी का मन प्रसन्न नहीं था। उन्होंने उदासीनता से उत्तर दिया कि वे कुछ भी नहीं जानते।

आज दोपहर को माँ ऊपर ही आकर लेटी। 12 बजे बाद मेरे मौन भंग की आज्ञा थी। शाम को चार बजे तक मैं बात कर सकूँगी। माँ के पास ऊपर आते ही माँ ने कहा– ''तुमने क्या कहा था, क्या पढ़कर सुनाओगी? इस समय यहीं ले आओ।'' माँ के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था वही लाकर माँ को पढ़कर सुनाया। माँ ने गलतियाँ ठीक कर दी और भी बहुत–सी बातचीत हुई। तब भी मैंने नहीं जाना कि माँ ने मेरे लिये क्या व्यवस्था की है। भोलानाथजी के पेट में दर्द था। माँ ने कहा– ''फिर देर करने की क्या जरूरत है? हम लोग कलकत्ता जा सकते हैं, वहीं जाकर दवा होगी।'' भोलानाथजी ने कहा– ''ठहरो, अनंग (जो यज्ञ की अग्निरक्षा करते थे) काशीजी गया है उसे लौट आने दो। सब ठीक करके जाना होगा।''

शाम को मिरजापुर से कई लोग माँ के दर्शन को आये। उनसे माँ ऊपर ही बैठी बातें कर रही थी, इतने में काशीजी से शंकरानन्दजी स्वामी आ गये। अनंग ब्रह्मचारी भी आ गये। श्रीयुत् महेश भट्टाचार्यजी के भतीजे कुमुदबाबू भी आये। महेश बाबू के काशी के सब धन्धों का भार इन्हीं पर है। धर्मशाला आदि की देखभाल यही करते हैं। वे साधु की तरह जीवन बिताते हैं। सब इनको ''साधु बाबा'' कहकर पुकारते हैं।

पिछली दफा माँ जब महेश बाबू से अपने विन्ध्याचल के स्थान में पंचवटी तैयार करने को कह गई थी, तब यह भी कह गई थी कि कुमुद बाबू से कहना, वे सब कर देंगे। इस समय माँ के आने की खबर पाकर वे पंचवटी के लिये पेड़ और लोगों को लेकर काशी से आ गये। आते ही माँ को जहाँ पंचवटी बनेंगी वहाँ ले गये। कुमुद बाबू ने कहा– ''कितने आश्चर्य का संयोग है कि मैंने भी पेड़ लेकर आने का सब ठीक किया और इसी बीच में माँ भी आ गई, जिनकी आज्ञा से पंचवटी बन रही है, वे ही जब उपस्थित हैं तब सब मंगल ही होगा।'' यह कहकर उन्होंने माँ और भोलानाथजी को स्पर्श करा के सब वृक्ष स्थापित कर दिये।

इसके बाद माँ थोड़ा घूमने को बाहर गई। साथ में कुमुद बाबू आदि भी चले। शाम को घूमकर आश्रम में लौटी। थोड़ा–सा फल और दूध मैंने

खिला-पिला दिया। काशीजी से शंकरानन्द स्वामी थोड़ी मिठाई लाये थे। उन्होंने माँ से कहा- "माँ? गरीब की थोड़ी-सी चीज खाओ।" माँ ने थोड़ा-सा मुख में लेकर कहा- "कल खाऊँगी।" शाम को सब आये हुये लोगों ने माँ के पास थोड़ी देर कीर्तन किया। मिरजापुर से जो भक्त लोग आये थे उन्होंने भी माँ और भोलानाथजी को थोड़ी-सी मिठाई खिलाकर विदा ली। रात को 11 बजे माँ लेट गई। अनंग ब्रह्मचारी ने आकर माँ से एकान्त में कुछ बातचीत की।

25 जुलाई, शनिवार- आज भी माँ सवेरे जरा-सी देर घूम आई। मुख धुलाकर थोड़ा जल पिला दिया। कुमुद बाबू आकर माँ के पास बैठे थे। अनेक बातों-बातों में यज्ञ की बात उठी। निश्चय हुआ कि अनंग ब्रह्मचारी अकेले ही यज्ञ की अग्नि रक्षा करेंगे। माँ ने कुमुद बाबू से भी "तुम लोग सभी देखना। यह यज्ञ तो सभी के लिये हुआ है।" उन्होंने भी स्वीकार कर लिया। जिस प्रकार से सुविधा होगी वे करेंगे। अनंग ब्रह्मचारी भी कुमुद बाबू को गुरु के समान ही सम्मान की दृष्टि से देखते थे। क्षेत्र बाबू घर जायेंगे उनका मन घर के लिये कुछ व्यग्र हो गया था। उपेन्द्र बाबू से माँ ने अपने घर का झगड़ा मिटाकर बाहर निकलने को कहा जिससे बार-बार मन चंचल होने पर लौटना न पड़े।

इन सब बातों के बाद कुमुद बाबू उठ गये। माँ भी ऊपर जाकर बैठ गई। भोलानाथजी से कुछ बातचीत होती रही। थोड़ी देर के बाद अखंडानन्द स्वामी को बुलाकर कुछ कहा। बाद में सुना कि माँ आज ही कलकत्ता रवाना होंगी। कमलाकान्त साथ में जायेंगे। देहरादून का आश्रम खाली था। अखंडानन्द स्वामी को वहाँ जाने की आज्ञा दी। रायपुर से विष्णु ब्रह्मचारी आकर उनके पास रहेंगे। मैं, विराजमोहिनी दीदी और नौकर के साथ इसी आश्रम में रहूँगी। अनंग ब्रह्मचारी तो है ही। यह आज्ञा सुनकर मैं तो सन्न रह गई। क्योंकि माँ को छोड़ना होगा। इस जीवन में पिताजी को छोड़कर भी इस तरह अकेली नहीं रही। पिताजी को भी इस बुढ़ापे में अक्सर अकेले जाकर दूर देशों में रहना होता है। सभी मानो तीन तेरह। लेकिन मैं जानती हूँ कि माँ ने जो कह दिया है वह अमिट है। माँ की आज्ञा चाहे जितनी कठोर हो, सिर झुकाकर माननी ही होगी। सब बातों के बाद आज ही जो माँ को छोड़ना होगा, यही दुःख असह्य हो उठा। उस समय 11

नहीं बजे थे। इसी से मैं मौन थी। दोपहर का भोग हो गया था। माँ भोजन करके यज्ञ मन्दिर के बरामदे में जाकर लेट गई। 12 बज गये, मैं भी जाकर बैठ गई। क्या कहेंगी? इस बार मैं 8 महीने से माँ के पास थी। एक दिन पहले तक कुछ भी नहीं मालूम था। अकस्मात् मानो वज्राघात।

माँ मुझे धीरज देने के भाव से बोली– "जब जनेऊ दिया गया है और तुम्हें ब्रह्मचारी बनाया है उसका यही मतलब है और सारा जीवन इसी तरह व्यतीत करो; अब सब बन्धन छोड़कर पुरुषों की तरह चलना प्रारम्भ करो।" और बहुत-सी बातें की। फिर बोली– "पिताजी को असुविधा हो तब देहरादून चली जाना, नौकर तो साथ ही है। फिर अश्विन (कुंआर) के महीने में अन्नकूट समय 108 पद का भोग दिया जाता है उसी समय तुम ढाका जाना। पन्द्रह दिन या महीने भर उनके साथ रह आना। नौकर को साथ ले जाना। डर क्या है? कितने ही लोग जाते हैं। हिम्मत रखने की जरूरत है। नवरात्रि की पूजा की छुट्टी की भीड़ होने के पहले ही चली जाना।" इत्यादि इत्यादि बहुत-सी बातें कही।

सभी सुन लिया। जिसका ध्यान भी नहीं था वही करायेंगी, लेकिन वे सब बातें उस समय समझ में भी नहीं आती थी। माँ चली जायेंगी, इसी बात से मन व्याकुल हो गया। धीरे-धीरे जाने का समय आ गया। शाम को सात बजे की गाड़ी से सबको रुलाकर माँ कलकत्ता रवाना हो गई। स्वामी शंकरानन्द और कुमुद बाबू भी उसी समय काशीजी चले गये। मैं और स्वामी अखंडानन्द माँ के साथ स्टेशन गये। माँ ने स्टेशन पर बातों-बातों में मुझसे कहा– "तुम बाल काटकर चोटी रखना।" स्वामी शंकराचार्य से बोली– "ब्रह्मचारी लोग तो भस्म लगाते हैं? तुम खुकुनी को रोज भस्म लगाने का नियम लिख दो। वह भस्म नहीं लगाती है। अब से सब नियम के अनुसार ही करने की आवश्यकता है।" काशीजी से कोई और आ नहीं पाया था क्योंकि सब जानते थे कि माँ कुछ दिन तक विन्ध्याचल में रहेंगी। पिताजी और मैं लौटकर आश्रम में व्याकुल भाव से पड़े रहे। जाने से थोड़ी ही देर पहले विराजमोहिनी दीदी के भी माँ के साथ जाने का निश्चय हुआ। वे भी माँ के साथ चली गई। मुझे 24 घण्टे में दिन के 12 बजे से 2 बजे रात तक बोलने की आज्ञा दे गई।

26 जुलाई, रविवार– आज सवेरे उठकर देखा मानो सब सूना हो गया था। आज सवेरे ही माँ के कलकत्ता पहुँचने की बात थी। तार दे दिया गया था। विन्ध्याचल स्टेशन से गाड़ी छूटने के पहले माँ को फिर प्रणाम किया था तब माँ ने शरीर पर हाथ फेरकर कहा था – ''सावधान रहना।''

* * *

बयालीसवाँ अध्याय

29 जुलाई, बुधवार– आज कलकत्ते से यतीशचन्द्र गुहा महाशय की चिट्ठी से मालूम हुआ कि माँ इतवार को सकुशल कलकत्ते पहुँच गई। स्टेशन पर सभी भक्त आये थे। माँ के लिये बालीगंज में एक शिव मन्दिर में ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। माँ स्टेशन से वहाँ गई। वहाँ से ढाकुरिया होकर भोलानाथजी के बहनोई कालीप्रसन्न कुशारी महाशय के घर गई। वे लोग पुत्र शोक से व्याकुल थे। माँ सारे दिन वहाँ ठहरकर शाम की गाड़ी से राजशाही रवाना हो गई। दो–तीन दिन में लौट आने को कह गई थी।

30 जुलाई, बृहस्पतिवार– आज कलकत्ते से भोलानाथजी और भ्रमर के पत्र से मालूम हुआ कि माँ कल बुधवार को कलकत्ता पहुँच गई। माँ के साथ राजशाही से विराजमोहिनी दीदी नहीं आई। भ्रमर आई थी। कलकत्ते में माँ और कितने दिन रहेंगी या नहीं रहेंगी, कुछ स्पष्ट नहीं था। माँ ऊपर कहे हुये शिव मन्दिर में ही थी।

सावन की 16 तारीख, शनिवार– आज कलकत्ते से भोलानाथजी की चिट्ठी से मालूम हुआ कि वे लोग अभी कलकत्ते में ही हैं। भोलानाथजी डॉक्टर की दवा कर रहे हैं। ढाका के भक्त माँ को ढाका आने के लिये बड़े अनुरोधपूर्वक पत्र भेज रहे हैं, लेकिन माँ ढाका जाने की कोई बात नहीं कहती।

3 अगस्त, सोमवार– देहरादून से हरिराम की चिट्ठी से मालूम हुआ कि विष्णु ब्रह्मचारी पिताजी के पास आकर रहने को राजी हैं। यह खबर पाकर पिताजी की आज्ञानुसार देहरादून रवाना हो गये। कल तुरियानन्द स्वामी देहरादून से माँ की आज्ञानुसार विन्ध्याचल आये थे। पिताजी काशीजी होकर जायेंगे। मैं भी पिताजी के साथ काशीजी को रवाना हुई। दो–एक दिन वहाँ ठहरकर देहरादून जायेंगे तब मैं लौट आऊँगी, यही सोचा था। शाम से पहले ही काशीजी पहुँचकर एक धर्मशाला में ठहरे।

5 अगस्त, बुधवार–आज भी माँ की कोई खबर नहीं मिली। सुना गया कि रेवती सेन महाशय तीन दिन हुये कलकत्ते से काशीजी आये हैं। आचार्य विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय का एक नया पाठ काशीजी में स्थापित हुआ है उसी के उपलक्ष्य में आये हैं। उनसे माँ का समाचार मिलेगा, यह सोचकर पिताजी उसी समय उनके पास गये। किन्तु वे मिले नहीं, घूमने को बाहर चले गये थे। दूसरे दिन दोपहर को रेवती बाबू से भेंट हुई। माँ की खबर पूछी। उन्होंने बताया कि माँ से उनकी तीन रोज भेंट हुई थी। माँ के यहाँ बड़ी भीड़ थी। माँ बिड़ला पार्क के शिव मन्दिर में है। दिन में कहीं-कहीं जाती हैं। सुरेश बाबू ने दुमंजिले पर अपने घर में जो माँ के लिये दो-तीन छोटे-छोटे कोठे बनवा रखे हैं, जिनका और किसी काम में व्यवहार नहीं किया करते, वहीं ले जाकर माँ को एक दिन भोग दिया था। श्रीयुत् प्राणकुमार बाबू के नये घर में भी माँ को एक दिन ले गये थे। माँ अधिकतर शिव मन्दिर में ही रहती थी। बीच-बीच में भक्तों के घर भी थोड़ी देर के लिये चली जाती थी। यह सब समाचार पाकर हम लोग 4 बजे धर्मशाला में लौट आये।

थोड़ी देर बाद ही नेपाल दादा एक चिट्ठी लेकर आये। यह चिट्ठी कलकत्ते से यतीश गुहा महाशय ने शंकरानन्द को लिखी थी। उसमें लिखा था कि, "माँ सावन की 18 तारीख सोमवार को सवेरे भोलानाथजी आदि सबको लेकर श्रीरामपुर गई और शाम के पहले ही भोलानाथजी के साथ सबको वापस कर दिया। माँ, विराजमोहिनी दीदी को और राजशाही के प्रोफेसर अटलबाबू के भानजे कमल को लेकर श्रीरामपुर से रात की गाड़ी द्वारा कहाँ जायेंगी किसी को मालूम नहीं। भोलानाथजी को ढाकुरिया में बुआजी के घर पर रहकर दवा कराने को कह गई।" यह खबर पाकर हम लोग बड़े व्याकुल हुये। क्योंकि कमजोर शरीर था और माँ इस तरह दौड़-धूप करती हैं। कहाँ जायेंगी, क्या जाने? साथ में दो जने और वे भी करीब नहीं थे। यद्यपि कमल बहुत दिनों से माँ को जानता था लेकिन साथ में नहीं रहा। विराजमोहिनी दीदी भी माँ के साथ ज्यादा नहीं रही। केवल दो-तीन साल से ही उनका परिचय है। कुछ महीने साथ रही है, किन्तु व्याकुल अथवा चिन्तित होकर ही क्या करूँगी। मन अधिक व्याकुल होने पर सभी के मन में खयाल आया, क्या जाने माँ घूमते-घूमते कहीं

विन्ध्याचल आ जायें। माँ बाहर गई हैं, हम लोगों को भी अपने-अपने स्थान पर पहुँचकर रहना चाहिये। यही सोचकर निश्चय हुआ कि अगले दिन सवेरे 5 बजे की गाड़ी से मैं विन्ध्याचल चली जाऊँ और पिताजी 10 बजे की गाड़ी से देहरादून चले जायें। मन बड़ा चिन्तित था। पिताजी भी व्याकुल थे, क्या करें, माँ की खबर कहाँ मिलेगी यही सोचते थे। वहीं रात को मैं और पिताजी थोड़ा विश्राम करके लगभग ढाई बजे उठकर स्टेशन आने के लिये तैयार हुये। तीन बजते-बजते हम लोग स्टेशन पर जा बैठे।

6 अगस्त, बृहस्पतिवार– पाँच बजे की गाड़ी से पिताजी मुझको सवार करवाकर लौट गये। एक नौकर को साथ लेकर मैं चली और कोई साथ नहीं था। जीवन में इस तरह का यह पहला ही मौका था। माँ ही जाने और कितनी ही अवस्थाओं में मुझे ले जायेंगी। मुझे यह चिन्ता करने का अधिकार नहीं। हम तो केवल माँ की आज्ञा-पालन कर सकते हैं। पिताजी ने भी इस 72 साल की उम्र में अकेले सफर किया। बड़ा कष्ट होने लगा लेकिन उपाय कुछ नहीं था। विधाता के विधान की तरह माँ की आज्ञा भी अमिट थी। चार बजे विन्ध्याचल पहुँची। वहाँ भी माँ की कोई खबर यहाँ नहीं आई थी। आश्रम सूना लगता था। मन सूना था, इसी से सब सूना लगता था। लेकिन दु:ख लेकर बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। माँ की आज्ञा थी, सब नियमों के अनुसार साधन-भजन किये जाओ। बैठे न रहो। हर स्वाँस में आयु कम होती जा रही है। माँ की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके मैंने नियमित काम करना आरम्भ किया।

शाम को कलकत्ते से भोलानाथजी और भ्रमर का पत्र आया। वही खबर थी, नई बात केवल इतनी ही थी कि भ्रमर ने लिखा था कि माँ कलकत्ते से ही ''एक वस्त्र से ही जाऊँगी'' कहकर साथ में दूसरा वस्त्र या एक कम्बल तक नहीं ले गई। कहाँ गई हैं, यह कोई नहीं जानता। भोलानाथजी ने लिखा था कि माँ कह गई हैं कि कोई उनके लिये चिन्ता न करे और उनको ढूँढ़े भी नहीं। वे समय के अनुसार आकर सबसे मिलेंगी। भोलानाथजी इस समय कलकत्ते में रहकर इलाज करवा रहे थे। माँ एक वस्त्र में गई हैं, यह सुनकर मैं अत्यन्त दु:खी हुई। माँ जो कुछ करेंगी हमारे मंगल के लिये होगा इसमें सन्देह नहीं। माँ कितनी ही बार इस तरह भिखारियों के वेष में बाहर गई थी। तब भी हमारी मोह-निद्रा दूर नहीं हुई। माँ इस बरसात में

कहाँ गई, कब लौटेंगी यही सब सोचकर मन दुःखी था। छत के ऊपर शुद्ध होकर बैठ गई। मन में माँ के सम्बन्ध की अनेक बातें आने लगी। पिताजी भी पास नहीं जो माँ की कुछ बातें कहकर शान्ति देते, उसका कोई उपाय भी नहीं था। अधिकतर मैं मौन रहती थी, बात भी नहीं कर सकती थी। चुपचाप इस दुःख को सहन करने लगी। हम लोगों ने माँ को पाकर कुछ भी समझ नहीं पाया। अमूल्य रत्न को मानो उपेक्षा करके खो दिया। आज यही मन में लग रहा था।

7 अगस्त, शुक्रवार– कलकत्ता से यतीश गुहा के पत्र से मालूम हुआ कि माँ पिछली 17 तारीख सावन इतवार, झूलन पूर्णिमा के दिन उनके घर पर सन्ध्या के समय गई थी। बड़ी देर तक रही। वहाँ पर ब्रजेन्द्र गांगुली एवं निवारण समाजपति ने माँ को कीर्तन सुनाया था। स्त्रियों ने उन्हें फूलों से सजाकर कृष्ण बना दिया था। माँ भी भाव-मग्न थी। सन्ध्या से ही उस दिन माँ को खूब आनन्दित देखा गया। भोलानाथजी को देखने के लिये डॉक्टर डेनहम व्हाइट सतीश गुहा के मकान पर आये थे। माँ ने उन्हें सन्देश लिख दिया था। वे माँ को देखकर बड़े सन्तुष्ट हुये थे।

11 अगस्त, मंगलवार– आज सोलन में ज्योतिष दादा ने श्रीरामपुर के त्रिगुना बाबू का पत्र माँ की खबर बताने को मेरे पास भेजा। उसमें लिखा था कि माँ पिछले 18 सावन 1936 सन् को सोमवार के दिन 9 बजे त्रिगुना बाबू के साथ श्रीरामपुर गई। सूर्यास्त के पहले ही कलकत्ता के सब लोगों को भोलानाथजी के साथ लौटा दिया। रात को 8.30 बजे की गाड़ी से विराज दीदी एवं कमल को लेकर खड़गपुर की तरफ गई हैं। पहले पुरी जायेंगी, यह कह गई हैं। बाद में बोली कि, "खड़गपुर जाऊँगी। वहाँ जाकर जैसा होगा ठीक करूँगी।" साथ में बर्तन चीजें आदि कुछ नहीं ले गई। उससे ज्यादा खबर किसी को नहीं थी।

12 अगस्त, बुधवार– आज शाम को कलकत्ते से श्रीयुत् यतीश गुहा महाशय का पत्र आया। लिखा है कि पुरी धाम से जटिया बाबा के आश्रम से श्रीयुत् माखन बाबू ने कलकत्ता पत्र भेजा था कि माँ पुरी आई हैं। इस प्रकार बिना ही माँगे माँ को पाकर वे लोग बड़े आनन्दित हुये। जटिया बाबा के आश्रम पर खूब उत्सव हुआ। माँ की श्री भुवनेश्वर जाने की बात इत्यादि लिखी थी। माँ का समाचार पाकर मैं कुछ शान्त हुई। भुवनेश्वर में

मेरे आचार्य गुरु दिनेश चन्द्र भट्टाचार्य थे। उनको मैंने माँ का समाचार जानने के लिये पत्र लिख दिया।

माँ जिस अवस्था में छोड़ गई थी, माँ की आज्ञानुसार नित्य नियमित क्रिया आदि करके देखती थी कि अच्छा ही है। मन में सोचती थी कि इस नई अवस्था में क्या जाने क्या भाव होगा। पिताजी ने भी लिखा कि वे विष्णु ब्रह्मचारी के साथ अच्छी तरह हैं। कोई असुविधा नहीं है। माँ का विधान सब मंगलमय है। हम लोग समझते नहीं हैं। किन्तु विश्वास और निर्भय भाव से आज्ञा-पालन करते रहने से मालूम होता है कि भय का कोई कारण नहीं है बल्कि उसमें भी कल्याण ही छिपा है।

राजशाही से अटल दादा का पत्र आया, उन्होंने लिखा था कि ''इतना रोने के बाद जननी माँ ने आकर दर्शन दिये। हमारे सब दुःख दूर हो गये। जीवन में इतना आनन्द और आशीर्वाद कभी नहीं पाया। अब प्रार्थना करो कि जिससे जल्दी संसार के ऋण से मुक्त होकर माँ की गोद में शान्ति पा सकें। अपनी सुविधा के अनुसार धर्मशाला न पाकर माँ हमारे खुले बरामदे में एक रात ठहर कर कलकत्ता लौट गई। यह भी माँ की कृपा है।''

ज्योतिष दादा भी सोलन से माँ की जब जो खबर पाते थे, उसी समय मुझे सूचित करते थे, लेकिन वहाँ की कोई खबर नहीं मिली। यतीश गुहा महाशय ने और भी लिखा था कि ''माँ ने यहाँ आकर हमको सब आदेश बताये जो उन्होंने आप लोगों को दिये थे। तब हमने कहा कि माँ सबको इस तरह रुलाने से क्या लाभ है?'' माँ ने उत्तर दिया कि- ''इस तरह रोने से जो कुछ मैल होगा सब धुल जायेगा।''

* * *

तैतालीसवाँ अध्याय

18 अगस्त, मंगलवार– आज भोलानाथजी की चिट्ठी से मालूम हुआ कि माँ पुरी और भुवनेश्वर होकर कहीं गई हैं। जहाँ गई हैं वहाँ का नाम पता बताने को शायद मना कर दिया है। इसी से उन्होंने इस तरह लिख दिया और कोई खबर नहीं है।

19 अगस्त, बुधवार– आज शाम को कलकत्ते से यतीश दादा के पत्र से मालूम हुआ कि माँ भुवनेश्वर से खड़गपुर–आगरा होकर मथुरा गई हैं। मथुरा जाकर कमल को लौट जाने का आदेश दिया। कमल माँ को और विराजमोहिनी दीदी को मथुरा में छोड़कर कलकत्ता लौट गया। भुवनेश्वर से दिनेश भट्टाचार्य की चिट्ठी मिली। माँ 6 अगस्त को भुवनेश्वर धर्मशाला में गई थी। खबर पाकर 7 अगस्त को माँ के दर्शन किये। दो घण्टे माँ के पास रहा। उसी दिन शाम को माँ खड़गपुर की तरफ गई। उसके बाद कहाँ जायेंगी, ठीक नहीं है। इसके बाद ही मथुरा जाने की खबर मिली।

22 अगस्त, शनिवार– आज कलकत्ते से यतीश दादा की लड़की फुल्लयूथिका (बूनी) की चिट्ठी आई। उसने लिखा था कि माँ पिछली झूलन–यात्रा के दिन हमारे घर रात को आई थी। हमने माँ को फूलों का मुकुट आदि पहनाकर कृष्ण रूप से सजा दिया था। पीताम्बर मँगाकर माँ को पहनाया था। ब्रजेन्द्र गांगुली का कीर्तन हुआ था। कमरे में लोग नहीं समायेंगे, इसलिये छत पर कीर्तन हुआ था। थोड़ी देर के बाद ही माँ ने सब खोलकर मेरे हाथ में रख दिया और बोली- अपने पास रख ले, नीचे जा पहन के तुझे दिखा दूँगी। तीन–चार सौ आदमी जमा हो गये थे। बाद में माँ ने नीचे कमरे में आकर सब पहना और श्रीकृष्णजी की तरह बाँसुरी हाथ में लेकर तिरछी खड़ी हो गई। सब लोग झाँकी देखकर मुग्ध हो गये। फिर हम लोगों ने श्रीकृष्ण का भजन गाया। माँ थोड़ी देर बाद बोली, अब जल्दी यह सब खोल लो। शरीर जाने कैसा हो रहा है, फिर मुश्किल पड़ेगी। तब हमने सब साज खोल दिया। रात को लगभग ढ़ाई बजे तक उस आनन्द का उपभोग किया। दूसरे समाचार पिताजी के पत्र से आपको

मालूम हो जायेंगे। लेकिन यह समाचार पिताजी पूरा-पूरा नहीं दे सकते थे क्योंकि वे हर समय पास नहीं थे। मैं, दीदी और अनू मौसी, माँ के पास बराबर रहे थे।

अन्त में लिखा था कि माँ ने मथुरा जाकर कमल बाबू से पूछा कि तुम्हारे पास और कितने दाम हैं? उन्होंने कहा- ''दस रुपये'' तब माँ ने कहा- यह लेकर ढाका चले जाओ। माँ के पास कुछ भी नहीं है। एक टुकड़ा कम्बल माँ के शरीर के नाप का काटकर लिया था और सिर्फ एक लोटा था और कुछ नहीं था। आगे क्या करेंगी इसे कोई नहीं जानता। यह खबर पाकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। जिसकी जरा-सी सेवा करने के लिये इतने लोग लालायित हैं वे आज भिखारिन की तरह वेष सजाये है। कहाँ जायेंगी, क्या करेंगी? कोई नहीं जानता।

ज्योतिष दादा और पिताजी का पत्र मिला। उन्होंने भी लिखा था, माँ ने खोज करने को मना कर दिया है, इससे साहस नहीं होता। सिवाय प्रार्थना के हम लोगों के लिये और क्या उपाय है? कब लौटेंगी यह माँ ही जानें। विराजमोहिनी दीदी माँ के साथ है।

28 अगस्त, शुक्रवार- आज भोलानाथजी का पत्र मिला। माँ कब लौटेगी यह निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। मथुराजी से दूसरी जगह जायेंगी यह बताया था। कमल ने भी आकर बताया कि जिस दिन वह मथुरा से चला था, उसी दिन माँ की दूसरी जगह जाने की बात थी। कहाँ जायेंगी, यह कोई नहीं जानता था। नरसिंह मथुरा में थे। उनको पत्र भेजकर मालूम किया गया तो मालूम हुआ कि माँ मथुरा जी आई हैं, यह भी उसे नहीं मालूम हुआ। माँ का अब जल्दी समाचार नहीं मिलेगा, इस आशंका से हमारा मन व्याकुल हो उठा।

30 अगस्त, रविवार-आज पिताजी के पत्र से मालूम हुआ कि उन्होंने माँ के समाचार जानने के लिये चिन्तित होकर कई जगह पत्र डाले। वीरेन्द्र दादा को भी आगरा चिट्ठी लिखी। उन्होंने मथुराजी जाकर पिताजी की लिखी हुई धर्मशाला में खोज की, तो मालूम हुआ कि माँ दस-बारह दिन पहले उस धर्मशाला में आकर जगह न मिलने पर चली गई। फिर पिताजी ने कहीं खबर पाई कि माँ वृन्दावन में घूम रही हैं। माँ की आज्ञा के कारण खबर पाकर भी किसी को कुछ करने का साहस नहीं था।

5 सितम्बर, शनिवार– आज पिताजी के पत्र से मालूम हुआ कि माँ फैजाबाद में कई दिन ठहर कर अयोध्या गई हैं। फैजाबाद से लक्ष्मीरानी ने यह समाचार लिखकर चिट्ठी भेजी थी। इसके पहले माँ की एक भक्त स्त्री (कश्मीर) ने इलाहाबाद से लिखा कि उन्होंने खबर पाई है कि माँ लखनऊ में हैं। आज ज्योतिष दादा के पत्र से मालूम हुआ कि उन्हें खबर मिली है कि माँ अयोध्या से लखनऊ, कानपुर की तरफ जाएँगी, कहकर चली गई। इलाहाबाद से उस कश्मीरी स्त्री का पत्र आज भी आया। उसने लिखा था कि माँ फैजाबाद होकर अयोध्या गई। बाद में लखनऊ गई। कह गई हैं कि तुम लोग अगर हमारा शरीर रखना चाहो तो हमें भूलना नहीं। कहीं भी किसी को खबर देने नहीं देती थी और कहा कि शरीर कब और कहाँ चला जाये कुछ ठीक नहीं। खबर पाकर कोई आवे और शायद मुझे न देख पावे तो दु:खी होगा। कुछ दिन बाद अखंडानन्द स्वामी ने पत्र में लिखा था कि मालूम होता है कि माँ कानपुर में हैं। एक जगह जहाँ जाती हैं वहाँ लोगों की भीड़ होने लगती है तब वे दूसरी जगह चली जाती हैं। इसी तरह माँ घूमती-फिरती हैं। कुछ स्मरण होता है कि देहरादून में या जाने किसी और स्थान में माँ ने बातों-बातों में कहा था– ''लोग कहते हैं कि ऋषि-मुनि भी तो क्रोध करते थे, फिर हम लोगों के लिए क्या दोष है? इसका उत्तर यही है कि जो ऋषि-मुनि थे, वे पूर्ण थे। वे जो क्रोध करते थे वह भी पूर्ण मात्रा में कर सकते थे और उसको छोड़कर वे सृष्टि, स्थिति और लय भी कर सकते थे। जिस प्रकार वे भस्म कर सकते थे उसी प्रकार वे उसे फिर रच भी सकते थे। इसी से साधारण लोगों का उनकी बराबरी करना ठीक नहीं है।''

15 सितम्बर, मंगलवार– माँ लखनऊ, कानपुर की तरफ गई हैं, इस खबर के बाद फिर माँ की खबर नहीं मिली। कल रात को पुरी से महेशचन्द्र भट्टाचार्य के एक भतीजे विन्ध्याचल आये। उन्होंने आज सवेरे आश्रम में आकर नीचे लिखी घटना बताई– आनन्दमयी माँ पुरी गई थी, किन्तु दुर्भाग्यवश मुझसे भेंट नहीं हुईं। मुझे खबर ही नहीं मिली। मैं समुद्र के किनारे हरिदास ठाकुर के मठ के पास मकान बनवाकर रहता हूँ। हरिदास ठाकुर के मठ के बाबाजी (श्यामदास) परम वैष्णव हैं। उनकी अवस्था लगभग 80 वर्ष की है। वे वातरोग से पंगु होकर यहाँ आये। कोई तीन महीने पहले उन्होंने

किसी मनुष्य के मुख से माँ आनन्दमयी की बात सुनी और उन्हें देखने के लिये वे पागल हो गये। यहाँ तक कि वे देहरादून जाकर उनके दर्शन करने को तैयार हो गये (मैं अक्सर उनके पास जाया करता था। एक दिन जाकर उनका यह हाल देखा)। श्यामदास बाबाजी लगभग 19 या 20 वर्ष से पुरी में रहते हैं। किसी भी विषय में उनकी अधिक इच्छा या अनिच्छा नहीं देखी। आज उनको इस तरह चंचल देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे कहा कि आपने साधुओं का संग किया है और अब स्वयं श्रीजगन्नाथ देव के स्थान पर हैं। आपको आनन्दमयी को देखने के लिये इतना चंचल क्यों होना चाहिये। आप में टट्टी तक जाने की शक्ति नहीं है और आप देहरादून जाना चाहते हैं? मैंने भी आनन्दमयी को कभी नहीं देखा है। आपको इस प्रकार चंचल होना शोभा नहीं देता। अगर आपके भाग्य में उनका दर्शन होगा तो इस घर में बैठे-बैठे ही आप उनके दर्शन कर सकेंगे। यह सब कहने पर वे कुछ नहीं बोले। घटनाचक्र से इस बात के डेढ़ महीने बाद मैं श्यामदास बाबा के पास गया। उन्होंने अति आनन्द के साथ कहा कि माँ आनन्दमयी मुझे इसी घर में बैठे-बैठे दर्शन दे गई। कुछ मिनटों तक यहाँ ठहरी थी। माखन बाबू उनको लाये थे। मैंने सोचा कि मैं भी उनके दर्शन करने जाऊँगा, किन्तु मैंने सुना कि वे पुरी से चली गई हैं। मैंने श्यामदास बाबाजी से कहा कि आपने उस समय मुझे क्यों नहीं पुकारा? वे बोले कि तब क्या मुझे होश था? माँ कुछ ही मिनट ठहर कर चली गई। साथ में एक स्त्री को भी मैंने देखा था। मेरे घर के पास ही वे आई थी किन्तु मुझको दर्शन नहीं हुये।''

इस घटना को सुनकर मुझे भी आशयर्य हुआ। कई रोज हुये तुरीयानन्द स्वामीजी* ने मुझसे कहा था कि माँ इस तरह क्यों घूमती-फिरती हैं कुछ समझ में नहीं आता। इतने आश्रम बनवाये गये हैं किन्तु माँ बाहर-बाहर ही घूमती रहती हैं। मैंने यह घटना सुनकर कहा- देखिये पुरी जाने का एक कारण आज सुन लिया। इसी तरह कितनी घटनायें हैं, किस प्रकार समझ पायेंगे? यह सज्जन आज घटनाचक्र से यहाँ आ गये और श्यामदास बाबाजी

---

* कुंजमोहन मुखोपाध्याय कई साल से गेरुआ वस्त्र पहनने लगे थे और माँ ने उनका नाम तुरीयानन्द रखा था। माँ की आज्ञा से वे देहरादून से विंध्याचल आश्रम में आ गए थे। उनसे ही उपर्युक्त सज्जन ने यह घटना कही थी, मैंने भी सुनी।

से इनका परिचय है और आपके भी साथ हैं इसी से इन्होंने बिना पूछे ही यह घटना सुना दी, नहीं तो इस घटना के जानने की कोई भी सम्भावना नहीं थी।

भादों की 31 तारीख 16 सितम्बर, बुधवार–आगरा से वीरेन्द्र दादा की चिट्ठी आई है। उन्होंने माँ के सम्बन्ध में लिखा था, ''मैंने देहरादून की चिट्ठी से खबर पाई है कि माँ आगरा की तरफ गई हैं। फिर खोज करने पर मालूम हुआ कि माँ सचमुच एक दिन के लिये आगरा गई थी, फिर कहीं चली गई। बाद में वृन्दावन चिट्ठी लिखकर खबर मँगाई तो मालूम हुआ कि माँ वृन्दावन में वर्द्धमान राजा के मन्दिर में गई थी। वहाँ के मैनेजर योगेन्द्र बाबू ने उन्हें आगरा फोर्ट का टिकट ले दिया था। फिर खबर मिली कि आगरा फोर्ट आकर इटावा का टिकट लेकर चली गई। उसके बाद मालूम हुआ कि माँ अयोध्या की तरफ गई हैं। दो बार आगरा माँ आई किन्तु मैं एक बार भी दर्शन न कर पाया। मथुराजी में नरसिंह प्रोफेसरी करते हैं। माँ मथुराजी गई थी किन्तु उसे भी खबर नहीं हुई। माँ की इच्छा से किसी के साथ भेंट नहीं होती थी और इसी तरह घूमती–फिरती थी।''

आज स्वामी अखंडानन्दजी की चिट्ठी मिली। उन्होंने माँ के सम्बन्ध में लिखा है कि पुरी से माखन बाबू ने लिखा है कि माँ से उनकी बातचीत होती है। माँ ने शायद कहा है कि इस समय बाग में घूम रही हूँ, कौन–कौनसा पेड़ कैसा है देख आऊँ। माँ अपने भाव से घूम–घूमकर किस प्रकार पेड़ों की खबर लेती हैं वे ही जानें।

* * *

चौवालीसवाँ अध्याय

1343 बंगला सन् के कुंआर मास में खबर मिली कि माँ इटावा जाकर वहाँ लगभग 27 दिन रही और उसके बाद लखनऊ गई। मैंने 17 तारीख कुंआर में विंध्याचल से कलकत्ता आकर कमल के मुख से माँ का कुछ समाचार पाया। मथुरा से माँ ने कमल को लौटा दिया था। सुना कि माँ भुवनेश्वर से आगरा और श्याम कुटीर (आगरा और मथुरा के बीच में एक आश्रम है) होकर मथुरा गई थी। कमल जितने दिन माँ के साथ रहा उतने दिन का हाल लिखकर ज्योतिष दादा के पास भेज दिया था। कलकत्ते से ढाका जाने के एक दिन पहले अर्थात् कुंआर की 22 तारीख को भोलानाथजी से मिलने पर मालूम हुआ कि उसी दिन विराजमोहिनी दीदी का पत्र भोलानाथजी के पास आया था कि माँ लखनऊ में हैं।

कुंआर की 24 तारीख को माँ की आज्ञानुसार ढाका आकर 27 तारीख बुधवार को मैं सिद्धेश्वरी आश्रम में आई। यहाँ माँ की आज्ञानुसार 108 पद का भोग लगाने के दिन तक अर्थात् श्रीकालीपूजा के बाद प्रतिपदा तक ढाका में ठहरना होगा। कलकत्ते से जाने के पहिले माँ खूब आनन्द दे गई हैं यह सुना।

बंगला 1343 सन् कुंआर की 29 तारीख– पिताजी के पत्र से मालूम हुआ कि उनको मानिक का पत्र मिला है उन्होंने लिखा कि माँ लखनऊ से बाराबंकी गई थी। मानिक साथ में थे। वहाँ छः दिन ठहर कर फिर मानिक को माँ ने लौटा दिया और जाने कहाँ चली गई, मानिक को नहीं मालूम। मैं कहाँ हूँ, पिताजी कैसे हैं इसकी खबर लेने को माँ ने मानिक से कह दिया था। माँ से मानिक की फिर भेंट होगी ऐसी मानिक को आशा है।

बंगला 1343 सन् कार्तिक, 12 तारीख– भूपति दादा के पास ज्योतिष दादा का पत्र आया था। उससे मालूम हुआ कि माँ 19 अक्टूबर को नैनीताल से नीचे उतरी हैं। इसके बाद कहाँ हैं नहीं मालूम। लखनऊ में माँ ने मानिक को कहा था कि पूजा के समय वे कहाँ रहेंगी, यह मानिक को

बता देंगी। माँ 30 सितम्बर तक लखनऊ से आकर बाराबंकी जायेंगी, साथ में मानिक भी जायेगा। 6 दिन बाराबंकी में ठहरकर अर्थात् 6 अक्टूबर को माँ ने मानिक को विदा कर दिया। बाद में उसी दिन शाम को खोज करने पर भी मानिक ने माँ को नहीं पाया। शायद वहीं से माँ नैनतील जाकर ठहरेंगी।

* * *

पैंतालीसवाँ अध्याय

सचमुच अनेक लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता था कि माँ क्यों इस तरह इतना कष्ट उठाकर घूमती-फिरती हैं। कितनी ही जगहों में माँ के ठहरने के लिये कितना प्रबन्ध होता था। किन्तु देखने में आता है कि जिस स्थान पर जरा सुविधा होने लगती थी, माँ उस स्थान को छोड़ देती थी। कितने ही लोग माँ के दर्शन को लालायित रहते थे किन्तु माँ सबको रुलाकर बिना किसी उद्देश्य के यात्री बनकर चल देती थी। ढाका का आश्रम ज्यों ही तैयार हुआ, माँ अनेक स्थानों में जाकर घूमने लगी। कुछ दिन बाद लौटी। किन्तु आश्रम में ज्यादा दिन नहीं ठहरी। इसके बाद जब आश्रम की शोभा बढ़ने लगी और माँ के दर्शनों के लिये लोगों की संख्या बढ़ने लगी तो माँ एकबारगी उत्तराखंड चली गई और लगभग दस महीने रायपुर के एक पहाड़ पर पुराने मन्दिर के बरामदे में रही। किसी को अपना समाचार तक लेने नहीं दिया। यहाँ बीमार हो गई तब भी किसी को सेवा तक के लिये जाने की अनुमति नहीं दी।

फिर देहरादून के भक्तों ने कितनी आशा से आश्रम बनवाया। प्रतिष्ठा के कुछ ही दिन बाद बाहर चली गई। सोलन में जाकर योगी बाबा का बनाया हुआ जो मकान था उसी में रही। बरसात में रोज ही उस घर में पानी भर जाता था। योगी बाबा वृद्ध संन्यासी थे। उन्होंने अपने ही लायक कमरे बनाये थे। सब कमरों की यही दशा थी। राजा साहब ने माँ को दूसरी जगह ठहराने का प्रयत्न किया, लेकिन माँ उसी मन्दिर में रही। किसी के घर नहीं जाती थी। इसी से इस प्रकार घूमती-फिरती थी। पहले भी सोलन में आकर एक गुफा में रही थी। वह भी वर्षा होने से भीग जाती थी (वह स्थान भी मैंने देखा है)। किसी तरह एक कोने में रहती थी। पहले-पहले जब माँ सबके घर जाया करती थी, तब कभी राजमहल में जाती थी, कभी भिखारी के घर भी जाती थी, कभी बहुत लोगों के बीच में रहती थी, कभी एकान्त में रहती थी। लेकिन इन सब बातों में मैंने लक्ष्य किया है कि बाहर की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से माँ के भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता था। किस अवस्था को माँ अधिक पसन्द करती हैं

यह कोई नहीं बता सकता, ऐसा मालूम होता है। वास्तविकता यही है किसी में उनकी आसक्ति नहीं है। जो लोग कुछ दिन माँ से मिले हैं, वे ही इसको समझ सकते हैं।

सन् 1936 (ईस्वी) में माँ बंगाल देश से लौटकर देहरादून गई और वहाँ कृष्णाश्रम में कुछ दिन ठहरी। वहाँ ठहरने का बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध था। किन्तु माँ ने कुछ ही दिन बाद अचानक एक दिन मनोहर मन्दिर में आकर स्थान लिया। कृष्णाश्रम की तरह यहाँ ठहरने की कोई सुविधा नहीं थी (पहले माँ और ज्योतिष दादा इस मन्दिर के बरामदे में ठहरते थे तब और भी असुविधायें थी। वर्षा के पानी से सारा बरामदा भीग जाता था और जाड़े के दिनों में चारों तरफ से सर्दी लगती थी)। लेकिन माँ यहीं आई, क्यों आई, कौन बताये? उसी समय एक दिन नरसिंह से माँ की बात हुई थी, माँ ने कहा था- ''इस धूप में क्यों बार-बार इतना कष्ट करके आते हो, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। तुम भी आदमी, मैं भी आदमी, फिर क्या देखने आते हो?'' हँस-हँसकर यह बात कहने पर नरसिंह ने कहा- ''यह तो ठीक ही है किन्तु हमारे पास सब लोग क्यों नहीं आते यह कह सकती हो? हम तो लोगों के आने पर कितना आदर-सत्कार करते हैं और तुम हमेशा सबसे बात तक नहीं करती, आने को भी नहीं कहती तब भी क्यों इतने लोग आते हैं? और देखो इस गर्मी में कृष्णाश्रम में तो बिजली का पंखा और रोशनी थी, अधिक आराम की जगह थी। तुम उस स्थान को छोड़कर इस खुले बरामदे में क्यों ठहरी हो? धूप के समय बरामदा आग हो जाता है, रहा नहीं जाता और तुम उस ठंडे स्थान को छोड़कर इस गर्मी में यहाँ चली आई हो। हम लोग तो कभी नहीं आते। तुममें और हममें यही सब भेद है। हम लोग तो आराम चाहते हैं और तुम जहाँ जरा-सी सुविधा और आराम देखती हो उसी स्थान को त्याग देती हो। इन्हीं सब कारणों से इतने आदमी बिना बुलाये ही तुम्हारे पास दौड़ आते हैं।''

आज तक माँ इसी तरह घूमती-फिरती हैं। इसके बाद क्या होगा, माँ ही जाने। जो सदा साथ रहते हैं वे भी नहीं बता सकते कि आज ही माँ उनको छोड़कर चली जायेगी कि नहीं अथवा जितने दिन साथ रहती है बड़े स्नेह का अनुभव होता है। लेकिन किसी भी अवस्था में किसी के साथ

उनका बन्धन नहीं हो पाता। इसी से वे सर्वदा स्वाधीन हैं। जब भी कहीं जाना चाहती हैं इस तरह आनन्द का समाज भंग करके सबको रुलाकर स्वयं हँसती-हँसती चली जाती हैं। यह जो माँ को लेकर आनन्द का समाज इकट्ठा करते हैं इसके भंग होने से माँ का किंचित भी ध्यान नहीं जाता। उनके सम्पर्क में आने पर ही यह सब मालूम होता है। कभी-कभी व्यवहार देखकर मन में आता है कि हमारा खयाल बिल्कुल गलत था। स्नेह और प्रेम से भी वे दूर चली गई हैं। अनेक लोगों से अनेक भाव से मिलती हैं। कितने भाव से खेल करती हैं। इसी से हम सरीखे साधारण बुद्धि के लोगों की समझ में न आने से भ्रम हो जाता है। लेकिन वे हर बात में कहा करती हैं कि ''जानते हो मैं अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करती। तुम लोग जैसा करवाते हो, शरीर वैसा किये जाता है।''

* * *

छियालीसवाँ अध्याय

सन् 1935 (ईस्वी) में माँ तारापीठ गई थी, तब वहाँ एक साधारण मुसलमान गृहस्थ को पिताजी कहकर बुलाती थी। वह भी उस सम्बोधन से प्रसन्न होकर गद्‌गद् हो जाता था। रोज ही वह माँ को एक बार देखने आता था। सिद्धाश्रम से कुछ दूरी पर एक मस्जिद है, उसके पास ही मुसलमान का घर था। माँ उसके घर कई बार सबको लेकर गई थी। वृद्ध अपने घर के अन्दर जाकर अपनी स्त्रियों (वृद्ध के दो पत्नियाँ थी) से कहता कि पुत्री आई है तुम लोग बाहर आओ। वे लोग आकर माँ को आदर से बैठाती थी। माँ भी वहाँ जाकर एकदम लड़की ही बन जाती थी। खूब आनन्द करती थी। माँ के पास कोई भी चीज आती त्यों ही मुझसे कहती- ''पिताजी के लिये कुछ भेज दो।'' वृद्ध माँ को देखने आकर यदि देरी देखता तो बाहर से ही किसी को भेजकर माँ को कहला देता कि तुम्हारा पिता आया है, एक बार देखना चाहता है। माँ यह खबर पाते ही वृद्ध से तुरन्त मिलती थी।

माँ के तारापीठ रहने के दिनों में एक मौलवी साहब भी माँ के पास कलकत्ता से आकर कुछ दिन रहे थे। ये दिल्ली के बड़े घराने के लड़के थे। श्रीयुत् सुरेन्द्र ठाकुर की स्त्री संज्ञादेवी से माँ का हाल सुनकर मौलवी साहब पहले-पहल कलकत्ता में विनय बाबू के घर गये थे। कलकत्ते में संज्ञादेवी के घर के पास ही इनका घर था। माँ को देखते ही इनका चित्त प्रसन्न हो जाता था। बाद में ये माँ के पास तारापीठ जाते थे। दो-चार दिन रहते थे। माँ ने इनका नाम ''प्रेम गोपाल'' रखा था। और भी अनेक भक्तों के नाम सत्य गोपाल, नित्य गोपाल, जय गोपाल आदि रखे गये थे। मौलवी साहब का नाम प्रेम गोपाल हो गया। इन मौलवी साहब ने माँ के सम्बन्ध में अनेक कवितायें उर्दू भाषा में लिखी थी। वे कवितायें उन्होंने माँ को पढ़कर सुनाई। कई दिन के बाद माँ की आज्ञा से वे कलक़ता लौट गये। किन्तु संज्ञादेवी से मालूम हुआ कि वे कलकत्ते जाकर माँ के लिये अत्यन्त व्याकुल हो गये और भोजन तक नहीं कर पाते थे। रोते और व्याकुल होते थे।

बाद में संज्ञादेवी ने इन्हें फिर तारापीठ भेज दिया। दूसरी बार वे आकर माँ के पास कई रोज रहे फिर कुछ स्वस्थ (शान्त) होकर माँ की आज्ञानुसार कलकत्ता चले गये। मौलवी साहब को हिन्दू माताजी का ऐसा भक्त होते देखकर तारापीठ के बहुत से मुसलमान जमा होकर विरोध करने लगे। इस पर मौलवी साहब ने एक दिन शाम को सबको मस्जिद में इकट्ठा किया और लगभग घंटा भर भाषण देकर समझाया कि माँ क्या हैं और माँ के पास जाने से उनके धर्म में कोई बाधा नहीं हो सकती है। माँ को भी ले जाकर उसी सभा में एक चौकी पर आसन बिछाकर बैठाया और फिर माँ को नमस्कार करके उन्होंने यह भाषण दिया था। माँ में इनकी बड़ी श्रद्धा थी।

कलकत्ता से माँ के लिये कुछ खाने की वस्तु लेकर प्रेम गोपाल आये। उनकी इच्छा थी कि अपने हाथ से माँ को कुछ खिला दें किन्तु कहने का साहस नहीं होता था। माँ ने यह बात सुनकर उनको बुलाया और थोड़ा-सा खिलाने को कहा। उन्होंने बड़े आनन्द से माँ के मुख में थोड़ी-सी मिठाई दी। बाद में उन्होंने प्रसाद लिया। माँ ने वह प्रसाद सबको देने नहीं दिया। माँ इन प्रेम गोपाल से बड़ा स्नेह करती थी। माँ के वृद्ध मुसलमान पिता के घर प्रेम गोपाल को निमंत्रण खिलाया गया और वे इनको नाती मानकर आदर करते थे और माँ के पिता समझकर प्रेम गोपाल वृद्ध को नाना कहते थे। बीच-बीच में प्रेम गोपाल माँ के पास नाम-कीर्तन करते थे। हिन्दू भक्त लोग बैठकर सुनते थे। फिर हरिनाम कीर्तन में भी मुसलमान लोग शामिल होते थे। इसी प्रकार माँ के पास हिन्दू-मुसलमानों का मिलन होता था।

तारापीठ में एक वृद्ध ब्राह्मण खूब भजन गाया करते थे। स्वयं ही भजनों की रचना भी करते थे। वे दूसरे गाँव के निवासी थे। माँ के दर्शनों के लिये तारापीठ में कभी-कभी आकर ठहरते थे। एक दिन आकर माँ से बोले- "माँ तुम्हारे लिये एक भजन बनाकर लाया हूँ" यह कहकर गाने लगे-

सुनो (अरे) बाजीगर की लड़की। तुम्हारा जो कुछ है सब गूढ़।।
बताओ क्या सच्चा क्या झूठ। जरा यह जादू समझाओ।।

बनाए चन्द्र, सूर्य, तारे। ग्रहों नक्षत्रों से परिपूरणा।।
(फिर) यह पृथ्वी भी रहस्यमय है पुरातन नाश रहित जादू।।
(तुम्हारी) मधुर मुस्कानमयी ज्योति। किया इस बूढ़े को पागल।।
(माँ तुम) करो इस ज्योति में निर्माण। शुचि हृदय कुटिया साधु के ।।
(फिर) दिखाती यही मधुर ज्योति। किनारे मरघट गंगा के।।
रुलाती शोर कराती हो। कहीं बाजे बजवाती हो।।
कहीं पर ''राम नाम सत्त है।'' कहीं शादी की रौनक है।।
(अरे) दु:खी होकर कहती राधा। मिटी सब जादू की साधा।।
हरी सी व्याकुल सी मैं हूँ। माँ शान्तिमयी अब गोद।।

इस भजन ने मेरे आनन्द को जागृत कर दिया इसी से लिख दिया है।

फिर माँ जब तारापीठ से श्रीरामपुर गई तो वहाँ श्री गौरांग के मन्दिर में जाकर बैठ गई। उनके बैठते ही एक भक्त स्त्री ने नीचे लिखा भजन गाया। यह गाना मुझे बहुत अच्छा लगा। इसी से लिखती हूँ –

करुणा की सागर माँ मेरी, करुणा करने को आई हैं।
धर मनुज देह पृथ्वी तल पर, दुखियों को तारन आई हैं।
खुद भी दु:ख सहती करुणा कर, हम सब सन्तानों के कारण।
तीनों देवों को छोड़ वही, आशा हम सबको बंधवाती।
हम सन्तानों के दु:ख–सुख में, खुद भी हँसती और रोती हैं।
तेरी यह करुणा हेतु रहित, क्या सकता मानव समझ कभी।
सब ही भूलें तुम सहती हो, दु:खियों को गोद में रखती हो।
सौ जन्मों के जितने अघ हैं, इस लाल चरण पर वार दिये।
यह हृदय बड़ा चंचल मेरा, श्री चरणों को पूजे कैसे।
धो दूँ तेरे ये पद पंकज, भर दो आँसू से आँखे मेरी।

वास्तव में तो माँ सन्तान के लिये कितना सहती है, किन्तु सन्तान उसे समझ नहीं पाती। समझने का प्रसंग उठाया ही क्यों? सहेंगी नहीं? माँ तो हमारी सदैव की माँ हैं।

दीक्षा के सम्बन्ध में देहरादून में अमूल्य बाबू से माँ की बातें होती थी। अमूल्य बाबू ने पूछा– ''माँ क्या बिना दीक्षा के केवल नाम से ही काम नहीं हो सकता है?'' माँ ने कहा– ''हाँ, नाम से ही होता है। क्या तुम लोग नहीं देखते हो कि छोटे-छोटे बच्चे जब माँ कहना नहीं जानते तब उनके रोने से ही माँ समझ लेती है कि बच्चा उसको बुला रहा है और वह उसके पास जाती है। किन्तु बड़े होने पर बच्चे के रोने से ही माँ नहीं समझती कि लड़का माँ को बुलाता है। इसी तरह अज्ञानावस्था में हम लोग चाहे जिस नाम से ही पुकारें, भगवान सब जान लेते हैं।'' फिर दूसरे समय इसी सम्बन्ध में माँ ने कहा– ''तुमको जो नाम अच्छा लगे वही नाम पुकारे जाओ। आवश्यकता के अनुसार वे स्वयं आकर अपना वास्तविक नाम बता जायेंगे। देखो न, जिस प्रकार किसी लड़के का सही नाम तुम न जानते होओ, तो तुम उसे यदि उसके बचपन के साधारण नाम से या ''लड़के' कहकर पुकारो तो पहले शायद वह खयाल न करे, फिर भी उसी को लक्ष्य करके बुलाते रहने से बाद में वह अवश्य ही आवेगा और तब वह अपने आप कहेगा कि ''हमारा ठीक नाम यह है' इसी तरह किसी नाम से भगवान् को पुकारो जरूर काम बन जायेगा।''

कार्तिक की 19 तारीख, बुधवार– आज ज्योतिष दादा के पत्र से मालूम हुआ कि उनके पास मानिक का पत्र आया है कि माँ नैनीताल से उतरकर आगरा गई और वहाँ से दिल्ली के पास गढ़मुक्तेश्वर नामक स्थान में गई। फिर कहाँ गई, नहीं मालूम। माँ का शरीर अच्छा ही है।

माँ ने पंजाबी स्त्री का नाम पतली माई रखा था। वह बड़ी मोटी थी। इससे माँ ने उसका उल्टा नाम अर्थात् पतली माई रखा था। मैंने उसे कई बार देखा था। उससे माँ की भेंट सबसे पहले हरिद्वार में हुई थी किन्तु विशेष परिचय नहीं हुआ था। माँ एक दिन उनकी बात करने लगी कि यह पतली माई विशेष पढ़ी-लिखी न होने पर भी बातचीत अच्छी करती हैं। स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने कांग्रेस में योग दिया था। अनेक स्थानों में घूमकर उन्होंने भाषण दिये थे। उनके कुछ दृढ़ संकल्प थे। वे रचना करके गान किया करती थी, इन सब गानों और अध्यात्म रामायण इत्यादि का वे इतने ऊँचे स्वर में पाठ करती थी कि लोग उसे सुनकर उस स्थान से भाग जाते थे। लोग इस बात को लेकर हँसी भी उड़ाते थे। किन्तु वे इन सब बातों की परवाह नहीं करती थी। उनका भाव एक तरफ ही रहता था।

उन्होंने कांग्रेस में योग दिया था, इसे उनके सम्बन्धी पसन्द नहीं करते थे। उनको अनेक बार मना करने पर भी जब उन्होंने वह काम बन्द नहीं किया तब उन लोगों ने एक दिन पतली माई को दुमंजिले पर बन्द करके सीढ़ी में ताला लगा दिया और कहा कि जब तक तुम कांग्रेस का काम छोड़ने की प्रतिज्ञा न करोगी तब तक हम लोग तुम्हें छोड़ेंगे नहीं। पतली माई ने यह बात सुनकर भोजन-नींद छोड़ दी और उस कमरे की कीमती वस्तुओं को तोड़-ताड़कर फेंकने लगी। किन्तु इससे भी जब उनके घरवालों ने उन्हें नहीं छोड़ा तब वे दुमंजिल से कूद पड़ी और कांग्रेस में चली गई। इतना मोंटा शरीर होने पर भी कूदने में उनको डर नही लगा। उनके मन में यह दृढ़ संकल्प था कि ''हड्डियाँ टूट जायेंगी तो टूटने दो, प्राण निकल जायेंगे तो निकल जाने दो, जो मन में निश्चय किया है, वह करूँगी ही।'' किन्तु देखा गया है कि इतने ऊँचे स्थान पर से कूदने पर भी उन्हें कुछ भी चोट नहीं आई। कांग्रेस के काम के कारण एक बार उसे सजा हुई थी। जेल में रहकर वह इतने जोर से गाया करती कि लोगों का जी घबरा जाता। जेल के कर्मचारी किसी प्रकार भी उसका गाना बन्द नहीं कर सके। वह कह देती थी कि ''तुम लोगों ने हमारे हाथ-पैर बाँध दिये हैं किन्तु हमारी जीभ को रोकने की शक्ति तुम में नहीं है। मैं तो चिल्लाकर ही गाऊँगी जो कुछ तुम लोग कर सकते हो करो।'' अन्त में उन लोगों को उसे छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा।

जेल से आने पर उसने एक सत्संग स्थापित किया। वहाँ पर सत् आलोचना अर्थात् सत्य वस्तु का कथन और विचार, भजन, पाठ इत्यादि होता था। इसी प्रकार वह शुभ कार्यों में अपना समय बिताने लगी। माँ कहती थी कि ''जब मैं ऋषिकेश में थी तब कभी-कभी वह वहाँ आकर मेरे पास रहा करती थी। उसको मेरे सत्संग में रहते देखकर उसके सत्संग के पंजाबी लोग उससे कहते थे कि तुम बंगाली माताजी के पास क्यों जाती हो? क्या तुम नहीं जानती कि ये बंगाली स्त्रियाँ जादू जानती हैं। वे अपने मंत्र से मनुष्य को भेड़ा बना लेती हैं। यह सब बातें सुन-सुनकर और जब देखा कि मुझसे कुछ मिलने लायक नहीं है तब इसने मेरे पास आना-जाना बन्द कर दिया।

इसके बाद एक बार कुछ दिन के लिये शारदा छुट्टी लेकर ऋषिकेश

आई। तब उसकी यह इच्छा हुई कि वह पतली माई का गाना और पाठ सुने। इसलिये वह उनकी खोज करने लगी। एक दिन पूर्णानन्द स्वामी से मिलने जाते समय रास्ते में अकस्मात् पतली माई से भेंट हो गई। शारदा उसको पूर्णानन्द स्वामी के स्थान पर ले गई और वहाँ उसने गाना भी सुनाया। इसके बाद उसने फिर मेरे पास आना-जाना शुरू कर दिया। उसको मेरे पास आने-जाने का नशा-सा हो गया। साथियों के मना करने पर भी उसने आना-जाना बन्द नहीं किया। धीरे-धीरे वह मेरे पास ही खाती-सोती और हर समय मेरे पास रहने लगी। उसका स्वभाव चारों तरफ घूमने का था लेकिन अब वह घूमना छोड़कर चुपचाप मेरे पास बैठे रहना ही पसन्द करती है। उसके स्वभाव में यह परिवर्तन देखकर बहुत से लोगों को आश्चर्य हुआ। यहाँ तक कि वह स्वयं भी आश्चर्य करती थी किन्तु तब भी वह दूसरी जगह नहीं जा पाती थी। वह मानो मोह में पड़ गई थी। इधर जब मैं एक दिन छोड़कर एक दिन भोजन करने लगी तो उसने भी इसी तरह खाना शुरू किया। मैंने मना किया किन्तु वह नहीं मानी। इसके अतिरिक्त लोगों से मेरी जादू की विद्या की बातें सुनकर और अपने में परिवर्तन को देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि सचमुच ही मैं जादू जानती हूँ। उसने यह भी सुना था कि जब मैं रात को सो जाती हूँ तो जमीन से ऊँची उठ जाती हूँ। वह इसकी परीक्षा करने के लिये रात भर जागने लगी। किन्तु मुझमें कोई परिवर्तन नहीं देखा। रात को बीच-बीच में मेरी बातचीत सुनकर उसने समझा कि मैं रात को सोती नहीं हूँ। तब उसने मन में सोचा कि जागते रहने के कारण ही मालूम होता है कि मैं जमीन से ऊँची नहीं उठती हूँ। इसलिये वह नींद का बहाना करके लेट गई और मुझे गौर से देखने लगी। इस प्रकार वह बिना भोजन और नींद के कारण बहुत ही दुबली हो गई।

एक दिन रात को उसकी दशा बहुत खराब हो गई। हाथ-पैर ठण्डे हो गये। मैंने ज्योतिष दादा से कहा कि इसको जरा सेंक दे दो और शरीर पर हाथ फेर दो। किन्तु ज्योतिष दादा स्तब्ध ही बैठे रहे। तब मैंने ही उसके शरीर पर हाथ फेरा। साँस बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। बाद में वह भी करीब-करीब बन्द-सी हो गई। थोड़ी देर हाथ फेरते-फेरते उसने आँखे खोलकर देखा। ज्योतिष दादा ने उसे दवा की दो-एक गोली खिला दी। दवा खाने

के बहुत देर बाद स्वस्थ हुई। दूसरे दिन उसे यह सब घटना बताई गई और यह भी कहा गया कि यदि वह इसी तरह जागा करेगी तो उसे मेरे पास नहीं रहने दिया जायेगा। उसने सोना स्वीकार कर लिया। उसके साथियों को जब मालूम हुआ कि उसे दो गोलियाँ खिलाई गई हैं तो उन्होंने उसे समझाया कि इन बंगाली माताजी ने तुम्हें जादू की गोली खिलाई हैं और उसका शरीर जादू के कारण इतना खराब हो गया है। यह सब बातें सुनकर और अपने शरीर की दशा देखकर उसे विश्वास हो गया कि मैंने सचमुच ही कुछ कर दिया है। तब फिर उसने मेरे पास आना-जाना बन्द कर दिया।

''इसके बाद एक दिन वह अपने बिस्तर आदि लेने को आई। आकर देखा कि मैं हरिद्वार जा रही हूँ। यहाँ तक कि मेरी गाड़ी भी तैयार थी। उसे देखकर मैंने कहा- ''क्यों माँ, तुम्हारा जादू कुछ दूर हुआ।'' यह सुनकर उसने सोचा कि मालूम होता है कि मैं सभी जान और देख सकती हूँ। यह सोचकर वह मेरे पैर पकड़कर रोने लगी और बोली कि ''मैं तुम्हारे साथ हरिद्वार चलूँगी।'' मैंने कहा, ''तुम अगर यहाँ से चली न गई होती तो मेरे साथ जा सकती थी। लेकिन अब तो उसका कुछ उपाय नहीं है। क्योंकि मेरी गाड़ी तैयार है इसमें अब एक आदमी भी नहीं आ सकता है।'' मैं उसे छोड़कर ही हरिद्वार चली गई। बाद में वह अवश्य हरिद्वार मेरे पास आई। लेकिन मैंने फिर उसे अपने पास न रखकर उसके घर ही भेज दिया। बाद में उसने समझा कि उसके शरीर की दशा जो खराब हो गई थी वह जादू के कारण नहीं बल्कि भोजन और नींद त्यागने के कारण थी।''

यह सब बातें कहने के बाद माँ ने कहा- ''अब तो तुमने सुना कि बंगाली मायाविनी किस प्रकार जादू की गोली खिलाती है। इसका एक अर्थ जादू का सा ही है। शुद्ध भाव से एकाग्र होना जादू की तरह ही है, इसको यदि एक बार ग्रहण कर लें तो फिर छोड़ना नहीं चाहिये।''

शिमला में हारान बाबू ने माँ को एक सुन्दर कैश-बक्स दिया। माँ को लेकर घूमते-घूमते बाजार गये। वहाँ से बक्स खरीदकर लाये और चारु बाबू एवं हारान बाबू ने ही लाठी भी माँ को खरीदकर दी और कहा कि हम लोगों पर शासन करने के लिये अपने पास रख लो। माँ ने उनको उन्हीं दोनों के पास रख दिया। बक्से को भी माँ ने हारान बाबू से अपने पास अच्छी तरह रखने को कहा, किन्तु वे किसी तरह राजी नहीं हुये। माँ

ने कहा– ''हमारा बक्सा अपने पास रखा रहने दो।'' किन्तु उनके राजी न होने पर माँ ने कहा– ''अच्छा, बक्से को भर दूँगी।'' तब उन्होंने कहा– ''अच्छा माँ भरकर देने पर ले लेंगे।'' इसके बाद एक दिन रात को बैठकर माँ ने अनेक प्रकार से भगवान् के नाम लिखाकर बक्से में जगह–जगह रख दिये। मैंने चन्दन से बक्से के भीतर की जगह में ''माँ'' लिख दिया। अनेक प्रकार से कारीगरी के साथ नाम लिखकर माँ ने बक्से को सजा दिया। इस लीला में रात के दो बज गये क्योंकि रात को सबके चले जाने पर माँ ने बक्से को लेकर बैठे–बैठे खेल करना आरम्भ किया था। दूसरे दिन बक्से को पाकर वे लोग बड़े खुश हुये और अपने को धन्य मानने लगे। पहले हमने बक्सा माँ को दिया, अब माँ हमको लौटाकर दे रही हैं यह सोचकर वे लेने से इन्कार करने लगे थे। किन्तु अब माँ के हाथ से सजाया हुआ बक्सा उनको अमूल्य वस्तु जान पड़ने लगा और वे आकर बड़ा आनन्द प्रकट करने लगे। तब सभी के मन में अफसोस होने लगा कि हम भी माँ को एक बक्सा देते तो शायद माँ हमको भी इसी तरह सजाकर देती। हारान बाबू को वे लोग बड़े भाग्यवान् मानने लगे।

* * *

सैंतालीसवाँ अध्याय

माँ के बीते हुये जीवन पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि वे सदा से ही पूर्णभाव से लीला करती रही हैं। जब उन्होंने लड़की का पार्ट किया तब माता-पिता की अत्यन्त आज्ञाकारी रही। उन्हें गुरु के समान समझती थी। पास-पड़ौसी भी माँ से बड़ा स्नेह करते थे। जरूरत पड़ने पर वे पड़ौसियों के घर जाकर भोजन बना आती थी और भी दूसरे काम कर दिया करती थी। सभी कामों में चतुरता का पता लगता था। गरीब की लड़की होने पर भी माँ के सहज और सरस व्यवहार एवं सुन्दर मुख के कारण सभी बालकपन से ही माँ से स्नेह करने लगे थे।

मातृ आज्ञा पालन की एक छोटी-सी घटना लिखती हूँ। एक दिन माँ एक पत्थर की प्याली धोने तालाब पर गई। जाने के समय दीदी माँ (माँ की माताजी) ने कहा- ''देख यदि हो सके तो तोड़कर लेती आना।'' यह उन्होंने सावधान करने के लिये ही साधारण भाव से कहा था किन्तु सचमुच ही वह प्याली माँ के हाथ से गिरकर टूट गई। माँ ने बड़े यत्न से उसके सब टुकड़े बटोरकर अच्छी तरह धोए और दीदी माँ के पास ले आई। दीदी माँ ने कहा- ''यह क्या है?'' माँ ने कहा- ''प्याली मेरे हाथ से गिरकर टूट गई। तुमने जो कहा था कि लेती आना इसी से सब टुकड़े ले आई हूँ।'' उस समय माँ की अवस्था बहुत छोटी थी। इस बात से दीदी माँ फिर प्याली टूटने पर क्रोध न कर सकी और हँसने लगी।

अब भी देखती हूँ पिता के पास वे ही पुत्री हैं। कहीं भी आने जाने के समय यदि पिता मौजूद होते तो दोनों हाथों से उनके दोनों पैर पकड़कर मस्तक पैरों पर रखकर प्रणाम करती थी। फिर जब बहू बनी तो जेठ-जेठानी की सेवा और उनके लड़के और उनके लड़के-लड़कियों का पालन बड़े नियमित रूप से यत्नपूर्वक करती थी। सांसारिक कार्यों में देखने में तो इतनी लिप्त जान पड़ती थी कि उन्हें अपने शरीर तक का ध्यान नहीं रहता था। इसके कारण कई बार बीमार भी हो गई थी, तब भी वधू के कर्त्तव्य में जरा भी त्रुटि नहीं होती थी। जिठानी का (इस अवस्था में भी) यथेष्ट सम्मान करते हम लोगों ने भी माँ को देखा है।

फिर जब गृहिणी बनी, तब पति की सेवा को ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य समझकर धारण किया। पति के चरणों में ही अपने को लीन कर दिया। भोलानाथजी की आज्ञा का मैंने माँ को इस प्रकार पालन करते देखा है कि जो किसी साधारण मानवी स्त्री से सम्भव नहीं है। माँ की तुलना योग्य स्वयं माँ ही हैं। माँ कौड़ी भी बहुत खेलती थी। जब माँ पिता के घर में थी, एक बार भोलानाथजी ने जाकर इस पर मतभेद प्रकट किया, तभी से माँ ने कौड़ी खेलना ऐसा बन्द किया कि सहेलियों के अधिक जबरदस्ती करने पर भी फिर कभी खेलने नहीं बैठी। माँ की उस समय अवस्था कम थी। भोलानाथजी उस समय किसी दूसरी जगह थे। माँ के खेलने पर भी उनके जान जाने की कोई सम्भावना नहीं थी। किन्तु ऐसा करना माँ के स्वभाव के विरुद्ध था। बाजितपुर में जब शरीर आदि की क्रियायें आरम्भ हुई तब भी भोलानाथजी की सेवा में कोई कमी नहीं हुई। उनको खिला-पिलाकर दफ्तर भेजने के बाद भी वे निश्चिन्त नहीं होती थी। शाम को आकर हाथ-मुँह धोएँगे, उसके लिये भी पानी और तौलिया तक ठीक करके रख देती थी। तब अपने भजन के लिये बैठती थी। फिर उठते-उठते शाम हो जाती तब गृहिणी के काम धूप, दीप, लक्ष्मी का आसन इत्यादि सब ठीक करके फिर भोजन बनाने के काम में लगती थी। भोजन बनाकर भोलानाथजी के लिये पान-तम्बाकू सब तैयार कर देती। उनके सो जाने पर माँ रात को अपने भजन के लिये बैठती। शायद भजन समाप्त करके खाते-पीते, रात समाप्त होने को आ जाती। ऐसे ही दिन-रात के बीच में उनका भोजन होता था।

माँ भोजन बड़ा अच्छा बनाती थी। भोलानाथजी अपने पड़ौसियों को अक्सर खिलाया करते थे। वे लोग भी इससे बड़े प्रसन्न होते थे। माँ और भोलानाथजी दोनों जनों को देखा है कि लोगों को खिलाकर बड़ा आनन्द मनाते थे। अशुद्धता माँ के स्वभाव के विरुद्ध थी। माँ का काम, काज, घर, दरवाजा, बिछौने, कपड़े, शरीर सभी सदा शुद्ध और साफ रहते थे। माँ अपने ही हाथ से सब साफ करती थी। अचार रखना, अमावट बनाना किसी में भी माँ की त्रुटि नहीं होती थी। गृहिणी के जो काम हैं वे उन्होंने बड़ी सुन्दरता से किये हैं। ननद और देवर के लिये भी वे रहस्यमयी भावज थी। यद्यपि यह सब लीला थोड़े ही दिनों में समाप्त हो गई। तब भी

जितना कुछ किया सो सब पूर्ण। यहाँ तक कि ननद और देवर माँ के व्यवहार देखकर उन्हें 'देवी' समझने लगे।

माँ के हाथ की बुनी हुई लेस और कालीन आदि बनाने का काम बड़ा सुन्दर होता था, वह अब भी मेरे पास है। माँ ने चरखे से सूत कातकर कपड़ा भी तैयार किया है। गृहिणी अवस्था में माँ ने ये सब काम किये हैं। यद्यपि माँ का गृहिणी जीवन बहुत दिन तक नहीं रहा, फिर भी उन्हीं दिनों में सब कर लिया। एक आश्चर्य की बात और है कि माँ साधारण गृहस्थ की बहू होने पर भी उनकी घनिष्ठता बड़े-बड़े परिवारों से थी। मालूम होता है कि माँ का अलौकिक रूप और भीतर की आकर्षण शक्ति ही इसका कारण थी। भूदेव बाबू के परिवार के साथ माँ की विशेष घनिष्ठता थी और भूदेव बाबू के पहले जो उस पद पर थे (उनका नाम था रासबिहारी घोष) उनकी स्त्री भी माँ को बहुत प्यार करती थी। माँ उनको मौसीजी कहकर बुलाती थी। इन रासबिहारी बाबू की लड़की ही माँ की उषा दीदी थी।

इस तरह माँ ने गृहस्थ जीवन की लीला थोड़े ही दिन में समाप्त कर दी। फिर जब आश्रमवासिनी होकर जगत की माँ के भाव में लीला आरम्भ की तो यह भी अपूर्व है। भोलानाथजी जब शाहबाग में नौकरी करते थे तब रायबहादुर योगश बाबू के घर से कोई आता तो माँ उसका विशेष रूप से आदर सत्कार करती थी क्योंकि योगेश बाबू ही भोलानाथजी के मालिक थे। अब फिर सिद्धेश्वरी के महन्त के घर से स्त्रियों के आने पर माँ उनका भी विशेष आदर करती थी क्योंकि वे लोग जमींदार थे, प्रजा के घर आते थे। बाद में जब माँ अपने आप काम नहीं कर पाती थी तब हम लोगों से सब करा देती थी। रायबहादुर योगेश घोष महाशय में जब माँ के प्रति कुछ श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया, तब भी देखा है कि माँ पहले की तरह उनके बगीचे में आने पर घर में चली जाती थी। बाद में जब योगेश बाबू ने माँ को देखना चाहा तो भोलानाथजी ने जाकर माँ से कहा तब माँ धीरे-धीरे मस्तक ढ़ककर बाहर आकर बैठती थी। फिर योगेश बाबू के भाव में परिवर्तन होने के साथ-ही-साथ माँ के व्यवहार में भी परिवर्तन हो गया। बाद में तो खूब नि:संकोच भाव से माँ उनसे मिलती थी। वे भी माँ पर गुरु भाव से श्रद्धा करने लगे। माँ की सब क्रियाएँ इसी

प्रकार ठीक-ठीक समयानुसार प्रकट हो जाती थी। इसी से माँ कहती थी- "तुम लोगों के भावानुयायी होने से मेरे शरीर में परिवर्तन अपने आप हो जाता है। इसमें मेरी अपनी इच्छा या कर्त्तव्य कुछ भी नहीं है।" इस तरह माँ ने सभी लीला बड़ी सुन्दरता से की। किसी स्थान में कुछ भी त्रुटि नहीं रही। वे पूर्ण हैं, उनका कोई भी काम अधूरा नहीं होता।

माँ ने उपदेश देते समय भी अनेक बार कहा है, "जिस समय जो करूँगी, जी-जान से करूँगी। वह काम बड़ा हो या छोटा उससे मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।" माँ के मुँह से ही सुना है कि उन्होंने पुस्तकें आदि कुछ नहीं पढ़ी। लिखना-पढ़ना बहुत थोड़ा जानती हैं। इस पर भी धर्म पुस्तक थोड़ी-सी सुनते ही जाने कैसी हो जाती हैं। एक बार अष्टग्राम में माँ को एक सज्जन ने (माँ उनको भाई की तरह मानती थी और वे भी माँ को लाल दीदी के नाम से बुलाते थे। यह नाम अष्टग्राम में शायद माँ की सुन्दरता के कारण कुछ लोगों में प्रचलित था) एक धर्म-पुस्तक पढ़कर सुनाई थी। थोड़ी ही देर में माँ की अवस्था बदलती देखकर पूछा किन्तु माँ के कान में कुछ सुनाई नहीं दिया, वे स्थिर भाव से बैठी रही। तब वे धीरे-धीरे किताब लेकर उठ गये और फिर कभी उन्होंने किताब पढ़कर सुनाने का प्रयत्न नहीं किया।

माँ जिसको एक बार देख लेती, फिर उसे भूलती नहीं। चाहे बहुत लोगों के बीच में देखें, चाहे दूर से रास्तें में देखें, परिचय भी न हो, फिर भी यदि वही आदमी बहुत दिन बाद माँ के पास आता तो माँ यह बता देती कि एक दिन रास्ते में देखा था।

बंगला 1343 सन् के अगहन मास में माँ की आज्ञा से ढाका से विन्ध्याचल आते समय कलकत्ता होकर आई। कलकत्ते में अबला के द्वारा दो घटनायें सुनी।

पहली यह है - अबला के जेठ श्रीयुत् सतीश वन्द्योपाध्याय का एक 27-28 साल का पुत्र मर गया। इसी से अबला और दिनेश बाबू सतीश बाबू के घर गये। सतीश बाबू की स्त्री ने कहा कि उन्होंने कई साल पहले काशीजी में माँ के दर्शन किये थे तब शायद माँ ने उनसे पूछा था कि तुम्हारे कितने लड़के हैं? उन्होंने बताया था कि माँ मेरे 4 लड़के हैं। माँ

ने तब कुछ हँसकर कहा- मैं. तो देखती हूँ कि तीन लड़के हैं। सतीश बाबू की स्त्री ने कहा कि इतने दिन बाद अपने लड़के के मर जाने पर वह बात मुझे याद आ रही है।

दूसरी घटना है - अबला के एक बार दो जुड़वाँ लड़कियाँ पैदा हुई। एक तो होते ही मर गई दूसरी जीवित थी। इसके पहले भी अबला के दो लड़कियाँ हो चुकी थी इसी से उसको इन जुड़वाँ कन्याओं के होने का बड़ा दु:ख हुआ। बंगाल देश में कन्या का जन्म माता-पिता के दु:ख का ही कारण होता है। इसी से एक दिन अपने सौरगृह में ही अपने फूफेरे भाई से बातचीत करने लगी कि अब मैं इस कन्या की मृत्यु से भी दु:खी नहीं होऊँगी। इस बात के दूसरे ही दिन माँ उसके सौरगृह में जा पहुँची और हँसते-हँसते बोली, तुमने क्या इस कन्या की मृत्यु की कामना की है? यदि यह 10 महीने की होकर मर जायेगी तो क्या करोगी? अबला ने कहा- माँ तीन-चार लड़कियाँ हो चुकी हैं इससे बड़ी परेशानी मालूम होती है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कल ही जो इस लड़की के मरने पर भी मैं दु:खी नहीं होऊँगी, यह बात अपने फूफेरे भाई से की थी, सो माँ ने कैसे जान ली? सचमुच वह लड़की 10 महीने की होकर मर गई। माँ की दृष्टि तो भविष्य के अन्धकार में भी रुकावट नहीं पाती। इसी से अमूल्य बाबू कहते थे कि हमारी माँ केवल अन्तर्यामिनी ही नहीं हैं, वे भविष्य द्रष्टा भी हैं।

माँ जब बंगला 1343 सन् के अगहन के महीने में ढाका गई, ढाका से पारुलदिया रवाना होने के दिन माँ अमूल्य दादा की स्त्री पर विशेष कृपा कर आई। किन्तु उस घटना को दूसरों से कहने का निषेध था। अमूल्य दादा ने कहा था, माँ की कृपा की सीमा नहीं है। माँ हमारे वंश का उद्धार करके गई हैं।

* * *

अड़तालीसवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् अगहन की 7 तारीख– माँ की आज्ञानुसार कार्तिक की 28 तारीख को अन्नकूट हो जाने के बाद ही 30 तारीख को मैं कलकत्ता चली आई। वहाँ चार-पाँच रोज रहकर काशी आई। पिताजी भी माँ की आज्ञानुसार आगरा की "श्याम कुटी" आश्रम में 3 दिन रहकर आज काशी आ पहुँचे। वे माँ की पूर्व आज्ञा के अनुसार विन्ध्याचल की यज्ञशाला में किसी कार्यवश कुछ दिन के वास्ते जा रहे हैं। कलकत्ते में भ्रमर के पास मानिक का पत्र आया सो मैंने देखा उससे मालूम हुआ कि माँ को बहुत जोर का बुखार आ गया था और इटावा में एक बार पेट खराब हो गया था। माँ ने नैनीताल से बरेली आकर मानिक को खबर दी। मानिक बरेली जाकर माँ से मिला। दस-बारह दिन से माँ के साथ था। बरेली में महारतन ने माँ के दर्शन पाये थे। वहाँ से माँ मानिक को लेकर आगरा गई। मानिक से और भी समाचार मिला कि एक महीने के बाद फिर माँ के दर्शन होंगे ऐसी आशा है। वह माँ को गढ़मुक्तेश्वर में छोड़कर लखनऊ चला गया। अष्टमी और नवमी के दिन नवरात्रि में वीरेन्द्र दादा ने माँ को पास पाकर माँ की जी भरकर फूल बेलपत्रों से पूजा की। दूसरे स्थान पर यह लिख दिया गया है और एक यह विशेष घटना है कि माँ को जब बुखार था उसी समय भ्रमर ने दो दिन उन्हें सपने में देखा था। पहले दिन देखा कि मानो माँ को ज्वर है और माँ कह रही हैं कि आज खुकुनी का बनाया हुआ आलू और भात खाया है। सचमुच मैंने उन दिनों लगभग रोज ही आलू-भात का भोग लगाया था और स्वयं भी खाया था। दूसरे दिन भ्रमर ने फिर स्वप्न देखा, मानो माँ कह रही हैं कि क्या तुम तीन सेर दूध पीती हो? तभी मैं अच्छी होऊँगी। सचमुच ही भ्रमर ने तीन सेर दूध पीने का प्रयत्न किया, किन्तु ढाई सेर पी लिया और न पी सकी, तो फिर एक दिन 3 सेर दूध पीया। वह जरा भी दूध पी नहीं सकती थी किन्तु एक दिन इतना दूध पी लेने पर भी उसको कुछ कष्ट नहीं हुआ। उसने ज्योतिष दादा को यह सपने का हाल बताकर क्या करना चाहिये पूछा। ज्योतिष दादा ने भी उसको सपने के अनुसार ही काम करने का उपदेश दिया।

इस बार कलकत्ते में रहने के समय, हम सब इकट्ठे मिलकर श्रीयुत् यतीश गुहा के मकान पर माँ के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। एक दिन बातों- बातों में नीचे लिखी हुई कई एक घटनायें यतीश दादा और प्राणकुमार बाबू ने बतलाई। यद्यपि इन सब घटनाओं के समय मैं भी साथ थी, किन्तु मुझे ये सब याद नहीं थी। माँ 1938 सन् में जिस बार प्राणकुमार बाबू के घर चूंचड़ा गई थी, उस बार माँ ने सबको लेकर चूंचड़ा में गंगा स्नान किया था। प्राणकुमार बाबू की स्त्री आठ-नौ साल से वातरोग द्वारा पीड़ित होने के कारण बहुत बेबस अवस्था में थी। बिना दूसरे की सहायता के जरा भी चल नहीं पाती थी। इसी अवस्था में माँ ने गंगा के भीतर उनको गोद में लिया और रोज रेलिंग पकड़-पकड़कर थोड़ा-थोड़ा टहलने को कहा। उसी दिन गंगाजी में स्नान के बाद से सबने माँ का चरणामृत लेना आरम्भ किया। इस पर माँ ने गंगाजी से निकलकर गंगाजी को दिखाकर कहा कि ''यही जो चरणामृत रख आई हूँ वहीं से सब लोग लो।''

एक घटना और है - चूंचड़ा में माँ प्राणकुमार बाबू के घर गई थी। साथ में यतीश गुहा भी परिवार के सहित गये थे, बड़ा आनन्द हो रहा था। अकस्मात् एक दिन मानी (यतीश गुहा की बहिन) के गहने खो गये। कई गहने थे इसलिये सभी लोग अत्यन्त चिन्तित हो गये। प्राणकुमार बाबू पुलिस को खबर देन वाले थे, इसी बीच में पिताजी (अखंडानन्द स्वामी) ने कहा कि ''गहनों की चोरी की बात माँ से कही या नहीं?'' सबने कहा- ''नहीं, माँ से नहीं कहना चाहिये।'' पिताजी ने कहा- 'एक बार माँ को भी यह बात बता दो।'' उसी समय सबने जाकर माँ को बताया, माँ ने कहा- ''कहाँ जायेगा? बिछौने में ही है अच्छी तरह देखा जाकर।'' सबने जाकर बिछौने में देखा। इस बार बिछौने में गहने मिल गये, यद्यपि पहले कई बार बिछौना झाड़कर देख लिया गया था।

एक घटना और है - जमशेद्पुर से अनिलकुमार वसु महाशय आये थे। ये भी माँ के बड़े भक्त थे। जब माँ चूंचड़ा गई थी तब ये भी स्त्री सहित वहीं थे। माँ जब चूंचड़ा से नवद्वीप गई तब अनिल बाबू की स्त्री ने (प्राणकुमार बाबू की भानजी) माँ के साथ जाने की बड़ी इच्छा प्रकट की थी। तब माँ ने यह बात अनिल बाबू से कही थी। अनिल बाबू ने कहा- माँ क्या करें और तो छुट्टी नहीं है। माँ ने कहा, और 15 दिन की

छुट्टी नहीं ले सकते हो क्या? उन्होंने कहा– यह सम्भव नहीं है। इसके बाद माँ हम लोगों के साथ नवद्वीप चली गई और अनिल बाबू जमशेद्पुर चले गये। वहाँ पहुँचते ही सबने उनसे कहा– यह क्या? तुमने तो 15 दिन की छुट्टी के लिये तार दिया था फिर अभी क्यों चले आये? इसका क्या कारण है? अनिल बाबू चकित रह गये, क्योंकि उन्होंने तो छुट्टी का तार दिया ही नहीं था। यह घटना उन्होंने स्वयं बताई है।

चूंचड़ा से सब लोग मिलकर (यतीश गुहा का सारा परिवार माँ के साथ ही आया था) नवद्वीप गये। प्राणकुमार बाबू की स्त्री को भी माँ अपने साथ ले गई। नवद्वीप पहुँचकर माँ सबके साथ गंगा स्नान करने गई। किसी कारण प्राणकुमार बाबू की स्त्री गंगास्नान करने नहीं जा सकी वे घर पर अकेली रह गई। बहुत लोगों को यह बात बुरी लगी। उनके दामाद यतीश ने बार–बार कहा और इस बात पर दुःख प्रकट किया। प्राणकुमार बाबू के बड़े लड़के टूनू ने माँ से जाकर कहा– "माँ हम जाकर माँ को ले आवें।" माँ कुछ देर चुप रहकर बोली– "अच्छा जाओ ले आओ।" उसी समय टूनू जाकर अपनी माँ को स्नान के घाट पर ले आया। सबके साथ माँ ने गंगाजी में स्नान किया। सभी आनन्द में मग्न थे। जिस प्रकार बच्चे को पहले–पहल चलना सिखाया जाता है उसी तरह टूनू की माँ को जल में उतारकर माँ उनको घुमाने लगी। कभी हाथ पकड़कर, कभी छोड़कर, कभी कुछ दूर जाकर खड़ी होकर आने को कहती। इसी तरह पानी में बड़ी देर तक घुमाकर फिर निकल आई। टूनू और प्राणकुमार बाबू कहते थे कि टूनू की माँ नवद्वीप दो दिन रहकर फिर चूंचड़ा लौट जाने पर धीरे–धीरे चलने लगी और सात दिन या कुछ अधिक दिन में ही खूब अच्छी तरह चलने लगी।

इसके कुछ दिन बाद एक बार रेवती सेन महाशय गूंगों के स्कूल में गूंगों का खेल दिखाने माँ को ले गये। हम लोग भी साथ ही थे। उसी दिन चूंचड़ा से प्राणकुमार बाबू भी सपरिवार आकर वहाँ गये। तभी मैंने देखा कि टूनू की माँ इतने दिन बाद अब अच्छी तरह से स्वाभाविक रूप से चल सकती थी। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

एक बार पाबना से माँ प्राणकुमार बाबू के बुलाने पर उनके घर गई। उस समय की एक घटना यह है –

माँ के पहुँचने से वहाँ खूब आनन्द और उत्सव हो रहा था। घर पर लोग-ही-लोग थे। दिन-रात लोगों की एक-सी भीड़ रहती थी। अकस्मात् एक दिन माँ सामने मैदान में जाकर इस तरह घूमने लगी मानों कुछ ढूँढ़ रही हों। यह देखकर मैंने कहा- "माँ तुम क्या ढूँढ़ रही हो?" माँ ने कहा- "ठहरो मैं साँप को ढूँढ़ रही हूँ।" लेकिन वहाँ पर तब तक कोई साँप देखा नहीं गया था। फिर भी जब माँ ने साँप की बात कही, उसके दो-तीन दिन बाद ही साँप दिखाई दिया। माँ यह बात कहकर अपने स्थान पर चली आई। संध्या के बाद प्राणकुमार बाबू का नौकर माँ के पीने का जल लेने तालाब पर गया। उसने वहाँ दो साँप देखे। वह डर से भाग आया और दूसरे एक आदमी को बुलाकर ले गया। उसने जाकर देखा कि कलशे के दोनों तरफ दो साँप सिर ऊँचा करके बैठे हैं। जरा-सी आवाज करते ही वे दोनों चले गये। बाद में नौकरों ने घर आकर बताया तो माँ के कानों तक भी यह बात पहुँची। माँ हँसने लगी।

एक घटना और है - एक बार माँ सलकिया में बुआजी के घर पर थी। वहाँ से एक दिन के लिये श्रीरामपुर गोवर्द्धन के घर गई, फिर सलकिया लौट आई। उस समय माँ को बुखार था। 102 या 103 डिग्री जान पड़ता था। उसी जगह भोलानाथजी, यतीश गुहा के भाई नितीश से बोले- तुम क्या हम लोगों को दक्षिणेश्वर ले जाओगे? नितीश ने कहा- हम ले जाएँगे यह किसने कहा? आप लोग शायद जाएँगे, हम भी आपके साथ जाएँगे। भोलानाथजी ने कहा- सभी तो कहते हैं कि यतीश सबको दक्षिणेश्वर ले जायेगा। तब नितीश ने कहा- ठीक तो है, अगर आप लोग चलें तो एक दिन जाने की व्यवस्था की जा सकती है। इस पर भोलानाथजी ने कहा- तब कल ही चलो। माँ भी बोली, अच्छा तो है, चलो न।

तभी नितीश ने माँ से कहा- माँ कल न जाकर कुछ दिन बाद चलें, क्योंकि आजकल आपका शरीर अस्वस्थ है, जरा अच्छा होने पर जाना ठीक होगा। वास्तव में बात यह थी कि नितीश जानता था कि उस समय उसके दादा (यतीश और क्षितीश गुहा) के पास अधिक रुपये नहीं हैं। बड़ी कठिनाई से घर का खर्च चला रहे थे। दक्षिणेश्वर जाने के लिये खर्चे की आवश्यकता पड़ती। इसी चतुराई से नितिश ने माँ की अस्वस्थता का कारण दिखाकर कुछ दिन बाद दक्षिणेश्वर जाने का प्रबन्ध करने की इच्छा प्रकट

की। लेकिन माँ सभी कुछ जानती थी और शायद शिक्षा देने के लिये ही नितीश की ओर देखकर बोली– 'होगा, कल ही चलो, सब हो जायेगा।'

तब भोलानाथजी नितीश से बोले– ''तुम बहुत जल्दी कलकत्ता जाओ और अपने दादा से बातचीत करके सब प्रबन्ध कर डालो। अगले दिन सलकिया घाट से हम लोगों को ले चलने का प्रबन्ध करो। नितीश बड़े ही चिन्तित मन से दूसरी ट्रेन से कलकत्ता रवाना हो गया। जाने से पहले माँ के चरणों में प्रणाम करते समय उसने मन ही मन प्रार्थना की जिससे सब प्रबन्ध ठीक-ठीक हो जाए। माँ ने नितीश की तरफ अत्यन्त दया भाव से देखकर कहा– ''होगा, हो जायेगा, कल ही चलो।'' सायंकाल लगभग 6 बजे नितीश अपने भवानीपुर वाले घर पर पहुँचा और उन्हें (अपने भाइयों को) सारी बातें बतलाई। यतीश गुहा ने नितीश की बात सुनकर उसे डाँटा और कहा कि सलकिया से टेलीफोन करके पूछा जाये कि दक्षिणेश्वर जाने का दिन बदला जा सकता है या नहीं। इस पर क्षितीश गुहा ने कहा– ''अच्छा देखा जाये, माँ ने जब 'हो जायेगा' कहा है तो अवश्य की कुछ मतलब है।'' तब तीनों भाई और उनकी माता ने बक्स-पिटारी खोजते-ढूँढ़ते केवल पाँच रुपये पाये। भण्डारे में खोजने पर केवल नौ सेर दाल और अन्दाजन छः सेर चावल मिले।

तीनों भाई और उनकी माता इसी विषय की बात कर रहे थे कि इतने में श्रीयुत् ज्ञानरंजन ब्रह्मचारी (माँ ने जिनका नाम आदर से खोकन दादा रखा है) सीढ़ी से ऊपर चढ़ते-चढ़ते बोले– ''मैं जरा ऊपर आ सकता हूँ।'' और यह कहते हुए ऊपर आकर बोले– 'मैं नीचे से आप लोगों की सारी बातचीत सुन चुका हूँ। आप लोग इतने चिन्तित क्यों होते हैं। माँ ने जब कल ही जाने की बात कही है तो और कुछ सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं। मैं कल अपने भाई की दुकान से घी लेकर यहाँ आऊँगा और पहले से ही भोग आदि का सब प्रबन्ध कर लूँगा।' क्षितीश गुहा के पास उस समय एक पुरानी मोटर थी। उसी से दो-तीन फेरे करके सारे परिवार को बड़ा बाजार घाट पहुँचा दिया जायेगा। यही प्रबन्ध किया गया। यदि दो-चार रुपये कम पड़ेंगे तो किसी से उधार ले लिये जायेंगे, यह भी निश्चय किया गया।

दूसरे दिन इन्हीं यतीश गुहा की जाति के एक व्यक्ति की मृत्यु का सूतक समाप्त होने वाला था। बड़े सवेरे ही नाई-धोबी आदि सबने आकर अपना कार्य पूरा किया। घर की धुलाई-सफाई भी खूब सवेरे ही कर दी गई। ज्ञान ब्रह्मचारी ने भी अपने कहे अनुसार समय पर आकर दाल-चावल लिये और उन पाँच रुपयों में से एक रुपया तरकारी के लिये भी ले लिया और दक्षिणेश्वर पहुँचे।

सात बजे मोटर के आने की बात थी किन्तु नौ बज गये और मोटर नहीं आई। तब यतीश गुहा, क्षितीश गुहा, उनकी माँ और मौसी आदि चार-पाँच जनों को लेकर बस के द्वारा बड़ा बाजार घाट पहुँचे। इसमें लगभग एक रुपया खर्च हो गया। बड़े बाजार घाट में स्नान आदि करके दोनों भाई नाव खोजने चले। घूमते-घूमते जब इन्होंने देखा कि कोई भी नाव आठ रुपये से कम में तैयार नहीं है और 16 आदमियों से अधिक बैठायेंगे नहीं, तब ये दोनों भाई व्याकुल हो गये। बड़े बाजार से लेकर ये लोग अहीर टोला घाट के करीब तक हो आये। किन्तु सब जगह यही उत्तर मिला। अन्त में निराश होकर जब ये दोनों लौटने लगे तो सुना कि कोई बुला रहा है। गंगाजी की तरफ जाकर देखा तो दो नई नौका पार की तरफ से आ रही थी और केवट लोग इनको बुला रहे थे। मल्लाहों ने उत्तर पाते ही कहा कि बाबू साहब आप लोग अगर किराये पर नाव चाहते हैं तो हमारी नाव में चलिये। जब यतीश गुहा ने माझी से कहा कि हमें दक्षिणेश्वर जाना तो है किन्तु अधिक किराया न दे सकेंगे तो उसने उत्तर दिया, ''बाबू! हमने आज ही नई नौका चलाई है, हम किराये के विषय में आपसे कुछ भी न कहेंगे, आप लोग जो कुछ दे देंगे वही हम ले लेंगे।''

तब दोनो भाई आपस में कहने लगे कि हम लोगों के पास बहुत कम रुपये हैं, ऐसी अवस्था में दो नौका लेना ठीक है या नहीं। इस पर माँझियों ने कहा- बाबू, हम लोग चाचा-भतीजे हैं। आज पहले-ही-पहले हमने नई नौका चलाई है। आप लोग जो कुछ देंगे उसी में हम राजी हैं। चलिये, अधिक देर न कीजिये। दोनों भाइयों ने देखा कि माँझियों को ही अधिक गरज है तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। माँ की अपार दया की झलक देखकर उनके चरणों में मन-ही-मन कोटि-कोटि प्रणाम करके परिवार सहित नौका में बैठकर दूसरे पार सलकिया घाट से माँ और हम

सब लोगों को भी ले लिया और इस प्रकार सबने मिलकर दक्षिणेश्वर की यात्रा की।

गंगाजी में भक्तों के साथ माँ जा रही थी। भक्त लोग मृदंग, करताल लेकर कीर्तन करते जा रहे थे। उस आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। माँ को खूब बुखार चढ़ा था किन्तु आनन्दमयी की मूर्ति सदा आनन्द से पूर्ण थी। कोई श्रीचण्डी का स्तोत्र पढ़ता था, कोई राधा-गोविन्द नाम का कीर्तन कर रहा था। माँ एक ऊनी शाल शरीर पर डाले बैठी थी। लगभग साढ़े ग्यारह बजे दक्षिणेश्वर घाट पर नाव लगी।

माँ सीढ़ी द्वारा ऊपर चली गई। सभी माँ के चरणचिह्नों को स्पर्श करके मस्तक और हृदय से लगाने लगे। कालीजी का मन्दिर बन्द हो गया था। मदनमोहन के मन्दिर में आरती हुई। सब लोग माँ के साथ नाट्य मन्दिर में बैठे। तब कुछ लोग कीर्तन से पहले गंगा स्नान करने के लिये चले। माँ ने कहा- हम स्नान नहीं करेंगी क्या? यतीश दादा की माँ ने कहा- माँ तुम्हें बुखार है तुम स्नान मत करो। तुम यहीं बैठो हम लोग स्नान करके आते हैं। वे सब लोग स्नान करके पूजा करने बैठे। इतने में भक्तों का शोर सुनकर पीछे फिरकर उन्होंने देखा कि माँ बड़े आनन्द से दौड़कर आ रही हैं और आते ही गंगाजी में कूद पड़ी और तैरने लगी। साथ में और भी बहुत से लोग कूद पड़े। कुछ देर बाद माँ निकली और फिर जाकर नाट्यघर में बैठ गई। भक्तों ने माँ का सिर पौंछ दिया। कीर्तन आरम्भ हो गया और बहुत से लोग इकट्ठे हो गये।

थोड़ी देर बाद भोग की तैयारी हुई। भक्त लोगों ने माँ और भोलानाथजी को ले जाकर भोग दिया। बाद में सबने प्रसाद पाया। लगभग 82 या 83 लोगों ने प्रसाद पाया, यद्यपि दाल-चावल केवल 15 सेर ही था। इतने भक्तों के प्रसाद लेने के बाद भी बाल्टी भरकर खिचड़ी बच रही यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। भोग के भाव में भी थोड़ा परिवर्तन मालूम होता था।

समय समाप्त होने पर सब लोग माँ को लेकर घर लौटने की तैयारी करने लगे। तब कुछ लोगों ने उत्सव में कुछ देने की इच्छा प्रकट की। यतीश गुहा ने कहा कि बड़े आश्चर्य की बात थी कि सबने मिलकर जो कुछ दिया उसका हिसाब करके देखने पर मालूम हुआ कि नौका के किराये

में जो कुछ रुपये कम पड़े थे वे भी पूरे हो गये। एक भी पैसा ज्यादा या कम नहीं था। सभी को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। यतीश दादा ने समझ लिया कि इसीलिये माँ ने आते समय कहा था कि, 'हो जायेगा।' अब सब लोग लौटकर नाव में चले। माँ नौका में आते ही लेट गई। उस दिन शुक्लपक्ष की दशमी थी। गंगाजी की पूजा के विसर्जन का दिन था। कीर्तन करते-करते भक्त लोग माँ के साथ घर लौटे। माँ हम लोगों के साथ सलकिया गई। सभी लोग अपने-अपने घर चले गये। स्नान करने के बाद माँ का बुखार उतर गया।

* * *

उनचासवाँ अध्याय

अगहन की दशमी, बंगला 1343 सन्, काशीधाम– काशी आकर नेपाल दादा से मैंने सुना कि उनके एक मित्र माँ को हाल ही में सुल्तानपुर में देख आये हैं। सुल्तानपुर में शारदा शर्मा की बहन रमा लेडी डॉक्टर थी। उन्हीं के घर के पास के एक मन्दिर में माँ थी। कोई और खबर नहीं। इसी समय एक दिन तारापीठ से माँ का टेलीग्राम पाकर हम तारापीठ आ गये।

बंगला 1343 सन् के सावन के महीने में माँ विराजमोहिनी दीदी को लेकर अज्ञातवास के लिये बाहर जायेंगी। यही घटना तारापीठ जाकर विराजमोहिनी दीदी के मुख से सुनी, उसी का यहाँ वर्णन करती हूँ।

सावन की 18 तारीख सोमवार को दोपहर के समय माँ श्रीरामपुर पहुँची। माँ वहाँ श्री गौरांग मन्दिर में गई। सभी भक्त वहाँ इकट्ठे हुये। माँ ने कह दिया था कि शाम के पहले ही सब भक्तों को भोलानाथजी के साथ कलकत्ता लौट जाना होगा। शाम को माँ गंगाजी के किनारे घूमने गई। बाद में माँ ने प्रकट किया कि वहाँ जाने पर शायद माँ ने जगन्नाथजी की मूर्ति देखी और उसी समय से उन्होंने पुरीजी जाने का निश्चय कर लिया। तब तक यह बात और कोई नहीं जानता था। कलकत्ते से एक धोती लेकर ही चली थी। त्रिगुना बाबू के माँ को एक धोती देने पर, माँ ने अपनी पहनी हुई धोती उतारकर उनको दे दी। श्रीरामपुर से रात की गाड़ी से माँ खड़गपुर का टिकट लेकर रवाना हुई। त्रिगुना बाबू ने माँ के लिये एक कम्बल और एक धोती छिपाकर विराजमोहिनी दीदी को दे दी थी। श्रीरामपुर स्टेशन पर एक व्यक्ति ने एक अच्छी सी साड़ी, थोड़े सन्देश और सिन्दूर माँ को दिया। सन्देश उसी समय बाँट दिये गये, साड़ी विराज दीदी ने साथ रख ली।

श्रीरामपुर से खड़गपुर पहुँचने पर पुरी जाने की गाड़ी न मिलने के कारण एक कमरा किराये पर लेकर वहाँ ठहरी। बाद में पुरी रवाना हुई, वहाँ पहुँचकर गोयन्का की धर्मशाला में पहुँची, कमरा खाली न मिलने पर बरामदे में ठहरी।

उक्त धर्मशाला के बगल में ही कमरे में एक उड़ीसा वासी यात्री परिवार

सहित ठहरे थे। उन्हीं के कमरे में कम्बल और कपड़े रखकर विराज दीदी दर्शन करने के लिये बाहर निकली। माँ ने शायद धर्मशाला में जाते ही कहा था कि इस अच्छी साड़ी को उसे (उड़ीसा वासी यात्री को) देकर मैं उससे एक धोती लूँगी। बात कमल के सिवाय और कोई नहीं जानता था। दर्शन करके लौटने पर विराज दीदी उस यात्री के कमरे से धोती कम्बल लाने के लिये जब वहाँ गई तो वह यात्री अपने आप ही कहने लगा– क्या यह साड़ी बेचोगी? इसका दाम क्या है? विराज दीदी ने कहा– मैं दाम नहीं जानती। एक भक्त ने माँ को दी है, मैं बेचूँगी नहीं। तब उस यात्री ने कहा माँ तो महीन किनारे की साड़ी पहनती हैं, इस साड़ी को तो माँ पहनेंगी नहीं। यह सब बातें विराज दीदी ने जब माँ को बतलाई तो माँ ने हँसकर यात्री को बुलाने को कहा और तब माँ ने उससे उस साड़ी को लेने के लिये अनुरोध किया, किन्तु वह बिना दाम दिये साड़ी लेने को किसी भी प्रकार राजी नहीं हुआ। इसी बात को लेकर माँ की उससे बड़ी देर तक बातचीत हुई। माँ ने उसको माता-पिता आदि सम्बोधन करके मधुर बातों में भुलाकर साड़ी लेने को किसी तरह राजी किया। वे साड़ी लेकर चले गये किन्तु कुछ देर बाद फिर आकर माँ को एक महीन किनारी की धोती खरीदकर देनी चाही। माँ ने कई बार मना किया किन्तु अन्त में उनके विशेष अनुरोध से राजी हो गई। उन्होंने माँ को एक महीन किनारी की धोती लाकर दे दी। माँ ने पहले आते ही कमल से गुप्त रूप से जो कहा था वह पूरा हो गया।

शाम को माँ समुद्र के किनारे घूमने गई। अकस्मात् एक वैष्णव लड़का माँ के पास आकर बोला– मैंने आपको शाहबाग में देखा था, आप शाहबाग की माताजी हैं न? यह कहकर वह चला गया और **श्री विजय गोस्वामी** के आश्रम पर माखम बाबू को खबर दी। माँ समुद्र किनारे थी, माखम बाबू धर्मशाला आए और माँ को न पाकर वापिस चले गये। माँ जब समुद्र के किनारे से लौटकर धर्मशाला आई तो बरामदे में टहलने लगी– अकस्मात् टहलते-टहलते बोल उठी– ''माखम बाबू को लालटैन हाथ में लिये घूमते देखती हूँ।'' इस बात के थोड़ी ही देर बाद सचमुच एक लालटैन हाथ में लेकर माखम बाबू माँ के पास आये। माँ को यहाँ अकस्मात् पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुये। थोड़ी देर तक माँ के साथ बातचीत करके वे वापिस

चले गये।

दूसरे दिन सवेरे माँ समुद्र के किनारे घूमने गईं तब उस समय भी नवद्वीप का एक लड़का मिला। उसने माँ को नवद्वीप में देखा था। वह माँ के साथ बहुत से स्थानों में घूमा था। शाम को माखम बाबू माँ को लेकर श्यामदास बाबाजी के पास गये और आनन्द बाजार आदि अनेक स्थानों में घूमकर नाना प्रकार का प्रसाद खरीदकर धर्मशाला में लाये और माँ को अपने हाथ से खिला दिया। माँ ने भी सबको खिला दिया।

उसी दिन शाम की गाड़ी से माँ भुवनेश्वर रवाना हुई। वहाँ धर्मशाला में ठहरी। दूसरे दिन अनेक स्थानों में घूमने के बाद दोपहर को धर्मशाला में लौट आई। खबर पाने पर दिनेश भट्टाचार्य माँ से मिलने आये। माँ से उन्होंने दो घंटे तक बातचीत की और माँ को गाना भी सुनाया। उसी दिन शाम को माँ भुवनेश्वर से रवाना होकर गोमो, आद्रा आदि स्थानों में घूमती हुई आगरा पहुँची। वहाँ एक दिन ठहरकर श्यामकुटी घूम आई और मोटर द्वारा मथुराजी गई। मथुरा जाकर धर्मशाला में तीन दिन ठहरी, वहाँ पर किसी भक्त को खबर नहीं लगी। धर्मशाला में तीन दिन से अधिक ठहरने नहीं देते इसलिये माँ फिर चल पड़ी। यहीं से कमल को कलकत्ता लौट जाने की आज्ञा दी। कमल ने बहुत मना किया किन्तु माँ ने समझाकर भेज दिया। कमल के साथ माँ भी स्टेशन तक घूमने गई। वहाँ से लौटकर **विश्राम घाट** पर जा बैठी। उस दिन माँ के फल खाने का दिन था। साथ में कुछ नहीं था। मामूली बरतन आदि विराज दीदी ने पुरी में खरीदे थे, सभी माँ ने कमल के साथ दे दिये। कम्बल को काटकर एक टुकड़ा रख लिया। बाकी कमल को दे दिया। एक लोटा, एक कम्बल का टुकड़ा और एक धोती के सिवाय माँ के पास और कुछ नहीं था। विराज दीदी के पास एक कम्बल और दो धोतियाँ थी। साथ में कुछ रुपये थे। कुछ फल खरीदकर उसी घाट पर बैठे-बैठे विराज दीदी माँ को खिलाने लगी। यह देखकर चारों तरफ बहुत से लोग खड़े होकर देखने लगे। माँ के इस प्रकार रूखे बाल और दूसरे के हाथ से खाते देखकर पागल समझकर वे लोग हँसने लगे। माँ भी उनके साथ हँसने लगी।

शाम होने लगी, कहाँ जायेंगी कुछ भी ठीक नहीं। रास्ते के किनारे हर एक स्थान दिखाकर विराज दीदी से माँ कहती थी- ''क्या इस स्थान

में ठहर सकते हैं?'' इसी बीच एक भक्त कश्मीरी महिला ने माँ को देखकर बड़े आनन्द से आकर चरणों में प्रणाम किया और माँ के दर्शन से अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगी। माँ को साथ ले जाना चाहा किन्तु माँ किसी के घर जाती नहीं हैं। तब उन्होंने कहा- ''इसी विश्राम घाट पर हम लोगों का एक मन्दिर है, वहाँ चलिये।'' माँ को वहाँ ले जाकर ठहरने का सब प्रबन्ध कर दिया। माँ के भोग के लिये दूध-फल सब ले आई। दूसरे दिन वहीं रोटी-तरकारी तैयारी करके लाई और माँ को खिला गई। माँ खाने के लिये बैठी थी कि उसी बीच शिवनारायण पंडित (काश्मीरी) नाम के एक सज्जन आये और माँ का दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा कि मैंने एक बार देखा फिर अनेक धर्मशालाओं में खोज की किन्तु आप मिली नहीं। अब आप हमारे एक मन्दिर में चलिये। वहाँ आपको कोई असुविधा नहीं होगी। माँ ने कहा- ''अब इस समय नहीं, फिर देखा जायेगा। अभी मैं वृन्दावन जाऊँगी।'' उन्होंने कहा- ''मैं भी आपके साथ चलूँगा।''

उसी पंडित के साथ 29 तारीख सावन शुक्रवार को माँ वृन्दावन रवाना हुई। दो बजे माँ वर्द्धमान राजा की धर्मशाला में पहुँची। वहाँ के मैनेजर योगेन्द्र बाबू माँ के पूर्व परिचित थे। वे आकर माँ को धर्मशाला के अन्दर ले गये। थोड़ी देर बाद माँ ने पण्डितजी को मथुरा लौट जाने को कहा।

दूसरे दिन अर्थात् सावन की 30 तारीख को माँ वृन्दावन छोड़कर मथुरा स्टेशन गई। वहाँ जाने पर मैनेजर योगेन्द्र बाबू ने पूछा- ''माँ अब आप कहाँ जायेंगी? कहाँ का टिकट लेंगी?'' माँ ने कहा- ''हमारा तो कुछ ठीक नहीं है, रास्ते से कोई ले जायेगा तो वहीं चली जाऊँगी, इस समय आगरा का टिकट ले लो।'' मैनेजर ने आगरे का टिकट ला दिया। मथुरा से वृन्दावन जाते समय उपरोक्त कश्मीरी महिला को माँ ने एक धोती, ''धुला कर रख देना'' कहकर दी थी। उन्होंने इस बात से समझा था कि माँ शायद फिर मथुरा जायेंगी। किन्तु माँ बहुत लोगों को इस प्रकार कम्बल, धोती, चादर और कमीज रख देने को कहकर दे आई थी किन्तु फिर लौटकर नहीं आई। यह बात उस महिला को मालूम नहीं थी। आगरा फोर्ट पर उतरकर माँ ने विराज दीदी से इटावा का टिकट लाने को कहा। माँ स्टेशन पर बैठी रही, इतने में दो लड़के बड़ी नम्रता से बात करने लगे

और अनुरोध करने लगे कि आप आगरे में हमारे यहाँ चलिये, हम यमुना के किनारे आपके ठहरने का प्रबन्ध कर देंगे, कोई असुविधा नहीं होगी।'' यह कहकर उन्होंने अपना पता भी माँ को दे दिया।

माँ ने इटावा जाने के लिये टूंडला में गाड़ी बदली। अकस्मात् टूंडला स्टेशन पर एक लड़का माँ को देखकर पास आया और बोला– ''माताजी, मैंने आपको सुल्तानपुर में देखा है, सुल्तानपुर जायेंगी? मैं भी सुल्तानपुर जा रहा हूँ।'' माँ ने कहा– ''इटावा का टिकट लिया है।'' उस लड़के ने प्रयत्न करके उस टिकट को बदलवाकर सुल्तानपुर का करवा दिया।

माँ इटावा न जाकर बीच में से ही सुल्तानपुर चल दी। इलाहाबाद पहुँचकर गाड़ी बदलने के समय फिर वह लड़का नहीं मिला। सुल्तानपुर जाने के समय माँ और विराज दीदी जनानी गाड़ी में बैठी थी। प्रतापगढ़ स्टेशन पर एक मुसलमान स्त्री उसी डिब्बे में बैठी। उसने माँ से पूछा– ''तुम्हारे कितने बच्चे हैं?'' माँ ने उत्तर दिया– ''मैं ही तो तुम्हारी बच्ची हूँ, मेरे और बच्चे क्या होंगे?'' इस बात से उस स्त्री पर सजीव प्रभाव पड़ा। इसके बाद माँ से दो–चार बात होने पर बड़ा प्रेम हो गया। विराज दीदी माँ के लिये एक खिलौना लाई थी। माँ थोड़ी देर उसे लिये उलट-पुलट करती रही फिर उस स्त्री से बोली– ''माँ के पास ही तो लड़के-लड़कियों के खिलौने रहते हैं। हमारा यह खिलौना अपने पास रख लो।'' उसने माँ को अपना पता दिया और उनसे फिर मिलने के लिये अनुरोध किया। जाने के समय वह रोने लगी। माँ विराज दीदी के साथ सुल्तानपुर गई। वहाँ कल्लूमल की धर्मशाला में ठहरी। वहाँ रमा शर्मा (शारदा की बहिन) लेडी डॉक्टर थी। विराज दीदी जाकर उनसे मिली। रमा ने आकर माँ का सब प्रबन्ध कर दिया। माँ भादों की प्रतिपदा को लगभग 9 या 10 बजे सुल्तानपुर पहुँची थी। उस दिन वहाँ ठहरकर दूसरे दिन सवेरे गोमती पर गई। रास्तें में एक मोटर जाते देखकर पूछा कि यह मोटर कहाँ जायेगी?'' किसी ने कहा– ''फैजाबाद जा रही है।'' उसी समय माँ ने विराज दीदी से कहा– ''चलो फैजबाद चलेंगे।'' चार–पाँच बजे फैजाबाद पहुँचे। स्टेशन से ताँगा करके अयोध्या रवाना हो गये।

* * *

पचासवाँ अध्याय

साढ़े पाँच या छः बजे अयोध्या पहुँचे। वहाँ लालदास बाबाजी के मन्दिर में ठहरे। रमा साथ में ही थी। इस मन्दिर से दूसरे एक मन्दिर में जाकर ठहरेंगे यह निश्चय हुआ। सरयू के किनारे घूमने जाने पर वहाँ अहिल्याबाई के श्रीराम मन्दिर में रामायण का पाठ हो रहा था, वहीं पर माँ बैठ गई। मन्दिर बड़ा सुन्दर था। रमा ने पुजारी से पूछा- ''माँ इस मन्दिर में ठहर सकती हैं?'' पुजारी ने आनन्द से स्वीकार कर लिया। दो कमरे ठहरने के लिये दिखला दिये, तब माँ उस मन्दिर में ठहर गई। रमा चली गई। माँ सात दिन उस मन्दिर में ठहरी। किसी को खबर भी नहीं हुई। दिन में माँ कमरे में लेटी रहती थी, शाम को जहाँ रामायण का पाठ होता था, वहीं जाकर बैठी रहती थी। इसके बाद सरयू के किनारे घूमती थी और साधु संन्यासियों की कुटियों में झाँक-झाँककर जाने क्या देखती थी। मुँह से कोई शब्द नहीं कहती थी। साधु लोग सवेरे स्नान कर दरवाजा बन्द करके बैठते थे। माँ दरवाजे की दराज से झाँककर जरा देर देखती थी। इस प्रकार सात दिन बीत गये।

आठवें दिन उस मन्दिर में सत्यनारायण की पूजा हो रही थी। फैजाबाद के कश्मीरी लोगों के पुरोहित ही उस मन्दिर में पुजारी थे। फैजाबाद के बहुत से कश्मीरी लोग माँ के भक्त थे। पूजा के उत्सव में एक लड़का पहले आया और माँ को दूर से ही देखकर उसी समय साइकिल द्वारा फैजाबाद गया और माँ के आने का समाचार सबको दे दिया। सुनते ही वहाँ से दो-तीन मोटर भरकर भक्त लोग सपरिवार आकर माँ के चरणों में उपस्थित हो गये। उन्होंने पुजारी से कहा कि-''माताजी इतने दिन से यहाँ पर आई हैं, तुमने फैजाबाद खबर क्यों नहीं भेजी?'' पुजारी बेचारा देख-सुनकर चकित था। उसने कहा कि- ''मैं तो माताजी को पहचानता ही नहीं था।'' इन्हीं बातों से अयोध्या के लोग भी माँ को जान गये, तब माँ के पास बड़ी भीड़ होने लगी। सभी फूल, माला, आरती और मिठाई लेकर माँ की विशेष रूप से पूजा करने लगे। धोती, कमीज इत्यादि का ढेर लगने लगा और माँ उसी समय भक्तों के बीच में बाँट देती थी। बड़ा आनन्द

होने लगा। दूसरे दिन सवेरे फिर भक्तों ने मिलकर माँ की पूजा की। दोपहर को माँ का फोटो उतारा गया। शाम को रामायण समाप्त हुई। सन्ध्या के समय श्री रामचन्द्रजी के सिंहासन में ही माँ का फोटो रखकर पुजारी ने पूजा और आरती की। उसी दिन माँ ने अयोध्या से जाने की इच्छा प्रकट की जिससे खूब रोना-धोना आरम्भ हो गया, किन्तु माँ का जाना रुका नहीं। उसी दिन रात को मनकेश्वर रैना की मोटर द्वारा माँ को फैजाबाद स्टेशन ले जाया गया। स्टेशन पर गाड़ी के लिये दो घण्टे बैठना पड़ा। इतनी देर में सैंकड़ों व्यक्ति स्टेशन पर इकट्ठे हो गये। रात को 12 बजे तक बच्चे, बूढ़े, युवक और युवतियाँ माँ को घेरे रही। पूजा और भोग भी हुआ।

रात को 12 बजे माँ लखनऊ से रवाना हुई। गाड़ी में बाराबंकी के एक वकील थे। उन्होंने माँ से बड़े प्रेम से बाराबंकी चलने का अनुरोध किया। माँ ने कहा- इस समय तो लखनऊ जा रही हूँ, फिर देखा जायेगा। लखनऊ पाँच बजे सवेरे उतरे। वहाँ से इटावा का टिकट लेकर इटावा गये। इटावा में उतरकर पीताम्बर पाण्डे (सिविल सर्जन) के बंगले के दरवाजे पर गये। वे स्नान कर रहे थे। खबर पाते ही भीगे कपड़े पहने ही आकर माँ को इस प्रकार अकेली एक स्त्री के साथ देखकर चकित होकर बोले- माँ, क्या बात है? तुम इस प्रकार अकेली आई हो? उन्होंने अपने बगीचे में कम्बल बिछाकर माँ को बिठाया। बाद में लगभग 3 मील दूर यमुना के किनारे दाऊजी के मन्दिर के पास एक नया घर तैयार हुआ था, उसमें माँ के ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। वहाँ माँ 25 दिन रही। रोज ही 12 बजे डॉक्टर साहब माँ को किस वस्तु की आवश्यकता है, यह जानने के लिये आदमी भेजते थे। बाद में स्वयं भी रोज शाम को पाँच या साढ़े पाँच बजे मोटर से माँ के पास आते थे, बड़ी देर ठहरते थे। फिर धीरे-धीरे बहुत से लोग माँ की खबर पाकर आने लगे। माँ उनसे अनेक तत्व की बातों की आलोचना करती थी। सभी माँ की बात सुनकर बड़ा आनन्द पाते थे। प्रतापगढ़ की रानी ने माँ का समाचार पाया तो वे माँ को अपने बगीचे वाले घर में ले गई और माँ की आरती और पूजा आदि की। वहाँ भी बहुत से लोगों का सत्संग हुआ, कीर्तन आदि हुआ। इसके अलावा और भी दो-तीन स्थानों में माँ को ले जाकर भक्तों ने भोग कीर्तन आदि किया।

धीरे-धीरे माँ के पास लोगों की भीड़ होने लगी। गरीब लोग एक मुट्ठी चावल, कोई एक मुट्ठी दाल लाकर माँ को दे जाते थे, माँ भी आनन्द से उसे स्वीकार करती थी। वहाँ भी दरिया के किनारे माँ का फोटो उतारा गया।

इटावा में माँ एक दिन एक पीपल के पेड़ के नीचे दोपहर को जाकर बैठ गई। उस पेड़ की छाया इतनी घनी थी कि वह स्थान अन्धकारमय हो गया था। विराज दीदी कुछ अंगूर माँ को खिलाने के लिये साथ में लिये थी। पेड़ के नीचे एक शिवलिंग था। माँ ने अंगूर नहीं खाये और बोली- ''शिवजी को सब दे दो।'' विराज दीदी ने वही किया। यह स्थान बिल्कुल एकान्त था। माँ अक्सर यमुना के किनारे जाकर बैठती थी। उसी जगह माँ के दर्शन करने लोग आते थे। श्मशान पास ही था, इसी से मुर्दे जलने की दुर्गन्ध सदा आया करती थी।

यहाँ माँ ने एक दिन यमुना के किनारे घूमते-घूमते देखा कि यमुना के किनारे एक खेत के पास नीम के नीचे एक शूद्र परिवार रहता था। माँ उनके पास जा पहुँची। उन बेचारे ने पपीते के पत्ते बिछाकर माँ को बैठाया। माँ उनकी लड़की बनकर माँ तथा पिताजी कहकर पुकारने लगी। वे लोग भी माँ को खूब प्यार करने लगे। उन्होंने माँ को एक कच्चा पपीता दिया। किसी भी तरह दाम नहीं लिये। माँ बीच-बीच में जाकर वहाँ बैठती थी। बहुत से बड़े-बड़े आदमी जो माँ के दर्शन करने जाते थे, वे वहाँ जाकर पपीते के पत्तों पर बैठते थे।

इटावा से माँ **नैमिषारण्य** को रवाना हुई। इटावा के सिविल सर्जन ने नैमिषारण्य का टिकट ले दिया और साथ में कुछ रुपये भी दिये।

जिस दिन वे नैमिषारण्य पहुँची उसी दिन वहाँ से लखनऊ रवाना हुई और वहाँ सरोजिनी धर्मशाला में ठहरी। वहाँ के मैंनेजर मति बाबू ने पहले भी माँ को देखा था। उन्होंने माँ को बड़े आनन्दपूर्वक ठहराया। लखनऊ में भी सात दिन ठहरने के बाद आठवें दिन मानिक खबर पाकर रात को माँ से मिलने आये, नवें दिन माँ गोमती देखने गई। उस समय करीब 12 बजे थे। माँ के फल खाने का दिन था। कुछ फल साथ लेकर गोमती के किनारे एक पेड़ के नीचे जाकर कम्बल बिछाया और बैठे। जो लोग उस रास्ते से निकलते थे, वे यह अवस्था देखकर आपस में कहते थे- ''शायद

ये लोग किसी विपत्ति में पड़े हैं, कुछ सहायता करना उचित है या नहीं?'' इत्यादि बातचीत करते-करते चले जाते थे। कुछ देर बाद माँ गोमती की तरफ मुख करके बैठ गई। अकस्मात् एक कश्मीरी भक्त (नानीजी के दामाद) ने दूर गाड़ी में से माँ को देखा। वे तुरन्त कूद पड़े और माँ के पास आकर चरणों में प्रणाम किया। वह थोड़ी देर माँ के पास ठहरकर चले गये और सबको खबर कर दी। दूसरे दिन बहुत से भक्त लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। माँ की विशेष भक्त नानीजी भी उस समय अपनी लड़की के घर पर ही थी। वे तो माँ को पाकर व्याकुल हो रोने लगी। उसी दिन माँ 10 बजे गोमती के किनारे एक धर्मशाला में जाकर रही। शाम को 7 बजे स्टेशन जाकर 10 बजे रात तक वहाँ बैठी रही। वहाँ से बाराबंकी रवाना हुई। मानिक भी साथ में था। लखनऊ में ही माँ को बुखार आ गया था।

बुखार में ही माँ बाराबंकी रवाना हुई। रात को 12 बजे के करीब बाराबंकी पहुँचकर खुले स्थान में पड़ी रही। उस समय उनको 104 डिग्री के लगभग बुखार था। दूसरे दिन सवेरे धर्मशाला में जाकर पूर्वोक्त वकील को खबर दी। खबर पाते ही वकील साहब और भी चार सज्जनों के साथ माँ के दर्शनों के लिये आये। बाराबंकी में चार दिन रही। इतने ही दिनों में बहुत से लोग आने-जाने लगे। दो-चार बड़े-बड़े पंडित भी आकर माँ से वार्तालाप करके बड़े आनन्दित हुये। माँ की मीमांसा अर्थात् व्याख्या सुनकर वे लोग धन्य-धन्य करने लगे। वहाँ भी बहुत से लोगों ने माँ की पूजा आदि की।

वहाँ से मानिक को विदा करके माँ बरेली चली। रास्तें में लखनऊ स्टेशन पर दो घण्टे ठहरना पड़ा। सवेरे बरेली जाने पर भी माँ को बुखार था। विराज दीदी को भी बुखार-सा मालूम होता था। बरेली में माँ धर्मशाला में गई। स्टेशन के पास ही धर्मशाला थी। घूमते-घूमते ही माँ धर्मशाला चली गई। धर्मशाला में कोई कमरा नहीं मिला। बरामदे में ही एक चारपाई पर माँ के लिये कम्बल का टुकड़ा बिछा दिया गया। माँ वहीं लेटी रही। एक लोहे की अंगीठी लाकर विराज दीदी ने थोड़ा-सा टमाटर का रस माँ के लिये बना दिया और अपने लिये भी साबूदाना बनाकर खाया।

माँ की पूर्व परिचित एक पंजाबी भक्त महिला (महारतन) वहाँ पर थी। उनके पति श्रीयुत् यशपाल वहाँ पर रजिस्ट्रार कोऑपरेटिव थे। विराज दीदी

उनकी खोज में बाहर निकली। दिन भर बड़ा प्रयत्न करने पर भी महारतन का पता नहीं चला। रात को धर्मशाला से एक पंजाबी लड़के को साथ लेकर विराज दीदी भी फिर महारतन को खोजने चली। इस बार बहुत ढूँढ़ने पर पता चला कि धर्मशाला के बिल्कुल पास ही उनका घर था। महारतन के घर पर जाकर विराज दीदी ने चपरासी से पूछकर मालूम किया कि यही घर मिस्टर यशपाल का है। किन्तु वहाँ पर महारतन के सिवाय विराज दीदी और किसी को पहचानती ही नहीं थी। इसी से उन्होंने पूछा कि यशपाल की स्त्री घर में है या नहीं? तो मालूम हुआ कि वे घर में हैं। यही सब बातचीत हो रही थी कि इतने ही में महारतन की एक लड़की विराज दीदी के पास आ गई। उसको देखकर विराज दीदी ने पूछा– ''महारतन हैं?'' यह नाम सुनते ही महारतन दौड़कर आई और विराज दीदी से लिपट गई और बोली– माताजी कहाँ है? विराज दीदी से माँ के बरेली आने की खबर पाकर वे व्याकुल हो रोने लगी। उसी समय विराज दीदी ताँगे को विदा करके अपनी मोटर द्वारा विराज दीदी के साथ माँ के लिये दूध लेकर उनके यहाँ चली। वहाँ पहुँचकर महारतन ने सबसे अच्छा कमरा माँ के लिये ठीक किया और फूल, माला इत्यादि से माँ की पूजा की। दूसरे दिन महारतन माँ को लेकर बाजार गई और माँ के लिये गरम कपड़ा, कम्बल इत्यादि सब खरीद लाई। मना करने पर भी नहीं मानी। बड़े अनुरोध से उन्होंने ऊनी कपड़ों को व्यवहार में लाने के लिये माँ को विवश किया किन्तु माँ ने अपना कम्बल का टुकड़ा नहीं छोड़ा। नये कम्बल के नीचे बिछा लेती थी। विराज दीदी को भी महारतन ने एक कम्बल दिया। बरेली में माँ नौ दिन रही। महारतन लगभग हर समय माँ के पास धर्मशाला में रहती थी। शाम को माँ के साथ मोटर में घूमने बाहर जाती थी।

यहाँ एक दिन महारतन माँ को ले अपने घर गई। बाहर ही माँ के बैठने की जगह ठीक कर दी। उसी दिन मिस्टर यशपाल भी माँ के पास बैठे थे। इसी बीच में वहाँ के और भी एक डिप्टी मजिस्ट्रेट (मिस्टर दीक्षित) अपनी स्त्री सहित मोटर से महारतन के घर आये। माँ के दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुये। माँ की एक दो बातें भी सुनी। तब मिसेज दीक्षित ने माँ को अपनी एक घटना बतलाई।

घटना यह थी – कुछ दिन पहले एक ज्योतिषी ने उनका हाथ देखकर

बतलाया था कि 1936 सन् की 9 अक्टूबर को एक विशेष अनुभव आपको होगा। हिसाब लगाकर देखा गया तो ठीक उसी तारीख को मिसेज दीक्षित को माँ के दर्शन हुये। इससे पहले भी दो-तीन दिन महारतन से मिलने आई थी किन्तु महारतन से भेंट नहीं हो पाई। सुना था कि एक माताजी के पास महारतन धर्मशाला में गई हैं। ज्योतिषी के बताये हुए दिन ही माँ के दर्शन पाकर वे बड़ी प्रसन्न हुई। इस घटना से माँ के प्रति उनका विशेष आकर्षण हो गया। अधिकतर वे रात को भी माँ के पास धर्मशाला में देर तक रहती थी। माँ कहती थी- अब जाओ, ज्यादा रात हो गई, तुम्हारे खाने-पीने का समय हो गया। वे उत्तर में कहती- हमें भूख नहीं है, आप का संग और कहाँ मिलेगा? यह कहकर जाने को कहने पर भी नहीं जाती थी। बाद में एक दिन शहर के बड़े-बड़े लोग सपरिवार माँ के पास आये और कीर्तन आदि किया। वहाँ स्त्रियाँ मिलकर हर इतवार को कीर्तन किया करती थी। जहाँ कीर्तन होता था, वहाँ सब लोग माँ को ले गये और वहाँ फल, फूल, माला और आरती से माँ की पूजा की। माँ ने भी कहा- ''बरेली में स्त्रियाँ बहुत अच्छा कीर्तन करती हैं। कीर्तन में बैठकर वे बिल्कुल बातचीत नहीं करती हैं।'' इन्हीं थोड़े दिनों में वहाँ विशेष परिचित हो गई और सभी माँ की बड़ी श्रद्धा-भक्ति करने लगी।

बरेली में एक साधु रोज धर्मशाला में महादेवजी के मन्दिर में बैठकर जप आदि किया करता था। उसने सुना कि माताजी आई हैं। विराज दीदी के पास जाकर उसने माँ के दर्शनों की इच्छा प्रकट की। माँ सबसे मिलती हैं, यह जानकर वे माँ से मिले और कहा- बहुत योग-तपस्या करने पर भी मन एकाग्र नहीं हो पाता और शान्ति भी नहीं मिलती है। माँ ने उनको गुप्त रूप से कुछ उपदेश दिया और कहा- ''किसी से प्रकट मत करना क्योंकि पहले बीज को गाड़कर अगर उसे बार-बार देखा जाये तो वह उग नहीं सकेगा। बीज को मिट्टी में छिपाकर स्वाधीनतापूर्वक रक्षा करनी चाहिये और जल सींचना चाहिये। फिर वृक्ष के निकल आने और बड़े होने पर कितने ही बीज और पैदा हो जाते हैं तथा स्वाभाविक रीति से कितने ही फल-फूल झड़ जाते हैं।'' वह साधु माँ का यह उपदेश पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी बहुत से लोग आकर माँ से जैसे जो अधिकारी होते थे, उसी प्रकार का उपदेश पाकर कृतार्थ हो जाते थे।

बरेली में 9 दिन ठहरने के बाद माँ ने कहा– जब कम्बल आदि आ गये हैं तब इनका सदुपयोग करना चाहिये। चलो नैनीताल चलें। नैनिताल जाने के समय बरेली में माँ का फोटो उतारा गया और स्टेशन पर एक बड़ा उत्सव हुआ। बाहर के लोग खड़े होकर आश्चर्य से उत्सव देखने लगे। माँ ट्रेन के जिस डिब्बे में बैठी थी वह भक्तों की श्रद्धांजलि के फूलों से भर गया। इस प्रकार बरेली से विदा होकर माँ नैनीताल चली। एक आश्चर्य का विषय यह था कि बहुत से स्थानों पर लोगों ने कहा कि माँ को उन्होंने पहले से ही स्वप्न में अथवा छाया रूप में देखा था।

* * *

इक्यावनवाँ अध्याय

नैनीताल जाकर तल्लीताल नामक स्थान में माँ ने मोटर के पास ही देखा कि उनके परिचित भक्त कृष्णराम पन्त खड़े हैं, वे भी माँ को देखकर चकित हो गये। उन्होंने माँ को बड़े आदर से उतारा और कहा कि मैं कभी इस तरह नहीं आता हूँ, आज इधर आने की जाने क्यों इच्छा हुई कि रुक नहीं सका। अब समझ में आया कि क्यों ऐसी इच्छा हुई थी? मेरा मन कई दिन से आपके लिये व्याकुल था। कई जगह आपके लिये समाचार पाने को चिट्ठी भेजी है। आज आप कितना कष्ट उठाकर हमें दर्शन देने आई हो? यह कहकर वे व्याकुल होकर रोने लगे। सबको चिट्ठी लिखकर उन्होंने खबर देनी चाही किन्तु माँ ने मना किया। मैं कितने दिन कहाँ ठहरूँगी कुछ भी ठीक नहीं, व्यर्थ में सब लोग आकर कष्ट पायेंगे। कृष्णराम पन्त के साथ डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर ताराचन्द बाबू की स्त्री थी। वे माँ को डांडी में बैठाकर श्रीनैना देवी के मन्दिर में ले गई। वहाँ माँ के ठहरने का प्रबन्ध किया। मन्दिर के ऊपर की मंजिल में दो-तीन कमरे खोलकर गलीचे बिछा दिये। उन्हीं लोगों ने माँ के खाने-पीने का प्रबन्ध किया। यह घटना ऐसी हुई मानो पन्तजी माँ को लेने के लिये ही वहाँ आये थे। माँ नैनीताल में 9 दिन रही।

नैनीताल जाने के पाँच-छ: दिन बाद ही श्रीदुर्गा-पूजा की नवरात्रि का उत्सव आरम्भ हुआ। इन्हीं कुछ दिनों में वहाँ के लोग माँ की पुष्प, चन्दन, फल आदि द्वारा बड़े प्रेम से पूजा करने लगे। सभी माँ के पास आकर आँखे बन्द करके बैठते। एक दिन डांडी में माँ को पन्तजी के घर ले गये और चारों तरफ से लोगों ने माँ के चरणों में पुष्पांजलि अर्पण की। एक व्यक्ति हाथ जोड़कर स्तोत्र पाठ करता हुआ माँ की डांडी के आगे-आगे चलता था। वह दृश्य बड़ा ही आनन्ददायक था।

एक दिन एक पहाड़ी सज्जन (देवीदत्त) माँ को एक साधु के आश्रम पर ले गये। वहाँ ले जाकर सबने माँ की पूजा की और कीर्तन किया। साधु मौन थे, धूनी जलाकर बैठे थे। उन्होंने भी उठकर फल और पुष्प माँ

के हाथ में दिये। माँ की आज्ञा से विराज दीदी ने साधु को और दूसरे उपस्थित सज्जनों को फल-फूल बाँट दिये।

दूसरे दिन कुछ कुमारी कन्याएँ आकर माँ के चारों तरफ बैठकर भजन और स्तोत्र पाठ करने लगी। उस दिन (आश्विन मास की 31 तारीख बंगाब्द 1343 सन् शनिवार द्वितीया तिथि) माँ ने कुमारी कन्याओं से दूसरे दिन आने के लिये कहा और विराज दीदी से कहा- "तुम तो नवरात्रि करती हो। नवरात्रि में कुमारी पूजा करोगी? तो प्रबन्ध करो। एक दर्जन रुमाल मँगाने को कह दो। फूल-फल, चन्दन, मिठाई भी मँगाओ। सात-आठ कुमारियों ने पहले दिन आकर माँ को घेरकर गीत गया था किन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि दूसरे दिन 12 कुमारियाँ आकर उपस्थित हो गई। माँ ने पहले ही एक दर्जन रुमाल मँगाने की बात कही थी। माँ ने सबको एक-एक रुमाल, माला, फल और मिठाई दिलवाई। विराज दीदी से कुमारियों की आरती करवाई। नैनीताल से माँ को ताराचन्द बाबू भवाली घुमाने को ले गये।

नैनीताल से माँ फिर बरेली आकर तीन दिन रही। पहले के कथनानुसार मानिक को लखनऊ समाचार भेजा। मानिक बरेली आकर माँ से मिला और फिर साथ में राजघाट चला।

राजघाट में एक दिन ठहरकर आगरा में कैलाश नामक स्थान पर श्यामकुटी में गये। आगरा जाते समय ट्रेन में माँ ने कहा- "मुझे ऐसा जान पड़ा है मानो कोई मुझे पकड़ रखेगा।" सचमुच ही राजामण्डी स्टेशन पर उतरकर जब हम श्यामकुटी जा रहे थे तभी रास्ते में श्रीयुत् वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय के पुत्र ने ताँगे में माँ को देखकर अपनी साइकिल ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ाई और तुरन्त ही बोला- "इस बार आपको पकड़कर रखूँगा अब कहाँ जाओगी? तुम जहाँ-जहाँ जाओगी मैं भी साथ जाऊँगा। आप कई बार आगरा में मुझे चकमा दे गई हैं", अन्त में माँ के कहने से लौटकर घर में खबर दी। खबर पाते ही श्रीयुत् वीरेन्द्र मुखोपाध्याय ने सपरिवार जाकर पूजा आदि की। उस दिन महाष्टमी (नवरात्रि की अष्टमी) थी। डॉक्टर भार्गव भी वहाँ थे। उन्होंने भी माँ का समाचार सुना और जाकर माँ के दर्शन किये। माँ भी आगरा आई और वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय के रोगी पुत्र को देखने अस्पताल गई। उसी दिन माँ ने विराज दीदी से वीरेन्द्रचन्द्र

मुखोपाध्याय की दो कन्याओं की कुमारी पूजा करवाई और दूसरे दिन अर्थात् महानवमी को डॉक्टर भार्गव की लड़की की कुमारी पूजा करने को विराज दीदी ने कहा।

श्री विजयादशमी के दिन आगरा से रवाना होकर दिल्ली होते हुये सवेरे लाहौर गई। वहाँ एक दिन ठहरी। धर्मशाला में थी। उसी दिन एक कालीजी के मन्दिर में गई। जब विराज दीदी नीचे मस्तक रखकर श्री कालीजी को प्रणाम करने लगी, वैसे ही टहलते-टहलते माँ ऐसी जगह पर पहुँच गई कि जिससे विराज दीदी का मस्तक माँ के चरणों से छू गया। उठते ही विराज दीदी ने देखा माँ खड़ी हैं। विराज दीदी के अकस्मात् मन में आया कि माँ ने आज क्या मुझे अपना परिचय दिया है? काली मन्दिर से धर्मशाला लौट गये और रात को उसी में ठहरे।

दूसरे दिन रवाना होकर चार बजे अमृतसर पहुँचे। वहाँ से मेरठ होते हुये गढ़मुक्तेश्वर गये। गढ़मुक्तेश्वर से मानिक को विदा कर दिया।

गढमुक्तेश्वर में एक दिन माँ घूमते-घूमते एक कुम्हार के पास जाकर खड़ी हो गई और बोली, ''और कहाँ जायें, यहीं बैठें।'' यह कहकर वहीं बैठ गई। कुम्हार घड़ा बना रहा था। माँ देखते-देखते बोली- ''मिट्टी को बड़ा कष्ट होता है, किन्तु फिर भी इसको घुमाकर तैयार करना ही पड़ता है। तैयार करना हो तो इसी प्रकार कष्ट सहन करके ही तैयार हो सकता है।''

दो-एक और बातें भी यहाँ लिखनी हैं। माँ के साथ खर्चे के लिये कुछ भी रुपये नहीं थे। किन्तु सुना कि रुपयों की कोई कमी नहीं हुई। जब जहाँ जाती थी बिना माँगे ही उपस्थित लोग टिकट खरीद देते थे और खर्च के लिये और भी कुछ रुपये विराज दीदी को दे देते थे। खाने-पीने के सम्बन्ध में बहुत लोग सोचते थे कि माँ और विराज दीदी शायद बाजार की पूरी, तरकारी, मिठाई खाकर काम चलाती होंगी, किन्तु विराज दीदी और माँ के मुँह से सुना है कि ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ। बाजार की मिठाई तक नहीं लेनी पड़ी। जहाँ पर जब जैसा भी कुछ मिला, विराज दीदी ने बनाकर माँ को खिलाया और स्वयं भी वही प्रसाद ग्रहण किया। कुछ दिन केवल पानी में उबालकर तरकारी खाई। कुछ दिन केवल घुइयाँ उबालकर खाई। कभी भात-तरकारी बनाकर खाया गया। बीच-बीच में भक्त

लोग घर से कुछ बनाकर खिला जाते थे। विराज दीदी को माँ किसी का बना हुआ खाना नहीं खाने देती थी। वे सदा अपने हाथ से ही बनाकर खाती थी।

गढमुक्तेश्वर में 15 दिन ठहरकर सुल्तानपुर आई। वहाँ 9 दिन ठहरकर अयोध्या आई। अयोध्या में 4 या 5 दिन गुप्त रूप से ठहरी। अकस्मात् माँ की परिचित एक संन्यासिनी आकर माँ को देख गई। उसने जाकर सबको समाचार दे दिया। माँ अयोध्याजी में बद्रीनारायणजी के मन्दिर में थी। समाचार पाते ही झुंड-के-झुंड लोग माँ के दर्शन करने आने लगे। फैजाबाद से गोपालजी के चाचा मनकेश्वरनाथ रैना और उनकी स्त्री भी दर्शन करने आई। रैना की स्त्री ने कहा- माँ के आने का समाचार पाने के कुछ पहले ही अपने पूजा घर में माँ को छाया रूप में देखा था और मानो किसी ने कहा था कि माताजी आई हैं। वहीं और भी दो-तीन स्त्रियाँ कहती थी कि उन्होंने भी स्वप्न में देखा था कि माँ आई हैं।

अयोध्या से सब लोग माँ को फैजाबाद ले गये, वहाँ माँ स्टेशन पर ही रही। स्टेशन पर ही भक्तों ने पूजा, आरती, भोग आदि प्रेम से किया। एक अन्धा बालक आकर स्तोत्र पाठ करने लगा। माँ ने उसको फल दिलवाये।

फैजाबाद से देवधर गये। वहाँ चार दिन ठहरे। माँ वहाँ गुप्त रूप से ही थी। पूर्व परिचित प्राणगोपाल बाबू भी देवधर में थे। किन्तु माँ ने किसी से भेंट नहीं की।

देवधर में माँ जिस धर्मशाला में थी, उसी में यात्रियों का एक दल भी आकर ठहरा। उनमें से एक स्त्री अकस्मात् किसी कारण से डरकर बीमार हो गई और उसकी दशा बहुत ही खराब हो गई। यह हालत देखकर धर्मशाला के मैनेजर ने उनको खबर दी कि एक माताजी इसी धर्मशाला में हैं। तुम लोग उनके पास जाओ। यह समाचार पाकर रोगिणी का पति माँ के कमरे के दरवाजे पर आया और दरवाजा खटखटाया। विराज दीदी ने दरवाजा खोलकर जब उस आदमी को देखा और उसके मुँह से सारा हाल सुना तो नाराज होकर बोली- माताजी बीमारी और दु:ख की बातें कुछ नहीं बताती है। तब वह आदमी जबरदस्ती कमरे में घुसकर माँ के पैरों को पकड़कर रोने लगा। माँ ने तब अपने आप विराज दीदी से कहा- चलो हम लोग जरा चलकर देख आवें। यह कहकर माँ विराज दीदी को साथ

लेकर उस आदमी के साथ रोगिणी के पास गई और देखा कि उसकी हालत बहुत खराब थी। हाथ, पैर ठंडे थे, होठ नीले थे। बीच-बीच में काँप उठती थी। आँखों से बराबर आँसू निकल रहे थे किन्तु आँखे खोल नहीं पाती थी। माँ ने थोड़ी देर देखा, फिर विराज दीदी से अपने कमरे में से एक अनार मँगवाया। उसका रस निकलवा कर रोगिणी को दिलवाया। फिर मैनेजर से कहकर एक अलग कमरे में उसे भिजवाया। माँ ने भी उस कमरे में जाकर खिड़कियाँ खोलकर रोगिणी को सुलाने को कहा और लौट आई। दूसरे दिन देखा गया कि रोगिणी बिल्कुल अच्छी हो गई। उसी दिन माँ के साथ उन्होंने भी देवधर छोड़ दिया। विराज दीदी कहती थी कि इतने थोड़े समय में रोगिणी को इस प्रकार स्वाभाविक हालत में देखकर सब लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

* * *

बावनवाँ अध्याय

देवधर से माँ अगहन की दस तारीख बृहस्पतिवार को तारापीठ गई। रास्ते में एक पूर्व परिचित भक्त स्त्री के घर पर माँ ने खाना खाया। उस स्त्री का नाम श्मशानवासिनी था। रामपुर के बाजार से ही माँ की बैलगाड़ी के साथ-साथ बहुत से आदमियों की भीड़ चलने लगी। माँ ने तारापीठ जाकर हमको तार दिलवाया।

हम लोगों ने अगहन की 11 तारीख शुक्रवार की शाम को भोलानाथजी को तार द्वारा माँ के तारापीठ पहुँचने का समाचार और हमको वहाँ पहुँच जाने का आदेश पाया। 12 तारीख शनिवार (पूर्णिमा की रासयात्रा) को तारापीठ रवाना होकर 13 तारीख इतवार को हमने माँ के चरण दर्शन किये। उसी दिन रात को लगभग 12 बजे श्रीमती भ्रमर घोष और उसके मामा शिशिर पहुँच गये। दूसरे दिन जमशेदपुर से यतीश डॉक्टर की स्त्री, लक्ष्मी बाबू और अमूल्य भी आये। किन्तु इसके पहले ही माँ ने डिब्रूगढ़ जाने का निश्चय किया। माँ के पुराने भक्त श्रीमान् हरिदास मुखोपाध्याय डिब्रूगढ़ में थे। वे वहाँ आने के लिये माँ से बहुत दिनों से अनुरोध कर रहे थे। बात हुई कि आसाम घूमने के बाद जमशेदपुर जाना होगा। 15 तारीख को भोलानाथजी ने विशेष भाव से तारा माँ की पूजा की। कलकत्ते से श्रीयुत् शचिबाबू, मीनू (श्रीयुत् प्राणकुमार वसु के पुत्र) और विमला माँ, आनन्द भाई आदि बहुत से लोग माँ के दर्शन करने तारापीठ आये। माँ से कलकत्ते जाने के लिये सबने विशेष भाव से अनुरोध किया किन्तु माँ जाने के लिये राजी नहीं हुई।

अगहन की 15 तारीख मंगलवार को माँ सबके साथ तारापीठ से रवाना हुई। कलकत्ता नहीं जायेंगी यहीं से नैहाटी होकर आसाम की ओर रवाना हुई। नैहाटी तक जमशेदपुर और कलकत्ते के भक्त लोग माँ के साथ ही रहे। यह निश्चय हुआ कि माँ और भोलानाथजी के साथ मैं, विराज दीदी और अखंडानन्द स्वामीजी आसाम जायें। बाकी सब लोग नैहाटी से लौट जायें। सवेरे नैहाटी पहुँचे। गाड़ी में देर थी इसी से एक मन्दिर में जाकर

खिचड़ी बनाने का प्रबन्ध किया। माँ इसी बीच में भ्रमर, यतीश डॉक्टर की स्त्री, और भी दो-तीन व्यक्तियों को लेकर नदी के पार घूमने को चली गई। माँ का भोजन नहीं हुआ था इससे मैं घबरा रही थी, किन्तु माँ लौटती नहीं थी। लगभग एक घंटे में माँ लौटी, साथ में और दो-तीन ब्राह्मण सज्जन थे। वे लोग माँ से एक दिन रहने के लिये अनुरोध कर रहे थे। मैं तो देखकर चकित हो गई है कि ये अपरिचित लोग इस स्थान में माँ से कैसे परिचित हो गये? मैं यही कह रही थी कि माँ ने इन लोगों को क्यों इकट्ठा किया है? माँ हँस रही थी। तब भ्रमर और यतीश दादा की स्त्री ने कहा- माँ नदी के किनारे घूमते-घूमते अचानक इन्हीं सज्जनों के घर में घुसकर बोली- ''पिताजी हमें थोड़ा-सा पानी दे दो।'' वे लोग जल्दी से कुछ फल-मिठाई और पानी ले आये। माँ अपने हाथ से खा नहीं सकती हैं, यह सुनकर उन्हीं ने खिला दिया। माँ ने भी चिरपरिचित की तरह पिताजी-माताजी सम्बोधन करके कुछ समय वहाँ बिताया। फिर जब वहाँ से उठकर चली आई तो साथ-साथ घर के दो-तीन सज्जन भी चले आये। मन्दिर में आकर उन्होंने भक्तों के मुँह से माँ का परिचय जानकर अपने को कृतार्थ माना। माँ से दुबारा नैहाटी आने के लिये विशेष आग्रह भी उन्होंने किया। माँ ने भी कहा कि घर तो पहचान ही लिया है, पिता के घर जब पुत्री के आने की इच्छा होगी तो आयेगी, बुलाने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। मैंने सुना है कि वह ब्राह्मण परिवार बड़ा भक्त था। घर में श्रीनारायण की मूर्ति थी। बड़े प्रेम से उनकी सेवा आदि होती थी। माँ कहती थी कि घर के कमरे आदि भी बड़े साफ थे। सभी सन्ध्या-वन्दन करते थे। माँ को और भक्तगणों को दिन में अपने घर भोजन बनाकर खिला न सकने के कारण वे लोग बड़ा दुःख प्रकट करने लगे। माँ ने मुझसे आकर कहा- मुझे खिलाने के लिये तुम व्याकुल हो रही थी, मैं तो पिताजी के घर खा आई हूँ। यह कहकर हँसने लगी।

गाड़ी में अब अधिक देर नहीं थी। एक नई हंडिया में खिचड़ी बनाई गई थी। भक्त लोग अनेक तरकारियाँ लाये थे। जितनी आ सकी खिचड़ी में ही डाल दी गई और बाकी सब पुजारी को दे दी गई। पुजारी की स्त्री ने माँ को रोटी बना दी। वे लोग पश्चिम के थे। माँ और भोलानाथजी रसोईघर में ही बैठे और सब लोग बरामदे में बैठे। खिचड़ी उतारकर देखी तो नीचे

लग गई थी। जलने की बड़ी महक आ रही थी। बाहर से ही शचि बाबू आदि ने महक से समझ लिया और बोले कि दीदी खिचड़ी जल गई है। अब क्या करूँगी? माँ और भोलानाथजी को खाने बैठा दिया। बाद में कुछ प्रसाद लेकर खिचड़ी में मिला दिया और सबको परोसने गई। आश्चर्य की बात थी कि तब किसी को जलने की महक नहीं आई और बड़ी स्वादिष्ट बताकर खाने लगे। यहाँ तक कि हंडिया के नीचे की लगी हुई खुरचन शचि बाबू ने खाई। जरा-सी भी खिचड़ी बची नहीं। शचि बाबू ने आकर माँ से कहा कि माँ मैंने जली खिचड़ी समझकर पहले बहुत थोड़ी-सी ली थी किन्तु खाकर देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ, अन्त में बहुत-सी खाई ऐसा क्यों हुआ? माँ हँसने लगी और बोली, क्या जाने? नलहाटी में भी एक बार खिचड़ी जल गई थी। दोपहर को जब सबने खाई तो जलने की महक बिल्कुल ही नहीं आई। मैंने कहा उस बार भी मैंने जाकर खिचड़ी को नीचे-ऊपर मिला दिया था।

बहुत जल्दी खाना-पीना समाप्त करके हम सब लोग स्टेशन आये। 12 बजे हम माँ के साथ आसाम रवाना हो गये। जमशेदपुर और कलकत्ते के भक्त लोग नैहाटी से अलग होकर दूसरी ट्रेन से गये।

अगहन की 16 तारीख को नैहाटी से रवाना होकर दूसरे दिन सवेरे अमीनगाँव से स्टीमर द्वारा पार होकर, पांडुघाट जाकर ट्रेन पकड़ी। गाड़ी छूटने में थोड़ी देर थी। मैंने गाड़ी की खिड़की से माँ का मुख धुला दिया। उसी समय एक लड़का गाड़ी के पास किताब बगल में दबाकर जा रहा था। माँ की ओर देखते ही माँ ने उसे पुकारा। लड़का गाड़ी के भीतर आ गया। लड़के के मुख पर कुछ विशेषता थी। माँ ने उससे बातचीत करके मालूम किया कि उसका नाम मुकुलदत्त था। उसके पिता रेलवे के कर्मचारी थे। गोहाटी के स्कूल में पढ़ने जा रहा था। माँ उससे बातें कर रही थी। इसी बीच कई लड़के-लड़की आकर हमारी गाड़ी में चढ़कर माँ के पास जा खड़े हुये। वे सभी गोहाटी स्कूल में जा रहे थे। सभी रेलवे कर्मचारियों के लड़के-लड़कियाँ थी। माँ से उनका बड़ा प्रेम हो गया। पांडु के बाद ही गोहाटी स्टेशन था? इसी से बहुत थोड़ी देर उनका और माँ का साथ रहा। माँ उनसे बोली- ''तुम सब लोग थोड़ा-थोड़ा भगवान का नाम जपा करो। बताओ तो किसको कौन-सा नाम अच्छा लगता है?'' किसी ने हरि,

किसी ने लक्ष्मी, किसी ने सरस्वती नाम बताया। माँ ने कहा- तुम लोग जिसे जो नाम अच्छा लगे रोज सवेरे उठकर मुँह धोने के बाद एक कापी में 10 बार, 5 बार या 12 बार (आयु के अनुसार) उसी देवता का नाम लिखा करना, उसके बाद खाना-पीना या पढ़ना-लिखना। कापी समाप्त होने पर नमस्कार करके जल में बहा देना और नई कापी बना लेना। कहो इतना कर सकोगे न? अपना सबका नाम भी बताओ। अगर मुझे ध्यान आया तो सोचूँगी कि तुम लोग नाम लिख रहे हो।'' यह कहकर मुझसे सबके नाम लिखने को कहा। दो लड़के मुसलमान भी थे। उनसे भी यह बात कही। साथ में जो फल थे, सो इन सबको बाँट देने को कहा। लड़के-लड़की बड़े प्रसन्न हुये और माँ की बात स्वीकार करके माँ का पता भी लिख लिया। गोहाटी स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई। वे माँ को नमस्कार करके उतर गये। माँ की कोई भी बात वे नहीं जानते थे। थोड़ी दूर जाकर फिर कई जने लौट आये और माँ से बोले कि ''स्टेशन के पास ही हमारे घर हैं, आप जब लौटें हमारे नाम लेकर आवाज देना, हम आ जायेंगे, हमसे अवश्य मिलकर जाना।'' मैं उनका यह प्रेम देखकर मुग्ध हो गई। बच्चों के सरल प्राण, कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी।

वहाँ स्टेशन पर नवगाँव से विराज दीदी की कन्या और दामाद तथा, और पाँच-सात लोग माँ के दर्शन करने के लिये आकर बैठे थे। विराज दीदी ने पहले से ही अपने जामाता श्रीयुत् नरेन्द्र चक्रवर्ती को माँ के आने का समाचार तार द्वारा दे दिया था। उन लोगों ने चापरमुख से माँ को नवगाँव ले जाने का बड़ा आग्रह किया। यदि सम्भव होगा तो लौटते समय नवगाँव आना होगा, यह कहकर उन लोगों को समझा दिया। वे लोग भी माँ से लौट आते समय नवगाँव अवश्य आने के लिये जोर देने लगे। गाड़ी लगभग 20 मिनट वहाँ ठहरी थी। माँ को प्रणाम करके सब विदा हो गये।

* * *

तिरेपनवाँ अध्याय

हम लोग दूसरे दिन सवेरे अर्थात् अगहन की 18 तारीख को डिब्रूगढ़ पहुँचे। हरिदास परिवार सहित स्टेशन पर थे। डिब्रूगढ़ के और भी चार-पाँच लोग आये थे। सब लोग माँ को लेकर धर्मशाला गये। माँ के आने की खबर पहले ही दे दी गई थी। धर्मशाला पहुँचकर थोड़ा घूमने को बाहर निकले। मैं भी साथ गई। नदी के किनारे घूमते-घूमते अन्त में मुक्तानन्द स्वामी के आश्रम में जाना हुआ। आश्रम में अनेक सेवक और सेविकाएँ थी। माँ को लेकर स्त्रियों के वास-स्थान पर जाना हुआ। वहाँ पर माँ को स्त्रियों ने घूम-घूमकर सब दिखाया। उनकी गुरुभक्ति देखकर माँ बहुत प्रसन्न हुई। आश्रम भी खूब सजाया गया था। आश्रम से माँ धर्मशाला लौट आई। माँ को थोड़ा जल-पान कराया गया, बाद में भोजन बना। माँ को भोग देने के बाद सबने प्रसाद पाया।

शाम होते ही लोग धीरे-धीरे आने लगे। रात को बहुत से लोग आये। माँ के पास बहुत देर तक बैठकर बातचीत करते रहे। रात को लगभग 11 बजे सब लोग चले गये। दूसरे दिन हम लोगों का विचार परशुराम कुण्ड जाने का हुआ। किन्तु हरिदास आदि और लोग राजी नहीं हुये। बहुत-सी बातों के बाद तीन दिन डिब्रगूढ़ ठहरने का निश्चय किया। 19 तारीख को खूब वर्षा हुई। उसमें भी लोगों का आना-जाना बन्द नहीं हुआ। छोटे-छोटे लड़के-लड़की भी बहुत से आते थे। वे भी माँ को घेरकर बैठ जाते थे। माँ उनसे बातचीत करती थी। माँ उनसे पूछती थी, ''तुम लोग थोड़ा भगवान् का नाम तो लेते हो न?'' कोई सवेरे 'दुर्गा' नाम लेता था। कोई कहता था कि हम कुछ नहीं करते। माँ ने सबसे कहा- ''थोड़ा-थोड़ा भगवान् का नाम भी लेना चाहिये। इससे कल्याण होता है। तुम लोग एक काम करना। एक-एक कापी बना लेना और रोज सवेरे उठकर, हाथ-मुँह धोकर, सबसे पहले जिस देवता का नाम प्रिय लगे उसका नाम पाँच-दस दफा (जिसकी जैसी आयु हो उसी के अनुसार) लिखकर नमस्कार करके फिर भोजन और पढ़ना-लिखना किया करना। जब कापी भर जाये तो नमस्कार करके नदी में

डाल देना। फिर नई कापी बना लेना, क्यों यह बात याद तो रखोगे न?" बच्चों ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। मैंने कई एक कापियाँ खरीदकर उनमें उन लोगों के नाम लिख दिये। उन्होंने कहा कि कापी में पहले माँ का नाम लिख दो। मैंने वह भी लिख दिया। दूसरे दिन सवेरे उन्होंने माँ की आज्ञानुसार लिखकर सब कापियाँ माँ के पास उपस्थित की। इसी प्रकार माँ अनेक स्थानों पर बालकों के साथ खेल किया करती हैं। शहर के बहुत से लोग माँ के पास आये। वे लोग माँ के इतनी दूर आकर इतनी जल्दी चले जाने के कारण खेद प्रकट करते थे।

मुक्तानन्द स्वामीजी के आश्रम से माँ को एक दिन भोग देने का प्रस्ताव लेकर एक आदमी आया था। माँ एक दिन छोड़कर एक दिन रोटी या अन्न ग्रहण करती थी। किन्तु एक दिन पूर्ण रूप से उपवास न करके शाम के पहले कुछ फल-दूध ले लिया करती थी। 18 तारीख को माँ के खाने का दिन नहीं था, इसी से कहा गया कि 19 तारीख को आश्रम से माँ के लिये भोग आवेगा। 18 तारीख की रात को बहुत से लोग माँ के दर्शनों को आये थे। सभी बैठे माँ से बातचीत कर रहे थे। उसी समय दूसरे दिन के भोग के लिये आश्रम से ब्रह्मचारी लोग नाना प्रकार की वस्तुयें लेकर धर्मशाला आने लगे। एक कमरे में सब सजाकर रखा गया। तमाम चीजें आई थी। आश्रम से ब्रह्मचारिणी स्त्रियों ने अपने हाथ से कितनी ही प्रकार की मिठाई तैयार करके भेजी थी। आश्रम के पेड़ों के फल, खेत की तरकारी और अन्य बहुत-सी चीजें थी। विशेषता यही थी कि वस्तुओं को जिस प्रकार से सजाकर रखा गया था उससे आश्रमवासियों की श्रद्धा-भक्ति तथा सुचारुता का पता लगता था। माँ को और एक बार आश्रम में ले जाने का भी आश्रमवासियों ने विशेष रूप से अनुरोध किया।

माँ धर्मशाला के बरामदे में ही ठहरती थी और रात को वहीं सोती थी। माँ को कमरे में एक बार बुलाकर सब दिखाया गया। माँ ने देखकर आश्रम के एक ब्रह्मचारी से कहा- अच्छा अब तो यह सब मेरा हो गया? इस पर ब्रह्मचारी ने हाथ जोड़कर कहा, निश्चय ही। तब माँ हँसकर मुझसे बोली- यह सब फल मिठाई उपस्थित लोगों में हिस्सा करके बाँट दो। फिर हँसकर बोली- किन्तु मेरे लिये भी रखना। इसके बाद ब्रह्मचारियों की तरफ देखकर कहा- वहाँ जाकर माताओं से कह देना कि तुम्हारी तैयार की हुई वस्तुयें सबने मिलकर बड़े आनन्द से स्वीकार कर ली हैं।

19 तारीख को सब चीजें बना डालने को कहा और कहने लगी कि तुम लोग भोजन बनाओ, खाने वाले लोग भी जुट जायेंगे। वही हुआ। 19 तारीख को सवेरे माँ हरिदास और अन्य कई लोगों के घर पर हो आई। हरिदास के घर माँ का फोटो सबके साथ खींचा गया। जब माँ पिछली बार सावन के महीने में विन्ध्याचल तीन दिन के लिये आई थी तब अखंडानन्दजी के बारे में कहा था कि अब पिताजी कुर्ता, जूता आदि कुछ भी नहीं पहनते हैं। एकदम सब छोड़ दिया है तो पिताजी का उस भाव का एक फोटो रखना जरूरी है। एकदम केवल लंगोटी पहनकर फोटो उतरवाना होगा। इस बात के बाद ही माँ कलकत्ता चली गई। इसी से फिर उस प्रकार का फोटो नहीं खींचा गया था। इस समय उस बात को पूरा किया गया और अखंडानन्दजी का उसी भाव का फोटो खींचा गया।

अनेक घरों में घूमकर धर्मशाला में आना हुआ। बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिये आकर धर्मशाला में बैठे थे। स्वामी अखंडानन्दजी अपने सांसारिक जीवन में नौकरी के सिलसिले में यहाँ बहुत दिन तक रहे थे। माँ की कृपा से उनकी अवस्था में परिवर्तन देखकर उनके पूर्व परिचित लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। माँ और भोलानाथजी के प्रसाद पाने के बाद और सब लोग भी प्रसाद पाने के लिये बैठे। बहुत से लोगों ने प्रसाद पाया। शाम को वहाँ के सब लोगों ने मिलकर माँ के पास कीर्तन करने का प्रबन्ध किया। दो-तीन दलों ने आकर कीर्तन किया। एक सज्जन ने रात को माँ के पास महोत्सव किया। रात को सबने महोत्सव का प्रसाद पाया। रात को तीन या साढ़े तीन बजे सब लोग माँ को प्रणाम करके घर गये।

दूसरे दिन माँ के परशुराम कुण्ड जाने की बातचीत हो चुकी थी। सबके चले जाने पर माँ लेट गई, मैं भी लेट गई। यात्रा की तैयारी होने लगी। डिब्रूगढ़ से भी दो-तीन व्यक्ति माँ के साथ परशुराम कुण्ड जायेंगे। दो मोटरों में जाना होगा। माँ धर्मशाला से मुक्तानन्द स्वामीजी के आश्रम गई। माँ को देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। आश्रम पर कुछ देर ठहरकर वहाँ से माँ मोटर में चली। डिब्रूगढ़ के मनमोहनसिंहजी ने अपनी मोटर माँ को परशुराम कुण्ड जाने के लिये दी और एक मोटर किराये की कर ली गई।

अगहन की 20 तारीख को सवेरे 8 बजे हम लोग श्री परशुराम कुण्ड रवाना हुये। तिनसुकिया सदिया होकर शाम को एक डाक बंगले पहुँचे।

अखंडानन्दजी यहाँ बहुत दिन तक सिविल सर्जन के पद पर रह चुके थे, इसी से अनेक लोगों की सहायता मिल गई जिससे जाने–आने का अनुमति-पत्र (पास या टिकट) मिलने की सुविधा हुई। इसी डाक बँगले में हमारे एक सम्बन्धी ओवरसियर थे। उनको खबर दे दी गई थी। बड़ा घना जंगल था। हाथी और बाघ का बड़ा डर था। इस समय फिर भी मोटर ले जाने की सुविधा हो गई। रात को इसी डाक बँगले में ठहरने का निश्चय हुआ। बड़ा जाड़ा था, किसी प्रकार वहीं भोजन बनाकर खाया गया। माँ के भोजन का दिन नहीं था। उन्होंने थोड़ा–सा दूध और फल खाया।

दूसरे दिन सवेरे रवाना हुये। आधा घण्टा मोटर पर जाने के बाद फिर पैदल चलना हुआ। नदी पार करके चार–पाँच मील रास्ता चलकर श्री परशुराम कुण्ड पहुँचे। माँ को किसी तरह एक डोली–सी बनाकर ले जाया गया। वहाँ पर तीन तरफ पहाड़ थे। दो झरने पहाड़ के नीचे एक कुण्ड जैसे स्थान पर गिरते थे। सबने वहाँ पर स्नान किया। माँ बैठी रही। दो-एक पहाड़ी स्त्रियों का रास्ते में माँ के प्रति प्रेम हो गया। यद्यपि कोई किसी की भाषा नहीं समझ पाती थी, फिर भी संकेत से अपना प्रेम प्रदर्शित करती थी। माँ को वे लोग वहाँ रखना चाहती थी। स्नान करके सबने धोतियाँ वहीं छोड़ दी। पहाड़ी स्त्रियाँ ये सब धोतियाँ ले गई। वहाँ का यही नियम था। माँ की दो–तीन नई धोती पाकर वे बड़ी खुश हुई। स्नान करके वहाँ से रवाना होकर फिर चार–पाँच मील पैदल चलने के बाद मोटर से डाक बगले आये, वहाँ थोड़ा दूध–फल खाकर मोटर से फिर रवाना हो गये। क्योंकि रात को 10 बजे तिनसुकिया स्टेशन पर ट्रेन थी। उस समय करीब एक बजा था। तुरन्त रवाना हुये बिना ट्रेन नहीं मिलेगी। माँ ने पिछले दिन से ही खाया नहीं था। सभी यही सोचते हुये चल रहे थे। रात को 9 बजे तिनसुकिया स्टेशन पहुँचे। मनमोहनसिंह की लड़की का घर वहाँ था। उनके घर पर ठहरकर गड्ढ़ा बनाकर उस पर खिचड़ी चढ़ा दी गई। गाड़ी में उस समय दो घण्टे की देरी थी। किसी प्रकार खाना–पीना करके 10 बजे की गाड़ी से नौगाँव चले। माँ भात नहीं खाती थी, इसलिये उनके लिये कुछ रोटियाँ बनाकर साथ में ले ली।

* * *

चौवनवाँ अध्याय

अगहन की 22 तारीख को 3 बजे हम नौगाँव पहुँचे। आश्चर्य की बात थी कि रास्ते में दो-तीन गार्ड और टिकट कलक्टरों ने आकर माँ को प्रणाम किया। एक सज्जन कुछ फल भी खरीदकर दे गये। क्या मालूम कहाँ से इन लोगों ने माँ का समाचार पा लिया था। फिर रास्ते में माँ के पूर्व परिचित ढाका के धानकोड़ा के जमींदार श्रीदिनेश बाबू के साले माखम बाबू से भेंट हो गई। वे माँ को देखकर उसी डब्बे में आकर बैठ गये। माँ ने प्रणाम करते ही उन्हें पहचान लिया, यद्यपि कई साल से माँ ने उनको नहीं देखा था। पहले भी इनके साथ अधिक परिचय नहीं था। माँ को दिनेश बाबू की स्त्री अपने घर पर कीर्तन आदि में ले गई थी किन्तु उस समय माखम बाबू कम उम्र के थे। माँ के पास ज्यादा नहीं आते थे। इस समय माखम बाबू नौगाँव में वकालत करते थे। इसी से नौगाँव जा रहे थे। आज उन्हीं ने माँ के पास बैठकर बड़ी देर तक बातचीत की। नौगाँव में खबर दे दी गई थी। सब लोग माँ को स्टेशन से ले गये। वहाँ पर श्रीयुत् जितेन्द्र बाबू के घर में एक कमरा है, उसमें सब लोग मिलकर कीर्तन आदि किया करते हैं। उसी कमरे में माँ को ले गये। बातचीत हो गई थी कि उसी दिन रात के 5 बजे की गाड़ी से माँ शिलांग चली जायेंगी। शाम को वहाँ के सिविल सर्जन और असिस्टेण्ट सर्जन माँ को मोटर में घूमने को ले गये। यहाँ भी अखण्डानन्दजी कुछ साल तक सिविल सर्जन के पद पर रहे थे। इसी से सभी से उनका परिचय था। सब उनका संन्यासी वेष देखकर बड़ा आश्चर्य करने लगे। उन्होंने सबसे कहा कि- ‘‘इन्हीं माँ की कृपा से इन को सब प्राप्त हो गया है। माँ को लेकर सिविल सर्जन रामतारन बाबू जेलखाने के भीतर दिखाने गये, क्योंकि वे जेल के सुपरिन्टेन्ट थे। वहाँ से अपने बँगले पर ले गये। वहाँ से असिस्टेन्ट सर्जन (अमूल्य बाबू) के घर, नगेन्द्र बाबू के घर तथा, और भी दो-एक घरों में जाकर कीर्तन वाले घर में लौट आई। आज माँ के खाने का दिन नहीं था इसी से थोड़ा दूध-फल माँ ने खाया। हमारी भी एकादशी थी, इसी से केवल भोलानाथजी ने भात खाया। और सबकी तो एकादशी थी, फल-दूध खाया गया। कहा

गया कि रात के 8 बजे की गाड़ी से माँ का जाना नहीं होगा। रात को 1 बजे रामतारन बाबू अपनी मोटर से माँ को चापरमुख पहुँचा देंगे। वहाँ से गाड़ी थोड़ी देर में मिलेगी उससे सवेरे गोहाटी पहुँचकर 8 बजे मोटर से शिलांग रवाना हो जायेंगे। यही हुआ। माँ के पास सबने कीर्तन किया। रात को 12 बजे माँ को रवाना करके सब अपने घर गये।

माखम बाबू हमारे साथ ही आये। हम लोग चापरमुख पहुँचकर वेटिंगरूम में सो गए। गाड़ी आने पर माखम बाबू ने हम लोगों को सवार करा दिया। 23 तारीख को सवेरे हम लोग गोहाटी पहुँचे। सबने हाथ-मुँह धोये। 8 बजे मोटर शिलांग रवाना हुई और 11 या 12 बजे के करीब हम शिलांग पहुँचे। वहाँ के असिस्टेण्ट सर्जन (कुमुदिनी वन्द्योपाध्याय) को खबर दी गई थी। वे स्टेशन पर उपस्थित थे और उन्होंने माँ के ठहरने के लिये श्री जगन्नाथ मन्दिर ठीक कर रखा था। हम लोग वहाँ जाकर ठहरे। पुजारी ने तीन-चार जनों का भोजन अधिक बनाया था। भोग हो चुका था। (बाद में सुना कि पुजारी बालब्रह्मचारी थे)। आज बहुत दिन बाद माँ ने उस अन्न का प्रसाद ग्रहण किया। मुझे किसी के हाथ का बना खाने का निषेध था, इसी से मैंने निश्चय कर लिया कि रात को भोजन करूँगी। इस समय कुछ दूध-फल ले लिये। इतनी ठण्ड थी कि फल खाना कठिन था।

मन्दिर के चारों तरफ भले आदमियों के घर थे। माँ खाने से पहले रास्ते पर जरा-सा घूमने लगी। एक घर में से एक स्त्री ने अपने घर माँ को बुलाया। किन्तु यह सुनकर कि माँ किसी के घर जाती नहीं हैं, बाहर बैठने की सुविधा कर दी और बातचीत होने लगी। मैंने मन्दिर से जाकर देखा कि माँ मजे में बैठी बातें कर रही हैं। उसी घर से एक लड़की माँ के साथ मन्दिर में आई। वह माँ से पूछती थी कि आप कहाँ से आई हैं और यहाँ कितने दिन ठहरेंगी? जब माँ ने उत्तर दिया कि कल ही यहाँ से चली जायेंगी तब वह दुःखी मन से बोली, क्यों और कुछ दिन ठहरो न, इतनी जल्दी क्यों चली जा रही हो? मैंने हँसकर कहा- क्यों ये रहें या चली जायें इससे तुम्हें क्या? तुम इन्हें ठहरने को क्यों कहती हो? तुम तो इन्हें जानती भी नहीं। वह लड़की अत्यन्त सरल भाव से बोली- क्या जाने क्यों हमें अत्यन्त प्यारी लगती हैं। अवाक् होकर सोचने लगी कि कैसा आकर्षण है। बच्चे, लड़के, जवान, बूढे, सभी को आकृष्ट कर लेती हैं।

हम लोग बड़े अज्ञानी हैं जो ऐसी अमूल्य वस्तु पाकर भी उपेक्षा करते हैं। इस लड़की ने फिर माँ का साथ नहीं छोड़ा। माँ को लेकर घूमने बाहर गई। माँ ने उससे कहा– ''हमारी बड़ी माँ हैं, (भ्रमर घोष को 'बड़ी माँ' कहती थी) छोटी माँ भी है (तारापीठ में एक स्त्री को माँ ''छोटी माँ'' कहती थी, उसका नाम लिली था), तुम हमारी कौनसी माँ बनोगी?' उसने कहा– 'मझली माँ।' माँ ने कहा– 'अच्छा तो हमारा एक नाम रख दो, क्योंकि हमारा इसी समय जन्म हुआ है, इसी से तो तुम माँ हुई।' उस लड़की ने फौरन उत्तर दिया, ''मैंने तुम्हारा नाम नारायणी रखा।'' मैं, माँ और वह लड़की उस समय घूम रहे थे। इन बातों को सुनकर मैं हँसती थी और माँ भी हँस रही थी। मैंने उससे पूछा– ''तुम्हारा नाम क्या है?'' उसने कहा– ''शोभारानी घोष'' मैंने कहा कि अब तो तुम मेरी नानी हो गई, ठीक है? उसने बड़े आनन्द से स्वीकार किया।

बाद में हम लोग मन्दिर लौट गये, और भी कई एक लड़कियाँ आकर इकट्ठी हो गई। माँ ने लड़कियों के नाम लिख लेने को कहा। शाम को थोड़ा घूमना भी हो गया। इसके बाद कुमुदिनी बाबू ने कीर्तन का प्रबन्ध किया। सबने मिलकर माँ के पास कीर्तन किया। बहुत से लोग माँ के दर्शन करने आए थे। माँ कल ही चली जाएँगी यह सुनकर अनेक लोग दु:ख प्रकट करने लगे। इतनी दूर आकर एक ही दिन ठहरकर माँ चली जायेंगी, सबने खबर भी नहीं पाई आदि–आदि बातें कहने लगे। फिर कब माँ लौटेंगी यह भी पूछने लगे। माँ ने कहा– ''तुम इस लड़की को जब बुलाओगे तभी आ जायेगी। इस समय अखंडानन्दजी के साथ आई हूँ। इनको अगहन की 28 तारीख को विन्ध्याचल पहुँचना होगा, विशेष काम है। इसी से इस बार देर नहीं की जा सकती।''

वहाँ के हेल्थ ऑफिसर डॉक्टर सरकार शाम को माँ के पास आये। उन्होंने अखण्डानन्दजी के मुख से माँ का विशेष परिचय थोड़ा बहुत पाया। फिर वे आकर माँ के पास बैठे। सुनने में आया कि वे और उनकी स्त्री दोनों खूब पूजा आदि करते हैं तथा साधु–संन्यासियों के पास बहुत जाते हैं। उन्होंने माँ के साथ बहुत–सी बातचीत की। रात को लगभग 10 बजे सबने विदा ली। दूसरे दिन सवेरे डॉक्टर सरकार आकर माँ को ले गये। हम भी साथ में थे। आज ही हम लोगों की शिलांग छोड़ने की बात थी।

12 या 1 बजे मोटर जाती थी। अनेक स्थानों पर घुमाकर डॉक्टर सरकार माँ को अपने घर ले गये। उनका छोटा-सा पूजा घर था। उसी में माँ को बैठाया। सभी मूर्तियाँ वहाँ पर थी। किसी संन्यासी से शिवलिंग मिला था, किसी साधु ने नारायण चक्र दिया था, किसी से दक्षिणवर्त शंख पाया था और किसी के पास से एकमुखी रुद्राक्ष मिला था। स्वामी और स्त्री इन सबको पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे। डॉक्टर बाबू की स्त्री ने कहा कि यही मूर्ति मैंने आज से तीन-चार दिन पहले इसी पूजा घर में बैठे देखी थी। मानों माँ हमारे पूजा घर से बाहर निकल रही हैं। किन्तु मैंने पतली किनारी की धोती नहीं देखी थी। खूब चौड़ी लाल किनारी की धोती पहने हुये देखा था।

मुझे यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। क्योंकि सचमुच कुछ दिन पहले डिब्रूगढ़ में एक स्त्री ने माँ को चौड़ी लाल किनारी की धोती पहनाई थी। मैंने यही बात उनको बतलाई और यह भी कहा कि माँ पहले चौड़ी लाल किनारी की धोती ही पहनती थी। वे माँ को देखकर विह्वल-सी हो उठी और उसी समय चौड़ी लाल किनारी की धोती लाकर माँ को पहनाई, पूजा के कमरे में बैठाकर मिठाई खिलाई। डॉक्टर सरकार के घर पर ही माँ को पूजा घर में कपड़े पहनाकर सिन्दूर लगाया गया।

वहाँ पर डॉक्टर की बहिन और एक अन्य स्त्री भी थी। उन्होंने मेरे भी सिन्दूर लगाना चाहा, मैंने मना किया। वे मानी नहीं, कहने लगी कि सधवाओं को सिन्दूर लगाने से मना क्यों करना चाहिये? तब माँ ने कहा- ''सुनो इसकी एक घटना है, सब लोग समझ नहीं सकते इसलिये सबको बताई नहीं जाती है। तुम लोग समझ लोगे इसलिये तुम्हें बताती हूँ। इसका विवाह अवश्य हुआ था, किन्तु इसने सांसारिक जीवन देखा ही नहीं। माता-पिता की सेवा में ही बचपन से जीवन व्यतीत किया है। एक और लड़की भी लगभग डेढ़ वर्ष की अवस्था से ही हम लोगों के पास पली है। उसको बचपन से मछली खाने या किसी के साथ भोजन करने नहीं दिया गया है। उस लड़की का और इसका पिछले साल माघ में लड़कों की तरह जनेऊ किया गया है। अब ब्राह्मणों के जो अधिकार हैं, स्त्री होने पर भी इनके वे ही सब अधिकार हैं। शास्त्रों में लिखा है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण की लड़कियों का भी जनेऊ होता था, यद्यपि अब प्रचलित नहीं है। उस लड़की का जनेऊ के बाद विवाह कर दिया गया और विवाह के समय से

जनेऊ की अग्नि उसके साथ दे दी गई। वे दोनों स्वामी और स्त्री नित्य यज्ञ करते हैं। उस दामाद के पिता और भाई ढाका के आश्रम में रहते हैं। संसार-त्याग करके आये हैं और इसको यज्ञ के बाद से ही ब्रह्मचारियों के नियम में रखा गया है। इसका मुण्डन भी कराया गया है। इसी से अब इसका अन्य भाव का जीवन व्यतीत हो रहा है। इसी कारण पिछले संस्कार का सिन्दूर आदि व्यवहार करने की आवश्यकता नहीं है।'' यह सुनकर उन्होंने सिन्दूर फेंक दिया और माँ से अपने अपराध की क्षमा चाही। माँ ने कहा, ''तुम्हारा कुछ अपराध नहीं था। तुम तो जानती ही नहीं थी और सबसे कहा भी नहीं जाता है।'' बड़ी देर उस घर में व्यतीत करके फिर डॉक्टर बाबू माँ को लेकर और भी दो-चार घरों में गये। इनमें से कुछ लोग पिछले दिन रात को माँ के पास जगन्नाथजी के मन्दिर में गये। 10 या 11 बजे हम लोग माँ के साथ जगन्नाथ मन्दिर में पहुँचे।

माँ का आज खाने का दिन नहीं था। मैंने अपने लिये कुछ बनाकर खा लिया। पिताजी और भोलानाथजी ने मन्दिर का प्रसाद पाया। माँ के साथ अन्य लोगों के प्रसाद पाने के लिये उस दिन मन्दिर में एक सज्जन भोजन का सब सामान भेजकर भोग देने को कह गये थे। माँ के लिये फल भी भेजे थे। माँ को थोड़ा दूध गरम करके पिला दिया। कुमुदनी बाबू ने भी भोग के लिये बहुत-सा दूध भेजा था। माँ की मंझली माँ भी माँ के लिये दूध ले आई। माँ ने उसे एक साड़ी दी। मैंने मन्दिर में जाकर देखा कि बहुत-सी स्त्रियाँ माँ के दर्शन करने को बैठी हैं। उनको कल समाचार नहीं मिला था। सुना है कि सन्तदास बाबाजी भी मृत्यु होने के कुछ दिन पहले एक बार शिलांग गये थे। उनको पाकर सभी प्रसन्न हुये थे। अनेक लोगों ने मुझसे माँ का फोटो और उपदेश यदि छपे रखे हों तो भेजने के लिये विशेष अनुरोध किया था। डिब्रूगढ़ में भी सबने अनुरोध किया था। डिब्रूगढ़ में माँ का फोटो खींचा गया था। इस प्रकार लगभग 24 घंटे शिलांग में व्यतीत करके माँ मोटर से रवाना हुई। मोटर के पास बहुत से स्त्री-पुरुष इकट्ठा हुये। सभी कुछ घण्टों के ही परिचित थे। किन्तु आश्चर्य की बात थी कि इन लोगों में से कई एक कोट पैन्ट पहनने वाले सज्जन भी जेब से रुमाल निकालकर आँखों से जल पौंछ रहे थे। सभी माँ के मुख की ओर देख रहे थे और माँ हँस-हँसकर अनेक बातें कर रही थी। सब मुग्ध होकर सुन रहे थे, यद्यपि ये सब बातें कुछ नई नहीं थी।

पचपनवाँ अध्याय

एक बजे मोटर छूटी। हम लोगों ने पाण्डु घाट जाकर स्टीमर पर सवार होने का विचार किया था। विराजमोहिनी दीदी नौगाँव में अपनी लड़की के घर पर थी। निश्चय था कि वे पाण्डु घाट आकर हम लोगों से मिलेंगी। स्टीमर पर पहुँचकर देखा कि विराज दीदी आ गई हैं। उन्होंने हम लोगों को देखकर कहा कि जब मैं यहाँ आई तो मुझे देखकर पिछली दफा के सब लड़के-लड़कियाँ माँ को आई जानकर और माँ को न देखकर मुझसे माँ का समाचार पूछने लगे। मैंने कहा- आज ही शिलांग से मोटर द्वारा माँ आवेंगी। तब वे प्रत्येक मोटर पर माँ को खोजने लगे। इस समय भी सब दौड़कर चले गये हैं कि देखें और कोई मोटर आई है या नहीं? दो-एक लड़के कह रहे थे कि देखो जब तक माँ की बातें याद आती हैं। हम लोगों की इच्छा होती है कि माँ के पास पहुँच जायें। तब भोलानाथजी और अखंडानन्दजी स्वामी लड़कों को खोजने गये। किन्तु हमें उन लड़के-लड़कियों के नाम याद नहीं रहे और अन्धेरा भी था। स्टीमर छूटने में अधिक देर नहीं थी, इसी से वे लोग मिले नहीं। वे लोग आये भी और माँ से भेंट नहीं हुई यह सोचकर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

इसी बीच माँ ने एक कम उम्र के सज्जन को हाथ से इशारा करके बुलाया। उनके पास आने पर माँ ने पूछा आप कहाँ रहते हो? उन्होंने कहा, इसी जगह रेल्वे में काम करता हूँ। माँ ने कहा- ''आप मुकुल को जानते हो?'' उन्होंने कहा- ''हाँ जानता हूँ।'' मैंने माँ का नाम उनको बता दिया। उनके चले जाने पर माँ ने कहा- ''जाने क्यों मेरे मन में आया कि इस व्यक्ति से कहने पर लड़के-लड़कियों को समाचार मिल जायेगा, इसीलिये बुलाया था'' यह कहकर हँसने लगी। बाद में और भी दो-एक रेल्वे के कर्मचारियों से परिचय हुआ। उनसे भी लड़के-लड़कियों को खबर देने को कह दिया गया। थोड़ी देर बाद स्टीमर छूट गया और 24 तारीख अगहन को शिलांग छोड़ दिया।

अगहन की 26 तारीख को सवेरे राजशाही में अटल दादा के घर ठहरे। माँ आँगन में बैठी थी। अटल दादा की उसी दिन से 20 दिन की

छुट्टी थी। माँ ने सुनते ही कहा– ''चलो इस बार हमारे साथ कुछ दिन घूम आओ।'' माँ की इसी दिन रात की गाड़ी से कलकत्ता जाने की बात हुई। अटल दादा बैठे रोते रहे। भोजन बना, माँ का भोग हुआ। खाने–पीने के बाद माँ घूमने को बाहर चली गई, सबका खाना–पीना हुआ। माँ भी लौटकर आ गई। अटल दादा साथ जाने को राजी हुये। निश्चय हुआ कि माँ उस दिन नहीं जायेंगी। किसी काम से अखंडानन्द स्वामी और विराज दीदी रात की गाड़ी से कलकत्ता चले जायेंगे। माँ, भोलानाथजी और मैं दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से कलकत्ता जायेंगे। किन्तु माँ ने कहा कि वे हावड़ा या स्यालदह स्टेशन पर ही जमशेदपुर की गाड़ी का इन्तजार करेंगे। दूसरी जगह न जायें। शाम को अनेक लोग माँ से भेंट करने आये और सब लोग माँ को लेकर पंचवटी के नीचे गये। शाम के पहले ही माँ के साथ सब लोग लौटे। माँ घर के भीतर नहीं जाती, इसीलिये बरामदे में ही ठहरने का प्रबन्ध किया गया।

शाम के बाद वहाँ के नित्यानन्द बाबू ने सपरिवार आकर माँ को थोड़े समय के लिये अपने घर ले जाना चाहा। अटल दादा ने पहले आपत्ति प्रकट की, किन्तु माँ ने हँसकर कहा कि–''अगर ये कहें कि आपके यहाँ तो इतनी देर रही और आधे घण्टे के लिये हमारे घर जाने में क्यों आपत्ति करते हो?'' इस बात पर सभी हँसने लगे, माँ भी हँसकर खड़ी हो गई। नित्यानन्द बाबू अपनी मोटर में माँ को ले गये और कह गये कि जल्दी ही वापिस भेज देंगे। लगभग घण्टे भर माँ वहाँ रही। सबने माँ के मुख में मिठाई खिलाई। उनके अनुरोध से माँ ने भी उनको मिठाई खिलाई। इस प्रकार आनन्द बरसाकर माँ अटल दादा के घर लौट आई। रात की गाड़ी से अखंडानन्द स्वामीजी तथा विराज दीदी कलकत्ता ऱवाना हो गये। यह स्थिर हुआ कि कल ही माँ हावड़ा से जमशेदपुर चली जायेंगी और माँ के आदेश से मैं और पिताजी विन्ध्याचल जायेंगे। अभी माँ को छोड़ना होगा यह सोचकर पिताजी का मन बड़ा दुःखी हुआ किन्तु माँ की आज्ञा ही उन्हें शिरोधार्य थी। इस कारण उन्होंने मन में दुःखी होने पर भी माँ के आदेश पर कभी कोई बात नहीं कही। माँ की आज्ञा का यथाशक्ति पालन करते जाना ही उनका परम कर्त्तव्य था। इसलिये प्रणाम करते समय नेत्रों के जल को रोक लिया।

उनके रवाना होने के बाद मैंने सुना कि अटल दादा का जाना माँ के साथ नहीं होगा। अनेक विघ्न हो गये हैं। कई बार माँ ने अटल दादा को बुलाया था किन्तु अटल दादा आ नहीं पाये। अतएव उससे उन्हें बड़ी अशान्ति हुई। बच्चों की तरह उनका मन सदैव माँ के लिये रोया करता था। किन्तु तब भी न जाने बन्धन तोड़कर थोड़े समय के लिये भी वे क्यों नहीं जा पाते थे। सारी रात वे सोये नहीं; कभी वे रोते थे, कभी माँ की गोद में चुपचाप सिर रखकर पड़ जाते थे। मैं भी बाहर माँ के पास ही लेटी किन्तु कोई सोया नहीं क्योंकि दो बजे तक सभी बैठे रहे। तीन बजे से ही अटल दादा आकर बैठ गये और साढ़े चार या पाँच बजे से मैं चलने का प्रबन्ध करने लगी। इधर कई दिनों से माँ का भी विश्राम और भोजन ठीक से नहीं हो रहा था। लगातार ट्रेन और मोटर में चलना पड़ रहा था। हम लोग सवेरे की ट्रेन से रवाना हुये। अटल दादा सपरिवार तथा, और भी बहुत से लोग माँ को स्टेशन पर पहुँचाने आये थे। हम लोग ईश्वरहि जाकर बैठे, बाद में कलकत्ता की गाड़ी मिली।

एक बजे स्यालदह पहुँचे। पहले ही माँ के आने का समाचार अखंडानन्दजी से सबने सुन लिया था, इसलिये स्टेशन पर बहुत से स्त्री-पुरुष माँ के दर्शनों के लिये इकट्ठे हो गये थे। अनेक लोग माँ के गले में हार पहनायेंगे। माँ को ले जाकर एक स्थान पर बैठाया गया। आज माँ के खाने का दिन नहीं था। भोलानाथजी खाने के लिये चले गये। माँ को अकेले छोड़ना पड़ेगा इसलिये मैं खाने के लिये नहीं गई। वहाँ पहुँचते ही हम लोगों ने सुना कि कालीप्रसन्न कुशारीजी का शरीर अस्वस्थ हो गया है। भोलानाथजी ने माँ को बतलाया। माँ ने कहा कि मैंने तो पहले ही कहा था कि हम स्टेशन पर बैठे रहेंगे, तुम जाकर देख आओ। यही किया गया। सब माँ को घेरकर बैठ गये। थोड़ी ही देर में आद्यापीठ के भक्तजनों के साथ विमला माँ और आनन्द भाई आ पहुँचे। सबने माँ को पाकर प्रसन्नता प्रकट की। माँ ने विमला माँ को पकड़कर अपने पास बैठाया। जब कभी वे आती हैं तब मैं देखती हूँ कि माँ इनका बड़ा आदर करती हैं। उनके आदर में जरा भी त्रुटि होने पर माँ असन्तुष्ट होती थी। मैं कह चुकी हूँ कि माँ के किसी काम में त्रुटि नहीं होती। उनके सभी काम बड़ी सुन्दरता के साथ लीला की भाँति हो जाते थे। आरम्भ से ही ये बातें देखती हूँ,

आज की कोई नई बात नहीं। माँ ने कह दिया कि विराज दीदी भी तुम्हारे साथ विन्ध्याचल जायेंगी।

माँ के साथ जमशेदपुर कौन-कौन जायेगा, अभी कुछ ठीक नहीं हुआ। केवल एक बार रास्ते में कमल की बात कही थी, लेकिन कुछ ठीक नहीं हुआ। कमल जोगेश दादा का छोटा भाई था, कृष्ण दादा के पास ही रहता था। इतने लोग स्टेशन पर आये थे किन्तु कमल और कृष्ण दादा को नहीं देखा, इसलिये मैंने कुछ चिन्तित होकर माँ को जाकर बताया कि कृष्ण दादा या उनके घर के किसी को भी नहीं देख रही हूँ। कमल को खबर कैसे दी जायेगी? माँ ने कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल जरा हँस दी। इस बात के पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही देखा कि कमल तथा घर के अन्य लोगों के साथ कृष्ण दादा आ गये। कमल के माँ को प्रणाम करते ही माँ बोली- तुम हमारे साथ जमशेदपुर चलो, फिर घूमकर लौट आना। कृष्ण दादा के साथ कमल बहुत दिन तक जमशेदपुर में रहा था, इसी से माँ ने ऐसा कहा। माँ ने मुझसे कहा- कमल को सब समझा दो। कृष्ण दादा ने कहा- आज अमावस है, इससे कमल का उपवास है। क्या शाम को खाने के लिये कुछ मँगाकर दे दिया जाये? माँ ने कहा- अब जाने की आवश्यकता नहीं, यहीं फल खा लेगा। बिस्तर और कपड़ों के लिये बोली- ''सब हो जायेगा, लाने की जरूरत नहीं है।'' यही निश्चय हुआ। शाम के पहले माँ को जरा जलपान के लिये बैठाया। भक्त लोग कितना ही सामान लाये थे। सभी माँ के मुख में कुछ न कुछ खिलाकर प्रसाद लेने लगे। बड़ी भीड़ थी। पुलिस ने आकर इतनी देर तक स्टेशन पर भीड़ रहने के कारण सबको हटा दिया। माँ का खाना न हो सका, उठ गई।

उस समय शाम हो चली। माँ 7 बजे की गाड़ी से जमशेदपुर जायेंगी, इसीलिये जल्दी-जल्दी करके हावड़ा स्टेशन पर माँ को ले गये। ठीक समय पर गाड़ी में चढ़ाकर सब लोग माँ को चारों तरफ से घेरकर खड़े हो गये। साथ में एक टोकरी फल थे। डिब्रूगढ़, नौगाँव, शिलांग आदि स्थानों से जमा होते-होते टोकरी भर गई। उसे भी गाड़ी में चढ़ा दिया गया। माँ तब मेरी तरफ देखकर कुछ हँसकर बोली, खुकुनी! जमशेदपुर में भी तो फल मिल जायेंगे। इनको यहाँ पर बाँट दो। यही किया गया। उसी समय उन फलों को बाँट दिया गया। कुछ देर बाद ही गाड़ी छूटने की घण्टी बजी।

माँ को प्रणाम करके एक-एक करके सब गाड़ी से उतर पड़े। सभी माँ के मुख की तरफ देख रहे थे। बात हुई कि माँ एक बार कलकत्ता आकर फिर जहाँ जाना होगा, जायेंगी।

गाड़ी छूटने से थोड़ा पहले ही भोलानाथजी ने इशारा करके बूनी (यतीश गुहा की छोटी लड़की जिसका नाम फुल्लयूथिका था) को पुकारा। वह उसी समय गाड़ी में चढ़कर बैठ गई। माँ ने कहा- उसके पिता से पूछ लेना चाहिये। यतीश दादा पास ही खड़े थे। उन्होंने कहा- माँ के साथ जाने में मुझे क्या बोलना है। उन्होंने अपना अलवान उतारकर गाड़ी में फेंक दिया क्योंकि गाड़ी उस समय छूट गई थी। शचि दादा ने कुछ रुपये गाड़ी में फेंक दिये। इस प्रकार बूनी और कमल माँ के साथ जमशेदपुर रवाना हुये। हम लोगों को 8 बजे की गाड़ी पकड़नी थी। हम स्टेशन पर बैठे रहे। शचि दादा, यतीश दादा, नितीश, मिनू, ज्ञान दादा आदि कई लोग हमारे साथ बैठे रहे। बाद में बात हुई कि काम बाकी रखकर आज नहीं जाना चाहिये। कल शाम 4 बजे की गाड़ी से चलकर अगहन की 29 तारीख को माँ के आदेशानुसार विन्ध्याचल पहुँच जायेंगे। सभी की यही राय हुई।

आज 27 तारीख इतवार था। हम रात को सुरेश बाबू के घर के चौमंजिले पर, जो स्थान माँ के लिये सुरक्षित था, जाकर ठहरे। दूसरे दिन 28 तारीख की शाम को 4 बजे की गाड़ी से चलकर 29 तारीख मंगलवार को (संक्रान्ति के दिन) सवेरे विन्ध्याचल पहुँच गये। माँ की आज्ञानुसार संक्रान्ति के दिन का काम किया। इसी काम के लिये अभी काशी जाने की आवश्यकता थी। हम लोग पूस की दो तारीख बृहस्पतिवार को सुबह की गाड़ी से काशीजी रवाना हुये। काशी का काम समाप्त करके दोपहर की गाड़ी से 7 तारीख को मंगलवार के दिन विन्ध्याचल लौट आये। काशी में मानिक के मुख से सुना कि वह कलकत्ता गया था और शचि बाबू के घर पर समाचार मिला कि माँ 4 तारीख, शनिवार को कलकत्ता आयेंगी और कलकत्ते से नवद्वीप जायेंगी। विन्ध्याचल आकर भोलानाथजी तथा शचि दादा का पत्र मिला। शचि दादा के पत्र से मालूम हुआ (वे पौष की 5 तारीख तथा 20 दिसम्बर को पत्र लिख रहे थे) कि माँ के साथ वे लोग लगभग बीस-पच्चीस आदमी नवद्वीप गये हैं। पर उसी दिन वे लोग कलकत्ता लौट आयेंगे और फिर बड़े दिन पर माँ के पास नवद्वीप जायेंगे। भोलानाथजी

का पत्र पाकर ढाका से दादा महाशय, दीदी माँ और अतुल ब्रह्मचारी भी आए थे। वे भी माँ के साथ नवद्वीप में हैं। भोलानाथजी ने लिखा था कि, ''हम जमशेद्पुर से नवद्वीप आये हैं। 7 तारीख को आपके दादा महाशय को लेकर द्वारिका जाएँगे। आपकी माँ, दीदी माँ तथा अतुल यहीं रहेंगे, ऐसा विचार हो रहा था।'' इत्यादि-इत्यादि।

* * *

छप्पनवाँ अध्याय

1343 सन्, पौष का महीना– माँ के नवद्वीप जाने का समाचार मिला। पिताजी ने विन्ध्याचल के कुण्ड के काम के लिए माँ से मिलने की आज्ञा पाने का पत्र लिखा, तब माँ ने उन्हें आने की आज्ञा दी। उसके अनुसार हम तार पाकर पौष की 11 तारीख शनिवार को विन्ध्याचल से रवाना होकर काशीजी गए और वहाँ से दूसरे दिन अर्थात् 12 तारीख को नवद्वीप रवाना हो गए। 13 तारीख सोमवार को नवद्वीप पहुँचकर देखा कि बहुत से लोग माँ के चरणों में उपस्थित हैं। **श्रीआद्यापीठ की विमला माँ, निर्मला माँ,** आनन्द भाई और हेम भाई आदि माँ के पास आए थे। हमने आकर सुना कि माँ गंगाजी के उस पार, 50 साथी लेकर किसी सज्जन के घर गई हैं। वहीं उनका भोग होगा। हम माँ को न पाकर नदी के किनारे घूम रहे थे और सोचते थे कि माँ कब आवेंगी। शाम हो गई थी। इतने में देखा कि नदी में दो–तीन भरी नाव आ रही हैं। उन नावों में मधुर स्वर में नाम–कीर्तन ''माँ'' का हो रहा था। 'माँ'–'माँ' का नाम कीर्तन करते हुये भक्त लोग माँ के साथ आ रहे थे। यह कीर्तन सुनकर मेरा भी मन आनन्द से नाच उठा। हमारे साथ विनय बाबू और उनकी स्त्री भी थी। नावें आकर किनारे पर लगी।

माँ के साथ सब धर्मशाला में आये। माँ हेतमपुर की राजधर्मशाला में थी। माँ के नेत्रों पर दृष्टि पड़ने पर मैंने देखा कि नेत्र के नीचे काला निशान है। सुना है कि माँ एक दिन रात को 3 बजे बरामदे से उतरते समय गिर पड़ी थी। बड़ी चोट आई थी। दाहिनी आँख और मस्तक के दाहिनी तरफ चोट लगने से खूब सूजन आ गई थी। सब लोग देखकर घबरा जायेंगे, इसलिये माँ ने अपने हाथ से सूजन की जगह को छुपा लिया और सबको हटाकर प्रकाश भी हटा देने को कहा। थोड़ी देर बाद सूजन इतनी बढ़ गई कि हाथ से छिपाना कठिन हो गया। इस घटना से सबको दुःख प्रकाश करते सुनकर माँ एक दिन हँसकर बोली– इसमें दुःख क्या है? उन्हीं गोविन्दजी ने मुझे काजल लगा दिया है। यही कह कर हँसने लगी। इसके भीतर और एक घटना है। माँ को चोट लगने के पाँच–छः घण्टे पहले शचि दादा और

ब्रजेन्द्र ठीक उसी तरह गिरने से बचे थे। किन्तु आश्चर्य की बात थी कि उन्हें जरा भी चोट नहीं लगी। उनकी चोट को माँ ने मानो अपने शरीर पर झेल लिया, इसे कौन जानता है।

भोलानाथजी, दीदी माँ और माँ के पिताजी को लेकर द्वारका रवाना हो गये। श्रीरामपुर से त्रिगुना दादा, ढाका से अमूल्य दादा और प्राणकुमार बाबू सपरिवार आये थे। शचि दादा, बेबी दीदी, श्रीयुत् प्रफुल्ल घोष की स्त्री, सब कोई आये थे। सुना कि माँ अक्सर गंगाजी में नाव द्वारा घूमने जाती हैं। निर्मला और विमला के साथ माँ सदैव ही उनकी लड़की बनकर खेला करती थी। उनके साथ खाने बैठती और हर समय उन्हीं के साथ रहती थी। वे भी माँ को पाकर बड़ी प्रसन्न होती थी। विमला और निर्मला दोनों का ही बड़ा सुन्दर भाव था। विमला के पति आनन्द भाई सदैव आनन्द में मस्त रहते थे। निर्मला के पति हेम भाई बहुत कम बोलते थे, बड़े शान्त, धीर और स्थिर स्वभाव के थे। वे सदा ही अपने में ही सन्तुष्ट रहते थे।

हमारे आने के बाद मंगल के दिन भी माँ नाव पर घूमने गई। उस दिन रात को सब लोग बैठे थे, बहुत बातचीत हो रही थी। नवद्वीप से दो-तीन संन्यासी आये थे। एक संन्यासी कैलास पर्वत की यात्रा के सम्बन्ध में कुछ बता रहे थे। मंगलवार की शाम को माँ ललिता सखी के पास गई। माँ के आने का समाचार पाकर सखी माँ जल्दी से बाहर निकल आई। माँ को देखते ही पृथ्वी पर लेटकर प्रणाम किया और माँ को पकड़कर बरामदे में ले गईं। माँ के आने पर बड़ा आनन्द प्रकट करके सब लोग बरामदे में जाकर बैठे। उनकी नम्रता और मधुर व्यवहार से सभी का चित्त आकृष्ट हो गया। हम लोगों में से किसी ने सखी माँ से कहा कि "कुछ बोलिये।" उन्होंने कहा, मैं तो केवल मशीन हूँ। आप लोग जिस प्रकार बजायेंगे, उसी प्रकार मशीन बोलेगी, आप लोग बजा लें। कोई प्रश्न करने पर उसका उत्तर देने की योग्यता मुझ में अवश्य नहीं है। फिर भी भगवान सम्बन्धी विषय पर प्रश्न करने की हर समय आवश्यकता है। वही प्रसंग छेड़ना अच्छा है।

प्राणकुमार बाबू ने उससे पूछा- जीव का क्या कर्त्तव्य है? सखी माँ ने उत्तर दिया कि- "हर एक के कर्त्तव्य भिन्न-भिन्न हैं। पुत्र का कर्त्तव्य

एक प्रकार का, तो पिता का कर्त्तव्य दूसरे प्रकार का है। फिर भी कुछ कर्त्तव्य ऐसे हैं जो सभी के लिये आवश्यक हैं। यदि एक छोटा-सा लड़का तुम्हारे पास आये और तुम उससे पूछो कि "तुम कहाँ रहते हो, क्यों आये हो?" तो वह तुम्हारा उत्तर दे सकता है। किन्तु हम लोग इतने अज्ञानी हैं कि इन्ही प्रश्नों को यदि कोई हमसे पूछे तो उत्तर नहीं दे पायेंगे। इसी से समझ में आता है कि पहला कर्त्तव्य यही है कि "तुम कहाँ से आये हो? क्यों आये हो? यह जानने का प्रयत्न करो। गुरु वचनों पर विश्वास करने से ही सब हो सकता है।" उनके इस उत्तर से सभी प्रसन्न हुये। सबके प्रसन्नता प्रकट करने पर सखी माँ बड़ी नम्रता से कहने लगी कि- "इसमें मेरी कुछ भी योग्यता नहीं है, जो बजा लेता है उसी की बहादुरी है।" माँ ने हँसकर कहा- बाजा ठीक न होगा तो शब्द ठीक-ठीक नहीं निकलेंगे, इसलिये बाजे की अच्छाई भी तो मानी जायेगी। सखी माँ ने कहा- तार टूटा होने पर भी जो लोग बजाते हैं वे उसे जोड़कर सुन्दर शब्द निकाल ही लेते हैं।

इन्हीं सब बातों पर आनन्द आ रहा था। अन्त में सखी माँ ने कहा- माँ हमने सुना था कि माँ चली गई हैं। यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मैं एक अधम स्त्री हूँ, यहाँ पड़ी हूँ, इसी से माँ मुझे दर्शन दिये बिना ही चली गई। इसके बाद फिर समाचार मिला कि माँ अभी नहीं गई हैं। माँ ने हँसकर उत्तर दिया कि-माँ से मिले बिना कहीं लड़की जा सकती है?

इन सब बातों के बाद स्थान की कमी होने के कारण सब लोग माँ और सखी माँ को लेकर बाहर आकर बैठ गये। वहाँ पर बहुत-सी बातचीत हुई। बेबी दीदी ने पूछा कि- "श्रद्धा किस तरह होती है?" सखी माँ ने कहा कि गुरु वाक्य में विश्वास करने से ही श्रद्धा उत्पन्न होती है। बेबी दीदी ने कहा कि- यदि विश्वास ही न हो तो उसका क्या उपाय है? सखी माँ ने कहा कि विश्वास ही उत्पन्न करने के लिये सब साधन किये जाते हैं। विश्वास होता ही नहीं, यह तुम नहीं कह सकती। देखो, माता-पिता ने एक अपरिचित युवक के हाथ में तुमको सौपे दिया और कह दिया कि आज से तुम इन्हीं की हो गई। इस बात पर विश्वास करके तुम माता-पिता आदि को छोड़कर उसी के साथ चली जाती हो और एकमात्र उसी का आश्रय ले लेती हो, यह क्या कम विश्वास की बात है? पिता

के वचनों पर विश्वास करके ही तो अपरिचित युवक को अपना बना लेती हो? **केवल पति के प्रति अचल भक्ति से मुक्ति होती है और किसी बात की आवश्यकता नहीं।** किन्तु हम लोगों में एक दोष है कि पति से कुछ इच्छायें रखती हैं। यह कहकर एक पतिव्रता की कहानी सुनाई।

एक पतिव्रता स्त्री का स्वामी कुष्ठरोग से पीड़ित था। वह खड़ा भी नहीं हो पाता था। स्त्री अपने स्वामी को एक टोकरी में बैठाकर सिर पर रखे घूमती थी। एक दिन टोकरी उतारते समय उसके शरीर पर स्वामी के नेत्र से एक बूँद जल निकल कर गिरा। इससे उसने सोचा कि अवश्य ही मेरे किसी व्यवहार से स्वामी के मन को आघात पहुँचा है इसीलिये नेत्र से जल गिरा है। यह सोचकर उसने बड़े नम्र भाव से पति से पूछा कि मुझसे कोई अपराध हो गया है क्या, जिससे आपके मन को दुःख पहुँचा है। उस अपराध को मुझसे बताइये। पति ने उत्तर दिया कि तुम्हारे समान जिसके सती स्त्री हो उसे दुःख कैसा? स्त्री नहीं मानी और हर तरह से पूछा। अन्त में स्वामी ने कहा, देखो मुझमें कोई शक्ति नहीं फिर भी मेरा मन निर्बल और मलीन है कि आज एक सुन्दर स्त्री को रास्ते में देखकर मेरा मन उस पर मोहित हो गया। इसी से मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ कि मेरे ऐसी पतिव्रता स्त्री है तब भी मेरा मन ऐसा अपवित्र क्यों हो गया। यही सोचकर मेरी आँखों में जल आ गया था। स्त्री कुछ नहीं बोली और अपने एक पडौसी के पास अपने स्वामी को सौंपकर यह कह गई कि मैं एक काम से दूसरे स्थान को जा रही हूँ, आप दया करके मेरे स्वामी को जरा देखते रहना।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह उस स्त्री के पास पहुँच गई और पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह वैश्या है। वह स्त्री वैश्या की सेवा में लग गई किन्तु वैश्या को मालूम न होने दिया। अज्ञात भाव से सेवा करती रही। यहाँ तक कि वैश्या का मलमूत्र भी साफ करने लगी। वैश्या को आश्चर्य हुआ कि यह कौन छिपकर मेरी इस प्रकार सेवा करती है। दो-तीन दिन प्रयत्न करने पर एक दिन वैश्या ने उस स्त्री को पकड़ ही लिया और पूछा कि हे देवी! तुम कौन हो? इस प्रकार छिप-छिपकर क्यों मुझ-सी नारकीय (नीच) स्त्री की सेवा करती हो। तुम्हें क्या चाहिये? तुम जो माँगोगी, मैं दूँगी। तब उस स्त्री ने कहा- सच बताओ मैं माँगूगी वह तुम दोगी? तब वैश्या ने कहा-

निश्चय जानो, जो तुम माँगोगी वह मैं दूँगी। तब उस स्त्री ने कहा- मेरे स्वामी रोगी हैं। वे तुम्हें देखकर तुम पर मोहित हो गये है, तुम्हें मेरे स्वामी के पास चलना होगा। वैश्या ने कहा- ठीक है मैंने कितने ही नीच लोगों का संग किया है। तुम्हारी सरीखी पतिव्रता स्त्री के स्वामी के स्पर्श से धन्य हो जाऊँगी। यह कहकर वह उस स्त्री के साथ चल दी।

उधर बैकुण्ठ में नारायण का आसन हिल गया। नारायण ने लक्ष्मीजी से कहा कि मैं पृथ्वी पर एक पतिव्रता को देखने जाता हूँ। लक्ष्मीजी ने कहा कि वह तो हमारी जाति की है, मैं भी चलूँगी। इसी प्रकार कैलास से पार्वती सहित शंकरजी आये और ब्रह्मलोक से सरस्वती के सहित ब्रह्मा आये। सभी मृत्युलोक में पतिव्रता को देखने आये। ज्यों ही पतिव्रता स्त्री वैश्या को अपने पति के पास ले गई त्यों ही वैश्या के भावों में परिवर्तन हो गया। स्त्री बड़ी श्रद्धा से अपने स्वामी के पास गई। जब उसने ऊपर की ओर दृष्टि की तो देखा कि देवता तथा देवियाँ भी उपस्थित हैं। स्त्री ने उनसे पूछा कि आप लोग किसलिये आये हैं? देवताओं ने उत्तर दिया कि, हे देवी! हम आप सरीखी पतिव्रता के दर्शन करने आये हैं। वह स्थान उसी समय स्वर्ग बन गया। यह कहकर सखी माँ ने कहा- देखो एक पतिव्रता के कारण सब लोग धन्य हो गये।

सखी माँ इसके बाद हँसते-हँसते बोली कि विधि के अनुसार साधन-भजन करना चाहिये। यदि उसे न कर सके तो (माँ को दिखाकर) इस बड़ी नाव में अपनी छोटी नाव बाँध दो। अगर पीछे से संसार उसे खींचकर ले जाना चाहे तो बड़ी नाव में बंधी रहने से वह साथ-साथ जायेगी तब फिर क्या डर है? देखो इस बड़ी नौका की विशेषता यह है कि पीछे की तरफ खींचने के लिये भी इस नाव में एक पुरजा होता है और यहीं खींचकर ले आता है। यही सब बातें होने के बाद स्त्रियों का कीर्तन हुआ। फिर माँ के साथ हम लोग धर्मशाला लौट आये। रात को सब लोग माँ के पास बैठे। कितनी ही बातें हुई, बड़ा आनन्द रहा।

* * *

सत्तावनवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् पौष की 15 तारीख– माँ ने आज प्रात:काल पिताजी को पुकारकर कहा कि विन्ध्याचल के काम के विषय में सब बातें बतलाओ कि तुमने क्या किया? पिताजी ने सब बातें बताकर माँ का आदेश ध्यानपूर्वक सुना। इसके बाद अमूल्य दादा, त्रिगुना दादा और अन्य लोग आकर बैठ गये। माँ अनेक बातें कर रही थी। बात उठी कि श्रीकृष्णलीला प्राकृत है या अप्राकृत (अर्थात् सांसारिक है या दिव्य)? माँ ने कहा जब लीला कही जायेगी तो वह दिव्य ही है। जीवनमुक्त से भी ऊँची अवस्था ऋषियों की होती है। जीवनमुक्ति की अवस्था न होने पर तो श्रीकृष्णलीला के सुनने का भी अधिकार नहीं है। इसके बाद श्रीराधा–तत्व और गोपी–तत्व की बात चली। माँ ने कहा कि ऋषि लोग ही गोपी बने थे। वे लीला के अंश बने थे, इसलिये कोई बन्धन नहीं था। बात–बात में और भी कहा कि श्रीकृष्ण और राधा अभिन्न हैं और श्रीराधा प्रधान गोपी हैं। इसी जगह वेदान्त आ गया। यह कहकर हँसने लगी।

इसके पश्चात् कृपा का प्रसंग उठा। एक व्यक्ति ने पूछा– माँ, साधन आवश्यक है या कृपा? माँ ने कहा– पहले कर्म ही करना चाहिये। कर्म से ही कृपा मिलेगी। अमूल्य दादा ने कहा– तब कृपा की क्या विशेषता हुई? माँ ने कहा– साधक की कर्म करते–करते एक ऐसी अवस्था आती है, जब वह देखता है कि बिना उसकी कृपा के कोई भी कर्म हो नहीं सकता। जब तक अहं बुद्धि रहती है तब तक कृपा को समझ नहीं पाते। जब चित्त शुद्ध हो जाता है तब कृपा समझ में आने लगती है। तभी साधक समझ पाता है कि ईश्वरकृत ही सब होता है, अर्थात् भगवान जो करते हैं वह ईश्वरकृत ही है, ईश्वर जो करता है वही होता है। इतने में ज्ञान दादा ने कहा– अहेतुक कृपा क्या है? यह सुनकर अमूल्य दादा बोल उठे– अहेतुकी कृपा जो कहलाती है वह हमारी तरफ से होती है या उसकी तरफ से होती है? माँ ने कहा– उसकी तरफ से। अमूल्य दादा बड़ी कठिनाई में पड़ गये क्योंकि पहले माँ जो कह आई हैं, उससे यह बात मेल नहीं खाती। वास्तव में माँ किसी का भाव नष्ट नहीं करती हैं। ज्ञान दादा और

नवतरु दादा को विश्वास था कि कृपा के बिना कुछ भी नहीं होता, इसी से माँ ने उसी को तुष्ट कर दिया। देखा गया है कि माँ प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न-भिन्न प्रकार का उत्तर देती हैं।

आज रात को यतीश दादां की लड़की फुल्लयूथिका (बूनी) ने कहा- माँ हम लोग क्यों भोग-प्रसाद नहीं बना सकते और ब्राह्मण लोग क्यों बनाते हैं? माँ ने कहा- वह उन्हीं का काम है। इस समय वे चाहें कैसी ही क्यों न हो, पूर्व पुरुषार्थ के फल से वे इस समय भी भोग-प्रसाद बनाने के अधिकारी हैं। उनका जन्म ब्राह्मण के घर में हुआ है, यही उनकी विशेषता है।

विमला देवी और विनय बाबू के माँ से एकान्त में बातचीत करने की इच्छा प्रकट करने पर माँ ने उनको अवसर देने के लिये उनके साथ नाव में जाने की तैयारी की। अन्य सब लोगों को जाने से मना कर दिया। हम लोग नदी के किनारे-किनारे घूमने लगे। शिशिर से न रहा गया और बच्चू को साथ लेकर एक नाव करके माँ की नाव के साथ-साथ चल दिया। माँ ने मना कर दिया था, इससे माँ की नौका से दूर-दूर चलता था। थोड़ी देर के बाद ही नौका में शिशिर को बड़ी चोट लगी। तब माँ ने कहा- तुम लोग बात नहीं मानते हो इसी से ऐसा होता है।

बंगला 1343 सन् पौष मास की 16 तारीख, बृहस्पतिवार- आज माँ रात बैठी-बैठी बाल्यकाल की बहुत-सी बातें बता रही थी। ऐसे सुन्दर भाव से कह रही थी मानो सचमुच इसी समय वे घटनायें हो रही हों। माँ के उन बातों के कहने पर किसी ने कुछ कहा तो माँ बोली कि सचमुच उस समय की बातें कहते-कहते मैं उसी भाव में मग्न हो जाती हूँ। इसी से सब बातें उसी भाव से कह जाती हूँ। सबको माँ की बातों में बड़ा आनन्द आ रहा था। माँ कहने लगी कि- जब पहले-पहल मुझे स्कूल में पढ़ने भेजा गया, तब उस स्कूल के मास्टर इस शरीर के बाबा थे। उन्होंने एक बार मुझे अ, आ पढ़ा दिया और पता नहीं कैसे हमने उसी समय याद कर डाला। उसी दिन क, ख भी पढ़ा दिया गया। दूसरे दिन उसे भी सीख लिया। इसी तरह सब जाने कैसे हो जाता था। स्कूल मैं बहुत कम जाती थी क्योंकि वह दूर था तिस पर छोटा भाई कुछ दिन बीमार भी रहा था। इन्हीं अनेक बातों के कारण मेरा स्कूल जाना बहुत कम होता था। यही

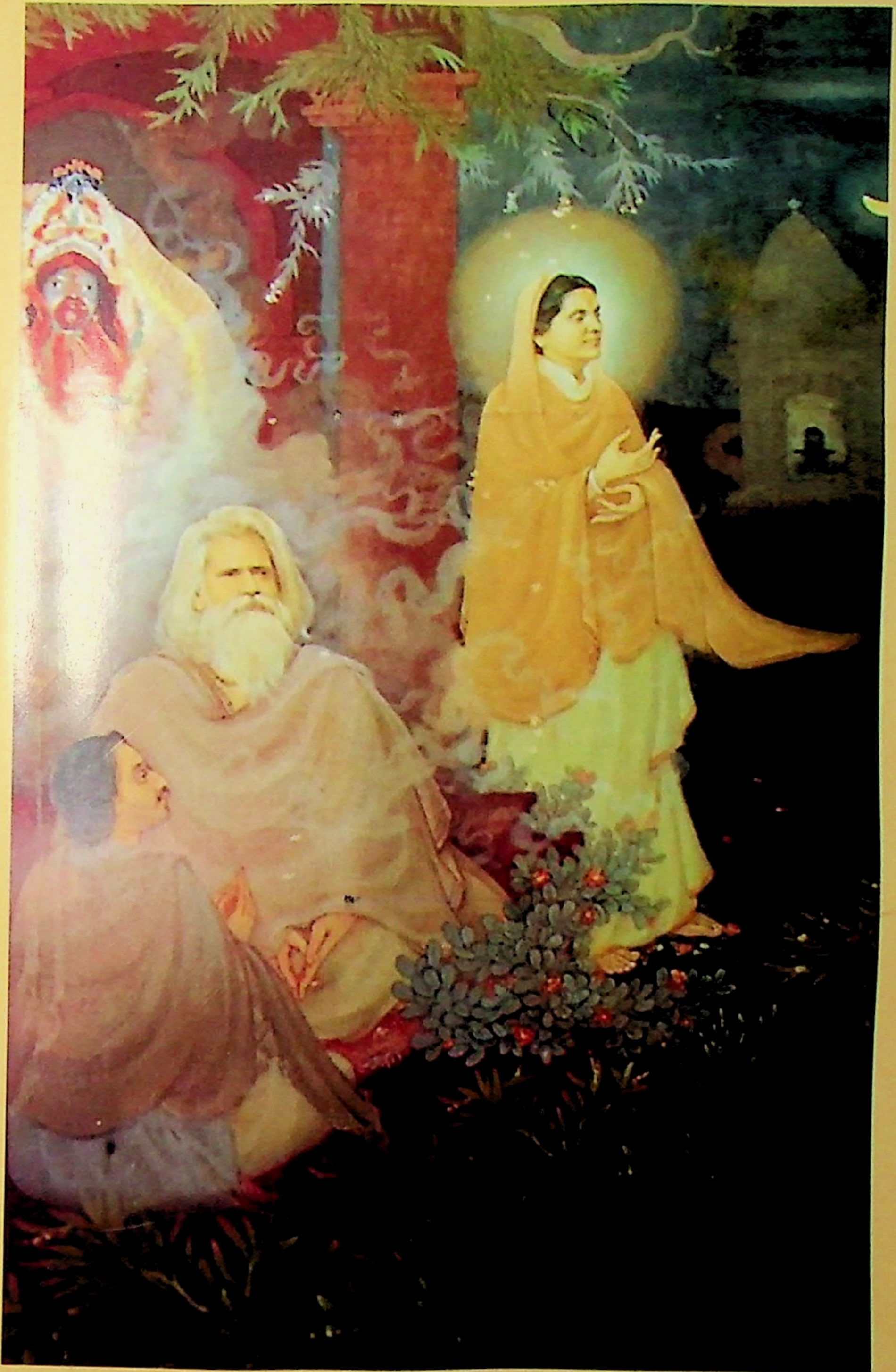

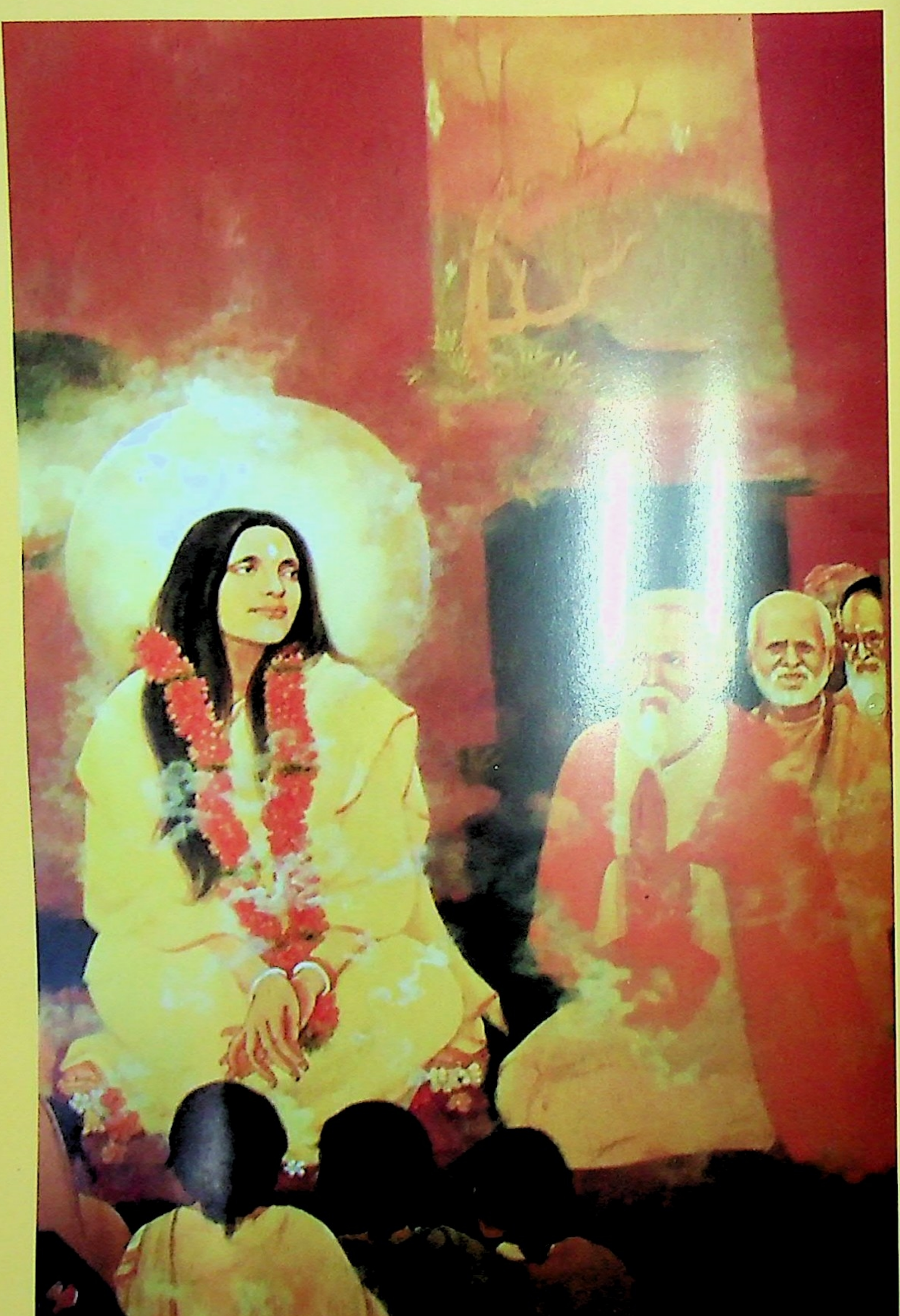

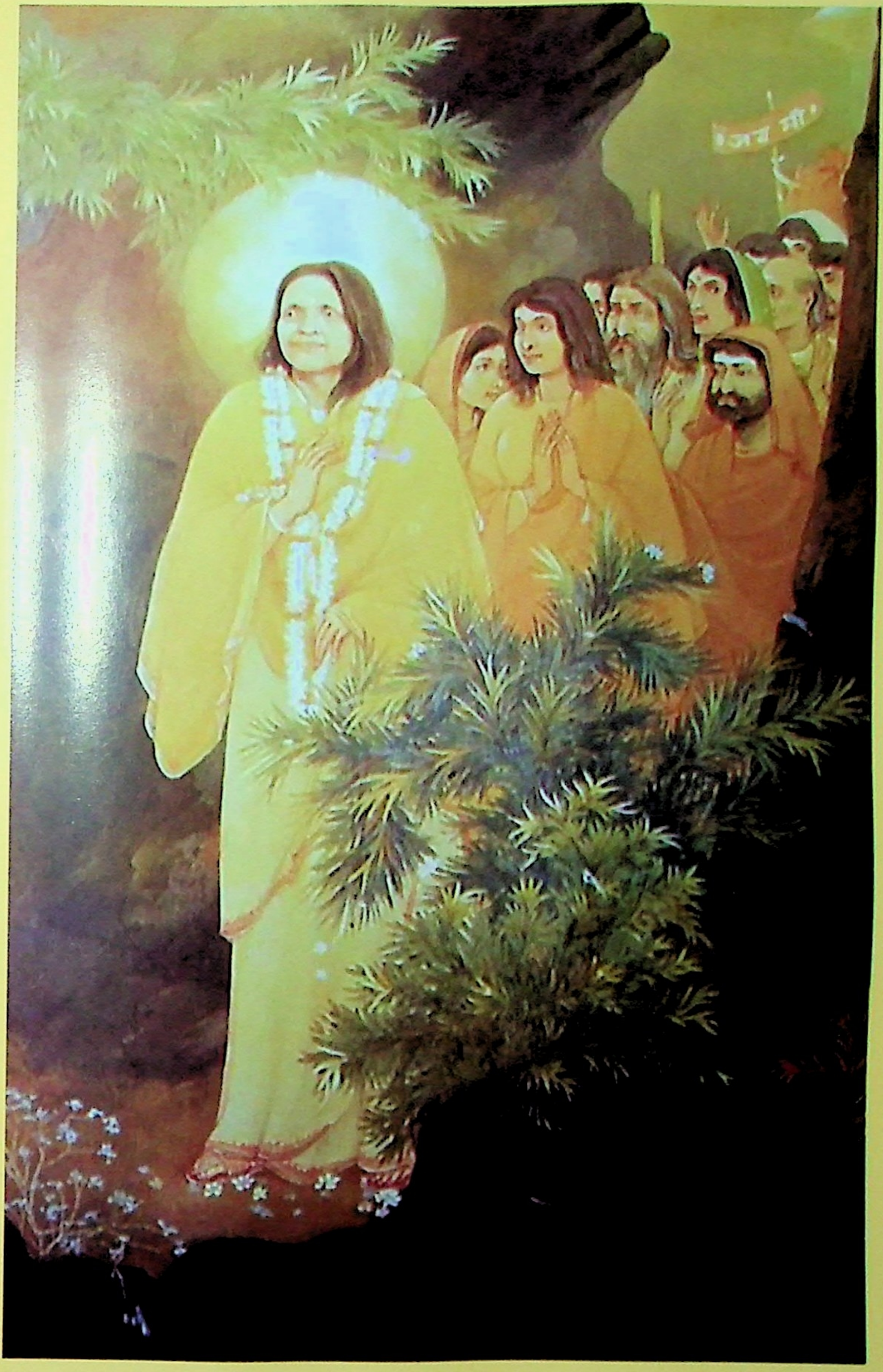

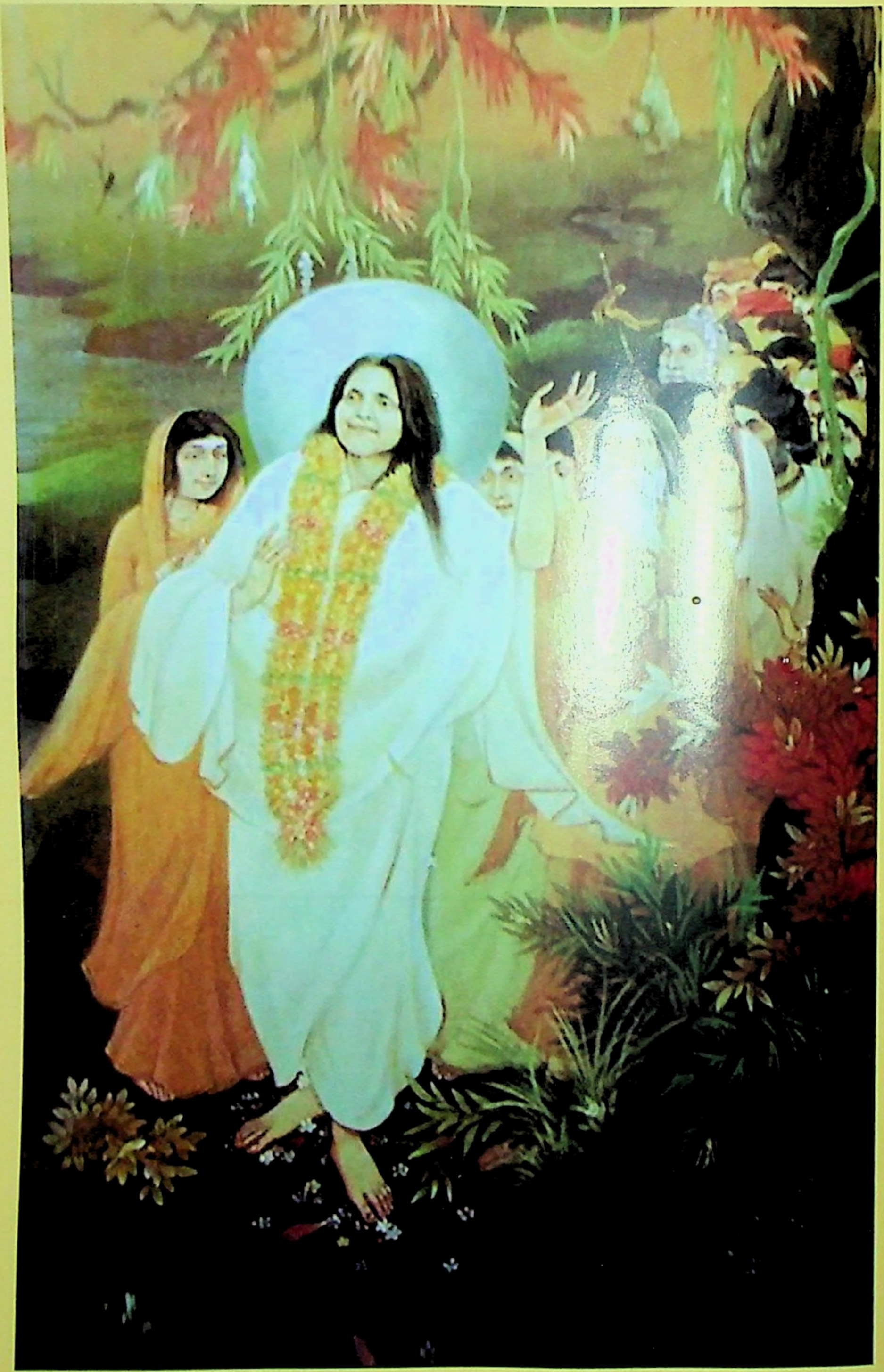

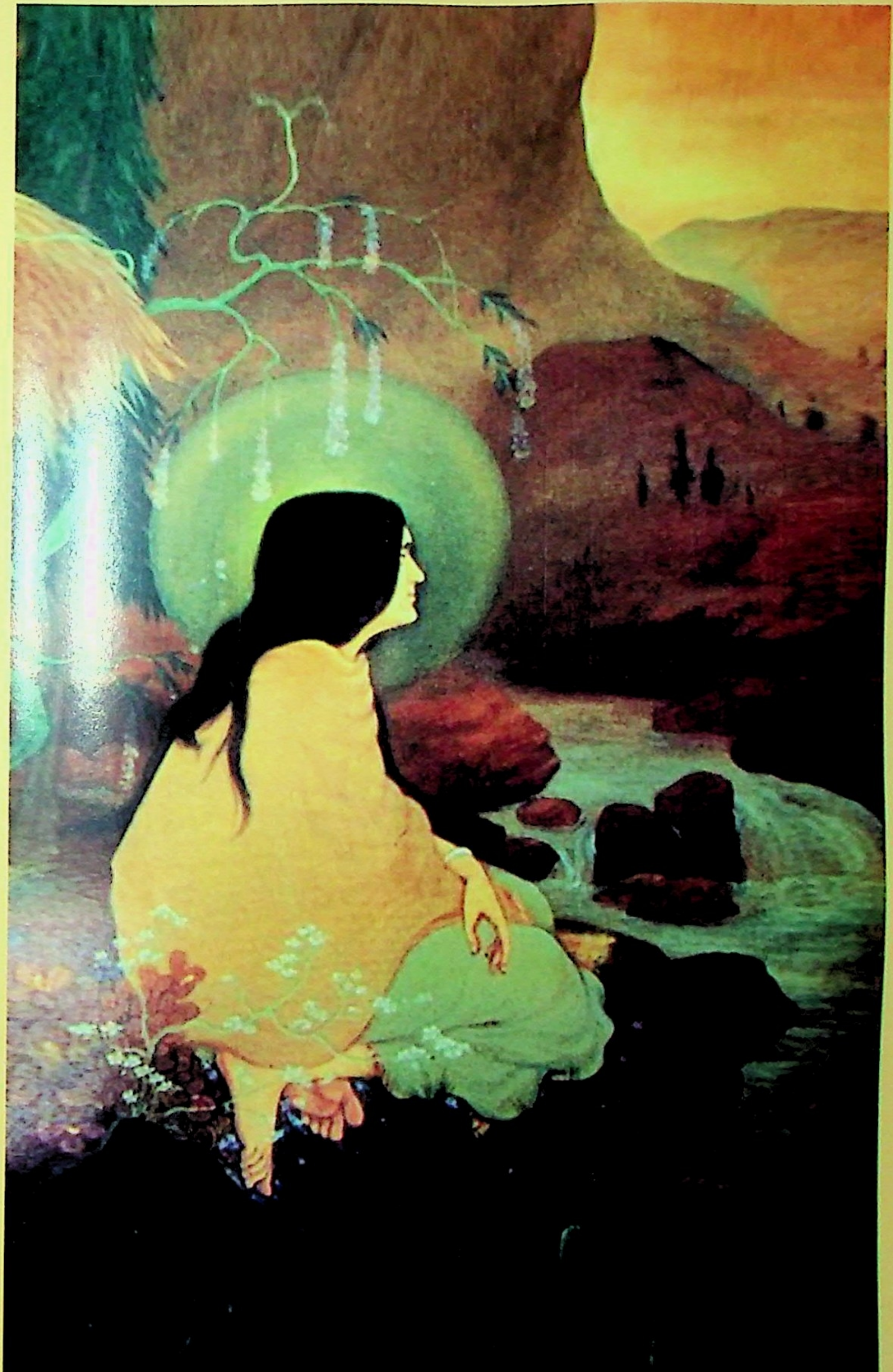

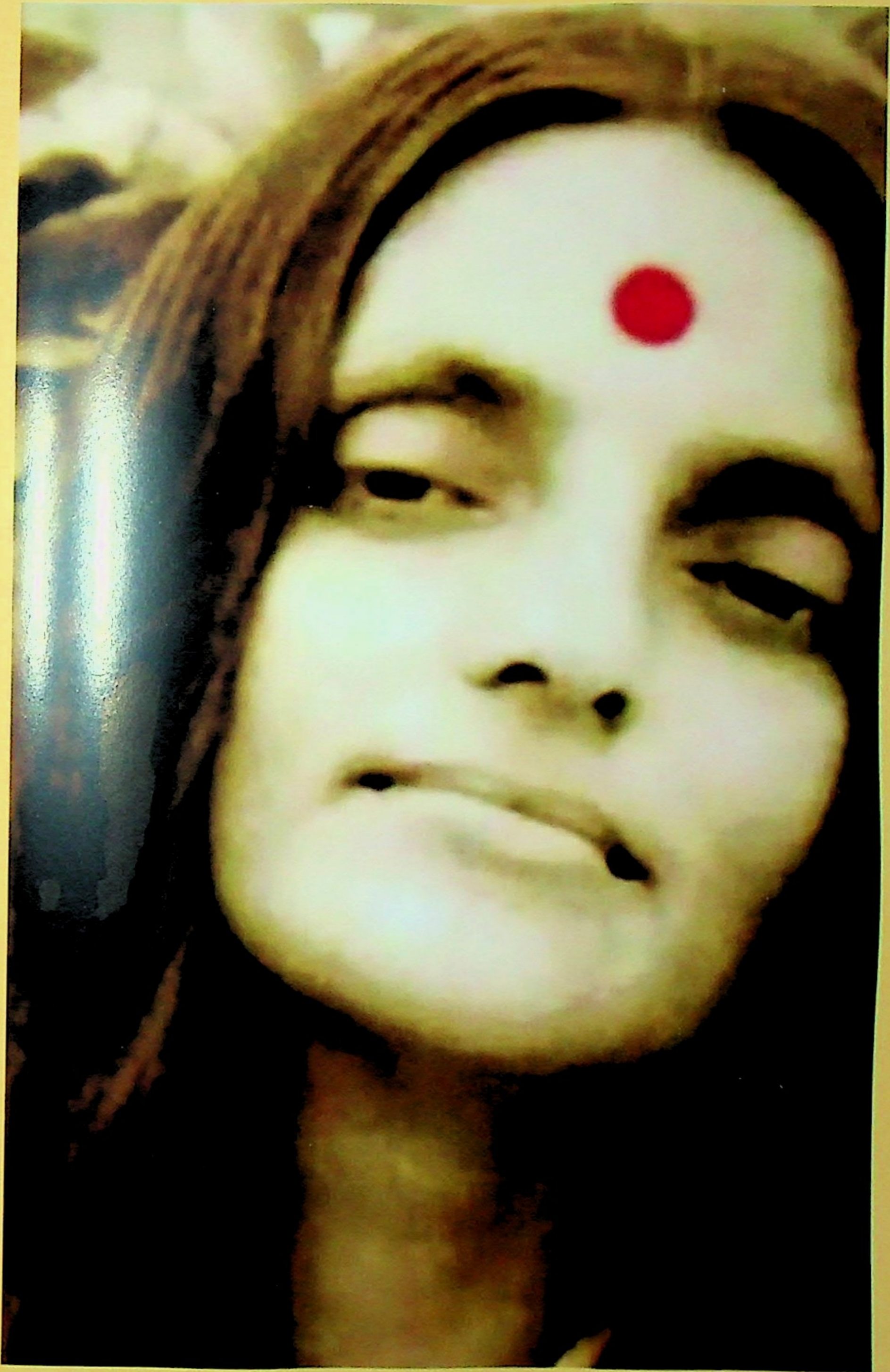

एक आश्चर्य था कि मैं पढ़ती कम थी, फिर भी मास्टरजी को पाठ सुनाते समय सब ठीक-ठीक हो जाता था। दूसरे के सामने उस प्रकार नहीं पढ़ पाती थी। एक घटना हुई किताब खोलकर देखते ही एक कविता जबानी याद हो गई। कैसे और क्यों होता था, यह मैं भी नहीं कह सकती। इन्स्पेक्टर स्कूल देखने आये, किताब खोलकर ठीक वही कविता सुनाने को उन्होंने मुझसे कहा। मैंने झट से सब पढ़कर सुना दी। यह कहकर माँ बच्चों की तरह हँसने लगी।

फिर कहने लगी कि तुम लोगों से क्या कहूँ। जैसे आसन, मुद्रा आदि अपने आप हो जाते थे, उसी प्रकार पढ़ना और गिनती पहाड़े आदि सब अपने आप हो जाया करते थे। जो मास्टरजी थे उन्होंने स्कूल के नाम के लिये क, ख क्लास से हम चार लड़कियों को निम्न प्राइमरी क्लास में भेज दिया। मैं तो प्राय: स्कूल जाती ही नहीं थी। कई दिनों के बाद स्कूल में जाकर देखा कि वे लड़कियाँ बहुत कुछ पढ़ गई हैं। मास्टरजी ने मुझे सबके साथ रखने के लिये जो पाठ उन लड़कियों को पढ़ाया, वही मुझे भी पढ़ा दिया। भगवान् की इच्छा देखो कि पढ़ना-लिखना जाने कैसे ठीक-ठीक हो जाया करता था। एक और तमाशा हुआ कि मुझ से माँ ने कह दिया था कि जहाँ अर्द्धविराम या पूर्णविराम हो वहाँ ठहरना चाहिये। माँ की आज्ञानुसार मैं एक ही साँस में वहाँ तक पढ़ जाती थी। यदि बीच में साँस टूट जाती थी तो मैं फिर शुरू से पढ़ती थी। एक साँस में पढ़ने के कारण से शरीर कष्ट के कारण टेढ़ा हो जाता था, किन्तु मैं विराम पर ही जाकर साँस लेती थी। माँ की जो आज्ञा थी इसी से ऐसा करती थी। यह बात सुनकर सभी जोर-जोर से हा-हा करके हँसने लगे। माँ भी साथ में हँसने लगी। मैंने हँसकर कहा- मालूम होता है कि तभी से प्राणायाम होने लगा है।

बालकपन की बातें बतलाते समय बीच में माँ ने बतलाया कि जब दु:ख का भाव दिखाना होता तब शरीर में वही प्रकट होने लगता, जब लज्जा दिखाने की आवश्यकता पड़ती तब शरीर में लज्जा का भाव प्रकट होने लगता था। इस प्रकार यह सब घटना हुआ करती थी। यह कहकर हँसने लगी। फिर बोली- मुझे बुद्धि-उद्धि तो थी नहीं, इसी से मुझे छुटपन से ही भोली-भाली कहते थे। सब लोग मुझे सीधी-सादी कहा करते थे।

एक दिन मैंने कलशी जल बगल में दबाकर टेढ़ी खड़ी होकर माँ से कहा- माँ तुम लोग मुझे सीधी कहते हो, देखो मैं टेढ़ी हो गई। माँ की इस बात पर सब जोर से हँसने लगे।

बंगला 1343 सन् 17 तारीख पौष- आज एक स्त्री आकर माँ को सेवादासी नामक एक माताजी के आश्रम पर ले गई। आज नौका में वन-भोजन के लिये भी जाना था। उसी समय सेवादासी माताजी के आश्रम पर भी जाना हुआ। ये सेवादासी माताजी पिछले दिन स्वयं माँ के पास आई थी और अपने आश्रम पर आने के लिये आग्रह कर गई थी। इसी से आज माँ सेवादासी माताजी की भेजी हुई स्त्री के साथ मठ में जाने के लिये बड़ालघाट पर उतरी। साथ में बहुत से लोग थे। माँ के मठ में पहुँचते ही सेवादासी ने माँ को पकड़कर गोविन्द मन्दिर के बरामदे में ले जाकर वहाँ बैठाया। मन्दिर में गौर राधाकृष्ण की मूर्ति थी। सेवादासी माताजी के पास जो स्त्रियाँ आती थी, उनसे सुना कि सेवादासी माताजी 22-23 साल से कुछ खाती नहीं हैं। चरणामृत भी नहीं पीती हैं, केवल मस्तक पर छिड़क लेती हैं। मलमूत्र भी नहीं होता था। बीच-बीच में दो-तीन दिन तक भावावेश में भी पड़ी रहती थी।

माँ से बातों-बातों में उन्होंने कहा- एक बार ठाकुरजी ने कहा कि तेरा बाहर का द्वार बन्द कर दिया है और तेरा भार मैंने लिया है। मैंने भी सब भार उनको दे दिया और बैठी अवसर की प्रतीक्षा कर रही हूँ। एक दिन में ही खाना-पीना सब बन्द हो गया। मैं आश्रम से बाहर बिना कृष्णजी के आदेश के नहीं जाती हूँ। आपके आने का समाचार सुना था, किन्तु गई नहीं। गत परसों के दिन आज्ञा हुई कि "मैं जिस शरीर में निवास करता हूँ वह आया है, तुम स्वयं जाकर उन्हें सम्मान सहित ले आओ।" इसी से कल रात को आपके पास गई थी। आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं। इतने दिन तक सूक्ष्म शरीर में दर्शन पाये, आज श्रीगोविन्द प्रकट होकर आये हैं। अब अपने मन्दिर में रहो, मैं तुम्हे जाने नहीं दूँगी।

माँ इन बातों को सुनकर बालकों की तरह हँसते-हँसते बोली- तुम्हारे मुख से आज एक समाचार सुना कि गोविन्द इस शरीर में रहते हैं। अच्छा, कितने दिन से गोविन्द इस शरीर में आये हैं? सेवादासी माताजी ने कहा जन्म से ही, आज गोविन्द आये हैं अब मैं जाने नहीं दूँगी। यह कहकर

वे जोर से माँ को पकड़कर लिपट गई। साथ ही स्त्रियों ने उनको भजन सुनाये। फिर हम सबके साथ उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया। जोर-जोर से नाम-कीर्तन होने लगा। सेवादासी माताजी, माँ को इस प्रकार पकड़े हुये थी कि छुड़ाना कठिन था। बड़ी देर तक कीर्तन चला। धीरे-धीरे सेवादासी माताजी को छुड़ा दिया गया और वे पड़ी रही। माँ उठकर खड़ी हो गई। कीर्तन के ताल पर माँ के सब अंग नाचने लगे। सब देखकर मुग्ध हो गये। वह एक अनोखा ही दृश्य था। माँ ने सबको हाथ उठाकर नाच-नाचकर कीर्तन करने का संकेत किया। माँ के उत्साहित करने पर भक्त लोग कीर्तन में आनन्द से निःसंकोच नाचने लगे। बड़ी देर तब बराबर कीर्तन होता रहा। माँ लौटने को तैयार हुई, त्यों ही कीर्तन बन्द किया गया। सेवादासी माताजी, माँ को किसी प्रकार छोड़ती नहीं थी। माँ ने उनको समझाया, मैं तो तुम्हारे पास से जाऊँगी नहीं, शरीर को छोड़ दो, तुम तो सब कुछ समझती हो। माँ के धीरज बंधाने पर उन्होंने उनको छोड़ दिया। हम लोग माँ को लेकर बाहर आये।

* * *

अट्ठावनवाँ अध्याय

सेवादासी माताजी के पास से बाहर आते ही माँ बंसीदास बाबाजी के पास गई। वे पास ही एक घर में रहते थे। लोग कहने लगे कि इस समय जाने से बाबाजी से भेंट न हो सकेगी। वे अधिक समय तक दरवाजा बन्द किये रहते हैं। सवेरे जाने से भेंट हो सकती है किन्तु हम लोग चल दिये। 12 बजे थे। माँ ने कहा- चलो तो, भेंट न भी होगी तो स्थान तो देख आयेंगे? यह कहकर माँ उस ओर चल दी। साथ-साथ हम लोग भी चल दिये। जाकर सुना कि थोड़ी देर हुई तब उन्होंने द्वार बन्द किया है, अब वे द्वार नहीं खोलेंगे। माँ कुछ बोली नहीं और दरवाजे के सामने टहलने लगी। शायद एक मिनट भी नहीं हुआ कि बाबाजी ने अकस्मात् दरवाजा खोल दिया। वहाँ के लोग आश्चर्य करने लगे और बोले कि आज तक हम लोगों ने इतने कम समय के अन्दर दरवाजा खुलते नहीं देखा। माँ जाकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। साधु का मुख दूसरी तरफ था। उस कुटिया में राधाकृष्ण की और बालगोपाल की मूर्ति थी। साधु उसी ओर मुँह किये बैठे थे। उन्होंने तम्बाकू बनाकर देवता के पास रखी और थोड़ी देर के बाद स्वयं भी लेकर खाई। माँ ने कहा- तुम लोग धीरे-धीरे नाम-कीर्तन करो। भक्त लोग माँ की आज्ञानुसार कीर्तन करने लगे तब साधु ने मुँह घुमाकर माँ की तरफ देखा और तुरन्त फिर मुँह फेर लिया। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ।

माँ खड़ी ही थी, कुछ बोलती नहीं थी। सबने कहा हम तो बाबाजी की कोई बात सुन नहीं पाये। माँ ने कहा- चुपचाप बैठे रहो, बात सुनोगे, चुपचाप कान लगाकर सुनो। सचमुच थोड़ी ही देर में साधु अपने आप ऊँची साँस लेकर बोल उठे- ''हरि-हरि''। माँ बोली- अब चलो बाबाजी ने असली बात बोल दी, ''हरि-हरि''। और क्या बोलेंगे? यह कहकर माँ सबको लेकर रवाना हुई। ब्रजेन्द्र ने कहा कि वह अटल दादा सवेरे के समय यहाँ आये थे तब बाबाजी ने ठाकुरजी की तरफ मुँह किये ही अनेक बातें की थी और गोपालजी के भजन गाये थे। उन्होंने अपने आप ''सत्संग-सत्संग'' दो बार कहा था।

जो भी हो, पूर्व निश्चय के अनुसार वन-भोजन की तैयारी हुई। हम लोग नदी के किनारे गये। अमूल्य दादा की लड़कियों और स्त्री को माँ कुछ गुप्त बातें बतायेंगी, इसलिये एक नाव अलग की गई। माँ मेरे साथ अमूल्य दादा की नाव में चली गई। मुझसे माँ ने कहा कि तुम और अमूल्य उधर बात करो, मैं स्त्रियों से बात करूँगी। बातचीत समाप्त हो जाने पर मैंने माँ से कहा- "माँ, अमूल्य दादा पूछ रहे थे कि माँ रोज गंगा पर घूमने आती हैं, इसका क्या कारण है? गंगाजी तुम्हें बुलाती हैं क्या?" माँ बोली- "क्या जानें बाबा, मैं तो कुछ जानती नहीं फिर भी जिस प्रकार तुम लोग इस शरीर को देखने आते हो उसी प्रकार गंगा भी बुलाती हैं तभी तो आना पड़ता है।" अमूल्य दादा ने कहा- फिर गंगा को फल देती हो इसका क्या कारण है? माँ हँसकर बोली- वाह, क्या तुम लोगों को फल नहीं देती? यह भी उसी प्रकार समझो।

हम लोग 1 बजे जहाँ वन-भोजन के लिये रसोई बन रही थी, वहाँ गंगाजी के बीच की बालू पर जा पहुँचे। विमला माँ और आनन्द भाई साथ में ही थे। माँ उनके साथ सदा ही विनोद किया करती थी। माँ का भोग हो गया। बाद में भक्त लोग प्रसाद लेने बैठे। एक वैष्णवी स्त्री कई रोज से माँ के पास आया करती थी। वे भी आज हमारे साथ आई थी। वे इकतारा बजाकर बड़ी मधुरता से नामकीर्तन करने लगी। हीरन दीदी (प्रफुल्ल बाबू की स्त्री) मंजीरा बजाकर कीर्तन में साथ देने लगी। यह देखकर शचि दादा बोले- माँ तुमको देखूँ या तुम्हारे साथ वालों को देखूँ? ये (हीरन दीदी) बड़ी अच्छी है मानो कीर्तन का आनन्द यही है। माँ ने कहा- बहुत मधुर है न! इस प्रकार वहाँ भोजन करने के समय ये सब बातें हुई।

वन-भोजन समाप्त करके माँ के साथ सब लोग आकर नाव में बैठे। नौक़ा में आते ही माँ ने हीरन दीदी का नाम "मीठामयी" और बासन्ती (अमूल्य दादा की स्त्री) का नाम "मधुमयी" रख दिया। फिर बोली- "यतीन्द्र बाबू (कविराज) की स्त्री वहाँ आई थी, उसका नाम है "रसमयी"। बेबी दीदी से कहा कि तुम्हारा नाम तो पहले से ही गौरीप्रिया रखा गया है। नाव में आकर त्रिगुना बाबू सुन्दर कीर्तन करने लगे। वैष्णवी माँ से माँ ने पूछा- तुम्हारा नाम क्या है? उन्होंने कहा- राधा। माँ ने पूछा- कहाँ रहती हो। कदम के नीचे। यह उत्तर सुनकर माँ और सब लोग हँसने लगे। फिर

वैष्णवी माँ ने बतलाया कि वे लगभग 50 साल से नवद्वीप में वास करती हैं किन्तु जीवन में ऐसा आनन्द उन्हें कभी नहीं मिला।

7 बजे की गाड़ी से विमला माँ तथा और भी कई लोगों के जाने की बात थी। माँ ने उन लोगों को पहुँचाने के लिये नदी के उस पार स्टेशन के पास नाव लगवाई। सब माँ को प्रणाम करके उतर गये। अमूल्य दादा को भी जाना था, इसी से वे भी अपना सामान लेकर स्टेशन पर उतर गये। लेकिन बाद में मालूम हुआ कि उनकी स्त्री जिस नाव में थी, वह नौका इधर नहीं आई। दो-तीन नाव धर्मशाला की तरफ चली गई थी। उन्हीं के साथ वह भी चली गई थी। इतनी भीड़ में किसी का कुछ पता नहीं लगता था। उसी समय शंकरानन्द स्वामी नाव लेकर अमूल्य दादा की स्त्री को लेने धर्मशाला की तरफ गये। किन्तु उनके लौटने पर गाड़ी छूट चुकी थी, इसलिये 3 बजे रात की गाड़ी से अमूल्य दादा के जाने का निश्चय हुआ। उन्हीं के साथ शचि दादा, गजेन्द्र आदि कलकत्ता जायेंगे क्योंकि बड़े दिन की छुट्टी खत्म हो गई थी। माँ सबको लेकर धर्मशाला लौट आई। रोज ही बातचीत में प्रायः 4 बजे सोना होता था। सबके चले जाने पर माँ और हम लोग लेटे। आज सवेरे ही माँ मुझसे बोली- देखो! कल रात को सोई थी तो बासन्ती को अपने सामने देखा, उसका मुख कुछ व्यस्त और उदास-सा था। बाद में पता लगा कि शंकरानन्द स्वामी जब ट्रेन पर जाने के लिये बासन्ती को लेने गये थे तब बासन्ती अकस्मात् जल में गिर पड़ी थी। पानी कम था इससे कुछ ज्यादा हानि नहीं हुई। यह बात सुनकर माँ ने कहा- मैंने आज सवेरे ही खुकुनी से कहा था, सवेरे सचमुच बासन्ती का मुख उदास देखा गया।

* * *

उनसठवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् पौष मास की 18 तारीख शनिवार– आज सवेरे माँ बैठी थी। अनेक लोग दर्शन करने आये थे। एक छोटी लड़की ने माँ को दो गाने सुनाये। बड़ा सुन्दर गाती थी। उसके बाद माँ ने बातचीत में कहा, यह जो हम लोग बैठे हैं, कोई आया और कोई चला गया, यह भी सब स्वप्न है।

फिर बातचीत में शाहबाग का प्रसंग चला तो माँ ने कहा– एक बार पीलिया रोग हो गया था। योगेश घोष ने कहा जुलाब लेने की आवश्यकता है। मैंने कहा मेरे पेट में कुछ है नहीं, खाली है। तब योगेशबाबू ने मेरे गले पर हाथ से दबाया। दबाते ही मालूम हुआ अर्थात् भीतर कुछ नहीं था, यही माँ ने कहा था। फिर बातों–बातों में माँ के खाने का नियम था वह प्रसंग छिड़ गया। माँ ने बतलाया, इस शरीर में खाने के भी कितने ही नियम हो गये। कुछ दिन तीन चावल, कुछ दिन नौ चावल और कई महीने तक बिल्कुल ही निराहार चले। याद पड़ता है कि काशी से एक पीतल का छोटा डब्बा लिया गया था। शाहबाग के यज्ञ की अग्नि में सिद्ध भात पकाया जाता था। वही कुलदा और भोलानाथजी खाते थे। उस पीतल के डब्बे में थोड़े चावल और थोड़ी तरकारी छोटी–छोटी काटकर रखकर डब्बा बन्द करके यज्ञ की अग्नि में जिस हांडी में भात पकता था, उसमें डाल दिया जाता था। भात के पकने के साथ ही उस डब्बे की चीजें भी पक जाती थी। सारे दिन कुछ खाना नहीं होता था। शाम के बाद उसी डब्बे का भोजन किया जाता था। कई महीने तक इस प्रकार चला। मैं अपनी इच्छा से उन सब नियमों का पालन करती हूँ यह बात नहीं थी। कितनी ही बार शरीर द्वारा इस प्रकार हो जाया करता है।

लगभग 11 बजे माँ स्त्रियों सहित दरवाजा बन्द करके कीर्तन का आनन्द लेने लगी। शिमला की तरह माँ सबको लेकर नाच–नाचकर कीर्तन करने लगी। बड़ी देर तक कीर्तन हुआ। इसके बाद माँ विश्राम करने को लेट गई। शाम को माँ उठकर बैठ गई। आज नवद्वीप के निवासी बहुत से लोग

माँ के दर्शन के लिये आये थे। कमरे में स्थान कम होने के कारण माँ आँगन में बैठी। फिर कीर्तन होने लगा। माँ स्त्रियों के साथ बीच में बैठ गई और मुझको आज्ञा दी कि– ''तुम पुरुषों के साथ चारों तरफ घूम-घूमकर शान्त भाव कीर्तन करो, तुम भी तो पुरुष ही हो।'' ऐसा ही किया। बीच–बीच में माँ बायाँ हाथ उठाकर संकेत द्वारा सबको कीर्तन की ताल के साथ नाचना सिखाती थी। शाम को कीर्तन समाप्त हुआ। दिन–रात खोल और करताल बजा करते थे, कीर्तन होता रहता था। नवद्वीप का स्थान था, माँ आई थी, भक्त लोग सब साथ में थे, इसी से कीर्तन का आनन्द रात-दिन चलता था। हीरन दीदी और यतीश दादा (गुहा) सपरिवार आये थे, इससे कीर्तन में काफी सुविधा हो गई थी।

रात को माँ जलपान करने बैठी। थोड़ा–सा खाकर बोली– ''हीरन को इस शुद्ध कटोरी में प्रसाद दे दो।'' मैंने वही किया। किन्तु वहाँ पर और भी बहुत से लोग थे उनमें से यूथिका (बूनी) बोल उठी– ''सारा प्रसाद हीरन दीदी ही खायेगी?'' इस बात से हीरन दीदी को कुछ लज्जा लगी और उन्होंने सबको एक–एक चम्मच प्रसाद दिया। किन्तु जब बूनी को दिया तो उसने एक चम्मच खाकर और लेना चाहा। हीरन दीदी उसको ज्यों ही और देने जा रही थी उसी समय यूथिका के सिर में दीवार इतनी जोर से लग गई कि उसकी आँखों में आँसू आ गये। माँ ने कहा– ''प्रसाद जिसको दिया जाये उसी को खाना चाहिये।'' माँ ने यूथिका के सिर पर पानी डालने को कहा और अपने हाथ से उसका सिर सहलाया।

जलपान के बाद माँ अपने छोटे आसन पर जाकर बैठ गई। अमूल्य दादा, यतीश दादा आदि माँ के पास बैठ गये। कोई भी बात उठने पर माँ झटपट उसे समझा देती थी। कीर्तन में जो कुछ लोगों को भावावेश होता है, इससे कुछ लोग समझने लगते हैं कि **श्रीगौरांग देव** और **श्रीरामकृष्ण देव** की तरह भाव हुआ, पर माँ अच्छी तरह समझा देती थी कि इन दोनों के भाव से कितना अन्तर है। माँ फिर कहने लगी कि– ''यह भी बहुत थोड़ा समझाया गया, इसमें और भी बहुत–सी बातें हैं।'' कल भी रात को इस विषय पर बहुत–सी बातें हुई। साधारणत: संसारी लोगों की भाव में क्या दशा रहती है, यह भी माँ ने समझाया। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि माँ इन बातों को कैसे समझा सकती हैं? क्या माँ को भी ऐसे ही भावावेश

होता था? यदि ऐसा न होता तो माँ कैसे इन सब बातों को समझा सकती थी? यह प्रंसग उठने पर माँ ने कहा- देखो, बात यह है कि जब नदी के बीच में ठहरा जाये तभी नदी के चारों तरफ की वस्तु देखी जा सकती है। एक बात और है। एक व्यक्ति कविता अच्छी लिख सकता है या लैक्चर दे सकता है किन्तु जिस पुस्तक को उसने पढ़ा है उसमें न तो लैक्चर ढूँढ़ने पर मिलता है न कविता। यह भी उसी प्रकार है।

बात करते-करते माँ लेट गई। कीर्तन आरम्भ हो गया। माँ लेटी-लेटी सुन रही थी। वैष्णवी माताजी भजन गाने लगी। अकस्मात् माँ उठकर खड़ी हो गई और वैष्णवी माताजी के साथ नाचने लगी। वैष्णवी माताजी अपने को भूलकर माँ के साथ नाचने लगी। माँ को इस प्रकार नाचते देख सभी उठ खड़े हुये और माँ के चारों तरफ घूम-घूमकर कीर्तन करने लगे। माँ कभी तो बालकों की तरह बीच-बीच में जाकर छिप जाती थी, कभी बीच में खड़ी होकर हाथ हिलाती थी। थोड़ी देर तक इस प्रकार लीला करने के बाद माँ बैठ गई और कीर्तन बन्द हो गया।

माँ बैठकर हँसते-हँसते बोली- ये अभी क्या काण्ड हो गया। यह कहकर खूब हँसने लगी। प्रबुद्धानन्दजी स्वामी बोले- माँ, हम लोगों को भी जाने क्या हो गया। सभी नाचने लगे। हम लोग तो सदा आप ही के साथ हैं। माँ ने कहा- यदि यहाँ कोई अपरिचित व्यक्ति होता तो यह समझता कि अवश्य ही इन्होंने कुछ खा लिया है। यह कहकर फिर हँसने लगी। बाद में बातचीत में कहा कि अपरिचित कोई नहीं था इसी कारण से इस प्रकार हो गया। यही सब बातें हो रही थी। माँ गाना गाने लगीं -

(बंगला गान का अनुवाद)

यह कौन नया योगी है, आया नवद्वीप के अन्दर।
विक्षिप्त हुई बलिहार भई, लखि रूप-माधुरी सुन्दर।।

यह मधुर मधुर मोहक ध्वनि, योगी के मुख से निकसी।
इस जीवन में कभी न ऐसी, अमृतमय वाणी सुन विकसी।।

निर्मल उज्ज्वल गंगा सी, यह वाणी मृदु गुंजार रही।
अपने चरणों में अनजाने, यह प्रेम भक्ति संचार रही।।

नूतन किशोर वपु ब्रह्मदेव, अति सुन्दर सब मन मोहक है।

त्रैलोक्य मध्य ऐसा अनुपम, देखा न कभी ये जैसे है।।

''रा'' शब्द उच्चारन करते ही, झट नीर नयन से बहते।
तन धूल-धूसरित हो जाते, पृथ्वी पर पड़ ''धा'' के कहते।।

योगी की मधुर छवि लखकर, ये नेत्र हमारे मुग्ध हुए।
योगी के प्रेम पिंजरे में, ये प्राण हमारे बद्ध हुए।।

पग पीछे उठ नहिं पाते हैं, इस प्रेम पिंजरे में फँसकर ।
ये प्राण समर्पित भी हो गए, इन चरण कमल भीतर धँसकर।।

घर बार सभी अब भूल चुके, फिर आना जाना रहा कहाँ।
अब तो इन चरण निकट बसकर भिक्षा पाना जो मिले जहाँ।।

कल जो लोग चले गये थे उनमें से ब्रजेन्द्र और त्रिगुना दादा की माँ आज फिर आ गये। अवनी आबू आज अपनी माँ को लेकर चले गये। माँ ने विन्ध्याचल में एक भजन खेल-खेल में बना दिया था (जीव का भाग्य एवं वैराग्य इत्यादि उस गाने में थे)। एक सज्जन को देकर उस भजन को छपाया गया।

फिर पहली बार जमशेद्पुर जाने का प्रसंग चला। माँ बोली- ''यही जो आज अपरिचित व्यक्ति की बात हुई, वही बतलाती हूँ कि जमशेद्पुर में सब लोग दिनभर कारखाने में काम करते थे और रात को प्राय: 3 बजे तक मेरे पास चुपचाप बैठे रहते। एक व्यक्ति अंधेरे में चुपचाप बैठा था। वह उठकर आया और कहने लगा- ''देखो बेटी! क्या तुम बता सकती हो कि ये इतने आदमी सारे दिन तो कारखाने में काम करते हैं, 10 मिनट भी चुप नहीं बैठते और रात को 3 बजे तक चुपचाप तुम्हारे पास बैठे हैं, तुमने उन्हें कोई गोली खिला दी है? मैंने उसी दम हँसकर कहा- पिताजी! तुमने भी तो शायद वही गोली खा ली है, नहीं तो तुम कैसे बैठे हो? इस बात से सभी हँसने लगे।'' अब की बार जमशेद्पुर में एक व्यक्ति बड़ी देर तक माँ को खड़े-खड़े देखता रहा। माँ ने पुकारा- पिताजी! तब उस व्यक्ति ने कहा- माँ यदि मैं तेरा पिता होता तो ऐसी लड़की के घर पड़े रहने में भी अपमान न समझता। तेरे माँ-बाप ने कैसे तुझे छोड़ा? यह कहकर वह चला गया। यही सब बातचीत होने के बाद स्त्रियों ने माँ के पास कीर्तन और आरती की। आज भी प्राय: साढ़े तीन बजे सोया गया।

सभी को आश्चर्य था कि माँ इस प्रकार दिनभर बराबर बोलती और लीला करती रहती हैं किन्तु जरा भी थकती नहीं। इसी बीच एक और घटना हुई। एक दिन माँ मन्दिर में घूम रही थी कि अकस्मात् थाने में जा पहुँची। थाने के दरवाजे पर माँ को अपने दल के साथ आते देखकर वहाँ के दारोगा नरेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय माँ को आदर से भीतर लिवा ले गये। एक पेड़ के नीचे चबूतरे पर माँ को बैठाया और कहा- ''माँ, मैं कुछ देर पहले सोच रहा था कि जब सखी माँ ने पुकारा तो माँ वहाँ जा पहुँची थी। मैं भी स्मरण करता हूँ देखें आती हैं या नहीं, यही बात सोचते-सोचते ही आप आ गई।'' नरेश बाबू आज अपने को बड़ा भाग्यवान् मानने लगे। इतने लोगों के साथ आज माँ को थाने के भीतर जाते देखकर रास्ते का एक-एक व्यक्ति कहने लगा कि माँ को दलबल के साथ थाने में क्यों पकड़ लिया गया है। इस बात पर सब हँस पड़े। माँ से यह बात बताने पर माँ ने कहा- कुछ मिनटों के लिये दारोगा पिताजी का मन चुरा लिया था और इसी कारण पकड़कर लाई गई हूँ। इस बात से सभी बड़े आनन्दित हुये। उस दिन शाम को दारोगाजी सपरिवार फल इत्यादि लेकर धर्मशाला में आये और उसके बाद से सदैव आने लगे।

* * *

साठवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् पौष मास की 19 तारीख रविवार– आज बरेली से दादा आ गये थे। हीरन दीदी माँ से बोली कि माँ, अपर्णा देवी (सी.आर. दास की लड़की) के स्वप्न के विषय में जो सुना है वह बतलाती हूँ, सुनो।

एक बार अपर्णा देवी के पति सुधीर राय बहुत बीमार थे। डा. विधान राय उनकी दवा करते थे। जिस दिन उनकी तबियत ज्यादा खराब थी उस दिन विधान राय उन्हीं के घर पर थे। आधी रात को अपर्णा देवी ने तुमको स्वप्न में देखा मानो तुम्हारा मुख बड़ा उदास है। उसके बाद रात्रि के अन्तिम पहर में फिर स्वप्न में देखा, एक प्रकाश के बीच में मानो तुम्हारा बड़ा प्रफुल्लित मुख है। तुम उससे कह रही थी कि– ''तुम्हारी बूँटीदार साड़ी है, सवेरे स्नान करके उसी साड़ी को पहनकर रोगी की सेवा करना।'' अपर्णा देवी ने वही किया और उसके बाद से ही बीमारी कम होने लगी।

कल रात को माँ ने हीरन दीदी तथा बेबी दीदी को कीर्तन के सम्बन्ध में बहुत से उपदेश दिये। ढाका में स्त्रियाँ आश्रम पर हर रविवार को आकर कीर्तन करती हैं। माँ ने कहा– कीर्तन आरम्भ करने के पहले और कीर्तन के अन्त में कुछ देर आँखे बन्द करके ध्यान करना अच्छा होता है। कीर्तन के बाद ध्यान के पश्चात् घर जाने से पहले आपस में आलोचना करनी चाहिये कि ध्यान के समय किसके मन में क्या भाव आया था। यह भी कहा था कि, कीर्तन के समय सब ऊपर को दृष्टि करके गोलाकर घेरा बनाकर शान्त भाव से घूमें तो शरीर में एक विशेष क्रिया होती है।

आज सवेरे प्रबुद्धानन्द स्वामी माँ से एकान्त में बात करना चाहते थे, इसलिये उनके दरवाजा बन्द कर लेने पर वहाँ उपस्थित लोग बहुत चिड़ गये। वे माँ को एक घड़ी भी छोड़ना नहीं चाहते थे। वहाँ के कई आदमी बन्द दरवाजे के सामने खड़े हो गये और बोले जल्दी दरवाजा खोल दो नहीं तो हम दरवाजा तोड़ डालेंगे। यह कैसा अन्याय है। आपने हमारी माँ को बन्द कर रखा है। अन्त में विवश होकर प्रबुद्धानन्द स्वामी ने दरवाजा

खोल दिया और हाथ जोड़कर उनसे क्षमा माँगी। माँ को धर्मशाला के बरामदे में लाकर बैठाया गया। सामने बड़ा भारी खुला मैदान था, उसके बाद श्री गंगाजी थी। बहुत से लोग माँ के पास बैठे थे। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया, माँ का नाम लेने से ही कल्याण हो सकता है? माँ ने कहा- जब तक नाम रूप है तब तक नाम ही सब कुछ है। देखो न, एक बार नदी में जाकर मिल जाने से सोते फिर नदी द्वारा समुद्र में ले जाये जाते हैं, उन्हें कुछ नहीं करना पड़ता। किन्तु पहले तो परिश्रम करना ही होता है। इसी प्रकार पहले तो नाम का सहारा लेना ही होगा। तुम लोग अपनी बुद्धि से सब काम तो कर सकते हो और परमार्थ के लिये यह कहकर बैठ जाना कि ''ईश्वर करायेगा तभी करेंगे'' यह ठीक नहीं है।

एक व्यक्ति ने कहा- ''माँ, मैं इस समय उठूँ।'' माँ बोली- ''उठो, किन्तु देखो झुकना नहीं, मैं तो कहती हूँ सभी उठो।'' माँ अक्सर यह बात कहा करती हैं।

प्रबुद्धानन्द स्वामीजी से दृश्य और द्रष्टा के विषय में बातें हो रही थी। माँ कह रही थी- ''यदि किसी को दृश्य शून्य करके द्रष्टा पर दृष्टि रखने का उपदेश दिया जाये तो समझना चाहिये कि जगत् के स्थूल दृश्यों के ऊपर जाना पड़ेगा, क्योंकि विचार करने से समझ में आता है कि वास्तव में दृश्य छूट नहीं सक़ता। यदि कोई दृष्टि को संयमित कर ले अथवा रोक ले फिर भी दृश्य तो रहेगा ही। द्वैत जगत तो चिन्तन करने से ही है। इसी प्रकार दृश्य भी है। इसलिये देखा जाता है कि जो-जो ब्रह्म की कल्पना करते हैं। सो अहंकार और बुद्धि की सहायता से ही कर सकते हैं।'' इसके बाद इच्छा के सम्बन्ध में प्रसंग चला। माँ कहने लगी- ''इच्छा-शून्य अवस्था के लिये ही सब चेष्टा करते हैं। अपनी इच्छा का त्याग किये बिना शान्ति नहीं मिलती। शान्ति तभी होगी जब अपनी इच्छा को उसकी इच्छा के साथ मिला दिया जाये। तब उसकी इच्छा ही अपनी इच्छा बन जाती है और इच्छा के लिये कोई अशान्ति नहीं हो सकती।''

त्रिगुना दादा कीर्तन में ''तुम मधुर हो'' इत्यादि गाने लगे और सब स्तब्ध सुनते रहे।

माँ भक्तों को लेकर गंगाजी के किनारे गई। नाव में बैठकर प्रत्येक भक्त की व्यक्तिगत बात सुनने लगी। प्राणकुमार बाबू और उनकी स्त्री बात

कर रहे थे, तब नाव घाट से काफी दूर चली गई थी। उधर से एक बड़ी नाव आ रही थी। उसमें पुलिस भी थी। जब वह नाव माँ की नाव के बिल्कुल पास आ गई तो बड़ी नाव के मल्लाह ने पुकारकर कहा- कि तुम अपनी नाव किनारे हटा लो। हाकिम की नाव आ रही है। किन्तु वह मल्लाह नहीं जानता था कि जो छोटी नाव उसके सामने हैं उसमें जो है वह हाकिम की भी हाकिम है और उसी के दर्शन करने को उसकी नाव के हाकिम सपरिवार आये हैं। वे सज्जन लोग कृष्णनगर के पुलिस ऑफिसर थे। माँ का नाम सुनकर सपरिवार दर्शन करने को आये थे। बहुत ही नम्र और भक्त लोग थे। उनकी नाव घाट पर पहुँची। साथ-साथ ही माँ की नाव घाट पर लगी। वहीं पर माँ के दर्शन पाकर उन्होंने बड़ा आनन्द प्रकट किया। माँ सबको लेकर धर्मशाला में लौट आई।

उस दिन त्रिगुना दादा ने माँ के भोग का प्रबन्ध किया। आज कृष्णनगर के डिप्टी पूर्णचन्द्र सेन महाशय भी माँ के दर्शन करने सपरिवार आये। भक्त लोग आनन्द से मिलकर प्रसाद लेने को बैठे। अकस्मात् माँ सबको प्रसाद पाते देखने को आ गई और एक आठ-नौ वर्ष के बालक के साथ खाने को बैठ गई। बालक ने माँ को खिला दिया और माँ ने भी उसे खिला दिया। बाद में एक-एक करके भक्त लोग माँ के हाथ से प्रसाद लेने लगे। कृष्णनगर के पुलिस ऑफिसर ने भी बालकों की तरह माँ के साथ प्रसाद खाना चाहा। माँ ने उसको प्रसाद खिला दिया और अपना हाथ उनके मस्तक पर फेरा। इससे वे सज्जन पागल की तरह नाचने लगे और कहने लगे कि मैं प्रसाद पा चुका, अब कुछ नहीं खाऊँगा। मैंने मन-ही-मन बहुत अभिलाषा की थी कि माँ मेरे माथे पर जरा-सा हाथ रखे दे। अन्तर्यामिनी माँ ने मेरे मन का भाव समझकर मेरी प्रार्थना पूरी कर दी। पूर्ण बाबू की स्त्री का सुन्दर भाव देखकर माँ ने उसका नाम "पगली" कहकर पुकारा।

भोजन के बाद वैष्णवी माँ के यहाँ जाने का निश्चय पहले ही हो चुका था। तीन या चार बजे माँ सबको लेकर चल पड़ी। गंगाजी के किनारे-किनारे चल रही थी। साथ में निताई नाम का एक बालक था। वह खोल बहुत सुन्दर बजाता था। साथ में भी लिये चल रहा था। रास्ते में उसने जैसे ही बजाना शुरू किया, यतीश दादा, अवनी दादा, त्रिगुना दादा, बृजेन्द्र, नीतिश आदि नाम कीर्तन करने लगे। **"निताई गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे**

राम'' यही कीर्तन हो रहा था। माँ ने स्त्रियों से कहा- तुम लोग क्यों चुप हो, इनके साथ कीर्तन करो। माँ की आज्ञा से स्त्रियों ने भी प्रसन्नता से साथ दिया। देखते-देखते दिन डूबने लगा। माँ के साथ बहुत से लोग थे। स्थान, काल और पात्र सभी अनुकूल मिल गये थे। बड़े आनन्द से भक्त लोग गाते हुए चल रहे थे। माँ बायाँ हाथ उठाकर नाम ताल पर हिला रही थी। अस्त होते हुये सूर्य की आभा माँ के मुख पर पड़ रही थी। एक तो निरन्तर कीर्तन से माँ के मुख पर अनोखी शोभा फूट पड़ी थी, उस पर सूर्य का प्रकाश पड़ने से वह सौ गुनी बढ़ गई थी। भक्त लोग माँ का अनोखा भावमय रूप देखकर कीर्तन में मतवाले हो गये। यह दृश्य देखकर वहाँ के आसपास के लोग भी दल-के-दल आकर कीर्तन में शामिल होने लगे। देखते-देखते एक विराट संकीर्तन का दल इकट्ठा हो गया। 450 वर्ष पहले **श्रीगौरांग देव** के नगर-कीर्तन की लीला की कथा बहुत से लोगों के मन में जागृत हो उठी। इसी प्रकार कीर्तन करते-करते सब लोग माँ के साथ पहले वैष्णवी माँ के घर फिर **श्रीमन्महाप्रभु** के यहाँ गये। श्रीमहाप्रभु के यहाँ जाते समय रास्ते में माँ के संकेत से एक संतरे बेचने वाले से उसकी डलिया सहित सारे संतरे खरीदकर रास्ते में लुटा दिये गए। बहुत से लोग रास्ते में बताशे लुटाने लगे। श्रीमहाप्रभु के आंगन में घूम-घूमकर कुछ देर कीर्तन हुआ।

बृजेन्द्र ने नवद्वीप पहुँचते ही माँ से कहा था- ''श्रीगौर के देश में आये हैं, क्या अब श्रीगौर को दिखाओगी नहीं।'' बृजेन्द्र को उस बात की याद नहीं थी किन्तु इतनी भीड़ में बृजेन्द्र के पास पहुँचकर माँ उसे पुकारकर बोली- ''तुम्हीं ने तो गौर को देखना चाहा था।'' यह कहकर श्रीगौरांग मूर्ति की तरफ उँगली से संकेत करके कहा- ''ये देखो गौरांग।'' इस बात से बृजेन्द्र को अत्यन्त आनन्द हुआ।

माँ महाप्रभु के मन्दिर में सोने के गौरांग मन्दिर की तरफ चली। संध्या अधिक हो चली थी। रास्ते में बड़ा अन्धकार था। इस बार माँ दोनों हाथ उठाकर नृत्य करती चलने लगी। इससे एक ऐसे भाव का समावेश हो गया कि स्त्रियों का दल भी स्वाभाविक लज्जा छोड़कर हाथ उठा-उठाकर ऊँचे स्वर से कीर्तन करने लगा। थोड़ी देर बाद अपनी स्वाभाविक तेज चाल से चलने लगी। अन्धकार के कारण बाहर लोग यह दृश्य ठीक तरह से देख

नहीं पाये, किन्तु उपस्थित भक्त लोगों के लिए यह घटना चिरस्मरणीय हो गई। माँ सोने के गौरांग मन्दिर में जा पहुँची। बड़े भारी आँगन में कीर्तन खूब जम गया। माँ भी बीच में कीर्तन में साथ देती रही। फिर ऊपर की सीढ़ी पर जाकर स्थिर और शान्त भाव से खड़ी हो गई, मानो कीर्तन देख रही हों। फिर आकर कीर्तन में घूमने लगी। बीच-बीच में माँ भावावेश में दोनों हाथ उठाकर ऐसे भाव से झूमती-झूमती घूम रही थी कि डर मालूम होता था कि कहीं पृथ्वी पर गिर न पड़े। इस प्रकार कुछ समय बीतने के बाद माँ एकदम सबके बिना देखे ही बाहर निकल पड़ी। उसी समय सबको ध्यान आया कि माँ बाहर चली गई हैं। सब जल्दी-जल्दी बाहर आये। सभी आगे माँ के पास जाना चाहते थे, इससे बड़ी धक्का-मुक्की हुई। सड़क पर आकर सब लोग माँ के पास साथ हो गये।

श्रीवास के आंगन में भी कुछ देर तक कीर्तन करने के बाद माँ धर्मशाला लौटने के समय रास्ते में एक बरतन वाले की दुकान पर गई और बोली- पिताजी, हमें छोटी-छोटी दो कलशी दोगे? दुकानदार चकित होकर दो कलशी ले आया और माँ के हाथ में दे दी। माँ उसको बगल में दबाकर बोली, हम गोपी हैं। कुछ दूर जाने पर रास्ते में दो संन्यासियों को देखकर माँ उनसे बोली- पिताजी दोनों कलशी आप लोग ले लो, इसमें पीने का जल रखना। यह कहकर माँ ने वे दोनों कलशी उनके हाथ में दे दी। वे भी चकित हो गये। माँ ने उनके शरीर पर हाथ फेरा। इस प्रकार अनेक लीला करते-करते माँ सबके साथ धर्मशाला में आई। कीर्तन बन्द हो गया। माँ सबसे बोली- ''तुम लोगों ने आज क्या खेल कर डाला! इस प्रकार कीर्तन होगा, कहकर तो बाहर कीर्तन किया नहीं जाता? आज घटना चक्र से हो गया। एक व्यक्ति ने कहा- ''इस प्रकार स्त्री-पुरुष मिलकर नगर-कीर्तन करेंगे किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।''

इसके बाद माँ बरामदे में गई। वहाँ बृजेन्द्र को अकेले टहलते देखकर बोली- ''तुम्हारी इच्छा तो पूरी हो गई न? तुम मेरे साथ ही तो महाप्रभु के मन्दिर में तथा अन्य दूसरे मन्दिरों में जाना चाहते थे। इसी निमित्त तुम्हारे लिये आज इतना खयाल हो गया। इसके पहले भी एक दिन सबके साथ मन्दिरों में जाना हुआ था। उस समय तुम कलकत्ते में थे। प्रत्येक मन्दिर में जाने पर तुम्हारी बात याद आई थी। मैंने खुकुनी से कहा था कि

बृजेन्द्र की मेरे साथ घूमने की विशेष इच्छा थी, इसी से उसकी याद आती है। बृजेन्द्र के आने पर याद रखना उससे यह बात कहनी होगी। मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं, तुम लोग अपने भाव से जैसा करा लेते हो वैसा हो जाता है।'' बृजेन्द्र यह सब बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और भक्ति सहित माँ के चरणों में प्रणाम किया। माँ हँसकर बोली– ''और एक प्रणाम मिल गया।''

* * *

इकसठवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् पौष मास की 20 तारीख– आज सवेरे माँ उठकर बैठी थी। भक्त लोग आकर माँ के पास बैठ गये। कल रास्ते में जिन दो संन्यासियों को माँ ने दो कलशी दी थी, उनका माँ को अकस्मात् ध्यान आ गया। थोड़ी ही देर में दोनों संन्यासी आकर उपस्थित हो गये। आज भी माँ शाम को सबके साथ नाव में घूमने गई। प्रफुल्ल बाबू की स्त्री ने स्त्रियों के साथ मिलकर नाम–कीर्तन किया। शाम तक घूमकर माँ धर्मशला लौट आई। अनेक लोग आये, बातचीत हो रही थी। फिर कीर्तन आरम्भ हुआ। हीरन दीदी ने नाम–कीर्तन आरम्भ किया। साथ में यूथिका, लतिका, शैफाली, बिजली, अन्नू आदि लड़कियों ने भी कीर्तन किया।

वहीं वैष्णवी माँ भी आई थी। नाम–कीर्तन होने लगा। माँ भी उठकर खड़ी हो गई। वैष्णवी माँ ने आकर माँ को मुकुट और माला पहनाकर सजा दिया। माँ ने थोड़ी देर बाद सब खोल डाला, केवल माला गले में रह गई। माँ हाथ की ताली बजाकर कीर्तन करने लगी। सब स्त्रियाँ संकोच छोड़कर कीर्तन करने लगी, इससे और भी आनन्द आने लगा। ज्योतिष दादा आदि सब लोग छत पर थे। माँ ने उनको भी बुलाकर कीर्तन में बैठाया। रात के 11 बजे गये। बड़ी देर तक कीर्तन होता रहा। इसी बीच एक पगली के साथ तुरियानन्दजी का झगड़ा होने लगा। माँ ने उस पगली के गले में अपनी माला पहनाई और उसका प्यार करके उससे कीर्तन करने को कहा। पगली खूब नाराज थी किन्तु माँ के व्यवहार से वह भी प्रसन्न होकर नाचने लगी। थोड़ी देर में कीर्तन बन्द हो गया। बातचीत–सत्संग में रात के 2 बज गये।

आज त्रिगुना दादा अपनी माँ को लेकर रात को 3 बजे की गाड़ी से रवाना हो गये। माँ लेटी थी किन्तु 3 बजे उठकर हीरन दीदी को लेकर गंगाजी की तरफ जाकर घूम आई। फिर धर्मशाला आकर सबके कमरों में जाकर घूमकर सबको देख आई। चार बजे बिछौने पर आकर बैठी किन्तु सोई नहीं। पाँच बजे जरा–सा सोई। इन्हीं दिनों एक दिन कहा था "एक

खूब साफ रंग के गोरे लोग के रक्त गिरते देखती हूँ।'' मंगलवार 21 तारीख को माँ सवेरे उठकर गंगाजी पर नाव में गई। ज्योतिष दादा और प्रबुद्धानन्द स्वामी को अपनी कुछ निजी बातें करनी थी, उन्हें सुना। दिनों-दिन लोगों की इतनी भीड़ बढ़ती जाती थी कि माँ के पास पहुँचना मुश्किल था। नाव में चले जाने पर दल-के-दल लोग किनारे पर घूमा करते थे। कितने प्रेम से वे लोग माँ की प्रतीक्षा करते रहते थे। वे कहते थे कि माँ को कहीं जरा-सा खड़ी-खड़ी ही देख लें। माँ वापिस आकर जरा देर लेटी। ज्योतिष दादा माँ की आज्ञा से आज ही कलकत्ते चले गये। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था इसलिये एक बार अच्छी तरह डॉक्टर को दिखा आयेंगे। हरिसभा की एक सदस्या ने आकर माँ से शाम के समय अपने स्थान पर आने का अनुरोध किया। सारे दिन कीर्तन हुआ। माँ का भोग हुआ। दूर-दूर से लोग आये थे। कमरे में बड़ी भीड़ हो गई थी। आज माँ का फोटो खींचा गया। माँ ने प्राणकुमार बाबू की स्त्री की गोद में बैठकर फोटो खिंचवाई। माँ ने उनका नाम ''योगिनी माँ'' रखा था। शाम को जगह कम होने के कारण माँ बरामदे में जाकर बैठी। कहने लगी- ''नाम कीर्तन करो। चुपाचाप बैठना ठीक नही।'' स्त्रियों ने फिर कीर्तन शुरू किया।

इसी बीच एक पण्डित माँ से बात करने आये। उन्होंने जो प्रश्न किया उसका संक्षेप में यही भाव था कि, आप किस सम्प्रदाय की हैं? माँ हँसकर बोली, सबके गुरु होते हैं इसी से सम्प्रदाय होता है। मेरी तो कहानी यही है कि बालकपन में माता-पिता गुरु थे। फिर एक व्यक्ति के साथ पाणिग्रहण हुआ वही गुरु हुआ। इसके बाद देखती हूँ कि आप सभी लोग यहाँ तक कि वृक्ष, बेल-पत्ते तक सभी गुरु हैं। पंडितजी ने उत्तर दिया- किन्तु सबका ही पूर्वजन्म का एक संकल्प होता है उसके अनुसार ही साधन-भजन की पद्धति होती है। माँ ने कहा- यह तो बिल्कुल सत्य है परन्तु इस शरीर की तो यही बात है कि बचपन में जैसा भाव था, ठीक वैसा ही अब भी है। कुछ भी अन्तर नहीं जान पड़ता, तुमको क्या बताऊँ पिताजी। इस समय मैं किस सम्प्रदाय की हूँ। तुम्ही समझ लो। यह कहकर माँ हँसने लगी। थोड़ी देर बात करने के बाद पंडितजी चले गये। किन्तु शायद माँ के इस भाव को समझ नहीं पाये। थोड़ी देर के बाद ही हरिसभा की सदस्या आकर माँ को लिवा ले गई। बहुत से लोग भी साथ चले। वहाँ पर

श्रीगौरांग देव की तथा शिव-पार्वतीजी की मूर्ति थी। सबने मिलकर वहाँ थोड़ी देर कीर्तन किया। फिर माँ सबके साथ धर्मशाला लौट आई।

आज शाम को चार बजे गाड़ी से सबके लौटने की बात थी। बहुत-सी बातों के पश्चात् माँ ने कहा- रात को 3 बजे की गाड़ी से सब लोग जाना। उन लोगों ने पूछा कि रात को तीन बजे की गाड़ी से जाने की क्या आवश्यकता है? तब तो कल बारह बजे की गाड़ी से जाना होगा। इधर माँ दो दिन से ऐसा भाव प्रकट कर रही थी कि भोलानाथजी के आने पर ही जाना होगा। अस्तु, जो समाचार मिले थे उनसे मालूम होता था कि भोलानाथजी के आने में देरी है। लेकिन माँ कहती थी कि भोलानाथजी के आने की गाड़ी का समय क्या आज निकल गया है? इत्यादि-इत्यादि। सचमुच ही आज संध्या के बाद ही भोलानाथजी आ गये, वे बड़ी जल्दी-जल्दी करके आये थे, शरीर भी स्वस्थ नहीं था। किन्तु थोड़ी ही देर बाद माँ, भोलानाथजी से बोली- चलो न, आज ही 3 बजे की गाड़ी से हम लोग कलकत्ता जायें, फिर जो होना होगा वह होगा। यह कहकर भोलानाथजी को राजी कर लिया। वे कहने लगे- तुम्हारे पिताजी अकेले आये हैं, वृद्ध अवस्था है, उनसे पूछो। इस पर माँ बच्ची की तरह जाकर अपने पिताजी को पकड़कर बोली- पिताजी भोलानाथजी की राय हो गई है, अब केवल आपकी राय हो जाने से जाना हो सकता है। यह कहकर ऐसा भाव प्रकट किया कि दादा महाशय अस्वीकार न कर सके। इस पर माँ सबसे बोली- सब लोग तैयार हो जाओ, आज ही रात को 3 बजे की गाड़ी से जाना होगा।

फिर क्या था, सब लोग उठ गये। जमाव समाप्त हो गया। लगभग 35 आदमी साथ थे। सभी जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। रात को 3 बजे की गाड़ी से माँ सबको लेकर रवाना हो गई। श्रीनवद्वीप के निवासियों में केवल दो-एक व्यक्तियों ने यह खबर पाई और किसी ने नहीं जाना, अकस्मात् माँ चली आई।

* * *

बासठवाँ अध्याय

बंगला सन् 1343 के पौष मास की 22 तारीख– आज सवेरे माँ सबको लेकर कलकत्ता पहुँची। एक शिव–मन्दिर में पहुँचने पर माँ धोती सिरहाने रखकर लेट गई। कलकत्ते में किसी को खबर नहीं थी, इसलिये इस बार कोई स्टेशन पर नहीं आया था। धीरे–धीरे समाचार पाकर लोग आने लगे। माँ आज ही की गाड़ी से दूसरी जगह जायेंगी।

आते समय रास्ते में बात हो रही थी। दीदी माँ साथ में थी। इसी से माँ के बचपन की बात फिर उठी। माँ का प्रत्येक काम अति सुन्दरता से हो जाता था। कपड़े पहनना तक सभी अत्यन्त ठीक थे। शरीर बिल्कुल दिखाई न दे किन्तु उसमें भी मानो सुन्दरता निवास करती थी।

फिर बातों–बातों में कहा, ''छुटपन में जिस प्रकार सीधा और सरल होना चाहिये, शरीर अपने आप वैसा ही हो गया था। फिर बहू बनने पर जैसा होना चाहिये, वैसा ही हो गया था। मैं मानो सब देखती थी। जिस समय जैसी बनने की आवश्यकता होती थी, अपने आप वैसी ही बन जाती थी। कीर्तन के समय जब शरीर पड़ा रहता था तो मैं देखती थी कि शरीर पड़ा है। कीर्तन में जितने लोग बैठे होते थे, मालूम होता था कि मानो मैं ही हूँ। यहाँ तक कि उनके भाव आदि भी मैं ही हूँ। खोल और करताल भी मानो मैं ही हूँ। कीर्तन का शब्द जितनी दूर तक जाता मालूम होता था कि मानो शब्द भी मैं ही हूँ। इस प्रकार की एक अवस्था हो जाया करती थी।''

फिर कहती थी, ''और जो लोग जिस समय जो कुछ पूछते थे तभी उसका उत्तर आ जाता था। सांसारिक विषयों का भी उत्तर चटपट आ जाता था। सांसारिक व्यवहार तो इस शरीर द्वारा हुये नहीं थे, किन्तु किसी के पूछने पर उत्तर आ जाता था। शरीर द्वारा जितनी आवश्यकता पड़ती उतना हो जाता था। तुम लोगों के साधन आदि के विषय में विशेष आवश्यकता थी, इसी से इस शरीर में साधन के भाव और कार्य विशेष रूप से सम्पन्न हो गये। मुझे तो कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। मैं समझती हूँ कि छुटपन

में जो खेल-कूद करती थी, ठीक उसी प्रकार इस शरीर में जो यौगिक क्रियायें हो जाती थी, वे भी हुई। इसी से कहती हूँ कि शायद तुम्हारे लिये आवश्यक थी। इसी से एक के बाद एक खेल इस शरीर द्वारा होते जाते हैं। जो प्रयोजन इस शरीर से होता है उसके होते हुये भी एक अवस्था ऐसी है कि जिसमें कोई भी विषय अजाना नहीं रहता है। इसी से सब विषय समझना सम्भव हो जाता है। जैसे सब प्रकार की भाषायें, जो भाषायें अपने जीवन में कभी सुनी भी नहीं, उन भाषाओं में भी सूक्ष्म शरीरी व्यक्तियों के साथ बातचीत हो जाती है। जैसे तुम्हारे पास एक हिन्दुस्तानी आकर पूछे तो तुम हिन्दी में ही उत्तर देते हो, उसी प्रकार जब मैं पहाड़ पर गई थी, वहाँ सूक्ष्म शरीरी व्यक्तियों का पहाड़ी भाषा में उत्तर हो जाया करता था।''

एक और घटना की बात उठी। यह ढाकेश्वरी मन्दिर में प्रणाम की घटना से बहुत पहले की बात है। एक बार अष्टग्राम से माँ कसबा के काली मन्दिर गई थी। वहाँ भी प्रणाम और प्रदक्षिणा करने के बाद माँ के मुख और नेत्रों की एक अजीब-सी दशा हो गई, जिसे बहुत कोशिश करने पर भी वे छिपा नहीं सकी थी। इस घटना की बात होते ही अकस्मात् माँ बोल उठी- कैसा भाव होता था, जानते हो? प्रणाम आदि करने जाने पर जिस देवता को प्रणाम करती, उस देवता से मानो एकत्व भाव हो जाता था और शरीर में भी जाने कैसा अस्वाभाविक परिवर्तन होने लगता था। फिर कहने लगी- ''देखो छुटपन में जब माँ मुझे पूजा के घर में काम करने को भेजती थी तो कह देती थी कि खबरदार पूजा की चौकी मत छूना। किन्तु आश्चर्य की बात है कि मैं इच्छा भी नहीं करती थी। दूसरे माँ की आज्ञा का विशेष ध्यान रखने पर भी न जाने कैसे पूजा की चौकी में हाथ लग ही जाता था, तब सोचती कि क्या हो गया? फिर मैं अपने मन में स्वयं तर्क करती कि मैंने तो स्वयं अपनी इच्छा से छुआ नहीं। जब पूजा के घर से बाहर निकलती तो यह बात बिल्कुल भूल जाती थी। इसी से किसी को कुछ बतलाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी।'' मैंने हँसकर कहा- माँ तुम्हारे शरीर से जो आवश्यक होता, वही हो जाता था। यदि तुम यह बात बता देती तो फिर ठाकुरजी का अभिषेक कराना पड़ता, किन्तु उसकी तो कुछ आवश्यकता नहीं थी, इसी से तुम भूल जाती थी, बता नहीं पाती थी।

आज नेपाल के राजा के घर की कुछ लड़कियाँ और त्रिपुरा के राजा की रानी तथा अन्य परिवार के लोग भी माँ के दर्शन करने आये। माँ उन लोगों के पास शिव-मन्दिर में थी। रात की गाड़ी से माँ और भोलानाथजी हम लोगों को साथ लेकर ढाका रवाना हो गये। अखंडानन्दजी को विन्ध्याचल तथा ज्योतिष दादा को बरेली भेज दिया। अतुल और शिशिर हम लोगों के साथ थे। ग्रे स्ट्रीट के उपेन्द्र घोष वकील की लड़की अमला हमारे साथ चली। वह ट्रेन में आकर माँ के मुख की ओर ऐसे भाव से देखने लगी मानो मुग्ध हो गई हो। उसे देखकर माँ बोली- क्या देखती हो? उसने कहा- तुम्हें देखती हूँ। उसने मुस्कराकर छलकते हुये नेत्रों से इस प्रकार यह उत्तर दिया कि शचि दादा देखकर कहने लगे, तू माँ के साथ जायेगी? उपेन्द्र बाबू से पूछा गया तो उन्होंने कहा- माँ के साथ जायेगी, तब और क्या पूछना है? उसी समय टिकट खरीद ली गई और अमला माँ के साथ चली। बड़े आनन्द से वह माँ की ओर देखकर धीरे-धीरे बोली, यह अभिलाषा मन में बड़ी उत्पन्न हो गई थी, आपने पूरी कर दी। अमला का भाव आश्चर्यजनक था।

बंगला, पौष 23 तारीख 1343 बृहस्पतिवार- आज हम लोग ढाका पहुँचे। नारायणगंज स्टीमर आते ही देखा कि भूपति दादा, अमूल्य, नगेन्द्र तथा यतीन्द्र दादा आदि अनेक व्यक्ति माँ को लेने आये हैं। सब माँ को लेकर ढाका पहुँचे। स्टेशन पर भी अनेक व्यक्ति आये थे। रमना आश्रम में पहुँचते ही कोई फूल और कोई खीलें बिखेरने लगे। आश्रम के दरवाजे पर केले का खंभ और मंगल कलश स्थापित किया गया था। माँ कीर्तन के कमरे में जाकर बैठ गई। समाचार पाते ही झुंड-के-झुंड लोग माँ के दर्शन करने आने लगे। रात को लगभग 12 बजे माँ के विश्राम करने का प्रबन्ध किया गया। माँ सबके सहित कीर्तन के कमरे में ही सो गई।

बंगला 1343 पौष मास की 24 तारीख शुक्रवार- आज भी माँ सवेरे उठी और भक्त लोग आ-आकर बैठे। माँ सबके साथ सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर थोड़ी देर बाद लौट आई। सब लोग रात को करीब 12 बजे तक माँ को घेरे बैठे रहे और माँ की अमृतमयी वाणी मुग्ध होकर सुनते रहे। माँ को देखते रहने से मानो किसी की तृप्ति होती ही नहीं थी। 12बजे के बाद माँ स्त्रियों के साथ कीर्तन करने लगी। ढाका की स्त्रियों को इस बात का दु:ख

था कि माँ शिमला में जैसे स्त्रियों के साथ कीर्तन करती थी वैसे ढाका में नहीं किया। आज वही हुआ। अति आनन्द से स्त्रियाँ नाच-नाचकर कीर्तन कर रही थी। माँ भी दोनों हाथ उठाकर और कभी-कभी बायाँ हाथ हिला-हिलाकर सबको उत्साहित कर रही थी। कभी किसी के गले को जोर से पकड़कर ताल पर नाचने लगती थी। किन्तु अमला कीर्तन शुरू होते ही लेट गई थी। माँ ने उसके शरीर पर हाथ फेर दिया। फिर कहा कि इस समय जैसे सुन्दर भाव से कीर्तन हो रहा है, वैसा अधिकतर देखने में नहीं आता। इन सब स्त्रियों को यदि सहायता मिले तो बड़ा सुन्दर भाव उत्पन हो सकता है। सचमुच ही उन स्त्रियों के दोनों नेत्र मानो भाव से भरे थे। सारी रात कीर्तन हुआ। सवेरे प्रभाती कीर्तन करके कीर्तन बन्द कर दिया गया।

बंगला 1343 पौष मास की 25 तारीख शनिवार– आज 11बजे माँ ढाका से रवाना होंगी, इसलिये सभी स्त्रियाँ आश्रम पर ही रुक गई। दादा महाशय का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। माँ वहाँ जाकर उनको प्रणाम कर आई। रमना के काली मन्दिर में भी गई। यही करते-करते जाने का समय आ गया। जल्दी-जल्दी माँ को भोजन करा दिया गया। समय कम था माँ जल्दी-जल्दी सबको लेकर मोटर में बैठ गई। उदासी के साथ स्टेशन पर सब लोग माँ को विदा करके लौट आये। ढाका में बहुत कम समय ठहरने के कारण किसी की तृप्ति नहीं हुई। लेकिन माँ ने कहा कि 29 तारीख को विन्ध्याचल पहुँचना है इसलिये देरी करने से काम नहीं चलेगा।

माँ ढाका से रवाना होकर बरहमपुर गई क्योंकि अवनी बाबू और सुधांशु आदि कई लोगों ने भक्तिपूर्वक उन्हें बुलाया था।

पौष की 26 तारीख इतवार– बरहमपुर के रास्ते में आज सवेरे कृष्णनगर पहुँचे। यहाँ के कई सज्जन नवद्वीप जाकर माँ के दर्शन कर आये थे। तब उन सबने माँ से कृष्णनगर आने के लिये आग्रह किया था। इसी से माँ कृष्णनगर उतरी। डिप्टी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट, बाबू पूर्णचन्द्र सेन (डिप्टी मजिस्ट्रेट) और मोहिनी बाबू (यह भी पुलिस में काम करते थे) आदि ने विशेष रूप से आग्रह किया था। स्टेशन पहुँचकर शिशिर को उन लोगों के पास समाचार देने के लिए भेजा गया। इधर माँ के लिए हाथ-मुँह धोने के लिए पानी ले

गई तो देखा कि कहीं बाहर जाने के लिए डिप्टी पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट खुद स्टेशन पर आये हैं। माँ को देखकर उन्होंने दौड़कर प्रणाम किया और अपने आदमियों के साथ माँ को मठिया में पहुँचाया। स्वयं भी जल्दी ही लौटने को कहकर चले गये। हम लोगों के मठिया पहुँचने के बाद ही मोहिनी बाबू और पूर्ण बाबू सपरिवार आ गये। बड़ी भीड़ हो गई। कुछ लोगों ने भोलानाथजी से दीक्षा ली। लगभग आठ-नौ बजे हम लोग वहाँ पहुँचे थे और 4 बजे की गाड़ी से बरहमपुर रवाना हो गये। इस बीच लोगों की अत्यन्त भीड़ हो गई थी। सभी माँ की भगवती रूप से पूजा करने के लिये बेचैन थे। किसी ने खबर नहीं दी। फिर भी सुना कि कृष्णनगर में कोई भी व्यक्ति नहीं बचा जो माँ के पास न आया हो। इसी बीच माँ को दो-चार घरों में भी ले जाया गया। एक सज्जन माँ को अपने घर ले गये। सुना है कि उसके घर मनसा देवी अपने आप आई थी। उसकी स्त्री पर आवेश होता था। मनसा देवी के घट के पास बलिदान करने से रोग की औषधि मिल जाती थी और उसकी स्त्री आवेश की अवस्था में दवा के व्यवहार करने के नियम बता देती थी। शायद रुपये-पैसे भी कभी-कभी उस घर में लोगों ने पड़ते देखे थे। वे रुपये माँ को लाकर दिखाये, जो एक कटोरी में जमा करके मनसा देवी के घट के पास रखे थे। तीन-चार घरों में माँ गई। पूर्ण बाबू ने स्त्री सहित बैठकर माँ और भोलानाथजी की पूजा की। फलों का ढेर लग गया। सब लुटाकर बाँट दिये गये। थोड़ी देर कीर्तन भी हुआ। 4 बजे माँ बरहमपुर रवाना हो गई। शाम को सात बजे बरहमपुर पहुँचे। अवनी दादा आदि अनेक व्यक्ति स्टेशन पर आये थे। माँ को सेरिकल्चलर डिपार्टमैण्ट के बंगले में ठहराया गया। इन सब कमरों में रेशम के कीड़े थे। इस समय कई एक खाली थे। सबने कुछ देर मिलकर कीर्तन किया। फिर भोजन आदि के पश्चात् विश्राम किया गया।

बंगला 1343 सन् पौष की 27 तारीख सोमवार- आज सवेरे माँ उठी। आज ही पाँच बजे की गाड़ी से माँ को जाना है। सुधांशु के घर तथा एक आश्रम पर माँ को ले गये। सुना है कि इस आश्रम पर स्त्रियाँ एकत्र होकर कीर्तन और पाठ इत्यादि करती हैं। माँ को वहाँ ले जाकर सब स्त्रियाँ बैठ गई। थोड़ी देर माँ को जलपान दिया गया। माँ जाकर थोड़ी देर लेटी रही।

उठने पर उन्हें थोड़ा-सा जलपान दिया। अमला अक्सर चुपचाप बैठी रहती थी। इस समय भी प्रसाद लेने को बुलाने पर क्या जाने क्यों उसे कुछ रोने का सा भाव आया और पृथ्वी पर वह गिर पड़ी। माँ ने कहा- देखो इस समय कीर्तन नहीं हो रहा है। किन्तु अपने भीतरी भाव में ही वह डूबी हुई है। माँ ने उसके शरीर पर जरा हाथ फेर दिया और हम लोगों ने कुछ उपाय किया। वह उठकर माँ के साथ-साथ चल दी, किन्तु उदास भाव और अन्यमनस्क दृष्टि थी। माँ ने वापिस आकर थोड़ा जल पीया और सबके साथ बैठ गई। जाने का समय आने पर माँ सबको लेकर स्टेशन गई। इतनी थोड़ी देर में सभी अतृप्त रहे, किन्तु माँ रवाना हो गई। रात को 11 बजे हम लोग कलकत्ता पहुँचे। शचि बाबू को खबर दे दी गई थी। बहुत से लोग स्टेशन पर आये थे। सब लोग माँ को बिड़ला शिव-मन्दिर में ले गये। प्राणकुमार बाबू, शचिबाबू और यतीश बाबू के घर पर अनेक व्यक्ति आये थे। रात को 3 बजे तक बातचीत होती रही।

रात को पुरानी बातों का प्रसंग उठा। माँ कह रही थी कि उनका विवाह 12 साल और 10 महीने की अवस्था में माघ के महीने में हुआ था। उसके बाद 4 साल तक वे जेठ के पास रही। जेठ की मृत्यु के पश्चात् 6 महीने आटपाड़ा में और 6 महीने विद्याकूट में रही। फिर इस समय 18 साल की अवस्था में अष्टग्राम में जाकर एक साल चार महीने रही। फिर लगभग 3 साल तक विद्याकूट में रही (अष्टग्राम और विद्याकूट मिलाकर 4 साल हुये), फिर लगभग 22 साल की अवस्था में बाजितपुर जाकर वहाँ छः साल रही। फिर लगभग 28 साल की अवस्था में ढाका आई। रात को 3 बजे तक बातें होती रही। फिर शचि बाबू अपने घर गये और अन्य सब लोग माँ के पास कम्बल बिछाकर बरामदे में लेट रहे।

बंगला 1343 पौष मास की 28 तारीख– आज सवेरे माँ उठी। आज भी त्रिपुरा के राजपरिवार की स्त्रियाँ और अनेक दूसरे व्यक्ति माँ के दर्शन करने आये। बात हो रही थी कि आज माँ के पास स्त्रियाँ कीर्तन करेंगी। लगभग 11 बजे शचि बाबू, उपेन्द्र बाबू आदि भक्त लोग और उपेन्द्र बाबू की स्त्री, यतीश दादा की लड़कियाँ, अनु और मैं माँ के साथ फोटो खिंचवाने के लिये गये। एक स्टूडियो में शचि बाबू माँ को ले गये। फोटोग्राफर की पहले से इच्छा थी कि माँ की एक बार अपनी इच्छानुसार फोटो खींचे।

वही हुआ। कई फोटो लगातार उतारी गई। भक्त लोगों की तृप्ति ही मानो नहीं होती थी। माँ के साथ और लोगों ने भी फोटो खिंचवाया।

लगभग दो बजे मन्दिर में लौटकर देखा कि माँ को इतनी देर बाहर रखने के कारण सभी असन्तुष्ट हो रहे थे। लोगों की अत्यन्त भीड़ थी। माँ ने जाकर स्त्रियों का कीर्तन शुरू कराया। स्त्रियाँ बरामदे में घूम-घूमकर कीर्तन करने लगी, बाद में माँ भी जाकर उनमें शामिल हो गई। मुझसे माँ ने कहा- ''माला चन्दन कहाँ हैं?'' माला खरीदकर लाई गई थी, थोड़ा चन्दन घिस दिया, सबको माला-चन्दन से सजाकर नाम-कीर्तन करने लगी। साथ-साथ बायाँ हाथ उठाकर माँ ताल पर हिलाकर सबको उत्साहित करने लगी। कभी-कभी नाम के साथ मानो सारा शरीर नाचता था। ऐसी विचित्र मूर्ति थी कि जो देखता था, मुग्ध हो जाता था। मानो एक आनन्द की धारा बही जा रही हो। श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय ने इस समय माँ की लीला का फिल्म खींच लिया। बहुत देर के बाद स्त्रियों को हटाकर लड़कों को बुला लिया। लड़के माँ के साथ कीर्तन करने लगे। सभी मानो नशे में मतवाले थे। किसी को कुछ संकोच नहीं था, डर नहीं था। बाद में माँ एक किनारे जाकर बैठ गई। भोलानाथजी भी कीर्तन में शामिल हो गये। उनके साथ भी कीर्तन खूब जम गया। वे कीर्तन में मस्त हो जाते थे, इससे सभी को खूब आनन्द आता था। इसी प्रकार कीर्तन हो रहा था। इसी बीच रामदास बाबाजी कीर्तन करने के लिये आये। पहले ही से प्रोग्राम था। वे कीर्तन में बैठे। पहले का कीर्तन बन्द कर दिया गया। लगभग सात बजे तक उन्होंने कीर्तन किया। बाद में माँ स्टेशन को रवाना हो गई। रास्ते में रायबहादुर योगेश बाबू को देखने के लिये गये। वे बीमार पड़े थे। माँ रास्ते में खड़ी हो गई। सड़क की तरफ की खिड़की से वृद्ध सज्जन (योगेश बाबू) ने सतृष्ण नेत्रों से माँ को देखा। उन्हें देखकर माँ स्टेशन चली। साथ में बहुत से लोग थे। 9 बजे की गाड़ी से माँ विन्ध्याचल रवाना हो गई। अखंडानन्द स्वामी को तार दे दिया गया।

* * *

तिरसठवाँ अध्याय

बंगला 1343 सन् पौष मास 29 तारीख, बुधवार– आज सात बजे माँ सबको लेकर मिरजापुर पहुँची। वहाँ अखण्डानंद स्वामी उपस्थित थे। काशी से नेपाल दादा, बच्चू और बच्चू की माँ समाचार पाकर आ गये थे। सभी स्टेशन पर थे। मिरजापुर से विन्ध्याचल आश्रम पर जाना हुआ। माँ हाथ-मुँह धोकर सबको लेकर यज्ञ के स्थान पर जाकर बैठ गई। माँ बोली- ''चलो इतना परिश्रम करके यहाँ जिस यज्ञ के लिये आये हैं उसे देखें।'' वही हुआ, आज 12 बज़े कुंड में संस्कार करके उसमें अग्नि स्थापन करके यज्ञ किया गया। आज ही चार बजे की गाड़ी से जाने की बात थी।

बच्चू की माँ काशी से दो धोती और जलपान का सामान लेकर आई थी। माँ और भोलानाथजी जलपान करने को जब बैठे तो बच्चू की माँ ने दो दुशाले माँ और भोलानाथजी को उढ़ा दिये। उसी समय माँ हँसते-हँसते कहने लगी, हमारा तो छोटा है। इसके बाद बच्चों की तरह ऊं-ऊं करने लगी। दीदी और नेपाल दादा हँसकर बोले कि यह नहीं कह सकोगी, दोनों एक ही नाप के हैं। माँ ने कहा- अच्छा नाप कर देखो। किन्तु इस बात पर सब हँसने लगे क्योंकि सभी को विश्वास था कि माँ की यह बात ठीक नहीं निकलेगी। माँ खेल कर रही हैं। यही जानकर कोई भी नापने को नहीं उठना चाहता था। लेकिन माँ बालको की तरह नपवाने के लिये जिद कर रही थी। आखिर नापकर देखा गया तो माँ का दुशाला चार अंगुल छोटा निकला। इस घटना से सभी को आश्चर्य हुआ।

खाने–पीने के बाद माँ सबको लेकर छत पर बैठी। दोपहर को भोजन हो गया। इलाहाबाद से जितेन्द्र दादा भी आये थे। बात–बात में माँ के छुटपन की चर्चा चली। एक दिन शायद माँ ने सवेरे के समय पत्थर के प्याले में दाल–चावल खाये। उसे धोने के लिये घाट पर ले जाने लगी। उनकी माताजी ने कहा- ''हो सके तो तोड़कर ले आना!'' जैसे बच्चों से कहते हैं, माँ उसे धोने ले जाने के समय रास्ते में पेड़ पत्तियों से या किसी अप्रत्यक्ष प्राणी से बात करते–करते चलने लगी कि इस समय जिस प्रकार

तुम दखेते हो कि अकस्मात् किसी से बात हो जाती है किन्तु उसे तुम लोग जान नहीं पाते हो, ऐसा ही उस समय भी होता था। इसी विचार में चली जाती थी कि प्याला गिरकर टूट गया। माताजी ने कहा था कि ''तोड़कर ले आना।'' इसलिये मैंने प्याले के सभी टुकड़े बीनकर उठा लिये और माताजी के पास ले आई। माताजी हँसी को रोककर मुख पर क्रोध का भाव दिखा रही थी किन्तु मैं यह सब देख रही थी। यह कहकर माँ हँसने लगी। फिर प्रसंग चला कि माँ इतना घूमती क्यों है? इसके उत्तर में माँ ने कहा- यदि एक जगह रहूँगी तो आप कहेंगे कि एक जगह क्यों रहती है? सच तो ये है कि मुझे कभी मालूम नहीं पड़ता कि मैं घूमती हूँ। एक घर के भीतर ही एक कमरे से दूसरे में जैसे घूमती होऊँ अथवा एक जगह पर ही हूँ।

ढाका में एक घटना हुई। शचीन्द्र बाबू के घर (बहुत पहले की बात है) माँ भोजन करने गई थी। उनके लड़के के कोई सन्तान नहीं थी। माँ को बताया था किन्तु माँ कुछ बोली नहीं। थोड़ी देर बाद एक कीड़ा माँ के पास आ रहा था। माँ उसे उँगली से ठेल देती थी, किन्तु वह बार-बार माँ की तरफ आता था। तब माँ ने बायें हाथ से उसे उठा लिया। थोड़ी देर में हँसते-हँसते माँ ने उसे शचि बाबू की स्त्री के हाथ में दे दिया। वे बड़े प्रेम से उसे पालने लगी। इस घटना के एक-आध महीने के अन्दर ही उनकी पुत्रवधू के गर्भ रह गया। वह सन्तान अभी तक है। इस बार माँ के ढाका आने पर उस लड़के को लाकर माँ को दिखाया और इसी से यह प्रसंग इस समय फिर से उठा था।

* * *

चौसठवाँ अध्याय

बंगला 1343 पौष 29 तारीख, बुधवार– अतुल और विराजमोहिनी को विन्ध्याचल में छोड़कर हम सब माँ के साथ काशीजी के लिये रवाना हो गये। शाम को सात बजे चले। 10 बजे काशी पहुँचे और वीरेश्वर पांडे की धर्मशाला में ठहरे। विन्ध्याचल से दिल्ली जाने का निश्चय था, यहाँ तक कि तार भेजा जा रहा था। इसी बीच विचार बदल गया। दिल्ली में माघ की पहली तारीख को एक दिन रात को अखंड कीर्तन होने का निश्चय था। शिमला के भक्तों की मंडली दिल्ली आई थी। वे लोग माँ के दर्शनों के लिये बहुत व्याकुल थे, कई तार दे चुके थे। लेकिन फिर भी इस समय दिल्ली जाना नहीं हुआ। माँ ने कहा– कल जो अखंड कीर्तन होने वाला था, उसे तुम लोग काशी में सुबह से शाम तक का ही करने का प्रयत्न करो। बच्चू की माँ से कहा– तुम्हीं सवेरे आरम्भ करना। रात को 12 बजे सब लोग सो गये।

बंगला 1343 माघ की पहली तारीख बृहस्पतिवार– आज सवेरे से बच्चू की माँ ने कीर्तन शुरू किया। सारे दिन अखंड नाम करने के लिये नेपाल दादा आदि ने भी साथ दिया। धीरे–धीरे योगेन्द्र राय आदि सभी आ गये। कीर्तन खूब अच्छा हुआ। अधिक भीड़ होने पर माँ के कमरे से लेकर छत तक बैठने का प्रबन्ध किया गया। सबको हार तथा चन्दन से भूषित किया गया। थियोसोफिकल सोसायटी के बैजनाथ पाण्डे और भार्गव साहब सपरिवार आये थे। उन लोगों ने माँ को पहली बार देखा था। देखकर वे बड़े प्रसन्न हुये। थोड़ा अन्धेरा होने के बाद ही कीर्तन समाप्त हुआ। भक्त लोग माँ को प्रणाम करके धीरे–धीरे विदा हो गये।

बंगला 1343 माघ की दूसरी तारीख शुक्रवार– आज भी बहुत से लोग माँ के दर्शन करने आये। माँ बिछौने पर ही बैठे–बैठी सबसे बातचीत कर रही थी। यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर जीवनशंकर याज्ञिकजी आये थे, उनसे माँ बात कर रही थी। माँ उनसे बोली– उस तरफ की पढ़ाई भी कुछ पढ़ी, इधर जैसे बी.ए., एम.ए. पास करके प्रोफेसर हो गये, उसी प्रकार उधर भी

होना चाहिये। याज्ञिकजी ने कहा- मन तो स्थिर होता नहीं है, मन को यदि आनन्द मिलता तो बैठ भी सकता। माँ ने कहा- जीवन में लिखने-पढ़ने के लिये कितना समय लगाया विचार कर देखो तो? और तपस्या किसे कहते हैं? मैं तो उल्टी बात कहती हूँ। यह कहकर फिर हाथ जोड़कर बोली- मैं कुछ नहीं कहती, आप लोग जो कहलाते हो वही कहती हूँ, तपस्या का अर्थ है ताप सहना, मन न चाहे तब भी कोशिश करो, यही जो कष्ट सहना पड़े, यही तपस्या है। यदि कष्ट न होता तो तपस्या का कोई मूल्य ही न होता। जब इस कष्ट का अनुभव न रहेगा तब मन स्वभावत: आनन्द पाने लगेगा। तब तपस्या की बात नहीं रह जायेगी और तपस्या समाप्त हो जायेगी। देखो बालकों का मन खेल की तरफ रहता है, उन्हें जबरदस्ती पढ़ने को बैठाया जाता है, किन्तु मन नहीं लगता फिर नित्य नियम से पढ़ते-पढ़ते धीरे-धीरे उन्हें पढ़ना अच्छा लगने लगता है। तब उनके साथ जबरदस्ती नहीं करनी पड़ती। वे स्वयं ही नियम से पढ़ने लगते हैं क्योंकि फिर उनसे बिना पढ़े रहा नहीं जाता। वे जानते हैं कि यदि नहीं पढ़ेंगे तो फेल हो जायेंगे और फेल होना वे पसन्द नहीं करते। अन्त में माँ हाथ जोड़कर बोली- देखो पिताजी, इस लड़की की प्रार्थना है कि नित्य ही थोड़ा बहुत समय उसके लिये भी देना और धीरे-धीरे समय को बढ़ाते जाना। माँ की बात से याज्ञिकजी बड़े प्रसन्न हुये और जाते समय पैर छूकर प्रणाम किया।

एक और विशेष घटना हुई। नेपाल दादा इस बार विन्ध्याचल आकर बोले कि काशी के गोपालदास गुप्त डॉक्टर आज से दो रोज पहले मेरे पास आकर बोले- क्या आप बता सकते हैं कि आनन्दमयी माँ इस तरफ कब आवेंगी? मैंने पूछा कि क्यों पूछते हो? उन्होंने कहा कि कल रात को मैंने स्वप्न में देखा है कि आनन्दमयी माँ आकर मेरे बिछौने पर बैठी हैं और कह रही हैं कि मैं इतनी पास आई तब भी तुम मुझे देखने नहीं आये। तब नेपाल दादा ने डॉक्टर से कहा कि मुझे कल ही बहरमपुर से तार मिला है कि माँ 29 तारीख को विन्ध्याचल आवेंगी, आप भी चलिये। डॉक्टर साहब ने कहा- मैं नहीं जाऊँगा। मैं तो माँ को पहचानता भी नहीं हूँ, जब उन्होंने स्वयं दर्शन दिया है तो आवश्यकता पड़ने पर स्वयं ही आवेंगी। सचमुच ही माँ का आना संयोगवश काशी हुआ। नेपाल दादा ने

जब कल डॉक्टर साहब को टेलीफोन के द्वारा माँ के काशीजी आने का समाचार बतलाया तब डॉक्टर साहब माँ के दर्शन करने के लिये आये। माँ ने हँसकर पूछा- क्यों पिताजी, कैसे हो? जान पड़ता है कि इस बार इस शरीर को (अपने शरीर की ओर संकेत करके) इस तरफ आप ही खींच लाये हैं। इसी से पिताजी के दर्शन करने आई हूँ। आप तो शरीर का रोग दूर करते हैं, थोड़ा मन का भी इलाज करिये। डॉक्टर साहब स्थिर दृष्टि से माँ की ओर देखते रहे। इनके अलावा और भी बहुत से लोग आये। **गोपीनाथजी कविराज** भी आये थे।

बहुत सी बातचीत होती रही। एक लड़के ने माँ से पूछा- माँ, तुलसीदासजी तो बड़े ज्ञानी और भक्त थे। माँ ने कहा- हाँ अवश्य ही थे। लड़के ने कहा- अच्छा, तब उन्होंने भगवान कृष्ण की मूर्ति को देखकर ऐसा क्यों कहा कि मैं आपको इस रूप में नहीं देखना चाहता, मैं राम रूप में आपको देखना चाहता हूँ। यह ज्ञान की बात कैसे हुई? सभी जब एक हैं तब उस रूप को भिन्न क्यों समझा? माँ ने उत्तर दिया- देखो तुम्हीं कहते हो कि वे ज्ञानी और भक्त दोनों थे तब उन्होंने ज्ञान की ही बात तो कही। उन्होंने जो कहा कि आप हमें राम रूप में दर्शन दीजिये, आपका यह रूप मैं नहीं देखना चाहता, मैं राम रूप देखना चाहता हूँ, यही प्रमाण है कि वे जानते थे कि राम और कृष्ण एक ही हैं, तुम हमें राम रूप में दर्शन दो, यह कहने से ही ज्ञात होता है कि केवल रूप भिन्नता हैं, वास्तव में दोनों एक ही हैं। इस भाव से उनका ज्ञान प्रकट होता है। मैं आपको अपने इष्ट राम रूप में देखना चाहता हूँ क्योंकि मुझे वही रूप प्रिय है, यही बात उनकी भक्ति को प्रकट करती है। इस प्रकार ज्ञान और भक्ति दोनों ही भाव प्रकट हो गये। गोपीनाथ जी बोले- ''किसी भी बात का उत्तर देने के लिये माँ को सोचना नहीं पड़ता। जब जिस बात की आवश्यकता होती है, उसी का उत्तर माँ के मुँह से निकलने लगता है।'' इसके बाद फिर गोपीनाथजी ने सबको बताया कि माँ जिस बार दादाजी के साथ नवद्वीप से लौटकर गिरीन्द्र बाबू के घर पर ठहरी थी तब हम दो-तीन व्यक्ति माँ के दर्शन करने गये थे। बड़े जोर से पानी बरस रहा था, हम दो-तीन जगह ठहर-ठहरकर माँ के पास पहुँचे। माँ वहाँ बातचीत के बीच में ही बोल उठी- तुम लोग जो आ रहे थे, सो मैं अपनी आँखो से साफ-साफ देख

रही थी। यह कहकर हम लोग जहाँ-जहाँ रास्ते में ठहरे थे, सब ठीक-ठीक बतला दिया। उसी दिन इच्छा शक्ति तथा महाशक्ति की भी अनेक बातें बतलाई। एक बार हरिद्वार में सृष्टि तत्व का प्रसंग उठने पर माँ ने ऐसे सुन्दर और सरल तरीके से समझा दिया कि सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

काशी छोड़ने और चटगाँव जाने की बात होती रही। सवेरे जितेन्द्र दादा के साथ माँ की बातचीत होती रही। ऋषिकेश के स्वामी पूर्णानन्द का प्रसंग उठने पर माँ ने बताया कि जब मैं ऋषिकेश गई थी तब एक बार पूर्णानन्द स्वामी ने अपने एक शिष्य को भेजा। वह आकर बोला कि मैं एकान्त में माँ से कुछ बातें करूँगा, मेरे गुरुजी ने भेजा है। ज्योतिष को भी वहाँ रहने को उसने मना किया, फिर मुझसे बोला कि मेरे गुरुजी ने आपसे यह पूछने को कहा है कि आपको स्वप्न दिखाई देते हैं या नहीं? और क्या-क्या स्वप्न देखती हैं? मैंने उत्तर दिया कि- यदि स्वप्न की बात पूछते हो तो तुमसे जो बात कर रही हूँ, यह भी स्वप्न ही है। यदि यह न मानो तो जो लोग वास्तविक ज्ञानी हैं वे सदा ही जागृत रहते हैं, कभी सोते नहीं हैं। इत्यादि-इत्यादि। पूर्णानन्दजी मेरा बड़ा आदर करते थे, धीरे-धीरे मेरी उनसे बातचीत भी हुई। जब वे बीमार थे तो मैं उनके आश्रम पर गई थी। उनका स्वभाव इतना सरल था कि जैसे ही मैं पहुँचती तो सुनते ही वे अस्वस्थ होने पर भी नीचे उतर आते और मेरे पास पृथ्वी पर ही बैठ जाते। मैं उन्हें पिताजी कहकर पुकारती थी। कितनी ही दफा उन्होंने मुझे भोजन बनाकर खिलाया। स्वस्थ होने पर गंगा के किनारे मेरी कुटिया में भी आये थे। उस बार लगभग चार महीने तक मैं ऋषिकेश में रही।

आज सवेरे जितेन्द्र दादा और मेरे साथ माँ गंगा के किनारे गई। तब वहीं पर बैठे-बैठे ये सब बातें होती रही। आज तीन बजे की गाड़ी से चटगाँव जाने का विचार था। महेश भट्टाचार्य की धर्मशाला में आज माँ के भोजन का प्रबन्ध था। एक बजे माँ सबको लेकर वहाँ गई और महेश भट्टाचार्य को देखने के लिये जाकर बैठी। सबको हटाकर माँ कन्हाई दादा से बोली कि- देखो, बाबाजी महेश बाबू इतने दिन तक विचारपूर्वक दान करते रहे, अब इस समय एक बार विचारशून्य दान करो। एक दिन बाबाजी ने मुझसे कहा था कि- ''एक बार मैं और मेरी स्त्री वैद्यनाथजी के घर में थे। वहाँ एक भिखारी ने आकर भिक्षा माँगी किन्तु मैंने उससे कह दिया

कि तुम परिश्रम करके खाओ, मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा। यह कहकर मैंने उसे भिक्षा नहीं दी। मैंने अपने सारे जीवन में इसी प्रकार विचारपूर्वक भिक्षा दी है।'' यह बात बाबा को याद है इसी से कहती हूँ कि इस समय एक बार विचार शून्य होकर तुम लोग दान करो। माँ की आज्ञा से ऐसा ही किया गया।

एक सज्जन ने प्रश्न किया- ऐश्वर्य क्या है और तुम्हारा ऐश्वर्य है या नहीं? माँ ने हँसकर कहा- ऐश्वर्य क्या भिन्न है? कुछ भी होना तो ऐश्वर्य हैं? जहाँ ऐश्वर्य हुआ वहीं भिन्न हो गया। माँ भोजन के बाद तीन बजे की गाड़ी से चटगाँव रवाना हो गई। गाड़ी में बैठे-बैठे अग्नि-रक्षा की बात उठी। मैंने पूछा- माँ, अग्नि-रक्षा की क्या आवश्यकता है? माँ ने कहा- बंगला 1332 सन् में श्री कालीपूजा के दिन से यज्ञ की अग्नि-रक्षा होने लगी। उस समय श्री कालीजी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होकर फैलने लगी थी। फिर विसर्जन के समय कुछ विघ्न पड़ने से अग्नि के भी विसर्जन का ध्यान नहीं रहा। श्री कालीजी के विसर्जन का जिस प्रकार बिल्कुल ध्यान नहीं आया, उसी प्रकार अग्नि के विसर्जन का भी ध्यान नहीं आया, इसी से अग्नि-रक्षा होने लगी। फिर जब हरिद्वार के कुंभ के मेले में जाना हुआ तब शाहबाग में तालाब के किनारे कुण्ड बनाकर वहाँ अग्नि-रक्षा की गई। जिस समय कुण्ड तैयार हुआ, तुमने देखा होगा कि मैं भोलानाथजी को लेकर वहाँ गई और किसी को भी वहाँ आने से रोक दिया था। वहाँ जाकर मैंने भोलानाथजी से तीन बरगद के पत्ते मँगवाये, पत्ते आने पर मैंने यज्ञ की आग से एक कोयला लेकर लिखना शुरू किया। यह सब अपने आप हो रहा था। जिस प्रकार स्तोत्र आदि अपने आप मुख से निकलने लगते हैं, यह भी उसी प्रकार हुआ। पत्तों पर तीन प्रकार की भाषायें लिखी गई। ''कौनसी भाषायें लिखी गई'' यह पूछने पर बोली- ''समझो'' सबसे पहले तीन थे, फिर अनेक हो गये जैसे सत्व, रज, तम। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। वासना से सृष्टि, वासना से स्थिति और कर्म से लय और वासना का क्षय ही लय है। जिस प्रकार आरम्भ में तुम एक अक्षर मानते हो फिर एक से तीन और तीन से अनेक बनते हैं। फिर उस एक में जाने के लिये पहले सबको तोड़कर एक। शब्द में और अक्षर में भी वैसे ही है। ऐसे ही मूल भाषा भी एक से तीन हुई और उनसे अनेक हो गई। ये तीनों भाषायें

भी उसी को मानो। मूल भाषा से जो तीन भाषायें हुई, उनके द्वारा समय के अनुसार आवश्यक वस्तु पत्तों पर लिख दी गई। इसके बाद माँ ने कहा कि उन तीनों पत्तों को एक नारियल के प्याले में ढककर रख दिया गया। फिर उसके ऊपर धूप-दानी रखी गई। उस धूपदानी के ऊपर मिट्टी लगाकर कुण्ड तैयार किया गया। यह बात इतने दिनों से छिपी रही। इसके बाद से ही कुलदा दादा पर यज्ञ आदि का भार दिया गया। जाते समय माँ कह गई कि यदि अग्नि में कुछ गड़बड़ हो तो इस प्रकार फिर प्रज्वलित कर लेना। ये नियम कुलदा दादा को बतला दिये। बाद में जब दादाजी को लेकर आदिनाथ गई तो वहाँ एक दिन दादाजी से बोली कि अग्नि कुछ गड़बड़ हो गई है। अन्त में जब ढाका लौट कर आई तो हिसाब लगाकर देखा गया तो सचमुच अग्नि बुझ गई थी। कई बार और भी इसी प्रकार की घटनायें हुई थी, ऐसा मैंने सुना है। विन्ध्याचल के आश्रम पर माँ ने जो कुछ तैयार कराया था, उसकी चौड़ाई और गहराई माँ शरीर के नाप से रखी गई थी। इन सब बातों का कारण पूछने पर माँ ने कहा- एक बार मैं देहरादून में थी। विन्ध्याचल के आश्रम का स्थान बिल्कुल साफ-साफ आँखों के सामने आभास होने लगा। जिस प्रकार तुम लोगों को देख रही हूँ उसी प्रकार दिखलाई दे रहा था। वहाँ भी एक व्यक्ति यज्ञ कर रहा था। यज्ञ जिस प्रकार हो रहा था उसी प्रकार दिखलाई दे रहा था। जो व्यक्ति यज्ञ कर रहा था, उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की थी। इसी कारण वहाँ यज्ञकुण्ड बनवाने को कहा गया था। मैं अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं करती। उस व्यक्ति का अखंडानन्दजी से कुछ सम्बन्ध था, इसी से उसके द्वारा कुण्ड तैयार कराया गया। इसके बाद अपने शरीर का नाप देने की बात पूछने पर बोली- तुम लोग नाप चाहते थे और केवल हाथ की नाप देना चाहते थे। मेरा विचार हुआ कि सावित्री यज्ञ तो ब्रह्मयज्ञ है और ब्रह्म तो अखण्ड है। इसी से सम्पूर्ण शरीर की नाप दी गई। यह सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से कोई काम करने पर एक सीमा होती है, इसीलिये शरीर की सीमा होती है। किन्तु तुम्हारा भाव तो उचित पूर्ण अखण्ड का था। तुम लोगों के मत के अनुसार हाथ की नाप से भीतर कुण्ड तैयार करने को कहा गया। इसी प्रकार रमना आश्रम पर भी हुआ। मैं तो शाहबाग से उस स्थान पर आया-जाया करती थी। बिल्कुल उसी तरह जैसे तुम लोग अपने घर ले जाया

करते थे। उस स्थान पर जो लोग थे, उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। मैंने किसी से कुछ भी नहीं कहा क्योंकि जहाँ पर जिसे जो आवश्यकता होती है, वह निर्दिष्ट काम हो ही जाता है। कुछ दिनों के बाद जब तुम लोग आश्रम बनवाने का प्रयत्न करते थे, तब एक दिन निरंजन आकर मुझसे बोला कि माँ, हमें तो आश्रम के लिये जमीन देखने जाने में लज्जा आती है क्योंकि जो स्थान हम ठीक करते हैं वहाँ कुछ गड़बड़ हो जाती है और जमीन ले नहीं पाते हैं। किसी प्रकार भी एक स्थान ठीक नहीं हो पाता। मुझे जान पड़ता है कि निरंजन बाबू की इस बात के बाद माँ का कुछ संकेत होते ही आश्रम बन गया। माँ ने कहा कि उस स्थान पर जो लोग पहले रहते थे उन्हीं की इच्छा से यह मन्दिर आदि सब बन गया।

* * *

पैंसठवाँ अध्याय

माघ की तीसरी तारीख शनिवार, बंगला 1343 सन्– आज हम लोग रास्ते में ग्वालन्दो में थे। शाम को चाँदपुर पहुँचना है। माँ स्टीमर में आकर लेट गई। जिस गाड़ी में हम लोग ग्वालन्दो आये थे उसी गाड़ी में कुछ लोग रानाघाट से चढ़े थे। उन लोगों ने माँ को देखते ही प्रणाम किया और माँ को इस प्रकार पाकर अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे। माँ का कुछ प्रसाद था जिसे वे चार–पाँच जने मिलकर आनन्द में खाने लगे। उन्हीं के साथ के कुछ सज्जन थोड़ी दूरी पर बैठे थे, वे इनको देखकर हँस रहे थे किन्तु पास नहीं आये। माँ ने मुझसे कुछ फल उनके पास भेजने के लिये कहा। जिन लोगों को प्रसाद मिल गया था उनमें से एक सज्जन के हाथ से मैंने थोड़े से संतरे भेज दिये। संतरे पाकर वे लोग हँस पड़े।

इधर माँ कहने लगी– "सुनो, मैं तुमसे एक कहानी कहती हूँ। दो साधक साधना करने के लिये बैठे। उनका संकल्प था कि हम साधना छोड़कर उठेंगे नहीं, यहीं बैठे–बैठे भगवान् जो देंगे वह मिलेगा। थोड़ी देर के बाद ही एक साधक को बड़ी भूख लगी और उसे सन्देह उत्पन्न होने लगा कि क्या भगवान् यहाँ जंगल में आकर खाना दे जायेंगे? यह सोचकर अपने साथी से बोला– चलो भाई, हम लोग जाकर भोजन ले आयें, फिर भगवान् का भजन करें। साथी ने उत्तर दिया– नहीं भाई, जब मैं उनका भजन करने बैठा हूँ तो वे जो कुछ भेजेंगे वही खाऊँगा, चाहे भूखा ही रहना पड़े किन्तु उठूँगा नहीं। इस पर पहला गया और एक जगह जाकर अपने लिये भोजन लाया। लौटते समय उसके मन में आया कि हमारा साथी तो वहीं जंगल में बैठा है, उसके लिये भी कुछ लेते चलें। यह विचार कर उसके लिये भी भोजन ले लिया और लाकर अपने साथी के आसन के पास रख दिया। दूसरा साथी हँसकर बोला– "देखो भाई, उनके भजन के लिये बैठे रहने पर जंगल में उन्होंने भोजन भेज दिया।" माँ यह कहानी कहकर हँसते–हँसते बोली– तुम लोगों के भी साथियों को प्रसाद लेकर देने पर मुझे यह कहानी याद आ गई।

उसी ट्रेन में बैठे-बैठे माँ कहने लगी- ''जब पहले-पहले सिद्धेश्वरी गई तो एक दिन भोलानाथजी सिद्धेश्वरी से लौटते समय रास्ते में कुछ तिरस्कार के भाव में कहने लगे, तुम क्या साधन भजन करती हो, मेरी नौकरी की अधीनता तक गई नहीं। जिसके घर में ऐसी अवस्था हो, उसको इतना दुःख क्यों है? इस बात से मेरी एक विचित्र-सी दशा हो गई। मन में रोने का सा भाव आ गया और मैं मैदान में वर्षा के जल में होकर तेजी से जाने लगी, तो भोलानाथजी पकड़कर ले आये। उसी भाव में मुख से भी मैं बोलती जाती थी कि ''तब तो मैं जाती हूँ।'' भोलानाथजी ने बहुत प्रकार से सान्त्वना दी और सिद्धेश्वरी ले गये। माँ जब सिद्धेश्वरी में 7 दिन रही थी, उसके बाद शाहबाग आई थी। चावल के भोग के दिन सिद्धेश्वरी में यह घटना हुई थी।

बाद में सिद्धेश्वरी में माँ का भोग आदि होने के बाद जब माँ शाहबाग आई तब भोलानाथजी ने फिर अपनी नौकरी के सम्बन्ध में कुछ बातें उठाकर पहले की तरह माँ से कुछ कहा, जिससे माँ की अस्वाभाविक दशा हो गई और उसी अवस्था में इस दफा उन्होंने भोलानाथजी से कहा- ''इस शरीर की तीन-चार वर्ष तक और देखभाल रखो।'' आज माँ बोली- ''तीन-चार बरस के अन्दर ही तुम सब आकर इकट्ठे हो गये।'' यह कहकर हँसने लगी। आज स्टीमर में भोलानाथजी एक बात बताने लगे कि वाजितपुर में शायद एक दिन मैंने कहा कि मैं ढाका में एक घर बनवाऊँगा। माँ ने उत्तर दिया कि ढाका में तो तुम्हारा घर है। यह कहकर वर्तमान में जो ढाका का आश्रम है उसके बहुत साल पहले जिसका घर था उसका नाम लेकर बोली कि उसका घर ही तुम्हारा घर है। बाद में जब आश्रम बना तब पता लगाने पर पुराने मालिक का नाम मालूम होने पर देखा गया कि वाजितपुर में वही नाम माँ ने लिया था। क्या नाम था, यह अब भी नहीं जान सकी।

माघ की 5 तारीख, सोमवार- आज सवेरे हम लोग चटगाँव पहुँचे। शशि बाबू आदि स्टेशन पर आये थे। हम लोगों को राजराजेश्वर के मन्दिर में ले गये। सुना है कि यह बड़ा ही पुराना मन्दिर है। ज्योतिष दादा की लड़की यहाँ बहुत बीमार थी यह खबर माँ ने कुछ दिन पहले पाई थी। आज माँ को पहुँचाकर शशि बाबू लड़की की खबर लेने चले गए। दो दिन से उन्होंने उसकी कुछ खबर नहीं पाई थी। शशि बाबू के चले जाने

के बाद मैं और शशि बाबू का एक लड़का माँ को मुँह धुलाने के लिये यशोदा बाबू के घर ले जा रहे थे। रास्ते में अचानक माँ कहने लगी– ''देखती हूँ कि एक स्त्री मर गई है।'' मैं चौंककर बोली– ज्योतिष दादा की खबर लेने को गये हैं, इसी बीच में तुम यह सब क्या कह रही हो। माँ फिर कुछ नहीं बोली। थोड़ी ही देर के बाद शशि बाबू लौट आये और खबर दी कि वह लड़की कल रात को मर गई। तब माँ बोली– मैंने भी कल रात को उसी समय देखा था कि मैं मृत्युशैया के पास उपस्थित हूँ और सब स्पष्ट देखती थी। उस बार शंकरानन्द स्वामी काशीजी से हमारे साथ आये थे। वे माँ से कहने लगे कि इतने पास तुम आ गई फिर किस पाप के कारण वह लड़की तुम्हें देख न सकी? माँ ने कहा– ऐसा क्यों कहते हो कि देखा नहीं? तभी तुम लोग देख नहीं पाते, तुम्हारे ही शब्दों में कहती हूँ कि तुम्हीं बताओ काशीजी की यात्रा करके मरने पर भी क्या काशी प्राप्ति का फल नहीं होता? इसको भी उसी भाँति समझो। इस तरफ आने की बात तो थी नहीं। इस तरफ आना हुआ इससे यही समझना चाहिये उस लड़की का ध्यान मुझे था, वरना उधर ही चली जाती तो इसका ध्यान ही न आता। यह बात सुनकर हम लोग मन–ही–मन में लड़की के भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

यशोदा घोषाल का मकान मन्दिर के बिल्कुल पास था, उन्हीं के यहाँ माँ का भोग हुआ। माँ एक घर में गई। एक सज्जन माँ को प्रणाम कर रहे थे, उनके कई दाँत गिर चुके थे। माँ उन्हें देखकर हँसते–हँसते बोली– ''क्यों पिताजी, क्या बे–दांत हो चले। पहले भी बे–दांत थे, अब भी बे–दांत हो चले? बीच में कुछ दिनों के लिये दाँतों के वास्ते इतना परिश्रम। पहले भी बे–दांत पीछे भी बे–दांत, बीच में दाँतों के पास इतना उपद्रव।'' सभी इस बात पर हँसने लगे। किसी के संस्कार की कुछ बात पूछने पर माँ कहने लगी– ''कोई भी वस्तु देखने पर हमारे मन पर एक छाप पड़ती है, उस छाप को निकालने में फिर उतने ही समय की आवश्यकता होती है।'' एक लड़की से बोली कि तुम पढ़ा–लिखा करती हो, भगवान् का नाम भी जपा करो। यदि स्थूल देह में स्वामी रूप में वे आयें तो अच्छा ही वरना परमात्मा ही परम पति है। स्त्रियों से कहा– तुम लोग यदि ठीक भाव से पति की सेवा कर सकती हो तो फिर ''क्या करें'' ये जो कभी

मालूम होती है, कभी नहीं होती। ठीक नहीं कर सकती हो इसी से ''क्या करूँ'' मन में आता है। यह सुनकर सभी पुरुष लोग हँसने लगे। माँ साथ ही बोल उठी– तुम लोगों को भी यही प्रयत्न करना चाहिये कि स्त्री को गृहलक्ष्मी समझो।

शाम को माँ को दो-एक घरों में ले गये। रात को माँ मन्दिर के बरामदे में बैठी थी। बहुत लोग माँ के दर्शनों के लिये आये थे। राजशाही के प्रोफेसर गिरिजा भट्टाचार्य इस समय चटगाँव में थे, वे भी आए थे। बातों के प्रसंग में समाधि की बात चली। माँ ने कहा– ''समाधान हुये बिना समाधि कैसे होगी।'' इस बात से एक पंडित बड़े प्रसन्न होकर बोले– ''माँ, ऐसी सुन्दर बात कभी नहीं सुनी थी।''

फिर बहुत प्रकार की बातें होती रही। पंडितजी बहुत-सी बातें कह रहे थे। गिरिजा बाबू ने कहा कि इन सब बातों से क्या लाभ? हम तो यह समझते ही नहीं। माँ ने कहा– देखो, यदि तुम कोई सवाल करो तो सब ठीक-ठीक जोड़-बाकी आदि करने पर भी यदि एक जगह भी भूल जो जाती है तो शुरू से ही सब गलत हो जाता है। तुम्हारा भी यही हाल है। विश्वास सब पर करो, विश्वास ही मानो सवाल है, प्रत्यक्ष हुए बिना सब बातें समझ में नहीं आती। गिरिजा बाबू पुरानी बातों के प्रसंग में कहने लगे कि एक बार ढाका में गोपाल बाबू, मैं, बाउल और अटल बैठे थे। अकस्मात् माँ ने प्राणगोपाल बाबू के हाथ में अपना हाथ छुआ दिया, जैसे कुछ दे रही हों। प्राणगोपाल बाबू ने बाउल के हाथ में अटल के हाथ में तथा मेरे हाथ के ऊपर रखा। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार करते ही न जाने कैसी अवस्था हो गई। मानो बिजली का धक्का लगा हो। सभी लोग थोड़ी देर इस भाव में रहे, बाद में सब शान्त हो गये। इसके बाद फिर कहने लगे कि ढाका में जब पहले-पहले माँ को देखा था तो बड़ा घूँघट था, बात भी अधिक नहीं करती थी। एक दिन सिद्धेश्वरी में जाकर वेदी पर बैठी, उस समय बहू नहीं, कुछ दूसरी ही मूर्ति थी। थोड़ी देर तक स्तोत्र आदि मुख से उच्चारण होते रहे, बाद में मुझसे बोली (कुछ जोर के साथ)– ''मैं देख रही हूँ सब एक है।'' यह बात जैसे भाव से बोली थी, आज भी मुझे स्मरण है। फिर एक दिन मैं बीमार था, मेरे लिये जो बार्ली बनी थी, वह स्वयं खा डाली और एक घर में

माँ का भोग हुआ था, सो प्रसाद लेने को मुझसे कहा। पहले फूल मिले वही खाये। फिर और सभी खाया। उस दिन ज्वर उतर गया। इस प्रकार की बहुत-सी घटनायें देखी हैं। मैं प्राणगोपाल बाबू की चिट्ठी पाकर ढाका माँ के दर्शन करने गया था। फिर मैंने अटल को लिखा वह भी मेरी चिट्ठी पाकर ढाका आये और माँ के दर्शन किये। रात के लगभग 12 बजे सब लोग गये। रात को माँ ने ज्योतिष दादा की लड़की की बात कही थी कि ''इस लड़की के विवाह के समय ज्योतिष ने कहा था कि इसके विधवा होने का योग है। एक दिन रात को सोने की एक छोटी रकाबी में एक इमरती रखकर ज्योतिष ने मुझे खिला दी। फिर इसी रकाबी के सोने से इस लड़की के विवाह का सब गहना बना। यह लड़की सधवा मर सकी यह अच्छा ही हुआ है।''-यह कहकर हँसने लगी।

माघ की 9 तारीख मंगलवार- आज सवेरे माँ हाथ-मुँह धोकर बैठी थी। आज खाने का दिन नहीं था। बहुत से लोग बैठे बातचीत कर रहे थे। बात-बात में माँ ने कहा- ''विश्वास तो अन्धा होता है किन्तु पहले-पहले इसी विश्वास के आधार पर हम टिक सकते हैं। पढ़ना-लिखना भी क्या है यह भी कुछ सहायता देता है। जैसे रेल सफर में टाईम-टेबिल भी काम देता है।'' गिरिजा बाबू ने कहा- हम तो प्रश्न भी करना नहीं जानते। माँ हँसकर बोली- ''प्रश्न करोगे किससे? प्रोफेसर और छात्रों में प्रश्नोत्तर होते हैं, यहाँ न छात्र है, न प्रोफेसर, यहाँ जो प्रश्न करता है वही उत्तर देता है।'' गिरिजा बाबू ने कहा कि भक्तिशास्त्र में लिखा है कि महात्माओं की कृपा बिना कुछ नहीं बनता किन्तु महात्मा को पहचाना नहीं जाता। माँ ने कहा- महात्मा की पहचान करा दे यही तो कृपा है।

इसी बीच जटू और दिगेन्द्र घोषाल की स्त्री आ गई। वे माँ को अपने घर ले गई। माँ कल भी उनके घर जाकर जिस तरह बगीचे में बैठी थी, आज भी वहीं जाकर बैठ गई। थोड़ी देर लेटी रही। दिगेन्द्र बाबू की स्त्री और सुरेन्द्र बाबू की स्त्री माँ को घर के भीतर ले गई। वहाँ आँगन में बैठाकर हार और वस्त्र पहनाकर आरती की। कन्याओं ने भजन गाये। फिर आश्रम के पास एक साधु ठहरे थे, वहाँ माँ को ले गई। वहाँ से लौटकर माँ दिगेन्द्र बाबू के बगीचे में कम्बल बिछाकर धोती सिरहाने रखकर लेट गई। शाम को चार बजे प्रोफेसर गिरिजा बाबू के घर पर कीर्तन में जाने

का निश्चय हुआ। वहाँ माँ गई। बहुत भीड़ हो गई। भोलानाथजी कीर्तन में मस्त हो गये। सभी ने उनके साथ खूब आनन्द प्राप्त किया। रात को साढ़े ग्यारह बजे हम लोग मन्दिर में लौटे।

7 तारीख, बुधवार

आज सुरेन्द्र घोषालजी के घर पर भोग था। सवेरे माँ को मुँह धुलाने के बाद दो-तीन घरों में ले गये। 1 बजे हम लोग सुरेन्द्र बाबू के घर पहुँचे। भोग तैयार था। भोग के पहले लड़कियों ने एक कीर्तन किया। उसके बाद बड़े आँगन में माँ के भोग का प्रबन्ध हुआ। आंगन में इस कारण किया कि माँ कमरों के भीतर जाती नहीं थी। सभी लोग वहाँ बैठे। माँ ने कहा- बालकों को एक जगह बैठाओ। बड़ी लड़कियों को एक तरफ बैठाओ। ऐसा ही किया गया। बाद में माँ ने भोग ग्रहण किया। माँ ने कहा- कुमारी, बालक और संन्यासी सभी लोग भोजन के लिये बैठे हैं। अब तुम लोग हाथ में धूप लेकर कीर्तन करते हुए चारों तरफ परिक्रमा करो। जटू आदि यही करने लगे। माँ ने भी उनका साथ दिया। फिर आकर भोजन के लिये बैठी। सब लोग आनन्द से जयकार करने लगे। शंख-घण्टे बजाये गये। शशिबाबू फोटो उतारने को बुलाये गये। फोटो उतारा गया। बड़े आनन्द से सबने भोजन किया। माँ ने कहा- पहले भजन फिर भोजन। भजन-भोजन दोनों ही होने चाहियें। यह कहकर हँसने लगी। फिर माँ ने सब बन्धुओं को एक साथ बैठाया। चटगाँव के घोषालजी का बड़ा परिवार था और अच्छी अवस्था थी। सभी एकत्र थे, बहुत-सी बहुयें भी थी। माँ ने कहा - इस समय सब शक्तियाँ भोजन करने बैठी हैं। थोड़ी देर बाद माँ उनके साथ खाने बैठे गई। चन्द्रमाधव घोषाल की स्त्री के मुख में माँ ने खिलाया और स्वयं खाया, फिर दिगेन्द्र बाबू की स्त्री ने प्रसाद सबके शरीर में लगाया और माँ ने भी इस खेल में साथ दिया। प्रसाद से माँ तथा अन्य सभी के शरीर सन गये। मैंने शाम के पहले गरम पानी करके माँ को स्नान करा दिया। बाद में माँ बहुत से स्त्री-पुरुषों के साथ घूमती हुई राधामाधव की कुटिया में गई और वहाँ से राजराजेश्वर के मन्दिर में आई। स्त्रियों का कीर्तन हुआ। आज बहुत से लोग आये थे। बड़ा विचित्र कीर्तन हुआ। कीर्तन के बाद भी आज बहुत से लोग बैठे रहे। रात के 12 बज गये, कोई उठना नहीं चाहता था। अकस्मात् माँ उठकर मन्दिर के दरवाजे पर

जाकर देखने लगी कि भगवान् को अभी तक शयन नहीं कराया गया है। जैसे मनुष्य बोलते हैं वैसे ही अचानक बोल उठी– ''क्या तुम भी अभी तक सोये नहीं, बैठे ही हो?'' यह बात इस प्रकार कही मानो वहाँ कोई मनुष्य बैठा हो और माँ उससे बोल रही हैं। बाद में एकान्त में माँ ने मुझसे कहा– ''मुझे खयाल नहीं रहा इसीलिये अचानक सबके सामने इस प्रकार कह डाला।'' लेकिन सबने इस बात पर गौर नहीं किया था।

* * *

छियासठवाँ अध्याय

सीताकुण्ड में आगमन

8 माघ, बृहस्पतिवार, 1993 **वि.**–आज प्रात:काल शशी बाबू ने माँ को साथ ले जाकर उनका फोटो उतारा। उसके बाद माँ को काली–मन्दिर में ले जाया गया। कल ट्रेन न पकड़ सकने के कारण ज्योतिष दादा आज यहाँ नहीं पहुँच सके। पर पहले से यह निश्चित था कि ज्योतिष दादा के आज यहाँ आ पहुँचने पर हम लोग आज ही आदिनाथ को रवाना हो जायेंगे। माँ ने आज ही चल देना चाहा। भोलानाथजी तथा भक्तों के रुकावट डालने पर माँ ने कहा–''मेरा आज ही जाने का खयाल हुआ है, इसलिए आज सीताकुण्ड चलो''। तदनुसार आज 11 बजे की गाड़ी से हम लोग सीताकुण्ड आये। शशी बाबू ने साथ आकर माँ को शंकर मठ में ठहराया। शंकर मठ में जो संन्यासी हैं, उन्होंने माँ को देखते ही बड़े आदर के साथ माँ का स्वागत किया। पहाड़ के ऊपर एक सुन्दर घर में हम लोगों को रहने के लिए जगह दी गई। नीरव निर्जन अति सुंदर स्थान है।

9 माघ शुक्रवार– आज प्रात:काल माँ पहाड़ पर घूम आई। तदनन्तर कमरे में बैठकर बातें हो रही थी। मैंने कहा–''माँ, तुमने उस दिन कहा था कि वह एक पुस्तक पढ़ लेने पर फिर कुछ भी अज्ञात नहीं रहता।'' माँ ने कहा–''ठीक ही तो है, वह एक पुस्तक पढ़ लेने पर फिर कोई भाषा ही क्यों, कोई भी विषय अज्ञात नहीं रहता। उदाहरणार्थ जैसे–मन्त्रद्रष्टा ऋषि, सर्वांश में उपमा नहीं होती, समझ लेना।'' आज चटगाँव से अनेक भक्त यहाँ आये हैं। ज्योतिष दादा भी आज आ पहुँचे हैं। आते ही उन्होंने सुना कि उनकी एकमात्र लड़की का देहावसान हो गया है। किन्तु माँ की कृपा से वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। मालूम पड़ता था मानो कुछ हुआ ही नहीं है, बाहर ऐसा ही भाव देखने में आया। माँ का आज खाने का दिन है, मठ के स्वामीजी ने भी माँ के खाने के लिए रोटी और तरकारी भेजी है। आश्चर्य की बात है कि इतने दिनों तक मैंने कोई विशेष ध्यान भी नहीं दिया, किन्तु आज ही विशेष रूप से माँ ने इस ओर मेरा ध्यान

आकृष्ट करा दिया। बात यह है–माँ के शरीर की जितनी कुर्तियाँ मैं बनाती हूँ कभी देखती हूँ कि कुर्तियाँ माँ के शरीर में खूब अच्छी तरह फिट हो गई, फिर दो दिन में ही कुर्तियाँ शरीर में अँटती नहीं छोटी पड़ जाती हैं। माँ हँसते हुए कहती–''मैं मोटी हो गई हूँ। ''जांघियों का भी वही हाल होता है। अब यह घटना इतनी अधिक होने लगी कि मैंने माँ से कहा–''माँ यह क्या हो रहा है। दो–एक दिन में तुम मोटी हो जाती हो, कुर्ती शरीर में अँटती नहीं। फिर दो–एक दिन के बाद वही कुर्ती खूब अच्छी तरह शरीर में लग जाती है। इतनी जल्दी–जल्दी शरीर का इतना परिवर्तन क़्या संभव है।'' इस पर माँ हँसते हुए बोली–''अच्छा तुम्हीं तो पहनाती हो, देखती हो कभी शरीर पर लगती है कभी छोटी हो जाती है। कोई भी कुर्ता और कोई भी जांघिया सदा ठीक आता नहीं; इसका कारण क्या है।'' माँ के इस कथन और मुस्कान से मानो मेरा इधर ध्यान आकृष्ट हुआ कि यह कैसे होता है। पर यह घटना एक–दो बार नहीं बार–बार होने पर भी मेरा ध्यान उस ओर नहीं गया था।

गुरु पर श्रद्धा और धैर्य साधना के अंग हैं

भोलागिरि महाराज के आश्रम से एक ब्रह्मचारी आकर माँ से उनके आश्रम में चलने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। आज सायं–काल भी बहुत भक्त आये हैं। माँ तरह–तरह की बातें कर रही हैं। बातों के सिलसिले में कह रही हैं–''जो गुरु पर वास्तविक श्रद्धा करता है, वह किसी पर भी घृणा नहीं कर सकता। यदि किसी पर घृणा की जाय तो वह गुरु की ही घृणा की गई। क्योंकि गुरु महान् हैं और सबमें विद्यमान हैं, यह विश्वास रहना आवश्यक है। और धैर्य ही है साधना का प्रधान अंग।''

भोलागिरि महाराज के आश्रम के ब्रह्मचारी ने गीता की चर्चा छेड़ी–''अच्छा माँ, गीता में जो कहा गया है 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' इत्यादि। क्या कृष्ण का आश्रय लेने को कह रहे हैं? देवकीनन्दन कृष्ण का?'' माँ ने कहा–''बाहरी दृष्टि से इस लड़की को तो तुमने नहीं गीता पढ़ाई है पिताजी। पर यह श्लोक जब जो पढ़ेगा तभी वह कहेगा, 'मेरा भजन करो, यह मैं कौन है? परमात्मा। तब हुआ, कृष्ण कौन हैं? परमात्मा न?'' फिर बातें चलने लगी–

स्वधर्म क्या है

''स्वधर्में निधनं श्रेय: परधर्मों भयावह:।'' माँ कह रही हैं, ''धर्म माने क्या है? जिसने धारण किया है। चोर ने चोरी करने की विद्या ही धारण की है; किन्तु फिर देखने में आता है कि वह चोर ही साधु हो जाता है। ऐसी स्थिति में चोरी करना उसका स्वधर्म नहीं है जो वास्तविक धर्म है उसका कभी भी परिवर्तन नहीं होता। जिसका परिवर्तन होता है वह धर्म नहीं–अधर्म है। तुम्हारा स्वभाव है धर्म, उसके सिवा और जो भी है सब पर–धर्म (अधर्म) हैं। परधर्म ग्रहण करना सदा ही तुम्हारे लिए हानिकर है। फिर जगत् में जैसे आग का धर्म है, जल का धर्म है, वैसे ही संस्कारानुसार जिसका जो स्वभाव प्रकट हो रहा है, गुरु शक्ति के द्वारा उसी से उसे भगवद् अभिमुख करा लेते हैं।''

'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या' का भावार्थ

न मालूम कहाँ से माँ के आने की खबर पाकर धीरे–धीरे आज बहुत से स्थानीय लोग भी आ पहुँचे हैं। ब्रह्मचारी प्रश्न कर रहे हैं–''अच्छा माँ, यह जो कहा जाता है कि 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' इसका क्या अर्थ है?'' माँ हँसते हुए बोली–''बहुत दिन पहले रमना के काली–मन्दिर से जाते समय तीन गेरुवा वस्त्रधारिणी स्त्रियों के साथ मेरी भेंट हुई थी। उनमें से एक ने एकाएक मुझे सम्बोधित कर विविध बातों के सिलसिले में कहा– ''देखिये, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है।'' उसके उत्तर में मैंने कहा–''जगत् को मिथ्या कैसे कहूँ, जगत् के अन्दर ही सबका जन्म हुआ है, जन्म लेकर ही इस जगत् को देखते हो; जब वास्तविक ज्ञान होगा तभी जगत् मिथ्या कहा जा सकता है।'' इस कथन से वे तीन संन्यासिनियाँ झगड़ने लगी–''एक सफेद वस्त्र पहने घूंघट वाली स्त्री के पास क्या चर्चा करने गई, वह क्या कहेगी? इत्यादि। यह कहकर माँ हँसने लगी। तब ब्रह्मचारी ने कहा–''माँ कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्म ही विवर्तित होकर जगत् हुआ है; इसलिए जगत् भी सत्य है और मैं भी सत्य हूँ।'' माँ ने कहा–''एक तरह से वह भी ठीक ही है। जगत् का जो आवागमन है, उसका भी आदि अन्त नहीं है, उस हिसाब से जगत् भी सत्य है। और एक बात है, जब तक वास्तविक तत्त्व का ज्ञान न हो जाय तब तक जगत् को भी

सत्य मान लेना चाहिये। पर इन सब बातों के सुनने से लाभ क्या? एक कान से सुनोगे, फिर दूसरे कान से बाहर निकल जायेगी। सुनना तभी सार्थक होता है जब कार्यरूप में परिणत हो। इसीलिए वास्तविक सुनना भी नहीं होता।'' इस तरह की विविध बातें हुई। रात के लगभग 11 बजे माँ सो गई। चटगाँव से जो स्त्रियाँ आई हैं, वे सब माँ के कमरे में सोने के उद्देश्य से कुछ कष्ट उठाकर भी माँ के कमरे में सोई।

10 माघ, शनिवार– आज माँ तड़के उठते ही पहाड़ की ओर चली गई। ज्योतिष दादा तथा अखण्डानन्द गिरि साथ गये। धीरे-धीरे और भी कई लोग निकट जा पहुँचे। माँ वहाँ खुले मैदान में एक पेड़ के नीचे कम्बल बिछाकर बैठी।

शास्त्र के निर्देशानुसार चलने से सत्य का अनुभव होता है

स्थानीय लोग, एक माताजी आई हैं यह खबर पाकर एक-एक करके दर्शन करने आ रहे हैं। आज माँ नहीं खायेंगी, मैं माँ के निकट जाकर थोड़ा-सा दूध पिला आई। माँ पेड़ के नीचे ही बैठी हैं। 10 बज गये हैं। दोपहर के समय माँ नीचे उतर आई। अपराह्ण में माँ को थोड़ा-सा फल खिला दिया गया। शाम को सबने मिलकर माँ के समीप कीर्तन किया। माँ के सान्निध्य से यह निर्जन पहाड़ भी सजन हो उठा। चटगाँव से प्राय: ही लोगों का आना जाना-लगा रहता है। बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा–''पुस्तक में पढ़ी विद्या टाइम टेबिल देखकर यात्रा करने के तुल्य है। टाइम टेबिल में जो कुछ रहता है उसके अतिरिक्त मार्ग में और भी कितने ही स्थान आदि क्या-क्या रहते हैं। जो विशिष्ट है और जितना लेखक प्रकट कर सकता है, वही टाइम टेबिल में रहता है, उसका सहारा लेकर उस राह पर चलते-चलते ज्ञात होता है कि और भी कितनी देखने और जानने योग्य बातें हैं। टाइम टेबिल में क्या सब कुछ लिखा जा सकता है? वैसे ही शास्त्र में भी क्या सब कुछ लिखना सम्भव है? जो लोग इस पथ पर चलते हैं वे जान सकते है कि शास्त्र में जो लिखा है वह सत्य है, पर उसके सिवा और भी कितने ही विविध विषय हैं। शास्त्र में फिर कितना लिखा जा सकता है? प्रत्यक्षदर्शी जाने और भी कितने विषय देखते हैं और जानते हैं। जैसे टाइम टेबिल देखकर ही ट्रेन के मार्ग से चलना होता है

वैसे ही शास्त्रोपदेश के अनुसार ही पहले-पहल चलना चाहिए। पर शास्त्रीय वाक्यों के भीतर अनन्त भाव छिपे रहते हैं।''

आज चाँदनी रात है, माँ बहुत देर तक बाहर ही बैठी रही। भक्त तथा अन्यान्य दर्शकगण माँ को घेरकर बैठे हैं। माँ की मधुर बातें सुन रहे हैं। रात्रि के लगभग 11 बजे सब लोग विश्राम करने गये।

11 माघ,रविवार– आज भी सवेरे उठकर माँ पहाड़ पर चली गई। साथ में दो-चार आदमी गये। बहुत देर तक वहाँ रहकर माँ नीचे उतर आई। तदनन्तर मुँह-हाथ धोकर थोड़ा-सा जलपान करने के बाद माँ मुँह ढककर सो गई। लगभग एक बजे माँ का भोग लगा। आज भी बहुत-से लोग माँ के दर्शनों के लिए आये हैं। कमरे में जगह नहीं थी इसलिए माँ बाहर आकर बैठी। इस मठ के महन्त ब्रह्मचारीजी माँ का खूब ही आदर कर रहे हैं। रोज ही माँ के लिए अपनी रसोई में से सब कुछ थोड़ा-थोड़ा भिजवा देते हैं। दोपहर के बाद ब्रह्मचारीजी आये हैं, माँ के साथ बातें हो रही हैं। और भी अनेक लोग आये हैं। माँ इस आश्रम के ब्रह्मचारीजी को देखते ही बोल उठी-''पिताजी, तुम आये हो; इन लोगों से कुछ कहो। मैं तो तुम्हारी लड़की हूँ, मैं तो कुछ भी नहीं जानती''। ब्रह्मचारीजी ने कहा- ''तुम तो कहती हो लड़की, पर मैं समझता हूँ माँ। तुम तो कुछ नहीं जानती; किन्तु यह जो आज कई दिनों से इतने लोग यहाँ आ रहे हैं, तुम्हारी मधुर बातें सुनने के लिए मुँह की ओर टकटकी लगाये हैं! मैं तो आज 17-18 वर्षों से यहाँ बैठा हूँ पर कभी इतने लोगों को इकट्ठा नहीं कर सका। असल बात यह है कि ये लोग तुम में जो आनन्द देखते हैं वह आनन्द इन लोगों को मिला नहीं है, इसलिए तुम्हारे पास आये हैं। तुम्हारी मधुर वाणी सुनने के लिए मुख की ओर दृष्टि लगाये हैं।''

मनुष्य खंड आनन्द से तृप्त नहीं होते, इसलिए अखण्ड आनन्द की खोज करते हैं

माँ ने मुस्कुराकर कहा- ''पिताजी, यदि ऐसा कहो तो कहना होगा कि मधुर का आस्वाद ये जानते हैं। इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि सब कुछ अपने में ही है। खण्ड आनन्द से मन तृप्त नहीं होता, इसलिए मनुष्य अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिए अखण्ड की खोज करता है। शान्ति

और आनन्द सब चाहते हैं। मगर इस लौकिक शान्ति और आनन्द से लोग तृप्त नहीं होते, पूर्ण शान्ति और आनन्द की खोज करते हैं तो यह मानना होगा कि इस पूर्ण आनन्द का अनुभव उन्हें है। इसीलिए तो मनुष्य इस खण्ड आनन्द से तृप्त नहीं होते। इसलिए साधन की आवश्यकता है। कल्पना करो सभी को समुद्र में जाना होगा किन्तु जाने के मार्ग अनेक हैं। तुम लोग इस लड़की के अनुरोध की रक्षा करो, सब लोग उस ओर अग्रसर होने के लिए थोड़ा-थोड़ा समय देना। घर में तो लड़के-लड़कियों के कितने ही अनुरोधों की रक्षा करते हो, इस लड़की के इस अनुरोध की भी जरा रक्षा करना।''

एक व्यक्ति ने कहा-''माँ, जब हम देखते हैं कि मनुष्य के इच्छा करने पर भी कुछ नहीं होता, डाक्टर रोगी को बचाने के लिए कितनी ही चेष्टा करता है परन्तु बचा नहीं पाता। वकील मुकदमा जीतने के लिए कितनी इच्छा और कितना प्रयत्न करता है किन्तु फिर भी सफलता नहीं मिलती। किसान कितना परिश्रम करता है, आशा करता है कि खेत में अच्छी फसल उपजेगी, किन्तु उसकी वह आशा पूर्ण नहीं होती। मनुष्य में जब कुछ भी शक्ति नहीं है तब 'वे' (भगवान्) जैसा करवायेंगे वैसा ही होगा। उस ओर भी यदि 'वे' ले जायें तभी हम जा सकेंगे, अन्यथा हमारी चेष्टा से कुछ होना-जाना नहीं है।'' माँ ने कहा-''देखो, यह बात कहने के हम अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि यह जो 'वे' कह रहे हो यह केवल कहने की बात है। वास्तव में हमारा उनके साथ कोई परिचय ही नहीं हुआ है। वास्तविक साधन-भजन करते-करते एक ऐसी अवस्था प्राप्त होती है, जब मनुष्य समझ सकता है कि मुझमें कुछ क्षमता नहीं है, वे जैसा करा रहे हैं वैसा ही मैं कर रहा हूँ।

साधन भजन के लिए प्रयत्न चाहिए

इस समय जो तुम लोगों से प्रयत्न करने को मैं कह रही हूँ, वह है जितना तुम कर सको उतना करो अर्थात् जितनी तुममें शक्ति है उसे भजन-साधन में लगाओ। तदनन्तर 'वे' जो करेंगे वही होगा-यह अत्यन्त सत्य बात है। किन्तु वह अनुभूति है कहाँ? वास्तव में वह अनुभूति आने पर तो दुःख-कष्ट कुछ भी शेष नहीं रहता। तुम लोग जैसे अहंबुद्धि द्वारा लिखना-पढ़ना, काम-काज सब कुछ कर रहे हो वैसे ही उस ओर जाने के लिए

भी थोड़ा-थोड़ा प्रयत्न करो। सब कुछ हम कर सकते हैं ऐसा समझते हो, पर धर्म कार्य की बात उठने पर कहते हो 'वे' यदि न करावें तो हम कैसे करेंगे? यह बात नहीं कही जा सकती।'' एक व्यक्ति ने कहा-''माँ, गीता में लिखा है''-माँ ने कहा-''उस अवस्था के स्थायी होने के लिए ही उस ओर का थोड़ा काम करने को कहा जा रहा है। मैं तो कुछ कहती नहीं हूँ, तुम लोग जो कहलवा रहे हो वही कहा जा रहा है।'' स्टेशन मास्टर आये हैं। माँ ने कहा-''सब ओर की मास्टरी करनी चाहिये।'' बातें करते-करते साँझ हो गई, सब लोग माँ को प्रणाम कर विदा हुए।

मन्त्र सीखने से मन्त्र-शक्ति दिखाई पड़ती है

सन्ध्या के बाद फिर दो-चार भद्र पुरुष आये; एक कविराज कह रहे हैं, ''अच्छा माँ, साधारण लोगों में भी कैसी अद्भुत महाशक्ति देखी जाती है, जैसे ओझा लोग भूत झाड़ने का मन्त्र सीखकर भूत झाड़ते हैं। भवसागर पार होने के लिए जप आदि तो कितने ही लोग करते हैं, किन्तु मैं उनमें मन्त्रशक्ति कुछ भी नहीं देखता।'' माँ ने कहा-''मन्त्र सीखकर क्या कहते हो पिताजी, बात यह है कि इन सब लौकिक मन्त्रों का सीखना सहज है उस मार्ग के मन्त्रों को भी यदि सीख सको तो निश्चय ही मन्त्रशक्ति भी देख सकोगे-किन्तु उस ओर का मन्त्र तो सीखा ही नहीं गया। पर जितना थोड़ा-बहुत सीखते हो, उतना फल होता है। गुरुशक्ति की क्रिया तो अवश्य ही है।'' उस आदमी ने कहा-''किन्तु जप आदि तो सभी करते हैं।'' माँ ने कहा-''वह यदि इतना सहज होता तो दुर्लभ वस्तु नहीं कहा जाता। कितने ही ऋषि-मुनि युगयुगान्तर तक साधना कर गये हैं-यह बात भी न रहती।'' वार्तालाप के बाद सबने माँ का प्रणाम कर विदा ली।

12 माघ, सोमवार- आज सवेरे उठकर माँ पहाड़ पर नहीं गई। प्रात:काल की चटगाँव की गाड़ी से सुरेन्द्र घोषाल और द्विजेन्द्र घोषालजी सपरिवार आ पहुँचे। उपेन्द्रपालजी की स्त्री भी आई हैं। यशोदा घोषाल और चन्द्रनाथ घोषालजी की स्त्री पहले ही आ गई हैं। वे आकर चन्द्रनाथ के दर्शन को गई। लगभग 10-11 बजे माँ सो गयी। डेढ़ बजे के करीब सब लोग चन्द्रनाथ से लौटे। माँ के जागने पर सब माँ के साथ सत्संग का आनन्द ले रहे हैं। माँ बातचीत के सिलसिले में शची दादा की बहिन मनोरमा दीदी की पति-भक्ति और सबके प्रति सेवाभाव की प्रशंसा कर रही हैं। कह

रही हैं- ''ऐसा भाव प्राय: नहीं देखा जाता? एक दिन मैंने उसके सिर के बालों से क्रीड़ा की। किसी दूसरे दिन बालों को अपने गले में लपेटकर मैंने कहा- ''मेरा मफलर है। वह यदि मर जाय तो मेरा मफलर भी चला जायेगा। तुम लोग इनको काटकर रख देना।'' सुना है विधवा होने के बाद उसकी माँ ने उसके बाल नहीं काटने दिए। अब मैंने सुना है कि उसके स्वामी ने उसके बालों का बड़ी यत्न की थी। उसने भी बालों को बिछाकर उन पर अपने स्वामी को सुलाया था। मैंने तो ये सब बातें पहले उससे सुनी नहीं थी।'' तदनन्तर एक बार मनोरमा ने मुझे अकेले में बुलाकर पूछा, ''माँ, तुमने मेरे बालों के साथ इतना खेल क्यों किया?'' उस पर मैंने कहा-''देखो शायद तुम्हारे स्वामी की स्मृति और तुम्हारे प्रेम की तीव्र इच्छा-उसके उपलक्ष्य रूप से होने के कारण बालों को रख देने को मैंने कहा है। वास्तव में मैं तो कहती हूँ कि मैं कुछ भी नहीं कहती, तुम लोग ही कहला लेते हो। और भी तो कितनों के बाल सुन्दर हैं, किन्तु तुम्हारे बालों के विषय में यह सब क्यों हुआ?'' माँ के कथन से सचमुच ही शची बाबू ने अपनी बहिन के एक गुच्छे बाल काटकर शीशी में बँधवा रखे हैं और मनोरमा दीदी ने भी अपने बालों से माँ के पैर के जूते और मफलर बना दिये हैं। मनोरमा दीदी की बातें माँ ने हँसते-हँसते कही- ''अच्छा, पुरुष कौन है?'' अनेक पुरुष पास ही थे। वे हँसने लगे। माँ हँसते हुए महिलाओं से कह रही हैं-''देखो, तुम लोग भी जैसे पति के मुँह की ओर देखती हो, कुछ माँगती हो, पुरुष भी अन्य किसी से माँगते हैं, प्रार्थना करते हैं, इसलिए वे भी स्त्रियाँ हैं। जो पुरुष होगा उसमें किसी प्रकार की इच्छा, चाह या अभाव रहेगा ही नहीं। वह स्थिर और धीर रहेगा। फलत: सब उस परम पति को चाह रहे हैं। इसलिए सभी स्त्रियाँ हैं।'' यह कहकर माँ हँसने लगी। सन्ध्या समय चटगाँव के दल के कई लोग चले गये। जो रह गये वे माँ के साथ बरामदे में बैठे हैं। रात होने पर माँ को साथ लेकर सब भीतर गये। माँ कमरे में जाकर बैठी। एक आदमी अपने पोत्रों के लिए 3 जोड़ी करताल लाये हैं, माँ एक जोड़ा करताल लेकर बजाते-बजाते मधुर स्वर में हरिबोल-हरिबोल कहने लगी। साथ-साथ सभी हरिबोल-हरिबोल कहने लगे। माँ को कभी भी करताल हाथ में लेते मैंने नहीं देखा था; आज ही पहले-पहल करताल लिये देखा, किन्तु आश्चर्य की बात है कि माँ ने ऐसे सुन्दर ढंग से करताल बजायी

कि मालूम पड़ता था मानों इन्हें सदा से ही बजाने का अभ्यास है। और भी अनेक बातें कहकर कितना आनन्द कर रही हैं। भाँति-भाँति की बातें कहकर आनन्द करती हैं इसीलिए सभी लोग आनन्दित होते हैं। सहसा माँ बोल उठी, ''गोपालजी याद करते हैं।'' ज्योतिष दादा से मैंने सुना है कि मीरा (गोपालजी की स्त्री) मर गयी हैं। रात्रि में लगभग 11 बजे सब लोग विश्राम करने गये। जटू, हीरू, गणेश, रमेश, शीतल ठाकुर (चटगाँव राजराजेश्वरी मन्दिर के पुजारी), दामू आदि लड़कों के साथ रहने के कारण कामकाज में खूब सुविधा हो रही है। पहाड़ के ऊपर जल ले जाना, बर्तन माँजना आदि काम वे बहुत आनन्द से दौड़-दौड़कर कर रहे हैं। जो रुग्ण लोग आये हैं, वे भी कह रहे हैं कि यहाँ आकर इतनी असुविधा में भी किसी को रोग-क्लेश नहीं हो रहा है। आज एक स्त्री सुरेन घोषालजी के साथ आई थी। उन्होंने कहा-मेरा पैर एकदम बेकार हो गया था, बिलकुल भी चल नहीं सकती थी। एक दिन स्वप्न में मैंने देखा कि आनन्दमयी माँ के समीप जाने से मुझे आरोग्य प्राप्त हुआ है। मेरे पिताजी ढाका में रहते हैं, बहुत इलाज के अनन्तर कुछ लाभ हुआ। इसके बीच में 7 दिनों के लिए माँ भी ढाका गई। समाचार पाते ही पिताजी मुझे साथ लेकर माँ के आश्रम में गये। माँ उस समय मैदान में बरगद के पेड़ के नीचे बैठी थी, बाद में माँ उठकर जब आश्रम में गई मैं भी साथ-ही- साथ आश्रम में जा सकी। तभी से मैं धीरे-धीरे चंगी हो गई हूँ।

13 माघ, मंगलवार- आज माँ प्रातःकाल करीब 7 बजे उठी। मुँह-हाथ धोकर थोड़ा दूध पीया। कुछ देर इधर-उधर टहलकर 11 बजे माँ सो गई। 2 बजे माँ का भोजन हुआ। आज भी माँ ने करताल लेकर बजाते-बजाते गाना आरम्भ किया।

''जय राधे राधे, कृष्ण कृष्ण हरे राम हरे हरे।
ए नाम बल बदने, सुनाओ काने, बिलाओ जीवेर द्वारे द्वारे।।

अपराह्न के बाद बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिए आये। स्टेशन मास्टर बाबू प्रतिदिन सायंकाल आते हैं। जो भक्त चटगाँव से प्रातःकाल आकर सन्ध्या को फिर चटगाँव वापस चले जाते हैं वे स्टेशन मास्टर के साथ-ही-साथ सन्ध्या के पहले ही उतर जाते हैं। माँ हँसकर कहती-''तुम तो पारकर्त्ता हो, पारकर्त्ता के पीछे-पीछे रहते हुए पार होने की चिन्ता नहीं

रहती।'' मास्टर बाबू ने पूछा-''माँ हम संसारी जीव हैं, हम लोगों के लिए क्या उपाय है?'' माँ ने कहा-''केवल नाम, मैं जानती हूँ, नाम से ही सब कुछ हो जाता है। जितना अधिक समय दे सको भगवान् के लिए दो। नाम-जप अधिक न कर सको तो भगवान् के सम्बन्ध की चर्चा करो अथवा नाम संकीर्तन या धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करो-जैसे भी हो अधिक समय उनकी ओर मन को लगाने की चेष्टा करो।'' सन्ध्या के बाद ज्योतिष दादा ने 'माँ-माँ' नाम गाया, सबने मिलकर उनके साथ योग दिया। बहुत देर तक नाम-कीर्तन हुआ। रात में लगभग 11 बजे सब लोग विश्राम करने गए। माँ भी सो गई। किन्तु माँ का भाव कुछ अन्य प्रकार का हो रहा था। मानो कैसा शिथिल और निस्तब्ध (जड़) भाव है, रात्रि में भी केवल करवटें बदलती रही। न मालूम क्या होगा?

14 माघ, बुधवार- आज भी माँ उठते ही पहाड़ पर चली गई। लगभग 8 बजे पहाड़ पर से उतरकर मुँह धोते ही बोली-''चलो, हम लोग थोड़ा घूम आवें।'' यह कहते ही नीचे उतर गई। साथ-ही-साथ मैं, ज्योतिष दादा तथा स्वामी अखण्डानन्दजी चले। नीचे उतरते ही भोलानाथजी के पास जाकर माँ ने कहा-''चलो हम सब शम्भूनाथ के मन्दिर में जावें।'' तुरन्त सब चल पड़े। माँ बोली-''वहीं खाना-पीना होगा।'' यह सुनकर जटू आदि लड़कों का दल बड़ी खुशी से साज-सामग्री लेकर रवाना हुआ। माँ उसी समय रवाना हो गई। आज माँ ने चन्द्रनाथ बाबू की स्त्री का नाम सामवेद, विनोद बाबू की स्त्री का नाम यजुर्वेद, यशोदा बाबू की स्त्री का नाम ऋग्वेद एवं यशोदा बाबू की भगिनी का नाम अथर्ववेद रखा। चे चारों महिलाएँ आकर कई दिनों से माँ के साथ-साथ हैं। राह चलते-चलते एक ने आकर पूछा,''तुम्हारा घर किस देश में है?''

माँ ने उत्तर दिया, ''नहीं देश में।'' ''कौन जिला?'' ''ब्रह्म जिला।'' सब इसी तरह बातों से आनन्द करते-करते चले। फिर दूसरे ने यही बात पूछी, ''घर कहाँ है?'' उत्तर मिला ''ब्रह्म नगर।'' ''तुम्हारे कौन-कौन हैं''? उत्तर में माँ बोलीं, ''आत्मानन्द।''

सभी काम ठीक ढंग से करना आवश्यक है

उसने समझ लिया कि सच ही होगा। एकाएक माँ शम्भूनाथ के मन्दिर

में जा पहुँची। वहीं शम्भुनाथ को भोग लगाकर सब प्रसाद पावेंगे यह स्थिर हुआ। माँ को आज खाना नहीं है। मैंने अपने हाथ से भात पका लिया। क्योंकि किसी दूसरे के हाथ का खाने का मुझे निषेध है। माँ का नियम ऐसा ही कठोर है कि मुझसे उन्होंने नियमानुसार रहने को कहा है, इसीलिए माँ का प्रसाद यदि कोई छू ले या मिठाई छू जाय तो माँ ने उसे लेने की मुझे मनाही की है। माँ कहती हैं, सभी काम ठीक-ठीक ढंग से करने की आवश्यकता है। सारा दिन पहाड़ पर कट गया। पण्डों ने माँ से प्रार्थना की, ''भक्तों के साथ सन्ध्या तक रहकर यदि आप आरती देखकर जायँ तो हम बहुत आनन्दित होंगे।'' वही हुआ। पण्डों ने शम्भूनाथ की आरती के बाद माँ के निकट आकर माँ की आरती उतारी। सन्ध्या समय उन्होंने दूसरी बार नाना प्रकार के प्रसादों से भक्तों के भोजन की व्यवस्था की। माँ ने सन्ध्या समय सबसे स्थिरता से बैठने को कहकर नाम-कीर्तन आरम्भ किया-''जय शिव शंकर, बम् बम् हर हर।''

सबने स्थिरता के साथ बैठकर साथ-साथ नाम-कीर्तन किया। उस निर्जन पहाड़ पर जमकर बैठी माँ नाम-कीर्तन करा रही हैं, भक्त भी चारों ओर बैठकर वह नाम ले रहे हैं-एक विचित्र निस्तब्धता से सबका हृदय भर आया। रात को लगभग 9 बजे पण्डों ने प्रचूर मात्रा में भक्तों को जलपान कराया। माँ ने भी थोड़ा जल-पान किया। रात में लगभग 10 बजे हम लोग माँ के साथ मठ को रवाना हुए। चाँदनी रात थी-भक्त लोग 'माँ'-'माँ' कीर्तन करते हुए माँ के साथ चले। माँ भी ताली बजा-बजाकर भक्तों को उत्साहित कर रही थी। क्या ही अद्भुत आनन्द था! उसका भाषा द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। मठ में आते ही माँ जाने कैसे एकदम चुप हो गई। सो गई, फिर बोली नहीं। माँ का यह भाव देखकर सब लोग चुपचाप सो गये।

माँ की मौन अवस्था में स्थिति

15 माघ, बृहस्पतिवार– आज भी माँ पहाड़ पर चली गई। वहाँ जाकर भी चुपचाप बैठी हैं। माँ के जिस भाव को देखने पर भय लगता है आज वही भाव है। कैसा एक अद्भुत भाव है! आज किसी ओर भी माँ का लक्ष्य नहीं है। माँ जब हम लोगों के तुल्य होकर खेल करती तभी हमें

माँ के साथ हिल–मिलकर रहने का साहस होता। किन्तु माँ की इस अवस्था से न जाने कैसा भय लगता है। माँ की निस्तब्धता को भंग करने का साहस नहीं होता है। मैंने पहाड़ पर जाकर माँ को थोड़ा–सा दूध पिला दिया। बहुत थोड़ा–सा दूध पीकर ही माँ ने मना किया–फिर पीया नहीं। अनुरोध करने का मुझे साहस नहीं हुआ। दोपहर को भी प्रायः कुछ नहीं खाया। शौच भी अद्‌भुत–सा होना आरम्भ हुआ है–कहती हैं–''जो खाती हूँ थोड़ा रंग बदलकर ठीक वही निकल जाता है।'' खाने–पीने के बाद भी पड़ी रही। भोलागिरि महाराज के आश्रम के ब्रह्मचारी (दशरथ) माँ को अपने आश्रम में ले जाने के लिए बहुत अनुरोध कर रहे थे; आज अपराह्न में माँ वहाँ जायेंगी, यह निश्चय हुआ। 3 बजे के समय ही वे कीर्तन के साथ आकर माँ को नीचे उतार ले गये। मठ के महन्त ब्रह्मचारी स्वरूपानन्द को माँ ने स्वयं जाकर पुकारकर साथ ले लिया। चलते समय माँ ने कहा–''पिताजी आगे–आगे चलेंगे, लड़की पीछे–पीछे जायेगी।'' ऐसा ही माँ का नियम है, उसमें किसी अंग की भी त्रुटि नहीं होती। इस व्यवहार से ही विरोधी मत के लोग भी माँ के प्रति श्रद्धा रखते हैं। आश्रम में जाकर सब बैठे। माँ के लिए उन्होंने ऊँचा आसन बनाया है, किन्तु माँ वहाँ जाकर नीचे सबके साथ ही बैठ गई, थोड़ा–सा कीर्तन हुआ। तदनन्तर दशरथ ब्रह्मचारी ने खड़े होकर कहा–''सीताकुण्ड वासी धन्य हुए हैं, आज सात दिन हुए माँ ने यहाँ आकर सबको धन्य किया है''–इत्यादि। वहाँ ''कृष्ण बड़े हैं, या शिव बड़े है'' इस विषय पर तर्क उपस्थित हुआ। माँ ने हँसते हुए कहा–''सब ठीक है, जो जिस स्थान से जो कह रहा है, ठीक ही कह रहा है।'' विविध वार्तालाप के बाद ब्रह्मचारियों ने अपने गुरु गिरि महाराज की आरती करके उसी तरह माँ की भी आरती उतारी। तदनन्तर दशरथ ब्रह्मचारी ने माँ को अपने हाथ से खिला दिया। भक्तों को भी बड़े आदर के साथ खिलाया। आज भी रात के प्रायः 10 बजे शंकर–मठ में लौटना हुआ। सोने को जाने से पहले मैं माँ को थोड़ा जलपान कराने बैठी। खाने के बाद भी माँ बैठे–बैठे बातें कर रही हैं– किन्तु भाव वैसा ही है। एक बात पर भोलानाथजी ने जैसे ही कहा–''यह हुआ क्यों?'' वैसे ही एकाएक माँ ने भोलानाथजी के इस भाव की बात के उत्तर में कहा–''जो होनेवाला है वह होगा ही। जो लिखा है उसका दिखना निश्चित है।'' यह कहकर

हँसने लगी। फिर बात उठी-शाहबाग में कीर्तन के समय धूप की गन्ध मालूम पड़ी थी, किन्तु धूप दी ही नहीं गयी थी। इस बात पर माँ ने कहा- ''सूक्ष्म शरीर-धारी लोग भी तुम लोगों के काम में सहायता करते हैं। जो जिस भाव के हैं उस भाव के काम में वह सहायता करने आते हैं-सर्वदा ही वे ऐसा करते हैं। केवल तुम लोग उन्हें देख नहीं पाते। बहुत रात बीते माँ ने विश्राम किया। किन्तु आज भी माँ का वही भाव है-तनिक भी चुप नहीं हो रही हैं। बात करने में भी मानो भय लग रहा है। जाने किस प्रकार के एक विचित्र भाव में हैं। बोली-''हाथ-से-हाथ सँट गया है खोला नहीं जा सकता।'' मेरे जल्दी-जल्दी जाकर खोल देते ही माँ ने मुँह टेढ़ा करके कहा-''इससे कुछ नहीं होता, वह दिन अब नहीं है। इस तरह कितने दिन शरीर टिकेगा, 40 वर्ष तो प्राय: बीत चुके हैं।'' इस बात से मेरा मन दहल गया। किन्तु उपाय नहीं, माँ उसी तरह जाकर सो गई।

* * *

सड़सठवाँ अध्याय

नाम भी लो और नामी के ऊपर निर्भर भी रहो, जैसे रोगी वैद्य के ऊपर निर्भर रहता है

16 माघ, शुक्रवार– आज चटगाँव लौटने की बात है। अपराह्न 3 बजे की गाड़ी से जाना होगा। माँ ने जल्दी-जल्दी खाना-पीना समाप्त करने को कहा। सबने मिल-जुलकर जल्दी-जल्दी खाना पीना समाप्त किया।

माँ चली जायेंगी इस पर सीताकुण्ड-वासी दुःख प्रकट कर रहे हैं। आश्रम के महन्त ब्रह्मचारी स्वरूपानन्द भी बहुत दुःख व्यक्त कर रहे हैं। लगभग 2 बजे माँ सबको साथ लेकर रवाना हुई। सारे मार्ग में लोग खड़े होकर माँ के दर्शन कर रहे हैं, प्रणाम कर रहे हैं, कोई-कोई रो रहे हैं। मैंने सुना, मैं जब नीचे रसोई बना रही थी तब मेहार काली-मन्दिर के एक साधु और उनके साथ डाक्टर अतुल बाबू माँ के समीप आये थे। इनके साथ भोलागिरि के आश्रम में भेंट हुई थी। अतुल बाबू ने माँ को दार्जिलिंग दिखलाया था, दूसरी बार अप्रत्याशित रूप से माँ को यहाँ पाकर वे आनन्द के मारे आत्मविस्मृत हो उठे। उन्होंने माँ से कहा-''माँ, दार्जिलिंग को भी डुबा देकर आई थी- फिर यहाँ तुम्हारे दर्शन हुए।'' आज मठ में आकर उन्होंने देखा माँ पहाड़ पर घूमने गयी हैं, वे नीचे बैठकर माँ-माँ कहकर रोते-रोते पुकारने लगे। माँ भी एकाएक पहाड़ से उतर आई। माँ के दर्शन कर उन्होंने आनन्द से माँ के दोनों चरण पकड़ लिये एवं बहुत देर तक माँ के समीप बैठकर वार्तालाप करके उन्होंने विदा ली। अस्तु, माँ धीरे-धीरे जाकर स्टेशन पहुँची। अनेक लोग आये हैं। स्टेशन मास्टर भी आये हैं। गाड़ी आने में अभी कुछ देर है। स्टेशन मास्टर ने कहा-''माँ कुछ भी तो नहीं होता।'' माँ ने कहा-''नाम भी लेना चाहिये और उस नाम में रुचि होने के लिए आहार-विहार भी नियमानुसार करना चाहिये। जैसे औषध सेवन करने पर पथ्य भी ठीक-ठीक ढंग से करना आवश्यक है। अन्यथा रोग से छुटकारा नहीं मिलता। तुम एकदम रोगी हो जाओ, उस वैद्य के ऊपर भार सौंपकर बैठे रहो। जैसे डाक्टर के कथनानुसार औषध तो खाते हैं-फिर उठना-

बैठना, चलना-फिरना तक डाक्टर के कथनानुसार करना पड़ता है, तभी फल प्राप्त होता है।'' ये सब बातें करते-करते गाड़ी आ पहुँची। स्वरूपानन्द ब्रह्मचारी भी स्टेशन पर आये हैं। आज 18 वर्षों से वह इस तरह एक ही स्थान पर है फिर भी आज उनका हृदय माँ के लिए बहुत व्याकुल हो रहा है। माँ हँस-हँसकर कह रही है-''होगा ही तो-लड़की के लिए पिता का मन उदास होगा ही।'' साथ ही 'बाबा-बाबा' कहकर पुकार रही हैं। उससे बाबा की दशा और भी खराब हो रही है। मार्ग में जो लोग प्रणाम कर रहे थे, उनमें प्राय: सभी गरीब गृहस्थों के घर की स्त्रियाँ थी। माँ सबसे ही, ''माँ, तो मैं चलूँ'' कहकर जरा मुस्कुराते हुए दोनों हाथ जोड़े उनकी ओर देखकर उनकी व्याकुलता और भी बढ़ा रही थी। किसी-किसी ने तो माँ को पकड़कर रो भी दिया। सीताकुण्ड-वासी सभी कह रहे हैं- ''माँ को फिर कब देख पावेंगे?'' माँ ने कहा-''तुम लोग रोज शाम को मठ में जाते हो, अब से उस समय जिसे जो नाम अच्छा लगे वही थोड़ा लेना, मुझे यदि खयाल हुआ तो मैं भी उस समय तुम लोगों की बात का स्मरण करूँगी।'' इस तरह सबसे विदा होकर माँ गाड़ी में बैठी। गाड़ी में बैठते ही माँ लेट गई।

शाम को लगभग 5 बजे चटगाँव पहुँचे। घोषाल बाबू आदि अनेक लोग स्टेशन पर उपस्थित थे। उपेन्द्रपालजी की मोटर से माँ काली-मन्दिर में आई। गत बार काली-मन्दिर के महन्त ने माँ से इस विषय में विशेष अनुरोध कर दिया था। आज भी वे स्टेशन जाकर माँ को ले आये। शशी बाबू आदि अनेक लोग स्टेशन पर थे। आते समय द्विगेन्द्र और सुरेन्द्र बाबू के आग्रह से माँ उनके घर हो आई। माँ सन्ध्या के बाद यशोदा बाबू के घर पर थोड़ा-सा जलपान कर आई। बहुत लोग दर्शन करने आये हैं। राधा-माधव कुटीर के सुरेन बाबू आदि ने आकर कीर्तन आरम्भ किया। गत बार भी इनके कीर्तन में सभी को खूब आनन्द प्राप्त हुआ था। माँ बैठी हैं। महिलाएँ और पुरूष माँ को घेरे बैठे हैं। पँटिया के आश्रम के हेम बाबू ने आकर माँ के चरणों में प्रणाम किया। ये शाहबाग में माँ के समीप बहुत जाया करते थे। बहुत वर्षों से उनकी माँ के साथ भेंट नहीं हुई, किन्तु माँ इन्हें देखते ही बोली, ''कैसे हो?'' इतना कहकर हँसते हुए माँ ने कहा- ''मैंने ठीक पहिचाना है न?'' उन्होंने कहा-''माँ, तुमने ठीक पहिचाना है।''

कीर्तन होने लगा। एक बात लिखना भूल गई हूँ। सीताकुण्ड में गिरि महाराज के आश्रम में एक भद्र पुरुष ने प्रश्न किया था-"माँ, मैं यदि हरि-हरि बोलता हूँ तो उसी से बहुत हो गया-फिर दीक्षा की क्या आश्यकता है? और यदि ऐसा ठीक है, तो मैंने यदि सारी जिन्दगी हरि-हरि कहा, फिर कुलगुरु ने आकर मेरी 50 वर्ष की अवस्था में मुझे शक्ति-मन्त्र दिया तब क्या होगा?" माँ ने कहा-"तुम तो यह जानते नहीं हो कि किस नाम से तुम्हारा कल्याण होगा। किन्तु अन्तर्द्रष्टा गुरु तुम्हारा भाव जानकर तुम्हें मन्त्र देंगे। कुछ दिन साधना करने पर तुम्हें ज्ञात होगा कि वही नाम तुम्हारे लिए आवश्यक था, किन्तु उस समय तुम्हें यह ज्ञात नहीं था। देखो, वास्तव में यदि तुम भगवान को चाहो तो तुम्हारी कुछ गड़बड़ी ही नहीं हो सकती। फिर यदि तुम निश्चय कर लो कि हरि-हरि बोल रहा हूँ इस नाम से ही मेरा कल्याण होगा मुझे दीक्षा की आवश्यकता नहीं है तो उसी से तुम्हारा काम कैसे हो जायेगा? जानते हो, जैसे मैं तुम्हारा अच्छा नाम नहीं जानती फिर भी तुमको यदि मैं तुम्हारे साधारण नाम से ही पुकारूँ तो भी तुम मेरे पास आओगे। आकर फिर तुम्हीं कहोगे, "मेरा अच्छा नाम यह है, जैसे देखो टुनू मिनू पुकारने के नाम रहते हैं, परन्तु स्कूल में या नौकरी करते समय, रजिस्ट्री बही में तुम लोग अपना अच्छा नाम ही लिखाते हो, वैसे ही और क्या "-कहकर माँ हँसने लगी। वह सज्जन बोले-"अच्छा, न जाने कुलगुरु कैसा मार्ग दिखावेंगे जो कि स्वयं ही मार्ग नहीं जानते। किन्तु यदि कुलगुरु से दीक्षा न लेकर किसी साधु संन्यासी से दीक्षा लूँ तो देश के लोग गाली-गलौच करेंगे कि देखो इसने कुलगुरु का त्याग किया है।" माँ ने कहा-"देखो एक तो पहलू यह है कि जिसके प्रति हृदय में भक्ति होगी उसी से दीक्षा लेनी चाहिए। क्योंकि भीतर-ही-भीतर नाराज रहकर रस्म अदा करने के समान तुमने यदि दीक्षा ली तो उससे काम नहीं होगा। दूसरा पहलू यह है-यदि मैंने कुलगुरु का त्याग किया ऐसा मन में थोड़ा संशय रहे तो कहती हूँ-एक नन्हे बच्चे ने तुम्हें कोई एक बीज दिया, तुम भी नहीं जानते कि वह बीज किसका है, बच्चा भी नहीं जानता; किन्तु यदि तुम जमीन में रोपकर उसकी रक्षा करो तो कुछ दिनों के बाद पेड़ और फल अवश्य ही होगा। तब तुम यह जान सकोगे कि वह बीज किसका था। तुम्हें अथवा बच्चे को जिस बीज के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं

था उससे पेड़ या फल होने में कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हुई। असल बात है साधना। यदि साधना करो, समय लगाओ, भगवान् को यथार्थ में चाहो तो देखागे कि सब ठीक मिल जावेगा। क्योंकि वे तो स्वयं-प्रकाश हैं। बहुतों ने कहा-''उनकी कृपा होने पर ही हम उन्हें चाहेंगे।'' माँ ने कहा-''यह जो 'वे' या 'उन्हें' कह रहे हो इससे जाहिर होता है कि अभी तक उनके साथ तुम्हारा परिचय ही नहीं हुआ है। केवल मुँह से ही कह रहे हो 'उनकी इच्छा'।

उनकी इच्छा हुए बिना कुछ नहीं होता यह सत्य है किन्तु वास्तव में ऐसा कहने के सब लोग अधिकारी नहीं हैं; काम करना चाहिए

तुम लोग पढ़-लिखकर परीक्षा पास करते हो, घर गृहस्थी चलाते हो, कितने कामधाम करते हो, यह हमारी निजी शक्ति है, ऐसा सोचते हो उसी से भगवान् को भी जरा पुकारो। उस समय उनकी इच्छा कहकर बैठे रहने से कैसे काम चलेगा? उनकी इच्छा हुए बिना कुछ भी काम नहीं होता, यह अत्यन्त सत्य बात है; वास्तव में ऐसा कहने के हम अधिकारी ही नहीं हैं। रात में लगभग 2 बजे माँ विश्राम करने लगी।

परैकोड़ा आगमन

17 माघ शनिवार- आज 12 बजे परैकोड़ा ज्योतिष दादा के घर चलने की बात है। उसी का प्रबन्ध होने लगा। माँ प्रात:काल उठी हैं। घोषाल परिवार के भी अनेक व्यक्ति आये हैं। भाग्यकुल नगर के राजा श्रीनाथ की कन्या-उपेन्द्रपाल की स्त्री-माँ के लिए भोजन बना लायी हैं। आज माँ के खाने का दिन है। माँ का मुँह धुलाकर थोड़ा जलपान करा दिया गया। और भी 1-2 घरों में जरा पदधूलि देने के लिए विशेष अनुरोध कर माँ को ले गये। लगभग 1 बजे माँ के साथ सब भक्त परैकोड़ा को रवाना हुए। तीन वेद तथा अन्यान्य बहुत से लोग साथ थे। फोटोग्राफर शशिभूषण दासगुप्तजी का मकान भी इसी गाँव में है और वे भी माँ के पुराने भक्त हैं। इस बार भी उन्होंने माँ के अनेक फोटो उतारे हैं। शशी बाबू भी साथ आये हैं। उनके उत्साह से ज्योतिष दादा की जबानी माँ की करुणा की 2-3 घटनाएँ हम लोगों ने सुनी। रात को माँ ज्योतिष दादा की लड़की की चर्चा पर कह रही हैं- ''इस लड़की के विवाह के समय ज्योतिष ने

कहा था, लड़की का वैधव्य-योग है। एक दिन रात में सोने की एक छोटी रकाबी में एक अमृती लाकर उसने मुझे खिला दी। तदनन्तर उस रकाबी के सोने से ही लड़की के विवाह के सब गहने बना दिये। लड़की सधवा मरी यह तो अच्छा ही हुआ है!'' यह कहकर माँ हँसने लगी। हम लोग लगभग 3-4 बजे परैकोड़ा के घाट पर पहुँचे। ज्योतिष दादा का भतीजा कीर्तनकारियों का दल और पालकी लेकर घाट पर माँ को लेने आया है। शशी बाबू का ही यह सब उत्साह है। माँ भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने के लिए थोड़ी देर पालकी में बैठकर उतर गयी। करुणामयी पैदल ही चली। साथ-साथ कीर्तन चल रहा है, बहुत से भक्त हैं- इस तरह ज्योतिष दादा के मकान में जा पहुँची। वहाँ भी बहुत देर तक कीर्तन चला। तदुपरान्त उन लोगों के साथ माधव और मनसा के मन्दिर के बीच के कमरे में जहाँ दुर्गा पूजा होती है, माँ हम लोगों को लेकर विश्राम करने गई। परैकोड़ा में अनेक लोग माँ को अपने मकानों पर ले गये। सबका यह विश्वास है कि माँ की पदधूलि पड़ने से ही घर का मंगल होगा। गंगाचरण बाबू के मकान में उनके भाई सुरेन बाबू ले गये। उनके ठाकुरजी के मन्दिर के दरवाजे पर ही पंचवटी है। सुरेन बाबू ने माँ को दिखलाकर कहा-''माँ, हमारे पिताजी यहाँ बैठकर साधना करते थे।'' माँ ने कहा-''तुम इस जगह को हमारे बैठने के लिए जरा साफ सुथरा रखना'' यह कहकर वहीं गई। वृक्षों का स्पर्श किया। परैकोड़ा सेनों के मकान में जब लोग ले गए तब एक रुग्ण अत्यन्त वृद्ध को पकड़कर माँ के दर्शन कराने के लिए लोग ले आये। बाद में सुना कि माँ के दर्शन करने के पहले दिन तक उस वृद्ध ने बचने के लिए इच्छा प्रकट की थी-कैसे अच्छा होऊँ यही कहता था। किन्तु दर्शन करने के बाद ही कहने लगा-''अब जा सकता हूँ । कैसे उस रोगी वृद्ध का माँ के दर्शनों के बाद से ही इस तरह भाव-परिवर्तन हुआ वह माँ ही जानती हैं। माँ के घूमने-फिरने के ये ही सब कारण हैं या नहीं माँ ही कह सकती हैं। कितनी जगहों पर ऐसा देखा जा रहा है कि माँ के दर्शन किये नहीं किन्तु दर्शनों की एक प्रबल आकांक्षा है- माँ भी वहीं जाकर उपस्थित हो रही हैं। फिर कोई सम्भवत: स्वप्न में या छाया के रूप में दर्शन पा रहा है-बाद में माँ सशरीर वहाँ जाकर उपस्थित हो रही हैं।

परैकोड़ा भ्रमण और कीर्तन

18 माघ, रविवार– आज लगभग 7 बजे माँ उठी हैं। सिन्दूर से माँ का मुख ललाट सब भरा है। मैंने सब साफ कर दिया। जमींदार योगेश बाबू के लड़के माँ के दर्शन करने आये हैं और भी कई लोग आये हैं। योगेश बाबू के लड़के ने माँ से पूछा, "'ॐ' का क्या रूप है? किस तरह साधन करना चाहिये?"

माँ ने कहा–"हर विषय हर समय नहीं कहा जाता, गुरु कह देते हैं और यह सब अनुभव की वस्तु है" इत्यादि। आज मैंने माँ को जरा दूध पिला दिया। 25 पदार्थों से भोलानाथजी को भोग लगाया गया। योगेश बाबू के लड़के माँ से अपने मकान में एक बार चरणधूलि देने के लिए विशेष अनुरोध कर गये हैं। भोजन के अनन्तर लगभग 3 बजे योगेश बाबू का पौत्र माँ को लेने आया। लगभग 4 बजे माँ सबको साथ लेकर योगेश बाबू के मकान में गई। दशभुजा के मन्दिर में जाकर बैठी। बाद में महिलाएँ माँ को भीतर के आँगन (चौक) में ले गई। लगभग 1 घण्टा माँ वहीं रही। इतने में माँ को साथ लेकर गाँव में घूमने के लिए कीर्तन-कारियों का दल वहाँ आ पहुँचा। उसी मकान से बहुत से लोग माँ के साथ-साथ कीर्तन करते-करते गाँव की प्रदक्षिणा कर फिर ज्योतिष दादा के मकान पर लौट आये। मार्ग में अवनी शर्मा के मकान पर भी जाना हुआ। अवनी बाबू ने अपने भाई को टेलीग्राम दिया है कि माँ को एक बार अपने निवास-स्थान पर ले जाना चाहिए। वे किसी आवश्यक कार्यवश नहीं आ सके। और एक पण्डितजी ने माँ को अपने मकान पर ले जाने के लिए विशेष इच्छा व्यक्त की थी। किन्तु सबकी राय न होने के कारण माँ को उस रास्ते से न ले जाकर दूसरे रास्ते से ले जाया गया। पण्डितजी माँ से अपना दुःख निवेदन करते-करते चले,"यदि हमारे घर के निकटवाले रास्ते से माँ जाती तो एक बार स्त्रियों और पौत्र को माँ के चरणों में रख सकता।" वे साथ-साथ चल रहे थे। आश्चर्य की बात है कि कुछ दूर जाने पर ही देखने में आया कि पण्डितजी का पौत्र रास्ते में ही है-घर की स्त्रियाँ भी माँ जिस मार्ग से चली हैं उसी मार्ग के एक किनारे पर आकर माँ को देखने के लिए खड़ी हैं, उन्हें देखकर पण्डितजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी वक्त पौत्र से माँ के चरणों में प्रणाम कराया और बोले-"माँ,

इस पौत्र के लिए ही मैं तुम्हें उस मार्ग से ले जाना चाहता था। तुम्हारी कृपा से मेरी वह इच्छा पूर्ण हुई। मार्ग में क्षीरोद बाबू (जमींदार) ने माँ को प्रणाम किया। अभी वे सभी गाँव में पहुँचे थे। सन्ध्या के बाद क्षीरोद बाबू माँ को अपने मकान के करुणामयी के मन्दिर में ले गये। भक्त लोगों ने कीर्तन करते–करते साथ–साथ जाकर वहाँ भी खूब कीर्तन किया। भोलानाथजी भी खूब मत्त हो गए। चार–पाँच आदमी कीर्तन करते–करते भावावस्था में गिर पड़े। कुछ देर वहाँ रहकर माँ चली आई। आज प्रोफेसर गिरिजा बाबू बाल–बच्चों को साथ लेकर आ पहुँचे हैं। उन्हें दो दिन की छुट्टी मिली है। सब लोग इकठ्ठे होकर कीर्तन कर रहे हैं–"**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे।**" मैंने माँ को जलपान करने के लिए बैठाया है, किन्तु उस ओर उनका ध्यान ही नहीं है, माँ ने हाथों से ताली बजाना आरम्भ किया–"**जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण हरे राम हरे हरे, ओ नाम बलो बदने सुनाओ काने, विलाओ जीवेर द्वारे द्वारे।**" माँ के मुँह से यह नाम–कीर्तन सुनकर सबने यही नाम–कीर्तन आरम्भ किया। विशाल आँगन लोगों से करीब–करीब भर गया है– घूम–घूमकर सब लोग कीर्तन कर रहे हैं। यहाँ भी 2–3 व्यक्ति कीर्तन में भावावेश–वश गिर पड़े। रात में लगभग 12 बजे माँ तथा सब लोग विश्राम करने गये।

19 माघ, सोमवार– आज ज्योतिष दादा माँ को 100 पदार्थों द्वारा भोग देने वाले हैं। शशी दादा सब प्रबन्ध कर रहे हैं। दिन–रात परिश्रम कर वे सबकी सेवा कर रहे हैं। लगभग 150 भोज्य वस्तुओं का आयोजन किया गया है। प्रात:काल बिस्तर पर रहते ही गिरिजा बाबू माँ के साथ कुछ बातें कर रहे थे। माँ बिस्तर पर बैठे–बैठे उत्तर दे रही थी। गिरजा बाबू के साथ कीर्तनकारी ज्योतिषरुद्र आये हैं। बातें करते–करते माँ ने गाना शुरू किया–

1–माँ अमारे दया करो – माँ हम पर दया करो
2–उठ्लो रे रव मधुमाखा – शहद से सनी हुई धुन (ख)गूँजने लगी है
3–ए सब देवता तेत्रिश कोटि – यह सब तैतीस करोड़ देवता हैं
4–किबा ढल ढल रूप – कितना सुन्दर मतवाला रूप है
5–कि जाति कि नाम – कौन जाति क्या नाम
6–के रे नूतन योगी – कौन है यह नवीन योगी

ये कई-एक गाने गाकर माँ ने नाम-कीर्तन आरम्भ किया। ''जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण।'' सबने भाग लिया, पखावज-करताल आये-खूब कीर्तन चला। माँ बैठे-बैठे झूम-झूमकर हाथ उठा-उठाकर कीर्तन कर और करा रही हैं-नेत्र जल से भरे हैं- उस अपूर्व रूप की ओर ताककर सभी मुग्ध हैं। इस बीच में कुछ खाना आया, माँ ने सबको अपने हाथ से बाँट दिया। तदुपरान्त ज्योतिष दादा आकर माँ को मकान के बीच के आँगन में ले गये। वहाँ घूम-घूमकर कीर्तन खूब जम उठा। तदनन्तर माँ के चुप होकर खड़े होने पर भोलानाथजी खूब मत्त हुए। साथ में पुरुषों का दल भी मत्त हो उठा-खूब कीर्तन हुआ। तदुपरान्त एक पण्डितजी ने माँ से गीता का पाठ करने की आज्ञा माँगी। गीता पाठ शुरू हुआ, एकादश अध्याय का पाठ हुआ। पाठ के बाद पण्डितजी कहने लगे-''माँ, आपने अनुग्रह करके हमें जो दर्शन-दिये हैं-उससे ग्राम भी पवित्र हुआ और हम लोग भी पवित्र हुए। हम लोगों का बड़ा सौभाग्य है।'' माँ हाथ जोड़कर कहने लगी-''पिताजी, लड़की से ऐसा न कहो, मैं तो आप लोगों की लड़की हूँ।'' उन्होंने कहा-''माँ, तुम माँ और लड़की सब कुछ हो। तुम क्या नहीं हो? पर हम लोग आपको मातृरूप में ही देखते हैं।'' इस प्रकार वार्तालाप के बाद काली-मन्दिर के एक भद्रपुरुष ने आकर माँ को एक बार काली-मन्दिर में लिवा जाने की प्रार्थना की, भोलानाथजी राजी हो गये। लगभग 11 बजे तक माँ का मुँह तक धोया नहीं गया था। पाठ के बाद माँ का मुँह धोया गया एवं थोड़ा दूध पिलाकर सब लोग माँ को काली-मन्दिर ले गये। वहाँ कुछ देर बैठकर माँ ने कहा-''बहुत अच्छा साधना-स्थान है।'' घाट के निकट सफाई जरा कम थी, माँ ने उस ओर ध्यान देकर कहा-''यह किसकी मिट्टी है?'' उन्होंने कहा-''चूहों की मिट्टी है।'' माँ ने कहा-''रोज सफाई करनी चाहिये। माँ रोज तुम लोगों की सेवा चाहती है।'' अब माँ के वहाँ से उठने पर और घरों में भी माँ को ले गये।

अखण्ड भाव से चिन्तन किये बिना अखण्ड की प्राप्ति नहीं हो सकती

तदुरान्त लौट आकर माँ अपने बिछौने पर लेट गई। सदा ही चर्चा छिड़ने पर माँ कहती हैं-''तुम लोग जितना भी दे सको उनके (भगवान्) लिए कुछ समय दो अखण्डरूप से चिन्तन किये बिना अखण्ड की प्राप्ति नहीं होती।'' कल रात में सोने से पहले गिरिजा बाबू ने फिर 1924 सन्

में जब माँ को उन्होंने प्रथम बार देखा था, तब एक दिन सभी ने माँ की जो एक शक्ति का आभास पाया था, वह बात छेड़ी। इनका घर अष्टग्राम में है- इसलिए अष्टग्राम की चर्चा भी चली। इसी अष्टग्राम में माँ को पहले-पहल कीर्तन में भाव प्रकट हुआ था। भोलानाथजी ने यह बात चलाई। गिरिजा बाबू ने भी कहा-''मैंने तो ये सब बातें ग्राम में सुनी हैं।'' भोलानाथजी ने कहा-''एक बार पास-पड़ौसियों के कहने पर उन्होंने अपने वास-स्थान पर कीर्तन कराया था- सबने कमरे में बैठकर साँझ के समय कीर्तन आरम्भ किया। आँगन में चौकी के ऊपर महिलाएँ और माँ बैठी थी। कीर्तन आरम्भ होने के थोड़ी देर बाद चौकी के ऊपर ही माँ गिर पड़ी। लगभग आधा शरीर चौकी के बाहर था। बहुत देर बाद खबर पाते ही भोलानाथजी ने पकड़कर उन्हें कमरे में ले जाकर सुला दिया। रातभर कीर्तन चला। भोर में सबने हाथ-मुँह धोकर आ फिर कीर्तन आरम्भ किया, क्योंकि माँ उसी भाव से पड़ी थी। माँ लगभग 4 बजे उठी। उसके बाद स्वाभाविक रूप से चलने-फिरने लगी, यह पहली बार है; दूसरी बार भी भोलानाथजी सबको बुलाकर मकान में कीर्तन कर रहे थे। इस बीच में गाँव के एक दल ने कीर्तन करते-करते आकर कीर्तन में भाग लिया। उनके हाथ में धूपदानी थी। कमरे में माँ भावावस्था में गिर पड़ी-कुछ देर बाद ही वह भाव हट गया। इसके बाद कीर्तन में जो भावावेश होता वह खूब गुप्त रखा जाता था। लोग जानते ही न थे। माँ की फिर एक घटना भोलानाथजी ने कही-जब बाजितपुर से ढाका आये तब ठठेरी बाजार में भोलानाथजी के भाई सुरेन बाबू के घर के निकट एक अखाड़ा था। भोलानाथजी कभी-कभी माँ को साथ लेकर वहाँ जाते थे। एक दिन माँ के मन्दिर के भीतर जाने के कारण अखाड़े का एक आदमी माँ से बाहर आने के लिए कहने गया; माँ दरवाजे पर बैठी थी, उस आदमी के वहाँ जाकर खड़े होते ही माँ ने उसकी ओर जरा ताक भर दिया। इतने में ही वह आदमी ''बाप-रे-बाप, मैं इनसे बाहर आने को नहीं कह सकूँगा'' यह कहकर मारे डर के पीछे हट गया। माँ उसी तरह बैठी रही।

माँ की आकर्षणी शक्ति

काली-मन्दिर से आकर माँ बिछौने पर बैठी, कभी वार्तालाप कर रही हैं और कभी लेट रही हैं। थोड़ी देर बाद ही माँ मुँह पर कपड़ा ओढ़कर

सो गई। लगभग 2 बजे उठकर समागत लोगों के साथ वार्तालाप करने लगी। भोजन भी तैयार है। माँ और भोलानाथजी आँगन के बीच में भोजन करने बैठे। चारों ओर भक्त जन प्रसाद लेने के लिए बैठ गये। माँ बहुत लोगों से पूछने लगी, "किस वस्तु को तुम अधिक पसन्द करते हो?" जो जिस वस्तु को बता रहा है माँ ने थोड़ा-सा अपनी थाली पर रखने को कहकर उसे वह पात्र सहित दे देने को कहा। सब लोगों के भोजन आरम्भ करने पर माँ ने भोग-ग्रहण किया। शशी बाबू ने फोटो लिया-सभी लोगों को बड़ा आनन्द आया। किन्तु मैं देखती हूँ कि माँ का खाना प्रायः बन्द हो रहा है। भाव भी न जाने कैसा है, देखकर डर लगता है। न जाने कैसी सभी में बाहर के भाव में भी उदासी है। खाने के लिए बैठाने पर भी दूसरी ओर निहार रही हैं। क्या होगा समझ में नहीं आता-खाने-पीने के अनन्तर भक्त जन माँ के साथ बैठे। माँ अपनी मधुर वाणी से सभी को तृप्त कर रही हैं। बहुत-सी महिलाएँ भी कह रही हैं-"क्या करूँ घर में रह नहीं सकती हूँ माँ। इसलिए भाग आई हूँ।" भद्र-पुरुषों में कोई-कोई कह रहे हैं, ऐसी मूर्ति मैंने कभी नहीं देखी है। कितने तो लोगों को औषधि देते हैं-इसीलिए साधुओं के समीप कितने ही लोग जाते हैं-पर ये तो कुछ भी नहीं देती-फिर भी केवल हँसी और बातों में इतनी मिठास है कि छोड़कर जाते नहीं बनता।" झुण्ड-के-झुण्ड लोग आकर कीर्तन कर रहे हैं। दिन-रात आनन्द का स्रोत बह रहा हैं। रात में लगभग 12 बजे माँ विश्राम करने गई।

* * *

अड़सठवाँ अध्याय

20 माघ, मंगलवार– आज भी माँ प्रात:काल उठी हैं। आज दोपहर में स्कूल के मास्टर छात्रों को लेकर आये हैं। उन्हें प्रसाद दिया जायेगा। माँ सीढ़ी के ऊपर बैठी हैं। एक मास्टर ने खड़े होकर कहा–''हमारा परम सौभाग्य है कि माँ ने दया कर हमें दर्शन दिये हैं। इस समय हम माँ का प्रसाद–माँ के हाथ से ही पाना चाहते हैं।'' बहुत अधिक लोग थे, इसलिए माँ के हाथ छुआकर ब्राह्मण परोसने लगे। आँगन में सब लड़के (लगभग 150) और मास्टर बैठे हैं। माँ के साथ उनका फोटो खींचा गया। सबकी पत्तलों पर खिचड़ी और तरकारी देते ही करुणामयी माँ खड़ी होकर बोली–''सब बाल गोपाल बैठे हैं''– यह कहकर पत्तल से उठा–उठाकर अपने हाथ से बच्चों के मुँह में डालने लगी। सब अपना महान् सौभाग्य समझने लगे। माँ सब लड़कों के और मास्टरों के मुँह में भोजन डालने लगी। इस तरह लीला कर माँ अन्त में जहाँ मास्टर लोग खाने बैठे हैं, वहाँ जाकर जमीन पर बैठ गई। हँस–हँसकर मास्टरों से कह रही हैं–''तुम लोग लड़कों के मास्टर हो, एक बार अपने मन की मास्टरी भी करो।'' एक मास्टर ने कहा–''माँ वह पृथ्वी पर विजय पाने से भी बढ़कर कठिन है।'' माँ ने कहा–''तथापि अभ्यास से हो ही जाता है। जैसे आज ये बच्चे अबोध और अज्ञानी हैं किन्तु धीरे–धीरे नियमित रूप से पढ़ते–सुनते ये भी एक दिन ज्ञानवान् हो जायेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रयत्न करने पर इस चंचल मन का अज्ञान भी दूर किया जा सकता है जैसे भीतर अज्ञान का पर्दा है वैसे ही ज्ञान का दरवाजा भी है।''

मन की चंचलता अभ्यास से दूर होती है

एक व्यक्ति ने कहा–''किन्तु माँ किसी तरह भी वह काम करने की इच्छा नहीं करता।'' माँ ने कहा–''न चाहने पर भी तुम नित्य नियमित रूप से कुछ समय उन (भगवान्) को दो। आज जैसे लड़कों को जबरदस्ती पढ़ने को बैठाना पड़ता है–किन्तु क्रमश: जितनी ही वे शिक्षा प्राप्त करेंगे उतना ही पढ़ने की ओर उनका आकर्षण बढ़ेगा, अन्त में ऐसा समय आयेगा

जबकि वह स्वयं ही पढ़ना छोड़कर उठना नहीं चाहेंगे। परीक्षा पास करने के लिए वह प्राणपण से प्रयत्न करते हैं, उन्हें फिर कहकर पढ़ने बैठाना नहीं पड़ता। इसी से तुम लोग समझ सकते हो, आज तुम लोग यद्यपि अज्ञान में पड़े हो तथापि नित्य नियमित प्रयत्न से एक दिन ज्ञानवान् हो सकते हो।'' इस प्रकार वार्तालाप करने के बाद माँ जाकर फिर पूजा-गृह के बरामदे में बैठी। मास्टरों ने प्रत्येक लड़के को माँ के चरणों को स्पर्श कर प्रणाम करने का आदेश दिया, स्वयं भी देवी-भाव से माँ को प्रणाम किया। किसी-किसी ने तो देवी-स्तोत्र का पाठ करके माँ को प्रणाम किया। एक-एक करके सबने माँ से विदा ली। माँ ने लड़कों से भी कह दिया- ''तुम लोग थोड़ा-थोड़ा भगवान् का नाम-कीर्तन करना।''

सेन-टोले की महिलाएँ भी आकर उसी दिन प्रात:काल माँ को अपने -अपने घर ले गई। जगह 8-10 घरों की ही थी ; उन्हें माँ के दर्शनों से बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़ा अवसर मिलते ही वे माँ के समीप दौड़ी आती हैं। सब माँ को घेरकर बैठी हैं। आज सवेरे सेन-टोले से आने के बाद ज्योतिष दादा ने उसी मकान के एक भद्र पुरुष का माँ से परिचय कराकर कहा- ''ये इंग्लैण्ड-रिटर्न हैं, ज्योतिष शास्त्र खूब अच्छा जातने हैं।'' सब बैठकर हाथ दिखाने लगे। वह भद्र पुरुष माँ को प्रणाम कर और माँ की आज्ञा लेकर माँ का हाथ देखने बैठे। उन्होंने कहा-''ऐसा हाथ अपने जीवन में मैंने नहीं देखा। मैंने शायद 10-12 हजार जन्म-कुण्डलियाँ बनाई हैं। हाथ तो इतने देखे हैं कि उनकी कोई इयत्ता नहीं, किन्तु यह जो चतु:सागरी योग हाथ में है इससे क्या नहीं हो सकता। मैं कुछ जानता नहीं, गुरुजी की इच्छा से थोड़ा-सा कुछ कहता हूँ। मुझे मालूम होता है कि माँ के चार ग्रहों का जो योग है, उनमें से केवल एक ग्रह का काम आरम्भ हुआ है केवल चार आना मात्र काम हुआ है, अभी भी कुछ नहीं हुआ। सबको डुबाकर भी जल ऊपर उठेगा।'' ज्योतिष दादा ने कहा- ''माँ का साधन-भजन कैसा देखा, जगत् का कुछ उपकार होगा या नहीं।'' उन्होंने कहा- ''साधन-भजन क्या कहूँ? ये उससे अतीत हैं।'' ज्योतिष दादा ने कहा- ''लोग कहते हैं कि ये काली की साधिका हैं।'' ज्योतिषी अविनाश बाबू हँसकर बोले, ''काली आयेंगी, इनकी साधना करेंगी। और रही जगत् के उपकार की बात, उस सम्बन्ध में इतना ही कह सकता हूँ कि चैतन्य देव

आदि को भी कुछ कष्ट उठाकर जगत् का उपकार करना पड़ा था, इन्हें देखता हूँ कि वह कर्म भी करना नहीं पड़ेगा। इनका सब कुछ अपने आप ही हो जायेगा। जिसे कहते हैं, ऊपर से गिरना। मैंने अपने जीवन में एकमात्र दूसरा हाथ इससे मिलता-जुलता देखा है। वे मानसरोवर में रहते हैं। अवस्था उन्होंने स्वयं ही बतलाई थी 350 वर्ष, उनमें यह विशेषता है कि वे योगी हैं, उन्हें योग करना पड़ा है। देख रहा हूँ कि माँ का वह भी नहीं है।

एक अनुभवी ज्योतिषी के मत में माँ अदृष्ट के ऊपर साक्षात् ब्रह्मविद्या हैं

मैंने पुस्तकों में जिन-जिन चिह्नों का वृत्तान्त पढ़ा है, मैंने उन्हें किसी के भी हाथ में नहीं देखा है। आज माँ के हाथ में ही मैंने उन्हें देखा है। मेरे गुरुजी ने कहा है-''ये सब रेखायें जिनके हाथ में रहें वे अदृष्ट के अधिकार से बाहर हैं।'' इस प्रकार की विविध बातें कहकर अन्याय लोगों का हाथ थोड़ा-थोड़ा देखकर ही उन्होंने अदृष्ट की बात कही। ठीक अन्य ज्योतिषियों के समान नहीं, जाने कैसे एक भाव में रहकर कहते हैं। किन्तु कहते हैं प्राय: ठीक-ठीक। सभी के भाव की बात ही उन्होंने कही। प्राय: सब मिल गयी। ये भी खूब साधन-भजन करते हैं। सुना है कि विलायत में भी अपने शिवजी को ले गये थे और रोज पूजा करते थे। मुझे एकान्त में ले जाकर उन्होंने कहा-''देखिये, मैं माँ के समीप इतने दिनों तक नहीं आया। कल मैंने पूजा करते बैठकर माँ को देखा था। मैंने ऐसी चीज पहले देखी नहीं थी। इनके हाथ में जो देखा है, मैंने ऐसी चीज कभी देखी नहीं थी। इनके हाथ में जो रेखाएँ हैं उन्हें देखकर मैं समझता हूँ कि ये साक्षात् ब्रह्मविद्या है। इस विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु मुझे यह भय है कि ये इस शरीर को अधिक दिनों तक रखेंगी या नहीं। आप सब लोगों के सिर के ऊपर ही उस विपदा का चिह्न देख रहा हूँ। पर माँ के शरीर की रक्षा के लिए मुझे भी चिन्ता है, इसलिए मैं माँ से भी इस सम्बन्ध में विचार करूँगा। सचमुच ही उन्होंने एक समय एकान्त में माँ से ये सब बातें की और माँ की शरीर-रक्षा के लिए प्रार्थना की। माँ ने कहा-''जो होने वाला है वह होगा ही, तुम रक्षा कर सकते हो तो करो, मेरे लिए तो सब कुछ अच्छा है।'' अविनाश बाबू ने कहा-''एक संघर्ष ही इस शरीर को नष्ट कर रहा है उसमें परिवर्तन हुए बिना देह की रक्षा करना कठिन होगा।'' हम लोगों के उपाय पूछने पर उन्होंने कहा-''मैं भी

माँ के समीप जाऊँगा तब मेरे विचार में जो होगा वह कहूँगा और माँ के शरीर–रक्षा के लिए प्रयत्न करूँगा अवश्य, परन्तु हममें शक्ति ही क्या है, माँ के निकट बैठकर यह बात कहना धृष्टता मात्र है। फिर भी माँ की अनुमति लेकर ही माँ का हाथ देखने का मैंने साहस किया है''– इत्यादि, इत्यादि।

जटू कृत आरती की आध्यात्मिक व्याख्या

दिन–पर–दिन बहुत दूर–दूर से माँ के दर्शनों के लिए लोग आ रहे हैं। सन्ध्या समय कीर्तन भी खूब जमकर रात में लगभग 11 बजे तक चला। आज जटू ने 10–12 धूपदानियों से माँ की आरती उतारी। वह आरती भी देखने योग्य थी। आरती करते–करते जटू न जाने कैसा हो गया। आग से क्रीड़ा करता है, धोती से कभी गले में फाँसी दे रहा है–कभी हाथ बाँध रहा है–कभी अपने सामने पर्दा लगा रहा है–फिर सब हटाकर सिर पर कपड़ा डालकर नाच रहा है। माँ के समीप मैं बैठी थी। माँ ने धीरे-धीरे कहा–''यह जो खेल है इसका भी मतलब है– देखो, पहले धूपदानी लेकर सर्वाङ्ग द्वारा आरती करके स्तब्ध होने के कारण ज्ञान की बत्ती जली,बत्ती से आरती की, तब फूल के तुल्य होकर सुगन्ध वितरण किया, फूल से आरती की। तब भी प्रारब्ध का खेल चलता रहा–जीवन–मुक्त अवस्था ही लो न। तब बन्धन का पर्दा लेकर इच्छानुसार खेलता है। पर्दा टँगा है; किन्तु प्रकाश भी दिखाई देता है। अन्त में उस पर्दे को लेकर कभी अपने को फाँसी देता है, कभी हाथ बाँधता है, कभी कमर में लपेट रहा है। सबके बाद सारा पर्दा उठाकर सिर पर रखकर नाचता है। मुक्त हुआ।'' माँ ने आगे और भी कहा– ''यह सब एक ओर का साधारण रूप से वर्णन करना हुआ।'' आरती का यह गंभीर अर्थ जटू को सुनाने की मेरी इच्छा हुई, क्योंकि जटू आरती करके बहुत आनन्दित होता हैं। सभी लोग उसे आरती करने के लिए आग्रह करके ले जाते हैं। इसके लिए मेडल भी उसने पाये हैं, किन्तु आज फिर जटू से कुछ नहीं कहा गया। बाद में चटगाँव जाकर यशोदा बाबू के मकान में बैठकर जटू के सामने सब चर्चाएँ चली तब माँ ने सभी के सामने आरती की इस तरह व्याख्या की। अस्तु, आज रात्रि में प्राय:1 बजे माँ विश्राम कर सो गयी। भक्त लोग भी विश्राम करने लगे।

उनहत्तरवाँ अध्याय

21 माघ, बुधवार– आज चटगाँव लौटने की बात है। पटिया से निरंजन बाबू के भाई कौशिकी बाबू आये थे। वे पटिया होते हुए चटगाँव जाने का अनुरोध कर गये हैं। वही स्थिर हुआ है। सब लोग दिन में लगभग 2 बजे के समय खाने-पीने से निवृत्त होकर माँ के साथ नौका से पटिया को रवाना हुए। परैकोड़ा में बहुत से लोग आँखों से आँसू बहा रहे हैं। बहुत से लोग माँ से फिर दर्शन देने की प्रार्थना कर रहे हैं। गाँव के सब लोग माँ को विदा करने के लिए एकत्र हुए हैं। गाँव के लोगों को शोक-सागर में डुबाकर माँ पटिया को रवाना हुई।

नाम–कीर्तन की इच्छा न होने पर भी (बुद्धि–रूपी माँ और अहंकार रूपी पिता की सहायता से) नाम–कीर्तन की चेष्टा करनी चाहिए

लगभग डेढ़ घण्टे में ही हम लोग पटिया पहुँचे। घाट पर ही मोटर थी, माँ के साथ सब लोग कौशिकी बाबू के मकान पर गये। वहाँ आँगन में माँ और भक्तों के बैठने की जगह की गई थी। धीरे-धीरे बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिए एकत्र हुए। एक मुसलमान मुन्सिफ माँ के साथ वार्तालाप करने लगे। वे कहते थे-''भगवान् की प्राप्ति का उपाय उनका नाम-कीर्तन करना है, किन्तु यदि किसी की उनका नाम-कीर्तन करने में रुचि न हो तो वह क्या करे?'' माँ ने कहा-''बच्चे की तरह अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास करते-करते अज्ञानी बच्चा जैसे पण्डित और ज्ञानवान् हो सकता है वैसे ही तुम लोगों का भी अभ्यास के प्रभाव से ज्ञान का पर्दा खुल सकता है। किन्तु बाबा, पहले अन्धविश्वास चाहिए। विश्वास के नेत्र नहीं हैं।'' मुन्सिफ साहब ने कहा-''किन्तु जिनको विश्वास भी नहीं है और भक्ति भी नहीं है-नाम के कीर्तन करने की रुचि भी नहीं-कुछ भी नहीं, उसके तरने का उपाय क्या है?'' माँ ने हँसकर कहा-''बाबा, जिसके मन में उपाय क्या है-यह बात जमी है उसके भीतर कुछ है, कहना ही पड़ेगा।'' यह बात कहकर माँ हँसने लगी। मुन्सिफ साहब ने भी माँ का यह कथन मान लिया। इसके अनन्तर चर्चा चल रही है-उन्होंने कहा-''माँ, मैं तो कुछ भी नहीं कर सकता, यह काम भी यदि वे करावें तो कर

सकूँगा।'' माँ ने कहा–''देखो, जितनी शक्ति से तुम लोग अन्यान्य सब काम करते हो उस अल्प शक्ति से ही उनका नाम भी कीर्तन करने की चेष्टा करो। मैं क्या कहूँ बाबा''–यह कहकर फिर दोनों हाथ जोड़कर कह रही हैं–''मैं तो कुछ नहीं कह सकती, तुम लोग जो कुछ कहलाते हो वही कह रही हूँ। बुद्धि मानों माँ है, अहंकार मानो पिता है–इन माँ–बाप की सहायता से तुम लोग सब सांसारिक काम करते हो। जब तक इन दोनों का खेल तुम लोगों में चल रहा है तब तक इन दोनों की सहायता से ही तुम्हें भगवान् का नाम–कीर्तन भी करना चाहिए। उस ओर अग्रसर होने का थोड़ा प्रयत्न भी करना चाहिये। देखो, मेरी पागलों की–सी उल्टी–सीधी बातें हैं। मैं कहती हूँ कि इच्छा न रहने पर भी भगवान् का नाम–कीर्तन उनकी ओर अग्रसर होने के सहायक कर्म आदि करने चाहिए। इससे एक प्रकार का ताप होता है। इस ताप को सहन करने का नाम ही तपस्या है। तप:+सहा=तपस्या। फिर साधन का अर्थ ठहरा स्व+धन; जिस धन का कभी क्षय नहीं होता–भगवान् को प्राप्त करने का प्रयत्न।'' यह कहकर माँ हँसने लगी।

दया और कर्मफल के समाधान का सहज उदाहरण

मुन्सिफ बाबू को माँ की बातें सुनकर खूब आनन्द आया। वे कह रहे हैं–''अच्छा, भगवान् की दया से ही सब कुछ होता है या हमारे कर्मफल से सब कुछ होता हैं?'' माँ ने कहा–''दया और कर्म हैं, जानते हो? (एक फूल हाथ में लेकर दिखाते हुए कह रही हैं) जैसे यह फूल मैं तुम्हें देने को उद्यत हुई और तुमने हाथ बढ़ाकर इसे लिया। इसी तरह दया और कर्म दोनों के सम्मिलन से एक काम हुआ। इसी तरह और क्या?'' फिर मन की चर्चा चली। माँ कह रही हैं–''मन जैसा चंचल है वैसा ही साधक भी है। देखा न, वह केवल आनन्द चाहता है, उसे न पाकर ही वह दौड़-धूप कर रहा है। फिर वह जो अखण्ड आनन्द का स्वाद जानता है उसका प्रमाण है कि वह अखण्ड आनन्द को ही चाह रहा है। वह कितने प्रकार से खण्ड आनन्द को पा रहा है परन्तु उससे उसे बाँधकर नहीं रखा जा रहा है, वह तृप्त नहीं हो रहा है। वह चाहता है अखण्ड आनन्द, इसीलिए देखा वह महासाधक भी है।'' माँ की ये बातें सुनकर मुन्सिफ साहब खूब प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

माँ एक को लेकर हैं इसलिए आनन्दमयी हैं

डाक्टर नीरज बाबू ने काली-मन्दिर में भागवत-पाठ का आयोजन किया है। वहाँ से माँ को बुलाने के लिए आदमी आया। माँ की धीमी बातें कोई सुन न पावेगा यह सोचकर माँ को जाने नहीं दिया गया। किन्तु करुणामयी माँ किसी की भी कामना अपूर्ण नहीं रखती, इसलिए थोड़ी देर बाद ही जब माँ को जलपान कराने के लिए उठाकर लाया गया तब माँ ने कहा- "ट्रेन कब जाती है?" कौशिकी बाबू ने कहा-"सात बजे।" माँ ने कहा- "यदि समय हो तो चलो। जरा काली-मन्दिर हो आवें।" उसी समय मोटर द्वारा भोलानाथजी, माँ, मैं, ज्योतिष दादा और कौशिकी बाबू काली-मन्दिर गये और सब लोग वहीं रह गये। थोड़ी देर भागवत-पाठ के समीप जाकर माँ बैठी। पाठ-कर्त्ता श्री कृष्णानंदजी तब कह रहे हैं-"भगवान् के उन्मुख रहने में ही आनन्द है, यह देखो उसका दृष्टान्त यह आनन्दमयी माँ हैं। पूछ कर देखो उनमें किसी वस्तु की कमी नहीं है- इसीलिए वे आनन्दमयी हैं। हजारों लोग उनके समीप जाने से भी आनन्द ही पा रहे हैं। क्योंकि वे आनन्दमय हो गई हैं। एक का आश्रय लिया है- इसलिए एक हो गई है। दो में ही कमी और कष्ट है। एक में फिर कोई अभाव नहीं है", इत्यादि।

संसार में शान्ति पाने की आशा व्यर्थ है

पाँच-सात मिनट वहाँ रहकर हम सब माँ को लेकर फिर कौशिकी बाबू के मकान पर आये। माँ बैठी हुई हैं। एकाएक दो लड़कियों ने आकर माँ को प्रणाम किया। उनमें से एक लड़की आते ही माँ की गोदी में लेटकर माँ से चिपटकर रोते-रोते कह रही है-"मुझे अपनी लड़की बना लीजिए माँ?" इस तरह आकर लड़की ने माँ को पकड़ा मानो कितने ही दिनों का परिचय है। लड़की की अवस्था 15 वर्ष की होगी। परिचय होने पर मुझे ज्ञात हुआ कि लड़की वहाँ के पोस्टमास्टर की लड़की है, साधन-भजन करती है। उसके माँ-बाप कोई भी माँ से भेंट करने नहीं आये, लड़की ही भाग आयी है। रोते-रोते व्याकुल है। नाम पूछा तो मालूम हुआ 'निरू'। माँ ने कहा-"चलेगी मेरे साथ, चल।" लड़की ने कहा-"माँ, पिताजी जाने न देंगे।" माँ ने कौशिकी बाबू से कहा-"उसके पिता से कहना, यदि इच्छा हो तो उसे लेकर एक बार काक्स बाजार जायें।" बाद में हम लोगों

से माँ ने कहा–''ये लोग यदि ऐसी लड़कियों को छोड़ दें तो एक बहुत उत्तम भाव प्रकट हो। लड़की का भाव बहुत अच्छा है। और यह भी दिखाई देता है कि जो उन्नत होते हैं, बाल्यावस्था से ही उनमें एक विशेष भाव प्रकट रहता है। एक बार संसार में प्रविष्ट होने पर फिर उसे छोड़ना कठिन है। फिर संसार में शान्ति पाने की आशा भी भूल है, कुछ क्षणिक आनन्द मात्र प्राप्त किया जा सकता है।'' अस्तु माँ के रवाना होने का समय हुआ। माँ के स्टेशन जाने के मार्ग में फिर मुन्सिफ बाबू आ मिले। माँ से उन्होंने कहा–''मुझे कुछ उपदेश दे जाइये, जिसे मैं बराबर याद रख सकूं। कुछ वाणी बोलिये।'' माँ ने कहा–''तुम सोचना–मेरा मंगल होगा।'' माँ के इस कथन से ही उन्हें आनन्द प्राप्त हुआ और माँ की चरण-रज लेकर रास्ते से ही वह विदा हुए। माँ मोटर द्वारा स्टेशन पहुँची। थोड़ी देर बाद ही देखती हूँ कि मुन्सिफ बाबू माँ से विदा नहीं ले सके थे, इसलिए फिर स्टेशन आ पहुँचे हैं। गाड़ी आई, माँ गाड़ी में चढ़ी। इतने में हाँफते-हाँफते माँ के पुराने भक्त चिन्ताहरण समाद्दार की पुत्री आ पहुँची। समाचार पाकर वह दौड़कर माँ के दर्शनों के लिए आई है। उसके थोड़ी देर बाद ही गाड़ी ने सीटी दे दी। लगभग एक घण्टे के बाद ही हम लोग चटगाँव पहुँचे। परैकोड़ा में गंगाचरण बाबू के भाई सुरेन्द्र बाबू की जबानी माँ के आगमन की खबर पाकर बहुत से लोग वहाँ आये थे। बात तय हुई कि दूसरे दिन ही के 8 बजे स्टीमर द्वारा काक्स बाजार जाया जायेगा। आज भी रात में लगभग 12 बजे माँ विश्राम करने के लिए लेटी। हम सब लोग भी सो गये।

* * *

सत्तरवाँ अध्याय

काक्स–बाजार में अष्टमी तिथि को आगमन, पहले ही माँ ने 'अष्टमी–अष्टमी कहा है

22 माघ, बृहस्पतिवार– आज सवेरे माँ को एक मकान में ले गये। माँ वहाँ से लौट आई हैं सब भक्त भोजन करने बैठे हैं, बहुत से लोग दर्शन करने आये हैं। लगभग आठ बजे माँ उपेन्द्रनाथ की मोटर से काक्स बाजार को रवाना हुई। बहुत से लोग साथ आकर माँ को स्टीमर में बैठा गये। गणेश, रमेश,हीरू आदि लड़के साथ नहीं आ सकेंगे–सीताकुण्ड में वे साथ थे। हीरू कह रहा है– ''माँ, हमारा स्मरण रखना।'' एक व्यक्ति ने कहा– ''माँ कभी भी लड़कों को भूल नहीं सकती हैं।'' रमेश ने कहा–''कभी–कभी भूल जाती हैं, नहीं तो बुलाना क्यों पड़ता हैं?'' माँ ने हँसते हुए कहा–''वह भी कर्म–क्षय कराने के लिए। और भी देखो–यदि यह रोना–धोना न रहता तो यह रोने का भाव ही कैसे प्रकट होता? रोने की अवस्था भी तो प्रकट होनी चाहिए। वह भी मनुष्य का एक स्वभाव है। मन का भाव कभी–कभी ऐसा रहता है कि रुआई भी नहीं आती–पर थोड़ी रुलाई आते ही हृदय हल्का हो जाता है। थोड़ा हल्का हुए बिना नेत्रों से आँसू भी नहीं निकलते। इसलिए सब कुछ आवश्यक है। तथापि मेरी बात तो जानते ही हो। शरीर की सुधि की ओर खयाल नहीं रहता है।'' यह कहकर माँ हँसने लगी। शाम को 5 बजे हम लोग काक्स बाजार पहुँचे। स्टीमर से उतरकर थोड़ी दूर नाव से जाना पड़ता है। बंकिम बाबू नाव लेकर आये हैं। नाव में बैठकर माँ कह रही है–''आज कौन तिथि है?'' सभी ने कहा– 'अष्टमी अष्टमी'। माँ हँसते हुए बोली–''कई दिनों से 'अष्टमी–अष्टमी' मुँह से निकल रहा था। उसी अष्टमी को आना हुआ''; तब हमें याद हुआ कि सचमुच जब काक्स बाजार कब जाना होगा, इसका कोई ठीक नहीं–विविध स्थानों पर घूमना–फिरना चल रहा था–उसी समय माँ के मुँह से बीच–बीच में 'अष्टमी–अष्टमी' शब्द निकला था। किन्तु हम लोगों ने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया था, क्योंकि ऐसी कितनी ही बातें माँ के मुँह से निकलती हैं जिनका अर्थ हमें कुछ भी समझ में नहीं आता। अब 'अष्टमी' का

मतलब प्रकट हुआ। थोड़ी देर बाद ही हमारी ओर देखकर माँ बोली-"15 दिन।" क्या 15 दिन, समझ में नहीं आया। घाट पर पहुँचकर देखा-बंकिम बाबू के तत्त्वाधान में 2 हाथी और कीर्तन का दल माँ को लेने के लिए खड़े हैं। दीनबन्धु बाबू (वकील) तथा मुन्सिफ बाबू एवं और भी अनेक भद्र पुरुष खड़े हैं। माँ को देखकर महावत ने हाथी से माँ को सलाम कराया। माँ चली। आगे-आगे दो हाथी और कीर्तन का दल बीच में माँ और पीछे भक्तों का दल चलने लगा। दीनबन्धु बाबू के मकान की काली माता के दर्शन कर माँ को लेकर समुद्र के किनारे इन्दुदत्त के खाली मकान में जाना हुआ। वहाँ बंकिम बाबू ने माँ के लिए तम्बू टाँग रखा था। माँ जाकर तम्बू में बैठी। बहुत देर तक कीर्तन हुआ। तदनन्तर माँ ने थोड़ा जलपान किया, अन्यान्य सब लोगों का भोजन हुआ। बंकिम बाबू, नाजिर बाबू आदि सभी माँ के संगी-साथी लोगों का बहुत आदर-सत्कार करने लगे। भोजन आदि के पश्चात् माँ तथा अन्यान्य सभी लोग तम्बू में सो गये। जटू तथा और भी कई लड़के साथ हैं।

23 माघ, शुक्रवार-आज बहुत सवेरे उठते ही माँ समुद्र के किनारे टहलने गई।

जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है जगह खुली है। साथ में ज्योतिष दादा, अखण्डानन्द, रण आदि लोग हैं। (रण ज्योतिष दादा के साथ-साथ कई महीनों से है।) माँ घूम के आकर हाथ-मुँह धोकर लेट गई। विविध प्रकार की बातचीत के बाद माँ चादर से मुँह ढककर लेटी रही। दोपहर के समय माँ उठी। अनेक महिलाएँ माँ के दर्शन के लिए आई हैं। माँ उनके साथ हँस-हँसकर विविध वार्तालाप कर रही हैं। कभी हास-परिहास भी कर रही हैं। सभी मुग्ध हैं। योगेद्र बाबू वकील की स्त्री, रायबहादुर विपिन बाबू की स्त्री सभी आई हैं। योगेन्द्र बाबू की स्त्री, पुत्र के लिए बहुत ही व्याकुल हैं-उनका बड़ा लड़का जेल में है। वह कह रही हैं- "माँ के निकट इस दु:ख की बात कहूँगी घर से तो यह सोचकर आती हूँ किन्तु जब माँ का तम्बू दिखाई देता है, तभी से छाती ठण्डी हो जाती है। फिर कोई बात ही माँ से नहीं कह पाती। जब लौटकर घर जाती हूँ तो रास्ते में ही फिर लड़के के लिए हृदय में न जाने कैसा होने लगता है-मैं नहीं समझती कि ऐसा क्यों होता है?" सायंकाल माँ सबको साथ लेकर फिर समुद्र के किनारे

घूमने गई। साँझ को लौट आई। कीर्तन होने लगा। रात में लगभग 11 बजे सब लोग विदा हुए।ह्व

24 माघ, शनिवार– आज भी विशेषरूप से उल्लेखनीय कोई बात नहीं हुई। कल की तरह आज भी दिन-रात बीत गया। आज भी रात में लगभग 11 बजे माँ सो गई। आज भी कीर्तन हुआ। अनेक मुसलमान भद्र पुरुष भी माँ के समीप आ रहे हैं, माँ के निकट अपनी प्रार्थना प्रकट कर रहे हैं एवं माँ का आशीर्वाद चाह रहे हैं।

25 माघ, रविवार– माँ ने आज तड़के समुद्र के किनारे घूम आकर मुँह धोकर थोड़ा दूध पीया, फिर ज्योतिष दादा को साथ लेकर बाहर निकलकर दीनबन्धु बाबू के मकान में गई। वहाँ से राम बाबू और बंकिम बाबू के मकान तथा सरस्वती-मन्दिर होकर लौट आई। निश्चय हुआ कि आज सन्ध्या समय फारेस्ट आफिसर रामबाबू के मकान पर होने वाले सन्ध्या कीर्तन में माँ को वहाँ ले जायेंगे। उनकी स्त्री प्राय: प्रतिदिन माँ के समीप आती हैं। दिन में माँ थोड़ी देर लेटी थी। साँझ होते ही सब लोग माँ को साथ लेकर रामबाबू के मकान पर गये। शामियाने के नीचे माँ को बैठाकर कीर्तन हुआ। रात में लगभग साढ़े दस बजे कीर्तन समाप्त होने पर सब लोग माँ को लेकर तम्बू में लौट आये। लगभग 12 बजे माँ सो गई।

काक्स बाजार में अवस्थिति, भाव का परिवर्तन

माँ के भाव में परिवर्तन हो रहा है। 'आज दोपहर में क्या भोजन होगा', मेरे यह कहते ही माँ बोल उठी–"खाऊँगी नहीं, खाना घट जायेगा, सब उलट-पुलट हो जायेगा।" एकाएक ऐसी बात कही कि मैं डर गई। फिर बोली–"परिवर्तन का समय आ रहा है।" क्या होगा कह नहीं सकती। वास्तव में देखती हूँ कि माँ का आहार क्रमश: कम हो रहा है। भाव भी न जाने क्यों शिथिल-सा है। कभी-कभी बिल्कुल ही चुप रहती अथवा 2-4 शब्द कभी बोलती भी तो उसमें भी यही मालूम होता कि बातें बिल्कुल बाहरी हैं, वे मानो कहीं दूसरी ही जगह हैं। यद्यपि उनका यह भाव स्वाभाविक है, फिर भी इधर व्यवहार में अधिक प्रकट हो रहा है। अस्तु, उनका भाव भाषा द्वारा प्रकट करने की चेष्टा करना पागलपन है।

आनन्द कभी छोड़ नहीं जाता, चाहे स्मृति रूप में हो या सत्य रूप में, सदा ही विद्यमान रहता है

26 माघ, सोमवार– आज भी सवेरे माँ ज्योतिष दादा को साथ लेकर समुद्र के किनारे टहलने के लिए बाहर चली गई। आज लौटने में बहुत देर हुई। योगेन बाबू आकर बैठे हैं। लगभग 9 बजे माँ लौटी। प्रात:काल थोड़ा दूध पीया। आज कह रही हैं–''कुछ भी नहीं खाऊँगी।'' योगेन बाबू के साथ विविध बातें हो रही हैं। शंकरानन्द स्वामी और ज्योतिष दादा बैठे हैं। परैकोड़ा से अविनाश सेनजी भी आये हैं। आकर कह रहे हैं–''माँ के साथ सिर्फ 1–2 दिनों का परिचय है किन्तु किसी तरह भी घर में नहीं रह सका– चला आया हूँ।'' मैंने सुना है कि यह बड़े ऊँचे पद पर काम करते थे। अब सब छोड़–छाड़कर धर्म–कर्म में ही जीवन बिता रहे हैं। विलायत में भी शिवजी को ले गये थे, वहाँ रोज ही शिव–पूजा करते थे। सी.आर. दास के परिवार में (राखालदास की लड़की से) विवाह किया है। अस्तु, अविनाश बाबू को पाकर सभी अपने भविष्य के बारे में पूछ रहे हैं। वे बहुत अच्छा कह सकते हैं। वे भी बैठे हैं। योगेन बाबू ब्राह्म–धर्मावलम्बी हैं। वह कह रहे हैं–''हम लोगों के लिए क्या उपाय है?'' इत्यादि। विविध वार्ताओं के बाद माँ कह रही हैं–''तुम्हारे भीतर ही सब कुछ है। देखो, तुम खण्ड आनन्द से तृप्त नहीं हो रहे हो। अखण्ड आनन्द के लिए ही इधर–उधर भटक रहे हो।'' योगेन बाबू कह रहे हैं–''क्यों, हमें तो कभी-कभी सांसारिक व्यापार में भी आनन्द मिलता है।'' माँ ने कहा–''वह खण्ड आनन्द है। पर खण्डत्व के भीतर भी आनन्द है। पेड़ की छाया देखने पर ज्ञात होगा कि पेड़ है ही। देखो, आनन्द भी कैसे सुन्दर भाव से रहता है, कभी भी आनन्द का वियोग नहीं होता है। कभी रहता है स्मृति के ऊपर और कभी आनन्द के ही स्वरूप में ।

जब निरानन्द की प्रतीति होती है, तब भी स्मृति में आनन्द रहता है। इसलिए उसे पाने के लिए व्याकुल रहते हो। तो देखो, कभी भी आनन्द छोड़कर नहीं जाता– चाहे छाया रूप में रहे या सत्य रूप में ही रहे। फिर देखो, अनन्त समुद्र की लहरें अनन्त हैं, समुद्र के भीतर अचल–अटल भाव है– उस अचल–अटल भाव के ऊपर तरंगों के स्थिर हुए बिना उसके ऊपर खेल नहीं हो सकता।'' वकील बाबू ने कहा–''अच्छा वकीलों के तरने

का क्या उपाय है? हम लोग तो सदा ही झूठ से सच को ढक देते हैं।'' माँ हँसकर बोली–''एकदम झूठ नहीं है। आज सम्भवत: झूठे मुकदमे से एक आदमी दूसरे का घर ले गया; इससे जानना होगा कि किसी समय उसने भी उसका कुछ अनिष्ट किया था– उसी के परिणाम रूप से यह हुआ है। अथवा उसने जो किया है उसका फल भविष्य में होगा, फलत: इस मिथ्या में भी सत्य निहित है। मुश्किल यह है कि हम सोचते हैं–मिथ्या और पाप आदि। सत्य और मिथ्या के बोध से ही पाप और पुण्य होते हैं। किन्तु वास्तव में जब यह बोध चला जाएगा तब सच और झूठ कुछ नहीं कर सकेंगे। यह पार, वह पार दोनों समाप्त हो जायेंगे।'' यह कहकर माँ हँसते हुए फिर बोली– ''बाबा, इतने दिनों तक तो इतने मुकदमे किये, अब एक बार अपने इतने बड़े मुकदमे की भी कुछ व्यवस्था करो न? काले केश तो पक गये– दाँत तो बेदांत हुए।'' यह कहकर खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर कह रही हैं– ''रुपया-पैसा तो बहुत कमाया–धन कहने पर ही निर्धन भी है। जो खो न जाय वही स्वधन है। साधन माने ही स्वधन है।'' वकील बाबू ने कहा–''मैं तो समझता हूँ कि वह धन मैंने खो दिया है।'' माँ ने कहा–''यह जो 'मैंने खो दिया है'–यह भाव है, उस भाव से ही जानना होगा कि खोया नहीं है। अखण्ड भाव कभी जा नहीं सकता– इसलिए खण्ड में स्थायी आनन्द नहीं पाता हूँ–अखण्ड चाहता हूँ। **'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:'** यह बात है, जिस धर्म से अभाव बढ़ता है, वही परधर्म है– उसका त्याग करो, फिर स्वधर्म में निधन भी अच्छा है अर्थात् इस ओर आकर निधन होना भी श्रेय है।

किसी पर भी भार सौंपो–बन्धन टूट जाएगा

जिसके ऊपर चाहो भार सौंप दो, अब अधिक समय तो नहीं है।'' वकील बाबू ने कहा–''अहंकार जो रुकावट डालता है। किसके निकट सौंपूँ, समझ भी नहीं सकता, दे भी नहीं सकता।'' माँ ने कहा–''यदि एक व्यक्ति ही सब है तो जिसके ऊपर भी दो–उन्हीं (भगवान्) को देना होगा।'' उन्होंने कहा, ''समय चला गया है, अब हिसाब चुकता नहीं होगा।'' माँ बोल उठी–''क्यों नहीं होगा? तुम लोग निराश क्यों होते हो? किस क्षण किसका क्या होगा, कौन जानता है? इसी क्षण क्यों नहीं कहते हो–''मैंने पकड़ लिया'' छोड़ दिया न कहो, किसी एक को पकड़ो; तभी देखोगे–इस तरह

से बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाएगा''-यह कहते-कहते अपने शरीर का नया जम्पर खींचकर माँ ने फाड़ डाला एवं ऐसा कर वह हँसने लगी।

वकील बाबू उसी समय एक टुकड़ा फटा जम्पर लेकर बोले-''आज मैंने कुछ माँगा था-यही मुझे मिला।'' बहुतों ने एक-एक टुकड़ा जम्पर ले लिया। माँ फिर हँसते-हँसते कह रही हैं-''खुकूनी देख, मैंने जम्पर फाड़ डाला है।'' सबकी ओर ताककर माँ फिर कह रही हैं- ''वह सब सम्हाल रखती हैं, मैं तो ऐसा ही पागलपन करती हूँ।'' आगे कह रही हैं-''जो दिन चला जाता है वह फिर नहीं आता, तिल-तिल करके समाप्त हो रहा है।'' इस तरह की विविध वार्ताओं के पश्चात् योगेन्द्र बाबू चले गये। माँ शौच गई हैं, आज भोजन का दिन नहीं है। मैंने कहा-''माँ, हरिमोहन (नौकर) अच्छी रोटी बनाना जानता है।'' माँ बोल उठी-''अच्छा ऐसा है! तो मैं आज रोटी खाऊँगी और कुछ भी इस समय नहीं खाऊँगी।'' लगभग अढ़ाई या तीन वर्षों के बाद आज माँ ने एक दिन का अन्तर देकर खाने का नियम तोड़कर रोटी खाई। खाने बैठकर हँसते-हँसते कह रही हैं-''दो वर्ष बाद राजा के हाथ से खाकर एक दिन का अन्तर देकर खाने का नियम कुछ तोड़ा था पर फल और दूध ही लेती थी। आज नौकर के हाथ से उसे भी तोड़कर वर्षों के बाद रोटियाँ खाई।'' खाना दिन-पर-दिन कम हो रहा है। खा-पीकर माँ जरा लेटी। बहुत-सी महिलाएँ आई हैं- लगभग 3 बजे माँ ओढ़ी हुई चादर मुँह से हटाकर बोली-''खुकूनी कहाँ है?'' मैं पास गई तो बोली, ''शरीर न मालूम कैसा हो रहा है'-यह कहते-कहते पिताजी को देखकर बीमारी का स्वांग भरकर कह रही हैं-''जरा नाड़ी तो देखिये।'' पिताजी ने नाड़ी देखकर कहा-''अच्छी ही है।'' माँ ने कहा, सचमुच?'' पिताजी ने हँसकर कहा-''डाक्टर कभी सच कहता है?''-थोड़ी देर बाद ही बोले-''खूब दुर्बल चल रही है।'' देखते-देखते माँ कैसी हो गई। शरीर ढीला पड़ गया। मेरे नेत्रों में आँसू भर आये। सब लोग समीप आ गये। अशक्त रूप से माँ पड़ी हैं। आज विराज बाबू के मकान पर कीर्तन में जाने की बात तय थी, ब्रह्म-समाज में भी जाने की बात थी। माँ की अवस्था देखकर वे कीर्तनकारियों का दल लेकर तम्बू में आये। रात में माँ जरा उठ बैठी। कीर्तन हुआ। माँ स्थिरता के साथ बैठी हैं। सब लोग माँ से कहलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। टूटी-फूटी भाषा में बोली-

"शरीर निद्रित हो पड़ा था और कुछ नहीं।" ज्योतिष दादा ने सभी के साथ कुछ देर तक हरिनाम कीर्तन किया। रात में माँ ने जल तक नहीं पीया। लेटी रही, सारी रात ही एक कैसी विचित्र अवस्था में कट गई।

27 **माघ, मंगलवार**– आज भी लगभग 10 बजे तक माँ सोई रही। तदुपरान्त उठी हैं, किन्तु कुछ भी खाना नहीं चाह रही हैं। खाना प्राय: बन्द है। किसी तरह थोड़ा-सा कुछ खिलाया जा रहा है। कल ढाई वर्ष के बाद एक दिन का अन्तर देकर खाने का नियम तोड़ डालने के बाद खाना और भी घट गया है। आज दिनभर कुछ नहीं खाया। सन्ध्या के बाद बहुत थोड़ा-सा खाया। बहुत धीरे-धीरे बोल रही हैं। आज दोपहर के समय महिलाओं ने आकर कहा- "कल माँ को क्या हुआ था?" माँ हँसते हुए कह रही हैं-"कुछ भी नहीं, शरीर को केवल थोड़ी नींद आ गई थी। सिर्फ हाथ-पैर शिथिल हो गये थे-और कुछ भी नहीं। मैंने कुछ भी नहीं कहा, खुकूनी ने ही सबको बुलाकर हो-हल्ला मचा दिया था।" यह कहकर हँस रही हैं-किन्तु सभी धीर-स्थिर, रात में सोये-सोये कह रही थी; "गिरिजा के कीर्तन में शरीर देख कैसा हो जाता है। वह कहता है 'कुछ भी नहीं है, चमड़े के ऊपर से जाता है।' वैसा ही मेरे भी शरीर में कुछ चोट लगने से वह भी "चमड़े के ऊपर से ही चला जाय।" आज भी रात में लगभग 11 बजे माँ विश्राम करने के लिए सो गई।

28 **माघ, बुधवार**– आज भी माँ बहुत देर बाद उठी हैं। 'कुछ नहीं खाऊँगी, कह रही हैं। खाने को बैठते ही बोलती हैं, "भीतर जाता ही नहीं।" दूसरी ओर पैर फैलाकर बैठे-बैठे बच्चों की तरह कुछ लेकर खेलना आरम्भ करती हैं। इस प्रकार खाना प्राय: बन्द होता जा रहा है। आज भात या रोटी कुछ भी नहीं खाया। थोड़ा-सा दूध और जल में तरकारी उबालकर मैंने दी, वही थोड़ी खायी। बहुधा माँ यही सिझायी हुई तरकारी खाती हैं। राह में जब अकेली घूमती थी, तब फल तो मिलते ही न थे, रोटी भी शायद खाती न थी, इसलिए विराज दीदी से कहती थी-"जल में थोड़ी तरकारी सिझाकर खिला दो।" मैं अब भी बीच-बीच में उसे खिला देती हूँ। दोपहर को महिलाएँ आई हैं, माँ कह रही हैं-"खाली मुँह बैठे रहना ठीक नहीं है, नाम-कीर्तन करो।" यह कहकर अपने आप छोटी करताल बजाने लगी। नाम शुरू किया- 'हरिबोल, हरिबोल।' मुझसे माँ ने कहा-

''तुम भी बोलो।'' वही हुआ। बहुत देर तक नाम-कीर्तन हुआ। आज रटन्ती काली की पूजा है। अविनाश बाबू ने उपवास किया। वह दासू और सत्येन्द्र को साथ लेकर समुद्र के किनारे गये, पूजा की। उनका उन्होंने क्या किया था, इस सम्बन्ध में सुना कि वे काँपते-काँपते गिर गये थे। दासू माँ की स्वर्ण-मूर्ति की गोद में सोया है, ऐसा देखा है इत्यादि। रात्रि में भी उन्होंने अपने कमरे में बैठकर पूजा की। कीर्तन के बाद माँ बाहर जरा टहल रही हैं। अविनाश बाबू माँ की पूजा करने आये। माँ के सीढ़ी पर बैठने पर उन्होंने माँ की पूजा की। माँ हँसकर कह रही हैं-''बाबा, तुमने समुद्र के किनारे क्या किया है? यहाँ भी थोड़ा करो न?'' बहुत लोग उपस्थित थे, अविनाश बाबू ने कहा-''माँ मैं क्या जानूँ-सब आप ही की इच्छा है।'' माँ ने कहा-''तुमने जो समुद्र के किनारे किया था, अब करो।'' तब उन्होंने 4-5 आदमियों को अपने समीप बैठाया। उनके बीच में रण तथा वहाँ के और एक लड़के के कपाल में अंगुली से दबा दिया। फिर आँखें मूँदकर बैठे रहे-किन्तु किसी को भी कुछ नहीं हुआ।

काक्स बाजार में किसी-किसी को शक्ति का आभास देना

तब अविनाश बाबू माँ के चरण पकड़कर कह रहे हैं-''माँ-तुम मेरा सब कुछ लेकर बैठी हो, इसीलिए कुछ नहीं होता। माँ-मैं कर नहीं पा रहा हूँ।'' तब माँ बोली-''इतने लोग बैठे हैं, 2-1 आदमियों को कुछ होना उचित है।'' यह कहकर परिहास कर रही हैं। थोड़ी देर बाद माँ ने यहाँ के लड़के से कहा-''तुम मेरी ओर ताके रहो।'' उसने वही किया। एक मिनट बीतते न बीतते वह संज्ञाहीन-सा होकर गिर गया। माँ हँसने लगी। थोड़ी देर बाद सबने लड़के को पकड़कर माँ को प्रणाम कराया। मैंने हँसते हुए कहा-''रण बैठे?'' माँ भी साथ-ही-साथ कौतुक से ही कह रही हैं-''बैठे।'' रण आकर माँ के चरणों के पास बैठा। माँ बोली-''मेरे नेत्रों की ओर ताके रहो।'' उसने वही किया। थोड़ी देर बाद ही उसका दम फूलने लगा, रोने का सा भाव हुआ, किन्तु ठीक तरह से माँ के मुख की ओर ताककर बैठा रहा। माँ ने कहा-उसका श्वास बहुत तेज चल रहा है, अब जरूरत नहीं, उसका हृदय अच्छा नहीं और थोड़ा रहने पर गिर जाएगा।'' मैंने सोचा- ये लोग बच्चे और सीधे-सादे हैं इसलिए ऐसा हुआ है। मैं बोली-''शशी बाबू बैठें देखा जाय क्या होता है।'' माँ बच्चे की तरह हँस

रही हैं–बोली–"अच्छा।" शशी बाबू आकर सावधान होकर बैठे। माँ के नेत्रों की ओर देख रहे हैं। माँ स्वाभाविक भाव से देख रही हैं। थोड़ी देर बाद शशी बाबू ने हाथ उठाकर आँख मींची। फिर देख रहे हैं। थोड़ी देर में ही फफक कर रो पड़े। किन्तु नेत्रों की पलक नहीं गिर रही हैं। माँ के नेत्रों की ओर देख रहे हैं। तदनन्तर गिर पड़े। 2–3 व्यक्तियों ने पकड़ लिया। कुछ देर बाद उन्होंने प्रकृतिस्थ होकर माँ को प्रणाम किया। फिर एक बाबू बोले–"मैं अब बैठूँगा नहीं, मैंने देखा है।" क्या देखा है यह नहीं बतलाया। माँ ने कहा– यह एक खेल चल रहा है, किन्तु कभी ऐसा खेल नहीं होता–आज बाबा (अविनाश बाबू) के कहने पर ही आरम्भ किया है।" फिर हँसते–हँसते कह रही हैं–"किन्तु इसे तुम लोग क्या कहते हो? यह 'हिप्नटिजम' नहीं है, यह भिन्न चीज है। अच्छा तुम लोग बैठो मत, अपने–अपने बिछौने में सोने से पूर्व थोड़ा बैठा करो, तभी समझ सकोगे।" पूर्वोक्त बाबू साहब को लक्ष्य करके माँ ने कहा–"तुम तो कल चले जा रहे हो; अच्छा, जहाँ जाते हो वहीं थोड़ा बैठना–तभी जानोगे।" वह राजी हुए। इस प्रकार खेल करके माँ विश्राम करने गयी। रात के प्राय: 12 बज गये।

29 माघ, बृहस्पतिवार– आज भी माँ सवेरे टहलने नहीं निकली। दोपहर को बहुत–सी स्त्रियाँ आ पहुँची। माँ ने कहा–"तुम सब थोड़ी देर आँखें बन्द कर जरा चुपचाप बैठो तो। सबने वही किया। आजकल माँ बीच–बीच में प्राय: इस तरह उपस्थित सब लोगों से बिल्कुल चुप रहने को कहती हैं। पुन: नेत्र खोलने को कहकर पूछती हैं–"तुम लोगों ने किसने क्या देखा है? किसका मन कहाँ गया था" इत्यादि। आज भी वही हुआ। तदनन्तर महिलाओं में किसी–किसी ने गाना सुनाया। आज पुष्पिता मुखर्जी मुन्सिफ बाबू के मकान पर कीर्तन में माँ को ले जायेंगी। माँ शाम को जरा समुद्र–किनारे घूम आई। सन्ध्या समय मुन्सिफ बाबू की स्त्री माँ को लेने आई। हम सब लोग वहाँ के लिए रवाना हुए। अविनाश बाबू ने कहा–"मुझे वहाँ जाने की इच्छा नहीं है, जरा एकान्त में बैठना चाहता हूँ।" माँ ने कहा–"बहुत अच्छा, तुम रहो, बूढ़ी माँ (चटगाँव के सुरेन घोषालजी की माँ यहाँ माँ के साथ आई हैं वह) भी रहेंगी। एकान्त में, एक+कान्त को लेकर रहो, अच्छा ही तो है।" सब लोगों को साथ लेकर माँ के मुन्सिफ

बाबू के मकान पर पहुँचते ही उन्होंने माँ के चरण धोये। माँ को आसन पर बैठाया गया। पहले-पहल उनके 10-12 वर्ष के लड़के ने गाना गाया- **"शंखे-शंखे मंगल गाओ जननी एशेछे द्वारे"** इत्यादि। तदुपरान्त कीर्तन हुआ। कीर्तन के बाद माँ को मुन्सिफ बाबू की स्त्री ने थोड़ा जलपान करा दिया। सबने माँ को प्रणाम किया। रात में लगभग 12 बजे माँ सबको साथ लेकर तम्बू में लौटी। 2 बजे माँ विश्राम करने गई।

30 माघ, शुक्रवार- आज भी माँ बहुत धूप चढ़ने पर उठी। अब खाने-पीने का कोई नियम नहीं रहा; जब भी हो कुछ खा लेती हैं- आज फल खायेंगी या रोटी उसका कुछ नियम नहीं है। रोटी प्राय: खाती ही नहीं। कभी थोड़ा-सा फल, कभी थोड़ा दूध या जल में उबाली तरकारी-यही प्राय: खाती हैं। आज भी बहुत देर बाद थोड़ा-सा खाया। दोपहर में आज भी माँ ने सबको चुप कराकर बैठाया। तदनन्तर महिलाओं के आने पर नाम-कीर्तन हुआ। आज देवेन्द्र चौधरी के मकान पर कीर्तन में माँ को ले जायेंगे यह निश्चित हुआ है। इनके 7-8 बच्चे हुए, सभी मर गये हैं-शोक से इनकी पत्नी की पागल की-सी अवस्था हुई है। माँ के निकट यह सब दु:ख कहकर रो रही थी। माँ ने कहा-"ओ माँ, तुम रोओ नहीं, मैं ही तुम्हारी लड़का-लड़की हूँ।" यह सुनकर वह माँ से लिपट गई; कुछ शान्त भाव से माँ को विविध प्रकार से प्यार जताने लगी। वह कह रही हैं- "अच्छा, तुम मेरा लड़का भी हो और लड़की भी, मैं तुम्हारे संग चली जाऊँगी।" यह कहकर वह पूरी माँ हो बैठी और उसी भाव से वार्तालाप करने लगी। आज वह कीर्तन में माँ को अपने घर ले जायेंगी। माँ अपराह्न में समुद्र के किनारे गई, वहाँ जाकर भी सबसे कुछ देर चुपचाप बैठने को कहा। फिर पूछ रही हैं-"तुम लोगों में किसने क्या देखा है?" सन्ध्या के कुछ देर बाद माँ तम्बू में लौटी। लगभग 7 बजे माँ देवेन्द्र बाबू के मकान में ले जायी गई। वहाँ कीर्तन के बाद देवेन्द्र बाबू की स्त्री माँ को भीतर के आँगन में ले गई, वहाँ रायबहादुर विपिन बाबू की स्त्री, योगेन्द्र बाबू की स्त्री, मोहिनी बाबू की स्त्री, मुन्सिफ बाबू की स्त्री आदि सभी उपस्थित थी। इस देश के नियमानुसार ही आज चन्दन आदि से देवेन्द्र बाबू की स्त्री ने माँ का नामकरण किया। उनके मृत लड़के-लड़कियों के नामानुसार ही नाम रखे। तरह-तरह के भोजन तैयार किये गये हैं। माँ को खिला दिया

गया। विलायत से उनके भाइयों ने जो चिट्ठी-पत्रियाँ भेजी हैं उन्हें माँ को दिखलाया। माँ भी छोटी बच्ची की तरह 'माँ-माँ' कहती हुई विविध प्रकार से पुकारकर उन्हें शान्त कर रही हैं। किन्तु वह माँ को छोड़ेंगी ही नहीं। फिर कभी-कभी मृत बच्चों के शोक से रुलाई आते ही माँ कह रही हैं, "तब मैं चली जाऊँगी। मैं कहती ही हूँ कि मैं फिर आई हूँ, मैं ही तुम्हारी लड़की और लड़का भी हूँ।" इस पर तुरन्त पगली शान्त होकर कर रही हैं-"मैं अब नहीं रोऊँगी, तुम मुझे छोड़कर मत जाना।" इस प्रकार खेल करके माँ रात के लगभग 12 बजे तम्बू में लौट आई। आज भी करीब दो बजे माँ विश्राम करने गई।

1 **फाल्गुन, शनिवार**- आज भी सवेरे माँ सो रही हैं। अनेक लोग दर्शन करने आये हैं, माँ उठते ही उनके साथ वार्तालाप कर रही हैं। थोड़ी ही देर बाद माँ के नये माता-पिता (देवेन्द्र बाबू और उनकी स्त्री) एक टोकरी फल लेकर आ पहुँचे। उनके साथ बहुत देर तक खेल हुआ। दोपहर के समय माँ ने उन्हें कुछ खिलाकर विदा किया। वह जाने को तैयार ही नहीं, भीषण धूप चढ़ आयी है। इसलिए माँ ने उन्हें समझा-बुझाकर भेज दिया। आज भोर में भोलानाथजी लड़कों को साथ लेकर आदिनाथ घूमने गये थे, अपराह्न में ही लौट आये। जटू भी आज ढाका चला गया। शशी बाबू चटगाँव चले गये। शशी बाबू के भाई जानकी बाबू (ये परैकोड़ा के जमींदार प्रसन्न बाबू के दामाद हैं) आज कई दिनों से माँ के पास ही हैं। शशी बाबू से पूछा गया-"आप उस दिन माँ की दृष्टि से वैसे क्यों हो गए थे।" उन्होंने कहा-"पहले-पहल एक नीला उजियाला माँ के नेत्रों से बाहर निकलकर मेरे अन्दर आ रहा है देखकर मैं खूब प्रसन्न हुआ था। भ्रम देख रहा हूँ सोचकर हाथों से आँखों को एक बार मल दिया परन्तु उजियाले ने मुझे छोड़ा नहीं, अन्त में एक ऐसा चमकदार उजियाला मुझे दिखाई दिया कि मैं फिर न नेत्र हटा ही सका और न देख ही सका-मैं एक विचित्र स्थिति में पड़ गया और कुछ बोल भी न सका।" आज भी माँ अपराह्णोत्तर लगभग 5 बजे समुद्र के किनारे घूमने के लिए निकली हैं, साथ में अनेक स्त्रियाँ हैं। माँ कह रही हैं-"दासू से मैंने कहा" आज चटगाँव चला जा। वह नहीं गया, बोला-"पिताजी ने मुझसे आदिनाथ जाने को कहा है"- इसलिए मैंने फिर कुछ नहीं कहा; किन्तु इन बाल-बच्चों को इस तरह

घूमने देना ठीक नहीं है।'' मैंने सोचा, माँ दासू की बात क्यों कह रही हैं। सन्ध्या के पहले ही उनके घूमकर आने पर मालूम हुआ कि दासू 3 बार गिर पड़ा था; हाँ, विशेष कुछ नहीं हुआ। दासू से मैंने कहा-''देखो माँ की दृष्टि रहती है।'' आज समुद्र के किनारे से लौटकर माँ भक्तों के साथ बैठी हैं। किसी-किसी ने 2-4 गाने गाये। आज रात में माँ करीब 11 बजे विश्राम करने के लिए लेट गई।

2 फाल्गुन, रविवार- आज सवेरे माँ टहलने के लिए बाहर नहीं निकली। सवेरे लगभग 10 बजे घर से निकलकर दीनबन्धु बाबू के मकान पर गई। वहाँ से सदल-बल समुद्र की ओर चली। वहाँ खूब स्नान हुआ। माँ बच्चों की तरह कमर में कपड़ा लपेटकर दौड़ लगा रही हैं। बहुत-सी छोटी-छोटी लड़कियाँ भी माँ के साथ जल में उतरी हैं-दूर से देखने पर प्रतीत होता है कि माँ भी उनके दल की ही एक हैं। माँ सबके ऊपर जल छिड़क रही हैं। जिन्होंने स्नान न करने का विचार किया था, उन्हें भी माँ ने भिगो दिया। बहुत देर तक जलक्रीड़ा करके माँ उठ आई। मैंने वस्त्र बदल दिये। मैं किनारे पर बैठी थी। मैंने स्नान नहीं किया। लौटकर हम लोग तम्बू में आ रहे थे, एकाएक माँ ने कहा-''सबने स्नान किया, तुमने तो नहीं किया, मुझे खयाल नहीं था।'' यह कहकर थोड़ा जल छिड़ककर मुझे भी भिगो दिया और कहा-''जाओ स्नान कर आओ।'' मैं माँ का आदेश पालन करने चली गई। माँ सबको साथ लेकर तम्बू की ओर चली। दिन में लगभग 2 बजे माँ का भोग लगा-फिर महिलाएँ भी आई। माँ ने कुछ देर सबसे नाम-कीर्तन कराया, तदुपरान्त लगभग 5 बजे माँ सबको साथ लेकर समुद्र के किनारे टहलने निकली, एक घंटे बाद ही लौट आई। सबके साथ बैठकर वार्तालाप आदि करते-करते रात्रि के 11 बजे गये। फिर माँ ने विश्राम किया। आज दोपहर में तम्बू के भीतर एक साँप शंकरानन्द स्वामी के बिछौने में बैठा था। माँ ने कहा-'' कई दिनों से साँप शरीर के निकट है ऐसा मालूम पड़ रहा था।''

3 फाल्गुन, सोमवार- आज सवेरे उठकर माँ के सब दर्शनार्थियों के साथ बातें करते-करते लगभग 11 बजे का समय हुआ। माँ तब समुद्र के किनारे घूमने निकल गई, लगभग 2 बजे लौटी। तब माँ का भोजन हुआ। माँ के सो कर उठने के बाद ही महिलाएँ आ पहुँची। मुन्सिफ बाबू आदि

भी आये। आज अविनाश दादा महिलाओं के निकट कुछ वक्तव्य देंगे, यह निश्चय हुआ है। 5 बजे भाषण आरम्भ हुआ। मुन्सिफ बाबू की स्त्री सभा-नेत्री हैं। अविनाश बाबू ने माँ का तत्त्व ही सबको कुछ-कुछ समझाने की चेष्टा की। सभी सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर विपिन बाबू की स्त्री और मुन्सिफ बाबू की स्त्री ने 'माँ के आगमन से हम लोग धन्य हुए हैं, माँ ने अयाचित रूप से हम लोगों पर दया की है', यह विषय लेकर कुछ-कुछ कहा। सभा विसर्जित हुई। माँ को योगेश बाबू ब्रह्म-समाज में ले गये। वहाँ भी माँ के साथ-साथ अनेक स्त्रियाँ और पुरुष गये। समाज का कमरा भर गया। योगश बाबू ने कहा-"माँ, इस तरह मेरा कमरा कभी नहीं भरा था।" तदुपरान्त विराज बाबू का गाना और योगेश बाबू की प्रार्थना आदि हुए। सन्ध्या के बाद सब लोग लौट आये। आज ज्योतिष दादा कह रहे थे कि काशी में मैं गंगाजी में गिर गया था। उस सम्बन्ध में चर्चा चलने पर माँ ने कहा था-"मैं सब कुछ देख रही थी कि तुम स्नान करने जा रहे हो, जल में उस तरह गिर जाओगे।" उस पर ज्योतिष दादा ने पूछा था, "यदि आप सब देख रही थी तो आपने बतला क्यों नहीं दिया था, केवल इतना ही कहा था कि सावधानी से जाना।" माँ ने कहा-"मैं देखती हूँ सब ठीक ही, किन्तु सब अवसरों पर कहने का खयाल नहीं होता, क्योंकि जो होनहार होती है उसे तो होना ही चाहिये।"

शास्त्र पढ़ना और सीखना तभी तक आवश्यक है जब तक ठीक कर्म आरंभ नहीं हुआ है

ब्रह्म-समाज से वापस आकर रात्रि में अविनाश बाबू के साथ तम्बू में बैठकर बातें हो रही थी। बात करते-करते माँ ने कहा-"शास्त्र पढ़ना और सीखना तभी तक आवश्यक है जब तक ठीक कर्म आरंभ नहीं होता। कर्म जरा ठीक से होना आरम्भ हो जाने पर फिर पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे टाइम-टेबिल देखकर और सुनकर जब मैंने ठीक-ठीक समझ लिया कि यह देहरादून जाने वाली गाड़ी है, फिर टिकट कटाकर वहाँ जाकर बैठ गयी-तब फिर और कुछ सुनने या जानने की आवश्यकता नहीं रहती। गाड़ी तुम्हें देहरादून पहुँचा ही देगी। इसलिए काम में लग जाओ।" इन सब बातचीत में ब्राह्मणवाड़िया से विनय सेन (मुन्सिफ) आ पहुँचे। वे सरस्वती

पूजा की छुट्टी पर एक दिन के लिए माँ के दर्शन करने आये हैं। आज लगभग 11 बजे माँ ने शयन किया।

4 फाल्गुन मंगलवार– आज माँ बहुत सवेरे उठकर बिस्तर पर बैठी हैं। मुन्सिफ बाबू के लड़के–लड़कियाँ माँ को प्रणाम करने आये हैं, बड़े लड़के ने माँ के समीप गाना गाया–

आमाय जागिओ ना–स्वप्न यदि मधुर एमोन होक् मिछे कल्पना।–इत्यादि।

–अर्थात् मुझे मत जगाना, यदि स्वप्न ऐसा मधुर है तो वह मिथ्या कल्पना।

माँ चिर दिन की ब्राह्मिका हैं

सवेरे लगभग 8 बजे माँ कमरे से बाहर आई। मैंने हाथ–मुँह धुलाकर थोड़ा दूध पिला दिया। तदुपरान्त माँ सबको साथ लेकर समुद्र के किनारे घूमने निकल गई। आज लड़कों का दल माँ को थिएटर (नाटक) करके दिखायेगा। विराज बाबू ही उनके शिक्षक हैं। सन्ध्या के बाद लड़कों ने माँ को थियेटर दिखाया। लड़कों को मिठाई और फल दिये गये। आज अपराह्न में माँ को रायबहादुर विपिन बाबू के मकान में ले गये थे। वहाँ दीनबन्धु बाबू ने माँ से कहा–''माँ, योगेन्द्र बाबू ने तुम्हें ब्राह्मिका बना दिया है, कल ब्रह्म–समाज में ले गये थे न।'' माँ ने हँसकर कहा–''मुझे फिर क्या करेंगे? मैं तो थी ही।'' इस कथन से सबको प्रसन्नता हुई। वहाँ सब लोग इकट्ठे हुए हैं, गाना हुआ, गाने के उपरान्त उन लोगों ने माँ को थोड़ा खिला दिया। लगभग दो घण्टे वहाँ रहकर माँ सब संगी–साथियों को लेकर तम्बू में लौटी। तदुपरान्त थियेटर हुआ–'ध्रुव'। रात में लगभग 12 बजे माँ ने विश्राम किया।

भविष्य वक्ताओं की शक्ति और श्रेणी का निर्देश

5 फाल्गुन, बुधवार– योगेन्द्र बाबू और विपिन बाबू प्रातःकाल आ पहुँचे। माँ ने उनके साथ करीब 12 बजे तक वार्तालाप किया। प्रातःकाल माँ समुद्र के किनारे घूम आई। समुद्र के किनारे बालिकाओं की तरह कौड़ी और सीप खोज रही हैं, कोई एक पाते ही एक–एक को दे रही हैं। लगभग 1 घण्टा इसी तरह खेल करके माँ तम्बू में लौटी। 9 बजे उन्हें बंकिम बाबू के मकान पर ले गये। साथ में सभी गये। जलपान का प्रबन्ध हुआ।

माँ योगेन्द्र बाबू, विपिन बाबू, अविनाश बाबू आदि के साथ बातें कर रही हैं। चर्चा चली–बहुतों की भविष्यवाणी सत्य होती है। माँ ने कहा–"इसके भीतर भी बहुत बातें हैं। भविष्य वक्ताओं की भी भिन्न–भिन्न जातियाँ हैं। कोई–कोई सहसा बोल पड़ते हैं–तो कोई–कोई संशय का भाव लेकर बोलते हैं; किसी–किसी का शक्ति–कमल विकसित होने को तैयार रहता है पर विकसित नहीं होता, वे बात को भली–भाँति न समझकर ही उसके साथ इच्छा–शक्ति को जोड़कर कुछ एक बात कह देते हैं और भूल भी अधिक ये ही करते हैं। और जो लोग भविष्य को दिवालोक के समान स्पष्ट देखते हैं उनकी कदापि भूल नहीं होती। इस तरह की विविध अवस्थायें हैं; जरा खयाल करते ही समझ जाओगे कि कौन किस स्तर का आदमी है?" माँ तम्बू में वापिस आकर बहुत देर कर लेटी रही। लगभग 4 बजे शाम को गई। महिलाएँ बैठी हैं। कोई–कोई माँ के लिए खाना बना लाई हैं। माँ उनके सन्तोषार्थ थोड़ा–सा ग्रहण कर शेष बाँट रही हैं। कविराज श्रीयुत् नन्दकुमार भट्टाचार्यजी के मकान में कीर्तन होने वाला है। शाम को 5 बजे माँ को लेने के लिए वहाँ से आदमी आया। माँ के साथ सब कीर्तन में गये। रात में लगभग 9 बजे लौटे। अविनाश बाबू माँ के साथ बातें कर रहे हैं। मेरे सदा उपस्थित न रहने के कारण क्या बातें हुई यह मैं लिख नहीं सकी। बंकिम बाबू ने पूछा–"माँ, भगवान् ने हमें रचकर, हम क्या करेंगे यह निश्चित किया?" माँ ने तुरन्त हँसते–हँसते उत्तर दिया–"तुम लोग जो कर रहे हो वही निश्चय कर दिया।" शंकरानन्द स्वामीजी हँसकर बोले–"माँ तुम ठीक कहती हो।" और भी विविध बातें हो रही हैं मानो निरन्तर स्वर्ण–खण्ड वितरित हो रहे हों। अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि समयाभाव–वश मैं सदा उपस्थित नहीं रह सकती हूँ। स्वर्ण–खण्डों का चयन नहीं कर सकती हूँ। जिसके भाग्य में है वह स्वर्ण–खण्डों को आँचल में बाँधकर घर ले जाता है। रात में डेढ़ बजे माँ ने शय्या ग्रहण की।

6 फाल्गुन, बृहस्पतिवार– आज सवेरे 9 बजे तक माँ लेटी हुई ही हैं। मैंने तम्बू में जाकर देखा तो मालूम हुआ कि माँ प्रातःकृत्य के लिए बाहर गई हैं, ज्योतिष दादा और भोलानाथजी समीप में ही बैठकर बातें कर रहे हैं। जाते ही मैंने माँ का बिस्तर ठीक किया। किन्तु माँ अभी भी नहीं आ रही हैं सो क्यों? सन्देह हुआ। बाहर जाकर देखा, माँ कहीं नहीं हैं। ज्योतिष

दादा और मैंने बहुत जगह खोज करने के उपरान्त देखा कि माँ बहुत दूर समुद्र के किनारे अकेली चल रही हैं। ज्योतिष दादा और मैं दोनों ने दौड़कर माँ को पकड़ा। माँ गंभीर भाव से बोली-"तुम लोग लौट जाओ, मैं अकेली ही घूमूँगी।" चेहरा देखकर हम लोगों को फिर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। हम लोग लौट आये। भोलानाथजी ने ज्योतिष दादा को भेज दिया। मैं माँ के लिए भोजन बनाने गई। लगभग 11 बजे माँ लौटी। आते ही कह रही हैं- "खुकूनी कहाँ है? इतनी देर हुई। मुझे खाना नहीं देगी क्या?" मानो पाँच वर्ष की बालिका हो? मैंने दौड़कर मुँह धुलाकर थोड़ा दूध पिला दिया। रोटी खाने बैठी, किन्तु आज कुछ खाया नहीं। बोली-"खाने बैठते ही शरीर न मालूम कैसा हो जाता है। इस भाव को भूलने के लिए ही फिर खेल करना आरम्भ करती हूँ।" खिलाने बैठते ही किसी एक विशेष आवश्यकता से मैं जरा उठ गई। इस बीच में बंकिम दादा की स्त्री तथा और भी दो-एक महिलायें माँ के पास आकर बैठी हैं। सहसा अपना हाथ दिखाकर माँ कह रही हैं-"देखो-देखो कैसी गन्ध है।" बंकिम दादा की स्त्री को खूब सिर-दर्द हुआ था, उन्होंने माँ का हाथ सूँघकर दिव्य सुगंध का अनुभव किया। माँ ने कहा-"मैंने भी देखा कि यह किसी फूल की गन्ध नहीं है, दूसरी कोई सुगन्धि है।" बंकिम दादा की स्त्री ने कहा कि सुगन्धि से मेरा सिर दर्द छूट गया था। माँ ने दिनभर कुछ नहीं खाया, बोली-"रात्रि को खाऊँगी।" रात में मैं खिलाने बैठी तब योगेन्द्र बाबू माँ के निकट बैठकर बातचीत के सिलसिले में बोले थे कि मैं रात में 10 बजे बाद कुछ नहीं खाता। माँ आसन पर बैठे-बैठे ही बोली-"बाबा (अर्थात् योगेन्द्र बाबू) रात में 10 बजे के बाद नहीं खाते; उन्हें बुला लाओ, कुछ खिला दूँ। योगेन्द्र बाबू से कहते ही वे बोले-"माँ आपके कहने पर खाना ही होगा। माँ ने अपने मुँह में डाला। प्रसाद देने की माँ की ऐसी ही रीति है। प्रथम जीवन में तो प्रसाद बिल्कुल नहीं देती थी; प्रबल कातरता देखने पर अब देती हैं सही किन्तु ऊपर निर्दिष्ट नियम से अर्थात् माँ उच्छिष्ट बाँटने की पक्षपातिनी नहीं हैं। रात में 12 बजे माँ ने विश्राम ग्रहण किया।

* * *

इकहत्तरवाँ अध्याय

रामकूट गमन

7 फाल्गुन, शुक्रवार– करीब 8 बजे माँ समुद्र के किनारे गई, थोड़ी देर में लौट आई। चेहरे से अस्वस्थ-सी प्रतीत हो रही हैं। लगभग 11 बजे हम लोग माँ के साथ रामकूट को रवाना हुए। यात्रा करने के पहले माँ ने दीनबन्धु बाबू के मकान पर होकर प्रस्थान किया। बंकिम दादा और नन्द कविराजजी संग चले। नौका से पाँच-छ: घण्टे यात्रा करने के बाद हम लोग बड़ी डोंगी पर चढ़े। पहुँचने में 1 घण्टा लगेगा। दिन ढल चुका है। हम लोग छोटी नदी के भीतर से चल रहे हैं। दोनों किनारों पर गरीब गृहस्थों की स्त्रियाँ चावल धो रही हैं, घड़ा भरकर जल ले जा रही हैं। सभी प्राय: मुसलमान हैं। माँ सबके साथ पुकार कर वार्तालाप करते-करते चल रही हैं। ''माँ मुझे खाना दोगी! मेरे लिए भात पका दे,'' इत्यादि बातें चटगाँव की भाषा में कह रही हैं, सुनने में बहुत ही मधुर लग रही है। महापुरुषों की बातें भी कर्ण-रसायन होती हैं, वह हम लोगों को खूब समझ में आया। हमारे कानों में जैसे किसी ने मधु उडेल दिया हो। सब अवाक् होकर टुकुर-टुकुर देख रहे हैं। मालूम होता है सोच रहे हैं कि इनमें अपने-पराये का भेद-भाव नहीं है, अजी तुम किसी स्वर्ण देश के मानव हो? अपने कण्ठ की मुरली फिर बजाओ, जी बजाओ; हम लोग सुनें-सुनें-सुनें। एक बार इस तरह खिल-खिलाकर हँस पड़ी कि स्त्री-पुरुष चारों ओर से भीड़ जुटाकर दौड़ पड़े। हँसी की उद्वेल तरंगों के स्पर्श से उनके हृदय के द्वार भी मालूम पड़ता है खुल गये; वे भी हँस-हँसकर आनन्द से माँ के साथ बातें करते-करते चले। आनन्दमयी माँ हमें आनन्द-वितरण करने के लिए चली हैं। भोलानाथजी लाठी से नाव खे रहे हैं, गाना आरंभ किया। 'खेया घाटेर पाटनी एशेछे' अर्थात् नदी पार का आर-पार कराने वाला नाविक आया है। स्थान-समय-कण्ठ के मधुमिश्रित संगीत की 2-4 पंक्तियाँ बड़ी मीठी सुनाई दे रही हैं। करीब साँझ को हम लोग रामकूट पहाड़ पर चढ़े।

आना–जाना क्या अच्छा है

काक्स बाजार के पोस्ट–मास्टर ने रामकूट के पोस्ट–मास्टर को फोन किया है कि माँ आ रही हैं; किन्तु रामकूट में किसी के साथ भी माँ का परिचय नहीं है। स्थानीय जमींदार स्व. ईशानपाल के पुत्र श्रीयुत् नगेन्द्रपालजी स्वयं उपस्थित होकर माँ के भक्तों की सेवा का प्रबन्ध कर रहे हैं। यहाँ बुद्ध, शिव और राम–सीता के मन्दिर हैं; और भी बहुत से मकान हैं। अच्छा स्थान है। पुरी समुदाय के एक साधु ने यह सब बनाया है। वे बीमार पड़े हैं। साधु को देखने माँ उसकी कुटी पर गई। हम लोग आज ही लौट जायेंगे यह निश्चय हुआ है, किन्तु कोई भी जाना नहीं चाहता है। साधु ने कहा–''आज ही जाना क्या अच्छा लगेगा?'' माँ ने हँसते हुए जवाब दिया–''आना–जाना क्या अच्छा है?'' साधु ने समझा या नहीं मैं नहीं जानती। थोड़ी ही देर में माँ बाहर निकलकर चारों ओर घूमने–फिरने लगी। सुन्दर खुली जगह है, माँ के साथ हम लोग घूम रहे हैं। बुद्ध देव का 'क्यां' (बौद्ध–मन्दिर को यहाँ 'क्यां' कहते हैं) है। माँ ने सारा घूम-फिरकर देखा। सुना है कि यहाँ बाघ और हाथी हैं। थोड़ी रात बीतने पर दूर गाँव से लोगों का एक बड़ा भारी झुण्ड कीर्तन करने आया। सुना कि अपराह्न में 3 बजे यहाँ माँ के आने का समाचार पहुँचा है किन्तु इसी बीच में इतने लोगों को कैसे खबर लगी समझ में नहीं आया। ये लोग शायद माँ का स्वागत करने के लिए नदी के किनारे पर भी गये थे किन्तु माँ उसके पूर्व ही चली आई हैं। कीर्तन समाप्त होने में रात के 12 बजे गये, भोजन तैयार था, जिसे आवश्यकता थी उसने भोजन किया। रात में 12 बजे के बाद कीर्तन–कारियों के दल ने पहाड़ से नदी के किनारे माँ को नाव में सवार करा दिया। आकाश मेघाच्छन्न है, वृष्टि हो रही है किन्तु किसी के भी चेहरे पर सिकुड़न नहीं है, सब कीर्तन करके चल रहे हैं। बड़ी डोंगी मिली नहीं। लगभग 2 मील मार्ग पैदल ही चलकर सब नौका खोजने लगे, वह भी नहीं मिली। वर्षा हो रही है, किन्तु कोई भी घर लौटने को राजी नहीं है। अन्त में निश्चय हुआ कि माँ नगेन्द्र बाबू के विष्णु–मन्दिर में प्रतीक्षा करेंगी। उसके बाद ग्राम–वासियों का दल नौका की खोज में बाहर निकला। कोई भी घर जाने को तैयार नहीं है यह देखकर माँ भी चली, साथ ही कीर्तन भी चला–

प्राण गौराङ्ग नित्यानन्द बोले डाको रे।
निताइर समान दयाल आर नाइ रे।।

सब नाच-गाकर गाँव को मुखरित करते चले हैं। कीर्तन की मधुर ध्वनि से सोये हुए गाँव जाग उठे।

रामकूट के मार्ग में विशेष घटना

यात्रा-मार्ग में एक विशेष घटना घटी थी, जो लिखी नहीं गई। घटना यह है-नदी के मार्ग में माँ मुसलमान रमणियों के साथ -'माँ, भात दो, माँ, भात दो', कहकर खेल करते-करते चली हैं। हम लोगों के उतरने के घाट पर भी दो मुसलमान रमणियाँ चावल धो रही थी। माँ ने उनके निकट जाकर कहा-''माँ, बड़ी भूख लगी है, भात दोगी?'' उन्होंने कहा-''आओ''; माँ तुरन्त नाव से उतरकर उनके साथ चली; हम लोग भी चले। ईख के खेत से ईख ली गई। माँ के मुसलमान स्त्री के घर पहुँचते ही वह आश्चर्य-चकित हो गई। बोली-''क्या हमारा पकाया तुम खाओगी?'' माँ ने कहा-''क्यों नहीं खाऊँगी? देखने में तुम भी मनुष्य हो, मैं भी मनुष्य हूँ। तुम्हारा शरीर कटने पर रक्त निकलता है, मेरा भी निकलता है। तब क्यों न खाऊँगी?'' वह बेचारी भयभीत होकर बोली-''नहीं तुम जाओ।'' इतने में उसकी साथिन बोली-''तू डरती क्यों है? कह न 'चल' वह खायेगी नहीं सिर्फ मुख से कह भर रही है।'' माँ ने तुरन्त जोर देकर कहा- ''क्यों नहीं खाऊँगी।'' उसने कहा- ''गाय के गोश्त के साथ दूँगी।'' माँ ने कहा-''माँ, तुम गाय का गोश्त, बकरे का गोश्त जो दोगी, वही खाऊँगी।'' फिर वे वाद-विवाद करने का साहस न कर जल्दी-जल्दी मकान के भीतर चली गई। माँ ने मुझे आज्ञा दी, एक ईख मेरी माँ को दे आ। मैं दोड़कर मकान के भीतर जाकर एक गन्ना उसके हाथ में दे आई।

आधी रात में रामकूट के मार्ग में नाम-कीर्तन और विष्णु मन्दिर में शेष रात्रि यापन

लीलामयी इस तरह लीला करते हुई चल रही हैं। कीर्तनकारी गा रहे हैं- **हरे कृष्ण हरे राम निताई गौर राधेश्याम।** रात के लगभग 3 बजे हैं। अब भी हम लोग कीर्तनकारी दल के साथ माँ को लेकर गाँव के मैदान के मार्ग में घूम रहे हैं। बीच-बीच में गृहस्थों के घर से पति-पत्नी के बाहर

आकर माँ के चरण-वन्दना करते ही माँ उस स्त्री का हाथ पकड़कर जरा हँस रही हैं, फिर चल रही हैं। इस तरह अर्द्ध-रात्रि में (12 बजे से 3 बजे तक) गाँव, मैदान और घाट पर कीर्तन करते हुए माँ को लेकर इसी समय पहले-पहल भ्रमण हुआ। वृष्टि बन्द नहीं होती थी तथा जन-समुदाय के चरण युगल भी रुकते न थे। किसी एक अद्‌भुत भाव से सब आत्मविस्मृत होकर चल रहे थे। माँ कीर्तन की प्रत्येक ताल पर हाथों से ताली बजा रही थी; कभी बायाँ हाथ ऊपर को उठाकर नृत्य की भंगी से ताल-ताल पर झूम रही थी। यह देखकर भक्तों के अन्दर भाव की लहर उठ रही थी। आनन्द में सब लोग सोने का सुख भूल गये, रात बीतती जा रही थी किन्तु किसी को इसका खयाल नहीं था। इस प्रकार अन्धकाराच्छन्न पथ पर चलते-चलते हम लोग श्रीयुत् नगेन्द्रपाल के विष्णु मन्दिर में जा ठहरे। विशाल मकान था, गृह-स्वामी अत्यन्त भले मानुष और विनीत थे। अतिथि सत्कार भी उन्होंने यथेष्ट किया। रात के 3 बज गये थे। दो-एक ग्रामीण आदमी उस समय नौका की खोज में बाहर निकले। नौका में हमारे कम्बल आदि सभी सामग्री थी। साथ में केवल ओढ़ी हुई चादर ही थी। माँ ने सबसे नौका ढूँढने के लिए मनाही कर दी और कहा-"रात भर के परिश्रम से तुम लोग थके हो, इस समय विश्राम करो। प्रात:काल सब लोग इकट्ठे बाहर चलेंगे।" इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। कहा-"कष्ट किस बात का है? आज हमें कितना आनन्द प्राप्त हुआ है।" शायद माँ और भक्तों को असुविधा होगी इस आशंका से उन्हें विश्राम करने का अवसर नहीं मिला। इतनी रात्रि में वर्षा के बीच वे नौका की खोज में बाहर निकल पड़े। हम लोग दूसरों के उपयोग में आये हुए तोषक, रजाई आदि को व्यवहार में नहीं लाते, इसलिए चादर ओढ़कर किसी तरह पड़े रहे। गृहस्थों की ओर से कोई त्रुटि नहीं थी, उन्होंने बिस्तर आदि की सारी व्यवस्था की थी।

काक्स बाजार में लौटना, रास्ते का दृश्य

8 फाल्गुन, शनिवार- भोर होते ही हमें समाचार मिला कि नौका मिल गई है। अतिथि वत्सल, सेवापरायण ग्रामवासी विष्णु-मन्दिर में ही प्रतीक्षा कर रहे थे; अब वे कीर्तन करते-करते माँ को नौका के रास्ते में ले चले। इस अपरिचित स्थान के हार्दिक सेवा-सत्कार से हम लोग मुग्ध हो रहे थे।

माँ को उन्होंने किस तरह यों ग्रहण कर लिया यह सोचकर हम तो अवाक हो रहे थे। माँ घाट की ओर से चली, साथ में कीर्तन करता हुआ दल था। गाँव के बच्चे और महिलाएँ माँ के चरण छूने के लिए आकुल होकर सड़क पर आकर खड़े थे। कोई-कोई फूल-फल लाकर माँ के चरणों पर निवेदन कर रहे थे। वह एक अपूर्व दृश्य था। नगेन्द्र बाबू के बड़े भाई ने एक डलिया बिस्कुट लाकर माँ के हाथ में देते हुए कहा-''माँ तुम बाँट दो।'' माँ ने उन्हें वितरण कर दिया। कुछ दूर आने पर एक आदमी ने एक डलिया फरुवी माँ के हाथ में दी, माँ के उसे बाँटना आरम्भ करने पर सभी बिखेरने लगे। प्रात:काल चिरकाल से व्यवहार में आने वाली लावों की वर्षा के बदले फरुवी की वर्षा कर फरुवी-मंगल उत्सव हुआ। सब लोगों ने इस तरह आनन्द लूटते हुए माँ को नौका पर चढ़ा दिया। विदाई के कोलाहल में नौका छोड़ दी गई। झुण्ड-के-झुण्ड लोग मैदान के दोनों ओर खड़े होकर माँ को तृषित नेत्रों से देखने लगे; लेकिन मजा यह कि उन्होंने इसी बार पहले-पहल माँ के दर्शन किये थे। ज्योतिष दादा ने माँ को नौका के बाहर बैठा दिया। नगेन्द्र बाबू तथा एक चक्रवर्ती महाशय एवं और भी लोग संग में चले। माँ ने कहा-''तुम लोग बहुत दूर आ गये हो अब लौट जाओ।'' उनके चले जाने पर माँ भीतर आकर लेट गई। लगभग 10 बजे नौका काक्स बाजार पहुँची। हम लोग दीनबन्धु बाबू के मकान में गये। माँ का मुँह धुलाकर मैंने थोड़ा दूध पिला दिया, तदुपरान्त तम्बू में आये। शंकरानन्द स्वामीजी आदि के साथ माँ की विविध बातें हो रही हैं।

माँ की वाणी की सत्यता

नौका में लेटकर माँ ने कहा था-''काक्स बाजार आने के दिन तुमसे मैंने '15 दिन' कहा था न? आज कितने दिन हुए?'' तब हिसाब लगाकर देखा गया तो चौदह दिन काक्स बाजार में ठहरकर 15वें दिन नौका से रामकूट जाना हुआ है। माँ ने कहा-''यही कहा था।'' फिर मार्ग में माँ ने कहा था-''साँप जैसा देख रही हूँ।'' मुझे ज्ञात हुआ कि शीघ्र ही फिर साँप दिखाई देगा।

समाधि का प्रकार-भेद और शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया

रविवार के दिन माँ का शरीर कैसा विचित्र हो गया था, बातों के

दौरान यह चर्चा छिड़ी। माँ ने कहा–''वह समाधि नहीं है। समाधियाँ कितने ही प्रकार की हैं और कितने ही प्रकार की समाधियाँ इस शरीर में हो चुकी हैं। उस दिन तुम लोगों की दृष्टि में मुत्यु के लक्षण अभिव्यक्त हुए थे। महाश्वास शुरू हुआ था। यदि तुम लोग ध्यानपूर्वक देखते तो तुम लोगों को यह समझने में देर न लगती कि नीचे के अंग सब छोड़ दिये थे। श्वास की गति और क्रिया की ओर खयाल करने पर सब कुछ समझ में आ जाता।'' शंकरानन्दजी की ओर इशारा कर–''तुम कहो, प्राण सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक जाता है या नहीं? मेरे प्राण उस दिन हृदय से यहाँ (भ्रूमध्य दिखलाकर) जाकर मानो रुक गये, फिर प्राण धीरे-धीरे विपरीत मार्ग से लौट आये। उस दिन अवस्था दूसरी तरह की हुई थी। समाधि भी विविध प्रकार की हैं। खुकूनी मुझसे कहती–''देखो माँ, पहले तुमको देखती तो तुम समाधिस्थ-सी हो जाती थी, जब उठती तब तुम्हारा आनन्द से उद्भासित मुख कोमल सौन्दर्य और माधुर्य से अनिन्द्य सुन्दर लगता था और रहता था एक स्थिर धीर प्रशान्त भाव। चित्त में जैसे शान्ति अचल होकर विराजमान रहती थी। किन्तु अब प्रतीत होता है कि शवगृह से लौटकर आई हो। ऐसा ही चेहरा दिखाई देता है। सचमुच बात वैसी ही है। पहले आनन्द का भाव, बाद में आनन्द और निरानन्द के परे। उसके पश्चात् और भी एक अवस्था है; इस अवस्था में शरीर में रक्त-संचार की स्वाभाविक गति के लौट आने में 12-14 घण्टे लगते हैं, इससे चेहरा मृतवत् दिखलाई देता है। नाड़ी का स्पंदन बन्द हो जाता है; और भी कितना क्या होता है, बाबाजी (शंकरानन्दजी) ने तो स्वयं ही नाड़ी परीक्षा करके देखी है।'' इन सब बातों से मुझे आतंक हुआ, किन्तु उपाय क्या था? माँ ने आगे और भी कहा–''सदा टहल भी नहीं सकती हूँ; कैसी विचित्र अवस्था होती है। ज्ञात होता है जैसे गिर पड़ूँगी।'' ''मैंने कहा इसलिए तो मारे भय के मैं सदा तुम्हारे पीछे रहती हूँ, मुझे लगता है कि जैसे तुम गिर जाओगी।'' इसी विह्वल अवस्था में चलते-चलते माँ को अनेक बार पैर में ठोकर लगी है। ''क्या होगा? यह सोच नहीं पाती हूँ।'' माँ ने कहा–''चिन्ता क्यों करती हो? जो होने वाला है वह होगा ही।''

लगभग 2 बजे मैंने माँ को थोड़ा खिला दिया। भोजनोपरान्त थोड़ा विश्राम लेने के बाद ही माँ उठ बैठी। बहुत-सी महिलाएँ आई हैं। सन्ध्या

समय माँ ने नाम-कीर्तन आरंभ किया, हम लोग भी साथ-साथ कीर्तन करने लगे-

''जय माँ, जय माँ, माँ, माँ, माँ, माँ, माँ-
''हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल,-
''जय राधे राधे, कृष्ण कृष्ण, हरे राम, हरे हरे,
ओ नाम बलो बदने, शुनाओ काने, बिलाओ जीबेर द्वारे द्वारे।

माँ की सब धर्मों में समान श्रद्धा और स्वभावत: यौगिक क्रिया तथा भाव-समाधि आदि का स्वत: स्फुरण; माँ द्रष्टा मात्र हैं

कुछ देर नाम-कीर्तन चलने के पश्चात् कतिपय भद्र-पुरुष आ पहुँचे, नाम-कीर्तन बन्द हुआ। माँ वार्तालाप करने लगी। कभी हँस रही थी। वह हँसी अत्यन्त संक्रामक थी, सबके हृदय में मानो हँसी के फव्वारे हों। सबके ऊपर आनन्द का ज्वार-भाटा बह रहा था। एक मुसलमान डॉक्टर भी अन्यान्य भद्र-पुरुषों के साथ उपस्थित थे। बातचीत के सिलसिले में माँ ने शाहबाग में जो नमाज़ पढ़ी थी उसकी चर्चा चली। माँ ने मुसलमान सज्जन से कहा-''पिताजी, मैं भी मुसलमान हूँ।'' अविनाश बाबू ने हठयोग की चर्चा चलाई। कह रहे हैं-''रामकृष्णदेव ने तोतापुरी के निकट हठयोग की शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु पुरीजी ने 40 वर्षों में जिसे स्वायत्त किया था, परमहंस देव ने उसे तीन दिनों में किया था। किन्तु हमारी आनन्दमयी माँ का सब कुछ अपूर्व है। माँ की हठयोग की क्रियाएँ अपने आप ही हो जाती थी, भोलानाथजी को देखकर भय लगता था। बहुत कुछ सुना है, किन्तु ऐसा कहीं न देखा, न सुना और पढ़ा ही है।'' माँ इन सब बातों की नन्हें बच्चे की तरह आलोचना कर रही हैं- ''यह जो सब होता था, इसमें इच्छा-शक्ति की तनिक भी क्रिया नहीं थी, हो जाता था और मैं देखती थी, केवल इतना ही। फिर कीर्तन होने पर ही शरीर बेकाबू होता था सो बात भी न थी। कभी-कभी साधारण कीर्तन से ही ऐसा होता था, कभी बहुत घमासान कीर्तन में भी कुछ नहीं होता था। कभी रसोई बनाने बैठी, लकड़ियाँ ऊपर करते जाकर हाथ वहीं गिर गया, शरीर भी गिर गया-बस।''-कहकर हाथ से ताली बजाकर बच्चे की तरह हँस पड़ी।

प्रत्येक शरीरधारी ही संसारी है, सभी धर्मावलम्बियों को प्रतिष्ठा-दान

योगेन्द्र बाबू ने एक दिन तम्बू में सोने की अभिलाषा प्रकट की।

शंकरानन्दजी कह रहे हैं–"अच्छा तो है, सोवें।" उन्होंने कहा–'हम तो माँ के गण नहीं हैं, हम संसारी लोग ठहरे।" माँ हँसते–हँसते बोल पड़ी–"मालूम पड़ता है तुम 'गण' से अलग हो। संसारी कौन नहीं है, कहो तो? यह शरीर जब तक है, स्वांगसाथी बनकर रहता है।" हँसते हुए मेरी ओर ताककर बोली–"क्या कहती हो?" विविध वार्तालाप के बाद मुसलमान सज्जन ने विदा लेते हुए कहा–"मैंने आपको तकलीफ दी।" माँ ने तुरन्त चाँदनी–सी शुभ्र हँसी से उस स्थान को आलोकमय करते हुए कहा–"क्या बाप के लड़की के निकट आने पर लड़की को तकलीफ होती है? लड़की से फिर ये बातें न कहना पिताजी! जब इच्छा हो ऐसी ही तकलीफ देना।" सज्जन ने अत्यन्त आनन्दित होकर 'आदाब' कहकर विदा ली, माँ ने भी 'आदाब' कहकर प्रतिनमस्कार व्यक्त किया। माँ मुसलमानों को सदा ही इसी भाव से प्रतिनमस्कार करती थी। माँ का हर एक व्यवहार त्रुटिरहित और सुन्दर होता है। खिले हुए सहस्रदल कमल की प्रत्येक पंखुड़ी रूप–रस–गन्ध और स्पर्श से भरपूर होती है।" थोड़ी देर बाद ही माँ ने कहा–"तुम लोग मेरे यहाँ कितने बजे से बैठे हो, अब क्या बजा है?" हम लोगों ने कहा–"3 बजे से बैठे हैं, अब 8 बज गये हैं।" माँ ने हँसते हुए कहा–"अब थोड़ा बाहर जाना चाहती हूँ–क्या विचार है?" यह कहकर छोटे बिठौने का त्याग कर उठ गई। बाहर थोड़ी देर परिभ्रमण कर फिर भीतर बिछौने में जा बैठी। मैंने थोड़ा दूध और जलपान कराने की चेष्टा की; कुछ भी नहीं खाया, सो गई।

गोपालजी की पत्नी मीरा के साथ उसके पति का बन्धन–मोचन

9 फाल्गुन रविवार– कुछ दिन पहले की बात है, तब माँ देहरादून में थी। मीरा (गोपालजी की पत्नी) के प्रति गोपालजी के प्रबल अनुराग के सिलसिले में एक दिन लक्ष्मी राणी आदि कई महिलाएँ थोड़ा मजाक कर रही थी। मीरा कुछ अस्वस्थ हुई है, गोपालजी बड़े चिंतित होकर माँ से ये सब बातें कह रहे थे। माँ ने यों ही खेल में गोपालजी से कहा–"क्या बन्धन में ऐसे जकड़ना चाहिए? देखो इस तरह बन्धन तोड़ा जाता है।" यह कहकर अपने पहने हुए वस्त्र का टुकड़ा फाड़ दिया। गोपालजी ने सोचा इस तरह तो मीरा खो जायेगी। उन्होंने दौड़कर उस फटे हुए वस्त्र–खण्ड को उठा लाकर जतन से रख दिया। इस बात को लेकर सभी ने हँसी–मजाक

किया। अस्तु, इस घटना के कुछ समय बाद सचमुच मीरा असाध्य कैंसर रोग से आक्रान्त हुई, बहुत चिकित्सा करने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अवस्था क्रमश: शोचनीय हो गई। माँ तब नवद्वीप में थी। गोपालजी ने मीरा के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना कर माँ के निकट 2-3 तार भेजे। इधर हरिराम ने गोपालजी से कहा (बाद में इन लोगों को सुनने में आया)- ''तुम माताजी के वस्त्र के टुकड़े को यज्ञ में आहुति दे दो नहीं तो मीरा को यह कष्ट-भोग ही होगा, जीवनान्त नहीं होगा।'' दूसरा उपाय न देखकर गोपालजी ने उस वस्त्र के टुकड़े की यज्ञ में आहुति दे दी। इसके थोड़े दिन बाद ही मीरा का सब कष्ट हट गया। इसलिए कहती हूँ कि लीला के ब्याज से माँ कितने सत्य रत्न वितरण कर रही हैं कौन उनकी इयत्ता करेगा? हम लोगों की जानकारी की ओट में महाशक्ति का कितना लीला-विलास चल रहा है, उसका निश्चय करने का सामर्थ्य किसमें है?

चाँदनी में समुद्र-तट पर कीर्तन

अस्तु, आज माँ थोड़ा दिन चढ़ते ही समुद्र-भ्रमणार्थ बाहर निकली। लौटने के बाद थोड़ा कुछ जलपान करके ही लेट गई। दोपहर में महिलाओं के आने पर माँ ने सबको साथ लेकर नाम-कीर्तन किया। मैं आजकल हारमोनियम से गाना सीख रही हूँ; माँ ने कहा-''आज तुम्हीं नाम-कीर्तन करा दो; हम सब नाम-कीर्तन करेंगे।'' वही हुआ। कुछ देर नाम-कीर्तन होने के बाद दल-बल के साथ माँ समुद्र के किनारे चली गई। आज शनिवार है, छुट्टी के बाद स्कूली लड़के तम्बू में आकर इकट्ठे हुए हैं। समय मिलते ही अब वे माँ के निकट भाग आते हैं। मार्ग में उन्होंने कहा-''माँ, तुम नाम-कीर्तन करा दो, हम करते हैं।'' माँ ने 'हरि बोल हरि बोल' कहकर नामामृत लहरी उठाई। तदुपरान्त 'माँ माँ माँ माँ' ध्वनि तरंग ने उत्ताल आकार धारण किया। चाँदनी रात है और स्वच्छ नीला आकाश; समुद्र निरन्तर रजत धाराएँ अपने वक्ष:स्थल में मिलाकर नृत्य कर रहा है। मालूम होता है ऐसी ही एक मधुयामिनी में श्रीगौरांग-सुन्दर ने समुद्र तट पर 'प्रतिपदं पूर्णामृता-स्वादनम्'' रसधारा भारतभूमि में निरन्तर सींची थी और उसी से देश ने श्याम शोभा से क्या अपूर्व छवि धारण की थी। सच्चिदानन्द विग्रह हमारी माँ फिर तटभूमि में नाम बिखेर रही हैं। ऊसर

भूमि में इसका फल कितना गहरा, कितना सुदूर-व्यापी होगा कौन बतला सकता है? माँ को मध्य में करके लड़कों का दल घूम-घूमकर नाम-कीर्तन कर रहा है। माँ हाथों से ताली बजाकर गा रही हैं:-

माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
कह माँ, भज माँ-इत्यादि।

अनिर्वचनीय आनन्द से भरपूर है। थोड़ी देर के बाद माँ तम्बू की ओर लौटी हैं। लड़के बिना थकावट के नाच-नाचकर नाना प्रकार से कीर्तन करते चल रहे हैं। माँ के आदेशानुसार उन्हें फल वितरण किये गये। वे "**आनन्दमयी माँ की जय**' बोल उठे। लड़कों में 7-8 वर्ष के लड़कों से लेकर 20-22 वर्ष की उम्र तक के युवक हैं। वे जिस समय विविध प्रकार से नाच-नाचकर कीर्तन कर रहे थे उस समय का दृश्य अलौकिक मालूम पड़ता था। 'गोपाल' कह कर माँ उनका सत्कार कर रही थी। बहुत रात तक कीर्तन करने के बाद माँ को साष्टांग प्रणाम कर उन्होंने एक-एक करके विदा ली।

सपत्नीक जज साहब का मातृवन्दन

10 फाल्गुन, सोमवार- आज भी माँ सवेरे भ्रमणार्थ बाहर निकली। पोस्ट-मास्टर साहब की माँ के साथ एकान्त में बातें होने वाली हैं, वह माँ के साथ गये और भी 1-2 आदमी गये। एक घन्टे के बाद माँ के लौटने पर मैंने माँ को थोड़ा जलपान करा दिया। आज राम बाबू माँ को भोज देंगे। रसोई बनने में विलम्ब है। लगभग 3 बजे भोग लगा। सबने प्रसाद पाया। सायंकाल 5 बजे योगेन्द्र बाबूजी की स्त्री पूर्व-व्यवस्थानुसार माँ को अपने मकान में ले गयी, बहुत लोग माँ के साथ वहाँ गये। मकान बहुत अच्छी तरह सजाया हुआ है, माँ को बड़े आदर के साथ स्वागतपूर्वक भीतर ले जाया गया। सामने चौकी पर माँ की प्रतिमा बहुत सुन्दर ढंग से सुसज्जित थी। लड़के माँ के साथ-साथ हैं; सारे मार्ग में कीर्तन करते आये हैं। मुन्सिफ बाबू और विपिन बाबू के साथ डिस्ट्रिक्ट जज साहब माँ का दर्शन करने के लिए सपरिवार तम्बू की ओर आ रहे थे। रास्ते में ही माँ के साथ भेंट हुई। मेम साहिबा ने माँ के चरणों का स्पर्श कर प्रणाम किया, बहुत ही प्रसन्नता प्रकट करने लगी। माँ चटगाँव कब जायेंगी, यह पूछा। वे यहाँ दौरे पर आये हैं।

जमकर कीर्तन; आनन्द की लूट; ''सभी प्रकृतियाँ हैं''

योगेन्द्र बाबू के मकान पर भी लड़कों ने तुमुल कीर्तन चलाया है, हाथ उठाकर नाच-नाचकर सिर्फ नाम ही गा रहे हैं। नाम-रस में लड़के मानो पागल हो गये हैं। उन्होंने अलग-अलग जोड़ा बनाकर एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाना भाव-भंगी से नाचते-नाचते नाम का तहलका मचाया है। वयस्क लड़के उन्हें थोड़ा सम्हालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसी बीच में रामकूट से माँ के दर्शनार्थी कीर्तन-कारियों का दल कीर्तन करते-करते सीधे योगेन्द्र बाबू के मकान पर आ पहुँचा। भोलानाथजी ने भी कीर्तन में योगदान किया। कीर्तन खूब जम उठा। करताल, मृदंग आदि की गीत-मिश्रित ध्वनि की धूम मची है, आनन्द उमड़ रहा है-आनन्द की कोई सीमा नहीं है। माँ हँसी का फव्वारा छोड़कर कह रही हैं-''माँ (योगेन्द्र बाबू की स्त्री) ने कहा था, आज पुरुषों को मकान में घुसने नहीं दूंगी। तुम्हारे साथ कई लोग और लड़के-बच्चे मिलकर आज कीर्तन करेंगे।'' क्यों माँ, क्या आज यहाँ सभी स्त्रियाँ ही हैं। और हैं ही तो पुरुष भी जब उस परमपति की कामना करते हैं तब वे भी स्त्रियाँ ही हैं।''-यह कहकर हँसने लगी। बहुत विलम्ब हो गया है, माँ अब तम्बू में लौटेंगी। योगेन्द्र बाबू की पत्नी माँ को अपने हाथ से खाना खिला रही हैं। थोड़ी खीर माँ के मुँह में डाल कर कह रही हैं-''माँ मेरे बड़े लड़के को जो राज-बन्दी है, खीर बहुत पसन्द थी, उसी खीर को मैं तुम्हें खिला रही हूँ, क्योंकि तुम्हीं मेरे लड़के और लड़की हो।'' यह कहते-कहते रुलाई से उनका गला रूँधने पर माँ कह रही हैं, ''माँ, मैं तुम्हारा लड़का और लड़की हूँ; यदि तुम रोओगी तो मैं मुँह से खीर बाहर फेंक दूँगी।'' योगेन बाबू की पत्नी ने तुरन्त माँ को गले लगाकर नेत्रों के आँसू पोंछते हुए कहा-''नहीं माँ, खीर मत फेंकना। तुम्हीं मेरा सब कुछ हो। मैं अब नहीं रोऊँगी।'' यह कहकर वह फिर हँसी-खुशी से बातें करने लगी। बालकों का झुण्ड कीर्तन करते-करते माँ को तम्बू में लौटा ले चला। तम्बू में भी कुछ समय कीर्तन कर सबने अलग-अलग माँ को साष्टांग प्रणाम कर विदा ली।

माँ अन्तर्यामिनी हैं; गंभीर रात में रामकूट के कीर्तन-दल का आगमन, राखे हरि मारे के?

माँ अपने छोटे बिछौने पर बैठकर सामगत भक्तों के साथ कथावार्ता

करने लगी। कुछ देर बाद माँ लेट गई, अन्यान्य सभी लोगों ने भी सोने की तैयारी की। सहसा माँ उठकर बाहर आ बैठी, साथ-ही-साथ ज्योतिष दादा और मैं भी बाहर आ बैठे। थोड़ी देर बाद देखती क्या हूँ कि रामकूट से आये हुए भक्त मृदंग और करताल के साथ आ पहुँचे, किन्तु तम्बू में लोगों को निद्रामग्न देख वे कीर्तन का प्रस्ताव करते हुए दुविधा में पड़ गये। बात माँ ने ही पहले चलाई-''तुम लोग क्या पैदल ही आये हो?'' ''हाँ, माँ, सात मील लम्बा रास्ता पैदल ही तय किया है।'' विविध बातचीत के बाद हँसते हुए माँ ने पूछा-''मृदंग-करताल लेकर क्यों आये हो?'' वे लोग चुप रहे। तब ज्योतिष दादा ने कहा-''आये हो तो दो-एक गाने सुनाओ।'' चक्रवर्ती महाशय ने गाना आरम्भ किया, सभी लोग साथ गाने लगे। रात के करीब 12 बजे कीर्तन पूरा कर वे लोग विदा हुए। कह गये कि कल प्रातःकाल ही रामकूट लौट जायेंगे। इनके प्रसंग में माँ ने हँसते हुए कहा-''मैं तो सोई थी एकाएक रात्रि में बाहर आकर बैठी। और किसी दिन तो ऐसा होता नहीं था। कल रात्रि में भी सोई थी। सहसा उठकर मैं समुद्र की ओर चली। जाकर देखती हूँ कि एक कुत्ते के बच्चे को सियार ने पकड़ा है। थोड़ी देर बाद जाने पर तो बच्चे को मार ही डालता। ज्योतिष साथ था, उसने बच्चे को लाकर बंकिम के मकान पर रख दिया। 'राखे हरि मारे के? मारे हरि राखे के?'-लोग कहते हैं न?

रामकूट-दल का कीर्तन

11 फाल्गुन, मंगलवार- आज भी करीब 8 बजे सवेरे पोस्ट-मास्टर साहब एकान्त में न जाने क्या बात कहने के लिए माँ को समुद्र के किनारे ले गये। मुँह धोये बिना ही माँ बाहर चली गई, लगभग 12 बजे दोपहर में लौटी। पोस्ट-मास्टर साहब एक घण्टा रहकर चले गये थे। माँ अकेली ही समुद्र के किनारे बैठी थी। ज्योतिष दादा जाकर माँ को बुला लाये। मैंने कहा-''माँ, तुमने कल दोपहर में खाया था फिर कुछ नहीं खाया; आज भी इतना विलम्ब हो गया है अभी तक मुँह में कुछ नहीं डाला-तुमने क्या सोचा है? कहो तो!'' माँ ने कहा-''क्या करूँ, खाने का खयाल ही नहीं रहता।'' बहुत कह-सुनकर थोड़ा-सा मैंने खिलाया। खाते ही माँ लेट गई। रामकूट के कीर्तन-कारियों का दल अभी गया नहीं था, वह अपराह्न में माँ के समीप कीर्तन करने को कह गया है। 2 बजने के पहले ही स्त्रियों और

बालकों का झुण्ड आ पहुँचा। इतने बड़े तम्बू में भी जगह नहीं है। अपराह्न में माँ के आदेश से मैंने नाम-कीर्तन किया। तदुपरान्त रामकूट के कीर्तन-कारियों के दल ने कीर्तन आरंभ किया। कीर्तन बहुत रात तक चलता रहा। कीर्तन के बाद माँ को थोड़ा-सा खिलाने की मैंने चेष्टा की, माँ ने खाया नहीं। इस तरह धीरे-धीरे माँ आहार एकदम त्याग रही हैं। क्या करेंगी माँ ही जाने? रात में 12 बजे सभी सो गये।

माँ की निद्राहीन रात्रि

12 फाल्गुन, बुधवार– माँ आज भी बहुत विलम्ब से उठी हैं। कभी-कभी रात्रि में बिल्कुल भी स्थिर नहीं रह सकती हैं, मानो जबरदस्ती चादर से मुँह ढककर सवेरे देर तक सोई रहती हैं। प्राय: सारी रात करवटें बदलकर काटती हैं। कभी कहती हैं- ''कल रात एक घड़ी भी पलक नहीं लगी,'' शरीर भी स्थिर नहीं रहता। प्रात:काल चादर ओढ़कर मानो छिपी हों, इस प्रकार पड़ी थी। आज-कल प्राय: यही अवस्था है। कहती हैं-''निद्रा का भाव नहीं है।'' कभी उठकर बैठी रहती हैं; कभी कहती है-''कल रात निद्रा का भाव ही नहीं था; जोर करके कितनी देर सोना संभव है! खयाल हुआ? समुद्र के किनारे चली जाऊँ किन्तु ठण्डक में फिर तुम लोग भी आओगे, यह सोचकर जाना नहीं हुआ। पर तीव्र इच्छा होने पर ये सब बाधाएँ रुकावट नहीं डाल सकती, संभवत: तीव्र इच्छा हुई ही नहीं? यह कहकर हँसने लगी। आज प्रात:काल उठकर तम्बू के भीतर ही कुछ देर माँ ने चहल-कदमी की। तदनन्तर अपने छोटे से बिछौने पर जा बैठी। 2-1 आदमी दर्शनार्थी आये हैं, माँ उनके साथ बातें कर रही हैं। लगभग 10 बजे बहुत अनुनय-विनय करने पर माँ ने थोड़ा-सा खाया। तदुपरान्त थोड़ी देर टहलकर फिर बिछौने पर जाकर लेट गई। चादर ओढ़कर लेटी हुई हैं। आज श्रीयुत् लक्ष्मीकान्त चक्रवर्तीजी के मकान में माँ को भोग दिया जायेगा, दोपहर के बाद लगभग 1 बजे उस मकान से माँ को बुलाने के लिए आदमी आया। माँ उठ बैठी। संग के सब लोग माँ के साथ प्रसाद पाने गये। लगभग 4 बजे सब लोग तम्बू में लौटे, तब बहुत से दर्शनार्थी तम्बू में इकट्ठे हुए। स्कूल के लड़कों की तो बात ही नहीं, 3-4 दिनों की छुट्टी पाकर वे महान् आनन्द से माँ के साथ-ही-साथ हैं। माँ आते ही लड़कों से बोली-''आओ हम लोग एक खेल खेलें। इस खेल का नाम सच्चिदानन्द

खेल है।'' यह कहकर लड़कों को साथ लेकर बैठ गई। समुद्र से निकाली गई कौड़ियों से खेल शुरू हुआ। इस खेल का नाम और नियमावली माँ ने ही बनाई है। लगभग 15-20 लड़कों को लेकर माँ खेलने बैठी। दो दल बना दिये गये। एक दल में शंकरानन्द हैं। माँ ने कहा-''मैं बीच में बैठे-बैठे देखूँगी।'' वैसे ही खेल आरंभ हुआ। इस बीच में एस.डी.ओ. और जज साहब की मेम माँ के समीप आकर उपस्थित हुई। खेल बन्द हो गया।

बच्चों को लेकर सच्चिदानन्द खेल, जो हारेगा उसे निर्दिष्ट संख्या में भगवान् का नाम लेना होगा, इससे शिशुओं का नाम के ऊपर झुकाव

आधा घण्टे तक उन्होंने माँ से बातें की। उनके चले जाने पर फिर खेल शुरू हुआ। माँ ने खेल में यह नियम बनाया है कि जो हार जायेगा उसे 108 बार भगवान् का नाम-कीर्तन करना होगा। हाँ, नाम में विशेष प्रतिबन्ध नहीं है, जिसे जो रुचे। खेल के बाद नाम-कीर्तन शुरू हुआ। जो हारकर नाम-कीर्तन कर रहे हैं वे अपमानित न होकर, जो जीते हैं उनसे कहने लगे-''देखो तो हमारा क्या भाग्य है हम भगवान् का नाम-कीर्तन कर सके हैं।'' आज कई दिनों से माँ के समीप आने पर नाम-कीर्तन करना पड़ता है। इससे छोटे-छोटे बालकों में नाम-कीर्तन का अत्यन्त आग्रह हो गया है। वे राह चलते-चलते भी **'हरि बोल हरि बोल'** या 'माँ माँ माँ माँ' कहकर गुनगुनाते रहते हैं। सन्ध्या-समय तम्बू के निकट ही एक भद्रपुरुष के मकान में माँ को लिवा ले गये। वहाँ भी बहुत आदमी इकट्ठे हुए। कीर्तन आदि के बाद माँ एवं उपस्थित भक्तजनों को उन्होंने जलपान कराया। फिर मुसलमान बालकों ने सन्ध्या के बाद माँ को अपने थियेटर में ले जाने का अनुरोध किया। माँ भी तैयार थी किन्तु पहले ही शरत बाबू (वकील) के मकान में कीर्तन की बात पक्की हो गई थी, इसलिए वहाँ जाना नहीं हुआ। सबके लौटते-लौटते रात के 12 बज गये। तदुपरान्त माँ सो गई।

चक्र-भेदन का उपाय, एक ही लक्ष्य से नाम लेना

13 फाल्गुन, बृहस्पतिवार- माँ आज सवेरे उठकर बैठी हैं। 2-1 भद्र पुरुष आकर बैठे हैं। वे माँ के साथ एकान्त में वार्तालाप करने वाले हैं। माँ बिस्तर पर बैठी-बैठी उनके साथ बातें कर रही हैं। करीब 9 बजे माँ

तम्बू से बाहर निकली। तदनन्तर मुँह धोकर थोड़ा-सा दूध लिया। आज शशी दादा माँ के लिए पके हुए पपीते का हलवा बना रहे हैं-वह भी माँ ने थोड़ा-सा लिया। समीप में 4-5 लड़के खड़े थे; माँ ने उनके हाथों में देने को कहा। तदनन्तर स्वयं ने थोड़ा-सा खाया। तदुपरान्त लड़कों से माँ ने कहा-''इस समय तुम भी खाओ, मैं भी खाती हूँ; मैं भी तो बच्ची हूँ।'' यह कहकर हँसने लगी। सब-डिपुटी साहब की स्त्री आई हैं। वह माँ के सिर के बाल ठीक करते-करते बोली-''माँ तो मेरी लड़की है-माँ के सिर के बाल ठीक कर देती हूँ। माँ मेरी माँ भी हैं और लड़की भी हैं।'' माँ हँसते-हँसते बोली-''नहीं, मैं तुम सब लोगों की नन्ही बच्ची हूँ।'' यह सब कहकर आनन्द की वर्षा कर रही हैं। थोड़ी देर बाद ही माँ उठकर फिर तम्बू के भीतर जा बैठी। दो-चार भद्र-पुरुष आये हैं। वार्तालाप हो रहा है। करीब 12 बजे माँ को भोग दिया गया। कई दिनों से पकी तरकारी के साथ थोड़ी सूजी खा रही हैं। आज भी माँ ने वही खायी। खाने-पीने के बाद थोड़ा लेट गई। स्त्रियाँ अभी तक आई नहीं हैं। प्रायः डेढ़ घण्टे माँ लेटी रही। इस बीच में ही स्त्रियाँ आकर बाहर बैठी हैं। माँ के उठने पर सभी तम्बू के अन्दर माँ के पास जा बैठी। धीरे-धीरे बच्चों का झुण्ड भी आ जुटा। माँ अपने बिछौने पर ही बैठी हैं। सन्ध्या से पहले दुकानदारों का झुण्ड कीर्तन लेकर आ पहुँचा। बहुत लोग इकट्ठे हुए। माँ एक ही स्थान पर बैठी हैं। खूब कीर्तन हुआ। कीर्तन के बाद धीरे-धीरे सबने माँ से विदा ली। 2-1 भद्र पुरुष बैठकर माँ के साथ वार्तालाप करने लगे। जिस समय मैं तम्बू के अन्दर गई तब मैंने सुना कि माँ षट्चक्र की बात कह रही हैं। भद्रपुरुष ने कहा-''कितने चक्र हैं?'' माँ ने कहा- ''मान लो जैसे तुम रेलगाड़ी में चढ़कर एक स्टेशन पर जाओगे। वह स्टेशन यद्यपि एक ही है तथापि वहाँ जाने पर और भी न मालूम कितना क्या-क्या तुमने देखा; उसी तरह तुम्हारी पुस्तक-पोथियों में षट्चक्रों की बात है; किन्तु जो उसका भेदन कर गये हैं वे जानते हैं कि और भी कितने चक्र, कितना क्या-क्या उनके अन्दर हैं।'' भद्रपुरुष ने कहा-**''इन चक्रों के भेदन का क्या उपाय है?''** माँ ने कहा-''**एकाग्र मन से नाम-कीर्तन करना और लक्ष्य में रहने के लिए ही नाना प्रकार के कर्म करने पड़ते हैं, जिनसे सदा एक न एक कुछ लेकर भगवान् की ओर लक्ष्य रखने की चेष्टा करनी पड़ती है। जैसे-जप, ध्यान, सत्संग, सद्ग्रन्थ पाठ या कीर्तन**'' इत्यादि। भद्रपुरुष ने कहा- गुरुमन्त्र से हम लोगों का काम

क्यों नहीं होता? माँ ने कहा- **''क्यों नहीं होता–जानते नहीं? हम लोग औषधि खाते हैं, किन्तु कुपथ्य करते हैं। इसलिए औषधि काम नहीं करती, रोग भी नहीं हटता। इसीलिए जैसे गुरुदत्त औषधि पड़ी है वैसे ही सुपथ्य भी पड़ना चाहिये। अर्थात आहार–विहार सभी ठीक तरह होना चाहिये। तुम्हारे अन्दर ही तो सब हैं–एकत्व, बहुत्व, अनन्त, अव्यक्त और व्यक्त।''**

मन आनन्द चाहता है, इसलिये चचंलता है

भद्रपुरुष ने कहा–''माँ, मन बहुत ही चंचल है।'' माँ ने कहा–**जैसे चचंलता उसका स्वभाव है–वैसे ही स्थिरता भी उसका स्वभाव है। और मन तो अपनी माँ को अर्थात् पूर्ण आनन्द को चाहता है। इसीलिये देखो न उसे सांसारिक चाहे जितने भी सुखभोग दो वह तृप्त नहीं होता और कहाँ–कहाँ भाग जाता है। चंचलता रहेगी ही, वह भगवान् को पाने के लिए ही चंचल होकर बैठा है। वे जब तक न मिलेंगे तब तक वह शान्त नहीं होगा। उनके मिलते ही शान्त हो जायेगा।"** यह बात सुनते ही भद्रपुरुष ने कहा–''ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी। आज मुझे बहुत बड़ी शिक्षा मिली है।'' माँ ने कहा–''तुम्हीं ने शिक्षा दी''– यह कहकर हाथ जोड़ दिये। थोड़ी देर बाद ही भद्रपुरुष ने माँ को प्रणाम कर विदा ली। माँ को थोड़ा–सा खिलाने की चेष्टा की गई। माँ ने थोड़ा–सा खाया, तदनन्तर कहा–''आज अभी तक टहली नहीं हूँ–तब से जो बैठी हूँ फिर उठी ही नहीं''। हिसाब करके देखा गया लगभग 10–12 घंटों से माँ उसी एक स्थान पर बैठी हैं। माँ ने भी इस बात पर हास–परिहास किया। अन्त में माँ थोड़ा बाहर घूमने गई। हम लोग भी साथ–साथ गये। रात में लगभग 1 बजे माँ विश्राम करने के लिए सो गई।

14 फाल्गुन, शुक्रवार– आज सवेरे माँ के उठते ही शशी बाबू माँ को समुद्र के किनारे फोटो खींचने के लिए ले गये। इसी बीच में 2–4 भद्र–पुरुषों ने समुद्र के किनारे जाकर माँ से भेंट की। माँ सबके साथ समुद्र से लौटकर तम्बू के भीतर बैठी। थोड़ी देर बाद माँ को बाहर बुलाकर थोड़ा–सा खिला दिया गया। तदुपरान्त माँ पुनः तम्बू में जा बैठी। 'सच्चिदानन्द–खेल' के नियम तब तक निश्चित नहीं हुए थे। पुनः–पुनः उसमें परिवर्तन हो रहा था। आज माँ ने उन्हें ठीक कर ज्योतिष दादा से एक कागज पर लिखवाया। तदनन्तर भोलानाथजी, ज्योतिष दादा, शशी दादा, शंकरानन्द एवं

लड़कों को साथ लेकर माँ खेलने बैठी। दोपहर में लगभग 1 बजे तक खेल चला। आज दीनबन्धु बाबू के मकान पर माँ सबको लेकर भोजन करने जायेंगी, यह कह दिया है। उनके मकान से स्त्रियाँ माँ को बुलाने के लिए आई। मैंने कहा–''सच्चिदानन्द खेल के नियम ठीक किये जा चुके हैं न ?'' माँ ने कहा– ''हाँ आज ठीक हो गये हैं, अब उनमें परिवर्तन नहीं होगा। आज पूर्णिमा शुक्रवार है, आज 'सच्चिदानन्द खेल' आरम्भ हुआ।'' यह कहकर हँसने लगी। लीलामयी इस प्रकार खेल के बहाने नाना लीलाएँ कर रही हैं। अस्तु, माँ सबको साथ लेकर दीनबन्धु बाबू के मकान पर गई। दीनबन्धु बाबू के मकान के सभी लोगों का निश्चय है कि माँ पूर्व–जन्म में कभी उनके वंश की लड़की थी। वे उसी तरह से माँ के साथ बर्ताव करते हैं। दीनबन्धु बाबू के भतीजे विजन बाबू (वकील) ने कहा–''हम लोग आनन्दमयी के भक्त नहीं हैं। हम लोग उनके आत्मीय हैं। वह हमारी दीदी हैं।'' यह विचार कर ही वे गर्व का अनुभव करते हैं। उस दिन एक घटना घटी। विजन बाबू सख्त बीमार पड़े हैं। एक फोड़ा और ज्वर हुआ है। कुछ दिन पूर्व ही एक फोड़े का ऑपरेशन किया गया है। फिर दूसरा फोड़ा हुआ है। डॉक्टर ने कहा है–''कल ही ऑपरेशन करना होगा।'' हम लोग जिस दिन रामकूट गये, उसके पहले ही दिन माँ जाकर दीनबन्धु बाबू के मकान में बैठी। विजन बाबू उठ नहीं सके। बिछौने पर बैठे–बैठे जंगले में से माँ को देख रहे थे। माँ से उन्होंने कहा–''इस बार फिर ऑपरेशन सहन न कर सकूँगा; फोड़ा यदि फूट जाता तो मैं त्राण पा जाता।'' माँ कुछ नहीं खाती हैं, वहाँ जाकर उन्होंने थोड़ा दूध पीया; शेष सब विजन बाबू को देने को कहा। विजन बाबू ने भी उसी समय प्रसादी का दूध पी लिया। दूसरे दिन रामकूट से आकर मैंने सुना कि रात में ही फोड़ा फूट गया है। माँ ने यह सुनकर जरा हँस भर दिया। विजन बाबू आदि का विश्वास है कि माँ के अनुग्रह से ही ऐसा हुआ है।

सच्चिदानन्द खेल के बहाने लड़कों से नाम–कीर्तन कराना

दीनबन्धु बाबू के मकान से आकर माँ फिर 'सच्चिदानन्द खेल' खेलने बैठी। बहुत से लड़के आये हैं। बड़े आनन्द से खेल चला। सन्ध्या से थोड़ा पूर्व ही नाम–कीर्तन हुआ। माँ को पन्ना बाबू के मकान में ले गये। रात में 12 बजे तक वहाँ कीर्तन हुआ। भोलानाथजी कीर्तन में खूब मत्त

हुए। सभी को उससे आनन्द मिला। पन्ना बाबू ने माँ और भक्तों के भोजन का अच्छा प्रबन्ध किया था। तम्बू में लौटकर लगभग दो बजे तक का समय सभी ने वार्तालाप आदि में व्यतीत किया। 2 बजे सबने शयन किया।

15 फाल्गुन, शनिवार– माँ आज सवेरे उठकर जरा देर के लिए समुद्र के किनारे गईं। वहाँ से आकर मुँह धोया, मैंने थोड़ा दूध पिला दिया। लगभग 12 बजे भोजन हुआ। भोजन के अनन्तर 'सच्चिदानन्द खेल' चला। इतने में ही स्कूल के लड़कों का दल आ जुटा। सबके साथ माँ खेल रही हैं। खेल का नियम है कि जो दल हारेगा वह जिस किसी नाम का 108 बार जप करेगा तथा जो दल विजयी होगा वह मारे आनन्द के नृत्य करेगा। इस तरह से माँ सबसे नाम-जप करा रही हैं। लड़के भी इस खेल में दिलचस्पी ले रहे हैं। खेल के समय भी सभी को सत्, चित् और आनन्द स्वरूप हो सके या नहीं, यह चिन्ता ही करनी पड़ती है। पश्चात् नाम-जप चलता है। लड़कों की दाना-पानी की छुट्टी पूरी हो गई–इस बीच महिलाएँ भी खेल में आ जुटीं। फिर उनके साथ खेल चला। सन्ध्या के पहले विराज बाबू ने आकर माँ की आज्ञा के अनुसार सबको साथ लेकर कीर्तन किया। तदनन्तर माँ बाहर बालू में जा बैठीं, महिलाओं ने गाना गया। चाँदनी के उजाले में सन्ध्या का समय माँ के साथ गाने में बहुत अच्छा बीता। रात्रि अधिक बीतने के कारण सब लोगों ने एक-एक करके विदा ली। बीमार बच्चे आये हैं, किन्तु यहाँ आकर किसी का उसके लिए खयाल भी नहीं है। माँ थोड़ा-सा भोजन कर फिर उपस्थित सब लोगों के साथ खेल में बैठी हैं। रात्रि में लगभग 12 बजे सबने शयन किया।

कृपा का अनुभव करना हो तो कृपा का अधिकारी होना चाहिए

16 फाल्गुन, रविवार– आज प्रात:काल उठकर माँ बिछौने पर बैठी हैं। बहुत से लोग आये हैं। 'सच्चिदानन्द खेल' आरंभ हुआ। आज दीनबन्धु बाबू के मकान में माँ का भोज है। थोड़ा खेलने के बाद ही माँ लेट गईं, फिर और सब लोग खेल रहे हैं। लगभग 2 बजे उठकर माँ दीनबन्धु बाबू के मकान पर भोजन के लिए गईं। 4 बजे माँ तम्बू में लौटीं। सब लोगों के साथ 'सच्चिदानन्द खेल' चल रहा है। सबसे नाम-जप कराना इस खेल का उद्देश्य है। माँ कहती हैं–''स्त्री-पुरुष यहाँ आकर व्यर्थ की बातें करते

हैं, नाम-कीर्तन करने के लिए कहने पर भी विशेष नहीं करते। अब इस खेल के बहाने ही नाम-कीर्तन करेंगे।'' वास्तव में वही हो रहा है। दोनों हाथ ऊपर उठाकर सब लोग जब ऊँचे स्वर से नाम-कीर्तन करते है तब पड़ौसी भी जान जाते हैं कि सच्चिदानन्द खेल का विजयी दल नाम-कीर्तन कर रहा है। सन्ध्या के कुछ पहले ही माँ सबको साथ लेकर समुद्र के किनारे गई। आज आकाश मेघाच्छन्न है, इसलिए धूप न रहने के कारण दिन रहते ही माँ बाहर गई हैं। समुद्र के किनारे थोड़ा खेल हुआ। तदनन्तर माँ महिलाओं को साथ लेकर नाम-कीर्तन करते-करते चली। समुद्र-दर्शन करके फिर तम्बू की ओर लौट चली। सन्ध्या हो चली है। माँ के साथ सब लोग नाम-कीर्तन करते-करते चल रहे हैं। माँ कह रही हैं, साथ-साथ सब उसे दुहरा रहे हैं। पहले हुआ-'**हरि बोल, हरि बोल।**' तदनन्तर-'**जय राधे राधे, कृष्ण कृष्ण, हरे राम, हरे राम हरे हरे।**'' तदुपरान्त शुरू किया-'**जय शिव शंकर बं वं हर हर।**' अन्त में सबने उठाया-''माँ माँ माँ माँ'-यह नाम-कीर्तन करते-करते माँ तम्बू में आ पहुँची। कुछ दूरी पर लड़कों का झुण्ड भी '**हरि बोल, हरि बोल**' कहते-कहते आ रहा है। विराज बाबू उनसे नाम-कीर्तन करा रहे हैं। लड़कों ने माँ के 'स्मारक' रूप में प्रति शनिवार माँ के तम्बू के निकट नाम-कीर्तन करते-करते तम्बू के निकट आकर पुनः ऊँचे स्वर से नाम-कीर्तन किया। सन्ध्या समय माँ के साथ समुद्र-तट पर नाम-कीर्तन करने में क्या आनन्द आता था, उसे भुक्त-भोगी के सिवा और कोई नहीं जान सकेंगे। अस्तु, कीर्तन के बाद फिर मुन्सिफ बाबू और उनकी स्त्री ने आकर इस नूतन खेल में भाग लिया। फिर खेल जमा। रात में करीब 11 बजे माँ सो गई। कल माँ शंकरानन्दजी के साथ बातचीत के सिलसिले में कह रही थी, '' **जब तक कृपा के अनुभव का अधिकारी न हो तब तक उस कृपा की बात जान ही नहीं सकते।**''

17 **फाल्गुन, सोमवार-** आज यहाँ के लोगों का माँ के निकट उदयास्त कीर्तन करने का निश्चय हुआ है। भोर में ही विराज बाबू आदि कई लोगों ने आकर नाम-कीर्तन आरम्भ किया, वे लोग माँ को साथ लेकर नगर-कीर्तन के लिए बाहर जायेंगे। भोलानाथजी को कीर्तन में महान् आनन्द होता है। तम्बू से माँ को साथ लेकर सब बाहर निकले। नाम-कीर्तन आरम्भ किया-''**जय राधे राधे, कृष्ण कृष्ण, हरे राम हरे हरे। वह नाम बलो बदने, शुनाओ**

काने, बिलाओ जीबेर द्वारे द्वारे।'' नाम-कीर्तन करते-करते दीनबन्धु बाबू के काली मन्दिर के सामने जाकर कीर्तन-दल खड़ा हो गया। कुछ देर वहाँ कीर्तन हुआ। उन्होंने प्रसाद वितरण किया। माँ ने मुझसे धूपदानी लेकर प्रदक्षिणा कराई। माँ वहीं बैठी रही। भोलानाथजी के साथ-साथ कीर्तनकारियों का दल नगर-कीर्तन के लिए बाहर निकला। मुन्सिफ बाबू, योगेन्द्र बाबू, रामबाबू आदि के मकानों में घूम-घूमकर कीर्तनकारियों का दल फिर (दीनबन्धु बाबू के) काली-मन्दिर में आया। वहाँ से माँ को साथ लेकर उक्त दल तम्बू की ओर चला। मुन्सिफ बाबू की स्त्री, मोहिनी बाबू की स्त्री आदि कई स्त्रियाँ दल में भाग लेकर नाम-कीर्तन करते-करते आ रही हैं। तम्बू के निकट आकर कीर्तनकारियों का दल इन्दु बाबू के बरामदे में बैठकर कीर्तन करने लगा। लड़कों के दल के एकत्र होने पर महान् आनन्द से नाम-कीर्तन चला। विराज बाबू नाम-कीर्तन करा रहे हैं। भोग की व्यवस्था शरत् बाबू (शरत्पाल वकील) ने कराई। लगभग 4 बजे काली पाल के मकान पर माँ को लेकर गये (पहले से ही आज जाने की बात तय थी)। इस बार स्त्री-पुरुष एकत्र होकर नगर-कीर्तन करने चले। सड़क पर इस तरह से स्त्री-पुरुषों का कीर्तन मालूम पड़ता है पहले किसी ने कभी नहीं देखा। माँ के साथ-साथ पहले महिलाओं का दल चला। पीछे भोलानाथजी के साथ-साथ पुरुष चले। सभी ने अचम्भे में आकर कहा-''काक्स बाजार में इतनी महिलाएँ हैं यही हम नहीं जानते थे। तमाशा है कि कहाँ से इतनी स्त्रियाँ इकट्ठी हो गई।'' सब लोग यही वाद-विवाद करने लगे। मालूम पड़ा कि काक्स बाजार में घर पर कोई नहीं रहा। सड़क पर मेहतरों का एक दल (स्त्री-पुरुष) इस दल के साथ मिल गया। ऊँचे स्वर से नाम-कीर्तन चला-

''ए नाम बिलाओ जीबेर द्वारे द्वारे,
हरे कृष्ण हरे हरे'' इत्यादि।

यह आनन्द जीवन में संभवत: किसी को नहीं भूलेगा। किसकी शक्ति से आज मुन्सिफ बाबू, डिपुटी बाबू और फारेस्ट डिपार्टमेंट के छोटे साहब आदि की स्त्रियाँ हाथ से ताली देती हुई सड़क पर कीर्तन करके चली हैं-अब उस बात का विचार करने का भी किसी को अवकाश नहीं है। पीछे सभी को आश्चर्य हुआ। अस्तु, इस तरह मिलकर कीर्तन करने वालों का दल काली पाल के मकान में जा पहुँचा। वहाँ भी कुछ देर तक खूब

नाच-नाचकर छोटे-छोटे लड़कों ने कीर्तन किया। युवक, वृद्ध, महिलाएँ-सभी मानों मत्त हो गये हैं। माँ स्थिर, धीर हास्यमयी हैं। कभी महान् आनन्दपूर्वक हाथों से ताली बजा रही हैं, कभी बच्चों का नाच देखकर आनन्द ले रही हैं और कभी स्थिर, धीर गम्भीर हैं। लगभग एक घण्टा वहाँ ठहरकर कीर्तनकारियों का दल माँ को लिये तम्बू की ओर लौटा। इस बार तम्बू में न आकर समुद्र के किनारे, जहाँ माँ के आश्रम के लिए जगह ली गई है, उस स्थान पर जाकर सब लोग बैठे, कीर्तन चला। वहीं सूर्यास्त हुआ। तदुपरान्त प्रसाद बाँटा जाने लगा, बालू पर बैठकर ही सबने प्रसाद पाया। प्रसाद वितरण कर सब लोग माँ को साथ लेकर तम्बू में लौटे। रात में 11 बजे इस आनन्द को समाप्त कर सब लोग विदा हुए। माँ भी सो गई।

18 फाल्गुन, मंगलवार- आज प्रात:काल उठकर माँ समुद्र के किनारे गई, करीब 11 बजे वहाँ से लौटी। लौटकर उपस्थित सब लोगों के साथ 'सच्चिदानन्द खेल' में बैठी। करीब 12.30 बजे माँ का भोजन हुआ। आज भी माँ ने विशेष कुछ नहीं खाया। भोजनोपरान्त माँ लेट गई। थोड़ी देर बाद महिलाओं और लड़कों का दल आकर खेल में जुट गया। विभिन्न दलों में 'सच्चिदानन्द खेल' चला। फिर जप और कीर्तन का आनन्द आया। माँ एक ओर बैठकर सब देख रही हैं। बीच-बीच में खेल में भी भाग ले रही हैं। सब लोग आकर गपशप करते थे। अब वह सब अधिक नहीं होता। खेल के बहाने नाम-कीर्तन चलता है। कल रात मुसलमान डिपुटी बाबू की स्त्री माँ के समीप आकर बहुत देर तक बैठी रही। आज वह माँ को अपने घर ले गई। माँ लौट आकर नाम-कीर्तन करा रही हैं। सन्ध्या के कुछ पहले माँ समुद्र के तट पर चली गई। लड़कों ने कहा-''माँ, कल जो नाम-कीर्तन हुआ था, आज तुम बोल दो, हम साथ-साथ कहेंगे।'' लड़कों के कथानुसार माँ नाम-कीर्तन कराने लगी। बालुकामय समुद्र के किनारे सूर्यास्त के समय वह नाम-कीर्तन बहुत मधुर लगा। माँ ने बच्चों से कहा-''तुम लोग अब घर पर जाकर पढ़ो-लिखो। अपनी पढ़ाई-लिखाई यथोचित रीति से करो, उसकी अवहेलना कर यदि तुम फटकार खाओ तो वह मेरा ही फटकार खाना होगा-मुझे फटकार मत खिलाओ।'' माँ के कथन पर लड़कों का दल लौट गया। थोड़ी देर बाद ही माँ नाम-कीर्तन कराते-कराते महिलाओं को साथ लेकर तम्बू में आ गई। एक दूसरा दल कीर्तन करने आया है। विराज

बाबू ही पहले कह रहे हैं। माँ स्थिरता-पूर्वक बैठकर सुन रही हैं। कीर्तन के बाद घर में जो फल आये थे, सब बाँट दिये गये। एक मकान से कई सेर दूध आया था- फल भी आये थे। फरुवी में मिलाकर वे सब वितरित किये गये। रात में लगभग 12 बजे एक-एक करके सबने विदा ली। माँ 2 बजे के बाद सोई।

19 फाल्गुन, बुधवार- आज माँ का शरीर विशेष-अच्छा नहीं है। लेटे-लेटे बातें कर रही हैं। करीब 9 बजे समुद्र के किनारे घूमने गई। 11 बजे वहाँ से लौटी। ''आज कुछ भी नहीं खाऊँगी''-माँ ने कहा है ''जब जरूरत होगी कहूँगी।'' केवल थोड़ा-सा गर्म दूध पीया है। अपराह्न में लड़कों तथा स्त्रियों के झुण्ड से तम्बू भर गया। माँ एक जोड़ी छोटी करताल बजाकर नाम-कीर्तन करने लगी। सन्ध्या हो आई। आज सैकेण्ड ऑफिसर के मकान पर माँ को कीर्तन में ले गये। वहाँ भोलानाथजी ने कीर्तन में बहुत आनन्दोल्लास किया। कीर्तन के उपरान्त माँ को थोड़ा जलपान करा दिया गया एवं सब संगी-साथियों को प्रसाद दिया गया। रात में लगभग 12 बजे हम सब लोग तम्बू में लौट आये। माँ ने आज ''अब कुछ न खाऊँगी'' कहा। आते ही माँ लेट गई।

20 फाल्गुन, बृहस्पतिवार- आज प्रात:काल उठकर माँ बैठी है। दो दिनों से प्राय: कुछ भी नहीं खाया है। आज मैंने जल्दी-जल्दी में थोड़ा-सा भोजन करा दिया है। माँ बहुत देर तक बैठी रही, पीछे लेट गई। अपराह्न में रोज की तरह ही स्त्रियाँ आई हैं। दोपहर में लड़कों का दल भी आया है। वे भी कह रहे हैं, ''माँ के समीप से उठकर जाने की इच्छा नहीं होती।'' माँ की सन्निधि में कोई-कोई स्त्रियाँ अपना गृहस्थी का दुखड़ा सुना रही हैं। माँ कह रही हैं-**''तुम सब मालिक बन बैठती हो इसीलिए दु:ख पाती हो, मालिक न बनकर माली बनो- तब फिर दु:ख नहीं होगा।''** आज भी माँ समुद्र के किनारे नहीं गई, तम्बू में ही बैठी हैं। रात में लगभग 10 बजे तक लोगों का आना-जाना लगा रहा। कोई-कोई माँ से कहानी कहने को कह रहे हैं।

भगवान् सब व्यवस्था करते हैं-सम्बन्धी कहानी

माँ ने एक कहानी सुनाई-''एक साधु जंगल में बैठकर तपस्या कर रहे

थे। एक आदमी की उनके प्रति बहुत अधिक श्रद्धा हुई। उसने जाकर साधु जी के चरणों की शरण ली। साधु एक छटाँक चावल का भात खाते थे। उतनी ही वह भिक्षा करते थे और दिन भर तपस्या करते थे; किन्तु उस आदमी के शरण में आने पर उसकी उन्हें चिन्ता हुई कि वह एक छटाँक में हिस्सा लगावेगा। किन्तु शरणागत आदमी ने खाने की बात साधु से कुछ भी नहीं कही। साधु जब चावल धोकर चावल का धोवन फेंक रहे थे तब उसने अंजलि भरकर वही जलपान किया-उसी से वह तृप्त होकर साधु की सेवा करने लगा। साधु को यह देखकर आश्चर्य हुआ, किन्तु उन्होंने कुछ कहा नहीं। कई दिनों के बाद एक दूसरे आदमी ने आकर साधु की कुटिया में आश्रय लिया। साधु ने सोचा ''एक आदमी तो जल पीकर रहता है, यह अवश्य ही भात पर हिस्सा बैठायेगा, किन्तु उसने भी हिस्सा नहीं बँटाया। जब साधु भात का माँड़ निकालते थे तब वह व्यक्ति उसे रख लेता और उसी से अपनी भूख मिटाकर साधु के चरणों में पड़ा रहता। यह देखकर साधु को होश आया, उनका भ्रम हट गया, उन्होंने यह जाना कि भगवान् ही सब व्यवस्था करते हैं। जब जिसे जिस कार्य के लिए भेजते हैं उसको तदुपयोगी बुद्धि और शक्ति वे ही देते हैं-कोई भी किसी का कुछ उपकार या सहायता नहीं करता। तब साधु उन दो आश्रित व्यक्तियों को लेकर और भी गहन जंगल में तपस्या करने के लिए चले गये एवं पूर्ण मनोयोग से भगवान् को पुकारने लगे।'' सब लोगों के विदा लेने पर उपस्थित कई जनों के साथ माँ 'सच्चिदानन्द खेल' में बैठी।

21 फाल्गुन, शुक्रवार- आज भी प्रात:काल माँ टहलने बाहर नहीं गई। प्रतिदिन के समान आज भी दैनिक घटनाएँ घट गई। सन्ध्या के उपरान्त आज माँ को मोहिनी बाबू के मकान पर कीर्तन में ले गये। वहाँ भोलानाथजी के आनन्द से सबने खूब आनन्द-पूर्वक कीर्तन में भाग लिया। कीर्तन खूब जम उठा। महिलाओं ने शंख-ध्वनि और मंगल-ध्वनि की। रात में लगभग 12 बजे हम लोग माँ के साथ तम्बू में लौटे। उस दिन माँ बालुकामय तट पर टहलते-टहलते कह रही थी-''फिर साँप देख रही हूँ।'' मैंने कहा-''शायद फिर दिखाई दे।'' माँ ने कहा-''सदा बाहर देखना न भी हो, सूक्ष्मरूप से दर्शन होता ही रहता है। फिर कभी साँप का चित्र ही दिखाई देता है अथवा कोई साँप की कहानी ही आकर कह जाता है।'' इस तरह बातों-

बातों में हम लोग बाहर कुछ समय व्यतीत कर तम्बू के भीतर गये। जाकर देखती हूँ कि भोलानाथजी कोई एक किताब पढ़ रहे हैं, उसी पन्ने पर एक विशालतम् साँप का चित्र है। माँ ने हँसकर मुझे दिखाया। रात में करीब 1 बजे माँ सोई।

22 फाल्गुन, शनिवार– आज प्रात:काल माँ थोड़ी देर समुद्र के किनारे घूम आई हैं। स्कूल के दो मास्टर और योगेन्द्र बाबू आये हैं। बातचीत के सिलसिले में ''सच्चिदानन्द खेल'' की बात चली। ज्योतिष दादा उनके साथ खेलने बैठे। माँ बैठे-बैठे देख रही थी। मास्टरों ने कहा–''इस खेल में हारने पर भी कोई क्षति नहीं है, नाम-कीर्तन ही करना पड़ेगा।'' वास्तव में जो स्त्री-पुरुष स्वत: तो शायद ही कभी नाम-कीर्तन करते होंगे, जप करना भी नहीं जानते, वे भी जप करने का नियम लिख लेते हैं एवं जप करते रहते हैं। लगभग दस बजे माँ का भोग लगा। माँ फिर तम्बू में जाकर बिछौने पर बैठी। शंकरानन्द, भोलानाथजी, माँ और ज्योतिष दादा ''सच्चिदानन्द खेल'' खेलने लगे। आज सन्ध्या के समय माँ मणीन्द्र बाबू के आह्वान पर सरस्वती-मंदिर के कीर्तन में गई। वहाँ लोगों की अथाह भीड़ रही। मणीन्द्र बाबू ने ही वहाँ सब प्रबन्ध किया है। आज भी भोलानाथजी कीर्तन में मत्त हो गए। सभी उपस्थित भद्र-पुरुषों ने आज भोलानाथजी के साथ कीर्तन में योग दिया। खूब ही आनन्द रहा, रात में 12 बजे हम लोग तम्बू में लौटे।

23 फाल्गुन, रविवार– आज भी माँ के उठने के बाद से ही कई भद्रपुरुष आकर बैठे हैं। आज प्रात:काल माँ को कच्चे पपीते को थोड़े दूध में पकाकर मैंने खिलाया, और कुछ भी नहीं खाया। आज भी रजनी बाबू के मकान पर कीर्तन में जाने की बात है। कीर्तन समाप्त होने के बाद वहाँ से रामू जायेंगी। वहाँ से रोज ही माँ को लिवा जाने के लिए आदमी आ रहे हैं। माँ दोपहर में लेटी हैं। प्राय: रोज ही माँ को लेने आदमी आ रहा है। सन्ध्या को रजनी बाबू (मुख्तार) के मकान पर कीर्तन में जाना हुआ। रात में करीब 12 बजे ज्वार आया। माँ के साथ सारा दल नौका से रामू को चला। यहाँ के कई लोग साथ चले। योगेन्द्र बाबू की स्त्री भी चली।

* * *

बहत्तरवाँ अध्याय

रामू आगमन तथा वहाँ पंचवटी-स्थापन

24 फाल्गुन, सोमवार- हम लोग लगभग 6 बजे रामू पहुँचे। कीर्तनकारियों का दल माँ को आदर-पूर्वक लेने आया है। महान् हर्ष से सब कीर्तन करते चले। माँ भी हाथ से ताली बजा रही हैं। उससे सबका उत्साह बढ़ रहा है। माँ के पीछे-पीछे कीर्तनकारियों का दल चला है। माँ बीच-बीच में पीछे घूमकर, बायाँ हाथ ऊपर उठाकर ताल-ताल पर हिल-डुल रही हैं। उससे सब लोग आनन्दित होकर दुगुने उत्साह से नाम-कीर्तन करते-करते चल रहे हैं। आज मालूम पड़ता है कि रामकूट-निवासी सब लोगों का माँ से कितना अधिक परिचय है। मार्ग में चलते-चलते मैंने योगेन्द्र बाबू की स्त्री की जबानी सुना कि जिस दिन सरस्वती-मन्दिर में कीर्तन हुआ था उस दिन एक घटना घट गई। यहाँ के स्व. वकील प्यारे बाबू की स्त्री की उत्कट इच्छा थी कि माँ के कीर्तन आदि में योग दें किन्तु उनके लड़कों का मत वैसा नहीं रहा। इसलिए वह आ न सकी। इसीलिए वह अपने दरवाजे पर खड़ी होकर कीर्तन सुन रही थी। एकाएक उन्होंने एक काली-सी मूर्ति देखी। कमर में कृष्ण की तरह लाल कपड़े का फेंटा बाँधा था, सिर पर मुकुट चमचमा रहा था। वह यह देख रही थी- स्पष्ट देख रही थी, तदनन्तर उन्होंने पुत्रवधू और लड़की को पुकारकर देखने को कहा। उन्होंने पहले कुछ आश्चर्य-सा देखा, पीछे फिर नहीं दिखाई दिया। किन्तु वह देख रही थी। जब प्रसाद-वितरण की जय-ध्वनि से कीर्तन समाप्त हुआ तब फिर उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया। उसके बाद वह रजनी बाबू के मकान पर कीर्तन में आई थी। माँ के निकट ही बैठी थी। माँ ने सहसा उनके साथ बोलना शुरू कर दिया। किसी ने पूछा-''यह कौन हैं?'' उन्होंने कहा, ''प्यारे बाबू की स्त्री है।'' माँ ने कहा-''मालूम पड़ता है लड़के के साथ हैं''- इत्यादि कहकर उनसे कुछ देर बातें की। अस्तु, रामू में पहले हम लोग रामकूट के पहाड़ पर गये। वहाँ सबको बड़ा आनन्द आया। वहाँ के स्वामी साधु बीमार हैं, उनकी इच्छा से माँ का भोग वहीं हुआ। लगभग 4 बजे

हम लोग नगेन्द्र पाल के मकान में आये। वहाँ भी भोग और कीर्तन का आयोजन हुआ है। माँ के दरवाजे पर पहुँचते ही उन्होंने पंचप्रदीप आदि से माँ का वरण कर लिया। ठाकुरजी का मन्दिर माँ के लिए सजाया है। नगेन्द्र बाबू के बाल-बच्चे नहीं हैं, माँ से अपना यह दुःख प्रकट करने पर माँ कह रही हैं-''मैं ही तुम्हारा लड़का-लड़की हूँ''-यह कहते हुए माँ 'पिताजी' कहकर उन्हें आनन्दित करने लगी। नगेन्द्र पाल की स्त्री ने माँ को खिला दिया। एक बार उसने कहा था-''तुम तो मेरी लड़की हो, मैं तुम्हारे साथ खाऊँगी।'' माँ ने उसकी वह इच्छा भी पूरी कर दी। उसके साथ थोड़ा फल और मिठाई खाई। आते समय आँसू गिराये, ''फिर काक्स बाजार आऊँगी' कहा। उसी दिन रात्रि में कीर्तन और भोग आदि के बाद लगभग 12 बजे हम लोग नौका से काक्स बाजार को लौटे। रामू के लोग इतने कम समय में जैसे माँ के लिए खूब पागल हो उठे। माँ को विदा करते समय सबने हाथ जोड़कर करुण-स्वर में माँ को एक गाना सुनाया। गाने की पदावली का स्मरण नहीं है, सारांश यह है- ''माँ, हमें छोड़कर तुम्हारे चले जाने पर हम मातृ-विहीन हो जायेंगे। माँ जी, तुम करुणामयी हो तुम हम लोगों से अपने चरण न छुड़ाना- हम तुम्हारी अधम सन्तान हैं''-इत्यादि। माँ ने इन लोगों को वहाँ की एक जगह दिखाकर कहा- ''इसके पंचवटी स्थान के तुल्य होने पर बहुत अच्छा हो।'' वह जगह रामकूट है।

'रामकूट जाकर वह पंचवटी कहाँ होगी', ज्योतिष दादा के यह कहते ही स्थानीय एक व्यक्ति ने कहा-''कई दिन हुए जंगल में एक स्थान मिला है, वहीं शायद पहले रामकूट था, अब यहाँ मूर्ति आदि ले आये हैं। वहीं पचंवटी की स्थापना हो।'' उसी क्षण माँ को साथ लेकर उस जगह जाना हुआ। खूब जंगल काट-काटकर हम लोग माँ को लेकर उस स्थान पर पहुँचे और देखते हैं कि वहाँ एक पक्का चबूतरा बना हुआ था, जो अब टूट गया है। किसी ने कहा- ''पहले यहाँ बौद्ध मन्दिर था।'' माँ ने कहा- ''जो भी रहा हो, धर्मस्थान तो था? पुराना स्थान है-इसी स्थान पर पंचवटी स्थापित हो।'' स्थानीय लोगों से यह कहकर हम लोग चले आये। उन लोगों ने कीर्तन करते-करते माँ को नौका तक पहुँचा दिया। उन्होंने नाम-कीर्तन आरम्भ किया-

''प्राण गौर नित्यानन्द कह पुकार रे
निताई समान दयालु और नाहीं रे।

नमः रामनारायण श्रीकृष्ण हरे,
जनार्दन मधुसूदन रे।

जय गुरु जय गुरु कह अविराम,
तारक ब्रह्म सनातन पूर्ण करेंगे मनस्काम।''

ग्रामवासियों की सरल भक्ति, विश्वास और सत्कार से संगी-साथी सभी को बहुत आनन्द हुआ।

25 फाल्गुन मंगलवार- आज भोर में ही हम लोग काक्स बाजार घाट पर पहुँचे। विराज बाबू आदि प्रातः कीर्तन करते-करते माँ को तम्बू में ले गये। गाना शुरू किया-

''भजो गोविन्द कहो गोविन्द लो गोविन्द का नाम रे,
जो जन गोविन्द भजे वही हमारा प्राण रे।

ओ रे ओ रे मूढ़ मन जान जान रे,
जान के हरिगुण गाओ रे।

प्रभातकाल में पक्षिगण सब मिलि डाल डाल में,
आनन्द से हरिगुण गाय रे'' इत्यादि।

तब काक्स बाजार के निद्रित लोगों को गाने की ध्वनि से 'माँ लौट आई'' यह ज्ञात हुआ। बहुत से लोग मार्ग पर आ पहुँचे। माँ तम्बू में आई हैं, दो-एक व्यक्ति आकर बैठे हैं। उनके साथ माँ वार्तालाप कर रही हैं। थोड़ी देर बाद माँ चादर ओढ़कर लेट गई। रामू में भी लोगों की खूब भीड़ हुई थी। लगभग 10 बजे माँ उठी। माँ का भोग लगा। दोपहर में 'सच्चिदानन्द खेल' जम उठा। सन्ध्या समय बहुत से दर्शनार्थी लोग आये हैं। आज माँ को कीर्तन में धोबी-बाड़ी ले जायेंगे। साथ-ही-साथ सपत्नीक मुन्सिफ बाबू, मोहिनी बाबू की स्त्री आदि बहुत से लोग धोबी-बाड़ी गये। भोलानाथजी ने महान् आनन्द से कीर्तन में भाग लिया। धोबी के घर आदर-सत्कार में किसी तरह की त्रुटि नहीं रही। कीर्तन के अन्त में हम सब लोगों ने फल काटकर बाँटे। गृहिणी ने माँ के पहुँचते ही प्रदीप से उन्हें वरण कर लिया-जल का छिड़काव किया है। लता, पत्तों से दरवाजा सजाया

है। माँ और भोलानाथजी के पैर धोकर उसी जल से केश पोंछ लिया। सभी को खूब आनन्द आया। 'कल दोपहर में महिलायें माँ को साथ लेकर कीर्तन करेंगी-यह निश्चय हुआ है। रात में लगभग डेढ़ बजे सब लोग विश्राम करने गये।

26 फाल्गुन, बुधवार– प्रातःकाल उठते ही माँ समुद्र के किनारे घूमने गई, वहाँ से शहर की ओर माँ घूम आई। तम्बू में लौटकर, थोड़ा विश्राम लेने के बाद फिर सब लोगों को साथ लेकर माँ बाहर गई। मेहतर-पट्टी में जाकर सबके साथ कीर्तन किया। तदनन्तर लड़कों के स्कूल में गई, उन्होंने माँ का अभिनन्दन किया। वहाँ से माँ अस्पताल में गई। इस तरह घूम-फिरकर लगभग 12 बजे तम्बू में आई। भोजनोपरान्त महिलाओं का कीर्तन हुआ। शाम को कीर्तन समाप्त हुआ। एक भद्रपुरुष ने सन्ध्या के बाद कीर्तन गाकर माँ को सुनाया।

27 फाल्गुन, बृहस्पतिवार– माँ बहुत देर में उठी हैं। आज माँ को बंकिम बाबू आदि ने भोज दिया। खाते-पीते चार बज गये। माँ भोजन के बाद ही बाहर चली गई। उनके भोजन के पहले से ही भक्तगण साष्टांग प्रणाम करने लगे हैं, क्योंकि उन्होंने सुना है कि माँ कल ही चली जायेंगी। 'जाने नहीं देंगे' कहकर वे माँ के चरणों के नीचे झुण्ड-के-झुण्ड मुँह के बल पट होकर पड़े हैं- बहुत तरह से कह-सुनकर भी माँ उन्हें उठा न सकी, तदनन्तर भोजन करने गई। लड़के 8 बजे तक उसी तरह पड़े रहे। सबके अनुरोध से माँ का कल जाना स्थगित हुआ। दीनबन्धु बाबू के मकान पर जाकर माँ ने महिलाओं को साथ लेकर कीर्तन किया। वहाँ से और भी 2-4 घरों में माँ को ले गये। तदनन्तर माँ महेन्द्र बाबू के मकान पर कीर्तन में गई। वहाँ से रात्रि में 1 बजे लौटी, सोने में लगभग रात के अढाई बज गये।

28 फाल्गुन, शुक्रवार– आज भी माँ बहुत देर तक सोई थी। उसके पश्चात् भक्त लोग आकर बैठे। माँ के उठने पर विविध वार्तालाप होने लगे। आज शिवरात्रि है, माँ ने कुछ नहीं खाया। मेहतरों के झुण्ड और धोबियों के दल ने आकर माँ को कीर्तन सुनाया। फिर सन्ध्या को बंकिम दादा ने कीर्तन कराया। कीर्तन के समय अनेक लोग माँ की पूजा करने आये हैं। माँ ने सब स्त्रियों से (जिनके पति उपस्थित थे) पति-पूजा कराई। कई स्त्रियों ने शिव-पूजा भी की। रात को 1 बजे के समय सब लोग विदा हुए। कल

माँ के काक्स बाजार छोड़ने की बात निश्चित हुई है। सभी उदास हैं। यहाँ के सभी लोग माँ के पीछे जैसे पागल हो उठे हैं। 'यह आनन्द का मेला कल समाप्त हो जायेगा' सोचकर प्रायः सभी रो रहे हैं। कुछ लोग कह रहे हैं कि आज दो-तीन दिनों से रात में भी उन्हें नींद नहीं आई है। घर-घर कीर्तन, तम्बू में प्रायः सदा ही नाम-कीर्तन लगा है। कीर्तन में बहुत से लोग सम्मिलित होते हैं; भोलानाथजी रम जाते हैं, उससे सभी मारे आनन्द के नाचते रहते हैं। नाम-ही-नाम से मानो वायुमण्डल भर गया हो। अनेक लोग अपने घर जाकर गंभीर रात्रि में कीर्तन की ध्वनि सुनते हैं। इतने प्रबल आनन्द का खेल कल ही समाप्त हो जायेगा, इसलिए सबकी आँखें आँसुओं से भरी हैं। रात में लगभग 2 बजे के समय आकर हम लोग सो गये।

* * *

तिहत्तरवाँ अध्याय

काक्स बाजार–त्याग

29 फाल्गुन, शनिवार– आज सवेरे से ही माँ के निकट सब लोग आ रहे हैं। लगभग सात–आठ बजे के बीच ही माँ रवाना होंगी। माँ एक बार थोड़ी देर के लिए समुद्र के किनारे गई, तुरन्त ही लौट आई। माँ को एक कुर्सी पर बैठाया गया। सब लोग चारों ओर घेरकर खड़े हैं। महिलाएँ सिन्दूर, लावे, दूब आदि दे रही हैं। पुरुष पखावज, करताल, हारमोनियम लेकर तैयार हैं। कीर्तन करते–करते माँ को डोंगी में चढ़ा देंगे। ठीक समय पर माँ रवाना हुई। पीछे सब लोग 'माँ–माँ' गाते हुए चले। महिलाएँ रो रही हैं, ''आज हम कैसे रहेंगी? आज हमारी विजया–दशमी है।'' आज 'माँ–माँ' गान भी मानो सबके हृदय में विषाद के ही सुर में बज रहा है। मार्ग में माँ एक बार दीनबन्धु बाबू के मकान में गयी। वह माँ को अपने घर की लड़की के समान मानते हैं। दीनबन्धु बाबू की स्त्री ने माँ को थोड़ा जलपान करा दिया। सभी लोग बार–बार कह रहे हैं–''माँ, फिर जल्दी आना।'' फल, मिठाई लेकर सब आ रहे हैं। सोच रहे हैं– ''यदि माँ हमारी उपहार की वस्तु थोड़ी ले लें तो हम कृतार्थ हो जायेंगे।' दीनबन्धु बाबू के मकान से माँ को समुद्र की ओर ले जाया गया। लोगों की अथाह भीड़ है, तिल रखने को भी स्थान नहीं है और कीर्तन चल रहा है। सब लोग आँखों में आँसू भरकर माँ को प्रणाम कर रहे हैं तथा दया की प्रार्थना कर रहे हैं। माँ भी हाथ जोड़कर खड़ी हो सब लोगों को मधुर वाणी से संतुष्ट कर रही हैं। इस प्रकार विदाई का उत्सव समाप्त कर माँ डोंगी में जा बैठी। थोड़ी दूर डोंगी से जाकर स्टीमर पकड़ना होगा। जितनी दूर–तक डोंगी दिखाई देती रही सब लोग किनारे पर खड़े होकर देख रहे थे। बहुत दूर जाकर हमने देखा तो दल लौट रहा था।

धर्म–धर्म सब लोग कहते हैं पर वास्तविक धर्म क्या है

स्टीमर में आकर माँ लेट गयी। लगभग दो बजे माँ उठी। एक भद्रपुरुष माँ के दर्शन करने आये हैं। उन्होंने कहा–''माँ धर्म–धर्म सभी कहते हैं

किन्तु वास्तविक धर्म क्या है?'' माँ ने कहा- **''जिसे सब लोग चाहते हैं उसकी प्राप्ति के सहायक जो भी कर्म हैं वही धर्म है। वही स्वभाव का कर्म है और जो अशान्ति, दुःख पैदा करते हैं वे ही अभाव के कर्म हैं और वही अधर्म हैं।''** उन्होंने कहा-''कोई रुपया-पैसा चाहता है, कोई यश चाहता है।'' माँ ने कहा-**''रुपया-पैसा चाहता है यह ठीक है, किन्तु रुपया-पैसा आवश्यकताएँ बढ़ा कर अशान्ति ही बढ़ाता है, शान्ति नहीं मिलती इसलिए वह अभाव का कर्म हुआ न? हम चाहते हैं-शान्ति और आनन्द। सांसारिक विषयों से खण्ड आनन्द मिल सकता है, किन्तु उससे हमें तृप्ति नहीं होती। हम चाहते हैं- अखण्ड आनन्द, अखण्ड शान्ति। उसकी प्राप्ति में सहायक सभी कर्म करने चाहिये।''** बात-चीत करने के बाद माँ बाहर जाकर बैठी हैं। ज्योतिष दादा सामने एक पहाड़ को दिखाकर कह रहे हैं- ''माँ, किंवदन्ती है कि हनुमानजी जब गन्धमादन पर्वत को ले जा रहे थे तब कुछ औषधियों के पेड़ इस पहाड़ पर बिखर पड़े, इसलिए इस पहाड़ में बहुत-सी औषधियाँ पाई जाती हैं।'' माँ ने हँसते हुए कहा- **''बहुत अच्छा, हनुमान जी ने बड़ी कृपा की है। जब तक क्रिया है, तभी तक कृपा है। क्रिया न रहने पर और दोनों न रहने पर किसके निकट कृपा की प्रार्थना करें? दोनों के न रहने पर क्रिया भी नहीं होती।''**

चटगाँव आगमन

हम लोग लगभग 5 बजे चटगाँव पहुँचकर राजेश्वर के मन्दिर में ठहरे। इस मन्दिर में माँ की भी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की गई है। मन्दिर के पुजारी शीतल ठाकुरजी माँ के बड़े भक्त हैं। काक्स बाजार छोड़ने से पहले दिन माँ ने महिलाओं को साथ ले जाकर समुद्र में स्नान किया था। वह आनन्द अवर्णनीय है। हाथ पकड़कर 'जय शिव शंकर, बं बं हर हर' नाम-कीर्तन करते हुए माँ समुद्र के भीतर नाचकर घूम रही हैं। जल-क्रीड़ा में सभी को महान् आनन्द आया। बहुत-सी महिलाएँ स्नान के लिए समुद्र में उतरी हैं और दूसरी ओर पुरुष भी उतरे हैं। माँ महिलाओं में से चार महिलाओं को साथ लेकर अधिक लहरों में जा पैठी। सभी आपस में पकड़कर डुबकी लगाने लगी। माँ लहरों के साथ-ही-साथ गोता खाने लगी। ये सब खेल लगभग एक घण्टे तक चले। तदनन्तर 'जय शिव शंकर, बं बं हर हर' का कीर्तन करते-करते माँ सदल-बल तम्बू में लौटी। चटगाँव पहुँचते ही लोग माँ को चारों ओर से घेरकर बैठ गये। रात को माँ यशोदा बाबू के आँगन

में जा बैठी। थोड़ा-सा दूध और फल ग्रहण कर फिर राजेश्वर-मन्दिर में आई हैं। मन्दिर के बरामदे में ही माँ का आसन बिछाया है। रात को लगभग 12 बजे माँ ने विश्राम किया।

परैकोड़ा गमन

30 फाल्गुन, रविवार–सवेरे माँ उठ बैठी हैं। अनेक लोग आये हैं। राम ठाकुरजी की शिष्याएँ-उपेन्द्र बाबू की स्त्री और चन्द्रनाथ घोषालजी की स्त्री माँ को ठाकुरजी के आश्रम पहाड़तली ले गई। वहाँ आश्रम-वासियों ने माँ को भोजन कराने के लिए ठहराना चाहा किन्तु समयाभाव से रहना नहीं हुआ। विशेषत: यशोदा बाबू के घर भोग का प्रबन्ध हो चुका था। उन्होंने माँ को मिठाई और फल का भोग लगाया। सब जगहें माँ को घूम-घूमकर दिखाई। माँ लगभग एक घण्टा वहाँ रहकर लौट आई। शशी बाबू आदि के विशेष आग्रह से आज फिर परैकोड़ा जाने का निश्चय हुआ है। लगभग 3 बजे खाने-पीने से निवृत्त होकर डोंगी से परैकोड़ा को प्रस्थान किया गया। साँझ को हम लोग परैकोड़ा पहुँचे। इतने थोड़े समय में ही माँ को फिर अपने बीच पाकर सभी लोगों को महान् हर्ष हुआ।

परैकोड़ा त्याग

1 चैत्र, सोमवार– आज परैकोड़ा-वासी सब लोग खबर पाकर माँ के दर्शन करने आये हैं। माँ सबके साथ वार्तालाप कर रही हैं। लगभग 3 बजे माँ का भोग लगाया गया। बाहरी आँगन में माँ और भोलानाथजी को बीच में बैठाकर सब लोग चारों ओर घेरकर बैठे। महान् आनन्द से भोग-व्यापार समाप्त हुआ। माँ ने सिर्फ थोड़ा-थोड़ा मुँह में डाला। शेष हर एक व्यक्ति को बाँट दिया और कहा-''देखो, मैं सब खाकर समाप्त कर दे रही हूँ।'' एक आदमी ने कहा-''आपने तो खाया ही नहीं।'' माँ ने कहा-''सभी तो उसी एक के मुँह हैं, उन मुँहों से मैं खा रही हूँ।'' यह कहकर हँसने लगी। दोपहर को आज खूब आनन्द के साथ 'सच्चिदानन्द खेल' चला। सन्ध्या के बाद कीर्तनकारी आये- खूब कीर्तन हुआ। रात को लगभग 10 बजे कीर्तन-कारियों का कीर्तन समाप्त हुआ। तब माँ स्वयं कीर्तन करने लगी। भोलानाथजी कीर्तन में नाच रहे हैं। माँ महिलाओं को साथ लेकर कमरे के अन्दर दरवाजा बन्द कर कीर्तन करने लगी। रात्रि अधिक बीत गई

थी, एक-एक करके प्रणाम कर सबने माँ से विदा ली। "कल सुबह 4 बजे चटगाँव के लिए रवाना होना होगा।"-यह निश्चय हुआ है। आज अपराह्न में ही जाने का इरादा था किन्तु लोगों के विशेष रूप से अनुरोध करने के कारण रात को 4 बजे रवाना होना निश्चित हुआ है। आनन्द-कोलाहल में रात के लगभग दो बज गये। भोर में चार या साढ़े चार बजे हम लोग चटगाँव को रवाना हुए। कुछ दूर तक मोटर से जाकर डोंगी में चढ़े।

चटगाँव लौटना

2 चैत्र, मंगलवार- लगभग 6 बजे हम लोग चटगाँव पहुँचे। घाट पर ही इन्कम-टैक्स ऑफिसर भूपेन्द्र बन्द्योपाध्याय का मकान है; वह घाट से ही माँ को थोड़ी देर के लिए अपने मकान में ले गये एवं स्वयं ही मोटर द्वारा माँ को राजेश्वर-मन्दिर में पहुँचा गये। लगभग 11 बजे के समय जितेन्द्र घोषाल के घर भोग के लिए माँ को ले गये। अपराह्न में चार बजे माँ फिर राजेश्वर-मन्दिर में लौटी। आज शाम को माँ को गिरिजा बाबू के डेरे पर ले गये। रात को 11 बजे माँ वहाँ से लौटी। आकर देखते हैं कि राजेश्वर-मन्दिर में एक दल बैठकर कीर्तन कर रहा है। माँ को देखकर कीर्तन खूब जम गया। रात को 1 बजे वे विदा हुए।

माँ का निर्मला माँ आदि के साथ कीर्तन और निर्मला माँ का भावावेश

3 चैत्र, बुधवार- प्रातःकाल माँ उठी। अनन्त बाबू के मकान में माँ को ले गये। अनन्त बाबू को चेचक हुई थी इसलिए उनकी स्त्री ने मनौती की थी कि 'माँ को कच्चे नारियल के जल और दूध से स्नान कराऊँगी।' अनन्त बाबू अच्छे हो गये हैं; आज वह मनौती का स्नान कराने के लिए माँ को अपने मकान पर ले गये। स्नानादि हुआ। उसके बाद कुछ देर ग्रामोफोन बजाया गया। लगभग 11 बजे माँ को गिरिजा बाबू के मकान पर भोग के लिए ले गये। बहुतों ने प्रसाद पाया। प्रातः 5 बजे उपेन्द्रपाल की स्त्री माँ को अपने मकान में ले गई। वहाँ उन्होंने कुछ जलपान कराया। वहाँ से माँ को सुरेन्द्र घोषाल के घर कीर्तन में ले गये। एक अच्छे कीर्तनकारी (प्राण हरिदास) ने कीर्तन किया। निर्मला माँ भी वहाँ आई हैं। वह माँ के साथ

वहाँ गई हैं। जब नाम-कीर्तन आरम्भ हुआ तब माँ ने भी निर्मला माँ और अन्य महिलाओं को साथ लेकर एक ओर खड़ी होकर नाम-कीर्तन किया और कराया। निर्मला माँ भावस्थ हो गई। अनेक लोगों ने प्रसाद पाया। निर्मला माँ को लिटा दिया गया। रात को लगभग 1 बजे हम लोग वहाँ से आये। निर्मला माँ को भी लिवा लाये। रात में अढाई बजे तक वार्तालाप चला।

माँ के साथ कीर्तन में मुक्तकेशी माँ और निर्मला माँ का भावावेश, चटगाँव त्याग से पहले जज साहब की माँ को दर्शन दान

4 चैत्र, बृहस्पतिवार– भोर में अनन्त बाबू आकर ग्रामोफोन बजाने बैठे। माँ लेटी हैं। चन्द्रनाथ बाबू के मकान में भोग की बात तय हुई है। जज साहब ने अपने बँगले पर माँ को ले जाना चाहा। अपराह्न में साढ़े चार बजे माँ वहाँ जायेंगी। आज ही रात की गाड़ी से माँ चाँदपुर जायेंगी, अभी प्रकट नहीं करती हैं। थोड़ी देर से ही वृष्टि भी होने लगी है। यशोदा बाबू की परिचित एक माँ आई हैं, उनका नाम मुक्तकेशी माँ है। एकाएक माँ राजेश्वर-मन्दिर से अकेली बाहर निकलकर वर्षा में भीगते-भीगते, हाथों से ताली देते-देते और 'जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण' गाना गाते-गाते यशोदा बाबू के घर जा पहुँची। माँ को देखकर अनेक लोग वृष्टि में ही उतरकर नाम-कीर्तन करने लगे। यशोदा बाबू की स्त्री को दुःख हो रहा था कि माँ चली जा रही हैं, इतने थोड़े समय में हमारे मकान में नाम-कीर्तन नहीं हुआ। इसीलिए माँ ने आज उनकी वह आकांक्षा पूरी कर दी। माँ के दोनों आँचलों से निर्मला माँ और मुक्तकेशी माँ के कपड़े के आँचलों को बाँध दिया गया। महान् आनन्द से कीर्तन चला। धीरे-धीरे माँ सबको साथ लेकर राजेश्वर-मन्दिर में आई। वहाँ मन्दिर के सामने कीर्तन आरम्भ होते ही मुक्तकेशी माँ भावावेश से एकाएक धाराशायी हुई। निर्मला माँ भावविभोर होकर ताल-ताल पर नाचने लगी। सभी को आनन्द आया। माँ धीरे-धीरे कपड़े की गाँठ खोलकर एक ओर आ खड़ी हुई हैं। खड़ी-खड़ी ही यह सब देख रही हैं। मुक्तकेशी माँ थोड़ी देर बाद ही खड़ी होकर नाम-कीर्तन करने लगी। निर्मला माँ को सर्दी लग जायेगी यह सोचकर धीरे-धीरे नाम-कीर्तन बन्द कर उन्हें पकड़कर कमरे में लाया गया। कपड़े बदलाकर लिटा दिया गया।

थोड़ी देर बाद उठकर स्नानादि और थोड़ा-सा जलपान कर वह सो गई। माँ को जटू भैया के मकान में ले गये। वहाँ सबने माँ के साथ आनन्द किया। लगभग 12 बजे माँ को चन्द्रमाधव बाबू के मकान में ले जाया गया। वहीं भोज होगा। आकाश मेघाच्छन्न है। चन्द्रमाधव बाबू की स्त्री ने माँ से आग्रह किया है- ''माँ, इस समय वृष्टि न हो, वृष्टि होने पर बड़ी विपत्ति होगी।'' बाहर माँ के बैठने और भोजन की जगह थी। वृष्टि के भय से फिर सभी का स्थान बरामदे में कर दिया गया था। थोड़ी देर बाद ही देखा गया कि धीरे-धीरे थोड़ी धूप निकल आई है। तब माँ, भोलानाथजी और हेम भैया को बीच में बैठाकर चबूतरे पर ही सब लोग प्रसाद लेने बैठ गये और वृष्टि नहीं हुई। माँ प्रसाद लेने के बाद जरा लेट गई, कीर्तन चलने लगा। माँ बीच-बीच में मुँह उठाकर देख रही हैं। प्राय: एक घण्टे के बाद ही माँ उठ बैठी। माँ आज चली जायेंगी, इसलिए किसी की भी इच्छा नहीं है कि माँ लेटी रहें। निर्मला माँ भी गई हैं। लगभग 4 बजे माँ को चन्द्रनाथ बाबू के डेरे से शशी बाबू अपने स्टूडियों में ले गये। वहाँ माँ का फोटो लिया गया। मैं साथ थी, माँ को लेकर राजेश्वर-मन्दिर में लौट आई। पाँच बजे माँ जज साहब के बँगले पर गई। इसी बीच में कीर्तनकारी आ पहुँचे। माँ कह गई कि,''तुम लोग कीर्तन आरम्भ करो मैं अभी आती हूँ।'' माँ आज 9 बजे स्टेशन जायेंगी, चाँदपुर जा रही हैं। इसलिए उन्होंने थोड़ा दिन रहते ही कीर्तन आरम्भ करने को कहा जिससे कि जाने से पहले कीर्तन समाप्त हो जाये। माँ आज ही जायेंगी, मगर कीर्तन के बीच में ही उठकर जाना ठीक नहीं, इसलिए उन्होंने पहले ही कह दिया है। उसी के अनुसार कीर्तन आरम्भ हुआ। लोगों की अथाह भीड़ है; आज बहुत से लोगों का कीर्तन में मन नहीं लग रहा है। कीर्तन में मन जरा लगते ही फिर हृदय में किस तरह उठ रहा है कि माँ आज ही चली जायेंगी। बहुतों की आँखे सजल हैं। राजेश्वर-मन्दिर के शीतल ठाकुरजी की स्त्री का अविरल रोदन चल रहा है। माँ जज साहब के बंगले से लौटकर कीर्तन में बैठी। जाने का समय हो आया। एक भद्र पुरुष ने दीक्षा की प्रार्थना की है, इसलिए भोलानाथजी आज नहीं जा पा रहे हैं, वह कल दीक्षा देकर जायेंगे। माँ कह रही हैं-''मैंने जब 'आज ही जाऊँगी' कह दिया है तब मैं आज ही जाती हूँ। आप कल आइयेगा। मैं चाँदपुर जाकर गिरिजा बाबू के मकान में ठहरूँगी।'' भोलानाथजी राजी हो गये, शंकरानन्द उनके साथ रह गये।

माँ की विदाई का करुण दृश्य

माँ के साथ मैं, स्वामी अखण्डानन्द और ज्योतिष दादा आये। सबके आँसुओं की वृष्टि के बीच माँ विदा हो रही हैं–वह एक अपूर्व दृश्य है। प्रणाम के लिए धक्का–धुक्की हो रही है, मगर कुछ लोग स्थिर भाव से सजल नेत्रों से केवल माँ के मुँह की ओर देखकर ही दूर खड़े हैं। हम लोग सुरेन्द्र घोषालजी की मोटर से स्टेशन आये, और भी कई लोग आये हैं। गिरिजा बाबू भी सपरिवार आये हैं। सभी सतृष्ण नेत्रों से माँ के मुख की ओर देख रहे हैं। जिनका नया परिचय है वे माँ के साथ बातें कर रहे हैं, माँ की मधुर उपदेश–वाणी सुनकर कृतार्थ हो रहे हैं। शीतल ठाकुर जरा दूर खड़े हो व्याकुल होकर रोते थे। भीड़ में किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया किन्तु माँ की दृष्टि से वह बात नहीं छिपी। माँ मुस्कुराकर कह रही हैं– ''शीतल बाबा कहाँ हैं?'' यह कहकर दूर पेड़ के तले की ओर नजर डालकर ''शीतल बाबा, शीतल बाबा'' पुकार रही हैं और हँस रही हैं। तब सबकी दृष्टि उस ओर पड़ी। शीतल ठाकुर को पकड़ के लाकर माँ के पैरों के समीप बैठा दिया गया। माँ हँसते–हँसते कह रही हैं–''कैसे लोगों को तुमने मन्दिर में जगह दी थी जो अब रुलाकर जा रहे हैं।'' फिर कह रही हैं–''अच्छा, देखो मैं तो हँस रही हूँ। जो हँसता है उसके लिए फिर तुम लोग रोते हो? जो हँसता है उसके लिए लोग रोते नहीं,'' यह कहकर हँसते–हँसते बतला रही हैं, ''पर यह जो हँसी प्रकट हो रही है इसे भी तुम रोना कह सकते हो। कुछ एक प्रकाश हो रहा है न; उस हिसाब से रो रही हूँ कह सकते हो।'' तदनन्तर सबसे थोड़ा–थोड़ा नाम–कीर्तन करने की भिक्षा माँग रही हैं। गाड़ी छूटने का समय हुआ। हीरू लड़का भी सीताकुण्ड में कुछ दिन माँ के साथ रहा था। डाक्टरी पढ़ता है, वह सहसा अधिक न रुक सकने के कारण जोर से रो पड़ा। माँ सबको सान्त्वना–वचन कह ही रही थी कि गाड़ी छूट गई। किसी की व्याकुलतापूर्ण वेदना से जगत का कोई भी खड़ा नहीं रहता। गाड़ी भी नहीं खड़ी रही। कई लड़के गाड़ी के साथ–साथ दौड़ने लगे। अन्यान्य सब लोग चित्र–लिखित मूर्तियों की तरह माँ की ओर टकटकी लगाकर खड़े रहे। काक्स बाजार जाने पर सभी को भरोसा था कि माँ चटगाँव से ही लोटेंगी। दर्शन हो ही जायेंगे किन्तु आज सभी सोच रह हैं कि न मालूम अब कब दर्शन होंगे?

इस तरह चटगाँव की लीला समाप्त कर माँ चाँदपुर चली। गाड़ी छूटने के बाद ही माँ लेट गई, यह और भी मैंने देखा है। कौन जानता है भक्तों के हृदय की वेदना माँ के हृदय में आघात करती है या नहीं। शाम को लगभग 4 बजे चाँदपुर पहुँचकर वहाँ गिरिजा बाबू (भोलानाथजी के भानजे) को खबर नहीं दी गई। स्टेशन मास्टर से कहने पर उन्होंने माँ को वेटिंग रूम में ले जाकर बैठाया। उन सभी का पिछली बार माँ के साथ परिचय हो चुका था। जाते समय माँ सब लोगों को साथ लेकर स्टेशन पर आई थी। वह रेल्वे के डॉक्टर हैं; इसलिए रेलवे के अनेक कर्मचारियों ने आकर उसी समय माँ के दर्शन किये थे। गिरिजा बाबू को खबर दी गयी।

5 चैत्र, शुक्रवार– सवेरे 6 बजे ही गिरिजा बाबू आ पहुँचे। हम सब लोगों को साथ लेकर वह अपने डेरे पर आये एवं अस्पताल का एक कमरा खाली करके माँ के रहने के स्थान की व्यवस्था कर दी। हम लोगों ने वहीं आश्रय लिया। खबर पाकर सब लोग माँ के दर्शन करने आये हैं।

कलकत्ता जाते समय चाँदपुर आगमन

दोपहर में माँ कुछ समय तक लेटी रही। फिर उठकर सबके साथ वार्तालाप करने लगी। कीर्तनादि भी हुआ। खबर पाकर पूर्णबाबू (जो कृष्णनगर में थे) आये हैं। वह नदी के उस पार रहते हैं। ''सन्ध्या के समय आकर माँ को अपने डेरे पर ले जाऊँगा' कह गये। सन्ध्या के बाद तक महिलाओं का आना-जाना लगा रहा। उसके बाद माँ उठकर सड़क पर थोड़ा टहलने लगी। मैं भी गिरिजा दादा के साथ-साथ घूमने लगी। बहुत-सी बातें हुई। कालीप्रसन्न 'कुशारी' से कहा गया था, ''आप अब घर-गृहस्थी छोड़ दें''- वह नहीं छोड़ सके। उसके बाद उनको पुत्र-वियोग हुआ। माँ अपने भाव से जो बातें कहती हैं, सदा हम लोग अपने मन के अनुकूल न होने पर उसका पालन नहीं करते। यहाँ पर भी वही बात हुई थी, जब कालीप्रसन्न बाबू का दूसरा लड़का कठिन रोग से मृत्यु के मुँह से लौट आया; उसके बाद माँ तारापीठ आई, कालीप्रसन्न बाबू भी सपरिवार गये। माँ ने उनसे कहा था-''आप अब सपत्नीक घर छोड़ दें, यदि दूर न जाना चाहें तो सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर रहें।'' किन्तु उन्होंने कहा-''तीसरे लड़के हरिदास का विवाह किये बिना जाना नहीं हो सकता।'' माँ ने उस पर कहा-

''अच्छा वैसा ही होगा, विवाह के बाद ही चले जाना। इन दिनों तब तक शिव-पूजा का नियम लेकर शिव-पूजा करो।'' इसके बाद जब माँ श्रीरामपुर गई तब प्रथम पुत्र इन गिरिजा बाबू और द्वितीय पुत्र ने आकर माँ से प्रार्थना की-'पिताजी को छोड़ दीजिये'। तब माँ ने छत की कोठरी में रहने की व्यवस्था कर दी। 'वह भी सुविधाजनक नहीं होगा।' उनके ऐसा कहने पर माँ ने अन्य एक विधान दिया। वही बात कह रही हैं-'अन्य एक विधान तो नहीं, यदि कुछ न कहूँ तो तुम समझोगे गुस्सा हो गई हैं इसलिए तुम लोगों के भावानुसार ही कुछ कहा जाता है।'' इस घटना के कुछ ही दिन बाद कालीप्रसन्न बाबू का दूसरा लड़का मर गया- तब सभी को ज्ञात हुआ कि 'माँ के विधान का पालन करना' कल्याणकारी था। किन्तु जो होनहार है वह होगा ही। पूर्णबाबू के सन्ध्या को आने की बात है। रात के आठ बजे हैं पर वह आये नहीं। सड़क से लौटकर माँ शौच करने गई। शौचालय की सीढ़ी के ऊपर खड़ी होकर कह रही हैं-''शायद पिताजी (पूर्णबाबू) आकर कहेंगे, ''माँ चलिये।'' यह कहते-कहते माँ ने शौचालय में प्रवेश किया। सम्भवत: एक ही मिनट में पूर्णबाबू सपरिवार आ पहुँचे। माँ के निकलने पर प्राय: सभी ने इतनी रात बीते नाव से उस पार जाने के लिए मन नहीं किया। किन्तु पूर्णबाबू और उनकी स्त्री का अनुरोध न टाल सकने के कारण माँ उनके डेरे पर गई। ज्योतिष दादा शारीरिक अस्वस्थतावश नहीं गये। मैं और अखण्डानन्दजी गिरिजा बाबू के साथ चले। घाट पर जाकर डिपुटी बाबू की नाव में चढ़े। चाँदनी रात बड़ी सुहावनी लग रही थी। पूर्णबाबू की लड़की ने गाया गाया-

'बल् रे जबा बल् कोन साधनाय,
पेलि रे तुइ मायेर चरण-तल'

अर्थात् अरे जवा कुसुम कह तो सही तूने किस साधना से माँ के चरणतल में स्थान पाया।

हम लोग पूर्ण बाबू के डेरे पर उतरे। लड़के-लड़कियों ने कीर्तन किया। कल फिर आने के लिए विशेष अनुरोध कर उन्होंने माँ को विदा किया। पूर्णबाबू साथ आकर पहुँचा गये। रात को 11 बजे आकर सब बाहर पेड़ के नीचे बैठे। ज्योतिष दादा के साथ बातें होने लगी। रात में 2 बजे माँ सोई।

चाँदपुर से कलकता यात्रा

6 चैत्र शनिवार– आज भोर में ही भोलानाथजी, शंकरानन्द और जटू आ पहुँचे। लगभग 7 बजे माँ उठी हैं। उपस्थित सभी के साथ बातें कर रही हैं। थोड़ी देर बाद मैंने माँ को उठा ले जाकर मुँह धुला दिया। बंगाल देश ने सिन्दूर से माँ को सुवचनी देवी बना डाला है। नाक, मुँह, नेत्र सब सिन्दूर से सने हैं, धोती, जम्पर भी रंग गये हैं। साबुन से धोया भी नहीं जा सकता। निरन्तर ही यही अवस्था है। आज भी धो दिया। मैंने माँ को थोड़ा-सा जलपान करा दिया। आज भी पूर्ण बाबू और उनके बच्चे आये हैं। और भी अनेक लोग आये हैं। पूर्ण बाबू के लड़के ने कई गाने गाये। लगभग 1 बजे सभी के विदा होने पर माँ कपड़ा ओढ़कर सो गई। भोजन तैयार होने पर माँ को उठकार जरा खिला दिया गया। फिर आकर माँ सो गई। आज रात में कलकत्ता को रवाना होने की बात तय है। वहाँ से दिल्ली जाने की बात है। दिल्ली के सब लोग अधीर हो रहे हैं। तम्बू तानकर एक महीना प्रतीक्षा करने के बाद खोल डाला है– कितने ही टेलिग्राम आ रहे हैं, माँ कब आयेंगी। आज अपराह्न में महिलाएँ आई हैं, माँ बैठकर बातें कर रही हैं। सन्ध्या के समय पूर्ण बाबू फिर माँ को अपने डेरे पर ले गये। चाँदनी रात में खूब कीर्तन हुआ। वहाँ से पूर्ण बाबू की स्त्री के रोने-धोने के बीच लौटकर और एक मकान में जाकर अस्पताल में लौटी। रात में 1 बजे लोग स्टीमर में जा बैठे।

* * *

चौहत्तरवाँ अध्याय

रात्रि में कलकता आगमन और छिपकर घर–घर 'जय राधे–राधे कृष्ण–कृष्ण,' इत्यादि नाम–कीर्तन

7 चैत्र, रविवार– भोर में 5 बजे स्टीमर छूटा। अकस्मात् कलकत्ता-यात्री विनय बाबू (मुन्सिफ) भी उसी स्टीमर में आ बैठे। एक स्टेशन पर कुछ खाना खरीदा गया। माँ के आदेश से स्टीमर के यात्रियों में वह वितरित किया गया। रात के साढ़े आठ बजे हम लोग कलकत्ता पहुँचे। माँ के आदेश से इस बार किसी को भी खबर नहीं दी गई। विनय बाबू ही हम लोगों को बिड़ला पार्क के शिव–मन्दिर में पहुँचाकर डेरे पर चले गये। तय हुया कि वह ही खाना लेकर आयेंगे। माँ परिहास करने बाहर निकली। पहले शचीबाबू के मकान पर गई। हम सबको सड़क पर छोड़कर रहस्यमयी माँ ने अपनी चादर से सिर पर पगड़ी–सी बाँधी। अन्धकार में धीरे–धीरे शचीबाबू के दरवाजे पर गाना शुरू किया–

'जय राधे–राधे कृष्ण–कृष्ण, हरे राम हरे हरे।'

गाना सुनते ही सब लोग चकित हो गए। शचीबाबू ने कहा– मेरा हृदय मानों उछल–कूद कर उठा था किन्तु मैं माँ का स्वर नहीं पहचान सका। माँ ने आकर कहा–''मैंने सोचा था कि तुम लोग मेरे गले की आवाज न पहचान सको।'' अस्तु, भूपेश नाम के एक लड़के के दौड़कर बाहर आते ही माँ फिर अन्धकार में चली गई। किन्तु वह चेहरा क्या भूलने का है? कितनी ही पगड़ियाँ बँधी रहें, भूपेश के जरा ठहरकर माँ को पहचानने और मारे आनन्द के 'माँ' कह चिल्लाने पर सब दौड़े चले आये। जोर से हँसने का शब्द बाहर से हम लोगों को सुनाई पड़ा। थोड़ी ही देर में शचीबाबू आकर हम लोगों को भीतर ले गये। मैं, भोलानाथजी, ज्योतिष दादा और अखण्डानन्दजी माँ के साथ–साथ हैं। कुछ देर वहाँ ठहरकर हम लोग यतीश गुहा के घर गये। वहाँ जाकर भी माँ ने यही खेल खेला। शचीबाबू ऊपर चले गये– बहुत से लोग सोये थे, रात में लगभग 11 बजे शचीबाबू को देखकर सभी के मन में यह बात उठी कि यह निश्चय ही

माँ की कुछ खबर लाये हैं। किन्तु शचीबाबू ने कुछ नहीं कहा। माँ ने और सब लोगों को दूर छोड़कर केवल मुझे साथ ले यतीश गुहाजी के मकान के पीछे की गली में घुसकर पहले के वेश में धीरे-धीरे घूम-घूमकर गाना शुरू किया, "**जय राधे-राधे, कृष्ण-कृष्ण, हरे राम, हरे हरे; वह नाम बलो बदने शुनाओ काने बिलाओ जीवेर द्वारे-द्वारे।**" इतनी रात बीते मधुर स्वर से सभी चकित हुए। सभी दोतल्ले में हैं, शब्द तेज करने के लिए माँ ने मुझे भी साथ में नाम-कीर्तन करने का आदेश दिया। सत्य घटना कभी-कभी किसी-किसी के ह्दय में जाग उठती है- आज नीतीश की स्त्री के ह्दय में जाग उठी। उसने कहा-माँ की आवाज मालूम पड़ती है। यह सुनते ही सब लोग दौड़कर उतर आये। माँ को उस स्वाँग में देखकर सब जाकर माँ से चिपट गये। आनन्द की सीमा नहीं रही। कुछ देर खड़ी रहकर ही माँ प्राणकुमार बाबू तथा विनय बाबू के मकानों में होकर शिव-मन्दिर लौटी। वहाँ देखा कि विनय बाबू सपत्नीक भोजन लेकर खड़े है। खाना-पीना हुआ। माँ फिर बाहर निकली। इस बार गाड़ी में चली। माँ भ्रमर के मकान में गई, वहाँ से नवतरू के मकान में होकर ग्रे स्ट्रीट में उपेन्द्र बाबू के मकान पर होती हुई रात्रि में प्राय: 2 बजे लौटी। वहाँ फिर दिल्लगी आरम्भ की, "खुकुनी से नाम-कीर्तन सीखा है, इस समय सब सुनेंगे, शीघ्रता करो"-मैंने कहा-"तुम भी करो।" यह सब नाम-कीर्तन करते-करते रात में 3 बजे माँ सोई। शचीबाबू, नवतरू, यतीश गुहा, नीतीश इन सभी ने कम्बल लेकर माँ के निकट स्थान ग्रहण किया।

कलकत्ते से काशी यात्रा

8 चैत्र, सोमवार- प्रात:काल माँ के उठते ही बहुत से लोग आकर बैठे हैं। माँ उठ बैठी, सबके साथ वार्तालाप कर रही हैं। लगभग 12 बजे माँ ढाकुरिया में कुशारीजी के मकान पर भोजन करने गई। वहाँ से लौटती बार मार्ग में उनकी स्त्री संज्ञा देवी के विशेष आग्रह से सुरेन ठाकुर के मकान पर भी हो आई। लगभग पाँच बजे माँ बिड़ला-मन्दिर में आई। लोगों की भीड़ माँ को घेरकर बैठी है। माँ ने गत बार जब सबके साथ कीर्तन किया था, तब रायबहादुर सुरेन बाबू ने उसकी फिल्म ले ली थी। आज सन्ध्या के समय उसे माँ को दिखलायेंगे। हम लोगों के जनेऊ का भी चित्र उठा है। सब कुछ सन्ध्या समय दिखलाया गया। इसके बाद ही

माँ के प्रस्थान करने का समय हुआ। सभी प्रणाम करके एक के बाद एक विदा हो रहे हैं। बहुत से लोग साथ-साथ स्टेशन चले। गाड़ी छूटने के पूर्व तक सब एकटक माँ की ओर देख रहे हैं। माँ काशी जा रही हैं। बच्चू की माँ के विशेष बुलावे से वहाँ जा रही हैं। वहाँ एक अहोरात्र कीर्तन करेंगी। रात में 10 बजे की गाड़ी से माँ काशी के लिए रवाना हुई। रेलवे के कर्मचारी गाड़ी में इतनी अधिक भीड़ लगाने का निषेध कर रहे हैं, किन्तु कोई भी माँ के समीप से नहीं हट रहा है। झिड़कियाँ खा रहे हैं, एक बार उतर जा रहे हैं फिर दो-दो एक-एक करके माँ के समीप आकर जमा हो रहे हैं। एक हँसी का व्यापार है। अस्तु, निर्दिष्ट समय पर गाड़ी छूट गई। बहुत से लोग दौड़कर साथ-साथ चल रहे हैं। अन्त में गाड़ी की रफ्तार तेज हुई। हताश होकर वे खड़े रहे। यह विदाई का दृश्य बड़ा ही करुण था।

काशी आगमन और अहोरात्र कीर्तन

9 चैत्र मंगलवार– दूसरे दिन 10 बजे हम काशी पहुँचे। विमला माँ और आनन्द भाई हरिद्वार जा रहे हैं। यहीं उनके साथ भेंट हुई। माँ के देखते ही वे दौड़ आये। स्टेशन पर बच्चू की माँ आदि आये हैं। पहले ही टेलिग्राम कर दिया गया था। भोर में कीर्तन आरम्भ करना है। माँ को बच्चू के मकान पर ले जाया गया। बगीचे की एक कुटी में माँ के रहने के लिए जगह ठीक की गई। माँ वहाँ जाकर बैठी। माँ को कपड़े बदलवाकर थोड़ा जलपान कराया गया। कीर्तन चल रहा है–

''हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।''

माँ के आने की खबर पाकर सब लोग माँ के दर्शनों के लिए आ रहे हैं। माँ सबके साथ अपनी स्वाभाविक मधुर भाषा में वार्तालाप कर रही हैं। लगभग 12 बजे माँ का भोजन हुआ। थियोसोफिकल सोसाइटी के बैजनाथ पाण्डेय की स्त्री आई हैं। पिछली बार से ही वे दम्पति माँ के परम भक्त हुए हैं। सन्ध्या के समय माँ भी एक बार कीर्तन में आ बैठी। कलकत्ते से यतीश गुहा हमारे साथ आये हैं। सबने मिलकर कीर्तन में योग दिया। रात में माँ, भोलानाथजी और साथ के सभी लोग कीर्तन में जा बैठे। सारी रात जागते ही बीती। माँ बिल्कुल चुप होकर बैठी हैं।

महेश बाबू को सान्त्वना–प्रदान, चिन्ता क्या है

10 चैत्र, शुक्रवार– साढ़े छः बजे कीर्तन समाप्त हुआ। यहाँ के नियमानुसार चूना और हल्दी घोलकर भूमि पर गिराकर सब उस पर लोट–पोट हुए। तदनन्तर सब लोग माँ को साथ लेकर गंगा–स्नान करने चले। हरसुन्दरी धर्मशाला से कानाई दादा साथ हो लिये। वह माँ को अपनी धर्मशाला में ले जायेंगे। धर्मशाला के स्वामी महेश बाबू अस्वस्थ हैं। माँ लौटते समय वहाँ गई। माँ ने उनसे एक वर्ष तक जिन नियमों का पालन करने को कहा था, इस चैत्र मास में एक वर्ष पूरा हो गया। नियमों का पालन किया जा चुका है। माँ कह रही हैं–''कितने ही दिनों से पिताजी का शरीर अस्वस्थ है, उनमें से यह एक वर्ष बचे रहकर जिन नियमों की बात हुई थी, उनका पालन हो गया।'' महेश बाबू आज माँ से कह रहे हैं–''माँ, बड़ा कष्ट है अब सह नहीं सकता; अब जा भी नहीं पा रहा हूँ।'' माँ ने कहा–''आप चिन्ता न करें, केवल भगवान् को पुकारें। परिवर्तन तो होता ही जा रहा है चिन्ता क्या है?'' माँ धर्मशाला से बच्चू के बगीचे की कुटी में आई हैं; और भी अनेक लोग आये हैं। माँ का मुँह धुला दिया गया। थोड़ा दूध पीया, सबने विदा ली, माँ थोड़ा लेट गई। कल 12 बजे की गाड़ी से दिल्ली जाने का इरादा है। एक बजे माँ उठी हैं। उपस्थित सब लोगों के साथ बातें कर रही हैं। बहुत से लोगों को आज माँ क़े आने की खबर लगी है, वे लोग आज माँ के दर्शन करने आये हैं। सन्ध्या को फिर कीर्तन हुआ। भोलानाथजी के साथ सभी को कीर्तन में आनन्द आया। माँ बरामदे में मोढ़े पर बैठी हैं। बच्चू की माँ एकान्त में माँ के साथ अपनी बातें कह रही है। रात में लगभग डेढ़ बजे माँ आकर बच्चू के दालान के खुले चबूतरे पर सोई। यहीं कीर्तन आदि हुआ है। माँ के चारों ओर सबने कम्बल बिछाकर अपने सोने का स्थान बना लिया है।

दिल्ली जाते समय इलाहाबाद में भक्तों द्वारा मातृ–दर्शन

11 चैत्र, बृहस्पतिवार– सवेरे से ही लोग आ रहे हैं। माँ आज 12 बजे की गाड़ी से दिल्ली को रवाना हो रही हैं। हमारी कृष्णा माँ (मनोरमा) आ रही हैं। नैनीताल के परिचित एक इन्जिनियर सपत्नीक कल आये थे, वे माँ को अपने डेरे पर ले जाने के लिए बहुत ही व्याकुल हुए थे किन्तु

समयाभाव से जाना नहीं हुआ। आज प्रात:काल वे आये हैं। इलाहाबाद होकर जाना होगा, इसीलिए माँ के दर्शनों के लिए जो अत्यन्त व्याकुल हैं, उनको टेलिग्राम कर दिया गया है। हम लोग लगभग 5 बजे इलाहाबाद पहुँचे। खबर पाकर सभी कश्मीरी आये हैं। देहरादून की काशीरानी भी यहीं हैं- वह इतने दिनों के बाद माँ के दर्शन कर रोते-रोते व्याकुल हैं। कश्मीरी महिलाएँ जब फूल-मालाओं के साथ गाड़ी में चढ़ी, गाड़ी मानो प्रकाशमय हो गई। उन्होंने माँ को मालाओं से सजाया। माँ के चरणों में फलों का ढेर लगा दिया। इतने आग्रह से माँ से लिपटी कि मालूम पड़ता था कि कितने काल के आराध्य धन को उन्होंने समीप में पाया है। मैंने टेलिग्राम किया था इसलिए मेरा भी तरह-तरह से आदर करने लगी। कहने लगी-''गुरुप्रिया बहन, तुम्हारे कारण ही हम माँ के दर्शन कर सकी हैं।'' दर्शनों के लिए उनकी व्याकुलता और आग्रह देखकर वहाँ पर उपस्थित सब लोग मुग्ध हो गये। बहुत लोग एकत्र हो गये। माँ के चरणों के सब फल मैं बाँटने लगी। माँ जरा नीचे उतरकर खड़ी हुई। दल-के-दल लोग आकर माँ का चरण-स्पर्श करने लगे। वह एक अपूर्व दृश्य था। किसी की भी व्याकुलता से गाड़ी नहीं रुकी। निर्दिष्ट समय पर गाड़ी छूट गई। कश्मीरी महिलाएँ माँ के शरीर और मस्तक पर फूल बिखेरने लगी।

* * *

पचहत्तरवाँ अध्याय

दिल्ली आगमन और वहाँ भक्त-मिलन

12 चैत्र, शुक्रवार- आज प्रातः साढ़े छः बजे हम लोग दिल्ली पहुँचे। बहुत से लोग स्टेशन पर उपस्थित थे। पंचू बाबू के यहाँ तम्बू तना है। माँ को वहाँ ले जाया गया। धीरे-धीरे सबको खबर दी गई। माँ तम्बू में जाकर कुछ देर बाद ही लेट गयी। बहुत से लोग दर्शनों के लिए आकर बैठे हैं। सुरेन बाबू की स्त्री, जिन्होंने शिमला में कीर्तन प्रारम्भ किया था, आकर अधिक देर न ठहर सकी। उन्होंने कहा-''मैं अपने गोपाल के दर्शन करने जाती हूँ''। उनका आग्रह देखकर मैं उन्हें रोक न सकी। वह माँ से चिपट गई; माँ मुँह पर से चादर हटाकर हँसते हुए उठ बैठी। वह कितने ही तरह से माँ का आदर करने लगी। अन्त में उन्होंने महिलाओं के कीर्तन का प्रस्ताव किया। वह यहाँ महिलाओं में वयोवृद्ध हैं, इसलिए प्रायः सभी इनका सम्मान करते हैं। यह भी महिलाओं को एकत्र कर सत्संग में अधिक समय व्यतीत करती हैं। धीरे-धीरे बहुत से लोग आने लगे। माँ को उठाकर भोजन कराया गया। माँ ने बहुत थोड़ा खाया, उसके बाद छोटे से बिस्तर पर जा बैठी। तम्बू छोटा था, लोग समा नहीं रहे हैं, इसलिए तम्बू के चारों ओर का पर्दा खोल दिया गया। फिर भी सब लोग माँ के निकट आकर चरण नहीं छू सके। माँ ने महिलाओं से कहा- ''खाली मुँह नहीं बैठे रहना चाहिए, नाम-कीर्तन करो।'' तब महिलाओं में कुछ देर नाम-कीर्तन हुआ। माँ कह रही हैं। हाराण बाबू की स्त्री ने खूब नाम-कीर्तन किया। सन्ध्या समय माँ को थोड़ी देर के लिए हरि-सभा में ले जाया गया। दुर्गादास बाबू, पंचू बाबू, हाराण बाबू, चारु बाबू, पकंज बाबू आदि सब साथ-साथ चले। इसलिए माँ मोटर से नहीं गई। पैदल ही चली। वहाँ सात दिन का सप्तम वार्षिकोत्सव चल रहा है। आज वहाँ पाठकों ने पाठ किया है। माँ के पहुँचते ही बहुतों ने माँ के चरणों में प्रणाम किया। प्रायः एक घण्टा वहाँ रहने के बाद फिर सब माँ के साथ तम्बू में लौट आए। रात में 11 बजे तक बहुत से लोग माँ के पास बैठे रहे। तदनन्तर इच्छा न रहते

हुए भी सब लोग प्रणाम कर धीरे-धीरे विदा हुए। माँ के बिस्तर के चारों ओर कम्बल बिछाकर हम लोग सोये।

दिल्ली के होलिकोत्सव में माँ का आनन्द-दान, कर्म से ही कृपा होती है, शुभकर्म करना भी कृपा-सापेक्ष है, प्रारब्ध कर्म कैसे कटे

13 **चैत्र, शनिवार-** आज होली की पूर्णिमा है। माँ के उठने से पहले ही बहुत से लोग आकर बैठे हैं। आज वे माँ के चरणों में गुलाल चढ़ायेंगे और माँ के निकट कीर्तन करेंगे। ज्यों ही माँ उठी, सबने माँ और भोलानाथजी के चरणों में अबीर से प्रणाम किया। कोई चन्दन और तुलसी-पत्र चढ़ा रहे हैं। महिलाएँ कपड़े और सिन्दूर लाकर विविध पदार्थों से आज माँ की पूजा कर रही हैं। मालाओं से माँ को सजा दिया गया। अन्त में महिलाएँ माँ के साथ होली खेलने लगी। माँ कभी महिलाओं के दल में बाहर जा रही हैं, कभी लड़कों के समीप तम्बू के भीतर कीर्तन में सम्मिलित हो रही हैं। महिलाओं से भी माँ कीर्तन कराने लगी। सबके मुँह पर अबीर लगाने पर माँ मेरे द्वारा एक शीशा मँगवाकर सबके मुँह के निकट रख रही हैं। हँसते हुए कह रही हैं-"**तुम सब रंग लगा रही हो, हमें भी तो कोई काम करना चाहिये, मैं तुम्हारा स्व-रूप तुम्हें दिखा रही हूँ।**" यह कहकर हँस रही हैं। किन्तु इस बात में कितना गहरा तत्त्व है शायद बहुतों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। सबने माँ के वस्त्रों पर अबीर डाल दिया, माँ हँसते-हँसते अलग-अलग सबसे गले लग रही हैं। उससे माँ के अबीर से वे ही रंगे जा रही हैं। माँ हँस रही हैं, साथ-साथ यह चतुराई देखकर सभी हँस रही हैं। तदनन्तर महिलाओं से कीर्तन चलाने को कहकर माँ लड़कों के निकट आ रही हैं। सभी माँ के चरणों में अबीर चढ़ा रहे हैं। इस प्रकार लगभग 12 बजे तक कीर्तन और खेल हुआ। तदुपरान्त धीरे-धीरे सब विदा हुए। मैंने माँ को स्नान करा दिया। उसके बाद माँ ने भोजन किया। पंचू बाबू सपरिवार जी-जान से माँ की सेवा कर रहे हैं। देहरादून से गोपालजी और हरिराम जोशी आये हैं। खूब ही आनन्द और चहल-पहल में दिन बीत रहे हैं। हाराण बाबू के घर उदयास्त कीर्तन हो रहा है, वह एक बार माँ को अपने घर ले गये। वहाँ पंजाबियों के साथ हाराण बाबू कीर्तन में खूब नाचकर आनन्द कर रहे हैं। कुछ समय वहाँ रहकर माँ तम्बू में लौटी। मनोज बाबू अपने

मकान में माँ को ले जाने के लिए आकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। माँ को साथ लेकर गये, हम लोग भी साथ गये। मनोज बाबू के मकान के पास ही एक प्राचीन हनुमान मन्दिर है। माँ दो बार आकर इस मन्दिर में रही थी। यतीश गुहा और रण से माँ ने कहा–"जाओ तुमने हनुमानजी के मन्दिर को देखा नहीं है तो देख आओ।" माँ मनोज बाबू के मकान से तम्बू में आ बैठी। बहुत लोग आये और माँ को चारों ओर घेर कर बैठे। एक लड़की ने सुन्दर कीर्तन किया। सुना वह पंचानन मुखोपाध्याय की लड़की है। एक सज्जन के साथ माँ का वार्तालाप हो रहा है। सज्जन कह रहे हैं–"माँ, हम लोगों का कुछ भी नहीं हो रहा है सो क्यों? कृपा नाम की कोई वस्तु नहीं है क्या?" माँ कह रही हैं–"हाँ कृपा के बिना तो चला ही नहीं जा सकता। किन्तु कर्म से ही कृपा होती है। कर्म करना चाहिये। जैसे एक व्यक्ति हाथ बढ़ाकर देता है और दूसरा व्यक्ति हाथ बढ़ाकर लेता है। इसलिए **कर्म और कृपा एक समय में ही होते हैं। कर्म ही तो कृपा है, कृपा यदि न रहे तो सत्कर्म कहाँ?"** सज्जन कह रहे हैं–"माँ, प्रारब्ध-भोग करना ही होगा न? क्या नाम-जप से कर्मफल का क्षय नहीं होता?" माँ कह रही हैं–"**देखो, प्रारब्ध कर्म का कैसे भोग होता है, जीवन्मुक्तों का भी भोग होता है जैसे बिजली का पंखा स्विच बन्द कर देने पर भी कुछ समय तक चलता है। जीवन्मुक्त का प्रारब्ध भोग वैसा ही होता है। उससे जीवन्मुक्तों को कुछ बन्धन नहीं होता।** और देखो, तुमने संभव है बहुत-सा काम जमा कर लिया है, अकेले पूर्ण करने में बहुत समय चाहिये। इसी समय तुम्हारे परिचित कई लोगों ने आकर तुम्हारी ऐसी अवस्था देख मिल-जुल कर काम कर दिया–तुम्हें थोड़े समय में छुट्टी मिल गई। **जपादि से फल होता है, जल्दी ही कर्म-बन्धन से छुट्टी मिल जाती है।"** इस प्रकार हँसते हुए माँ विविध वार्ताएँ कर रही हैं। सब लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रहे हैं। रात में फिर माँ को हरिसभा में ले गये। वहाँ सुधीर सरकार कीर्तन कर रहे हैं। बहुत लोग इकट्ठे हुए हैं। जाते ही अनेक लोगों ने आकर माँ के चरण छूए। सुधीर बाबू की स्त्री ने आकर मुझसे कहा–"दीदी, पुकारने से माँ आती हैं इस बात का आज मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। 'वे' कह रहे थे–'माँ आज नहीं आवेंगी।' मैं कह रही थी–'पुकारने पर माँ अवश्य ही आती हैं, देखूँ आती हैं या नहीं।' यह सोचकर मैं माँ को पुकार रही थी, देखिये, माँ आ पहुँची।" इधर माँ के

हरि–सभा में जाने का समय हुआ परन्तु सबकी बातचीत से जाना प्राय: स्थगित हो गया था। किन्तु घटनाचक्र से माँ के जाने में कुछ भी रुकावट नहीं पड़ी। रात में 12 बजे सब लोग विश्राम करने के लिए लेट गये।

14 चैत्र, रविवार– आज भी सवेरे माँ के उठने के पहले ही बहुत से लोग आकर बैठे हैं। माँ उठकर सबके साथ वार्तालाप कर रही हैं। बातचीत के बहाने माँ सुन्दर–सुन्दर उपदेश दे रही हैं। हाराण बाबू ने कहा–''माँ, तुम लगभग एक वर्ष के बाद आई हो। हमारी तो कुछ भी उन्नति नहीं हुई। नाम–कीर्तन से देखता हूँ कुछ भी नहीं होता। इतना कीर्तन करता हूँ, नाम जपता हूँ–जब करता हूँ तब आनन्द आता है किन्तु फिर घर जाते ही जैसा–का–तैसा हो जाता है।'' माँ थोड़ी देर चुप रहकर कह रही हैं–''देखो, चटगाँव में खट्टे को 'खेड़े' कहते हैं, **तुम लोग औषध भी खाते हो और खेड़े भी खाते हो, इसीलिए फल नहीं मिलता है।**'' यह कहकर माँ बच्चों की तरह हँसने लगी। सब लोग स्तब्ध हो गये। किसी–किसी ने कहा– ''माँ ठीक ही कह रही हैं, हम लोग खेड़े भी खाते है, औषध भी खाते हैं इसीलिए हमें फल नहीं मिलता।'' फिर बातचीत के सिलसिले में कह रही हैं– **''अलोचना होने के लिए आलोचना करो। जब तक लोचन है तभी तक सृष्टि है; जब तक दृष्टि है तभी तक सृष्टि है।''** दोपहर में भोजनोपरान्त माँ आधे घण्टे के लिए मुँह पर चादर ओढ़कर लेटी रही। कह दिया आधे घण्टे के बाद मुझे पुकारना। तम्बू में अनेक लोग बैठे हैं। पूर्व परिचित नानी माँ, अपनी कन्या और बहू के साथ आई है। सुरेश बाबू की स्त्री (टुनू की माँ) आकर माँ को 'गोपाल–गोपाल' कहकर कितना ही आनन्द कर रही हैं। माँ भी उनकी गोद में बच्चे की तरह लेटी हैं। यह ही सोमवार को माँ के साथ महिलाओं के कीर्तन की व्यवस्था कर रही हैं। परिहास और बातचीत के बहाने अनेक सुन्दर–सुन्दर बातें होने लगी। लड़कों और महिलाओं के साथ मैं सच्चिदानन्द का खेल खेलने लगी। आधा घण्टा होते ही माँ उठ बैठी। साढ़े चार बजे इन्जिनियर चिन्तामणि पन्त माँ को अपने मकान पर ले गये। वहाँ खुले मैदान में माँ के साथ सब लोग बैठे। छोटी–छोटी लड़कियों ने गाना गाया। तदनन्तर कुछ जलपान की व्यवस्था की गई। माँ को थोड़ा खिला दिया गया। सबने प्रसाद पाया। सन्ध्या समय माँ को फिर तम्बू में ले जाया गया। थोड़ी देर बाद माँ को हरिसभा में ले जाया गया। वहाँ नाम–कीर्तन हो रहा

था, भोलानाथजी ने भी कीर्तन में भाग लिया। सब लोगों ने मिलकर खूब आनन्द किया। वहाँ से रात 9 बजे माँ को लेकर सब लोग तम्बू में लौटे। साथ-साथ अनेक लोग आये, इसलिए माँ गाड़ी से न आकर पैदल ही सबके साथ चली हैं। तम्बू में पहुँचते ही फिर एक पंजाबी सज्जन माँ को कीर्तन में ले जाने के लिए मोटर लेकर आ पहुँचे। पहले से ही उन्होंने माँ से एक बार अपने यहाँ जाने का अनुरोध किया था। हाराण बाबू उसी मकान पर नाम-कीर्तन करने गये हैं। हाराण बाबू की लड़की भी माँ को लेने आई है। माँ को लेकर सब वहाँ गये। कीर्तन का स्थान वृन्दावन बनाया गया है। पंजाबियों के साथ हाराण बाबू गोपी के वेश में नाच रहे हैं। केवल नाम-कीर्तन हो रहा था। भोलानाथजी थके थे, इसलिए वह कीर्तन में नहीं गये। हम लोग 2-3 व्यक्ति माँ के साथ गये थे किन्तु फिर मोटर भेजकर भोलानाथजी के साथ शेष सब लोगों को वहाँ बुलाया गया। भोलानाथजी कीर्तन में नाचने लगे। खूब आनन्द रहा। नाम-कीर्तन हो रहा था- **'जय राधे, जय राधे, जय राधे, जय कृष्ण जय वृन्दावन।'** फिर नाम-कीर्तन चला-**'जय गोविन्द गोपीनाथ गोपीजन-वल्लभ'** इत्यादि नाम से कीर्तन स्थल जम उठा, नाम की ध्वनि से वह जगह गूंज उठी, सभी लोग नाच-नाचकर आनन्द से नाम-कीर्तन कर रहे हैं। एक बार जाकर ही लौट आने की बात थी किन्तु रात के 12 बज गये। माँ को पाकर सभी ने आनन्द से बहुत देर तक कीर्तन किया। घर की मालकिन अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगी। सब लोगों ने सोमवार को महिलाओं के कीर्तन में भाग लेने का वचन दिया। 12 बजे तम्बू में लौटना हुआ। सोते-सोते रात के लगभग 2 बज गये।

मेरे कथन पर विश्वास करो, नाम लो निश्चय फल पाओगे

15 चैत्र, सोमवार- कल डॉक्टर जे.के. सेन के मकान पर माँ को ले जाने का निश्चय हुआ था। आज प्रातःकाल 7 बजे वह मोटर लेकर आये। हाराण बाबू भी सपरिवार आकर बैठे हैं; माँ उठी। सब लोगों को साथ लेकर डॉक्टर के मकान पर चली। वहाँ जाकर बगीचे के भीतर कुंज-गृह में बैठी। माँ कह रही हैं-''तुम तो डॉक्टरी करते हो, इस बार जरा मन की डाक्टरी करो न?'' वह बोले, ''चेष्टा तो करता हूँ, किन्तु विशेष कुछ नहीं होता।'' माँ ने आगे कहा-''अधिक समय दो, फिर तुम तो जानते ही

हो कि रोग अच्छा न होने तक औषध और पथ्य ठीक तरह से खाना चाहिये। उसी नियम के अनुसार भगवान् का नाम-जप करते जाओ, फल अवश्य पाओगे। देखो, मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ, बच्ची, पर सुनती हूँ कि कभी-कभी बच्चों को लोग गवाह मानते हैं, कहते हैं वह बच्चा है, झूठ नहीं बोलेगा, जो उसने देखा है ठीक-ठीक कहेगा। उसी तरह **मेरी बातों पर भी तुम लोग विश्वास करो, नाम जपो निश्चय ही फल पाओगे।** एक अच्छी वस्तु पाने पर सभी को इच्छा होती है कि अपने घर के सभी लोग उसे पावें। मेरे भी घर के लोग तुम सब हो; इसलिए कहती हूँ कि तुम सब नाम-कीर्तन करो और वह आनन्द लूट लो।'' डॉक्टर बाबू की स्त्री माँ के साथ एकान्त में बातें करने वाली थी। माँ उनकी बातें सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुई। उनकी अवस्था बड़ी अच्छी है। घर-गृहस्थी में रहकर भी भाव सुन्दर है। वह अपनी सुन्दर-सुन्दर अवस्थाओं की बातें माँ से बतलाकर फिर कह रही हैं- ''माँ मेरा इन सब पर विश्वास नहीं होता क्योंकि मैंने तो साधन-भजन कुछ भी नहीं किया, मेरे भीतर ये सब भाव आयेंगे क्यों?'' माँ ने कहा-''तुमने यद्यपि इस जन्म में कुछ विशेष नहीं किया है तथापि तुम्हारा संस्कार अच्छा है इसलिए अब थोड़ा ध्यान करते ही तुम इन सब भावों को पा रही हो। तुम्हारी बातें सुनने से बड़ा आनन्द हुआ।'' डॉक्टर बाबू की स्त्री ने उपनिषद् आदि पढ़कर जो कुछ बोध प्राप्त किया है, उसे पद्य में लिखा है, उस किताब की दो प्रतियाँ उन्होंने माँ को दे दी। हम लोग बहुत देर में वहाँ से लौटे। डॉक्टर बाबू से भी माँ कह आई हैं कि ''तुम कम से कम कुछ देर इस वृक्ष-कुंज में वृक्ष होकर बैठे रहना। उसी ध्यान में बैठना।'' तम्बू में आकर देखा तो बहुत से लोग माँ की प्रतीक्षा कर रहे हैं। माँ आकर तम्बू में बैठी, लड़कियों ने गाने गाये। पंचू बाबू की एक लड़की ने नाच का साज-सामान पहनकर नृत्य किया। वार्तालाप में लगभग 1 बज गया। माँ को भोजन के लिए बैठाया गया। भोजन के उपरान्त माँ थोड़ी देर लेटी। अनेक लोग आकर बैठे हैं, माँ उठी।

महिलाएँ एकत्र हुई हैं; लगभग 3 बजे होंगे। माँ कितनी ही बातें कर रही हैं। सुरेश बाबू की स्त्री माँ की माँ है, वह ही गीता की समिति बनाकर सब महिलाओं को उपदेश देती हैं। उससे महिलाओं में विशेष उन्नति

हो रही है- माँ ने कहा। महिलाएँ भी उनकी प्रशंसा कर रही हैं। माँ कह रही हैं-''तुम लोगों का भाग्य है जो तुमने इस तरह का संग पाया है। ये ही सब बातें हो रही हैं। चार बजे ओखला के काली-मन्दिर में माँ को ले जाना स्थिर हुआ है। माँ को टुनू की माँ दूध पिलाने लगी। माँ उनकी गोद में गोपाल के समान ही लेटकर हँस रही हैं। टुनू की माँ गोपाल की माँ हुई हैं। माँ ने कहा-''ज्योतिष और अखण्डानन्द को बुलाओ, मेरी माँ को देख जावें। उनके आने पर माँ कह रही हैं-''यह देखो मेरी माँ हैं, मुझे गोपाल कहती हैं, वह गोपाल की माँ हुई हैं।'' सबने कहा-''बहुत ठीक है, यह हमारी नानी हुई।'' माँ ने कहा-''मैं माँ के साथ एक फोटो खिचवाऊँगी, सबको अपनी माँ दिखाऊँगी।'' उसी समय एक व्यक्ति ने कहा-''फोटोग्राफर यहीं उपस्थित है।'' माँ ने कहा-''तुम लोगों ने तो मुझसे कुछ कहा ही नहीं है।'' अस्तु, वहाँ गोपाल की माँ की गोद में गोपाल लेटे हैं- माँ दूध पिला रही हैं-इसी प्रकार का फोटो खींचा गया। एक भद्रपुरुष की स्त्री को बलराम बनाया गया; वह भी माँ के समीप बैठी हैं। इस लीला-क्रीड़ा के बाद सब लोग माँ को साथ लेकर ओखला को चले। एक बस और दो मोटरें भरकर चली। भक्त लोग मृदंग और करताल साथ लेकर जा रहे हैं, वहाँ कीर्तन करेंगे। बस में ही कीर्तन शुरू हुआ। भक्त लोगों ने हृदय खोलकर 'माँ, माँ, माँ, माँ, माँ गाना शुरू किया। ओखला पहुँचकर माँ का फोटो उतारा गया। तदनन्तर सब लोग एकत्र होकर कीर्तन करने लगे। केवल 'माँ, माँ, माँ, माँ' नाम-कीर्तन हुआ। सन्ध्या हो गई, पूरा दल उस नाम का कीर्तन कर नाचते-नाचते माँ के साथ ओखला से रवाना हुआ। बीच-बीच में माँ बायाँ हाथ उठा-उठाकर सबको उत्साहित कर रही हैं। हाराण बाबू आदि नाच-नाचकर 'माँ-माँ' कहते हुए रवाना हुए। बस में बैठकर भी नाम-कीर्तन चलने लगा। मार्ग में चिन्तामणि पन्त के मकान पर जाना हुआ। कीर्तन चल रहा था। रात में साढ़े आठ बजे तक वहाँ खूब कीर्तन हुआ। तदनन्तर माँ को फल-मिठाई का भोग लगाकर सबको प्रसाद बाँटा गया। कीर्तन करते-करते सब लोग तम्बू में लौट आये। सन्ध्या के समय भक्तों के मुख से हृदय खोलकर की गई 'माँ माँ' की पुकार से आकाश और वायुमण्डल पवित्र हो उठा। कीर्तन बड़ा ही मधुर लगता था। तम्बू में आकर बहुत से लोगों ने विदा ली; फिर जो लोग माँ

के साथ ओखला नहीं जा सके, वे माँ के निकट आकर बैठे। बातें चलने लगी। रात के लगभग 10 बज गये–सभी बैठे हैं। 11 बजे सबने विदा ली। उसके बाद माँ को थोड़ा भोग लगाया गया। माँ सोई थी, सहसा उठकर बाहर सड़क पर निकल गई। कह रही हैं–''आज शरीर में निद्रा का भाव नहीं है।'' हम 2–4 व्यक्ति साथ–साथ चले। कुछ देर सड़क पर घूम–फिरकर माँ तम्बू में लौटी। किन्तु रात्रि में चुप रहने का भाव विशेष नहीं हुआ। रात में रण एकाएक 'माँ–माँ' कहकर खूब रोने लगा। कई दिनों से उसका एक कैसा विचित्र भाव चल रहा था; रात्रि में उठकर माँ के पास बैठा रहता है। आज भीषण भाव से रोने लगा। माँ चुपचाप लेटी रही। आज मथुरा से ज्योतिविकास (नरसिंह) और दूसरे एक प्रोफेसर सपरिवार आये हैं। उन्होंने माँ के साथ बहुत देर तक वार्तालाप किया।

16 चैत्र मंगलवार– बहुत तड़के हाराण बाबू अपनी स्त्री के साथ माँ के पास आये हैं। उनकी स्त्री माँ के सिरहाने बैठकर माथे पर हाथ फेरने लगी। सहसा माँ चादर के साथ उठ बैठी। हाराण बाबू की स्त्री से माँ बोली–''चलो तो माँ, हम चले।'' यह कहते ही बाहर चली गई। बाहर जाते ही हाराण बाबू से कह रही हैं–''इस समय मोटर से घूमना अच्छा है।'' मैंने कहा– ''माँ आपकी मोटर से जायेंगी इसीलिए बाहर निकली हैं।'' माँ को लेकर वह बाहर चले गये। लगभग 9 बजे माँ ताँगे से लौटी। मैंने सुना, ''लौटते समय मार्ग में एकाएक मोटर नाले के किनारे गिर गई। हाराण बाबू ने कहा– ''अगर माँ न रहती तो आज जीवन समाप्त हो जाता। जरा जोर से गाड़ी के गिरने पर ही सब समाप्त हो जाता। किन्तु वैसा न होकर धीरे–धीरे गाड़ी जो खड़ी हो गई।'' उसी समय सुधीर बाबू गाड़ी लेकर हाजिर हुए। वह अपने मकान में माँ को ले जायेंगे। हम लोग भी उनके मकान में गये। बहुत लोग इकट्ठे हुए हैं। नाम–कीर्तन हुआ। माँ को चन्दन, माला चढ़ा दी। सुधीर बाबू इंग्लैण्ड रिटर्न हैं, वह शिमला में पहले–पहल माँ के निकट अधिक नहीं आते–जाते थे। अन्त में माँ का भाव देखकर इतने मुग्ध हुए कि कई बार वीरेन दादा से उन्होंने कहा है– ''मैं बड़ा ही अभागा हूँ इतने दिनों से माँ शिमला में हैं; मैं नहीं आया। ऐसा सुयोग मैंने खो दिया है। अब बड़ा ही कष्ट हो रहा है।'' आज अपने मकान पर ले जाकर ही सुधीर बाबू ने प्रणाम कर माँ के पैरों के निकट

बैठते हुए कहा–''माँ, केवल एक बात मैं आपसे पूछता हूँ। मैंने कल रात 2 बजे आपको जिस भाव में देखा है क्या वह सत्य है? मैं सोचता हूँ वह सत्य है।'' माँ बात काटकर बोली–''स्वप्न में क्या–क्या दिखाई देता है, पर कभी–कभी स्वप्न सत्य भी होता है।'' सुधीर बाबू बड़े गम्भीर पुरुष हैं। वह प्रणाम करके विदा हुए। बहुत देर तक उनके मकान पर कीर्तन हुआ। सुधीर बाबू ने अपने गुरुदेव की दी हुई एक गीता की पुस्तक में माँ के हाथ का एक लेख रखना चाहा किन्तु बहुत मिन्नत करने पर माँ ने एक बिन्दु दे दिया। माँ बोली– ''यदि कभी लिखने का भाव हो तो इनसे (मुझे दिखाकर) कह देना, लेख भिजवा दूँगी, इस समय लिखने का भाव ही नहीं है।'' कीर्तनादि के बाद लगभग डेढ़ बजे हम लोग तम्बू में लौटे। आकर मैंने देखा **अमेरिका** के एक पुरुष माँ की प्रतीक्षा में बैठे हैं। वह चिरकाल से ही माँ की चर्चा सुनने के कारण माँ से भेंट करने के लिए उत्सुक हुए थे। यह साधु दर्शन करने के लिए ही भारतवर्ष आये हैं। बहुत साधु संग भी किया है। दाल–रोटी एक बार खाते हैं। चाय तक नहीं पीते। माँ के दर्शन कर कह रहे हैं–''मैं माँ के साथ ही रहूँगा।'' एक आदमी ने कहा–''माँ के साथ रहने पर धोती पहननी पड़ेगी।'' साहब कह रहे हैं–''माँ जो कहेंगी मैं वही करूँगा।'' माँ का फोटो खींचा। 12 बज गये। माँ को भोजन कराया गया। भोजन के बाद ही माँ को गुरुद्वारे में महिलाओं के कीर्तन में ले जाया गया। बड़ा भारी हाल है। बहुत–सी स्त्रियाँ माँ के साथ कीर्तन करने के लिए एकत्र हुई हैं। धीरे–धीरे कीर्तन जम गया। खूब आनन्द रहा।

नाम करने से नामी का संग होता है और 'वे' मिल जाते हैं। पति में परमपति, बाल–बच्चों में बाल–गोपाल, कुमारियों में देवीरूप से सेवा करने पर वह सेवा उन्हीं (भगवान्) के निकट पहुँचती है

5 बजे के समय माँ लौटी। वहाँ सबने माँ से थोड़ा उपदेश देने के लिए अनुरोध किया। माँ ने कहा–''मैं कुछ लिखना–पढ़ना तो जानती नहीं हूँ, 'कहो' कहने से ही तो नहीं कह सकती। बातचीत में कथा होने पर जो आयेगा वह कहूँगी।'' गोपाल की माँ ने चर्चा छेड़ी। बाद में माँ बोलने लगी–''देखो, हम लोगों ने यह नाम–कीर्तन किया; इसका मतलब क्या है?

नाम-कीर्तन क्यों किया जाता है? **नाम का गुण यह है कि वह नामी (नाम वाले) को ला देता है।** देखो न, माँ को माँ कहकर पुकारने पर ही माँ आकर सामने खड़ी हो जाती हैं। जिसको नाम लेकर पुकारोगे वह समीप में आकर खड़ा होगा। नाम का ही यह गुण है। इसलिए **नामी को पाने के लिए ही नाम का आश्रय लेना पड़ता है।** और भी देखो, अग्नि का स्वभाव ही यह है कि वह सब चीजों को अपना स्वरूप बना देती है। भीगी लकड़ी यदि अग्नि के पास रहती है तो वह भी अग्नि के गुण से सूखकर शुष्क हो जाती है- अन्त में अग्नि का स्वरूप ही हो जाती है। इसलिए उनका (भगवान् का) संग करने पर ही अर्थात् **उनका नाम-कीर्तन करने पर ही उनका संग प्राप्त होता है और 'वे' मिल जाते हैं।** फिर गृहस्थाश्रम में रहकर उनका संग करने का और भी एक उपाय है। वह यह है कि परम-पिता और परम-पति को कोई देखता नही है, इसलिए घर-घर में वह परम-पति ही पति के रूप में हैं, इस भाव से चिन्तन करना तथा लड़के-लड़कियों को बाल-गोपाल एवं कुमारियों को देवी के रूप में सोचना चाहिए। पति-पुत्र-कन्याओं की सेवा करने पर भी वह सेवा उनके निकट पहुँच जाती है। इस भाव से भी उनका संग किया जाता है। मेरी यह भिक्षा है कि तुम जरा अधिक समय उनका संग करो, उनका नाम-कीर्तन करो। बाल-बच्चों के लिए तो तुम लोग न जाने क्या-क्या करती हो, इस लड़की के लिए भी थोड़ा करो, यही मेरी प्रार्थना है। हाथ जोड़कर आँसुओं से छलछलाते नेत्रों से सबके निकट जब माँ बीच-बीच में यह प्रार्थना करती तब सब मुग्ध हो जाते एवं भगवान् का अधिक समय तक नाम-जप करना स्वीकार करते थे। कीर्तनादि के बाद माँ तम्बू में वापिस आ गई। ज्योतिविकास और साथी प्रोफेसर उसी समय मथुरा को रवाना हुए। दुर्गादास बाबू को वात की बीमारी है, वह आ नहीं सके थे। माँ ने उन्हें गाड़ी से ले आने को कहा। वह माँ के आह्वान से अत्यन्त आनन्दित होकर माँ के समीप आकर उपस्थित हुए। तम्बू में बहुत लोग बैठे हैं। बंकिम बाबू आदि आज शाम को साढ़े सात बजे माँ को हिन्दू महासभा के कीर्तन में ले जायेंगे। वहाँ आज बहुत लोग माँ के दर्शनों के लिए इकट्ठे होंगे। माँ जरा तम्बू से बाहर गई हैं, दुर्गादास बाबू तम्बू के भीतर बैठे हैं-वह जानते थे कि माँ लौटकर तम्बू में आयेंगी। बीच-बीच में वह 'माँ-माँ' पुकार रहे हैं। किन्तु माँ का फिर तम्बू में लौटना नहीं

हुआ। बाहर से ही बंकिम बाबू आदि ने माँ को मोटर में बैठा लिया। क्योंकि साढ़े सात बजने में अब देरी नहीं है। साढ़े सात बजे कीर्तन आरम्भ करने का निश्चय हुआ है। मैंने गाड़ी में माँ से कहा–''दुर्गादास बाबू तो भीतर ही बैठे हैं।'' माँ ने तत्क्षण कहा–''ठीक ही तो, तुम लोग मुझे बाहर ही से ले आये, इससे उनके मन में दुःख होगा। पैरों की यन्त्रणा लेकर आये हैं। मैं लौटकर जाऊँगी ऐसी उनकी धारणा थी।'' तब गाड़ी से ही माँ पुकारकर कह रही हैं–''पिताजी, मैं जाती हूँ।''तदनन्तर मुझसे कहा–''पिताजी ने समझा उनकी इस लड़की का कोई विश्वास नहीं तम्बू में बैठाकर चली आई। तुम एक काम करो, कीर्तन के बाद पिताजी को थोड़ा प्रसाद और मेरे गले की एक माला भेज देना।'' माँ कीर्तन-गृह में पहुँची। ऊपर महिलाएँ बैठी हैं, नीचे कीर्तन करने वाले सब बैठे हैं। माँ को भी नीचे बैठाया गया है। बहुत-सी महिलाएँ माँ को घेरकर नीचे ही बैठी हैं। आज भक्तों ने माँ की वन्दना–**'जय हृदयवासिनी श्रद्धा सनातनी श्री आनन्दमयी माँ,'** इससे आरम्भ की। फिर 'माँ-माँ' नाम का कीर्तन चला। बहुत देर तक भक्त महान् आनन्द से माँ-माँ पुकारते रहे। उस ध्वनि से वायुमण्डल भी पवित्र हो गया। बहुत देर बाद भक्तों ने दूसरा नाम आरम्भ किया। रात में 11 बजे तक माँ वहाँ रही। तदुपरान्त तम्बू में लौटी। तम्बू में भी 2-4 आदमी माँ की प्रतिक्षा में बैठे हैं। माँ के आते ही एक उत्तर-प्रदेशीय पण्डित ने माला और फल-मिठाई द्वारा माँ की पूजा की। रात्रि में लगभग 1 बजे सबने धीरे-धीरे विदा ली।

17 चैत्र, बुधवार– तड़के ही सब लोग माँ को साथ लेकर 'पूसा' चले। पंकज बाबू 6 बजे मोटर लेकर आ पहुँचे हैं। 'पूसा' में बहुत लोग माँ के दर्शनों के लिए उत्सुक थे। सब लोगों को भोर में माँ को पाकर अत्यन्त आनन्द हुआ। वहाँ गऊओं को देखकर कृष्ण के गोचारण की याद आती है। बहुत सुन्दर चेहरे हैं। वहाँ से माँ रायसाहब सुरेश बाबू (गोपाल की माँ) के मकान में गई। रायसाहब माँ के निकट नहीं आते। मुझे उनके घर भेजकर स्वयं मोटर में बैठी रही। वह फिर क्या करें, माँ के निकट आये। माँ भी ''पिताजी- पिताजी'' कहकर पुकारने लगी। उन्होंने हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम किया। उनकी स्त्री ने कहा–''यह मेरे गोपाल हैं, तुम जरा प्यार करो।'' उन्होंने कहा–तुम करो। माँ ने कहा–''अच्छा तो है, मैं ही

पिताजी को थोड़ा प्यार करती हूँ''। यह कहकर पिताजी के शरीर पर जरा हाथ रखा एवं बच्चे की तरह हँसने लगी। स्त्री इतना अधिक माँ के पास जाती है यह देखकर उन्होंने उन्हें ताना मारा था। पीछे मैंने सुना आज की घटना के बाद फिर स्त्री को ताने नहीं सुनाये।

वहाँ से माँ दुर्गा बाबू के मकान में गई, जाने की बात थी। दुर्गा बाबू को देखते ही माँ ने कहा–''पिताजी, आपको कल छोड़कर बिना कहे ही मैं चली गई थी। मुझे भय है कि आप उलाहना देंगे। मैं आप लोगों से डरती हूँ न?'' यह कहकर हँसने लगी। दुर्गा बाबू माँ के साथ खूब ही प्यार और जिद करते हैं। मुझे मालूम हुआ कि दुर्गाबाबू को अब खेद नहीं हैं। माँ ने कहा–''कल यदि प्रसाद न भेजा जाता तो पिताजी का चेहरा देखते ही बनता।'' यह कहकर फिर भुवन भुलाने वाली हँसी हँसने लगी। रसमयी में रस का अभाव नहीं है। दुर्गा बाबू पिघलकर पानी-पानी हो गये। वहाँ फोटो खींचा गया।

पिनाकपाणि नामक व्यक्ति की नास्तिकता विशेष भक्ति में परिवर्तित

वहाँ से माँ को रायबहादुर सतीश बाबू के मकान पर ले जाया गया। कुछ समय वहाँ रहकर माँ को तम्बू में ले आये। वहाँ बहुत से लोग बैठे हैं। माँ सबको लेकर बैठी, सबके कहने से माँ नाम-कीर्तन करने लगी। साथ-ही-साथ सब लोग नाम-कीर्तन करने लगे। दोपहर हो गया। माँ का भोजन हुआ। लोगों की संख्या घट नहीं रही है। धीरे-धीरे बढ़ती ही जा रही है। इस बार महिलाओं से भी माँ ने नाम-कीर्तन कराया। सन्ध्या के बाद माँ को पिनाकपाणि के मकान पर कीर्तन में ले गये। चौकी पर बाहर माँ के बैठने की जगह की गई, बरामदे में कीर्तन की जगह बनाई है। माँ चौकी पर बैठने को राजी नहीं हुई। बाद में जमीन पर बिछौना बिछा दिया गया। किन्तु उसमें हाराण बाबू आदि ने आपत्ति की। माँ नीचे बैठी रहेंगी तो वे बरामदे में कैसे बैठेंगे। माँ को एक चौकी लाकर दी गई। सुनने में आया कि माँ घर में नहीं जायेंगी, यह सुनकर पिनाकपाणि को बहुत कष्ट हुआ था। अन्त में चौकी मँगाकर माँ के लिए जगह की गई थी। किन्तु घटना-चक्र से वह भी नहीं हुआ; अन्त में जब माँ जमीन पर बैठने वाली थी; बरामदे में बैठे सब लोगों ने आपत्ति की तब पिनाकपाणि ने सोचा

कि ऐसी कोई चीज नहीं है जिस पर माँ को बरामदे के बराबर ऊँचा करके बैठाया जा सकता है। पीछे एकाएक उन्हें स्मरण हुआ कि पूजा-गृह में ठाकुरजी को बैठाने की एक चौकी है। उन्होंने फिर किसी तरह की द्विविधा किये बिना उसी समय वह चौकी माँ को ला दी। ठाकुरजी को जमीन पर रख आये। वह स्वयं ही यह बात बताकर कह रहे हैं- "इस चौकी को माँ ने घटना-चक्र से ग्रहण किया। किन्तु उसी से मेरा मन शान्त हो गया। माँ ने अपनी चौकी स्वयं ग्रहण की।" यह पिनाकपाणि महा-नास्तिक थे। माँ के साथ उल्टा तर्क करते थे, अन्त में ऐसी अवस्था हुई कि पैर पकड़कर रोने लगे। "माँ, मेरा भार तुम लो।" लगभग 7-8 वर्ष पहले माँ के साथ इनकी भेंट हुई थी।

शशी बाबू का एक पत्र आज मुझे मिला, उन्होंने लिखा है-"दीदी, इस नूतन स्थान पर माँ की प्रतिमा की कैसे प्रतिष्ठा करूँगा, उत्सव करूँगा, बड़ी चिन्ता थी। किन्तु उत्सव के पहले आश्चर्य की बात है कि अपरिचित लोग भी सड़क से आकर चन्दा दे गये हैं। ऐसा उत्सव यहाँ दूसरा नहीं हुआ। और भी एक बात सुनो-उत्सव के समय माँ के आसन के चित्र में माँ मानो स्पष्ट रूप से हँस रही हैं। यह केवल मैंने देखा है ऐसी बात नहीं है गिरिजा बाबू, जटू के दादा एवं और भी अनेक लोगों ने देखा है-" इत्यादि।

अस्तु, कीर्तन के बाद तम्बू में आना हुआ। चारु बाबू, हाराण बाबू सपत्नीक एवं पंकज बाबू आदि 3-4 व्यक्तियों ने रात के ढाई बजे तक का समय माँ के निकट व्यतीत किया। हाराण बाबू कह रहे हैं-"माँ, तुम जगद्गुरु हो, कोई एक पथ्य बता दो।" आगे फिर कह रहे हैं-"माँ मैं जानता हूँ हम कितने अपराधी हैं तथापि तुम्हारी कृपा के भिखारी बनकर आये हैं।" रात में लगभग 4 बजे मैं और माँ सोयी।

18 चैत्र, बृहस्पतिवार- भोर में ही हाराण बाबू सपत्नीक आ पहुँचे हैं एवं और भी 4-5 व्यक्ति आकर बैठे हैं। लगभग 8 बजे माँ को मणि चट्टोपाध्याय के मकान पर ले जाया गया। उनकी स्त्री खूब पूजा-पाठ करती है। उसने स्वप्न में देखा है कि पूजा के घर में माँ खड़ी होकर हँस रही हैं और भोलानाथजी कीर्तन में नाच रहे हैं। इसीलिए उन्होंने माँ और भोलानाथजी को पहिचाना है। उस दिन कीर्तन के बाद वह घर जाकर 2 घण्टे अचेत

पड़ी रही। माँ ने कहा–''अच्छा तो है, तुम लोग इस मकान में थोड़ा नाम–कीर्तन करो।'' वही हुआ, सब लोगों ने मिलकर खूब नाम–कीर्तन किया, भोलानाथजी ने बहुत सुन्दर नाच किया।

माँ का संग छोड़कर भक्त लोग ऑफिस जाना भूल गये

लगभग 10 बजे माँ तम्बू में लौटी। 12 बजे भोजन हुआ। बहुत लोग आये हैं। आज 4 बजे पिताजी माँ को हवाई जहाज में बैठाने के लिए गये। 5–6 वर्षों से पिताजी के विशेष आग्रह पर माँ आज राजी हुई हैं। पिताजी, भोलानाथजी, माँ, मैं और ज्योतिष दादा चढ़े। सारा दल नीचे खड़ा होकर ऊपर की ओर देख रहा है। 15 मिनट घूमकर हम लोग उतरे। वहाँ से देवेन्द्र चट्टोपाध्याय के मकान पर ले गये। थोड़ी देर बाद तम्बू में लौटे। लोगों की अथाह भीड़ है। आज वीरेन ने कीर्तन का आयोजन किया है। रात में लगभग साढ़े सात बजे कीर्तन आरंभ हुआ। माँ ने एक तरफ महिलाओं के साथ खड़ी होकर कीर्तन में भाग लिया। खूब सुन्दर कीर्तन हुआ। माँ ने सूचित किया है कि कल ही रात्रि में 10 बजे बरेली को रवाना होंगी। सब लोग खूब विरोध कर रहे हैं। आज ही माँ ने जाना चाहा था किन्तु आज जाना नहीं हुआ। कीर्तन के बाद आशुतोष वन्द्योपाध्याय तथा नरेन्द्र चौधरी अपने परिवार के साथ बैठे हैं। रात के लगभग डेढ़ बजे हैं–किसी को भी जाने की इच्छा नहीं है। बड़े आनन्द से कथा–वार्ता हो रही है, मानो दिन हो। सच्चिदानन्द का खेल भी बीच–बीच में चल रहा है। सबको ऑफिस जाना है, माँ जाने को कह रही हैं किन्तु किसी में भी मानो उठने की क्षमता नहीं है। कैसे अद्‌भुत आनन्द में सबके दिन कट रहे हैं। सभी कह रहे हैं–''ऑफिस तो सदा ही है, माँ को न मालूम कब पावेंगे। जितना कर सकें सत्संग कर लें।'' जो कभी भी साधु–सन्यासियों की ओर नहीं जाते थे वे भी आज माँ के दर्शन कर पागल हुए हैं। रात में लगभग 2 बजे सब लोग विदा हुए। आज जहाँ शामियाना टाँगकर कीर्तन हुआ है वहीं पर कल महिलाओं का कीर्तन होना निश्चित हुआ है।

* * *

छिहत्तरवाँ अध्याय

बरेली यात्रा

19 चैत्र, शुक्रवार– आज रात 10 बजे ट्रेन द्वारा माँ बरेली को रवाना होंगी, यह निश्चय हुआ है। प्रातःकाल पंचानन मुखोपाध्याय की स्त्री आई हैं। हम लोग जिनके मकान में ठहरे हैं उनका नाम भी पंचानन मुखोपाध्याय है। माँ ने इन दोनों में मित्रता स्थापित कर दी। पंचानन बाबू की लड़की बहुत सुन्दर गाती है। प्रायः रोज ही पंचानन बाबू सपरिवार आकर लड़की का गाना सुना जाते हैं। माँ ने उनकी स्त्री को 'माँ' नाम से पुकारा है। माँ सभी स्त्रियों को माँ कहकर पुकारती हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति न जाने कैसे इस सम्बन्ध को पकड़ लेता है। पंचानन बाबू की स्त्री ने पहले दिन आकर माँ को प्रणाम किया था; किन्तु जब माँ ने उन्हें 'माँ'–'माँ' कहकर पुकारा तब उन्होंने दौड़कर माँ को लिपटकर चुम्बन किया, बोली–''तुम तो मेरी लड़की हो, मैंने तुम्हारा नाम महामाया रखा है।'' इस घटना के बाद से फिर वह माँ को प्रणाम नहीं करती। कहती हैं– ''तुम तो मेरी लड़की हो, तुम्हें प्रणाम करने से तुम्हारा अकल्याण होगा। यशोदा तो कृष्ण को प्रणाम करती नहीं थी।'' यह कहकर माँ से लिपटकर पुनः–पुनः माँ का चुम्बन करती। हर एक व्यक्ति अलग–अलग भाव से मग्न हैं और सभी सोचते हैं कि माँ मुझको ही अधिक प्यार करती हैं। लगभग 12 बजे तक सभी माँ के निकट बैठे हैं। 12 बजे के बाद ही माँ उतरकर कमरे में गई। आज भी बहुत अधिक स्त्रियाँ कीर्तन में उपस्थित हुई हैं। बीच में मंच बनाया गया है। खूब सुन्दर कीर्तन हुआ। घूम–घूमकर आनन्द से महिलाएँ कीर्तन कर रही हैं। स्त्रियों के गले की सम्मिलित नाम–ध्वनि से चारों ओर का वातावरण मुखरित हो उठा है। 5 बजे तक नाम–कीर्तन चला। तदनन्तर कीर्तन बन्द हुआ। बहुत से लोगों ने आज माँ का फोटो उतारा। देखते–देखते ही साँझ हो आई। माँ आज चली जा रही हैं इसलिए सभी लोग विषण्ण–वदन होकर माँ के समीप बैठे हैं। सभी ने समझ लिया कि आज और माँ को रखना सम्भव न होगा।

जो लोग एकान्त में बातें करना चाहते हैं इसी के बीच में समय निकालकर माँ ने सभी की कामना पूरी की। रात को 9 बजे सब लोग माँ को साथ लेकर स्टेशन चले। पंचानन बाबू जिनके मकान में हम लोग ठहरे थे, रोने में ही व्याकुल हैं, स्टेशन नहीं गये। कह रहें हैं–''मैं माँ को लेने ही जाऊँगा, विदा करने नहीं।'' बहुत से लोग माँ के साथ-साथ स्टेशन आये हैं।

आज गाड़ी छूटने में कुछ विलम्ब हो रहा है। अनेक लोग कह रहे हैं, ''गाड़ी ने भी आज हम लोगों का दुःख देखकर दया की है।'' सबके हृदय की वेदना से गाड़ी छूटने में कुछ देरी होने पर भी गाड़ी छूटने का समय हुआ। प्रणाम कर सब लोग गाड़ी से उतरे। गाड़ी छूट गई। नरेन्द्र चौधरी अपने परिवार के साथ कुछ दूर जायेंगे इसलिए उन्होंने टिकट खरीदा है। वह अलीगढ़ तक गये। रात को 1 बजे हम लोग अलीगढ़ पहुँचे। वहाँ से गाड़ी बदलकर हम लोग बरेली को चले। नरेन्द्र बाबू सारी रात वहीं बिताकर प्रातःकाल की गाड़ी से दिल्ली को रवाना होंगे।

20 चैत्र, शनिवार– प्रातःकाल बरेली पहुँचे। महारतन महिलाओं के साथ स्टेशन से माँ को धर्मशाला में ले आयी। किसी को भी सही समाचार नहीं दिया क्योंकि भीड़ अधिक होने का अन्देशा था। किन्तु आश्चर्य है कि हम लोगों के पहुँचने के कुछ देर बाद ही एक वकील की स्त्री आ पहुँची। उन्हें देखकर महारतन ने कहा–''आपको कैसे खबर लगी कि माताजी आई हैं।'' उन्होंने जवाब दिया–''मैंने कल रात स्वप्न देखा है कि माँ आज बरेली पहुँचेंगी, इसीलिए मैं आई हूँ।'' इसी तरह और भी कई लोगों के स्वप्न का वृत्तान्त मैंने सुना कि उन्होंने माँ को स्वप्न में देखा है। यहाँ की लड़कियाँ बहुत सुन्दर कीर्तन करती हैं। बंगाली नहीं हैं, अन्यान्य देशीय महिलाएँ एकत्र होकर माँ के साथ बैठी।

माँ के द्वारा प्रश्नों के समाधान से अमेरिकन साहब को सन्तोष

फूलों की मालाओं से माँ को सजाया गया। तदनन्तर अपने आप ही तबला, करताल, हारमोनियम लेकर सब बैठ गई, सुन्दर कीर्तन हुआ। भोलानाथजी ने बीच में भावावेश में खूब नाच किया। माँ के धूप और फूलों से सबको आरती करने का आदेश देने पर मैं और यशपाल (महारतन)

की एक लड़की आरती करने लगी। माँ का प्रत्येक कार्य सर्वांग-सुन्दर होना चाहिये। लगभग डेढ़ बजे भोग बना। अपराह्न में फिर महिलाओं ने कीर्तन किया। सन्ध्या समय मोटर द्वारा माँ को घुमाने ले जाया गया। बहुत सुन्दर ढंग से सजाया हुआ एक बगीचा है। माँ के साथ हम 5-6 व्यक्ति वहाँ जाकर बहुत देर तक रहे, तदनन्तर माँ धर्मशाला को लौटी। अमेरिकन साहब साथ-ही-साथ हैं, उन्हें कई एक प्रश्न पूछने हैं, माँ के निकट विचार किया जायेगा। इसीलिए माँ फिर उन्हें और ज्योतिष दादा को साथ लेकर बाहर गई। रात में 10 बजे माँ लौटी। माँ की प्रतीक्षा में अनेक लोग बैठे थे। आकर माँ ने कहा-"यह साहब खूब आसन करते हैं, साधन भी अच्छा करते हैं।" यह माँ ने उनके प्रश्न सुनकर ही जाना है। यतीश गुहा ने अमेरिकन से पूछा-"आपके प्रश्नों क़ी मीमांसा हुई है न?" उन्होंने बड़े आनन्द के साथ कहा-"मुझे बहुत सुन्दर उत्तर मिले हैं, ऐसे सुन्दर उत्तर मुझे पहले कभी नहीं मिले।" रात को 11 बजे सब विदा हुए। यहाँ के बंगालियों में से किसी को भी मैंने नहीं देखा, अन्यान्य देशों के लोग ही माँ के पास आये।

काक्स बाजार में माँ जिस तम्बू में सोती थी वहाँ भक्तों द्वारा कीर्तन-गृह निर्माण की व्यवस्था

21 चैत्र, रविवार- प्रातःकाल महिलाओं ने कीर्तन किया। दिल्ली से कुछ बंगाली बाबू आकर यहाँ कीर्तन करेंगे यह निश्चय हुआ है। उनका टेलीग्राम आया कि कीर्तन का दल रविवार को भोर में यहाँ पहुँचेगा। भोलानाथजी को बड़ी खुशी हुई। आज अपराह्न में माँ को एक्जिक्यूटिव इन्जिनियर के बंगले पर ले गये। वहाँ भी माँ के साथ महिलाओं ने कीर्तन किया। वहाँ से महारतन माँ को अपने मकान पर ले गयी। रात में लगभग 9 बजे हम सब धर्मशाला में आ पहुँचे। निरन्तर ही महिलाएँ कीर्तन कर रही हैं। बंकिम बाबू का पत्र काक्स बाजार से आया है। उसमें लिखा है-"माँ वहाँ तम्बू में जिस जगह सोती थी वह जगह ईटों से पक्की कर दी गई है। सभी वहाँ जाते हैं, माँ का कीर्तन-गृह बनाने के लिए सब व्यस्त हैं।" उनकी चिट्ठी में माँ के अभाव में जो कार्य हुए हैं वही लिखा है। इसलिए चिट्ठी सुनते-सुनते हम लोगों के नेत्रों में भी आँसू आ गये।

22 चैत्र, सोमवार– प्रात:काल माँ के 17–18 भक्त स्त्री–पुरुष आ पहुँचे। यहाँ के लोगों ने उनका खूब आदर–सत्कार किया। धर्मशाला में एक कमरा सजाकर 12 बजे कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रात:काल यहाँ की महिलाओं ने एकत्र होकर अपना कीर्तन सुनाया। माँ सबके बीच घूम रही हैं, कभी बिछौने पर जाकर बैठ रही हैं। फैजाबाद से लक्ष्मीरानी और नानी के लड़के की बहू अपनी बहन के साथ माँ के दर्शनों के लिए आई हैं। महान् आनन्द का स्रोत बह रहा है। महारतन ने सबके भोजन का प्रबन्ध किया है। दोपहर होते–होते कीर्तन खूब जम उठा। कीर्तन–हॉल के पास के हॉल में महिलाओं को लेकर माँ भी कीर्तन करा रही हैं। एक नाम चला–"**श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।**"

दिल्ली से और अन्यान्य स्थानों से आगत भक्तों का बरेली धर्मशाला में कीर्तन

झमझम खूब कीर्तन चला। बहुत सुन्दर कीर्तन हुआ। धर्मशाला में लोगों की भीड़ का ठिकाना न रहा। जो आ रहे हैं नाम–कीर्तन में भाग ले रहे हैं। पुरुष जब भोजन के लिए गये तब उसी कमरे में माँ ने महिलाओं को लेकर कीर्तन किया। माँ सबके साथ घूम रही हैं; बीच–बीच में बायाँ हाथ उठाकर हिलती–डुलती चल रही हैं। नेत्रों का भाव क्या ही सुन्दर है। कभी–कभी एक–एक के गले लगकर ताल–ताल पर नाच रही हैं। कभी सबका हाथ पकड़कर गोलाकार नाच रही हैं। महिलाओं के कण्ठ की मधुर ध्वनि से धर्मशाला आनन्दमय हो उठी। फूलों की माला और चन्दन की लूट मची है। अपराह्न में भोलानाथजी कीर्तन में नाचने लगे। रात के आठ बजे तक इसी प्रकार कीर्तन चला। तद्नन्तर 'आनन्दमयी की जय', 'भोलानाथजी की जय' बोलकर कीर्तन समाप्त हुआ। दिल्ली वाले आज ही 10 बजे की गाड़ी से रवाना होंगे। समय हो चुका है किन्तु कोई भी माँ के निकट से उठ नहीं रहा है। जब वहाँ अधिक देर तक रहना सम्भव नहीं हुआ तब बाध्य होकर सब माँ को प्रणाम कर विदा हुए। आज रात को 10 बजे यतीश गुहा भी कलकत्ते को रवाना हुए।

23 चैत्र, मंगलवार– आज भी माँ के उठने के पहले ही महिलाओं ने आकर कीर्तन आरम्भ किया। माँ बरामदे में सोती हैं, हम लोग भी माँ की

शय्या के चारों ओर सोने की जगह बना लेते हैं। माँ प्रात:काल उठकर कमरे के भीतर जाकर सोई हैं, महिलाएँ आकर कीर्तन कर रही हैं। बहुत से फूल और मालाएँ माँ के ऊपर पड़ी हैं। फूल और मालाओं से माँ को प्रणाम कर सब लोग कीर्तन में भाग ले रहे हैं। माँ उठ बैठी। खूब जोरों से कीर्तन चला। लगभग 9 बजे कीर्तन समाप्त हुआ। माँ को उठाकर मुँह धुलाया गया। तदुपरान्त थोड़ा-सा दूध पीकर माँ फिर अपने छोटे से बिछौने पर जा बैठी। महिलाएँ नाच-नाचकर कीर्तन कर रही हैं। बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा था। सुन्दर-सुन्दर कश्मीरी, पंजाबी महिलाएँ खूब सजधज कर आई हैं। नाम के ताल-ताल पर नाच रही हैं। हाथ से करताल बजा रही हैं। कोई-कोई तबला बजा रही हैं। माँ ने बीच में छोटी लड़कियों को रखा, तदनन्तर बड़ी महिलायें घूम-घूमकर नाम कीर्तन कर रही हैं। वे जब नाच-नाचकर दोनों हाथों से करताल बजाकर नाम-कीर्तन कर रही थी, तब देखकर वास्तव में खूब आनन्द आ रहा था। कल के कीर्तन में यहाँ के बंगाली तथा अन्यान्य देशीय लोगों ने भी भाग लिया। सुनने में आया कि यहाँ भी कीर्तन के दल हैं। एक जगह एक वर्ष तक अखण्ड कीर्तन चला था। आस-पास के गाँवों के लोगों ने ही यह अखण्ड नाम-कीर्तन किया। उस कीर्तन के बाद ही यहाँ गाँव-गाँव में कीर्तन का प्रचलन हुआ है। कल कीर्तन के बाद माँ से यहाँ के भद्रपुरुषों में से कोई-कोई कह रहे थे-''माँ, आपका यह कीर्तन शहर में कीर्तन का प्रचलन करेगा।'' आज प्रात:काल महिलाओं ने फूलों के मुकुट तथा अन्यान्य गहनों से माँ को सजाया। माँ भी बच्चों की तरह हँस रही हैं। मुझे बुलाकर माँ ने दिखाया।

माँ की आकर्षणी शक्ति से सभी उनके पास रहना चाहते हैं

इस तरह खेल-खेल में लगभग 12 बजे गये। तब तक माँ के भोग की रसोई तैयार हो चुकी थी। माँ और भोलानाथजी को भोजन कराने के बाद बहुत से लोग प्रसाद पाने को बैठे। इस देश की महिलाएँ माँ के मुँह का प्रसाद खाने के लिए व्यग्र हैं। माँ को अब ये दूर-दूर नहीं रखती हैं, माँ के हाथ, पैर या पीठ लेकर सहलाने बैठ जाती हैं। सारांश यह है कि माँ के स्पर्श-सुख से भी अब ये वंचित रहना नहीं चाहती या रह नहीं सकती। पहले-पहल ये दूर बैठकर फूलों से पूजा, आरती या प्रणाम ये ही सब करती थी। स्पर्श करने का इन्हें साहस नहीं होता था, किन्तु माँ की

आकर्षणी शक्ति से अब वह दूरत्व हट गया है। 10–15 महिलाएँ माँ के हाथ पैर या शरीर दबाने बैठ गई। कोई भी अपनी–अपनी जगह छोड़ना नहीं चाहती है। एक अपूर्व आकर्षणी–शक्ति से सब दौड़ी आ रही हैं, उसे स्वयं भी सदा वे समझ नहीं रही हैं। इस आनन्द में सब मतवाले हुए हैं। भोलानाथजी के साथ सब छोटे–छोटे बच्चे व्यस्त हैं। वे भोलानाथजी को छोड़ना नहीं चाहते हैं। वह छोटे बच्चों को खूब प्यार करते हैं। भोजन के बाद माँ को एक कपड़े से ढककर मैंने कहा–''तुम अब थोड़ा विश्राम करो।'' माँ ने छोटे बच्चे के समान वैसा ही किया। सब भोलानाथजी के साथ सच्चिदानन्द खेल खेलने बैठे गये। किन्तु माँ के लेटी रहने के कारण खेल अधिक देर तक नहीं चला। माँ के लेटी रहने के कारण सब चुपचाप हो गये। आनन्द का स्रोत घट गया। किन्तु उसके बाद ही माँ उठ बैठी। फिर कीर्तन चला। बहुत लोग एकान्त में माँ के साथ बातें करेंगे। इसलिए माँ को बिहारी लाल के मकान में ले गये। वह इम्पीरियल बैंक के एजेन्ट हैं। रात में माँ लौटी। बंगालियों ने आकर माँ के समीप कीर्तन किया। रात में 12 बजे सब विदा हुए। नगेन्द्र बाबू आज दिल्ली वापस गये। माँ का साथ छोड़कर कोई भी नहीं जा सकता इसलिए जो रह सकते हैं वे रह जाते हैं।

24 चैत्र, बुधवार– आज भी प्रात:काल महिलाओं ने कीर्तन किया ''जय शिव–शंकर बं–बं हर–हर।'. कीर्तन के बाद बहुतों ने एकान्त में माँ के साथ बातें की। उसके बाद महारतन माँ को लेकर घूमने बाहर निकली। दोपहर में माँ को लेकर लौटी। बहुत वस्त्र खरीद लायी हैं और माँ को एक लाल सिल्क की साड़ी पहनाकर और सिल्क की चोली, रूमाल और लाल जूते आदि से सजा दिया गया है। माँ वह पौशाक दीक्षित के मकान में दिखलाने गई हैं। दीक्षित की स्त्री धर्मशाला में ही माँ के लिए भोग बना रही थी। माँ धर्मशाला में आकर सबको वह पौशाक दिखा रही हैं। एक बंगाली युवक माँ को देखकर बोल उठा–''माँ ने मानो आज मोहिनी का रूप धारण किया हो।'' सचमुच वह पौशाक माँ के रूप को अत्यधिक उज्ज्वल कर रही थी। सब ही सुन्दर। सब लोगों के मिलकर आनन्द करने के बाद माँ ने वह पोशाक छोड़ दी और लेट गयी। आज लक्ष्मी और दीक्षित (डिपुटी मजिस्ट्रेट) की स्त्री ने माँ के लिए भोग बनाया है। फैजाबाद से जो लोग आये हैं उन्होंने भी विविध तरकारियाँ बनाकर माँ को दी। माँ

का भोग हुआ। भोग के बाद माँ जाकर फिर चादर ओढ़कर लेटी रही। महिलाएँ सब बैठी हैं, माँ ने भोग के बाद ही लक्ष्मी से कहा–"लक्ष्मी, आज रसोई बनाने में तुम्हारा कोई अंग जल गया है क्या?" लक्ष्मी ने कहा–"नहीं माँ, किसी जगह जला तो नहीं है।" माँ ने कुछ नहीं कहा। माँ उठ बैठी, फिर आनन्द का स्रोत चला। माँ ने ज्योतिष दादा से कहा–"किसी की ट्रेन छूट गयी क्या?" ज्योतिष दादा ने कहा–"नहीं।" किन्तु दूसरे दिन सुना कि नरेन्द्र बाबू ट्रेन छूट जाने के कारण स्टेशन पर पड़े थे।

नाना प्रकार के अपूर्व वेशों से भक्तों का माँ के निकट कीर्तन और आरती

माँ को आज अपराह्न में द्वारकाप्रसाद वकील के मकान पर ले गये। वहाँ महिलाएँ कीर्तन करेंगी। बगीचे के अन्दर खूब बड़ी एक जगह घेरकर उसमें जगह की है। माँ को उन्होंने पीली रेशमी साड़ी पहनाई। फूलों के गहनों से सजाया। माँ हँसते हुए हिन्दी में कह रही हैं–"वर को तो सजाया पर वधू कहाँ है?" माँ के इस कथन से महिलाएँ हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगी। बहुत-सी महिलाएँ आज पीले रंग की साड़ी पहनी हैं। माँ यह देखकर बोली–"तुम लोगों का पहले से ही ठीक-ठाक था क्या?" माँ को और भोलानाथजी को बैठाकर फोटो लिया गया। बाद में हम लोगों के साथ एक ग्रुप फोटो लिया गया। तदनन्तर माँ को बैठाकर महिलाएँ घुँघरू पहनकर एक-एक करके नाचने लगी। साथ-साथ गाना हुआ। डिपुटी बाबू की स्त्री मिसेज दीक्षित भी पीली साड़ी और घुँघरू पहनकर नाच रही हैं। गाने का भाव यह है कि "हे भगवान्! मेरी विनती सुनिये। मैं संसार में डूब रही हूँ। हे दीनदयाल! आपकी जैसी इच्छा हो कीजिये।" ऐसे सुन्दर भाव से माँ को लक्ष्य कर माँ की ओर हाथ जोड़ प्रणाम कर इस गान के साथ-साथ उन्होंने नृत्य किया, बड़ा ही मधुर लगा। नाच के बाद माँ को प्रणाम कर कीर्तन शुरू हुआ। पीली साड़ी पहनी हुई महिलाएँ माँ को बीच में रखकर घूम-घूमकर कीर्तन करने लगी। नाम-कीर्तन के साथ-साथ वे नाच रही हैं। चक्राकार में सब घूम रही हैं। कभी हाथ पकड़कर, कभी ताली बजाकर नाच रही हैं-सभी एक साथ इसी तरह नाच रही हैं। अन्यान्य बैठे-बैठे नाम-कीर्तन में योग दे रही थी। सन्ध्या हो आई है- माँ भी बीच-बीच में किसी के गले लग, किसी का हाथ पकड़कर नाच रही हैं और थोड़ा-थोड़ा स्वयं भी नाच रही हैं। सुन्दर पौशाक पहनी हैं, गले में

माला, ललाट पर चन्दन है-माँ स्वयं उपस्थित हैं; कीर्तन में विविध नामों का कीर्तन हो रहा है-कभी ''जय गुरु, जय माँ; जय गुरु, जय माँ।'' कभी ''गोपाल जय जय, गोविन्द जय जय, राधा रमण हरि गोविन्द जय जय।'' कभी ''रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम'', कभी ''हरे कृष्ण हरे राम, सीता-राम जय, राधे श्याम।'' इस तरह से नाम- कीर्तन की ध्वनि उठकर आकाश और वायु-मण्डल सबको पवित्र कर रही है। प्रकृति रानी भी मानो मुग्ध होकर यह सब देख रही थी और सुन रही थी। कीर्तन के बाद माँ और भोलानाथजी को बैठाकर आरती उतारी गयी। साथ-साथ महिलाएँ आरती गाने लगी। देवी की आरती का गाना था-जिसका भावार्थ यह है-''माँ तारा, तुम्हारा पार कोई नहीं पाता। चारों वेद, ब्रह्मा, विष्णु सब तुम्हारा ही नाम-कीर्तन करते हैं; किन्तु पार नहीं पा रहे हैं''-इत्यादि। आरती के बाद फलों का भोग लगा। माँ को आज बंगाली लोग अपने कीर्तन में ले जाने वाले हैं, मोटर खड़ी है। उसी समय माँ को मोटर द्वारा ले गये।

हम लोग माँ के साथ बंगालियों के कीर्तन में गये। वहाँ सब लोग माँ को अपने बीच पाकर बड़े प्रसन्न हुए। जिन्होंने पहले माँ के दर्शन नहीं किये थे, उन्होंने आज दर्शन किये। बंगाली-महाल में यहाँ माँ विशेष परिचित नहीं हैं। केवल एक प्रोफेसर दासगुप्त की स्त्री ने गत बार माँ के दर्शन किये हैं, वह इस बार भी आई हैं। पहले-पहले थोड़ी देर भद्रता से चुपचाप रही। आज द्वारकाप्रसाद के मकान पर कीर्तन के बाद माँ से लिपटकर कह रही हैं-''माँ, कल फिर आऊँगी, तुम्हें अपने मकान पर ले जाऊँगी। तुम्हारे बिना घर में रह नहीं सकती हूँ।'' मैं हँसकर बोली-''कई दिनों तक तो अधिक भद्रता से चुपचाप दूर-दूर ही रही, आज मालूम होता है माँ की आकर्षणी शक्ति से लिपट पड़ी।'' वह भी हँसने लगी।ह्न

रात में लगभग 11 बजे तक कीर्तन हुआ। तदनन्तर माँ को फलों का भोग लगाया गया। एक लड़का कह रहा है-''माँ, ये सब खाने होंगे।'' माँ ने कहा-''अच्छा, तुम सब आओ सब खा डालती हूँ-एक भी थाली में बाकी नहीं रहेगा।'' सब लड़के माँ को घेरकर बैठे। मुझसे हाथों-हाथ सब देने को कहा। थाली खाली हो गयी। माँ हँसकर बोली-''देखो थाली में और नहीं है। मैंने सब खा डाले हैं।'' इस बात पर सब हँस पड़े। माँ रात में 12 बजे धर्मशाला में लौटी। महारतन स्त्रियों को लेकर घर लौटी।

लक्ष्मी और फैजाबाद से उनके साथ जो आये हैं, वे माँ के निकट ही सो गए। सबको मानो माँ ने पागल बना दिया है। इस देश की एक महिला कहती थी–''मकान में रह नहीं सकती हूँ। देखिये मेरा लड़का सख्त बीमार है। डॉक्टर ने उसे देखने को आकर मुझे मकान में न पाकर आश्चर्य प्रकट किया कि ऐसे बीमार लड़के को छोड़कर इसकी माँ कहाँ गई हैं। कभी मुझे इस तरह जाते नहीं देखा। उन्होंने नौकरों से पूछा, वे भी मेरा कुछ पता नहीं दे सके क्योंकि मैं किसी से कुछ कहे बिना ही धर्मशाला में चली आई हूँ। लड़कियों से यदि यह कहती हूँ कि तुममें से कोई एक रहो तो वे भी रोने लग जाती हैं। माँ की अद्‌भुत शक्ति बालक-बूढ़े किसी को भी घर में नहीं रहने दे रही है।'' इस तरह विविध लोग विविध बातें कहने लगे।

यशपाल ज्योतिष दादा से कहते थे–''शहर में तो माँ के विरुद्ध विविध बातें हुई हैं।'' ज्योतिष दादा ने कहा–''कैसी बातें?'' उन्होंने कहा–''मैं आज डिपुटी साहब के मकान पर गया था। डिपुटी साहब कहते थे– ''देखिये तो कैसी विपत्ति आई है; ऑफिस से घर आया हूँ, देखता हूँ कि स्त्री घर पर नहीं है। सुना है माताजी के समीप धर्मशाला में चली गई है। माताजी के आने के बाद से घर-घर में यही शिकायत है।'' इस तरह माँ की लीला चल रही है।

25 **चैत्र, बृहस्पतिवार**– माँ प्रातःकाल उठी हैं। बहुत से लोगों ने एकान्त में वार्तालाप किया। भजन-कीर्तन हुआ। माँ की आरती उतारी गई। तदनन्तर सब लोग माँ को साथ लेकर बैठे हैं, बातें हो रही हैं। फिर 'सच्चिदानन्द खेल' में बैठे। हार-जीत के साथ नाम-कीर्तन और जप चला। लगभग दो बजे माँ का भोजन हुआ। भोजन के बाद माँ जाकर लेट गई। सब लोग बड़ी प्रसन्नता से प्रसाद पाने बैठ गये। किसी के भी कहने सुनने की जरूरत नहीं है, जिसकी इच्छा है प्रसाद पाने बैठ जाता है। माँ लेटी हैं। कोई-कोई इस अवसर पर जल्दी-जल्दी खाने-पीने के लिए अपने-अपने घर चले गये जिससे माँ के लेटे रहते ही लौट आ सकें। कोई-कोई घर जाने को ही राजी नहीं हैं।

माँ की दूरदृष्टि

यहीं पर जो कुछ था, खाकर माँ के निकट जा बैठे हैं। आज प्रातःकाल

ही लक्ष्मी माँ के पास आकार कह रही है–''माँ, कल मेरी एक अंगुली जल गई थी, कल कुछ मालूम नहीं पड़ा। इसीलिए आपने पूछा था, मैंने कह दिया था कुछ जला नहीं। किन्तु आज देखती हूँ कि अंगुली में फफोला हो गया है।'' आज भी अपराह्न में प्रोफेसर दासगुप्त के मकान पर माँ को ले गये। वहाँ से इस देश के एक भद्र–पुरुष के मकान पर महिलाओं के कीर्तन में ले गये। वहाँ भी माँ को मोरपंख, फूलों की माला आदि से श्रीकृष्ण के रूप में सजाया। रात में लगभग 9 बजे तक कीर्तन चला।

तदुपरान्त महारतन के मकान पर माँ को ले गये। वहाँ यहाँ की बेगम साहिबा माँ से एकान्त में भेंट करेंगी। मैं साथ गई। माँ के वहाँ पहुँचने के बाद ही बेगम साहिबा आई, साथ में और भी दो स्त्रियाँ थी। एक नाच–गाना करती है। माँ की बात बेगम साहिबा ने महारतन से सुनी थी। सिविल लाइन में ही नवाब का मकान है; माँ के साथ रात के 12 बजे तक बेगम साहिबा की बातें हुई। अपने घर–गृहस्थी का दु:ख उन्होंने माँ से कहा। फिर साधन–भजन की बात भी कही। बेगम साहिबा खूब शुद्धता से रहती हैं। रात को बारह बजे माँ धर्मशाला में लौटी। खाना–पीना कुछ हुआ नहीं, रात में डेढ़ बजे हम सो गये।

26 चैत्र, शुक्रवार– प्रात:काल एक डिपुटी की स्त्री माँ को गंगाजी ले जाने के लिए आई। साथ में बहुत–सी स्त्रियाँ आई हैं। माँ को साथ लेकर नौका से घूमेंगी। लगभग साढ़े छ: बजे हम सब गंगाजी चले। मोटर में कीर्तन चल रहा है। महिलायें गाना गा रही हैं, गाने का भाव यह है–''माँ, हमने तुम्हारी शरण ली है, तुम हमारा उद्धार करना।'' फिर दूसरा गाना आरम्भ हुआ, उसका आशय यह है–''सब माँ का चिन्तन करो, माँ का नाम लो, माँ के नाम–कीर्तन के बिना कृष्ण नहीं मिल सकेंगे'' इत्यादि। लगभग साढ़े नौ बजे तक नाव में कीर्तन हुआ। तदनन्तर माँ को एक दूसरे मकान में ले गये। वहाँ से एक मन्दिर और बेगम साहिबा की कोठी पर होकर माँ धर्मशाला लौटी। कल नैनीताल को प्रस्थान करने का विचार है। लगभग डेढ़ बजे माँ लौटी। खाना–पीना वहाँ कुछ भी नहीं किया। बहुत से लोग आये हैं, माँ सबसे बैठकर बातें कर रही हैं। सब लोग मुग्ध होकर जितना हो सकता है उतना शरीर के निकट जाकर बैठ रही हैं। इन कई दिनों तक गृहस्थ परिवार भी घर से विशेष सम्पर्क नहीं रख रहे हैं। सभी

के चेहरों पर मानो एक शुष्क भाव टपक रहा है। किसी-किसी के सिर में तेल नहीं है, कंघी फेरने का भी समय नहीं है। खाने-पीने और विश्राम करने का कोई नियम नहीं, सब कुछ अनियमित चल रहा है। फिर भी सब आनन्द में विभोर हैं। प्रतिदिन ही लगभग 2-1 मकानों में कीर्तन चल रहा है। सभी वहाँ एकत्र हो रहे हैं। बायाँ तबला, करताल (पंजाबी महिलायें कीर्तन के समय बजाती हैं) लेकर सब महिलायें कीर्तन में बैठ गई। माँ के बैठने का स्थान भी खूब सजाकर रखते हैं।

भक्तों के साथ गंगाजी में नाव से भ्रमण और कीर्तन

हर एक अपने घर पर कीर्तन में माँ को ले जाने की प्रार्थना कर रहा है, किन्तु समयाभाव से सबकी प्रार्थना पूर्ण करना असम्भव है। आज भी पुनः गंगा में माँ को दलबल के साथ घूमने ले जाने के लिए इम्पीरियल बैंक के ऐजण्ट बिहारीलाल आये हैं। 4-5 मोटर भरकर गंगाजी गये। नौका भ्रमण हुआ। बहुत-सी महिलाएँ और भद्रपुरुष साथ हैं। कीर्तनादि हुआ। माँ को फूलों की मालाओं से सजाकर फिर सबने वे प्रसादी मालाएँ अपने में बाँट ली। बिहारीलाल ने कुछ जलपान का भी प्रबन्ध किया था। मशीन में बरफ और दूध मिलाकर कुल्फी तैयार होने लगी। सन्ध्या के बाद गंगाजी से जमींदार मिहिर प्रसाद के मकान पर माँ को ले गये। वहाँ भी महिलायें कीर्तन करने वाली हैं। खुब-सुन्दर रीति से कीर्तन का स्थान सजाया हुआ है। महिलाओं ने खूब कीर्तन किया। आज भी फूलों की मालाओं से माँ को श्रीकृष्ण के रूप में सजाकर माँ के चारों ओर नाच-नाचकर लगभग 20-25 कुमारी कन्याएँ कीर्तन करने लगी। बड़ी महिलाएँ बाजे लेकर एक ओर बैठी हैं। महिलाएँ माँ से कह रही हैं-''माँ, उठ आओ। तुम हमारे कृष्ण हो, हम सब तुम्हारी गोपियाँ हैं।'' एक दिन उन्होंने इस प्रकार माँ को उठाकर गोपियाँ बन माँ के चारों ओर घूम-घूमकर कीर्तन किया है।

आज फिर माँ नहीं उठी। तब वे माँ के चारों ओर ऐसे सुन्दर ढंग से- कभी चक्राकार हो, कभी अर्द्धचक्राकार में चलते-चलते खड़े होकर, और भी कितने ही प्रकार से घूम-घूमकर माँ की प्रदक्षिणा करती हुई- कीर्तन करने लगी; फिर एक ही प्रकार से सब घूमते-घूमते माँ के चरणों के समीप आकर खड़ी हो रही हैं, कभी एक ही ढंग से सब एक ही

समय में प्रणाम कर रही हैं। माँ को उठा लाने के लिए फिर उनकी व्यग्रता नहीं है। वे मानो उतने समय के लिए एक ही प्रकार से मतवाली हुई हैं। अत्यन्त प्रकाश से स्थान सजाया गया है, उसमें यह लीला देखने पर साधारणत: सभी को वृन्दावन की कथा का स्मरण हो आया। मुझे तो वृन्दावन का वृत्तान्त खूब ही याद आया। ऐसा सुन्दर दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखा। क्या ही अद्भुत भाव है? इन देशीय महिलाओं में भी कैसा एक स्वतंत्र भाव है। संकोच का लेश-मात्र भी नहीं है। आज भी सब महिलाएँ कीर्तन के ताल-ताल पर गोलाकार हो हाथ पकड़-पकड़कर नाच रही हैं। वे रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने हैं। उस प्रकाश में वे बड़ी सुन्दर दिखाई दे रही थी। रात को लगभग 10 बजे माँ धर्मशाला में लौटी। बिहारीपुर से आये बंगालियों ने धर्मशाला में आकर माँ के समीप कीर्तन आरम्भ किया है।

माँ आज 12 बजे की गाड़ी से चली जाने वाली हैं इसलिए सभी उपस्थित हुए हैं। बहुतों के नेत्रों से जल गिर रहा है। लक्ष्मी रानी भी आज देहरादून चली जा रही हैं। रात के लगभग 10 बजे रवाना होने का समय हुआ। माँ एकाएक महिलाओं को साथ लेकर कीर्तन के कमरे से दूसरे कमरे में आ बैठी । दो साड़ियाँ, फूल-मालाएँ और मिठाई माँ के आदेशानुसार मँगाई गई। माँ ने मेरे और लक्ष्मी के द्वारा महारतन और बिहारीलाल की स्त्री को वे साड़ियाँ, मालाएँ और मिठाई दिलाई। तदनन्तर उनसे कहा-''तुममें आज बहिन का सम्बन्ध स्थापित होगा।'' यह कहकर दोनों से कहा-''तुम दोनों साड़ी बदलो, माला बदलो और मिठाई भी आपस में एक-दूसरी को खिला दो।'' तदनन्तर माँ ने कहा-''अब आलिंगन करो।'' माँ जैसा कह रही हैं वैसा ही वे कर रही हैं। अब माँ ने कहा-''महारतन का नाम भी मैंने ही महारतन रखा था, तुम्हारा नाम प्रेमरतन रखती हूँ।''

बरेली से नैनीताल-यात्रा, धनी परिवार की स्त्रियों का व्याकुल भाव से गाड़ी के साथ-साथ दौड़ना

तब महारतन और प्रेमरतन ने मिलकर माँ के चरणों में प्रणाम किया। माँ ने कहा-''तुम दोनों आज से धर्म की बहनें हुई। 'उस ओर' जाने के लिए तुम दोनों आपस में एक-दूसरे की सहायता करो।'' सबको मालाएँ और मिठाई बाँटी गई। सबने महान् आनन्द से तालियाँ बजाई। यह खेल

समाप्त होते ही जाने की पुकार पड़ी। 4-5 मोटरें भरकर सब लोग स्टेशन पर चले। 11 बजे लक्ष्मी चली गई, साथ में सपरिवार शेरसिंह भी गये। शेरसिंह (चौधरी साहब) परिवार के साथ माँ के दर्शनों के लिए देहरादून से आये थे। बहुत से लोग रो रहे हैं, कोई-कोई माँ के साथ विविध वार्तालाप कर रहे हैं। बंगाली लोग पुनः-पुनः माँ और भोलानाथजी के जय-जय-कार से स्टेशन को गुँजा रहे हैं। बिहारी बाबू की स्त्री माँ के लिए नया बिस्तर ले आई है। उन्होंने स्वयं ही उसे गाड़ी में बिछा दिया। ट्रेन के छूटने में कुछ देरी हो रही है, रात को लगभग 1 बजे गाड़ी छूटी। महिलाएँ रोते-रोते अधीर हो उठी। इन कुछ दिनों में उनके चेहरों पर बहुत अधिक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। भोग-विलास के चिह्न प्रायः लुप्त हो गये हैं, दिन-रात एक प्रकार के नशे में कट रहे हैं। आज वह आनन्द की खान चली जा रही है, इसलिए सबका हृदय रो उठा है। बंगाली लोगों ने कहा-"माँ हम अगले शनिवार को आपके समीप आकर कीर्तन कर आवेंगे।" गाड़ी छूट गई। कई स्त्रियाँ और लड़के बहुत दूर तक गाड़ी के साथ-साथ दौड़ते गये। हम सब निषेध कर रहे थे किन्तु कोई सुन नहीं रहा है; एक दूसरे से कह रहा है-"दौड़ते चलो।" जी-जान से भाग रहे हैं-किसकी आशा में? माँ को उस समय वे देख भी नहीं पा रहे हैं। दौड़कर दर्शन करेंगे, यह आशा भी नहीं है। फिर भी पागल की तरह दौड़ रहे हैं।

इस गाड़ी में माँ बैठी हैं, जितनी दूर जा सकेंगे गाड़ी के साथ-साथ जायेंगे, यही उनके हृदय की बात है। क्या सुन्दर प्रेम है! इसकी तुलना नहीं है। छोटी अवस्था की लड़कियाँ बड़े घर की महिलाएँ-सदा भोग-विलास में पली हैं परन्तु आज रात में 1 बजे ट्रेन के साथ-साथ नेत्रों से जल बहाती हुई दौड़ रही हैं। किसके आकर्षण से दौड़ रही हैं? जिन्होंने इतने स्वल्प काल में इन बालिकाओं के हृदय में इस स्वर्गीय प्रेम का आभास विकसित किया है, उनके चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम है। केवल प्रणामों से भी हृदय का भाव कुछ व्यक्त नहीं होगा। किस तरह से यह होगा, वाणी से उसका प्रकाश नहीं किया जा सकता। मालूम होता है धारण भी नहीं की जा सकती। धीरे-धीरे महिलाएँ पीछे पड़ने लगी। गाड़ी भाग चली। रात्रि के गहन अन्धकार में वे विलीन हो गई। मेरे भी हृदय के अन्तःस्तल को आलोड़ित कर गई।

सतहत्तरवाँ अध्याय

नैनीताल आगमन

27 चैत्र, शनिवार– भोर में 6 बजे हम लोग काठगोदाम पहुँचे। वहाँ से मोटर द्वारा नैनीताल जाना पड़ता है। लगभग डेढ़ या दो घण्टे का रास्ता है। हम लोग आठ या साढ़े आठ बजे नैनीताल पहुँचे। दिल्ली के चिन्तामणि पन्त के भाई यहाँ तहसीलदार हैं। वह तथा और भी कई लोग मोटर के निकट खड़े थे। माँ को रिक्शा से धर्मशाला में ले जाया गया। धर्मशाला मोटर अड्डे से लगभग एक मील के फासले पर है। मोटर से उतरते ही सामने तल्ली–ताल पर दृष्टि पड़ी–एक मील की झील है। उस ऊँचे पहाड़ के ऊपर ऐसा सुन्दर जलाशय देखकर बड़ा आनन्द हुआ। चारों ओर पर्वत–मालाएँ आकाश को स्पर्श कर रही हैं। पहाड़ के अंग–प्रत्यंग में (हर एक जगह) मकान, कोठियाँ खूब सजाई हैं। तल्लीताल ने चारों ओर शोभावृद्धि कर रखी है। माँ और मैं एक रिक्शे से गई। माँ कहने लगी–''जब मैं गत बार यहाँ आई थी तब यह और भी अधिक जलपूर्ण था, इसलिए और अधिक सुन्दर दिखता था। हम लोग **नयना देवी** से सटी हुई धर्मशाला में आये। पहले भी माँ यहीं रही हैं। माँ के पहुँचते ही पुजारी, नौकर, चौकीदार सबने माँ को फूल चढ़ाये, प्रणाम किया एवं माँ ने आनन्द प्रकट किया। बादल छाये हुए थे। तल्लीताल के ऊपर ही यह धर्मशाला है। इधर तल्लीताल है और उधर थोड़ा मैदान है। वहाँ समतल भूमि बरफ के तुल्य ठण्डी है। माँ आकर लेट गयी। रसोई का प्रबन्ध करते–करते बहुत देर हो गई। लगभग 2 बजे माँ का भोग लगा। पहाड़ी महिलाएँ आने लगी। अपराह्न में माँ के साथ हम लोग थोड़ा घूमने बाहर निकले। रात्रि में भी दल–के–दल लोग आ रहे हैं और कुछ देर रहकर प्रणाम कर विदा हो रहे हैं। फिर दूसरा दल आ रहा है। इस तरह रात के नौ बज गये। यहाँ के एक भद्रपुरुष देवीदत्त हैं। यह कुंवारे हैं। शुद्धतापूर्वक रहते हुए साधन–भजन कर रहे हैं, साधन–भजन में प्रेम है। यह ही हमारा सारा प्रबन्ध कर रहे हैं। माँ के साथ इनका बहुत पहले का परिचय है। एक बार देहरादून से माँ ज्योतिष

दादा, हरिराम आदि को लेकर थोड़े समय के लिए अलमोड़ा होते हुए यहाँ आई थी। तभी देवीदत्त के साथ भेंट हुई है। तदुपरान्त ऋषिकेश में माँ के साथ भेंट हुई है। माँ के बड़े भक्त हैं। माँ की जितनी सेवा कर सकते हैं, उसके लिए इनका विशेष आग्रह है। आज रात को लगभग 10 बजते ही हम लोग सो गये। किन्तु यह असमय है, यह सभी सोच रहे थे।

28 चैत्र, रविवार– माँ सवेरे उठकर ज्योतिष दादा के साथ थोड़ा बाहर निकलकर तल्लीताल के किनारे एक बेंच पर जा बैठी। सवेरे के समय जरा धूप निकली है। थोड़ी देर बाद ही माँ कमरे में आ बैठी। कई दिनों से माँ को सर्दी लगी है। साधारण थोड़ा-सा खाकर लेट गई। दल-के-दल स्त्री-पुरुष आ रहे हैं। हम लोग 'सच्चिदानन्द खेल' खेलने बैठे, महिलाओं को खूब आनन्द प्राप्त हुआ। एक लड़की आई, उसका नाम मोहिनी है; सब उसे मुन्नी कहते हैं-इसी देश की लड़की है, विधवा है, मातृ-पितृहीन है, कोई भी नहीं है। देवीदत्त ही इस लड़की की देख-रेख करते हैं और लड़की की एक चचेरी बहिन है, उसी के साथ वह रहती है। माँ के आदेशानुसार गत बार से ही मौन है और पूजा-पाठ कर रही है। लड़की के मन में खूब प्रसन्नता है, सदा ही हँसती है। हँसने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो सारे शरीर से ही हँस रही है। उसे खेल में बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। मैंने ही उसे खेल सिखाया है, इसीलिए मुझे 'गुरु-गुरु' कह रही है। वास्तविक बात यह है कि खेल में मैं ही हार रही हूँ, वही बार-बार जीत रही है। इस बात को लेकर खूब हँसी हुई। हँसकर माँ ने कहा-"शिष्या ऐसी शक्तिशालिनी है कि उसने गुरु की सारी विद्या हर ली।" पुरुषों का दल आते ही महिलाओं का खेल बन्द हो गया। माँ ने पुरुषों से खेल खेलने को कहा। अमेरिकन साहब बरेली से अलमोड़ा चले गये थे, आज फिर यहाँ आ पहुँचे हैं। उन्हें भी इस खेल में भाग लेना पड़ा। देखते-देखते दिन छिप गया। जाड़े का भी खूब जोर रहा। माँ के साथ सब थोड़ा घूमने बाहर निकले। लौटकर आते ही दल-के-दल लोग माँ के समीप कीर्तन करने आये। रात को लगभग 10 बजे विदा हुए।

आत्मा–आत्मा में तो बन्धन है ही, दीक्षा देकर नया बन्धन क्या करूँ

29 चैत्र, सोमवार– आज माँ कुछ देर में उठी हैं। थोड़ा दूध पीकर बाहर घूमने निकली। लौटकर आने पर भोग लगा। माँ थोड़ा विश्राम करने

लगी। एक दिन बातचीत के सिलसिले में एक आदमी ने पूछा था–"माँ दीक्षा क्यों नहीं देती?" माँ के समीप यह चर्चा छेड़ते ही माँ ने कहा–"देखो, गुरु शिष्य सम्बन्ध भी एक प्रकार का बन्धन है, यह सत्य है किन्तु इस शरीर का वह सब इस तरह होता नहीं। **आत्मा–आत्मा में सबके साथ बन्धन है ही–फिर नया बन्धन क्या करूँ?**" आज भोजन के अनन्तर कह रही हैं–"आज मैं देख रही थी कि एक आदमी का देहान्त हो गया है"–कहकर एक आदमी का नाम लिया। फिर बोली–"कितने समय कितने लोगों के क्या–क्या देखती हूँ, कितनी ओर क्या–क्या हो जाता है।" मैंने कहा–"जैसे कभी–कभी किसी व्यक्ति के विषय में देखा गया स्वप्न दूसरे पर घट जाता है, तुम्हारा भी वैसा ही होता है क्या? तुम एक व्यक्ति की बात कहती हो, पर दूसरे व्यक्ति का होता देखती हूँ।" माँ हँसते हुए बोली–"जो देखती हूँ ठीक ही देखती हूँ, कहते समय बहुधा दूसरे ढंग से कहा जाता है; इसीलिए तुम ठीक तरह से समझ नहीं पाती हो।" माँ कभी–कभी लोगों की भीड़ में लेट जाती हैं; पहले से कह रखती हैं कि मुझे एक घण्टे या आधा घण्टे में उठा देना–यह कहकर चादर तान लेती हैं। ठीक एक घण्टे के बाद माँ ही उठ जाती हैं या पास में बैठे दूसरे लोग माँ को उठा देते हैं। माँ आज भी उठ बैठी। कुछ देर तक सच्चिदानन्द खेल चला। उसके बाद माँ को लेकर हम लोग नौका–भ्रमण के लिए बाहर निकले। तल्लीताल एक मील लम्बा है और आधा मील चौड़ा। उसमें लगभग एक घण्टा नौका से भ्रमण हुआ। आज अधिक धूप निकली है। नाव से उतरकर माँ फिर सड़क पर घूमती रही। सन्ध्या से पहले धर्मशाला में लौटी। अमेरिकन साहब साथ–साथ हैं, वह कल देहरादून जाने वाले हैं। और भी बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिए आये हैं। बंगाली केवल एक लड़का आया है। यहाँ बंगाली नहीं के बराबर हैं। माँ के इस बंगाली दल को पाकर लड़के को बड़ी खुशी हुई। माँ 2–1 आदमियों से कह रही हैं–"**तुम लोग भी तो नौकरी करते हो, प्रतिदिन अपनी–अपनी ड्यूटी पूरी करते हो, समय पर पेन्शन पाओगे। उसी तरह 'उधर' का कार्य भी नित्य नियमित रूप से करते रहने पर पेन्शन मिलती है, वह पेन्शन कभी समाप्त नहीं होती। यह पेन्शन तो जितने दिन जीओगे उतने ही दिनों तक मिलेगी–**" इत्यादि। साधारण बातचीत में माँ सुन्दर–सुन्दर उपदेश देती हैं। पहाड़ी स्त्रियाँ मन्दिर में दर्शन करने आकर प्रायः सब माँ के भी दर्शन कर जाती हैं और कपूर आदि से आरती करती हैं,

साथ-साथ सुन्दर गीत गाती हैं। उनकी कोई बातचीत नहीं है- आरती उतार, फूल और मिठाई चढ़ाकर एवं प्रणाम कर विदा लेती हैं। पहाड़ियों ने कीर्तन किया। शीत अधिक होने के कारण 9 बजे ही वे सब विदा हुए। देवीदत्तजी हमारी सब आवश्यकताएँ पूर्ण कर रात में लगभग 10 बजे विदा हुए।

अमेरिकन साहब को स्वदेश लौटते समय माँ का उपदेश-"तुम्हें एक अखण्ड की चिन्ता में एक ही भाव से संलग्न देखना चाहती हूँ"

30 चैत्र, मंगलवार- आज भी माँ कुछ विलम्ब से उठी। उठकर थोड़ा घूमने बाहर निकली। अमेरिकन साहब आज देहरादून जा रहे हैं, माँ को वह एक घड़ी दे गये हैं। ज्योतिष दादा ने माँ के शरीर का एक जम्पर उन्हें दिया, उन्होंने भी बड़ी खुशी के साथ उसे ले लिया। वह अमेरिका जा रहे हैं। एक वर्ष के बाद कारोबार की सब झंझट मिटाकर माँ के निकट लौट आऊँगा, कह गये हैं। घड़ी माँ को देने पर माँ ने कहा-**"घड़ी जैसे इस तरह टिक-टिक करके अपने आप चली जा रही है मैं तुम्हें भी उसी तरह उस एक अखण्ड के चिन्तन में एक ही भाव से लगे रहते देखना चाहती हूँ, जिससे बाहरी कोलाहल उस चिन्तन में विघ्न-बाधा न डाल सके।"** माँ की इस बात से साहब ने बहुत प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर माँ के आशीर्वाद की प्रार्थना की। भोजनोपरान्त माँ ने थोड़ा-सा विश्राम किया। पहाड़ी स्त्री-पुरुषों ने आकर कमरे को भर दिया। माँ उठ बैठी। कुछ देर तक 'सच्चिदानन्द खेल' चला। तदुपरान्त माँ को सब लोग विशेष अनुरोध कर सिनेमा दिखाने ले गये। वहाँ से माँ को पहले ही निमन्त्रण आया था अब लेने आये थे। माँ का किसी में आग्रह-निग्रह नहीं है-माँ का तो हमारे ऊपर एक-सा भाव है। माँ ने कहा-"आज टाकी में 'प्रभु की प्यारी' खेल चल रहा है"। रात के लगभग 8 बजे हम लोग लौटे। धर्मशाला के समीप ही सिनेमा हो रहा था। लौटकर माँ को थोड़ा दूध पिला दिया गया। रात में लगभग 10 बजे सब सो गये। यहाँ पुलिस के डिपुटी-सुपरिन्टेन्डेन्ट माँ से भेंट करने आज दो-तीन दिनों से आ रहे हैं। सभी माँ के दर्शनों से अत्यन्त आनन्दित हैं।

* * *

अठहत्तरवाँ अध्याय

1 वैशाख, 1344 बंगाब्द, बुधवार– माँ जरा तड़के उठकर टहलने के लिए बाहर निकली। कुछ देर में लौटी। थोड़ा दूध पिला देने के बाद माँ तल्लीताल की तरफ के कमरे में बैठी हैं। उपस्थित 2-4 लोगों के साथ बातें कर रही हैं। लगभग 10 बजे के समय कह रही हैं ''अब लेटूँगी।'' भोजन के बाद विश्राम करें, ऐसा अनुरोध करने पर माँ कहती हैं कि खाने की इच्छा नहीं है। अन्त में हम लोगों के अनुरोध से बैठी ही रही, सोयी नहीं, भोजनोपरान्त सो गयी। लगभग 4 बजे उठी। समागत सबके साथ वार्तालाप करने लगी।

धूप नियमित निकल रही है इसलिए आज 2-3 दिनों से शीत भी कम हो गया है। एक डिपुटी मजिस्ट्रेट अपने परिवार के साथ आये हैं। इनके साथ बरेली में माँ की भेंट हुई थी। डिपुटी बाबू की स्त्री माँ के लिए कच्चे केले और केले के फूल लाई हैं। कह रही हैं, ''मेरी इस तुच्छ भेंट को माँ के भोग में दीजियेगा। सुदामा के साधारण तण्डुल हैं।'' यह कह हाथ जोड़कर कितना विनय भाव दर्शा रही हैं। मैंने बड़े आनन्द से उनकी भेंट स्वीकार की। मैंने कहा- ''प्रेम की वस्तु कभी तुच्छ नहीं हो सकती।'' आज भी रात के लगभग 10 बजे हम बिस्तर पर जा लेटे। माँ सारी रात कभी बैठती हैं और कभी लेटती हैं। कह रही हैं–''निद्रा का भाव ही नहीं है।''

नैनीताल में रहते कृष्णनगर के भक्तों के निवेदन की अनुभूति

2 वैशाख, बृहस्पतिवार– प्रात:काल उठकर माँ थोड़ा टहलने के लिए बाहर निकल पड़ी। ज्योतिष दादा साथ गये हैं। लगभग 8 बजे लौटते ही कह रही हैं–''अभी जो हो मुझे खिला दो।'' वही हुआ। जल्दी-जल्दी मैंने एक शाक और चटनी तथा रोटी बना दी। माँ ने बहुत थोड़ा खाया। लगभग 11 बजे के समय माँ सो गयी। मुन्नी तथा और भी अनेक महिलाएँ एवं पुरुष दोपहर में आये हैं। माँ थोड़ी देर बाद ही उठ बैठी। श्रीकृष्ण पन्त

(तहसीलदार) आदि सब लोग 'सच्चिदानन्द खेल' खेलने लग गये। इस देश के और भी दो-तीन भद्रपुरुष तथा ज्योतिष दादा खेलने बैठे हैं। श्रीकृष्ण पन्त खेल में हारकर जप करने बैठ गये। जप अभी समाप्त नहीं हुआ। एकाग्र चित्त से उन्होंने बहुत देर तक जप किया। जीता पक्ष कीर्तन कर रहा है। खेल में प्राय: एक ओर नाम-कीर्तन और दूसरी ओर आँखें बन्द कर काली नाम का जप करने बैठ जाते हैं। देखने में बहुत अच्छा लगता है। अपराह्न के बाद डाक आयी। मैंने हाथ में चिट्ठियाँ ली; कई बन्द लिफाफे हैं। माँ कह रही हैं-"कृष्णनगर में रहकर भोलानाथजी ने जिसको दीक्षा दी, आज दो-तीन दिनों से उसकी स्त्री की बात ही मुझे याद आ रही है।" लिफाफा खोलकर देखती हूँ तो उसी की चिट्ठी है। मोहिनी मोहन बन्द्योपाध्याय की अब नदिया में बदली हो गई है। लिखा है, "मेरी स्त्री और मैं दोनों ही आपके दर्शनों के लिए व्याकुल हैं। कब दर्शन दीजियेगा" इत्यादि। माँ सुनकर हँसने लगी। मैंने सोचा-"वास्तव में मोहिनी बाबू की स्त्री माँ को शायद बहुत याद कर रही है, इसीलिए माँ का हृदय भी प्रतिवेदन देता है।"

पूर्व दिन एक बालक को शिवजी के निकट प्रार्थना करने पर अपूर्व भाव से अभिष्ट वस्तु की प्राप्ति

साँझ होने से पहले ही माँ टहलने बाहर गई। यहाँ महारतन का लड़का और बिहारीलाल का लड़का दोनों पढ़ते हैं। आज वे माँ के दर्शनों के लिए आये हैं। वे कुछ देर 'सच्चिदानन्द खेल' खेलते रहे। साँझ को माँ धर्मशाला में लौटी। श्रीकृष्ण पन्त अपने परिचित एक भद्रपुरुष को साथ लाये। सुना है कि वह पुलिस विभाग के एकाउन्टेन्ट हैं। श्रीकृष्ण पन्त ने एक सुन्दर सच्ची घटना माँ से कही। घटना यों है-"इन साथी सज्जन का लड़का कल पिता से जिद कर रहा था कि मेरे लिए बैडमिन्टन खेल का सामान खरीद दीजिये। हिसाब लगाकर देखा गया कि साढ़े तीन रुपयों का सामान खरीदना पड़ेगा। भद्रपुरुष ने कहा-"इतना पैसा मेरे पास नहीं है, मैं नहीं खरीद सकूँगा।' तब उस लड़के ने उनके घर में जो शिवजी स्थापित हैं, उनके निकट जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की- 'हे शिवजी! आप मुझे खेल का यह सामान दीजिये। मैं अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करूँगा, दुष्टता नहीं करूँगा।' कल रात में यह घटना घटी है। आज सवेरे इन भद्रपुरुष के

एक उच्च अधिकारी की चिट्ठी आई है। वह चिट्ठी वे माँ को दिखाने के लिऐ लाये हैं। साहब ने लिखा है–'मुझसे आपको 6.50 रुपये पाने थे। आज मैं इस पत्र के साथ 10 रुपये का एक नोट भेज रहा हूँ; अपने 6.50 रु. लेकर शेष 3.50 रुपयों से आप अपने लड़के के लिए कुछ खेलने का सामान खरीद दीजियेगा।' यह पत्र पाकर भद्रपुरुष को महान् आश्चर्य हुआ। माँ के समीप यह घटना कहने के लिए आये हैं। माँ ने कहा– ''अभी आप अपने लड़के के लिए खेल का सामान खरीद ले जायें।'' भद्रपुरुष ने माँ को प्रणाम कर कहा–''माँ, आज 24 वर्षों से कभी इस साहब ने मुझे एक पैसा भी नहीं दिया।'' माँ ने कहा–''आज भी उन्होंने नहीं दिया है। जो देने वाले हैं उन्होंने ही दिया है।'' वह भद्रपुरुष पुनः-पुनः माँ के चरणों में प्रणाम कर चले गये। आजकल के दिनों में भी ऐसी प्रत्यक्ष घटना देखकर हम सब मुग्ध हो गये। सुना है कि उनके घर के यह शिवजी एक आवाज सुनकर छत पर चढ़े पाये गये थे। पहाड़ियों का सरल विश्वास देखने की वस्तु है। हम लोग नयना देवी के मन्दिर के निकट हैं (एक बंगाली ने यहाँ एक काली–मूर्ति स्थापित कर दी है)। प्रायः सारी रात यहाँ घण्टे की ध्वनि या कीर्तन चलता है। भोर से ही दिखाई देता है कि कोई–कोई ताल में स्नान कर मन्दिर के चारों ओर हाथ जोड़कर स्तोत्र पाठ कर रहे हैं। कोट–पैन्ट पहने छोटी अवस्था के लड़कों का प्रातःकाल से ही सारे दिन मन्दिर में आना–जाना लगा रहता है। वे बाहर से हाथ जोड़कर घंटा बजाते हुए चले जा रहे हैं। अपराह्न के समय मैंने माँ को थोड़ा दूध और फल खिला दिया था। फिर रात में माँ ने कुछ नहीं खाया। माँ ताल की तरफ के लम्बे कमरे में अपने आप टहल रही हैं। सोने का समय होने पर कह रही है–''तुम लोग इस कमरे का दरवाजा खुला रहने दो। सदा बिछौने पर पड़े रहने का भाव नहीं रहता है। तब मैं अकेली ही उठकर इस कमरे में आकर टहलूँगी। यदि पड़ी रही तो पड़ी ही रहूँगी।'' वैसा ही हुआ–दरवाजा खुला रखा गया।

3 वैशाख, शुक्रवार– माँ जरा सवेरे उठते ही ज्योतिष दादा के साथ बाहर घूमने निकल पड़ी। घूम के आकर आज भी जल्दी–जल्दी रोटी खाने बैठ गई हैं। आज प्रायः 11 बजे हम सभी लोग खाने–पीने से निवृत्त हो गये। माँ भोजन के बाद थोड़ा घूम आई, फिर लेट गई। उस समय लोग कोई विशेष नहीं थे। थोड़ी ही देर में माँ उठी। आज भी माँ और दिनों के

समान ही आगत सब लोगों के साथ कुछ देर वार्तालाप कर घूमने बाहर चली गई। नाना देशों की स्त्रियाँ साथ-साथ गई। पेशावर, मारवाड़, नैनीताल और मथुरा आदि सब देशों की स्त्रियाँ हैं। रात को 9-10 बजे के बीच में ही सब विदा हुई।

4 वैशाख, शनिवार– आज भी सवेरे ज्योतिष दादा के साथ माँ थोड़ा टहल आई हैं। तदनन्तर जल्दी-जल्दी खाने-पीने से निवृत्त होकर हम लोग 4 मील दूर ''भूमिया धारा'' को चले। वहाँ एक सज्जन का बगीचा और बंगला है। माँ को गत बार वह ले गये थे, इस बार भी ले गये। हम लोग ताँगे से पर्वतीय प्रदेश की शोभा देखते-देखते चले। वहाँ पहुँच कर पहाड़ के ऊपर पेड़ की छाया में बैठा गया। एक कपड़ा बिछाकर सब लोग उस पर बैठे। माँ कुछ देर लेटी भी। मालिक ने पहले कुछ पहाड़ी फल और पपीते भेज दिये थे। पत्ते में रखकर खाया गया। उसके बाद कुछ सन्तरे छीले और उसी के छिलकों में रखकर नौकर दे गया। उसके बाद आलू भून दिये। पास में धनियों की पत्ती नमक मिर्च मिलाकर दे गया है। पेड़ के पत्ते नोचकर उसके साथ भेज दिये हैं। उनमें खाना होगा। उसके बाद गरम दूध मँगा दिया। पहाड़ पर बैठकर पहाड़ियों का खूब आतिथ्य ग्रहण किया गया। मालिक ने माँ से कहा-''माँ-यदि आप आज्ञा दें तो यहाँ आपका एक आसन (आश्रम) बना दूँ। अत्यन्त मनोरम स्थान है। आप जब इच्छा हो आकर रहे।'' स्थान निर्जन है, इसमें सन्देह नहीं। चारों तरफ का दृश्य भी सुन्दर है। एक जगह एक फटा झंडा टँगा देखकर माँ वहाँ गई। न मालूम कौन देवता स्थापित हैं अर्थात् दो पत्थर सिन्दूर से पुते हैं। दूध से स्नान कराया गया है, उसका भी चिह्न है। चारों तरफ से पत्थरों की आड़ कर घेरा भी बना दिया गया है। एक छोटा घण्टा भी टँगा है। माँ ने कुछ देर घण्टे के साथ खेल किया। उस जगह कुछ देर बैठी भी।

भूमिया धारा नामक स्थान पर माँ की सूक्ष्म शरीरी के साथ भेंट

4 बज चुके हैं, भोलानाथ जी नैनीताल लौटने के लिए व्यग्र हैं, इसलिए माँ उठी। माँ ने सहसा एक आवाज दी। उस पर मैंने माँ से कहा-''माँ-यहाँ भी किसी (सूक्ष्म शरीरी) के साथ तुम्हारी भेंट हुई क्या?'' माँ ने भी मुँह ढककर लेटे-लेटे कहा-''अवश्य गत बार भी भेंट हुई थी, इस

बार भी ले आया है। लेटे-लेटे भली-भाँति देखूँगी।'' यह कहकर अच्छी तरह लेट गई। लौटते समय ताँगे में मैंने पूछा-''माँ-यहाँ जो सूक्ष्म-देह-धारी हैं, क्या तुम उनकी कोई कामना पूर्ण करने ही गई थी? क्या उन्होंने तुम्हें देखना चाहा था?'' माँ ने कहा-''मान लो वही है।'' मैंने कहा-''यदि उनकी इच्छा हो तो वे लोग तो सर्वत्र ही तुम्हारे साथ भेंट कर सकते हैं।'' माँ ने कहा-''नहीं, कोई-कोई एक ही जगह रहते हैं। स्थान के आकर्षण के कारण उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते।'' सन्ध्या होने से कुछ पहले ही हम लोग नैनीताल धर्मशाला में आ पहुँचे। कलकत्ते से एक अंग्रेज महिला माँ के दर्शन करने आई हैं। कल उनका टेलिग्राम आया था कि वह आज आ पहुँचेंगी और एक होटल में ठहरेंगी। माँ के लौट आने के थोड़ी देर बाद ही वह अंग्रेज महिला माँ के दर्शन करने के लिए आई, घुटने टेककर हाथ जोड़कर माँ के निकट बैठी। फिर एक ओर जाकर बैठ गई। ज्ञात हुआ कि तीन वर्षों से वह इस ओर काम (साधना) कर रही हैं। उनका विश्वास है कि भगवान् का चिन्तन यदि किया जा सके तो फिर किसी काम की आवश्यकता नहीं होती। बहुत शान्त मूर्ति है, बाद में माँ ने भी कहा-''कुछ साधना कर थोड़ा फल पाया है।'' अखण्डानन्दजी और ज्योतिष दादा अंग्रेज महिला को माँ की बात समझा रहे हैं। उनकी अवस्था 42 वर्ष की है। माँ की अवस्था 41 वर्ष की सुनकर उन्होंने कहा-''मेरी माँ मुझसे 1 वर्ष छोटी है।'' 10 बजे सबने माँ से विदा ली।

भाव के विविध स्तरों की अवस्थाओं का विवरण

माँ सेवा-समिति के कमरे में बैठी हैं। साधकों के विविध स्तरों की बातें हो रही हैं। मैं और ज्योतिष दादा भी हैं। माँ कह रही है-''अवस्थाएँ कितने प्रकार की हैं, उन्हें सब लोग न समझकर बड़ी भूल करते हैं। **यह जो कीर्तन आदि में भाव होता है, यह भी अनेक प्रकार का है। कभी प्रतीत होता है कि नाम की ध्वनि से शरीर में एक तरंग उठती है, बाद में उससे अवसाद या क्लान्ति होती है। उससे साधक कुछ देर तक जड़वत् पड़ा रहता है।** देखो कितनी ही अवस्थाएँ हैं, पहले रूप के नशे में भरपूर रहता है; जैसे कृष्ण के रूप से आत्म-विस्मृत, कृष्ण की पूजा से, कृष्ण के नाम से गद्गद् अवस्था। फिर ऊपर की अवस्था होती है, जैसे काला बादल देखकर कृष्ण की मूर्ति भासित

हुई अथवा **जो कुछ भी देख रहा है, मन में सोच रहा है–मेरे कृष्ण का रूप है।** तब 'मेरे कृष्ण' यही भाव रहता है। **चित्त–शुद्धि होने पर ही एकलक्ष्य होकर एक के रूप में रम जाता है। दूसरी अवस्था है– रूप के नशे से गद्‌गद् अवस्था,** उस भाव के ह्रास होते ही रुलाई आती है। और एक अवस्था है– **जिसे देखता है, उसी में प्रियतम की छाया देखकर आनन्दित होता है। उस समय भी मूर्ति के ऊपर ही लक्ष्य होता है।** अन्य अवस्था भी है– **तब शरीर जड़वत् पड़ा ही रहता है।** थोड़ा उठते ही फिर जड़वत् हो जाता है। **फिर ब्रह्म भाव की प्राप्ति भी होती है। तभी साधक और साध्य एक होते हैं, तब फिर मूर्ति के ऊपर विशेष लक्ष्य नहीं रहता। एक के सिवा कुछ नहीं है,** यह भाव जाग उठता है। और एक है **सविकल्प समाधि– तब एक सत्ता का बोध होता है और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।** और भी एक अवस्था **'निर्विकल्प समाधि'** है। **उस समय कुछ भी नहीं रहता; अथवा क्या है, क्या नहीं है उसका बोध नहीं रहता, 'नहीं' कहने से भी वह भाव स्पष्ट नहीं होता एवं 'हाँ' कहने पर भी नहीं।** कितने ही प्रकार के भाव हैं। कहा कितना जा सकता है? सिर्फ एक–एक ओर का वृत्तान्त कहा जाता है।'' तदनन्तर मैंने पूछा–''ये सब अवस्थाएँ एक के बाद दूसरी आयेंगी ही न?'' माँ बोली–''यदि किसी एक अवस्था को पकड़कर बैठा न जाये तो एक के बाद एक आयेगी ही किन्तु यदि एक ही अवस्था में स्थित रहा जाये तो वहीं रुक जाना पड़ता है।'' आगे कहने लगी–''फिर एक ही स्तर पर खड़े रहने पर भी जो अवस्था छूट गई है उसकी भी छाया रहेगी तथा जो स्तर बाद में आने वाला है उसका भी अभास पूर्ण स्तर पर रहते ही मिल जाता है। इसलिए **एक ही स्तर में भूत, वर्तमान और भविष्य– ये तीनों अवस्थाएँ खेलती हैं।** लक्षण देखते ही ज्ञात हो जाता है कि किस स्तर में है।'' तदुपरान्त अपने सम्बन्ध में कह रही हैं–''इस शरीर की बात छोड़ दो। यह शरीर तो कितने खेल खेलता है। तुम लोगों ने अपनी दृष्टि से महाभाव का प्रकाश देखकर भी उसके पूर्व की कोई अवस्था भी तो देखी है। सब तुम्हारी दृष्टि है।'' आगे फिर कह रही हैं– **निर्विकल्प समाधि के बाद किसी–किसी का शरीर छूट भी जा सकता है।''**

5 वैशाख, रविवार– प्रातःकाल माँ टहलने बाहर निकली। आज खूब वर्षा हुई। बरेली से 7 बंगाली भद्रपुरुष माँ के समीप कीर्तन करने आये हैं। 12 बजे से उन्होंने कीर्तन शुरू किया, रात को 8 बजे तक कीर्तन चला। यहाँ के लोगों ने भी कीर्तन में भाग लिया। मेम साहिबा 10 बजे आकर

दो घण्टे माँ के निकट बैठी। दूसरी बार 5 बजे कीर्तन सुनने आई हैं। रात में बहुत देर तक माँ के समीप बैठकर उन्होंने वार्तालाप किया। सभी ओर माँ की दृष्टि है।

12 बजे कीर्तन करने लड़के आये हैं। माँ कमरे से बाहर आकर कह रही हैं–''कुछ फूल मंगाओ।'' एक चौकी सेवा-समिति के कमरे में थी। कह रही हैं–''उस चौकी पर फूलों से सजाकर कुछ चित्र रखो, धूपबत्तियाँ जला दो, मालाएँ गूंथकर सबके गले में डालो और सबके माथे पर चन्दन लगाओ।'' इस तरह से क्या-क्या करना होगा, यह बता दे रही हैं। आगे और कह रही हैं–''ये सब इतनी दूर से कीर्तन करने आये हैं, यदि तुम सब लोग मिलकर उनके काम में योग न दोगे तो उन्हें आनन्द कैसे होगा? मैं देख रही हूँ कि यदि मैं न कहूँ तो तुम्हें कुछ खयाल ही नहीं रहता।'' हमने भी देखा है कि माँ का कथन यथार्थ है। कोई भी काम हम लोग ठीक-ठीक नहीं कर पाते। मानव का सब कुछ अपूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं। रात्रि में 8 बजे कीर्तन समाप्त होने पर भी अंग्रेज महिला माँ के समीप बैठी विविध वार्तालाप कर रही है। रात में 10 बजे सब लोग विदा हुए।

6 वैशाख, सोमवार– प्रात:काल माँ एकाएक अपने दल-बल को लेकर नौका द्वारा श्रीकृष्ण पन्त के मकान को चली। पन्तजी ने दल-बल के साथ माँ को अपने घर ले जाकर कीर्तन करने की इच्छा प्रकट की थी। किन्तु कल वह नहीं हो सका इसलिए आज खबर दिये बिना ही माँ चली। एकाएक माँ को दल-बल सहित पाकर वह अत्यन्त आनन्दित हुए। आज रामनवमी है। पन्तजी के आँगन में खूब कीर्तन हुआ। बरेली के दल के साथ वहीं माँ का भोजन हुआ। अंग्रेज महिला ने भी वहाँ माँ के निकट बैठकर कीर्तन सुना। यह प्रतिदिन नियमत: दोनों समय माँ के निकट आती है। बहुत देर तक बैठी रहती है। कभी आँखें बन्द कर बैठी रहती है। कभी विविध वार्तालाप करती है। इन्होंने कहा–''**पाण्डिचेरी** में **अरविन्द घोष** के निकट भी माँ की चर्चा मैंने सुनी है।''

रामनवमी के दिन नयना देवी के मन्दिर के सामने ताल के किनारे माँ को सम्मुख रखकर पण्डितों का यज्ञ

अरविन्द घोष ने शायद कहा है–''माँ आनन्दमयी अत्यन्त उच्च स्तर

में स्थित हैं।'' माँ से अंग्रेज महिला ने पूछा था-''मुझे यहाँ क्या-क्या करना चाहिये। किस तरह रहना चाहिये आप बतला दें।'' माँ ने कहा-''ये सब बातें पीछे होंगी।'' प्राय: 2 बजे हम लोग पन्तजी के मकान से नाव द्वारा ही धर्मशाला में वापिस आये। घाट पर नाव लगाते ही हमने देखा-ताल के पार ही नयना देवी के मन्दिर के सामने हवन का आयोजन हुआ है। बहुत-से लोग और पण्डित एकत्र हुए हैं। आज रामनवमी है इसीलिए यह आयोजन हुआ है। कई दिनों से थोड़ा-थोड़ा हवन आदि हो रहा था। माँ के पहुँचते ही पण्डितों ने माँ से कहा-''हम लोग यहाँ हवन करेंगे, आप जरा यहाँ बैठें।'' माँ और भोलानाथजी वहाँ बैठे। माँ के न आने के कारण ही अब तक हवन आरम्भ नहीं हुआ था। पण्डित लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। ताल-यज्ञ आरंभ हुआ। थोड़ी देर बाद माँ उठ आई। साथ-ही-साथ बालक और बालिकाओं का दल आकर माँ के निकट जमा हुआ। माँ ने हाथों से ताली बजाकर उनसे कीर्तन करने को कहा। सबने मिलकर महान् आनन्द से कीर्तन आरंभ किया। माँ ने मुझसे कहा-''घर में जो कुछ है इन्हें दो।'' फल काटकर दिये गये। थोड़ी देर बालक और बालिकाओं के साथ खेलकर माँ कमरे में जाकर लेट गयी। लगभग 5 बजे माँ उठ बैठी हैं। दल-के-दल पर्वतीय स्त्रियाँ आकर माँ को फूल और फल चढ़ा रही हैं, आरती कर रही हैं। प्राय: प्रतिदिन का ही उनका यह एक काम हो गया है। जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि इस देश की महिलाएँ एक थाल में फूल, चन्दन, कपूर और कुछ मिठाई लेकर देवताओं के मन्दिर में जाकर उसे चढ़ा आती हैं। अर्थात् इन सबसे पूजा करती हैं। पूजा अर्थात् स्तोत्र-पाठादि करते-करते ये उन्हें देवताओं के मस्तक और शरीर पर बिखेर देती हैं। कपूर जलाकर आरती करती हैं। बंगालियों के तुल्य इनमें पूजा के विशेष नियम नहीं हैं। नयना देवी के मन्दिर में जो पर्वतीय महिलाएँ पूजा करने आती हैं वे माँ की भी उसी तरह पूजा कर जाती हैं। माँ के उठकर बैठते ही मेम साहिबा आ उपस्थित हुई। शीत होने के कारण माँ के शरीर का एक 'अलवान' उन्हें दिया गया। उन्होंने कहा-''ओढ़ने का अलवान देकर अपनी स्मृति जागृत रखने की जरूरत नहीं होगी।'' इस बात पर माँ और मेम साहिबा दोनों ही हँसने लगी। सन्ध्या के कुछ पहले मेम साहिबा एकान्त में बातें करने के लिए माँ को ले गई, ज्योतिष दादा साथ गये। सन्ध्या के

बाद वे लौटे। मैंने सुना कि माँ से उन्होंने 'मुझे किस तरह क्या करना है'- इसी सम्बन्ध में जिज्ञासा की है। धर्मशाला में वापिस आकर मेम साहिबा ने विदा ली। बरेली से आये लोगों में कई एक आज वापिस लौट गये।

7 वैशाख, मंगलवार– लगभग 6 बजे माँ टहलने बाहर चली गई। कुछ दिन चढ़ने पर लौटी। धूप में बैठकर मैंने माँ के मुँह-हाथ धुला दिये। कई पर्वतीय लोग फल और मिठाई लेकर माँ के समीप आये हैं। उसे सबको बाँट दिया गया। लगभग साढ़े नौ बजे कल के प्रबन्ध के अनुसार माँ को देवीदत्त अपने मकान पर ले गये। यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, इनका एक प्रेस है (किंग प्रेस)। हम सब लोग माँ के साथ उनके निवास-स्थान पर गये। इन्होंने गुरु के आज्ञानुसार एक कमरा आश्रम के रूप में सजा रखा है। प्रतिदिन हवन आदि करते हैं। एक नेपाली साधु भी उस कमरे में रहते हैं। माँ और मैं उसी कमरे में जाकर बैठे। मेम साहिबा भी वहाँ माँ के साथ भेंट करने आई। हम कुछ देर वहाँ बैठे रहे। कल से ही माँ का हँसने का भाव जागृत हुआ है। कोई निमित्त होने पर ही हँसी शुरू हो रही है। उस हँसी में सर्वांग हँसता है। देवीदत्त के निवास-स्थान पर जाकर भी वह हँसी आरंभ हुई। मेम साहिबा उस हँसी को देखकर बहुत प्रसन्न हैं। कह रही हैं-''एक दिन स्वप्न में मैंने देखा था कि आपके पैरों से हँसी का एक फौआरा निकलकर मस्तक तक पहुँचा है। उस हँसी से मानो मेरा सारा शरीर छा गया।'' माँ लेटकर बोली-''यही तो चाहिये। इसीलिए तो यह (अपने शरीर की ओर इशारा कर) हँसी के साथ आ मिला है।'' कुछ समय वहाँ रहकर माँ धर्मशाला में आने के लिए उठी। मेम साहिबा भी माँ के साथ-साथ धर्मशाला में आई। माँ के धूप में बाहर निकलते ही उन्होंने दौड़कर माँ के ऊपर छाता लगा दिया। माँ को रिक्शा में बैठाकर वह हम लोगों के साथ पैदल ही धर्मशाला में आई। बहुत देर तक माँ के पास आँखें मूंदकर बैठी रही। लगभग बारह बजे वह होटल को चली गई।

कलकत्ते से माँ के दर्शनों के लिए आगत एक अंग्रेज महिला ने अपने मार्ग-सहायक कुछ महात्माओं के चित्र माँ को दिखाये

लगभग 5 बजे के समय मेम साहिबा फिर आई हैं। इस बीच में माँ का भोजन हो चुका है। माँ थोड़ा विश्राम कर उठ बैठी हैं। आज मेम

साहिबा कई चित्र ले आई हैं। उनमें दाक्षिणात्य के **रमण** साधु का फोटो भी है। मिश्र में कब्र के निकट एक आत्मा का फोटो उतरा है। उसे मेम साहिबा माँ को दिखाने लाई हैं। सुनने में आया है कि कल माँ ने उनसे कहा था कि तुम्हारे इस मार्ग के सहायक कई लोगों के चित्र तुम्हारे पास हैं। उन्होंने स्वीकार किया था, इसीलिए आज वह उन सब महात्माओं के फोटो ले आई हैं। माँ से उन्होंने पूछा-माँ, इस प्रकार के फोटो आपने देखे थे या नहीं? माँ ने स्वीकार किया। सायंकाल मेम साहिबा माँ को साथ लेकर घूमने निकली। हम लोग भी साथ-साथ गये। पहाड़ के ऊपर की ओर जाना हुआ। आज मेम साहिबा माँ के दिये हुए अलवान को बंगाली महिलाओं के समान शरीर पर ओढ़कर माँ के साथ घूमने बाहर निकली हैं। किन्तु सम्हाल नहीं पा रही हैं, गिरता जा रहा है। थोड़ी देर बाद हम सब धर्मशाला में लौटे। बहुत लोग उपस्थित हुए हैं। दिन-पर-दिन दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ रही है।

8 **वैशाख, बुधवार-** आज कोई बात नहीं हुई। प्रातःकाल माँ एकाएक बोली-''भोलानाथजी और तुम सब लोगों से कहती हूँ-''**मेरे स्वाभाविक चल रहे भाव में तुम लोगों के बाधा डालने पर न जाने शरीर एक तरह से कैसा हो जाता है। श्वास की गति ही दूसरे ढ़ंग की हो जाती है।**'' आज दोपहर में पर्वतीय महिलाएँ माँ के समीप आकर सुन्दर-सुन्दर भजन गाकर नाच रही हैं। हमें बहुत अच्छा लगा। दिन-पर-दिन महिलाएँ आकृष्ट हो रही हैं। आज दोपहर में थोड़ा घूम आकर माँ ने कहा-''मुझे इस कमरे में बन्द कर दो, मैं अकेली रहूँगी। यदि कोई भेंट करने आये तो कहना सन्ध्या के बाद भेंट होगी।'' वैसा ही किया गया। सन्ध्या के बाद माँ का दरवाजा खोल दिया गया। दल-के-दल पर्वतीय स्त्री-पुरुषों ने आकर माँ को फूल चढ़ाये और आरती की। लगभग 10 बजे सब विदा हुए।

9 **वैशाख, बृहस्पतिवार-** प्रातःकाल माँ ने टहल के आकर थोड़ा दूध पीया। मेम साहिबा 10 बजे आकर 2 बजे लौट गई। उसके बाद माँ का भोजन हुआ। आज भी पर्वतीय महिलाओं ने आकर माँ के समीप भजन और नृत्य किया। माँ भी ताल देने लगी, करताल बजाने लगी। उनका गाना पुनः-पुनः सुनने की इच्छा प्रकट कर माँ ने उन्हें खूब आह्लादित किया। वे चली गई। आज मेम साहिबा माँ को साथ लेकर लगभग 3 मील दूर

पहाड़ के एक स्थान पर घूमने जाने वाली हैं। 5 बजे हम सब लोग साथ-साथ चले। माँ तथा अन्यान्य कई लोग डांडी (झम्पान) में गये, कोई-कोई पैदल चले। स्थान बहुत निर्जन था। सन्ध्या के पूर्व ही हम लोग लौट आये। रात में साधारण थोड़ा-सा खाकर माँ कुछ देर तक टहलती रही। कल हम लोगों का अल्मोड़ा जाने का निश्चय हुआ।

* * *

उन्यासीवाँ अध्याय

नैनीताल से अलमोड़ा गमन साथ में अंग्रेज महिला का माँ के प्रति आवेगपूर्ण श्रद्धा का निदर्शन

10 वैशाख, शुक्रवार–प्रात:काल माँ थोड़ा टहल आई। बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिए आकर बैठे हैं। उनमें मध्यप्रदेश के एक 'डिपुटी-पोस्टमास्टर जनरल' सपत्नीक आये हैं। कल रात ही माँ के पास वह पहले-पहल आये हैं। यह बरेली निवासी हैं। छुट्टी में नैनीताल आये हैं। कल रात्रि में पति-पत्नी माँ के साथ एकान्त में बैठकर न जाने क्या बातें कर गये हैं। आज प्रात: रेशमी धोती चादर और भाँति-भाँति के फल माँ के लिए लाये हैं। स्त्री कह रही है-"क्या आश्चर्य है-कल ही मैंने आपको प्रथम बार देखा है, सारी रात आपको ही स्वप्न में देखती रही और रात को केवल यही मन में चिन्तन किया कि कब प्रात:काल हो और कब आपके पास आऊँ। आप में कैसी आकर्षण-शक्ति है, मैं समझ न सकी।" माँ ने मुस्कुराते हुए कहा-"लड़की के लिए माँ का अधीर होना स्वाभाविक ही है।" इस तरह की एवं और भी उनके साधन-भजन की बात पूछी। फल, मिठाई आदि प्रतिदिन की भाँति बाँट दिये गये। लगभग बारह बजे हम लोग अलमोड़े को रवाना हुए। अंग्रेज महिला ने माँ से भेंट कर अलमोड़ा जाने का प्रस्ताव किया था। वह ही अपने व्यय से एक मोटर बस भाड़े पर ले माँ के साथ सबको लिये चली। माँ के प्रति वह बहुत अधिक आकृष्ट हुई है। मोटर में भी वह सामने की सीट पर न बैठकर माँ के पास बैठी है। उससे कितना आनन्द व्यक्त कर रही हैं। एक छोटे अटैची-केस में मेम साहिबा के खाने का सामान, काँटा, चम्मच और प्लेट थे। उन्होंने माँ को वे सब दिखाये। माँ ने हँसते हुए कहा-"मैं इन्हें चुरा लूँगी।" ज्योंही ज्योतिष दादा ने यह बात मेम साहिबा को समझाई त्योंही उन्होंने हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम कर बक्स को माँ की गोद में रखकर कहा-"माँ को क्यों चोरी करने दूँ। मैं ही दे देती हूँ। माँ जो चाहें मैं वही देती हूँ। माँ जो कुछ चाहें मैं वही दूँगी-माँ को अदेय मेरा कुछ भी नहीं है।" माँ ने तुरन्त ही

कहा–''मैं जो चाहूँगी वही दोगी न? तुम लोग समझा दो–मैं सारा मन चाहती हूँ।'' समझाने पर मेम साहिब हँसते–हँसते हाथ जोड़कर माँ की ओर निहारकर कह रही हैं– ''निश्चय–निश्चय,'' यह कहकर इशारे से अपनी टोपी उतारकर उन्होंने माँ के पैरों की ओर बढ़ा दी।

हम सब लोग 12 बजे रवाना होकर पर्वतीय प्रदेश की शोभा देखते-देखते 6 बजे अल्मोड़ा पहुँचे। 3 बजे मेम साहिबा मोटर में बैठे–बैठे बिस्कुट खाने के लिए माँ से अनुमति माँगी। माँ कुछ खायेंगी या नहीं यह भी पूछा। माँ ने अस्वीकार किया। लगभग 4 बजे मेम साहिबा ने माँ को अत्यन्त श्रद्धा के साथ एक सन्तरा छीलकर खिला दिया, उसके बाद स्वयं खाया।

कैलास जाने के रास्ते में स्थित गर्बियान के पाठार्थिनियों का माँ को सम्भाषण एवं कैलास ले जाने का निवेदन

सन्ध्या के समय हम लोग नन्दादेवी के मन्दिर में गये। पहले से ही आदमी भेजकर देवीदत्त ने इस मन्दिर में माँ के रहने का प्रबन्ध किया था। अलमोड़ा शहर का दृश्य बहुत सुन्दर है। मोटर से आते ही देखा–अर्द्धचन्द्राकार पहाड़ के ऊपरी भाग पर सजा–सजाया शहर है, निचले भाग में केवल खेत हैं। गेहूँ अधिक होता है। पहाड़ के ऊपर शहर और नीचे अधिक खेत रहने से बिलकुल खुला दिखाई देता है। अलग–अलग मकान बहुत सुन्दर प्रतीत होते हैं। शहर के भीतर मोटर के घुसते ही देखा, छोटी अवस्था की कुछ लड़कियों का एक दल सड़क से जा रहा था, एकाएक माँ को देखते ही हाथ उठाकर उन्होंने प्रणाम किया। माँ से पूछने पर मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने इससे पहले कभी माँ को नहीं देखा है। हम लोगों के मन्दिर में पहुँचते ही वे लड़कियाँ भी वहाँ आ पहुँची। माँ को घेरकर बहुत से लोग वहीं जमा हो गये, लड़कियाँ भी बैठी। मेम साहिबा भी माँ के साथ हैं। वह भी माँ के पास बैठी है। बाहर गलीचा बिछा दिया गया है। मेम साहिबा के लिए डाक बंगले में रहने का प्रबन्ध किया गया है। उन लड़कियों के साथ माँ ने वार्तालाप आरम्भ किया। हम लोग व्यवस्था करने के लिए भीतर थे। पीछे हमें बुलाकर माँ ने कहा–''देखो ये कैलास के निकट के स्थान की रहने वाली हैं। यहाँ लिखने–पढ़ने आई हैं।'' मैंने भी उनके साथ

वार्तालाप कर अनुभव किया है कि वे बहुत सरल और सादे स्वभाव की हैं। उनमें से कोई-कोई तो 3-4 बार कैलास हो आई हैं। आज रात को ही नारायण स्वामी के साथ कई लड़कियाँ अपने घर लौट रही हैं। नारायण स्वामी का वहाँ एक आश्रम है (शारदा आश्रम)। इन लड़कियों का घर गर्बियान है; जो कैलास से 4-5 दिनों का रास्ता है। लड़कियों ने कहा- ''हमने अपने अध्यापक पण्डित श्रीनिवास के पास माँ का एक फोटो देखा था, एकाएक मोटर में माँ को देखकर एक लड़की का हृदय व्याकुल हो उठा; न मालूम कैसे मन में आया कि यही आनन्दमयी माँ हैं। तत्क्षण अनजाने में ही उसके दोनों हाथ उठ गये, उसने माँ को प्रणाम किया। देखा-देखी सभी ने माँ को प्रणाम किया। माँ को पाकर उन्हें बड़ी खुशी हुई है, उन्होंने माँ को कैलास ले जाना चाहा। भोलानाथजी को चिरकाल से कैलास जाने की इच्छा थी, वह आज ही रात में जाने को तैयार हो गये। लड़कियाँ यत्न से ले जायेंगी। विचार हुआ कि जून महीने के पहले कैलास का रास्ता खुलता नहीं है; इसलिए इस समय जाना स्थगित हुआ। जन्मोत्सव पर बंगाल जाने की बात है। निश्चय हुआ कि वहाँ से लौटकर ही देखा जायेगा। पर्वतीय लोग उसी समय कितने फूल-फल लेकर उपस्थित हुए। किसी को अपराह्न में, किसी को दोपहर में माँ के आने की खबर लगी है, माँ को पाकर मानो उन्होंने साक्षात् भगवती के ही दर्शन किये हैं। फूलों से माँ को ढ़क दिया। रात में लगभग 10 बजे सब विदा हुए। माँ विश्राम करने के लिए लेट गई।

जड़-समाधि जड़ता की अवस्था नहीं है, चिन्ता की क्रिया भीतर रहती है

11 **वैशाख, शनिवार-** प्रात:काल माँ के बिस्तर छोड़ने के पहले ही बहुत से लोग माँ को घेरकर बैठे हैं। यहाँ के प्रतिष्ठित लोग भी आये हैं। माँ के उठकर बैठते ही वार्तालाप आरंभ हुआ। एक आदमी ने कहा-''माँ जड़-समाधि क्या है? समाधि तो चैतन्य का खेल है, वह फिर जड़ कैसे होगी?'' माँ ने कहा-''जड़-समाधि के पहले और भी अनेक अवस्थाएँ हैं। देखो, साधारणत: तुम लोग यह जो बाहर की बातचीत करते हो उस बीच में **यदि कोई उस ओर एकाग्र मन होकर भगवान् के चिन्तन में बैठ सके तो अवस्थानुसार शरीर तो जड़वत् होगा ही; मन भी किसी समय जड़वत् हो जाता है।** यह तो इस मन का खेल है। ऐसा एक भाव आने के बाद भी जब वह

फिर अपने पूर्व भाव के बीच में आता है, तब उसके मन और शरीर की गति थोड़ी परिवर्तित प्रतीत होनी स्वाभाविक है। और **जड़–समाधि जहाँ कही जाती है, वहाँ एकदम समाहित अवस्था न होने तक जड़वत् एक अवस्था में स्थित होना भी उसकी स्वाभाविक गति है। उसे जड़–समाधि कहते हैं।** समाधि–राज्य की यह भी एक झलक है। सविकल्प समाधि के जैसे भिन्न–भिन्न स्वरूप हैं, **जड़–समाधि का प्रकाश भी उसी के एक स्वभाव का प्रकाश है। चैतन्य की क्रिया भीतर रहती है।** किन्तु **उस समय पूर्ण चैतन्य का खेल प्रकट नहीं होता,** इसलिए इस तरह का प्रकाश होता है। पूर्ण **चैतन का प्रतिवेदन प्राप्त होने पर जड़ता की बात नहीं आती। एकमात्र चैतन्य का ही तो खेल है।** इसके बीच में और भी अनेक बातें हैं। यहाँ तो एक ओर की थोड़ी–सी चर्चा है।''

ब्रह्मा, विष्णु, शिव कल्पना नहीं है; सभी हैं

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया–''अच्छा, माँ शिव, विष्णु–ब्रह्मा ये सब क्या सचमुच हैं या केवल कल्पना है?'' माँ ने कहा–''सब हैं।'' उपस्थित एक दूसरे व्यक्ति ने कहा–''उनके हाथ, पैर हैं; ऐसा सुनने में आता है, यह क्या सत्य है? क्या वह उनकी मूर्ति है?'' माँ ने कहा–''**सब सत्य है, जब तक दृष्टि तब तक सृष्टि है, सृष्टि, स्थिति और लय ये तीन मूर्तियाँ ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। यदि कल्पना कहो तब तो तुम लोग भी कल्पना हो, सब कुछ कल्पना है। जैसे अमुक जमींदार का अमुक** गाँव कहा जाता है वैसे ही ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक है।'' फिर हँसते–हँसते कह रही हैं–''सृष्टि, स्थिति और लय सदा ही होते है।''

आज ही दोपहर के समय ज्योतिष दादा एक ओर सोकर खर्राटे ले रहे थे और वहीं बहुत–सी महिलाएँ बैठकर भजन गा रही थी। माँ ने हँसते हुए कहा–''यह देखो, इतने निकट इतना हल्ला हो रहा है किन्तु ज्योतिष बाबू कुछ भी नहीं सुन रहा है; साधारण नींद में ही यहि यह अवस्था हो सकती है तो उस ओर जाकर यदि अवस्था में परिवर्तन हो तो न जाने क्या–क्या हो सकता है। कोई भी लौकिक व्यापार उनके समीप पहुँच ही नहीं सकता। यह देखो उसका एक प्रमाण।'' इस प्रकार वार्तालाप के बाद सब लोगों ने विदा ली।

दोपहर के समय महिलाओं ने आकर कमरा भर दिया। आश्चर्य इस बात का है कि सभी के हृदय में एकमात्र यही भाव जग रहा है कि माँ

साक्षात् भगवती हैं। वे फूल चढ़ाते-चढ़ाते 'कालिका', 'जगदम्बा' आदि नाम लेते तथा विविध मन्त्र पढ़ते हुए माँ के ऊपर फूलों की वृष्टि कर रही हैं। इस देश की मिठाई, बताशा और फल बार-बार जमा हो रहे हैं और वितरित किये जा रहे हैं। कैलास के निकट की लड़कियाँ भी आई हैं। उनमें कोई यहाँ मिशन स्कूल में पढ़ाती हैं, कोई पढ़ती हैं। महिलाएँ दोनों समय आती हैं। उनमें एक लड़की का नाम नन्दा है, इनमें अधिकतर छात्राएँ ही हैं। नन्दा ने अपने जीवन की कथा माँ से कही, बड़ी सुन्दर कहानी है। उसने कहा- ''माँ मैं जब पहले-पहल इस प्रदेश में आई, उससे पहले हमारे उस देश से और कोई इधर नहीं आया था।''

बंगाल की लड़कियों की तरह यहाँ की लड़कियाँ भी माँ के पास ही रहना चाहती हैं

''मेरे पिता हम दो बहनों को पढ़ाने के लिए यहाँ ले आये, तब मेरी अवस्था 13 वर्ष की थी। 10 वर्ष की अवस्था तक मैं घर में ही पढ़ती थी, भय से बाहर निकलती ही नहीं थी। स्कूल देखने के लिए इन्स्पेक्टर आते तब मैं टेबिल के नीचे जाकर छिप जाती थी, वह जबरदस्ती मुझे निकालकर कितने प्यार से गोदी में बैठाते थे। अब तो और भी कई लड़कियाँ हमारे वहाँ से आई हैं, किन्तु उस समय केवल हम दो बहनें ही आई थी। मेरी बहन यहाँ आते ही मर गई।'' लड़कियों का बहुत शिष्ट व्यवहार और नम्र स्वभाव है। अच्छी शिक्षा दी गई है। गाना-बजाना भी जानती है। माँ के समीप उसने भजन गाकर सुनाया। दो एक गाने मैंने लिख लिये। मुझे मालूम हुआ कि बंगाल के समान यहाँ की छोटी लड़कियाँ भी माँ के समीप बैठने का सुयोग छोड़ना नहीं चाहती हैं। एक बार बैठ जाने पर फिर कोई भी टस-से-मस नहीं होती। कोई माँ की देह दबाने बैठ गई। भावना यह है कि निकट बैठकर माँ का स्पर्श कर सकें।

बाहर सड़क पर निकलते ही दोनों ओर से बहुत से लोग हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम करते हैं। माँ सिर्फ एक बार हरिराम आदि के साथ यहाँ आकर एक दिन रही थी। हरिराम का मकान यहीं है। माँ देहरादून से आकर एक बार नैनीताल और अल्मोड़ा गई थी। तब हम लोग साथ नहीं थे। अपराह्न के समय देवीदत्त की (उनका मकान यहीं है) दो भतीजियाँ आई;

दोनों लड़कियाँ ऐसी सुन्दर बंगला बोलती हैं, मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ। सुना है कि सिर्फ 6 महीने तक शान्तिनिकेतन रही हैं, इसी बीच में उनकी इतनी अधिक भाषा की उन्नति हुई है। देवीदत्त सबको साथ लेकर थोड़ी देर शहर दिखाने को बाहर निकले। रामकृष्ण मिशन देखा। सुना है कि 2-3 अमेरिकन इस आश्रम में रहकर साधना कर रहे हैं। वे और थोड़ा नीचे रहते हैं। इसलिए हम लोग फिर वहाँ नहीं उतरे। सन्ध्या समय हम लोग लौट आये। हम लोगों की साथिन अंग्रेज महिला एक अमेरिकन को साथ लेकर माँ के निकट आईं, अमेरिकन ने धोती पहनी है, चादर ओढ़ी है और पगड़ी बाँधी है। माँ को प्रणाम कर दोनों बैठे। मेम साहिबा ने कहा-"यह मेरे एक मित्र है।" बंग्ला भाषा जानते नहीं इसलिए माँ के साथ विशेष वार्तालाप नहीं हुआ। कुछ देर बाद वे दोनों विदा हुए।

आत्मज्ञानियों की शक्ति की बात, दूसरे के मन की बात जानना विशेष कुछ नहीं है

इस देश के भद्र-पुरुष माँ को चारों ओर से घेरकर मन्दिर में आ बैठे हैं। एक भद्र-पुरुष माँ से कह रहे हैं-"माँ, जो आत्मज्ञानी हैं उनके लिए तो जाड़ा-गर्मी कुछ होते नहीं, आप कम्बल का क्यों उपयोग करती हैं?" माँ ने भी हँसते हुए कहा-"आप जैसे हैं मैं भी वैसी ही हूँ, किसने कहा आत्मज्ञानी?" उस भद्र-पुरुष ने कहा-"आपके निकट इतने लोग क्यों आते हैं?" माँ ने हँसते हुए कहा-"क्यों आते हैं, जानते हैं, **मैं सभी को अपना एक पिता समझती हूँ इसलिए लड़की के तुल्य इस शरीर से आप सभी स्नेह करते हैं इसलिए आते हैं।** मैं तो कुछ भी नहीं करती हूँ, खाती-पीती हूँ और घूमती-फिरती हूँ।" यह कहकर बच्चों की सी स्वाभाविक हँसी से माँ ने सबको मोह लिया। वही व्यक्ति फिर कह रहे हैं-"अच्छा जो आत्मज्ञानी हैं, उनमें तो कितनी अधिक शक्ति रहती है। आप वृष्टि बंद कर सकती हैं। हमारे मन की बात आप जान सकती हैं तब फिर पूछने की क्या आवश्यकता हैं?" तुरन्त माँ ने कहा-"मेरी बात छोड़ दीजिए; मैं तो आपकी लड़की हूँ। किन्तु वर्षा बन्द करने अथवा मन की बात जानने के लिए आत्मज्ञानी होने की आवश्यकता नहीं है। फिर जो मन की बात जानकर उत्तर देने की बात कहते हैं-जो बाहर की बात लेकर आते हैं उनके साथ बाहर ही

बातें होती हैं और जो भीतरी बातें समझ सकते हैं उनके साथ भीतर ही भीतर प्रश्नोत्तर हो जाते हैं। वह तो कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे टेलीफोन, यहाँ एक यन्त्र बैठाया रहता है, जहाँ खबर पहुँचेगी वहाँ एक दूसरा यन्त्र लगा रहता है, बात-चीत हो जाती है।'' हरिराम की जाति-बिरादरी के एक भाई जज हैं। वह एकान्त में माँ के साथ बातें करने के लिए आए हैं। चुपचाप बैठे थे, उन्होंने हाथ जोड़कर कहा-''माँ, आपने मेरे हृदय की बात कही है, यह अत्यन्त सच बात है।''

कर्म बिना किये महात्माओं की कृपा का अधिकार नहीं होता

जो व्यक्ति माँ के साथ वार्तालाप कर रहे थे उन्होंने कहा-''अच्छा माँ, महात्माओं के दर्शनों से ही सब कुछ हो जाता है। और आप सबसे कह रही हैं कि कर्म करो, फल पाओगे। सो क्यों? हम लोगों ने जब आपके दर्शन कर लिये हैं तब तो हमारा अपने आप ही सब कुछ हो जाना चाहिये।'' माँ ने कहा-**''सत्य है, दर्शन करने से सब कुछ हो जाता है किन्तु दर्शन कहाँ हो रहे हैं? दर्शन करने के अधिकारी होने के लिए ही मैं कर्म करने को कह रही हूँ। कर्म न कर बातों से कुछ भी नहीं होगा।** मैट्रिक पास किया नहीं और एम.ए. की खबर पूछते हैं इससे कुछ भी लाभ नहीं है। सब लोग थोड़ा कष्ट सहन करो, देखोगे अवश्य ही फल मिलेगा।'' उन्होंने कहा-''महात्मा लोग ही सब कुछ कर दे सकते हैं, आपको भगवान् ने महात्मा बना दिया है, आप हम लोगों को क्यों नहीं बना देती है?'' माँ ने कहा-''ठीक है, आप और कुछ न करें, सदा यही सोचें कि हमारा जो कुछ करणीय है महात्मा ही कर देंगे।'' वह आदमी हँसकर बोले-''मुझमें यदि वह शक्ति रहती तो होता ही, कृपा करके आप क्यों नहीं करती हैं? मैं ही यदि सब करूँ तो महात्माओं की कृपा का मतलब ही क्या हुआ ?'' तब जज साहब धीरे से बोले-''आप जो इतनी बातें पूछ रहे हैं यह भी तो उनकी कृपा ही है; यह जो रात के 11 बजे तक यहाँ बैठकर माँ की कृपा-प्रार्थना करने की इच्छा आपको हो रही है यह भी तो कृपा ही है, इसका आपको अनुभव नहीं हो रहा है? हम कितनी ही कृपा क्यों न प्राप्त करें पर हमें अनुभव नहीं होता, क्योंकि हम लोग अधिकारी ही नहीं हुए हैं। इसलिए कर्म करके अधिकारी बनने के लिए ही माँ कह रही हैं।''

सृष्टि, स्थिति, लय उन्हीं की लीला है, इसमें पक्षपात नहीं है, कर्म–फल ही लोग भोग रहे हैं

वह सज्जन आगे कहते हैं–''अच्छा माँ, सवेरे आपने कहा था कि सृष्टि, स्थिति और लय भगवान् ही करते हैं। किन्तु सृष्टि में इतनी जो विषमता है, यह क्या उनका पक्षपात नहीं है? और यदि वह यह जानते हैं कि यह मिथ्या है तब हम लोगों से ऐसा खेल कराकर हमें परेशान करने का क्या अर्थ है? फिर कभी–कभी हम लोग जानकर भी क्यों उस खेल में रत रहते हैं, इसका क्या कारण है?'' माँ ने कहा–''हम लोग ठीक–ठीक नहीं जानते। यदि हम लोग ठीक–ठीक जान लें तो कभी भी खेल में आसक्त नहीं हो सकते, खेल सकते हैं, पर उसमें डूबे नहीं जा सकते। जीवन्मुक्त पुरुष भी खेलते दिखाई देते हैं। किन्तु **उस खेल में उनका कोई भोग नहीं है।** इसलिए नूतन कर्मों की सृष्टि भी नहीं कर सकते। प्रारब्ध–वश अपने आप ही खेल बंद हो जाता है। जैसे कुम्हार का चाक–धुमाना बन्द कर देने पर भी कुछ देर चलता है, वैसे ही यदि हम लोग आग में हाथ डालें तो हाथ जल जायेगा, यह निश्चय जानते हैं फिर भी क्या हम आग में हाथ डालते हैं? इस प्रकार निश्चय जानने पर कोई वैसा काम नहीं करता। **हम लोग दूसरों की जबानी सुनकर या पढ़कर जानते मात्र हैं निश्चित विश्वास कहाँ है?** और जो पक्षपात कहते हैं, हम लोग पक्षपात लिए हुए हैं इसीलिए पक्षपात का दोष उन्हें भी देते हैं। वास्तव में क्या उनमें पक्षपात दोष रह सकता है? एक के सिवा जब दूसरा कोई है ही नहीं तो किसके साथ पक्षपात–अपक्षपात करेंगे? और किसको परेशान करेंगे? वे स्वयं ही नाना रूपों में क्रीड़ा कर रहे हैं, यह उनकी लीला है। हम ही यदि एक हाथ कम्बल के भीतर रखें और दूसरे हाथ को बाहर रखें तो उस पर जैसे एक हाथ कह सकता है कि देख मुझे कैसे गरम में रखा है, मुझे प्यार करते हैं और दूसरा हाथ कहे कि मुझे ठण्डे में रख छोड़ा है, वह जैसा मेरा पक्षपात है आप भी वैसा ही कह रहे हैं। वास्तव में सुख–दुःख, आनन्द–निरानन्द एक ही भाव का खेल मात्र है और कुछ नहीं है। सृष्टि ही एक लीला–क्रीड़ा है। जैसे आप एक बार अपने खुले शरीर को पौशाक पहनाकर ढ़क लेते हैं, नौकरी करने जाते हैं, फिर उस पौशाक को इच्छानुसार छोड़कर नंगे–बदन हो जाते हैं; वैसे ही **वे अपने में स्वयं ही आवृत्त होकर नाना प्रकार**

से नाना रूपों में खेल कर रहे हैं, इसमें पक्षपात कहाँ से आएगा?'' भद्रपुरुष कह रहे हैं-''हम लोग तो कष्ट पाते हैं।'' माँ ने कहा-''देखिये आप मुक्त थे, स्वयं ही विवाह किया, बाल-बच्चे हुए, अब फिर कह रहे हैं कैसे मुक्त होंगे, जैसा काम आपने किया है, अब उसका फल भी भोगना ही होगा। आनन्द पाने पर ही निरानन्द भी भोगना पड़ेगा। **जहाँ आनन्द नहीं है, वहाँ निरानन्द भी नहीं है।** जैसे जीवन्मुक्त अवस्था में बाहर का सब कुछ काम हो जाता है किन्तु आनन्द अथवा निरानन्द कुछ भी नहीं है।'' विविध बातों के सिलसिले में-भोलानाथजी के एक मस्तक-शून्य मूर्ति देखकर माँ से कहने पर माँ ने उन्हें तारापीठ जाने की बात कही थी एवं वहाँ जाकर भोलानाथजी ने देखा था कि वास्तव में ही वहाँ तारामूर्ति का मस्तक अलग से चाँदी का लगाया जाता है और रात में खोलकर रख दिया जाता है-वे सब बातें भी माँ ने कही। रात्रि में लगभग 1 बजा हुआ देखकर सब लोगों ने अनिच्छा से ही माँ से विदा ली। हम लोग भी सो गये। कल उत्तर-वृन्दावन, यहाँ से 14 मील दूर मिसेज चक्रवर्ती से भेंट करने के लिए जाने का निश्चय हुआ है।

माँ सब अवस्थाओं में समाधिस्थ रहती हैं

12 वैशाख, रविवार- 11 बजे डांडी से 'उत्तर-वृन्दावन' जाने की बात है। खाने-पीने से निबटकर सब तैयार हैं। मेम साहिबा को भारतवर्षीय सब महात्माओं के दर्शनों के लिए विशेष आग्रह हैं। मिसेज चक्रवर्ती का पता उनके पास है। मिसेज चक्रवर्ती की सेवा में एक अमेरिकन हैं। वह प्रोफेसर थे, उनके दर्शन करने की भी मेम साहिबा को बड़ी इच्छा है। एकाएक मेम साहिबा ने आकर खबर सुनाई कि मिसेज चक्रवर्ती के साथ जो अमेरिकन साहब रहते हैं वह कहीं चले गये हैं। इसलिए मेम साहिबा को वहाँ जाने का आग्रह कम हो गया। कल वह आयेंगे किन्तु हम लोग कल ही नैनीताल लौट जायेंगे। मेम साहिबा माँ को साथ लेकर आई हैं और माँ के साथ ही नैनीताल लौटना चाहती हैं। नहीं तो एक दिन ठहरकर उनसे भेंट करके जा सकती थी। यहाँ के एक 'डिपुटी पोस्टमास्टर जनरल' हम सब लोगों के 'उत्तर-वृन्दावन' जाने का खर्च देने को प्रस्तुत थे। किन्तु जाना नहीं हुआ। माँ अपने आसन पर बैठी हैं। कल से माँ का खयाल है कि 'वे लोग नहीं हैं, जाना नहीं होगा', किन्तु रोका नहीं। क्योंकि वह कहती हैं-

''जितना कर्म होने को है उसका हो जाना ही आवश्यक है। उसमें रुकावट डालना ठीक नहीं है क्योंकि सभी का एक प्रयोजन है।'' इसीलिए वह किसी में भी विशेष आग्रह या निग्रह का भाव नहीं प्रकट करती। साधारणत: जब जो-जो कुछ करते हैं, उसी में योग देती हैं। आज भी महिलाएँ आकर माँ को प्राय: चारों ओर से घेरकर बैठी। माँ के ऊपर फूल चढ़ाकर माँ को प्राय: ढक दिया। फल, मिठाई जिसे जो मिला, लाकर माँ के चरणों में अर्पण कर रही हैं। वे सब एक-एक सन्तरा, केला इत्यादि लाई हैं। तदनन्तर माँ से 'आप कालिका हैं, आप सर्वशक्तिमयी हैं'-यह कहकर माँ का भजन गा रही हैं। अनेक भद्रपुरुष भी आये हैं। गत दिन के वह सज्जन भी आये हैं। माँ से कह रहे हैं-''माँ, समाधि में ही अधिक आनन्द है या यह जो सर्वसाधारण के साथ बाहरी व्यवहार होता है, इसमें अधिक आनन्द है?'' माँ ने कहा- ''समाधि में अधिक आनन्द होने से ही सब लोग महात्माओं के समीप उस तत्त्व को जानना चाहते हैं। फिर देखा जाता है कि व्यावहारिक जगत् में जो लोग विचरण करते हैं उनको स्थायी आनन्द नहीं मिलता- वे अशान्ति का ही अधिक भोग करते हैं। और **साधु महात्मा, जो समाधिस्थ हो सकते हैं, उन्हें एक प्रकार का आनन्द सदा ही रहता है। ऐसा आनन्द रहता है कि उनके दर्शनों से ही लोगों को आनन्द प्राप्त होता है।**'' उस आदमी ने कहा-''ऐसी स्थिति में आप सदा समाधि में क्यों नहीं रहती?'' माँ इस बात पर खिलखिला कर हँस पड़ी। और बोली-''मैं तो आपकी लड़की हूँ।'' अखण्डानन्दजी पास में थे, उन्होंने कहा-''**माँ सर्वदा समाधि में ही रहती हैं।** यह जो आपके साथ बातें कर रही हैं या कभी पड़ी रहती हैं, कभी टहलती हैं अथवा चलती हैं-सर्वदा माँ की समाधि अवस्था है।'' माँ ने हँसकर कहा-''देखो, इस कथन में प्रमाण क्या है? मैं तो आप ही के तुल्य एक व्यक्ति हूँ।'' वह व्यक्ति माँ की ओर निहार-निहारकर गंभीरता से बोले-''नहीं, ऐसी बात नहीं है-उसे आपका चेहरा ही प्रमाणित करता है।'' माँ फिर हँसते हुए बोली-''किस तरह? आपके तुल्य ही तो मेरे हाथ, पैर, मुख-सब है।'' किन्तु उस व्यक्ति ने इस कथन से सहमत न होकर केवल सिर हिलाकर अस्वीकार किया। धीरे-धीरे अनेक लोग माँ से विदा ले रहे हैं। एक व्यक्ति उठकर खड़े हुये, जायेंगे। माँ ने कहा-''पिताजी क्या आप भी चले?'' उक्त सज्जन ने कहा- ''हाँ माँ, आप लेटें, मैं जाता हूँ।'' माँ ने हँसकर कहा- ''सुनिये, मैं तो सदा ही सोई रहती हूँ। आप लोगों के साथ जो वार्तालाप

कर रही हूँ- यह भी सोई हूँ।'' वह प्रणाम कर विदा हुए। कुछ देर बातें कर माँ भी चादर से सिर ढककर लेट गई। लगभग 12 बजे स्त्रियाँ आकर धीरे-धीरे माँ को चारों ओर से घेरकर बैठी। माँ लेटी ही हैं। लगभग 1 बजे माँ उठ बैठी। महिलाएँ माँ के साथ नाना प्रकार से आनन्द लूट रही हैं। माँ फूल, फल कभी इधर-उधर फेंककर बच्चों के साथ खिलवाड़ कर रही हैं। इस आनन्द में माँ नाम-कीर्तन करने को कह रही हैं। माँ बोली- ''बोलो हरे कृष्ण हरे राम-खाली जिह्वा क्या काम। नाम-कीर्तन करो, ''कहो जिन जनम दिया, कहो राम सिया।''

माँ को थोड़े समय के लिए छोड़ देने पर भी भक्तों को कष्ट

इस प्रकार तरह-तरह से माँ आनन्द करने लगी। एक बार मैं माँ को उठाकर लघुशंका के लिए बाहर ले गई हूँ। माँ के लौटकर आते ही सब कह रही हैं-''माँ जैसे वर के बिना बारात होती है, वैसे ही आपके चले जाने पर यहाँ की अवस्था हुई थी। इन दो मिनटों में ही सारा आनन्द निरानन्द में परिणत हो गया था।'' एक कह रही है-''माँ, आप एक स्वामी हैं और हम सब आपकी स्त्रियाँ हैं।'' माँ तुरन्त हँसते-हँसते कह रही हैं- ''इतनी स्त्रियों को मैं क्या खिलाऊँगी?'' सब एक साथ हँसती हुई हाथ जोड़कर बोली-''माँ, आपकी कृपा से ही सब अपने-अपने घर खा आती हैं।'' माँ ने कहा-''फिर तुम सब मिलकर मेरे एक स्वामी हो, मैं स्त्री हूँ।'' सबने इन्कार कर कहा-''नहीं माँ, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। आपकी छाया में ही हम हैं, आप ही हमारे स्वामी हैं।'' माँ हँस रही हैं और कह रही हैं-''अच्छा लो, जो मेरी स्त्री हों वे तो एकमात्र यह फल-फूल ही पायेंगी।'' यह कहकर अपने शरीर पर पड़े फूल और फल बिखेर रही हैं। उन्हें लेने के लिए लूट पड़ गई। माँ के चरणों के फूल लेने के लिए सब हाथ फैलायी हुई हैं।

'उत्तर-वृन्दावन' न जा सकने के कारण काली-मठ गमन और प्रत्यावर्तन

यह सब आनन्द चल रहा है- इसी बीच में डांडियाँ आई। जो डांडियाँ 'उत्तर-वृन्दावन' जाने के लिए तैयार थी। उन्हीं डांडियों को लेकर सब लोग माँ के साथ भ्रमण करने बाहर निकले। अंग्रेज महिला भी हमारे साथ-साथ चली। 'डिपुटी पोस्टमास्टर जनरल' महाशय और देवीदत्त, श्रीनिवास आदि

और भी बहुत से लोग साथ-साथ पैदल चले। सुना कि चार मील दूर काली मठ है, वहाँ लिये जा रहे हैं। रास्ते का दृश्य क्या ही सुन्दर है। थोड़ी दूरी का मार्ग कंटकाकीर्ण जंगल भी है। कल अंग्रेज महिला जिस अमेरिकन साहब को साथ लेकर माँ के पास आई थी रास्ते में ही उनका आश्रम है। वह एकान्त में साधना करने के लिए यहाँ रहते हैं और भी कई एक स्त्री-पुरुष वहाँ रहते हैं। हम लोगों के वहाँ पहुचते ही अमेरिकन साधु ने समीप में आकर माँ को प्रणाम किया एवं हम लोगों के साथ-साथ काली-मठ चले। इस बार मैंने अच्छी तरह ध्यान देकर देखा कि बंगालियों की तरह कपड़े पहने हुए हैं, एक मोटा पंजाबी कुर्ता पहने हैं। सभी कपड़े गन्दे हैं। साहब ने कहा- जल बहुत दूर है इसलिए कपड़े साफ करना मुश्किल है। कपड़े भी सिले हुए हैं। हाथ से काम करते-करते गन्दे हो गये हैं। अच्छे दिखाई देते हैं। हम लोग काली मठ पहुँचे। बड़ा सुन्दर एकान्त स्थान है; चारों ओर का दृश्य भी बड़ा मनोहारी है। मेम साहिबा ने माँ का फोटो लिया। फिर भोलानाथजी और माँ का फोटो तथा मेरे और मुन्नी के साथ माँ का फोटो खींचा, तदनन्तर भोलानाथजी के कहने पर भोलानाथजी और माँ के बीच में मेम साहिबा को बैठाकर एक फोटो अमेरिकन साहब से खिंचवाया। तदुपरान्त फिर सब लोग लौटे। मार्ग में एक जर्मन चित्रकार के मकान में मेम साहिबा गयी, सुना चाय का निमन्त्रण था।

थोड़ी देर बाद मकान मालिक सपत्नीक आकर माँ को और हमें अपने मकान में ले गये। वहाँ एक स्पेन देश की लड़की को हमने देखा। सुना अपने देश में युद्ध का आतंक होने के कारण लड़की अकेली ही भारतवर्ष चली आई है। वह कहती थी-''पश्चिमी संसार बहुत बर्बर है। वहाँ शान्ति प्राप्त नहीं होती। भारतवर्ष में आकर मैं बहुत शान्ति पा रही हूँ।'' दूसरे भी एक साहब यू.पी. के भद्रलोग जैसी पौशाक पहनते हैं, वैसी ही पौशाक पहने हैं। सुनने में आया कि ये 'उत्तर वृन्दावन' में मिसेज चक्रवर्ती के आश्रम में रहते हैं। जर्मन दम्पत्ति, पूर्वोक्त स्पेनिश लड़की तथा मिसेज चक्रवर्ती के आश्रम के साहब ने भूमि पर माथा टेककर बंगालियों की तरह माँ और भोलानाथजी को प्रणाम किया। माँ घर के अन्दर नहीं जायेंगी इसलिए बाहर ही बैठने की जगह कर दी। अपने बनाये हुए सब चित्र लाकर उन्होंने माँ को दिखाये। बुद्धदेव, स्वामी सारदानन्द, स्वामी शिवानन्द आदि अनेक के

चित्र अंकित किये हुए हमने देखे। तदुपरान्त गृहस्वामिनी ने नौकर से सन्तरे का शर्बत मँगाकर सबको पीने को दिया। पीतल के प्लेटें और पीतल के ही कटोरे, गिलास आदि बर्तन मँगाकर सबने शर्बत पीया। बहुत देर तक वहाँ बैठे रहे। इस मकान से भी चारों ओर का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता है। बहुत ही शान्त स्थान है। वहाँ से हम सब लोग धर्मशाला में लौटे। साहब, साधु और मेम साथ ही हैं? मेम ने कहा- ''सात बजे रामकृष्ण मिशन से एक साधु माँ के पास आयेंगे इसलिए वह भी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीनिवास ने लड़कियों को साथ लेकर बढ़िया कीर्तन किया। ठीक समय पर रामकृष्ण मिशन के एक साधु आये। साथ में डॉक्टर बाबू और उनकी अमेरिकन पत्नी आई। इनका रामकृष्ण मिशन से सम्पर्क है। कुछ विशेष बातें नहीं हुई; पर माँ से कल नैनीताल लौटते समय मार्ग में डॉक्टर साहब के मकान पर जाने के लिए अनुरोध कर गये। धीरे-धीरे सभी विदा हुए। कल नैनीताल लौटने का निश्चय है। आज भी रात को लगभग 9 बजे जज साहब तथा अन्यान्य अनेक लोग आकर बैठे हैं। किन्तु माँ चुपचाप लेटी हैं। विशेष वार्तालाप कुछ नहीं हुआ। रात को लगभग 11 बजे सब लोगों ने माँ से विदा ली। माँ को चुपचाप देखकर ही धीरे-धीरे सब लोग उठ गये।

सब ठीक रहे तो कैलास जाना स्वीकार है

13 **वैशाख, सोमवार-** प्रातःकाल माँ के उठने के पहले ही नन्दा देवी के मन्दिर के आँगन में मास्टर लोग लड़कों को खड़ा कर स्तोत्र पाठ करा रहे हैं। माँ उठकर बाहर गई। लड़के स्तोत्र-पाठ के बाद कतार बाँधकर स्कूल को लौट गये। माँ कमरे में आकर बिछौने पर बैठी। दर्शनार्थी लोग आ रहे हैं। मैं जल्दी-जल्दी खाना बनाने में व्यस्त हूँ, बातचीत कुछ अधिक नहीं सुन पाई। लगभग 12 बजे हम लोग रवाना हुए। गर्ब्यांग की लड़कियाँ आई हैं। सभी बहुत अनुरोध कर रही है कि माँ एक बार कैलास अवश्य पधारें, हम माँ के साथ-साथ जाकर सब दिखा देंगी। मई या जून में कैलास का मार्ग खुलेगा। अल्मोड़ा होकर जाना पड़ता है। एक तरह से बात पक्की हो गई कि यदि सब ठीक-ठीक रहे तो कैलास में जाना हो सकता है। उन लड़कियों को बड़ी खुशी हुई। माँ के साथ वे भी डॉक्टर बाबू के घर पर चली। यह जगदीश बाबू के एक छात्र हैं। उन्हें माँ को लेबोरेटरी दिखाने

की इच्छा है। मोटर द्वारा हमारे उनके मकान में जाते ही दम्पती, कल जो साधु गये थे (उनका नाम रामस्वामी है) वह और रामकृष्ण मिशन के और भी दो स्वामी (एक अमेरिकन) माँ के पास आकर बड़े आनन्द से प्रार्थना कर माँ को ले गये। डॉक्टर बाबू ने कमरे में जाकर यन्त्रादि देखने के लिए माँ से अनुरोध किया, किन्तु माँ ने हँसकर अस्वीकार किया। माँ को फूलों के बाग में बैठाया गया। साथ ही साथ-साथ भद्रपुरुष तथा श्रीनिवास आदि भी अनेक लोग गये हैं। तीन साधु माँ के निकट खड़े होकर खूब आनन्द प्रकट कर रहे हैं। रामस्वामी ने अमेरिकन साधु की ओर संकेत कर कहा-''इन्हें भी कल आपके समीप जाने की अति उत्कण्ठा थी, किन्तु रुग्ण होने के कारण नहीं जा सके। आज आप यहाँ आएँगी, सुनकर बहुत प्रसन्न होकर आए हैं। नन्दादेवी का मन्दिर बहुत दूर है इसलिए जाने का इन्हें साहस नहीं हुआ। किन्तु आश्चर्य की बात है कि मैं इतना वृद्ध हूँ किन्तु मुझे जाने में तनिक भी कष्ट नहीं हुआ, इसका क्या कारण है यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।'' माँ ने हँसते हुए कहा-''सभी तो उस एक का ही खेल है।'' उन्होंने कहा-''बात तो वही है माँ, पर भीतर कुछ मलिनता रहने पर ही हम वह नहीं समझते हैं। परमहंसजी कहते थे, सुई में तागा देते समय थोड़ा भोतरा रहे तो नहीं दिया जाता।'' माँ ने कहा- ''बिल्कुल ठीक है।'' थोड़ी देर बाद ही माँ रवाना हुई। साधु लोगों ने मोटर के पास तक आकर माँ को बैठा दिया। अमेरिकन साधु हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगे-''मेरा बड़ा ही सौभाग्य है कि आपके दर्शन प्राप्त हुए।'' रामस्वामी भी माँ से ऐसा ही कहने लगे। माँ ने कहा-''आप लोग ऐसा क्यों कहते हैं? मैं तो आप लोगों की लड़की हूँ, इसी भाव से देखें।'' तुरन्त रामस्वामी ने कहा-''यह कैसे हो? आप तो हम लोगों की माँ हैं।''

नैनीताल यात्रा, पहाड़ी लड़कियों को माँ के वियोग का कष्ट

हम लोग नैनीताल को रवाना हुए। मोटर छोड़ते समय कैलास की 4-5 लड़कियाँ साथ ही थी, वे रोने लगी। उनमें प्रत्येक कह रही है-''इसी समय माँ के साथ चले जाने की इच्छा हो रही है। हम लोग लिखना-पढ़ना सीखकर माँ के निकट जाकर काम करेंगी।''

मैं आश्चर्य में पड़कर विचार कर रही हूँ कि 2-3 दिनों की मुलाकात से इन पर्वत-निवासिनी युवती महिलाओं को माँ के पास से क्या मिला? ये

जैसी सरल हैं; उससे इनका यह व्यवहार आश्चर्यजनक नहीं है। मुझसे लिपटकर फिर आने के लिए पुनः-पुनः अनुरोध कर रही हैं। कह रही हैं- ''आप लोगों के कैलास जाते समय हम लोग साथ चलकर मार्ग की बरफ हटाकर आपका मार्ग साफ कर देंगी।'' इनके सरल हार्दिक प्रेम ने हृदय पर आघात किया। माँ की शक्ति देखकर मैं केवल मन-ही-मन मुग्ध हो रही हूँ। ये भाषा तक भली-भाँति नहीं समझती हैं- तिस पर यह रोना! एक बात लिखना भूल गई हूँ-स्कूल के लड़कों को देखकर माँ को खयाल आया-बोली, ''सबको नाम लिखने के लिए एक-एक कापी खरीदकर दे दी जाये। प्रात:काल वे उसमें भगवान् का नाम लिखकर फिर दूसरा काम करेंगे।'' वही किया गया- 145 लड़के हैं। सभी को एक-एक कापी खरीदकर दे दी गई। यह व्यय जज साहब ने वहन किया। उन्होंने विशेष आग्रह कर यह व्यय किसी दूसरे को देने नहीं दिया।

सब भूतों में ही एक अभिन्न चैतन्य है; मनुष्यों में भगवान् का विशेष प्रकाश है, जिस भाव में सृष्टि, उसी भाव में लय, जैसे जिस रास्ते से नैनीताल जाना होता है उसी रास्ते से ही लौटा भी जाता है

गाड़ी में बैठकर मेम साहिबा माँ से प्रश्न कर रही हैं। ज्योतिष दादा दोनों को, दोनों की बातें समझा रहे हैं। मेम साहिबा ने पूछा-''ये जो पशु-पक्षी, पेड़-पौधे हैं, इनमें जो चैतन्य सत्ता है एवं मनुष्यों में जो चैतन्य सत्ता है, क्या वे अभिन्न हैं?'' माँ बोली-**''अभिन्न ही तो है, जैसे एक ही शून्य में हम लोग हैं, शून्य स्थान को काटकर विभक्त नहीं किया जा सकता-ठीक वैसे ही।''** मेम साहिबा ने पूछा- **''अच्छा सब में एक चैतन्य सत्ता है, क्या आप उसका अनुभव कर सकती हैं?''** माँ ने कहा-**''यह तो अत्यन्त स्वाभाविक बात है।''** मेम साहिबा ने कहा-''कभी-कभी मेरे मन में आता है कि वृक्ष बातें कर सकते हैं। जिस समय वायु बहती है उस समय सभी भूत एक अभिन्न हैं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है-वृक्ष बातें करते हैं।'' माँ ने कहा-**''पेड़ बातें भी कर सकते हैं यह भी सच्ची बात है।''** मेम साहिबा ने कहा- ''अच्छा, मनुष्यों में जो चैतन्य शक्ति है और पशु-पक्षियों में जो चैतन्य शक्ति है वह क्या एक ही तरह की है? पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी क्या भगवान् की आराधना कर सकते हैं?'' माँ ने कहा-''सभी कुछ तो भगवान् में हैं; वे भी उन्हीं को लेकर हैं। मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है, जैसे शिशु रूपी अज्ञानी मनुष्य को भी

शिक्षा द्वारा विद्वान बनाया जाता है- किन्तु पेड़ अथवा पशु को वैसा नहीं बनाया जा सकता। **मनुष्य में ही भगवान् का विशेष प्रकाश होता है।** तथा भगवान् की आराधना पेड़ या पशु मनुष्य के तुल्य नहीं कर सकते यह ठीक है, पर उनमें शान्ति और आनन्द की प्राप्ति है यह भी सत्य है। इनमें एक विशेष बात है, जैसे जड़ भरत हरिण हुए थे। जिन्हें पूर्वजन्म का स्मरण रहता है उनकी बात दूसरी है। इस प्रकार कभी पेड़-पौधे अथवा पशु-पक्षी भी भगवान् की आराधना करते हैं; यह विशेष बात है यदि किसी कारणवश कोई मनुष्य थोड़े समय के लिए पशु-पक्षी या पेड़-पौधा होता है तभी यह बात होती है।'' मेम साहिबा ने कहा-''अच्छा एक ॐ से ही जगत् की सृष्टि हुई, फिर उसमें जगत् का लय किस तरह से होता है?'' माँ हँसकर बोली- ''जिस तरह सृष्टि होती है, उसी तरह लय होता है। जैसे जिस मार्ग से नैनीताल से आये थे, फिर उसी मार्ग से नैनीताल जा रहे हैं।'' यह उत्तर सुनकर मेम साहिबा बहुत खुश हुई। माँ को किसी तरह की असुविधा न हो इस ओर उनका विशेष ध्यान है। बार-बार पूछ रही हैं-'' किसी तरह की असुविधा तो नहीं हो रही है।'' माँ के पैर के पास बक्स खींचकर रख रही हैं और उस पर माँ से पैर रखने को कह रही हैं। आज भी अपराह्न में माँ को एक संतरे का थोड़ा अंश खिलाकर स्वयं उसे खाने लगी। माँ कभी-कभी बच्चों की तरह 2-4 अंग्रेजी शब्द बोल रही हैं। सुनकर मेम साहिबा को बहुत आनन्द हो रहा है। माँ के विशुद्ध उच्चारण की प्रशंसा कर रही हैं। लगभग 6 घण्टे का रास्ता है। हम लोग 6 बजे के समय नैनीताल पहुँचे। मोटर के रुकते ही नैनीताल के भक्त दल ने वहाँ उपस्थित होकर चरण-वन्दना की। मेम साहिबा ने मार्ग में माँ से जिज्ञासा की थी कि अल्मोड़ा माँ को कैसा लगा? माँ ने उत्तर दिया-''सभी जगहें समान हैं, मुझे कुछ पार्थक्य प्रतीत नहीं होता।'' इस उत्तर से मेम साहिबा बहुत प्रसन्न हुई। यह बड़ी बुद्धिमती हैं। हम लोग मोटर से उतरकर तल्लीताल से नाव द्वारा मल्लीताल नयना देवी की धर्मशाला में आ पहुँचे। ताल की सीढ़ियों पर पर्वतीय महिलाओं का दल माँ की प्रतीक्षा में बैठा था। माँ के आते ही आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। सब ऊपर आकर माँ के साथ ही कमरे में बैठी। भजन शुरू किया। सन्ध्या के बाद धीरे-धीरे सब विदा हुई। आज रात को साढ़े नौ बजे सब सो गये। अखण्डानन्द स्वामी अपनी साधना में बैठे हैं।

अमेरिकन महिला की माँ के निकट अन्तर में साधु होने के आशीर्वाद की प्रार्थना

14 वैशाख, मंगलवार– प्रातःकाल माँ टहलने बाहर चली गई थी। लौटकर थोड़ा दूध पीया। 10 बजे के समय मेम साहिबा माँ के समीप आई। माँ को एक भक्त ने सिल्क की धोती, चादर दी थी; माँ ने उसे मेम साहिबा को दिया था। आज मेम साहिबा उसी को पहनकर आई हैं। ठीक तरह से नहीं पहन पाई हैं। माँ ने फिर मुझसे उन्हें ठीक तरह से कपड़ा पहनवा दिया। वह कितने ही प्रकार से कितनी ही भाषाओं में आनन्द प्रकट करने लगी। हाथ जोड़कर माँ से कह रही है–''आप आशीर्वाद दें कि आज आपने जो यह पौशाक बाहर से पहना दी है, भीतर से भी मैं इसके उपयुक्त हो सकूँ।'' मालूम होता है कि उनका विश्वास है कि भारतवर्ष की यह पौशाक पहनने पर ही अन्तर से साधु हुआ जाता है। एक साधु ने उन्हें एक ताँबे का कमण्डल दिया था। वह उस कमण्डल को साथ लेकर आई है। बहुत अच्छा दिखाई दे रहा था। माँ और हम सब लोगों को अमेरिका जाने का निमन्त्रण दे रही है। भोलानाथजी को देखकर कह रही हैं–''ये मुझे बहुत ही अच्छे लग रहे है। मैंने एक साधु को देखा था, इन्हें देखकर मुझे उस साधु का स्मरण हो रहा है।'' लगभग 1 बजे मेम साहिबा ने विदा ली। पर्वतीय स्त्रियाँ माँ के निकट नाच-गान करती थी; आज मेम साहिबा के निकट भी उन्होंने नाच-गान किया। दूसरी बार फिर 5 बजे मेम साहिबा आई हैं। वह साड़ी ही पहने हैं। माँ को साथ लेकर वह टहलने बाहर निकली। थोड़ी देर बाद ही लौटी। आज उनके जलपान का प्रबन्ध किया गया है। खूब आनन्द के साथ उन्होंने हम लोगों का देशी खाना खाया। रात को लगभग 9 बजे माँ को प्रणाम कर और खाने के लिए सबको धन्यवाद देकर उन्होंने विदा ली।

* * *

अस्सीवाँ अध्याय

15 वैशाख, बुधवार– आज भी प्रातःकाल माँ घूम आई। आज सायंकाल 6 बजे की गाड़ी से हम लोगों का बरेली जाने का निश्चय हुआ। कल क़ी एक बात लिखना भूल गई हूँ। कल जब माँ रात को बिछौने पर जाकर लेटी, तब हम लोग भी सोने का प्रबन्ध कर रहे थे। इस बीच में कम्बल की चर्चा छिड़ी। ज्योतिष दादा ने कहा–"कम्बल जब प्रचलित थे, तब शुद्ध कम्बल तैयार होते थे। आजकल न मालूम क्या-क्या मिला देते हैं। इस समय रजाई-तोषक ही अच्छे हैं।" इस बात को लेकर सब आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे थे। माँ ने कहा–" मरे पशुओं के रोएँ कम्बल में लगाते हैं।' यह कहकर हँसते-हँसते हम लोगों की ओर ताककर कह रही हैं–"देखो, मैंने जो कम्बल ओढ़े हैं, इनमें से एक कम्बल जिस दिन पहले-पहल ओढ़ा था तो रात में ऐसा मालूम पड़ा कि मोटे-ताजे कई भेड़े शरीर के समीप घूम रहे हैं। उनमें एक मरा हुआ भेड़ा भी था। इनके शरीर के ऊन का कम्बल मैंने ओढ़ा है, इसलिये ये आये हैं।"

बरेली गमन

फिर आंज सवेरे मुँह धुलाते समय माँ कह रही हैं–"आज गले में दर्द हुआ है। कल रात में जब सोई थी तब न जाने कहाँ-कहाँ गई थी? मैं समझ रही थी कि उसी समय ठंड लगने के कारण ही गले में दर्द हुआ था। प्रातःकाल जब टहलने को गई तो देखती हूँ कि सचमुच गले में दर्द हुआ है।" आज माँ सवेरे थोड़ा-सा दूध और फल खाकर ही रही। बोली–"आज दोपहर को खाने नहीं बैठूँगी। तुम सब लोग खा लेना। मेरा जब मन होगा मैं खा लूँगी।" वही हुआ। आज 6 बजे की गाड़ी से हम लोगों को बरेली रवाना होने का विचार है। हम लोग खाने-पीने से निवृत्त होकर तैयार हुए। तीन साढ़े-तीन बजे मोटर से रवाना होकर काठगोदाम पहुँचने में लगभग डेढ़ घण्टा लगता है, वहाँ से ट्रेन पकड़नी पड़ती है। माँ लगभग ढाई बजे खाने के लिए उठी। अनेक महिलाएँ आई हैं; कीर्तन आदि चल रहा है। माँ खाने के लिए आते ही कह रही है–"आज जब तुम रसोई

बना रही थी, तब मैं सोई थी, क्या देखती हूँ कि मूली की तरकारी के लिए मूली के टुकड़े तुमने सब गला डाले हैं।'' सचमुच भोलानाथजी ने खाने बैठते ही कहा है-''मूली अधिक पकने से कड़वी हो गई है।'' यद्यपि वे सब माँ के लिए अति क्षुद्र बातें हैं किन्तु हम लोगों का संशयपूर्ण हृदय है, इसलिए इन सब साधारण विषयों से आश्चर्यान्वित हो जाते हैं, सन्देह नष्ट हो जाता है। इसीलिए हम लोगों के निकट माँ की प्रत्येक बात मूल्यवान है। अत: जितना हो सकता है उतना लिख डालती हूँ। हमारी माँ सर्वज्ञा हैं, यह बात हम कतई भूल जाते हैं। अस्तु, खाने-पीने के बाद सवा तीन बजे हम लोग रवाना हुए। पर्वतीय महिलाएँ माँ की आरती कर रही हैं-साथ-साथ गीत गा रही हैं; गाने का तात्पर्य यह है कि तुम निर्भय होकर रहना, तुम अच्छी तरह रहना-इत्यादि। मानो आज वे अपनी पुत्री को दूर भेज रही हैं। हम लोग नाव द्वारा मल्लीताल से तल्लीताल आकर फिर मोटर से काठगोदाम को चले। पहले मेम साहिबा के चलने का निश्चय नहीं था किन्तु अंत में माँ के साथ बरेली जाने के लिए तैयार होकर वह भी साथ-साथ चली। साढ़े छ: बजे काठगोदाम से रवाना होकर लगभग साढ़े दस बजे हम लोग बरेली पहुँचे। मेम साहिबा ने ट्रेन में एक बहुत अच्छी बात कही। ज्योतिष दादा, माँ की बातें मेम साहिबा को समझाते समय उसे बहुत संक्षेप में कहते थे। मालूम होता है कि मेम साहिबा को उससे तृप्ति नहीं होती थी। इसीलिए वह आज दादा से कह रही हैं कि माँ इतनी अधिक बातें कहती हैं, पर आप संक्षेप में थोड़ा-सा कहकर चुप हो जाते हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। यह कहकर हँसने लगी। बरेली पहुँचने के 2-1 स्टेशन पहले ही बरेली से लोग आ पहुँचे हैं। सभी बहुत-सी मालाएँ लाये हैं। महारतन-प्रेमरतन आदि भी आये हैं। हम सब धर्मशाला में गये। रात को लगभग 1 बजे तक भीड़-भाड़ करते-करते सब लोगों ने विदा ली।

16 वैशाख, बृहस्पतिवार- प्रात:काल से विविध स्थानों पर माँ को ले जाकर सबने भ्रमण किया। इस देश के लोगों का एक मन्दिर में 15 दिनों के लिए अखण्ड नाम-कीर्तन आरम्भ हुआ है, माँ को वहाँ ले गये। आज मेम साहिबा को धर्मशाला में खिलाया गया। मेम साहिब को पहले मेज कुर्सी दी गई थी। किन्तु उस पर उन्होंने कहा-''यदि ऐसा ही करना था तो

मैं होटल में ही खा सकती थी। मैं सबके साथ जमीन पर बैठकर खाऊँगी।'' वही किया गया। भोजनोपरान्त मेम साहिबा ने माँ का फोटो लिया। अपराह्न के समय वह होटल में चली गई। साँझ को बंगाली लोगों ने आकर धर्मशाला में कुछ देर कीर्तन किया। तदनन्तर सब लोग माँ को साथ लेकर उत्तर-प्रदेशियों के कीर्तन-मन्दिर में गये। रात में लगभग 12 बजे माँ को लेकर सब धर्मशाला में लौटे। दो बजे हम लोग सोये।

17 वैशाख, शुक्रवार– सवेरे मिसेज दीक्षित आकर माँ को अपने बंगले पर ले गई। वह स्वयं मोटर चलाती हैं; माँ को अपने पास बैठाकर ले गई। यहाँ महिलाएँ विशेष स्वतन्त्रतापूर्वक चलती-फिरती हैं, इसलिए माँ को लेकर महिलाएँ ही सब बन्दोबस्त कर विविध प्रकार से आनन्द ले रही हैं। किसी तरह का कोई संकोच नहीं है। मिसेज दीक्षित के साथ और भी 2-3 महिलाएँ आई हैं। वे पहले माँ को दीक्षित के मकान में ले गई। वहाँ उन्होंने तड़के ही उठकर माँ के लिए कुछ भोजन बनाया था, वही माँ को खिला दिया। माँ का फोटो भी लिया। तदनन्तर बहुत-सी महिलाएँ माँ को एक बाग में ले गई। वहाँ माँ को जरी के मुकुट से तथा जरीदार पीले रंग की चादर से सजाया गया। माँ को कृष्ण के रूप में सजाकर तरह-तरह के फोटो लेना चाहा। मैंने देखा कि माँ हँस-हँसकर छल-बल से फोटो लेने में बाधा डालने लगी। किसी-किसी ने कहा-''हम इन चित्रों को अपने पास रखेंगी।'' यह सब कहते-कहते किसी-किसी के नेत्रों में आँसू भर आये। बहुत-सी महिलाएँ माँ से अनुनय-विनय करने लगी। तरह-तरह से सजाकर वे एक-एक ढंग से माँ को खड़ा करने लगी। और पहले से फोटोग्राफर ठीक कर रखा था एवं जल्दी-जल्दी फोटो खींच डाला। साथ-साथ गीत भी हो रहे थे-वहाँ वास्तव में मानो उन्होंने वृन्दावन बना डाला। वहाँ से साढ़े आठ बजे लौटकर इन्जिनियर के मकान में खाने की बात है। इसलिए सब बाध्य होकर इस आनन्द का खेल समाप्त कर धर्मशाला में लौट आये। वहाँ पहुँचते ही देखते हैं कि इन्जिनियर साहब की स्त्री गाड़ी लेकर उपस्थिति हैं। वह एकान्त में माँ से बातें करने वाली थी। इसलिए माँ को ले गई। वहाँ से लौटकर साढ़े दस बजे इनकम टैक्स ऑफिसर अवतार कृष्ण के मकान पर गये। दीक्षित की स्त्री आकर कल ही बहुत अनुनय-विनय से राजी कर गई थी। उन्होंने थोड़ा खाने का प्रबन्ध किया है। वहाँ से लगभग

1 बजे माँ लौटी। भोजन हुआ। आज एक मकान से माँ को भोग दिया है। सभी ने प्रसाद पाया। खाने-पीने की भीड़ में लगभग 5 बज गये। साढ़े पाँच बजे बिहारीलाल के मकान पर जाने की बात पहले ही पक्की हो चुकी है। ठीक साढ़े पाँच बजे वह माँ को लेने के लिए 3-4 मोटरें लेकर उपस्थित हुए। दलबल के साथ माँ को बिहारीलालजी के मकान पर ले जाया गया।

मेम साहिबा भी साथ ही है। उनके रहने के लिए यहाँ भी होटल ठीक किया गया है। बिहारी बाबू के मकान पर भी माँ को कृष्ण के रूप में सजाया गया। महिलाओं को गोपियों के रूप में सजाकर फोटो खींचा गया। अन्त में मेम साहिबा ने माँ से लिपटकर एक फोटो खिंचवाया। भोलानाथजी के अनुग्रह से ही इस प्रकार फोटो खिंचवाने का साहस हुआ। वह इस पर खूब प्रसन्नता व्यक्त करने लगे और एक फोटो खींचा गया। उसमें मेम साहिबा हाथ जोड़कर माँ के पैरों के समीप घुटने टेककर बैठी हैं। इसे मेम साहिबा ने स्वयं ही पसन्द करके खिंचवाया। कीर्तन का स्थान बहुत सुन्दर ढंग से सजाया गया है। तदुपरान्त अखण्डानन्द स्वामी ने माँ की विभूति जो अपने आप प्रकट हुई है, के सम्बन्ध में कुछ दिग्दर्शन कराया। उसका निष्कर्ष यह है- ''माँ के प्रति एकलक्ष्य होकर रहने से मन का मैल अनायास ही कट जाता है। इसका उन्होंने अनुभव किया है''- इत्यादि। तदनन्तर हरिरामजी ने भी कुछ कहा। वह माँ के दर्शनों के लिए आये हैं। माँ के 10 मिनट के उपदेश की बात उन्होंने सबको बतला दी। तब अनेक लोगों ने बड़े आनन्द से वह काम नियमित रूप से करेंगे कहकर अपना-अपना नाम लिखा दिया। नाम लिखाने का उद्देश्य है कि माँ के आदेश से जिन्होंने 10 मिनट की साधना ली है उनकी आत्मोन्नति के लिए प्रतिवर्ष जन्मोत्सव के दिन (तिथि) के हवन में उनके नाम की आहुति दी जाती है। तदुपरान्त मेम साहिबा ने भी अंग्रेजी में थोड़ा कहा। हरिरामजी ने उसका हिन्दी में अनुवाद कर महिलाओं को उसका मतलब समझा दिया। उसका निष्कर्ष यह है-''मैं साधु-सन्यासियों के दर्शनों के लिए ही भारतवर्ष आई हूँ। जहाँ ही जिनका विशेष नाम सुना है, मैं दर्शनों के लिए गई हूँ। उसी समय पाण्डेचेरी में पहले-पहल **अरविन्द घोष** से माँ का नाम सुनकर उनके दर्शनों के लिए मैं उत्सुक हुई। मुझे कोई खबर नहीं लगी, कहाँ

उनकी खोज करूँ यही नहीं समझ पाई। इस बीच में मैं कलकत्ता गई। वहाँ मैंने माँ का नाम सुना, माँ का पता भी मुझे मिला कि वह नैनीताल में हैं। मैंने नैनीताल आकर के माँ दर्शन किये। दर्शन कर मैं मुग्ध हुई हूँ। मैंने ऐसी सुन्दर मूर्ति दूसरी देखी ही नहीं। मुझे अनुभव हुआ है कि वह किसी विशेष काम के लिए अवतीर्ण हुई हैं, काम समाप्त होते ही चली जायेंगी। मैं समझती हूँ कि यह ही मेरी एकमात्र माँ हैं। मैं आप लोगों की ही एक बहन हूँ क्योंकि हम लोगों की एक ही माँ है। किन्तु दुःख की बात है कि मैं हिन्दी या बंगला बिलकुल नहीं जानती। इसलिए मुझे आप लोगों के साथ वार्तालाप न कर सकने का बड़ा दुःख है। माँ के सम्बन्ध में आप लोगों से कोई बात नहीं कह सकती हूँ। **माँ अन्तकरण की सब बातें जानती हैं एवं उनके प्रति एकलक्ष्य हो सकने पर भीतर–ही–भीतर उसका उत्तर मिल जाता है इसका प्रमाण मुझे मिला है एवं मेरे मन में आता है कि कोई यदि मेरी तरह स्थिरता पूर्वक माँ का चिन्तन कर सके तो सभी को इसकी सच्चाई का अनुभव हो सकेगा। मैं चाहे भारतवर्ष में रहूँ या इंग्लैण्ड में अथवा अमेरिका में ही रहूँ मेरा विश्वास है कि माँ के साथ मेरा अलगाव कभी नहीं होगा। मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि माँ का चित्र सदा ही मेरे हृदय में अंकित रहे।''**

रात को लगभग 10 बजे हम लोग धर्मशाला में लौट आये। वहाँ बंगाली लड़कों ने आकर कीर्तन आरंभ किया है। मेम साहिबा भी साथ–साथ कीर्तन में आकर जमीन पर ही बैठ गई। हम लोग आज रात्रि में 4 बजे की गाड़ी से जमशेदपुर जायेंगे। मेम साहिबा ने ऋषीकेश देखने की इच्छा प्रकट की है इसलिए उनको हरिराम के साथ रात 11 बजे की गाड़ी से भेज दिया जायेगा। रात में 11 बजे पुनः माँ को प्रणाम कर सबसे विदा लेकर मेम साहिबा रवाना हो गई। उस समय बिहारीलालजी के मकान पर महिलाएँ माँ की आरती कर रही थी, साथ–साथ सुन्दर गाने गाकर माँ की स्तुति भी कर रही थी। उस समय आँखें बन्द किये हाथ जोड़कर मेम साहिब भी उनके साथ खड़ी थी। भाषा न समझने पर भी भाव अवश्य ही समझ रही थी। माँ आज चली जायेंगी इसलिए बहुत लोग आये हैं।

एक एडवोकेट ने आज ही माँ के दर्शन किये हैं। वह मुग्ध होकर माँ को देख रहे हैं। तदुपरान्त मुझसे माँ का एक फोटो माँगकर बोले–''माँ का यह चित्र हृदय में अंकित हुआ ही है फिर भी संसार की छाया से शायद

वह ढक जाय इसलिए एक फोटो माँग रहा हूँ।'' रात को लगभग 2 बजे बहुत से लोग विदा हो गये। बहुत से लोग माँ के समीप ही जमीन पर लेटकर ही थोड़ा विश्राम करने लगे; रात को 4 बजे माँ को गाड़ी में बैठाकर घर जायेंगे। 3 बजे सब लोग माँ को लेकर स्टेशन आये। 4 बजे सबको रुलाकर माँ जमशेद्पुर को रवाना हुई।

* * *

इक्यासीवाँ अध्याय

जमशेदपुर जाते हुए मार्ग में लखनऊ और काशी

18 वैशाख, शनिवार– सुबह गाड़ी के लखनऊ पहुँचते ही बहुत से लोग माँ के दर्शन करने आये। माणिक एक महीने की छुट्टी लेकर हम लोगों के साथ चला। दिन में 12 बजे के समय गाड़ी फैजाबाद पहुँची। दल–के–दल कश्मीरी स्त्री–पुरुष माँ के दर्शन करने आये हैं। डिस्ट्रिक्ट जज, एडिशनल जज सभी सपरिवार उपस्थित हैं। पहले इनमें धर्म की गन्ध भी नहीं थी। किन्तु माँ के साथ भेंट होने के बाद से क्या ही परिवर्तन हो गया है। आज इस कड़ी धूप में स्टेशन पर आये हैं। कितनी ही मालाएँ, कितने प्रेम से माँ के लिए बना लाये हैं। उनका यह भक्ति का आवेग देखने योग्य और अनुभव योग्य विषय है। उनके नेत्रों में आँसू और मुँह पर हँसी की रेखा है। कोई–कोई माँ के साथ ही चले आना चाहते हैं। अस्तु, सबको समझा–बुझाकर माँ ने शान्त किया। ठीक समय पर गाड़ी सीटी देकर चल पड़ी। माँ के चरण–स्पर्श करते हुए अपने भाग्य को सराह कर आँसुओं से छलछला रहे नेत्रों से सब खड़े रहे। माँ की जन्म–तिथि सौर 19 वैशाख से 14 ज्येष्ठ (कृष्ण चतुर्थी) तक ढाका में अखण्ड कीर्तन चलेगा। 'माँ की जन्म–तिथि के दिन अखण्ड कीर्तन करेंगे'–कहकर सबने तिथि लिख ली। सभी ने अनुरोध किया कि लौटती बार माँ यहाँ पदार्पण कर जायें। 3 बजे गाड़ी काशी पहुँची। यहाँ भी बच्चू, बच्चू की माँ, नेपाल दादा, कृष्णा माँ, स्वामी शंकरानन्द आदि स्टेशन पर आये हैं। 'माँ गरमी मैं जा रही हैं', यह सोचकर बच्चू की माँ कितने यत्न से विविध शर्बत बनाकर लाई है। ये लोग मुगलसराय तक साथ–साथ चले। फिर छलछलाते नेत्रों से सबने विदा ली। इस तरह जगजननी माँ भक्तों के मन की कामना पूर्ण करते–करते चली।

हावड़ा स्टेशन होते हुए जमेशदपुर गमन–19 वैशाख, रविवार

प्रातःकाल हावड़ा स्टेशन पर गाड़ी के पहुँचते ही भीड़ लग गई। 2–3 घण्टे स्टेशन पर रहकर ही माँ जमशेदपुर को रवाना होंगी। हम लोगों के

साथ अल्मोड़ा की एक महिला आई हैं। उनका नाम गोदावरी है। सबके कहने पर भी उन्होंने माँ का संग नहीं छोड़ा। काशी से शंकरानन्द भी आये हैं। स्टेशन पर माँ के लिए सब जलपान लाए हैं। माँ और संगी-साथी सभी को उन्होंने बड़े प्रेम से खिला दिया। दिलीप राय आज माँ के साथ भेंट करने आये हैं। माँ के साथ कुछ देर वार्तालाप कर वह विदा हुए। माँ के लौट आने पर माँ को गाना सुनाऊँगा कह गये। ठीक समय पर हम लोग जमशेदपुर की गाड़ी में सवार हुए। जितनी देर संभव था सब माँ के निकट खड़े रहे। अपराह्न में हम लोग जमशेदपुर पहुँचे। एकत्र हुए भक्तों ने माँ की 'जय जयकार' की। आज 19 वैशाख है। स्थान-स्थान पर माँ का जन्मोत्सव आज शुरू हुआ है, यहाँ भी भक्त लोग मिलकर एक जगह माँ का जन्मोत्सव मना रहे हैं। माँ को पहले उसी जगह ले गये। उत्सव का स्थान सुन्दर रीति से सजाया गया है। माँ के तरह-तरह के फोटो सजा रखे हैं। माँ के पहुँचते ही स्त्रियों ने मंगल-ध्वनि और शंख ध्वनि कर माँ का वरण किया। माँ को बैठाकर माँ और भोलानाथजी के चरणों में सब पुष्पांजलि देने लगे। भोग का प्रबन्ध हुआ है- बहुत लोगों ने प्रसाद पाया। माँ का भोजन हो गया। माँ के पहुँचने के कुछ समय बाद ही सहसा भीषण आँधी और वृष्टि आरम्भ हुई। सजाया गया स्थान अस्त-व्यस्त हो गया। थोड़ी देर बाद ही फिर सब साफ भी हो गया। सबने कहा-"माँ आपके आने के साथ-ही-साथ वृष्टि आरंभ हुई।" माँ ने हँसकर कहा-"तुम सब लोग आनन्द मना रहे हो, आँधी-वृष्टि भी उस आनन्द में थोड़ा योग देने आई है।" सन्ध्या के बाद भोलानाथजी कीर्तन में उतरे और रम गये। खूब कीर्तन हुआ। रात को लगभग 12 बजे हम लोग काली-मन्दिर में गये। साथ-साथ और अनेक लोग गये। माँ के रहने के लिए स्थान वहीं ठीक किया गया है। काली-मन्दिर के पुजारीजी की माँ के प्रति बड़ी श्रद्धा है। माँ के वहाँ जाने पर वह बहुत प्रसन्न हुए। रात में लगभग 1 बजे माँ सोई। हम लोग भी सो गये। कल स्व. नलिनी दत्त के मकान पर माँ का भोजन होगा एवं बहुत से लोग वहाँ भोलानाथजी से दीक्षा लेंगे।

20 वैशाख, सोमवार- प्रातःकाल उठने के बाद माँ को नलिनी बाबू के मकान पर ले गये। वहाँ अनेक लोगों को दीक्षा दी गई। लगभग 4 बजे के समय हम सब लोग काली-मन्दिर में लौटे। एक कश्मीरी परिवार

माँ का बड़ा भक्त है; वे ही माँ को काली-मन्दिर ले आये। शाम को 5 बजे उनके मकान पर माँ को ले जाना तय हुआ। काली-मन्दिर आकर माँ ने थोड़ा विश्राम किया। 5 बजे कश्मीरी परिवार के लोग आये। स्त्रियाँ स्वयं आकर माँ और संगी-साथी सबको अपने मकान पर ले गयी। वहाँ भी माँ के भोजन का यथेष्ट बन्दोबस्त हुआ है। रात में बहुत देर तक वहाँ रहकर माँ काली-मन्दिर लौट आई।

21 वैशाख, मंगलवार– आज अश्विनीकुमार बाबू के मकान पर माँ का प्रसाद बना। माँ की आकर्षिणी शक्ति से सब लोग माँ को घेरकर बैठे हैं। काशी में एक इन्जिनियर सपरिवार स्टेशन पर आये थे। उनके साथ माँ का नैनीताल में ही प्रथम परिचय हुआ था। तदुपरान्त काशी में भेंट हुई। वह माँ के समीप विशेष नहीं आते थे। उनका धर्म के प्रति विशेष अनुराग भी नहीं था। गत बार काशी में एक दिन माँ के निकट आये थे; थोड़ी देर बैठे थे; उस समय माँ विविध प्रकार की बातें कह रही थी। क्या मालूम उन सब बातों को सुनकर उनमें क्या परिवर्तन हो आया है। इस बार जब स्टेशन पर माँ के दर्शन करने आये तब स्वयं ही कहने लगे–''माँ, विविध विषयों में मन बहुत चंचल रहता है, भगवान् का स्मरण बहुत ही कम होता है।'' माँ ने कहा–''आप नियमित रूप से काम करते जायें, फल मिलेगा।'' अस्तु अश्विनी कुमार बाबू के मकान पर भोजन के अनन्तर शाम को 4 बजे माँ काली-मन्दिर लौटी। आज भी बहुत लोगों ने दीक्षा ली है। उनमें एक नन्हीं बच्ची के भोलानाथजी से दीक्षा लेने के लिए बहुत व्यग्र होने के कारण भोलानाथजी ने उसे भी दीक्षा दी है। शाम को साढ़े छः बजे माँ को उत्तरप्रदेशीय राम-मन्दिर में ले गये। बंगाली और हिन्दी-भाषी सभी वहाँ एकत्र हुए। खूब कीर्तन हुआ। कीर्तन के बाद फिर माँ के साथ सब काली-मन्दिर लौटे। रात में बहुत देर तक सबने बैठे-बैठे माँ के मुँह की वाणी सुनी। कल प्रातः 10 बजे की गाड़ी से माँ के कलकत्ते लौटने की बात है। इसलिए सभी के हृदय में एक प्रकार की पीड़ा हो रही है। फिर कब माँ के दर्शन होंगे यही भय है। डॉ. यतीश बाबू की स्त्री रुग्ण शरीर लेकर प्रायः सदा ही माँ के साथ-साथ घूम रही हैं। सेवा की सारी व्यवस्था कर रही हैं। अन्यान्य अनेक लोग माँ के संगी-साथियों को कोई असुविधा न हो उसके लिए खूब प्रयत्न कर रहे हैं। रात को लगभग 3 बजे हम सब लोग सोये।

जमशेदपुर से कलकत्ता आगमन

22 वैशाख, बुधवार– आज भी अनेक लोग दीक्षा लेंगे। हरिहर बाबू के मकान पर उनकी दीक्षा होगी एवं वहीं माँ का भोग लगेगा। वहीं से स्टेशन को जाना होगा। 3-4 व्यक्तियों की दीक्षा हुई तदनन्तर जल्दी-ज़ल्दी भोजन के बाद माँ को सब लोग स्टेशन ले चले। वहाँ आकर माँ ने एक काण्ड किया था। हरिहर बाबू के मकान के पास ही और भी 2-3 मकान हैं। न तो वे माँ के समीप ही आये और न उन्होंने माँ को अपने यहाँ ही बुलाया, किन्तु माँ घूमते-घूमते जाकर उनके दरवाजे पर के पेड़ के नीचे खड़ी होकर बोली– "इस जगह खूब ठण्डा है। मैं यहीं बैठती हूँ।" हमने वहीं बैठने की जगह कर दी। समीप में ही एक पपीते का पेड़ था, उस ओर देखकर माँ बोली– "वह देख एक पपीता पका है, **ऐसे ही भीतर पकने पर बाहर भी रंग पकड़ता है।**" कुछ देर उसी मकान में रहकर माँ उठी और हरिहर बाबू के मकान पर आकर बाहर बैठी रही। थोड़ी देर बाद देखा गया कि पास के मकान से पेड़ का पका पपीता काटकर गृहस्वामी माँ के लिए ला रहे हैं। माँ हँसकर बोली–"मुझे न देने पर भी मैं वहीं जाकर ले आती। सभी मेरे पिता हैं न; सबको लेकर ही मेरे एक पिता हैं।" यह कहकर हँसने लगी। अस्तु, बहुत से लोग स्टेशन चले। कश्मीरी परिवार के सदस्य भी साथ-साथ गये हैं। उनकी एक लड़की कृष्णा बी.ए. में पढ़ती है। उसने स्टेशन पर माँ, भोलानाथजी तथा हम सबका फोटो लिया। यथा समय माँ गाड़ी में सवार हुई किन्तु गाड़ी नहीं चली, ज्ञात हुआ कि इंजिन खराब हो गया है। सभी माँ से कहने लगे–"माँ आपकी कृपा है इसलिए थोड़ी देर और दर्शन दे रही हैं।" भीषण धूप है, गाड़ी अब छूटती है, अब छूटती है समझकर उस धूप में माँ के मुँह की ओर ताकते हुए सब खड़े हैं। एक डॉक्टर की बुढ़िया माँ, माँ से लिपटकर तरह-तरह से प्रेम दर्शा रही हैं। फिर कह रही हैं–"तुम आ रही हो सुनते ही मैंने कहा था– फिर आती क्यों है? मालूम पड़ता है जलाने आ रही है। कभी-कभी आकर तो केवल अग्नि से जला जाती हो।" माँ ने हँसकर कहा–"**आग तो अच्छी तरह जलती ही नहीं है माँ। जैसी जलनी चाहिये वैसी जलने पर तो सब भस्म हो जायेगा, फिर जलने न जलने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।**" यह कहकर बच्चों की तरह हँसी-हँसने लगी। वह कह रही हैं–"जलाना ही तो तुम लोगों का

काम है। सारे देश को ही जला रही हो।'' लगभग एक घण्टा गाड़ी लेट हुई। गाड़ी चल दी। मैंने हँसते हुए माँ से कहा–''गाड़ी तो लेट हुई, पर ये कह रहे हैं माँ की कृपा, किन्तु कलकत्ता पहुँचने में भी गाड़ी को देरी होगी, तब वहाँ के लोग कहेंगे–''हम लोगों पर माँ की कृपा कहाँ है?'' माँ ने केवल हँस दिया, कुछ बोली नहीं। गाड़ी में चढ़कर माँ लेट गई। जब गाड़ी हावड़ा पहुँची तब मैंने सुना कि गाड़ी 5 मिनट पहले पहुँची है।'' 5 बजे हम सब हावड़ा पहुँचे। बहुत से लोग स्टेशन पर उपस्थित थे। यहाँ यतीश गुहा के मकान पर माँ का जन्मोत्सव 19 वैशाख से आरंभ हुआ है। माँ को लेकर हम सब लोग वहीं गये। सन्ध्या समय आरती हुई। रात को 8 बजे कीर्तन आरंभ हुआ। 12 बजे हम लोग बिड़ला के शिव-मन्दिर में गये। अनेक लोग साथ-साथ चले। वे रात में माँ के निकट रहेंगे। शिवजी के बरामदे में बिस्तर लगे। दिल्ली से नरेन बाबू, श्रीरामपुर से त्रिगुणा बाबू, गोवर्द्धन आदि सभी आये हैं। रात में लगभग ढाई बजे सब सोये।

* * *

बयासीवाँ अध्याय

23 वैशाख, बृहस्पतिवार– सवेरे माँ को यतीश गुहा के मकान पर ले गये। वहाँ से प्राणकुमार बाबू के मकान पर ले जाया गया। वहाँ एक व्यक्ति को दीक्षा दी गई। सब वहीं मिले। 27 वैशाख को रात में कलकता छोड़ने की बात है। दोपहर को वहाँ से यतीश गुहा के मकान पर आकर भोजन करने के बाद फिर माँ प्राणकुमार बाबू के मकान पर गई। प्राणकुमार बाबू ने कोई एक स्वप्न देखा था, माँ के साथ एकान्त में उसका विचार करने की उन्होंने प्रार्थना की थी। हम 2–3 व्यक्ति साथ गये। वहाँ बातें हो ही रही थी कि टाटा के दो बड़े आदमियों को लेकर यतीश गुहा माँ के समीप आये। वे बहुत देर से माँ के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे थे। कल कई सम्भ्रांत महिलाएँ एक 'माँ' को लेकर (ये गेरुवा वस्त्र धारिणी हैं) आई हैं। माँ का जो सहज स्वभाव है वही माँ ने किया। उन्हें अपने आसन पर बैठाकर स्वयं जमीन पर बैठी। "यह मेरी माँ है" यह कहकर सबको दिखा रही हैं। माँ को प्रणाम करने के लिए किसी के जाते ही "मेरी इन माँ को प्रणाम करने पर ही होगा" कहकर उनकी ओर इशारा कर दिखा रही हैं। उनके बड़े प्रेम से माँ से लिपटते ही माँ उनकी गोद में लेट गई। एक उत्तर-प्रदेशीय बड़े आदमी खत्री के मकान में वे रहती हैं, उसी मकान में एक ओर सत्संग होता है। महिलाएँ एकत्र होकर सत्संग करती हैं। माँ को आज वहाँ ले जाने की बात है। कल वे विशेष रूप से कह गई थी, आज वे माँ को लेने आई हैं। हम कई लोग माँ के साथ चले। वहाँ जाकर देखते हैं कि एक विशालतम् हॉल में बहुत-सी महिलाएँ बैठी हैं। योगवाशिष्ठ का पाठ हुआ। तदनन्तर भजन हुए। कुछ देर वहाँ रहकर हम लोग यतीश गुहा के मकान पर आये। आज सन्ध्या को 7 बजे दिनेश ठाकुर आकर माँ को कीर्तन सुनायेंगे, ऐसा निश्चय है। माँ के आने के बाद दीनेश ठाकुर आ पहुँचे। यतीश दादा के हॉल में लोग नहीं समाते समझकर जन्मोत्सव के लिए उन्होंने एक पाण्डाल बनाकर सजा रखा है। सन्ध्या के बाद से ही वहाँ कीर्तन शुरू हुआ। किसी दिन दिनेश ठाकुर, किसी दिन मन्मथनाथ, किसी दिन निवारण समाजपति आदि आकर कीर्तन

करते हैं। रात में बारह या साढ़े बारह बजे तक कीर्तन होता है। उसके बाद माँ को हाल में ले जाया गया। वहाँ भी आनन्दोत्सव में बहुत-सा समय व्यतीत हुआ। रात में लगभग दो-ढाई बजे शिव-मन्दिर में लौट आये। प्रति-दिन ऐसा ही होता है। सन्ध्या के समय यतीश दादा के हॉल में माँ को बैठाया। प्रतिदिन फोटो के समीप आरती होती है। आज माँ स्वयं ही उपस्थित हैं। उनकी इतने दिनों की साधना सफल हुई। आज क्षितीश दादा की लड़की ने माँ की आरती की। प्रतिदिन की भाँति एक भजन हुआ। दिलीप राय अपने कई विशिष्ट मित्रों को लेकर माँ के समीप आये हैं। माँ के गले में मालाओं का ढेर लगने पर निकालकर सबको बाँट दी जाती हैं- आज भी वही हो रहा है। कभी-कभी माँ स्वयं भी किसी-किसी को माला पहना देती हैं। माँ ने दिलीप राय को माला पहना दी। वह बहुत खुश हुए। संज्ञा देवी आई हैं। उन्होंने दिलीप राय से कहा-''माँ को थोड़ा कीर्तन सुना जाओ।'' वह राजी हुए। आरती के बाद लोगों की अथाह भीड़ देखकर माँ को पाण्डाल में ले जाना हुआ। दिलीप राय ने 2-3 गाने गाये। दिनेश ठाकुर ने भी अनेक गाने गाए। उनका एक गाना सुनकर मुग्ध होकर निवारण समाजपति ने दिनेश ठाकुर को छाती से लगा लिया। पीछे ब्रजेन्द्र गांगुली ने भी कीर्तन किया। 12 बजे कीर्तन समाप्त हुआ। माँ को भोग निवेदन करने के लिए यतीश दादा के हॉल में ले जाया गया। हॉल वास्तव में ही मानो ''माँ का मन्दिर'' है। इस घर के स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओं ने प्रतिदिन माँ का नाम-कीर्तन, माँ की आरती, भोग आदि कर माँ की स्मृति में घर को मानो पवित्र देव- मन्दिर बना डाला है। इसीलिए प्रतीत होता है कि जगज्जननी और किसी मकान में न जाने पर भी इस कमरे में आकर बैठती हैं। गत कई एक बार यहाँ नहीं आई हैं। मगर इस बार भक्तवत्सला ने भक्तों के आह्वान पर इस कमरे में प्रवेश किया है। रात को 12 बजे माँ का भोजन हुआ। भ्रमर ने एक कोने में बैठकर महिलाओं के साथ नाम-कीर्तन आरंभ किया। माँ के हॉल में करताल (पंजाबी दे गये हैं) बजाना आरंभ करते ही उपस्थित भक्तवृन्द फिर नाम-कीर्तन में मत्त हो उठे। आनन्दमय पुरुष भोलानाथजी ने भी इस समुदाय में योग दिया। रात में लगभग डेढ़ बजे तक कीर्तन चला। हम लोग मन्दिर में लौटे। साथ-साथ बहुत से लोग हैं, सभी शिव-मन्दिर के बरामदे में माँ के निकट सोने की आशा से आये हैं। रात में 3 बजे सब लोग सोये।

24 वैशाख, शुक्रवार– सवेरे 7 बजे माँ को यतीश दादा के मकान पर ले जाना हुआ। क्योंकि प्रातःकाल उनके हॉल में माँ की प्रतिमा के निकट बैठकर नाम-कीर्तन करने के पश्चात् माँ का स्तोत्र-पाठ किया जाये, उस समय माँ उपस्थित रहें यह उनकी हार्दिक अभिलाषा है। लगभग 9 बजे तक वहाँ बैठकर फिर माँ मन्दिर में लौट आई। त्रिपुरा के राज-परिवार की पुत्री, नेपाल के राज-परिवार की बहू माँ के समीप आई हैं। ये दम्पति सदैव माँ के समीप आते हैं। वे एकान्त में माँ के साथ बातें करने के लिए बैठी। तदनन्तर सी.आर. दास की स्त्री और कन्या अपर्णादेवी माँ से भेंट करने आई हैं। धीरे-धीरे और भी अनेक लोग आ रहे हैं।

प्रोफेसर, वकील, मुन्सिफ कितने ही लोग आ रहे हैं। कोई-कोई भाव के आवेश में रो रहे हैं। सभी अपनी-अपनी मोटर में माँ को ले जाने के लिए बहुत आग्रह प्रकट कर रहे हैं। वे सभी प्रायः पहली बार आकर ही माँ के साथ विविध वार्तालाप आरंभ करते हैं, विविध प्रश्न करते हैं। परीक्षा लेने का भाव ही अधिक है ऐसा प्रतीत होता है किन्तु अन्त में किसी का भी वह भाव नहीं रहता-सभी ने माँ के कथन और दृष्टि से मुग्ध होकर माँ के निकट शरण ली है। कल माँ ने जब 11 बजे यतीश दादा के हॉल में कीर्तन आरंभ कराया तब हाईकोर्ट के एक वकील भावावेश से अधीर हो उठे। तदुपरान्त हाथ जोड़कर माँ की ओर एकटक हो सप्तशती (दुर्गा-पाठ) से स्तोत्रादि पढ़ने लगे। माँ का साक्षात् भगवती के रूप में पुनः-पुनः संबोधन करने लगे। प्रोफेसर नरेश बाबू माँ के निकट इस बार पहले-पहल आये हैं। वह भी पहले बहुत बातें करते थे किन्तु आज दो दिनों से नेत्रों में से जल ही गिर रहा है। आज कह रहे थे-''माँ, आपको ऐसी मनुष्य-भक्षिणी विद्या कब से हुई है?'' माँ ने हँसकर कहा-''एक आदमी ने कहा था, गुरुहन्त्री विद्या; अब आप कहते हैं मनुष्य-भक्षिणी विद्या।'' मेरी ओर देखकर माँ बोली- ''तुमने सुना, यह क्या कह रहे हैं? कहते हैं मेरे पास मनुष्य-भक्षिणी विद्या है।'' मैंने कहा-''कहाँ तक खा डाला है?'' भद्रपुरुष ने कहा-''समूचा निगल डाला है।'' माँ ने कहा-**''यदि समूचा खा डालती तो बात ही नहीं रहती। तब मौन हो जाता।''** मैंने कहा-''माँ कहती हैं सोलहों आने हुए बिना कुछ नहीं होता। खाना अभी तक पूरा नहीं हुआ-केवल इतने से ही माँ की तृप्ति नहीं होती ।'' उपस्थित सभी लोग इस बात पर हँस पड़े। माँ

भी हँस पड़ी। अस्तु, आज दोपहर को माँ फिर भोजन के लिए यतीश दादा के मकान पर गई। उत्सव के उपलक्ष्य में सब लोग प्रसाद पा रहे हैं। शची बाबू इस उत्सव में बहुत धन देते थे। अल्प वयस में स्त्री के मर जाने के बाद फिर उन्होंने विवाह नहीं किया, बुढ़िया माता है। परिवार में बहुत से लोग हैं। यह इनकमटैक्स असिस्टेन्ट कमिश्नर के पद पर हैं। यह कहते हैं- "49 वर्ष की अवस्था में माँ से भेंट हुई-आज 52 वर्ष की अवस्था है। 49 वर्ष की अवस्था तक मैंने कितना पढ़ा, कितना देखा, उससे जीवन में जो उन्नति नहीं हुई आज 3 वर्ष में माँ की सत्संगति करके उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति हुई है, ऐसा प्रतीत होता है। माँ की संत्सगति का कितना प्रभाव है यह मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं इसका बहुत अधिक अनुभव कर चुका हूँ और कर रहा हूँ।" माँ सभी के भाव में योग दे सकती हैं इसलिए सभी को माँ के निकट रस मिलता है। सत्संगति करने से सभी को आनन्द मिलता है। आज यतीश दादा के मकान पर भोजन करने के बाद माँ अपराह्न में सुरेश बाबू के मकान पर गई। माँ जब भी जहाँ जा रही हैं साथ-साथ 4-5 मोटरें भरकर लोग जा रहे हैं। क्योंकि थोड़ी देर के लिए भी कोई संग छोड़ने को राजी नहीं होता हैं। सुरेश बाबू ने चौतल्ले पर माँ के लिए एक स्थान रख छोड़ा है, वहीं पर आनन्दोत्सव चलने लगा; संध्या के बाद फिर माँ पण्डाल में आ बैठी। बैरिस्टर शरत् बाबू आदि तथा और भी कई विशिष्ट व्यक्ति माँ के दर्शन करने आए हैं। बहुत से लोग एकत्र हुए हैं। भीड़ के कारण खड़े होने की भी जगह नहीं हैं। माँ एक चौकी पर बैठाई गई हैं। उस चौकी के चारों ओर विशेष भीड़ है। बहुत प्रयत्न करने पर भी वहाँ से लोगों को हटाया नहीं जा सकता है। ब्रजेन्द्र बाबू तथा और भी अनेक लोगों ने कीर्तन आदि किया। कीर्तन के बाद रात में 11 बजे माँ को हॉल में ले जाया गया। वहाँ पर फिर कीर्तन शुरू हुआ। इस प्रकार लीला-आनन्द में रात के 2 बजे तक रहकर माँ मन्दिर में लौटी। बहुत से लोग एक चादर या एक दरी या एक चटाई ही लेकर माँ के साथ-साथ चले। सभी ने जाकर मन्दिर के बरामदे में माँ के निकट स्थान ग्रहण किया। रात में लगभग चार बजे सब लोग सोये।

25 वैशाख, शनिवार- सवेरे भक्त यतीश गुहा के मकान पर माँ को ले गये। वहाँ हॉल में प्रभात-क्रिया, कीर्तन, स्तोत्र-पाठ और आरती हुई।

तदुपरान्त बाल-भोग लगा। माँ को आज भ्रमर अपने स्कूल में ले जायेगी यह स्थिर हुआ। लगभग 8 बजे बहुत से लोगों के साथ माँ स्कूल के लिये चली। वहाँ पहुँचते ही फूलों की मालाएँ आदि से लड़कियों ने माँ का स्वागत किया। तदुपरान्त कीर्तन, स्तोत्र-पाठ आदि हुए। माँ लड़कियों के बीच में बैठ गई। स्कूल के अधिकारीगण माँ के शुभागमन से 'स्कूल धन्य हुआ' यह कहकर बहुत अधिक कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं। लड़कियों को थोड़ा-सा उपदेश देने के लिये सभी लोग माँ से आग्रह करने लगे। माँ ने अपनी नैसर्गिक मधुर हँसी हँसकर कहा-"मैं तो कुछ जानती नहीं हूँ परन्तु **मैं तुम लोगों से यही भिक्षा माँगती हूँ कि जिस प्रकार तुम सब नियमित रूप से लिखने-पढ़ने में समय देती हो उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा समय भगवान् के नाम में भी दो। उससे आनन्द और शान्ति की अभिवृद्धि होती है।"**

दस मिनट नाम-जप की बात भी थोड़ा समझाकर कह दी। लगभग साढ़े दस बजे हम सब स्कूल से कुमार सुरेशसिंह के मकान तथा और भी 2-1 मकानों पर होकर मन्दिर में लौटे। आज 11 बजे दिलीप राय माँ के साथ एकान्त में भेंट करने के लिये आने वाले हैं। महेन्द्र सरकार भी माँ के साथ एकान्त में बातें करने आयेंगे। हम लोगों के मन्दिर में पहुँचने के थोड़ी देर बाद ही दिलीप राय 2-1 आदमियों को साथ लेकर आ पहुँचे। वह कह रहे हैं-"आपके दर्शन-लाभ कर मुझे अत्यधिक आह्लाद हुआ है।" उन्होंने कहा कि-"सोमवार को सवेरे इस मन्दिर में आकर माँ को गाना सुनाऊँगा।" उन्होंने आगे कहा-"घर-घर गाना तो मैंने बहुत किया है। इस सुन्दर स्थान पर बैठकर माँ को एक दिन गाना सुनाने की इच्छा हुई है।" वह बहुत देर तक माँ के समीप बैठे रहे। उनके उठते ही महेन्द्र बाबू अपने परिवार के साथ आकर माँ के निकट बैठे। उनके साथ भी बहुत बातें हुई। किन्तु दुःख है मैं उस समय उपस्थित नहीं रह सकी। महेन्द्र बाबू बहुत अधिक आनन्दित हुए। कल फिर आयेंगे कह गये। दिन में लगभग 2 बजे माँ को भ्रमर के मकान पर ले जाया गया। आज उसी मकान में माँ के भोजन का प्रबन्ध हुआ है। माँ के बैठने के लिये आँगन में ही थोड़ी छाया की गई है। शाम को लगभग 6 बजे भोजनोपरान्त वहाँ से माँ को और भी कई मकानों पर ले गये। रात को साढ़े आठ बजे माँ यतीश दादा के मकान पर पहुँची। निवारण समाजपति और ब्रजेन्द्र बाबू ने कीर्तन किया।

प्रतिदिन की तरह आज भी रात्रि में प्राय: साढ़े बारह बजे कीर्तन समाप्त हुआ। तदुपरान्त माँ को हॉल में ले जाया गया। आज मीनू (प्राणकुमार बाबू का छोटा लड़का) एवं लड़कियों ने मिलकर फूलों के मुकुट और फूलों के ही अन्यान्य आभूषणों से माँ को सजाया। फिर चारों ओर घूम-घूमकर उन्होंने कीर्तन आरम्भ किया। माँ ने भी हॉल में ही प्राप्त करताल हाथ में लेकर ''जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण।'' नाम-कीर्तन उठाया। महान् आनन्द से सब उस फूलों के साज से सज्जित देवी मूर्ति की ओर देखकर मुग्ध हुए-फिर उस मधुर कण्ठ से नाम-कीर्तन सुनकर और भी अधिक विभोर हुए। साथ-साथ भाव में आत्मविस्मृत होकर सभी लोग नाम-कीर्तन करने लगे। इस तरह रात में 2 बजे तक वहाँ रहकर उस फूलों के साज में ही माँ को मन्दिर में ले जाना हुआ। प्रो. नरेश चक्रवर्ती तथा एक बड़े व्यापारी नगेन बाबू ने इस समय माँ के प्रथम बार दर्शन किये। वे मोटर लेकर खड़े रहते हैं-माँ को अपनी मोटर से ले जाना चाहते हैं। वे प्राय: सदा ही माँ के साथ-साथ ही हैं।

नरेश बाबू कह रहे हैं-''देखिये, मुझे बड़ा अहंकार था कि मुझमें जो धर्म का संस्कार है, उसका कोई खण्डन नहीं कर सकेगा, किन्तु माँ ने उसे चूर-चूर कर दिया है। माँ ने मेरी जो अवस्था की है, काम-काज करना अब कष्टप्रद प्रतीत होता है। मैं उत्सव में ढाका जाऊँगा।'' इन्होंने माँ के साथ बहुत बातें की हैं। अब तो आँखों में अश्रु लगे ही रहते हैं। आज रात में लगभग 3 बजे सब विश्राम करने के लिये लेट गये। उपेन घोषाल (वकील) की लड़की अमला, डाक्टर गिरीन्द्र मित्र की लड़की सावित्री और इनकमटैक्स कमिश्नर सुरेन्द्र वन्द्योपाध्याय की कन्या ननी सदा माँ के साथ-साथ रहती हैं; रात में भी वे माँ के समीप सोई रहती हैं। इनमें कोई किसी भी समय आत्मीयों तथा अपना घर-बार छोड़कर इस तरह नहीं रहती, माँ की इतनी अधिक आकर्षिणी शक्ति है। अभिभावकों को आज इन्हें इस प्रकार छोड़ देने में कुछ भी चिन्ता नहीं है। माँ के साथ गयी हैं इसी से वे खुश हैं। वास्तव में ही कुल का गौरव लेकर बैठे रहने पर फिर उन्हें (भगवान् को) प्राप्त नहीं किया जा सकता।

26 वैशाख, रविवार- पहले के समान बहुत से लोग प्रात:काल मन्दिर में आये हैं। लगभग 8 बजे माँ को यतीश दादा के मकान पर ले जाया

गया। और भी 3-4 मकानों में माँ को लोग ले गये। दोपहर को विशेष भोग का आयोजन हुआ है। आज रविवार है इसलिए बहुत लोग उपस्थित हैं। प्रात:काल जनार्दन ने गोष्ठ गाया। लगभग 12 बजे तक गोष्ठगान हुआ। तदुपरान्त बहुत प्रयत्नों से माँ को जरा एकान्त में ले जाया गया क्योंकि बहुत से लोग एकान्त में बातें करने वाले हैं। किन्तु बहुत प्रयत्न करके भी वैसा पूर्ण रूप से नहीं किया जा रहा है। इस बीच में ही सब बातें कर रहे हैं। लगभग 2 बजे भोग लगा। सब कुमारियाँ माँ के समीप हॉल में खाने बैठ गई। निरन्तर ही इतने बड़े जनसमूह में रहने के कारण काम के बिना भी अनेक लोग परेशान हो रहे हैं। किन्तु हमारी माँ स्थिर धीर है, आनन्दमयी मूर्ति में तनिक भी परिवर्तन नहीं है। भोग के बाद माँ को पाण्डाल में ले जाकर बैठाया गया। शाम को 5 बजे स्कूल की लड़कियों ने आकर माँ को माथुर गाकर सुनाया। माथुर समाप्त होते ही माँ को ढाकुरियाँ में बुआ के मकान पर ले गये। वहाँ से भोलागिरि महाराज के आश्रम में माँ को ले जाना हुआ। प्रिंसिपल गंगाचरण बाबू गिरि महाराज के शिष्य हैं। वह और उनके कई गुरु-भाई माँ को ले गये। माँ की इस अनुपस्थिति से पाण्डाल का जन-समूह अधीर हो उठा। दरवाजे पर मोटर-पर-मोटर लग गई हैं। एक विराट व्यापार चल रहा। माँ रात में 9 बजे लौट आई। फिर कीर्तन आरम्भ हुआ। आन्दूल का एक कीर्तन-दल आया है। वे लोग काली-कीर्तन करते हैं। वे एक ही तरह की पौशाक में सजकर कीर्तन करने बैठे हैं। एक माताजी आई हैं। यह मसानों में रहा करती हैं। माँ ने उन्हें अपने समीप बैठाया। उनका कमण्डलु और त्रिशूल लेकर कितना कौतुक कर रही हैं, अन्त में फिर ब्रजेन्द्र बाबू ने कीर्तन किया। आज भी रात के 12 बजे पाण्डाल का कीर्तन समाप्त होने पर माँ को हॉल में ले जाया गया। आज फिर माँ के लिए नूतन फूलों का साज आया है। फूलों के मुकुट, फूलों के कंगन, फूलों के अनन्त, फूलों का हार, पैरों में फूलों के नूपुर पहनाकर माँ को सजा दिया गया है। माँ वही छोटी-सी करताल बजा-बजाकर सारे कमरे में घूम रही हैं। साथ-साथ सब लोग नाम-कीर्तन कर रहे हैं। मालूम हो रहा है कि देवी प्रतिमा आज यतीश दादा के पूरे घर में घूम रही हैं। सामने ही दीवार पर माँ के बड़े-बड़े चित्र फूल-मालाओं और लाइट से सजाये गये हैं। यतीश दादा इस

कमरे में जप करने बैठकर बहुधा माँ को टहलती हुई देखते हैं। मकान के सब लोग मिलकर जिस एक ही भाव से इस कमरे में माँ की साधना किये चले आ रहे हैं; आज माँ ने उसे सार्थक कर दिया। माँ ने पुरुषों को थोड़ा हटाकर दरवाजा बन्द कर दिया। उसके अनन्तर महिलाओं के साथ कीर्तन शुरू किया। महिलाओं ने नाच-नाचकर कीर्तन किया। माँ ने एक के हाथ में पंखा, एक के हाथ में पंच-प्रदीप, एक के हाथ में धूपदानी, एक हाथ में फूल और एक के हाथ में कपड़ा देकर सबसे आरती करने को कहा। इस आरती ने और भी शोभा बढ़ा दी। माँ के नित्य नूतन कितने ही लीला-भाव होते हैं-उन्हें देखकर हम उनका अन्त नहीं पा सकते। लीलामयी की लीला का क्या कोई कभी शेष कर सका है? वह तो नित्य नूतन-नूतन भावों में आ रही हैं। कीर्तन समाप्त होने पर महिलाओं ने माँ का जय-जयकार किया। तुरन्त माँ ने मुँह पर अंगुली रखकर इशारे से सबसे चुपचाप बैठने को कहा। इतनी अधिक स्त्रियाँ आँखें बन्द कर ध्यान में बैठ गई। तुरन्त माँ ने दरवाजा खोलकर पुरुषों को पुकार कर कहा- ''अब तुम लोग आकर देखा कि हमारा कैसा कीर्तन है। सब पुरुष इतने समय तक माँ का संग छूटने से खूब दुखी हो रहे थे। अब दरवाजा खुला पाकर सब-के-सब कमरे में घुस गए। रात के लगभग 3 बज गये। माँ जल्दी-जल्दी सबको साथ लेकर मन्दिर को चली। जो मन्दिर में नहीं जायेंगे वे भोजन करने बैठेंगे। न मालूम सबका खाना-पीना कहाँ गया है- नींद नहीं है, इसी एक नशे में चले हैं। जो लड़कियाँ माँ के साथ-साथ हैं-माँ मन्दिर में जाकर बोली-''इन्हें कुछ फल दो।'' उन्होंने 2-1 केले अथवा सन्तरा खाये। बोली-''खाने की किसी को भी इच्छा नहीं है।'' ये सब सुख में पली लड़कियाँ इस तरह से हैं तिस पर भी उनको किसी प्रकार की थकान या क्लांति नहीं है। दिन-रात माँ के साथ-साथ घूम रही हैं। एक शक्ति ने मानो सबको जगा रखा है। माँ कह रही है-**''यदि वास्तविक यह भाव लेकर अधिक समय तक रहा जाय तो शरीर भी स्वस्थ हो और मन में भी एक स्थायी परिवर्तन हो जाय।''** रात को 3 बजे सबने शयन किया।

* * *

तिरासीवाँ अध्याय

कलकत्ते से बाइशारी और बरिशाल यात्रा

27 वैशाख, सोमवार– आज माँ बाइशारी को रवाना होंगी। 3 बजे दिन की गाड़ी से जायेंगी। फलतः सवेरे से ही बहुत से लोग मन्दिर में आये हैं।

सिन्दूर से माँ को बार-बार लाल कर दे रहे हैं, बीच-बीच में मैं धोकर साफ कर दे रही हूँ। सवेरे 8 बजे दिलीप राय माँ को गाना सुनाने आये। साथ में उनकी सहोदर बहिन, ममेरी बहिन, काकिना की राजकुमारी तथा और भी कई भद्रपुरुष और भद्रमहिलाएँ थी। कुछ देर गाना सुनाकर गाना बन्द करके दिलीप राय कह रहे हैं–"माँ, अब आप कोई बात कहें। आपकी बातें सुनने के लिये ही ये सब मेरे साथ आयी हैं। आपकी बात सुनने में हमें बहुत ही मीठी लगी हैं इसीलिए मैंने इनसे कहा है।" माँ ने हँसकर कहा–"आप लोगों के कान मीठे हैं इसीलिए मेरी बातें मीठी सुनते हैं।" माँ अपनी नैसर्गिक शिशु-तुल्य हँसी हँसते हुए मधुर भाषा में कथावार्ता कहने लगी। एक-एक बात सुनकर सब खिलखिला कर हँस रहे हैं। सभी मानो एक आनन्द के स्रोत में बह रहे हैं। ढाका की रेणुका सेन भी आयी हैं। उनकी बहिन बरेली के प्रोफेसर दास-गुप्त की स्त्री हैं। वह बरेली में माँ के साथ विशेष परिचित हुई थी। वह कलकत्ता आई हैं। इसलिए बहिन आदि को साथ लेकर माँ के समीप आई हैं। दिलीप राय ने कहा–"माँ, रेणुका बहुत अच्छी गाती है। आप एक गाना सुनें।" यह कहकर उसे बुलाकर गाने के लिये कहा। 2-1 गाने गाये। और भी एक शान्तिनिकेतन की छात्रा बहुत अच्छा गाती है। उसने भी माँ को गाना सुनाया। समय बीत रहा है, फिर कोई ऑफिस नहीं जाने पा रहे हैं। मुग्ध होकर बैठे हैं। महेन्द्र कुमार भी अपनी स्त्री के साथ आये हैं। उन्होंने माँ को वस्त्र आदि दिये। दीघापातिया की रानी माँ के लिये कपड़े, फूल कितना क्या-क्या ले आई है। वस्तुओं के मूल्य के लिये नहीं लिख रही हूँ–उनका आग्रह देख रही हूँ–साड़ी माँ को पहना सकेंगी या नहीं इसके

लिये वे कितनी व्याकुल हो रही हैं। सभी के दिल को मानो माँ छीन ले रही हैं। यद्यपि सैंकड़ों उलझनों में वह उलझा है फिर भी जितना निकाल ले रही हैं वही आश्चर्य है। सब संसारी लोगों को लेकर ही तो माँ का अधिकतर कारोबार है। किन्तु थोड़ी देर के लिये ही माँ इन बद्ध संसारी लोगों को भी मानो किसी एक प्रेम के राज्य में ले जा रही है। सैकड़ों साधनाओं से भी शायद वह सम्भव नहीं होता। एक भद्रपुरुष अपनी स्त्री की लिखी हुई चिट्ठी माँ को दिखाने आये हैं। मैंने चिट्ठी पढ़ी। स्त्री स्वामी को लिख रही है–''मैं माँ को यदि एक बार और पा जाऊँ तो मैं माँ के साथ चली जाऊँगी। उस समय यदि आप कर्त्तव्य की दुहाई देंगे तो वह नहीं हो सकेगा। मैं अब गृहस्थी में नहीं रह सकूँगी। आप अथवा आपके बाल-बच्चे अब मुझे अच्छे नहीं लग रहे हैं। माँ ने कहा था धीरे-धीरे मन शान्त हो जाएगा। एक महीना माँ को छोड़े हो गया किन्तु अब भी उसी तरह चल रहा है। मैं खाते-सोते-जागते माँ को ही देखती हूँ। राक्षसी माँ मुझे जरा भी स्थिर रहने नहीं दे रही हैं–स्वयं हट जाकर मुझे यह यंत्रणा दे रही हैं, इत्यादि।'' इससे देखा जाता है कि एक मास के बाद भी माँ के संग का प्रबल प्रभाव संसारी लोगों के ऊपर भी किस प्रकार कार्य कर रहा है। अस्तु, दिलीप राय बैठे हैं। दिन में लगभग 11 बजे सी.आर. दास की स्त्री और कन्या अपर्णा देवी कई व्यक्तियों को साथ लेकर माँ को कीर्तन सुनाने आई है। जगह है नहीं, दिलीप राय के साथ जो सब थे उनको साथ लेकर माँ के समीप से उठ जाने पर माँ के निकट फिर अपर्णा देवी का दल कीर्तन करने बैठा। वासन्ती देवी माँ को छाती से लगाकर बैठी। माँ ने कुछ भी नहीं खाया–वासन्ती देवी ने माँ को थोड़ा दूध पिला दिया। सुन्दर कीर्तन हुआ। समय कम रहने के कारण अधिक न हो सका। माँ के लौट आने पर फिर कीर्तन सुनायेंगी, कह दिया। अपर्णा देवी के स्वामी सुधीर बाबू अस्वस्थ हैं। अपर्णा देवी कह रही हैं–''जब भी उन्हें बीमारी होती है तभी मैं माँ को स्वप्न में देखती हूँ कि माँ सामने खड़ी हैं। यह देखने पर ही वह चंगे हो जाते हैं। इस बार भी मैंने माँ को देखा है इसलिए मेरा विश्वास है कि इस बार भी वह अच्छे हो जायेंगे।'' यह सब बातचीत होने के बाद हम उठेंगे देखकर, वे उठ गई। आज भी कई लोग दीक्षा ले रहे हैं, माँ को समीप में बैठे रहने के लिये भोलानाथजी ने

बुला भेजा। माँ जाकर दीक्षागृह के दरवाजे पर बैठी। वहाँ भी माँ के पास जितने लोग जा सकते थे जाकर खड़े हुए।

धीरे-धीरे दीक्षा का कार्य समाप्त हुआ। प्राणकुमार बाबू माँ को अपने मकान पर ले जाने के लिये आये हैं। वहाँ माँ का भोग लगेगा। वहाँ जाने पर माँ का फोटो खींचा गया। प्राणकुमार बाबू की लड़की ने माँ को दूध से स्नान कराया। बाद में मैंने स्नान करा दिया। भोग में माँ और भोलानाथजी के बैठने पर बहुत लोग प्रसाद पाने बैठ गये। जल्दी-जल्दी सब खाने-पीने से निवृत्त होकर स्टेशन की ओर चले। बाइशारी से गिरिजा बाबू का भतीजा माँ को लेने आया है। गिरिजा बाबू ने लगभग 4-5 वर्षों से अपने गाँव में माँ का एक आश्रम बना रखा है। किन्तु माँ के इस ओर न रहने के कारण अभी उसकी प्रतिष्ठा नहीं करायी गयी। इस बार प्रतिष्ठा होगी, ऐसी आशा की जाती है। सब लोग स्टेशन आये हैं। यथासमय गाड़ी चल दी। कोई-कोई स्थिरता के साथ पत्थर की तरह खड़े होकर माँ की ओर ताकते रहे। कोई-कोई गाड़ी के साथ-साथ दौड़कर चलने लगे। बहरमपुर से अवनी बाबू आदि आये हैं। हम लोग रात को 8 बजे स्टीमर पर चढ़कर 28 वैशाख, मंगलवार प्रातःकाल दुलार हाट पहुँचे। 9 बजे तक वहाँ रहकर फिर स्टीमर से चले। माँ अधिकतर लेटी ही हैं। 12 बजे हम लोग स्टीमर से उतरे। स्टीमर के घाट पर लगते ही आनन्दमयी की जय-जयकार की ध्वनि उठी। ढाका से सुबोध आदि आये हैं। स्टीमर से उतरकर प्रायः 1 घण्टा नौका में रहे। नाव के घाट पर लगते ही पुरुषों का दल माँ की अगवानी का संगीत गा-गाकर माँ को उतार लाया। माँ और भोलानाथजी के साथ हम लोगों को लेकर कीर्तन-दल थोड़ी दूर चलकर गिरिजा बाबू के आश्रम में पहुँचा। गिरिजा बाबू ने एक बहुत सुन्दर मकान तैयार कराया है। इतने वर्षों तक वह कितने आग्रह से माँ के आगमन की प्रतीक्षा में थे। आज उनका परिश्रम और अर्थ व्यय सार्थक हुआ है। माँ और भोलानाथजी को वे मन्दिर में लिवा ले गये। बहुत देर तक कीर्तन चला। उसके बाद सबके भोजन की व्यवस्था की गई। माँ और भोलानाथजी के भोजन के उपरान्त सबने प्रसाद पाया। आश्रम के पास ही एक तालाब और खुली जगह है। सन्ध्या के बाद फिर कीर्तन शुरू होगा। दोपहर में माँ बैठी हैं। छोटी-छोटी लड़कियाँ माँ को घेरकर बैठी हैं। माँ

के निकट जाने का रास्ता ही नहीं है। वे माँ के शरीर पर हाथ फेरते हुए दूसरी से चुप-चुप कह रही हैं, ''इतना सुन्दर कोमल हाथ तुमने कभी देखा है?'' माँ के सिर पर हाथ फेरते हुए कह रही हैं-''केश कितने सुन्दर और नरम हैं?'' सब कुछ मानो उनको सुन्दर लग रहा है।

मैंने हँसकर माँ से कहा-''तुम्हारे पास से भीड़ कैसे कम होगी? तुम शरीर के स्पर्श द्वारा, मीठी वार्ता द्वारा, हँसी और नेत्रों की मीठी दृष्टि द्वारा सबको आकृष्ट कर रही हो। मनुष्य करें क्या? फिर भी जो हट जाते हैं यही आश्चर्य है।'' माँ ने हँसकर कहा-''वाह! मैंने क्या किया है? मैंने क्या शरीर पर हाथ फेरने को कहा है?'' इसके पश्चात् सबको 'सच्चिदानन्द खेल' में बैठा दिया। सन्ध्या-समय माँ कमरे से बाहर आ बैठी। बहुत संख्या में हिन्दू और मुसलमान माँ के दर्शन करने आये हैं। कीर्तन हो रहा है इसलिए माँ के साथ बातें करने की किसी को भी सुविधा नहीं हो रही है। कीर्तन के समय बातें करने का माँ निषेध करती हैं। कीर्तन के उपरान्त सबके साथ वार्तालाप हुआ। एक बात उठी, वह यह कि **मन और प्राण किसे कहते हैं?** माँ ने कहा-''मैं तो कहती हूँ वृक्ष जो बड़ा होता है **यह जो क्रियाशक्ति है इसी को समझो मन-और जिसका आश्रय कर क्रियाशक्ति कार्य करती है, प्राण वही है।** प्राण न रहने पर क्रिया का प्रकाश कहाँ? मन है, इसीलिए आप लोग भिन्न-भिन्न रूप में सब देख पाते हैं। मन का स्वभाव एक को मान लेना, दूसरे को न मानना है। जो कुछ देखते हो, भोग करते हो-वासना कामना सभी मन के राज्य के हैं। स्तब्ध मन का खेल है। फिर मानो अन्य प्रकार का प्रतीत होता है। **प्राण तो महा-प्राण ही प्राण है, वे ही स्वयं प्राण रूप में हैं, वे ही फिर सर्वरूप में है।** मैं तो कुछ जानती नहीं हूँ, आप लोगों के शास्त्र क्या कहते हैं?'' बातचीत होने के बाद फिर कीर्तन चला। गिरिजा बाबू जी-जान से माँ की और माँ के संगी साथी सबकी सेवा कर रहे हैं। वह बीमार हो गए थे, माँ के आने का समाचार उसी समय उन्हें मिला था। माँ से यह बात कहने पर माँ हँसकर बोली-''हम लोग आयेंगे यह जानकर ही भगवान् ने आपको बचा दिया है नहीं तो हम आते ही कैसे?'' खूब आनन्द चल रहा है। रात को लगभग 1 बजे हम लोग सोये।

जिस काम से आनन्द मिलता है उससे नया कर्म बना, जो काम अनिच्छा रहते करना पड़ता है समझना चाहिए कि उससे प्रारब्ध भोग होता जा रहा है

29 वैशाख, बुधवार– भोर में माँ थोड़ा टहल आई। आकर आश्रम के बरामदे में बैठी हैं। धीरे-धीरे लोग आ रहे हैं। गिरिजा बाबू के लड़के ने माँ से कहा–"माँ, सब कुछ तो भगवान् करते हैं, तब फिर हम लोगों को अपराध क्यों होता है?" माँ ने कहा–"**भगवान् ही सब कुछ करते हैं, यह बात कहने का अधिकार नहीं है क्योंकि वास्तव में तो उनको जानते नहीं हो। इसीलिए कर्म करना चाहिए, कर्म करते–करते उनको पहचानने का अधिकार होता है।** जैसे इस नन्हें बच्चे को एम.ए. पास की बात समझाने पर वह कुछ भी नहीं समझेगा, केवल सुनी–सुनाई कुछ बातें कह सकता है।" लड़का कह रहा है–"हम लोग सत्कर्म करने की इच्छा करने पर भी कुछ कर नहीं सकते–क्या करें?" माँ कह रही हैं–"यह सदा ही स्मरण रखना चाहिए कि जब कोई कर्म करके आनन्द प्राप्त हो रहा है यह प्रतीत हो तभी समझना चाहिये कि उस कर्म से फिर नये कर्म की सृष्टि हुई। फिर जब तुम देखो कि कोई काम करना तुम नहीं चाहते, शायद उसे तुम खराब समझते हो परन्तु तुम्हें वह काम करने के लिये कोई बाध्य करता है तब तुम्हें जानना होगा कि तुम्हारे पूर्व कर्मों का ऐसा कोई संस्कार था जिसके प्रभाव से यह हो रहा है। उस काम से तुम्हें कोई आनन्द नहीं मिल रहा है, वही सब 'प्रारब्ध भोग' हो रहा है। यह सोचकर **भगवान् की ओर लक्ष्य स्थिर रखकर कर्म किये जाना चाहिये, उस काम से फिर कर्म की सृष्टि नहीं होगी।**" एक दिन नैनीताल में यतीश दादा कह रहे थे, "माँ, क्या ऐसी अवस्था हो सकती है कि लौकिक सम्बन्ध का कुछ भी अंश शेष न रहे। पति–पत्नी का सम्बन्ध छोड़ दिया, किन्तु कल्पना करें माता–पुत्र का सम्बन्ध क्या कभी जा सकता है? शरीर तो रहता ही है।" माँ ने कहा–"हाँ, **ऐसी अवस्था होती है कि शरीर तक बदल जाता है।**" इस पर यतीश दादा ने कहा–"ऐसा यदि कहें तो हो सकता है।" आज मैंने जिज्ञासा की "माँ, शरीर कैसे बदल जाता है?" माँ ने कहा–"जैसे आलू पक जाता है, चावल फरुवी हो जाता है। उसी प्रकार से शरीर भी बदल जाता है?" बरीशाल के प्रोफेसर तथा और कई भद्रपुरुष आये हैं। माँ के साथ अभी कुछ-कुछ बातें हुई।

30 वैशाख, बृहस्पतिवार– आज उदय से लेकर अस्त पर्यन्त कीर्तन चला। लोगों की अथाह भीड़ रही। सन्ध्या के बाद कीर्तन समाप्त हुआ। रात्रि में लगभग 12 बजे सब लोग विदा हुए। आज महोत्सव (भोज) हुआ। माँ सब लोगों के साथ भोजन करने बैठी। माँ को मुकुट और मालाओं से एक व्यक्ति के सजा देने पर माँ बच्चे की तरह दिखा-दिखाकर हँसने लगी।

31 वैशाख, शुक्रवार– आज बरीशाल जाने की बात है। माँ प्रातःकाल उठकर प्रायः सारे गाँव में घूम आई। दिन में 12 बजे हम लोग खाने-पीने से निवृत्त होकर स्टीमर के लिये रवाना होंगे। सभी रो रहे हैं कि ''आज हम मातृविहीन हो जायेंगे। आश्रम की ओर निहारकर ही दुःख होगा।'' बच्चे-बूढ़े-जवान सभी की जिह्वा पर यही बात है। लोगों की भीड़ से माँ का दर्शन दुर्लभ हो गया। जाने का समय हुआ–इस बीच में माँ को 2-3 घरों में ले गये। भोजन के बाद जब माँ सड़क पर आयी तब रोने का शोरगुल मचा। कोई- कोई तो चरणों में लोटकर फूट-फूट कर रो रहे हैं। ग्रामीण लोग सरल-प्रकृति के हैं। उनके इस प्रकार के भाव से अवाक् होना पड़ता है। कुल तीन ही दिन तो माँ का सत्संग किया है। बहुत से लोग माँ के साथ चले। एक विशेष बात देखी गई कि एक आकृति के लोग दिखायी पड़ने पर ही माँ मित्रता या भाईचारा स्थापित कर दे रही हैं। और कह रही हैं, ''यह निश्चय ही कोई पूर्व संयोग था।'' गिरिजा बाबू और सुबोध की आकृति में भी सादृश्य होने से कह रही हैं, ''सुबोध भी इसी वंश का लड़का है। ये भाई हुए।''

बरीशाल आगमन

हम लोगों ने नौका द्वारा जाकर स्टीमर पकड़ा। बहुत से लोग साथ-साथ स्टीमर पर चढ़े, एक स्टेशन के बाद वे लोग उतर जायेंगे। अर्थाभाव है, इसीलिए वे कह रहे हैं–''जहाँ तक हो सके माँ का संग कर लें।'' ज्योतिष दादा के जाति-भाई जमींदार क्षीरोद बाबू के एक उस्तादजी सखानाथ बाबू का मकान बरीशाल में है। ज्योतिष दादा के खबर देने से वह माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। बड़े स्पष्ट वक्ता पुरुष हैं। आकृति से और भाव से वह किसी की परवाह नहीं करते, ऐसा प्रतीत होता है। वे माँ के दर्शन करते ही साष्टांग प्रणाम कर कह रहे हैं–''जरा ठहरिये तो

सही, आपकी आकृति तो देखूँ।'' कुछ क्षण तक देखकर कह रहे हैं- ''वाह! असल देवी मूर्ति ही है! मैंने अनेक सुन्दरी स्त्रियों को साज-सज्जा के साथ देखा है परन्तु ऐसी सुन्दर मूर्ति मैंने पहले कभी नहीं देखी है।'' हम लोग रात को 9 बजे बरीशाल पहुँचकर स्टीमर के घाट पर ही पेड़ के नीचे माँ के साथ बैठे। किसी को भी माँ के आने की खबर नहीं है। भोलानाथजी चिन्ताहरण बाबू के भाई मनोरंजन बाबू को खबर देने के लिये उनके मकान पर गये। आश्चर्य की बात है कि देखते-देखते माँ के चारों ओर लोगों की भीड़ लग गई। सभी खड़े होकर माँ के दर्शन कर रहे हैं। स्टेशन के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने भी कई लोगों के साथ आकर माँ को प्रणाम किया। जब मनोरंजन बाबू भोलानाथजी के साथ माँ को लेने आये, तब वहाँ बहुत से लोग थे। माँ के साथ भी बहुत लोग हैं। हम कई लोगों ने माँ के साथ चिन्ताहरण बाबू के मकान में जाकर उनके मण्डप-गृह में स्थान ग्रहण किया। साथ ही कई लोग माँ के पुराने भक्त पूर्ण सरकार के साथ उनके घर गये।

श्री कृष्ण की मूर्ति नित्य और सत्य है

1 **ज्येष्ठ, शनिवार-** हम लोग बरीशाल में मनोरंजन बाबू के मकान पर हैं। बहुत से लोगों को माँ के आने की खबर नहीं लगी है। आज ही रात के 2 बजे स्टीमर द्वारा हम लोग चाँदपुर जा रहे हैं। वहाँ से माँ की जन्मभूमि में जाने की बात है। एक आदमी पूछ रहा है-''माँ, श्रीकृष्ण की मूर्ति क्या नित्य है। और उनका एक निर्दिष्ट स्थान है यह भी क्या सत्य है?'' माँ ने कहा- **''निश्चय ही सभी सत्य और नित्य है।''** अतुल ठाकुर ने कहा-''माँ, यह कैसी बात हुई? श्रीकृष्ण की मूर्ति नित्य है?'' माँ ने कहा-''सच तो यही है।'' उन्होंने कहा-''मूल में यह सत्य नहीं है यह कहना उचित है।'' माँ बोली-**''जब मूल कहते हैं, तो बात यह है कि उस समय यह सभी सत्य हैं। तुम जो अपनी बात कहते हो, सुनना चाहते हो, बातें होती हैं, इसमें मूल-अमूल का कोई प्रश्न ही नहीं है। तब भाषा भी नहीं रहेगी।''** फिर बात-चीत के सिलसिले में कह रही हैं-**''जगत् माने गता-गति** (गमना-गमन), **जब तक दृष्टि है तब तक सृष्टि है। पहले बाल्यावस्था में भी बेदाँत ही थे, बूढ़े होने पर फिर बेदाँत हैं, बीच में कुछ ही दिन दाँतों की कटा-कटी रही, क्या कहते हो बाबा?''** ये सब बातें कहकर माँ बच्चे की तरह हँस रही हैं।

साँझ को कीर्तन हुआ। अश्विनीदत्त के भतीजे, भोलागिरि आश्रम के कई लोग माँ के साथ भेंट करने आए हैं। गिरि महाराज के आश्रित कई भद्रपुरुष कह रहे हैं–''माँ, हम लोग क्या आपकी संतान नहीं हैं, इतने अल्प समय यहाँ रहकर क्यों चली जा रही हो? हम लोग अभी खबर पाते ही दौड़ आये हैं। इतनी थोड़ी देर के लिये माँ को पाकर क्या किसी को तृप्ति हो सकती है? माँ, फिर कब आओगी, कह जाओ।'' माँ बच्चों की तरह हँसकर कह रही हैं–''पिता को क्या कभी लड़की को देखकर तृप्ति होती है? आप लोग जब भी इस शरीर को बुलायेंगे तभी आयेगा। आप लोगों के ऊपर ही तो भार है। यह लड़की तो घूमती-फिरती रहती है। मैं तो कब से आई हूँ- पिताजी के खबर न लेने पर क्या करूँगी?'' उन लोगों में से एक के नेत्र छल-छला उठे। बहुत लोग आये हैं। जाऊँ-जाऊँ कहकर भी कोई जा नहीं पा रहा है। हम लोग रात के 2 बजे स्टीमर द्वारा चाँदपुर को रवाना हुए।

चाँदपुर जाकर कसबा होते हुए खेवड़ा गमन

2 ज्येष्ठ, रविवार– हम लोग आज दिन में 12 बजे चाँदपुर पहुँचकर कसबा को रवाना हुए। 3.30 बजे की गाड़ी से चलकर रात में लगभग 8 बजे हम लोग कसवा पहुँचे। रास्ते में कुमिल्ला आदि स्थानों पर कई लोग, माँ इस ट्रेन से कसवा जा रही हैं यह खबर पाकर चरण स्पर्श करने आये थे। वृष्टि आई, हम लोग उस रात को स्टेशन पर ही रहे।

* * *

चौरासीवाँ अध्याय

जन्म–स्थान खेवड़ा में आगमन और बचपन की स्नेह–प्रीति की स्मृति

3 ज्येष्ठ, सोमवार– भोर में हम लोगों ने 5 पालकियाँ और 1 डोली भाड़े पर ली एवं बहुत से लोग पैदल ही खेवड़ा माँ का जन्मस्थान देखने के लिये रवाना हुए। लगभग 5 मील का मार्ग था। हम लोग दो घण्टों में ही खेवड़ा गाँव में पहुँचे। किन्तु भीषण वर्षा हुई। तो भी गाँव के लोग माँ के दर्शन करने के लिये इकट्ठे हुए। माँ का जन्म और विवाह इसी गाँव में हुआ था। विवाह के दो वर्ष बाद विद्याकूट जाना हुआ था। फलत: लगभग 15 वर्ष की अवस्था तक का समय माँ ने इसी गाँव में व्यतीत किया है। माँ ने जिस जगह खेल किये हैं, जिस तालाब में नहाया है, सब दिखाने लगी। बाल्यकाल की लीला–क्रीड़ा के संगी–साथी सब जुटकर पहले के सब वृत्तान्त कहने लगे। इनमें एक विशेष बात की ओर मेरा ध्यान गया। ग्राम के प्राय: सभी लोग कहने लगे, ''निर्मला हमारे मकान में ही अधिक रहती थी, कितने खेल हम लोगों ने खेले हैं।'' कोई कह रहे हैं–''निर्मला ने हमारी कितनी रसोई की है–सदा ही हमारे मकान में आती थी।'' सबके स्नेह से ही माँ का बाल्यजीवन व्यतीत हुआ है–यह मेरे अनुभव में आया। माँ भी सभी से मीठी वाणी से कुशल वृत्त पूछ रही हैं एवं किसके साथ कैसा प्रेम था यह वर्णन कर उन्हें आनन्दित कर रही हैं। जो उपस्थित नहीं हैं उनकी बातें पूछ रही हैं। आश्चर्य की बात है कि बूढ़ी–बूढ़ी आत्मीय स्त्रियाँ भी चरणों पर पड़कर माँ को प्रणाम करने में दुविधा नहीं कर रही हैं। असल बात यह है कि माँ को इस अवस्था में यहीं पहले–पहल उन्होंने देखा।

एक बार पहले भी हम लोग थोड़ी देर के लिये वहाँ गये थे किन्तु उस समय किसी के साथ भी भेंट नहीं हुई थी। पहले जगदानन्द भट्टाचार्य के मकान पर जाकर अन्य मकानों में जाना हुआ। जन्म–स्थान के दर्शन हुए। सुबोध ने माँ का फोटो लिया। वहाँ से लौटकर भोलानाथजी ने तुरन्त उसी समय कसवा लौट जाना चाहा। हमने सोचा कि जल्दी–जल्दी जलपान

कर लें। माँ ने कहा–‘‘चलो, जगदानन्द भट्टाचार्य के घर, वहाँ से रवाना हुआ जाएगा।’’ हम लोग उस मकान में गये, सुना कि जगदानन्द की बहिन कह रही है–‘‘तुम्हारे आते ही चली जाने पर मैं नारायण के निकट सिर धुनकर कहती थी–चण्डी घर में आते ही चली गई। मैं थोड़ी–सी भी सेवा नहीं कर पाई।’’ मैंने कहा–‘‘देखिए और भी 2–1 मकानों में रहने की बात हुई थी किन्तु माँ आपके मकान में ही आ पहुँची।’’ उस मकान में जलपान किया गया। माँ बोली–‘‘जब भी मैं इस मकान में आती थी यह (जगदानन्द की बहिन) दूध और चिउड़ा बिना खिलाये छोड़ती न थी। आश्चर्य की बात है कि आज भी उनके घर में दूध और थोड़े से चिउड़े थे। उसी से उन्होंने जलपान कराया। देखते–देखते वर्षा में भीगती हुई महिलाएँ माँ के लिये फरुवी, आम, लड्डू लाने लगी। स्त्रियाँ ही कीर्तन करने लगी। माँ जलपान करने बैठी हैं। तदनन्तर माँ की विशेष परिचिता लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य की लड़की के भोलानाथजी से रहने के लिये अनुरोध करने के कारण वह तुरन्त एक दिन रहने के लिये राजी हो गए। इस विषय का थोड़ा इतिहास है। पहले से ही भोलानाथजी यहाँ टिकने के लिये राजी नहीं थे। तभी से वह ‘मैं जाते ही चला आऊँगा’ यही कह रहे थे। यहाँ आकर भी वही बातें दुहरा रहे थे। वह तुरन्त ही चले जायेंगे यही जानकर रसोई का इन्तजाम नहीं किया गया। जगदानन्द के मकान पर जलपान कर हम लोग रवाना हो जायेंगे, यह निश्चय हुआ। जगदानन्द के मकान पर जाकर सब लोग बैठे। किन्तु प्रायः सभी की इच्छा है कि एक दिन यहाँ ठहरकर जायें किन्तु बाबाजी के किसी तरह भी रहने के लिये राजी न होने के कारण फिर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा था। पागल बाबा जब झोंक में आते हैं तब फिर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता। मैंने सब लोगों की इच्छा जानकर माँ से कहा–‘‘माँ, पागल भोलानाथजी को सनक चढ़ी है कि जायेंगे ही–इसलिए कोई कुछ नहीं कह रहे हैं, तुम जरा बाबाजी की बुद्धि फेर दो न, तभी ठीक होगा।’’ मैंने भी हँसते–हँसते यह बात कह दी। कार्य कुछ होगा यह विश्वास तो वास्तव में मुझे था ही नहीं। सिर्फ कहना मात्र था। किन्तु आश्चर्य की बात है कि थोड़ी देर बाद ही माँ और भोलानाथजी जलपान करने बैठे हैं।

गाँव के लोग भी रहने के लिये बहुत अनुनय–विनय कर रहे थे किन्तु किसी तरह भी रहना नहीं होगा, यह निश्चित हो गया है। सहसा देखती हूँ

कि जलपान करते-करते बाबाजी मुझे एक अँगुली से इशारा करके जता रहे हैं कि एक दिन ठहरेंगे। इतनी बातें हो रही हैं किन्तु माँ उस विषय में बिल्कुल चुप हैं, जो निश्चय होगा उसी में वे राही हैं। जाना निश्चित हुआ इसीलिए जल्दी-जल्दी जलपान करने बैठाया गया-माँ ने वही किया। सहसा बाबाजी का यह मत-परिवर्तन देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे उस समय भी खयाल नहीं हुआ। बाद में मुझे अपनी प्रार्थना की बात याद आई। बाबाजी ही तब फिर अपने पूर्व मत के विपरीत कह रहे हैं-''जन्मोत्सव के समय यहाँ आकर क्या अभी चले जायेंगे?'' मैंने हँसकर कहा-''ठीक तो है, देखती हूँ कि स्वयं आपने ही अब उल्टी बातें कहनी आरम्भ की।'' बाबाजी का सरल हृदय है, तब फिर सबको लेकर खूब आनन्द करने लगे। गाँव के लोगों को भी सहसा इस परिवर्तन से आश्चर्य और आनन्द हुआ। लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य की लड़की ने जाकर अपने घर में भोग का बन्दोबस्त शुरू किया। थोड़ी देर बाद ही भीषण वृष्टि हुई। सुना कि यहाँ वृष्टि के लिये हाहाकार मचा था। वे लोग कहने लगे, ''माँ ने यहाँ चरण रखते ही सबको शीतलता प्रदान की है'' सभी जगह ऐसी ही घटना हुई। जमशेद्पुर में भी भयानक गर्मी थी-वृष्टि का अभाव रहा। भक्तों ने बड़े प्रयत्न से माँ का आसन सजाया था। माँ जाकर भक्तों द्वारा दिये गए आसन पर बैठी-कीर्तन हुआ। तदनन्तर ज्यों ही माँ को भोजन के लिये उठाकर ले गये त्यों ही आँधी-वृष्टि ने सब उलट-पलट कर दिया। कलकत्ते में सब लोग मारे गर्मी के अधीर थे, वे सोच रहे थे कि माँ ठण्डे स्थान से आ रही हैं, यहाँ यदि वृष्टि हो जाती और थोड़ा ठण्डा रहता तो बड़ा अच्छा होता। कलकत्ते में पैर रखते ही वृष्टि होने से खूब ठण्डा हो गया।

बाइशारी में भी वैसा ही हुआ। सभी कहने लगे कि ''माँ के चरण-स्पर्श से सारा देश ठण्डा हो रहा है।'' अस्तु हम लोग जगदानन्द के मकान से लक्ष्मीनारायण भट्टाचार्य के मकान के मण्डप में माँ को ले गये। माँ कहने लगी-''इस मकान में दुर्गापूजा होती थी, मुझे दुर्गापूजा के चार दिनों के लिये प्रतिवर्ष निमंत्रण देते थे। मैं बाल्यावस्था में प्रत्येक पूजा में 4 दिन इसी मकान में रहती थी।'' आज भी इसी मकान में रहना निश्चित हुआ। कीर्तनादि हुआ; महिलाओं ने भी एकत्र होकर कीर्तन किया, उन्होंने कीर्तन कर माँ को सुनाया। घर-घर में माँ को ले गये। माँ इतने वर्षों के

बाद भी सभी को पहिचान रही है और कह रही हैं–''बहुत परिवर्तन हो गया है, इस गाँव में पहले ईंटों का व्यवहार बिल्कुल नहीं था–इस समय पक्के मकान बने हैं। टीन के मकान तो कई घरों में देख रही हूँ। गाँव की बड़ी उन्नति हुई है।'' बालक–वृद्ध, स्त्री–पुरुष सभी ने माँ के चरण छूए। अपने को गुरुजन समझकर माँ के चरण स्पर्श करने में किसी को भी हिचकिचाहट नहीं हुई। मुसलमान स्त्रियाँ और पुरुष आकर माँ का पूर्व वृत्तान्त कहकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे। माँ भी सबका कुशल पूछकर उन्हें खुश करने लगी। माँ के बाल्य–जीवन के सब संस्मरण सुनकर हमें भी आनन्द हो रहा था। रात को लगभग ढाई बजे तक सब लोग माँ को लेकर आनन्द मनाते रहे।

माँ के मधुर व्यवहार से सभी आनन्दित हो रहे हैं। पहले इनके साथ कितना स्नेह था, उनके साथ मैंने कितना खेल किया है, इनके मकान में कोई बाधा होने पर मुझे रसोई बनाने के लिये ले जाते थे।'' ये सब पूर्व वृत्तान्त कहकर माँ सभी को आनन्दित करने लगी। क्योंकि सभी अनुभव कर रहे हैं कि आज माँ इतनी बड़ी होकर भी उनको भूली नहीं है। माँ के साथ 14–15 आदमी, इतनी अधिक पालकियों, डोलियों में सवार होकर आये थे कि पहले कभी कोई इतने साज–बाज से शायद इस छोटे से गाँव में नहीं आया था। जो लोग माँ की आध्यात्मिक उन्नति के सम्बन्ध में कुछ नहीं समझते थे वे भी सोच रहे थे–जिनका इतना ऐश्वर्य है वे हमारे साथ इस प्रकार मिल रही हैं–उसी से वे कृतार्थ हो रहे हैं। इस प्रकार लीलामयी ने एक दिन जन्मभूमि में व्यतीत किया। कल प्रात:काल हम लोग यहाँ से प्रस्थान करेंगे यह निश्चय हुआ।

खेवड़ा से चाँदपुर होकर ढाका–यात्रा

4 ज्येष्ठ, मंगलवार– प्रात:काल ही हम लोगों ने कसवा की ओर प्रस्थान किया; 8 बजे की ट्रेन पकड़नी होगी। गाँव के लोग बहुत दूर तक साथ–साथ चले। जब हम लोग कसवा पहुँचे तब भी ट्रेन के आने में विलम्ब था। माँ के साथ सभी कसवा के काली–मन्दिर में गये। यह वही स्थान है जहाँ माँ की पितामही (दादी) ने पौत्र प्राप्ती की कामना से जाकर पौत्री के लिये प्रार्थना की थी। उसी प्रार्थना से माँ का जन्म हुआ था।

हमने कुछ समय काली-मन्दिर में व्यतीत किया। तदनन्तर स्टेशन मास्टर के डेरे पर माँ को ले गये। यथासमय ट्रेन आने पर हम लोग चाँद्पुर को रवाना हुए। दोपहर में लगभग 12 बजे चाँद्पुर पहुँचे। गिरिजा दादा (भोलानाथजी के भानजे) अपने डेरे पर ले गये। माँ को औषधालय में रखा। यह भी माँ के बड़े भक्त हैं। माँ के भोजनोपरान्त सबको प्रचूर मात्रा में प्रसाद मिला। मेहेर के काली-मन्दिर में जाने की बात हुई थी-किन्तु माँ पहले और भी 2-3 बार वहाँ गई हैं इसलिए अब नहीं जायेंगी। भक्त लोगों को माँ का संग छोड़कर जाना पसन्द नहीं आया इसलिए फिर किसी का भी जाना नहीं हुआ। मध्याह्नोत्तर में नौका द्वारा पूर्णसेन के मकान पर जाना हुआ। वहाँ से लौटकर औषधालय में ही आये। बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। रात में 10 बजे हम लोग ढाका जाने के लिये स्टीमर में बैठे।

5 ज्येष्ठ, बुधवार- प्रात:काल 5 बजे स्टीमर छूटकर 10 बजे नारायणगंज पहुँचा। स्टीमर लगने के पहले से ही मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हुई। हम लोगों नें बहुत देर तक स्टीमर में ही प्रतीक्षा की। माँ के संगी-साथियों में गोदावरी (अल्मोड़ा) निवासिनी स्त्री तथा खराश (कराची का एक लड़का जमशेदपुर में काम करता है, उसने भोलानाथजी से दीक्षा ली है, कई दिनों की छुट्टी लेकर माँ के साथ-साथ घूम रहा है) पहले-पहल ढाका देखेंगे-उन्हें उसी में आनन्द हो रहा है। भूपति दादा माँ को लेने नारायणगंज आये हैं। वर्षा के थोड़ा रुकने पर ही हम लोग गाड़ी में बैठकर ढाका को रवाना हुए। यथासमय गाड़ी के स्टेशन पर पहुँचते ही भक्तों ने माँ और भोलानाथजी का 'जय-जय-कार' किया। माँ को गाड़ी से उतारकर फूलों की मालाओं से लाद दिया। इतने वर्षों के बाद जन्मोत्सव में माँ को पाकर ढाका-निवासियों के आनन्द की सीमा नहीं रही। प्रफुल्ल बाबू की स्त्री ने अपनी गाड़ी में माँ को बैठा लिया। सत्येन्द्र भद्र की मोटर द्वारा अन्यान्य लोग गये। सुना है कि हम लोगों के कल यहाँ पहुँचने की बात थी इसीलिए कल बहुत से आदमी स्टीमंर घाट पर गये थे, क्योंकि बरीशाल से माँ आयेंगी ऐसा निश्चय था। सहसा हम लोग खेवड़ा गये, यह बात किसी को ज्ञात न थी-कल रात को टेलिग्राम मिला है। माँ की मोटर धीरे-धीरे चलाकर सब लोग आश्रम में आये। मंगल-कलश दरवाजे पर स्थापित हैं।

ढाका आगमन

माँ आ रही हैं इसीलिए जटू आदि भक्तों ने कितने प्रयास से आश्रम सजाया है। कीर्तन-गृह के चारों ओर 'माँ-माँ' लिख रखा है। माँ का एक आसन 'माँ'-'माँ' लिखकर बनाया है। माँ को साथ लेकर कीर्तन-गृह में बैठाया गया। मारे आनन्द के स्त्रियों ने मंगल-ध्वनि की! अखण्ड नाम-कीर्तन चल रहा है-25 दिन और चलेगा। लोगों की अथाह भीड़ है। माँ का भोग लगा-प्रसाद बाँटा गया। रात में लगभग 2 बजे माँ महिलाओं को साथ लेकर कीर्तन-गृह के एक ओर लेट गई। कलकत्ते से गिरिन्द्र डाक्टर की लड़की सावित्री, यतीश गुहा की लड़कियाँ लतिका, यूथिका और लड़का गौर, प्राणकुमार बाबू की लड़की अन्नू और भानजी सुमति को लेकर प्राणकुमार बाबू का लड़का मीनू आया है। मानिक भी कलकत्ते था, वह भी इनके साथ आया है। इन सब सयानी-सयानी लड़कियों को इस तरह भेजा है, इससे सभी माँ के प्रति उनके माँ-बाप की श्रद्धा और विश्वास देखकर दंग रह गये। किसी तरह के मान-अपमान की ओर दृष्टि न देकर उन्होंने माँ की संगति करने के लिये लड़कियों को इस तरह भेज दिया है। माँ ने भी ढाका-निवासियों से कहा-"देखो, ढाका की महिलाओं को उन्होंने दिखा दिया कि तुम लोग जा नहीं सकती, वे आ सकती हैं।" वास्तव में तो कुल का गर्व बिना छोड़े भगवान् को प्राप्त नहीं किया जा सकता। हम लोग सब बुराइयाँ रखकर माँ के निकट जाते हैं इसीलिए कुछ मिला नहीं यह सोचकर दुःख प्रकट करते हैं। जितना हम खाली करते हैं उतना तो माँ भर ही देती हैं, इसमें तो सन्देह नहीं है। वह तो देने के लिये ही बैठी हैं पर हम लेते कहाँ हैं?

6 ज्येष्ठ, बृहस्पतिवार- आज विशेष उल्लेखनीय वृत्तान्त कुछ नहीं है-आनन्दोत्सव चल रहा है। सवेरे लगभग 7 बजे माँ मैदान में निकली। पेड़ के नीचे ही बैठ गई। बोली-"यही स्थान ठीक है। तुम लोग माँ को आश्रम के घेरे में बन्द करके रखना चाहते हो। केवल मंदिर में ही प्रणाम करते हो-मानो और कहीं वह नहीं है।" यह कहकर मीठी हँसी हँसने लगी। कुछ दिनों से ही माँ का सूखा चेहरा हरा हो गया है-अब मानो रूप उमड़ पड़ा है-चेहरा अब सूखा नहीं है। फिर पहले की तरह की छलछलाता चेहरा हुआ है। सिद्धेश्वरी में हुई उस बीमारी के बाद माँ का

चेहरा फिर ऐसा नहीं हुआ था, तब सूखा चेहरा था। मेरे दुःख प्रकट करने पर बहुधा माँ कहती थी–''ठहर न, फिर मोटी होऊँगी।'' मैं बहुत प्रतीक्षा करने के उपरान्त कहती थी–''फिर हो चुकी हो तुम मोटी।'' माँ फिर भी कहती थी–''देख न, होती हूँ या नहीं।'' वास्तव में अब पहले की अपेक्षा भी अच्छा चेहरा हुआ है। किन्तु खाना एक-एक दिन के अन्तर से खाकर भी परिमाण में जितना पहले था उतना ही नहीं है। इस समय कभी दो-एक ग्रास भात, कभी सूजी सिझाकर 2-3 रोटियाँ, कभी आटे की रोटियाँ 2-1 तरकारी के साथ खाती हैं। अपने शरीर को दिखाकर स्वयं ही कितनी बार कह चुकी हैं–''देख, कितनी मोटी हो गई हूँ।'' हाथ पैर के तलवे लाल ही हैं। अब कह रही हैं, ''देख, रक्त कितना बढ़ गया है, हाथ लाल-लाल चमक रहे हैं।'' यह कहकर स्वयं भी हँसती हैं, उपस्थित सभी हँसते हैं।

उत्सव में कीर्तन और आनन्द

साँझ की आरती के समय माँ मन्दिर के बरामदे में जाकर बैठी। महिलाएँ भी वहीं जाकर माँ को घेरकर बैठी। आरती के बाद माँ मुझसे कह रही हैं–''उस देश (यू.पी.) से जो गाने तू लिख लायी है, क्या वे सन्दूक में बन्द कर रखने के लिये लायी है? आरती का गाना अभी जाकर ले आ।'' मैंने वही किया। माँ हिन्दी का गाना उन्हीं के सुर में गाने लगी। साथ-साथ महिलाओं ने भी गाना आरम्भ किया। आज रात माँ ने 'मन्दिर के अन्दर सोऊँगी' कहा है। माँ के लिये मैंने मन्दिर में कम्बल बिछा दिया। माँ मुझसे कह रही हैं–''तुम लड़कियों को लेकर, कल जहाँ मैं सबके साथ सोई थी, वहीं जाकर सोओ।'' छोटी अवस्था की लड़कियों की खबरदारी करने को कह रही हैं। फिर कह रही हैं–''अन्नदा बाबू की विधवा लड़की है, देखो वह कहाँ है। उसे तुम अपने पास सुलाना-जाकर उसे कुछ जलपान करा देना।'' जगज्जननी की किसी ओर त्रुटि नहीं है, सभी ओर लक्ष्य है। सावित्री और यूथिका से कमरे में सोने को कहा। अन्य लड़कियाँ अपने आत्मीयों के घर गई हैं, संपूर्ण व्यवस्था मानो नैपुण्यपूर्ण और निर्दोष है।'' रात में लगभग 12 बजे माँ सो गई।

7 ज्येष्ठ, शुक्रवार– प्रातःकाल 5 बजे उठकर माँ मन्दिर के बरामदे में आकर लेटी। ब्रह्मचारियों से माँ ने कहा–''तुम लोग अब मन्दिर को साफ

करोगे न? मैं बमरादे में जाती हूँ।'' थोड़ी देर बाद ही उठी, उठते ही मैदान में घूमने गई। लौट आने पर भूपति दादा की स्त्री ने 'एकान्त में बातें करूँगी' कहा था। माँ बोली-''अभी चलो।'' उनके साथ बातें करके लौटकर माँ अखण्डानन्दजी की कुटिया में लेट गई। दर्शनार्थी उसी दरवाजे में भीड़ लगाकर खड़े हैं। माँ कपड़े से मुँह ढककर लेटी हैं। आज नवाब के महल से इस्माइल ने आकर माँ के दर्शन किये। कहा-''मैं आज बहुत धन्य हुआ।'' मैंने सुना, वह किसी एक फकीर के पास गये थे। ''तुम्हें ढाका की आनन्दमयी के पास जाना चाहिये था-वह बहुत उच्च स्तर में है, मेरे पास क्यों आये हो?'' फकीर के इस कथन के बाद योगेश घोष से खबर पाकर इस्माइल मियाँ यहाँ आये हैं। आज रात को महिलाओं का कीर्तन सारी रात चलेगा। माँ ने चन्दन और फूलों का प्रबन्ध करने को कहा है। माँ मन्दिर में कुछ देर लेटी रही। रात को लगभग 10 बजे महिलाओं का कीर्तन शुरू हुआ। लीलामयी ने कितनी ही लीलाएँ आरम्भ की। माँ को सबने सजाकर कृष्ण बनाया। माँ भी कुमारियों को एक ओर बुलाकर सबको सजाने बैठी। तदुपरान्त कुमारियों को साथ लेकर माँ घूम-घूमकर कितने ही प्रकार से कीर्तनानन्द करने लगी। अपूर्व भाव का खेल चला। अन्त में कुमारियाँ एक दूसरी का हाथ पकड़कर चक्राकार घूमने लगी-माँ बीच में घूम रही हैं। बोली-''सधवा-विधवा सबको एक-एक करके लाओ।'' माँ कुमारियों को साथ लेकर आनन्द कर रही हैं। मालूम पड़ता है उससे विवाहिताओं के हृदय पर आघात पहुँचा था इसीलिए करुणामयी ने एक-एक करके उन्हें लेकर भी आनन्द किया। सब कृतार्थ हुई।

इस प्रकार लीला के बहाने माँ ने सब पर कृपा की। किसी-किसी स्त्री का माँ के स्पर्श से भाव-परिवर्तन हुआ। किसी अलौकिक आनन्द में वे मत्त के तुल्य हो गई। सब पुरुषों को हटा दिया गया है। सभी ओर माँ का विशेष लक्ष्य है। रात-भर झमाझम कीर्तन चला। रात में 3 बजे तक माँ ने किसी को भी बैठने नहीं दिया। खूब ही आनन्द रहा। प्रात:काल कीर्तन समाप्त किया गया। तदनन्तर भोग हुआ।

8 ज्येष्ठ शनिवार- उपस्थित सब लोगों के साथ बातचीत कर माँ जरा लेटी हैं। कुछ देर बाद ही प्रमथ बाबू आकर माँ को पुकारने लगे। माँ आँखें बन्द करके ही कह रही हैं-''मैं इस समय किसी प्रकार भी नहीं

उठूँगी। मैं जिस समय बैठी रहती उस समय नहीं आते! फिर लेटने पर ही आ खड़े हुए।'' प्रमथ बाबू ने कहा–''आप इतने स्वल्प समय के लिये क्यों आती हैं? यदि अधिक दिन ठहरती तो खूब अधिक सोई रहने देता।'' इस सोने की बात के उत्तर पर माँ ने बाद में कहा– **''मैं तुम लोगों के साथ जैसे बातें करती हूँ, सो कर भी मैं वैसे ही बातें करती हूँ, पर तुम उन्हें देख नहीं पाते।''** थोड़ी देर बाद ही माँ उठकर कीर्तन–गृह में गई। क्योंकि महिलाओं ने माँ को किसी तरह भी लेटी रहने नहीं दिया। दोपहर में भोग के अनन्तर माँ मन्दिर में जाकर लेट गई। अपराह्न में लोगों भी भीड़ के कारण माँ को ले जाकर मैदान में बैठाया गया। विशेष कुछ उपदेश माँ के मुँह से प्रकट नहीं हुआ। आनन्दमयी सभी के साथ विविध वार्तालाप कर आनन्द की वर्षा कर रही हैं। बहुत रात बीतने के बावजूद कोई भी उनकी मीठी वाणी और उस अपूर्व रूप को देखकर छोड़ नहीं पा रहा है। 10 बजे के बाद माँ भीतर आकर मन्दिर के बरामदे में बैठी। रात में लगभग अढाई बजे मंदिर में सोने गई। किन्तु अहर्निश नाम–कीर्तन चल रहा है, किसी के भी सोने की गुंजायश नहीं है।

9 ज्येष्ठ, रविवार– आज भी उसी तरह कार्यक्रम चल रहा है। ''आज रात में वृद्धों ने सारी रात कीर्तन किया। भूदेव बाबू ने पूछा,''आप भगवती हैं तो आपके स्पर्श से हम लोग मुक्त लोग नहीं होंगे?'' माँ कह रही हैं– ''लड़की से ऐसा कहना चाहिए? मैं तो आप सब लोगों की सबसे छोटी लड़की हूँ, खाती हूँ, पीती हूँ, घूमती–फिरती हूँ।'' उनके बार–बार वह प्रश्न करने पर माँ ने कहा–''इस शरीर की बात छोड़ दीजिये, माताएँ तो सभी भगवती हैं।'' नरेश बाबू (प्रोफेसर) कह रहे हैं–''तो हम लोग क्या हैं?'' माँ ने कहा–''तुम शिवजी हो।''

विविध वार्तालाप के बाद माँ ने कहा–''इस शरीर की बात छोड़ दो, किन्तु **वास्तव में जो फल प्राप्त नहीं होता उसका कारण है वह विश्वास कहाँ है? जितना विश्वास है उतना काम भी होता है।** तथापि तुम कह सकते हो कि अग्नि को न जानने पर भी यदि उसे छूआ जाये तो भी उसका काम एक (दाह) ही होता है। इस बात के उत्तर पर यह कहा जाता है–**इतनी ठण्डक है कि भीतर गर्मी के प्रवेश में समय लगता है। लेकिन फल अवश्य ही होता है। व्यर्थ कुछ भी नहीं जाता, इसीलिए साधु संग आदि करने की आवश्यकता है।''**

10 ज्येष्ठ, सोमवार– आज 20 वर्ष तक के लड़कों ने सारी रात कीर्तन किया।

11 ज्येष्ठ, मंगलवार– आज रात-भर माँ ने महिलाओं को साथ लेकर कीर्तन किया। अमूल्य दादा की स्त्री एकाएक कैसी हो गई। माँ ने उन्हें छाती से लगाकर प्रकृतिस्थ किया। मानो माँ के संपूर्ण शरीर से आनन्द की धारा बह रही है। सब लोग उसे देखकर आनन्दमग्न हैं। किसी को भी विशेष खयाल नहीं है। और भी 2-3 स्त्रियों के भाव में परिवर्तन हुआ। भूदेव बाबू की स्त्री भी नाम-कीर्तन करते समय न जाने कैसी हो गई थी। माँ ने अमूल्य दादा की स्त्री को अपने बिछौने पर कम्बल बिछाकर सुला देने को कहा। वह कम्बल उसे दे दिया।

12 ज्येष्ठ, बुधवार– कल रात्रि में कीर्तन के बाद भोर में अखिल बाबू के मकान के समीप बगीचे के तालाब में जाकर माँ ने महान् आनन्द से महिलाओं के साथ स्नान किया। बहुत-सी महिलाएँ जब माँ के साथ संपूर्ण रात्रि के कीर्तन के बाद स्नान करने चली एवं स्नान करके लौटी-वह भी एक अपूर्व दृश्य रहा। तदुपरान्त आश्रम में आकर बाल-भोग हुआ। 2 बजे के समय माँ को भक्तों के घर-घर ले गये। ढाकेश्वरी के मन्दिर के पुजारी आकर माँ को माता के मंदिर में ले गये। वहाँ एक घटना हुई। एक स्त्री ने अपनी बीमारी के लिये माँ से कातर प्रार्थना की। माँ के दोनों हाथ उसने पकड़े हैं, माँ के हाथ में एक गुलाब का फूल था। अलक्षित रूप से अपने आप ही वह फूल माँ के हाथ से उस स्त्री के हाथ में गिरा-किन्तु आश्चर्य की बात है कि उसने उसे देखकर भी नहीं देखा-फूल जमीन पर गिर गया। मैंने देख लिया। एकाएक मेरे मुँह से निकला, ''क्या अचम्भा है?'' माँ मेरी ओर देखकर जरा हँसी! मैं फूल को उठा लाई। मन्दिर से लौटते समय माँ ने कहा-**''देख लिया न, देने पर भी ले नहीं सकी। इसीलिए मैं कहती हूँ जो होने वाला है वह होकर ही रहेगा। तुम लोग बेकार आग्रह करते हो।''** मैंने भी इस कथन की सत्यता का अनुभव किया। पर अहैतुक कृपा का फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं। आश्रम में लौटकर माँ मन्दिर में लेट गई।

अपराह्न में भी भक्तों के घर-घर माँ को ले गये। 27 दिन अखण्ड नाम-कीर्तन चलेगा-माँ की जन्म-तिथि से पूरे एक चान्द्र मास तक। लोगों

की भीड़ से माँ के शरीर की रक्षा करना मुश्किल है। आज सब लोगों ने मिलकर रात भर खूब जोर का कीर्तन चलाया। रात में लगभग 2 बजे माँ ने थोड़ा विश्राम किया।

13 ज्येष्ठ, बृहस्पतिवार– प्रात:काल लड़कों को लेकर माँ तालाब में स्नान कराने गई। तदुपरान्त दही आदि द्वारा बाल-भोग हुआ। मनमोहन घोष आश्रम में कभी नहीं जाते किन्तु उनका हृदय अच्छा है। आश्रम की यथाशक्ति सहायता करते हैं। आज माँ को मनमोहन घोष के मकान पर ले गये। उन्होंने माँ को रुद्राक्ष की माला दी। सुना है कि उन्होंने स्वप्न में देखा था मानो माँ कह रही हैं कि "तू आ, तू तो हमारा ही आदमी है।" आज रात को मनमोहन बाबू आश्रम में आये हैं।

14 ज्येष्ठ, शुक्रवार– आज प्रभात बाबू माँ को भोग देने के लिये आनन्द आश्रम में ले गये। वहाँ चारुशीला देवी (आश्रम की अधिष्ठात्री) ने माँ को चन्दन से सजा दिया। कीर्तन हुआ। सबने मिलकर खूब आनन्द लूटा। वहाँ से सुरेन्द्र मुखर्जी के मकान पर गई–वहाँ कीर्तन आदि हुआ। वहाँ से माँ सत्येन्द्र भद्र के मकान पर गई–वहाँ सबके मिलन से खूब आनन्द आया। वहाँ से माँ आश्रम में लौटी। माँ को धानकोड़ा वालों के मकान पर ले गये। और 2-1 भक्त-जनों के मकानों पर घूमकर माँ आश्रम लौटी। बहुत से लोग भोलानाथजी से दीक्षा ले रहे हैं। प्रतिदिन लगभग 2-3 व्यक्ति दीक्षा ले रहे हैं। आज महानिशा की कालीपूजा रात 12 बजे के समय होगी। आज दैनिक पूजा के बाद मन्दिर का दरवाजा खोल दिया गया। सर्वसाधारण को जात-पांत के भेदभाव के बिना आज मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिया जाता है। सन्ध्या के बाद दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। तब काली का दरवाजा खोला गया। अभिषेक आदि करके रात में 12 बजे पूजा हुई। तदुपरान्त रात के 3 बजे माँ की तिथि-पूजा होगी। दोपहर में भोलानाथजी ने हवन किया। जिन्होंने दैनिक 10 मिनिट का व्रत लिया है उनकी आत्मा की उन्नति के लिये आज अग्नि में आहुतियाँ दी गई हैं। लोगों की भीड़ दिन-पर-दिन बढ़ रही है।

माँ को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना असम्भव हो गया। एक व्यक्ति के ऊपर सबके समान दावा होने से मतभेद और थोड़ा-बहुत मनोमालिन्य होना स्वाभाविक है; वह भी हो रहा है। और जिनके साथ

किसी प्रकार का परिचय नहीं था, माँ के निकट आकर उनके शुद्ध भाव का मिलन भी खूब चमत्कार रूप से हो रहा है, यह भी देखने योग्य है। माँ को घेर-घेरकर आरती और कीर्तन चल रहा है। स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर भाई-बहन, जेठ-भाई की बहू, बाप-बेटा-बेटी, माँ-बेटी सब मिलकर ताली बजाते हुए कीर्तन कर रहे हैं। बहुत से लोग नाम-कीर्तन करते-करते बेसुध हो रहे हैं। एक विचित्र भाव के नशे में सब मग्न हैं।

15 ज्येष्ठ, शनिवार– आज माँ को बहुत से घरों में ले गये। आगामी सोमवार को हम लोगों का माँ के साथ ढाका से प्रस्थान करने का निश्चय हुआ है। सबके दिन-रात कैसे कट रहे हैं किसी को ध्यान नहीं है। कलकत्ते से प्रोफेसर नरेश बाबू, नगेन्द्र बाबू, नवतरु बाबू आदि आये हैं। गुहा परिवार की और प्राणकुमार बाबू की लड़कियाँ, गिरीन्द्र डाक्टर की लड़की-सब कलकत्ते से आ गई हैं। माँ-बाप किसी के भी साथ नहीं हैं। लड़कियाँ माँ के समीप भेज दी गयी हैं। माँ मुझसे कह रही हैं कि "लड़कियों की देख-रेख सदा रखना।" हमारी माँ की किसी ओर भी त्रुटि नहीं है। आज की रात्रि माँ ने महिलाओं के साथ कीर्तन में व्यतीत कर दी।

16 ज्येष्ठ, रविवार– भोर में महिलाओं को साथ लेकर माँ ने स्नान किया। फिर बाल-भोग हुआ। आज भी माँ को घर-घर ले गये। आश्रम में इतनी भीड़ है कि लोगों के दबकर मर जाने की नौबत आई है। माँ को बीच-बीच में मैदान में ले जा रहे हैं। आज महोत्सव है। माँ मन्दिर में हैं। माँ मन्दिर के अन्दर बैठकर सबसे बातें कर रही हैं। कभी लेट रही हैं। दोपहर से ही भीषण वृष्टि हो रही है। कुछ लोगों का खाना हो चुका था किन्तु उसके बाद फिर उन्हें बैठाया नहीं जा सका। लीलामयी ने और एक लीला की। मुझसे बोली-चल, जरा बाहर घूम आवें। मैंने कहा-"इतनी वृष्टि में जाने की जरूरत नहीं है।" थोड़ी देर बाद माँ बोली-"चल, स्नान-गृह में जावें।" मैं माँ को लेकर स्नान की जगह में जाकर देखती हूँ कि वहाँ कई बहनें इकट्ठी होकर नाम-कीर्तन कर रही हैं। माँ ने थोड़ी देर बाद उन लोगों से कहा-"तुम लोग यहाँ रहो, मैं जरा बाहर जाती हूँ।" यह कहकर मुझे साथ लेकर मैदान की ओर चली। भीषण वृष्टि हो रही थी। मैदान में जाकर देखती हूँ कि पूर्वोक्त मनमोहन बाबू बाहर खड़े हैं। माँ को देखते ही दौड़े आकर उन्होंने प्रणाम किया।

माँ ने कहा-''पिताजी, आपके लिये ही यहाँ आई हूँ।'' माँ सारे मैदान में घूम-घूमकर आश्रम में प्रविष्ट हुई। दल-के-दल लोगों ने माँ को भीगते देखकर वृष्टि में ही उतरकर कीर्तन शुरू किया। माँ महान् आनन्द से ताली बजाने लगी। नन्हें बच्चे की तरह आनन्द से जल में खेलने लगी। माँ के आश्रम में प्रवेश करते ही भोलानाथजी भी उतर आये। भाव के आवेश में भोलानाथजी कीचड़ में लोट-पोट होने लगे। सब लोग पकड़ कर उठा ले गये। कुछ स्वस्थ होकर वे फिर उतरे। स्त्री-पुरुष आत्मविस्मृत होकर नाम-कीर्तन में रम गए। माँ को बीच में बैठाने के लिये चारों ओर सब आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़कर खड़े रहे। किसी ने भी खाया नहीं। माँ ने खिचड़ी निकालकर ज्यों ही अपने हाथ से 2-1 व्यक्तियों को दी त्यों ही माँ के हाथ की खिचड़ी लेने के लिये ऐसी धक्का-मुक्की शुरू हुई कि फिर माँ दे न सकी। माँ ने भोलानाथजी से देने को कहा। खिचड़ी और तरकारी-सब मैदान में ले जाना हुआ। माँ ने कहा-''सब आँचल बिछाकर खिचड़ी लो।'' सबने ऐसा ही किया। सब माँ की यह बात नहीं सुन पाये। भूदेव बाबू आदि 2-1 व्यक्तियों के कपड़े में खिचड़ी लेने में आपत्ति करते ही माँ ने मुझसे कहा-''धोती का पल्ला खोलकर दे दो।'' माँ का आदेश जानकर धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष सबने मिलकर आँचल बिछाकर खिचड़ी ली और वर्षा में भीगते-भीगते उसे खाने लगे।

अपूर्व दृश्य रहा। माँ ने भूदेव बाबू से कहा-''इस भिक्षा की यादगारी रखने के लिये इस कपड़े को रख देना।'' बहुत-सा समय इस प्रकार व्यतीत हुआ। सन्ध्या से पहले माँ ने भोलानाथजी के साथ लड़कों को स्नान करने के लिये काली-मंदिर के तालाब में भेज दिया। बाद में महिलाओं को साथ लेकर माँ ने तालाब में स्नान किया। स्नान करने के बाद मंदिर में बैठकर माँ सबके साथ वार्तालाप करने लगी।

ढाका से कलकत्ता यात्रा

17 ज्येष्ठ, सोमवार- आज माँ कलकत्ते को प्रस्थान करेंगी। साथ में सुरेश बाबू की स्त्री, यतीन्द्र बाबू की स्त्री, साधना तथा नगेन्द्र दादा की लड़की कलकत्ते को चली, और भी अनेक लोग नारायणगंज तक माँ के साथ-साथ चले। सभी का मन उदास है कि माँ जा रही हैं, फिर कब

आएँगी कौन जाने? इस आशंका से सभी का हृदय रो रहा है। सब लोग माँ को कितनी मालाएँ पहना रहे हैं। कितने ही उत्तम-उत्तम प्रकार के भक्ष्य पदार्थ माँ के निकट रख रहे हैं। माँ थोड़ा-सा मुँह में डाल रही हैं बांकी पीछे बाँट दिया जा रहा है।

सभी लोग अपने-अपने भक्तिभाव से माँ की सेवा कर रहे हैं। माँ का सत्कार कर मानो उन्हें तृप्ति नहीं हो रही है। माँ आनन्दमयी हँस रही हैं- बहुत से लोग आँखें पोंछ रहे हैं। उन लोगों को पुचकारकर कह रही हैं- ''अच्छा देखो तो, जो हँसे उसके लिये तुम क्यों रोते हो, बतला सकते हो?'' इस प्रकार नाना भावों, विविध वार्तालापों से माँ सबके हृदय को इस विषाद में भी आनन्द दे रही हैं। माँ कुछ देर बाद चली जायेंगी, यह बात सभी भूल रहे हैं। माँ के सत्संग के आनन्द में उस समय भी सब लोग मग्न हैं। माँ कह रही हैं-देखो सत्संग का गुण क्या है-जानते हो? जैसे एक पक्षी बहुत दिनों तक पिंजरे में बन्द रहते-रहते उड़ना ही भूल गया है, पिंजरे का दरवाजा खोलने पर भी वह फिर उड़ नहीं जाता। सहसा एक दिन पक्षियों का एक झुण्ड आ उपस्थित हुआ। तुरन्त देखा गया कि वह पक्षी भी उनके साथ उड़कर भाग गया। उसी तरह **यद्यपि जीव अपने स्वरूप को भूला है किन्तु यदि वह एक व्यक्ति को मुक्त जान ले तो तुरन्त उसके उस भाव के अस्थायी दिखाई देने पर भी एक प्रकार की उमंग होती है।** यद्यपि वह सामयिक प्रतीत होती है किन्तु वह अपनी छाप छोड़ जाती है। बेकार कुछ भी नहीं जाता। यह भी सत्संग का एक गुण है। सत्संग से विशेष लाभ होता है यह ध्यान में रखो।'' फिर कह रही है-''देखो, जिस चीज का स्वाद जिसे कभी नहीं मिला उस चीज की प्राप्ति के लिये वह अभी भी इच्छुक नहीं हो सकता। **ये जो सब लोग एक स्थायी आनन्द पाना चाहते हैं, उसका कारण है कि स्थायी आनन्द उनमें है, उसके ऊपर आवरण पड़ गया है इसलिए छटपटा रहे हैं, जब तक वह न मिले तब तक उन्हें पूर्ण शान्ति नहीं मिलती।''**

सिद्धेश्वरी के फणि बाबू (जज) की स्त्री कह रही है (ये इसी बार माँ के निकट आई हैं)-''मैंने माँ को कभी देखा नहीं किन्तु माँ के चित्र की पूजा करती थी। एक दिन मैंने देखा कि माँ हँस रही हैं। मैंने कहा (चित्र के निकट)-''माँ, मैं कुछ समझती नहीं हूँ-अब चित्र अच्छा नहीं लगता-अब यदि शरीर लेकर दर्शन न दोगी तो चित्र फाड़ डालूंगी। उसके

कुछ ही दिन बाद एक आदमी ने आकर समाचार दिया कि माँ राजमोहन बाबू के मकान पर आई हैं, दर्शन करने चलिये।'' माँ उस बार केवल एक दिन के लिये ढाका जाकर सिद्धेश्वरी में राजमोहन बाबू के मकान पर थोड़ी देर के लिये ठहरी थी। और भी अनेक व्यक्ति किसी ने स्वप्न में, किसी ने जागृत अवस्था में जप करते-करते माँ के क्या-क्या आदेश पाये हैं-कहने लगे।

हम लोग सबके प्रति माँ की इस प्रकार कृपा की बातें सुनकर बहुत आनन्दित हुए। फणि बाबू की स्त्री भीड़भाड़ पसन्द नहीं करती है। वह रोज ही कहती-''माँ मैं तुम्हारी इस भीड़-भाड़ में योग देने नहीं आऊँगी। निर्जन में पूजा ही मुझे अच्छी लगती है।'' किन्तु रोज ही वह आकर उपस्थित होती थी। कहती थी-''माँ यह क्या बात है, मैं तो कभी भी ऐसी नहीं रही-मुझे तुम इस तरह क्यों नचा रही हो? मैं घर पर नहीं रह सकती हूँ।'' अस्तु सबसे विदा लेकर माँ कलकत्ते को चली। किन्तु माँ ने कहा-''मैं तो तुम लोगों को छोड़कर जाती नहीं। मैं तो तुम लोगों के निकट ही हूँ।'' नारायणगंज में द्विगेन्द्र बाबू के मकान पर माँ थोड़े समय के लिये गई थी। वहाँ इस बीच में ही सबने भीड़ खड़ी कर दी। मालूम नहीं लोगों को कैसे खबर लगी। बहुतेरों ने नारायणगंज से माँ के आश्रम में जाकर उत्सव में योग दिया था।

कैलास यात्रा के मार्ग में कलकत्ता आगमन

18 ज्येष्ठ, मंगलवार- हम लोगों ने आज कलकत्ते पहुँचते ही देखा कि भक्त लोग माँ को लेने के लिये स्टेशन पर खड़े हैं। माँ को लेकर बिड़ला-मन्दिर में गये। बिड़ला स्वयं भी अक्सर माँ के समीप आते हैं। आज रात में 3 बजे तक नगेन्द्र दादा ने हवनादि कर छत पर एकान्त में माँ की पूजा की। पूजा के बाद न जाने कैसे विचित्र हो गये।

19 ज्येष्ठ, बुधवार- आज त्रिगुणा दादा के आह्वान पर दोपहर 12 बजे के लगभग श्रीरामपुर जाना हुआ। अपराह्न में माँ सबको साथ लेकर गंगा के तट पर बैठी। सन्ध्या होने पर सबको साथ लेकर माँ कलकत्ते लौटी। रात में लगभग 1 बजे तक माँ के समीप भीड़ लगी रही। तदुपरान्त अनेक लोग विदा हुए। बहुत से लोग मन्दिर के बरामदे में माँ के चारों ओर पड़े रहे।

अखण्ड नाम–कीर्तन न होने से अखण्ड दर्शन नहीं होता

20 ज्येष्ठ, बृहस्पतिवार– माँ बिड़ला–मन्दिर में ही हैं। बातें करते–करते माँ कह रही हैं–''अखंड नाम–कीर्तन हुए बिना अखंड दर्शन नहीं होता।'' आज अपर्णा देवी के मकान पर माँ को कीर्तन में बुला ले गये। महिलाओं के साथ अपर्णा देवी ने माँ के निकट कीर्तन किया। आते समय भीषण वृष्टि हुई। माँ को साथ लेकर वासन्ती देवी तथा अपर्णा देवी ने भीगते–भीगते कीर्तन करना चाहा, माँ भी प्रस्तुत थी। भोलानाथजी के बाधा देने के कारण माँ वृष्टि में नहीं उतरी। हम लोग मन्दिर में लौटे। रात में लगभग 1 बजे लड़कियों को साथ लेकर माँ छत पर सो गयी।

21 ज्येष्ठ, शुक्रवार– आज माँ नैनीताल के लिए प्रस्थान करेंगी। प्रातःकाल ही बहुत से लोग आये हैं, वासन्ती देवी और अपर्णा देवी भी आई हैं। माँ ने वासन्ती देवी और अपर्णा देवी को करताल दिये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्हें ग्रहण किया। अपर्णा देवी ने कहा–''मैं आज से कीर्तन के समय इस करताल को अपने हाथ में रखूँगी।'' कीर्तन चल रहा है। रात को 10 बजे की गाड़ी से हम लोग बरेली को रवाना हुए। वहाँ से नैनीताल, अलमोड़ा होकर कैलास जाने का विचार है। गारबियान की लड़कियों ने गत बार माँ को कैलास ले जाने के लिये बहुत ही आग्रह किया था। भोलानाथजी का भी बड़ा आग्रह है। इसीलिए विचार हुआ है कि कैलास जाया जाएगा। पर्वतीय लड़कियों ने कहा है–''माँ, एक बार हम लोगों के देश चलो। यदि तुम न चल सकोगे तो तुम्हें अपनी पीठ पर उठाकर ले जायेंगी। बर्फ हटाकर रास्ता बनायेंगी।'' माँ कैलास जायेंगी। खूब आयोजन हो रहा है। अनेक लोग साथ जाने को प्रस्तुत थे किन्तु रास्ते के भय से सबको मना कर दिया गया है। भक्तों के जय–जयकार और नेत्रों के जल के साथ ट्रेन चल दी।

22 ज्येष्ठ, शनिवार– आज काशी, फैजाबाद, लखनऊ आदि स्थानों के भक्तों को दर्शन देकर रात को 11 बजे माँ बरेली पहुँचीं। भक्त लोग माँ की अगवानी करने के लिये स्टेशन पर खड़े थे। माँ की गाड़ी पहुँचते ही भक्तों की जयध्वनि से आकाश गूंज उठा। फूलों की माला–पर–माला पहनाकर भक्तों ने माँ को लाद दिया। बार–बार चरण–स्पर्श किया। सब लोग माँ साथ को लेकर स्टेशन के निकट की धर्मशाला में चले गये। रात में लगभग 2 बजे तक सब आनन्द लूटकर अपने–अपने घरों को लौटे।

23 ज्येष्ठ, रविवार– आज दिल्ली से नरेन्द्र बाबू परिवार के साथ, देहरादून से हरीराम, नरसिंह, मन्मथ बाबू आदि आ पहुँचे हैं। कीर्तन चल रहा है। माँ रात को छत पर थी। माँ के उठने से पहले ही माला और फूल लेकर सब लोग उपस्थित हुए हैं। कब माँ उठेंगी इस आशा में बैठे हैं। पूरे दोपहर तक भक्तों के साथ माँ ने आनन्द किया। कितनी तरह के फोटो खींचे गये। आज सन्ध्या के समय माँ को लेकर मोटर से मैं, महारतन और बिहारी बाबू की स्त्री कैलास की यात्रा के लिये अपेक्षित आवश्यक सामग्री खरीद लाए। बहुत रात तक बाजार किया।

24, ज्येष्ठ, सोमवार– आज भी दिन-भर माँ को लेकर सबने आनन्द किया। रात में 12 बजे की गाड़ी से माँ नैनीताल को चली।

25 ज्येष्ठ, मंगलवार– प्रात:काल माँ काठगोदाम पहुँची। तदुपरान्त मोटर द्वारा 2 घण्टे में हम सब नैनीताल पहुँचे। माँ-जननी पहाड़ के भक्तों को लेकर कीर्तन और कथावार्ता द्वारा खूब आनन्द कर रही हैं। बरेली से पं. द्वारकाप्रसाद की स्त्री माँ के साथ आई हैं। इनकम टैक्स ऑफिसर अवतार किशन ने बरेली में माँ के दर्शन किये। माँ को अपने घर ले जाकर कीर्तन किया था। वह इस समय नैनीताल में हैं। सभी माँ को पाकर बहुत खुश हैं।

26 ज्येष्ठ, बुधवार– दोपहर में 12 बजे माँ ने अलमोड़ा के लिये प्रस्थान किया। किन्तु मोटर की गड़बड़ी से रात्रि में रानीखेत पहुँचकर ठहरना पड़ा। साथ में अनेक स्त्री-पुरुष थे। सभी माँ के साथ एक बड़े कमरे में सोये।

27 ज्येष्ठ, बृहस्पतिवार– सवेरे लगभग 7 बजे रानीखेत से रवाना होकर 10 बजे अलमोड़ा पहुँचकर नन्दा देवी के मन्दिर में माँ ने डेरा डाला। कैलास जाने के प्रबन्ध में सभी लोग व्यस्त थे। पहाड़ी लड़कियाँ यहाँ से साथ ही जायेंगी। दुगर्म मार्ग है, बंगाली भक्त माँ को भेजने से बहुत नाराज हैं। आनन्द में दिन बीत गया।

28 ज्येष्ठ, शुक्रवार– माँ सवेरे घूम आई। कैलास यात्रा की ही बात चल रही है। आगामी रविवार को कैलास जाने का दिन निश्चित हुआ है। आज रवि ठाकुर की पुत्र-वधु माँ के साथ भेंट करने आई हैं।

29 ज्येष्ठ, शनिवार– आज भी यात्रा का ही आयोजन चल रहा है। माँ स्वयं बैठकर हम लोगों से सब ठीक करा रही हैं। इतने दिनों तक मैं इतनी चीजें ठीक नहीं कर सकी थी–आज माँ ने सब ठीक कराया। आगामी रविवार को हम लोग रवाना होंगे, यह निश्चय हुआ है।

कैलास जाने के पहले जब कलकत्ता होकर आये तब भ्रमर और ननी ने हम लोगों के साथ कैलास जाने के लिये बहुत आग्रह प्रकट किया था किन्तु घटनाचक्र से उनका जाना नहीं हुआ। भ्रमर विशेष रूप से ननी (रायबहादुर सुरेन्द्र वन्द्योपाध्याय की कन्या के अन्दर बहुत अच्छा त्याग का भाव है; माँ के कलकत्ता जाने पर ननी प्रायः रात–दिन सदा माँ के साथ–साथ रहती है) बहुत दुःखी हुई।

माँ का गणेश–जननी के रूप में स्वप्न में दर्शन

माँ अलमोड़ा आकर कैलास को प्रस्थान करने के पहले दिन रात्रि में मुझसे कह रही हैं–''ननी और भ्रमर को लिख दो कि वे स्मृति–रूप से हम लोगों के साथ–साथ चल रही हैं।'' मैंने वही लिख दिया। मेरे उस पत्र को पाने के पहले ही ननी ने पूजा–गृह में बैठकर देखा है कि माँ कह रही है, ''तुमने कैलास जाना चाहा था पर जा न सकी इसलिए दुःख हुआ है। मेरी डांडी में चुपचाप बैठकर मेरे साथ कैलास चलो''–यह कहकर माँ ने अपनी छाती के कपड़े के भीतर उसे चिपका लिया। इसके बाद ननी ने और भी एक सुन्दर स्वप्न देखा था। स्वप्न का वृत्तान्त जो उसने कहा है वह यों है–''बायस्कोप के तुल्य स्पष्ट देख रही हूँ–पहले मैंने देखा एक उज्ज्वल प्रकाश–उस आलोक के बीच माँ बैठी हैं,–गोद में एक नन्हा–सा बच्चा है; धीरे–धीरे देखती हूँ कि वह मूर्ति गणेश की मूर्ति में परिणत हो गई। माँ गणेश–जननी के रूप में गणेश को गोद में लेकर बैठी हैं। फिर धीरे–धीरे गणेश की मूर्ति पहले के तुल्य नन्हें बच्चे की मूर्ति हुई; धीरे–धीरे प्रकाश में माँ और बच्चे की मूर्ति मिल गई।''

* * *

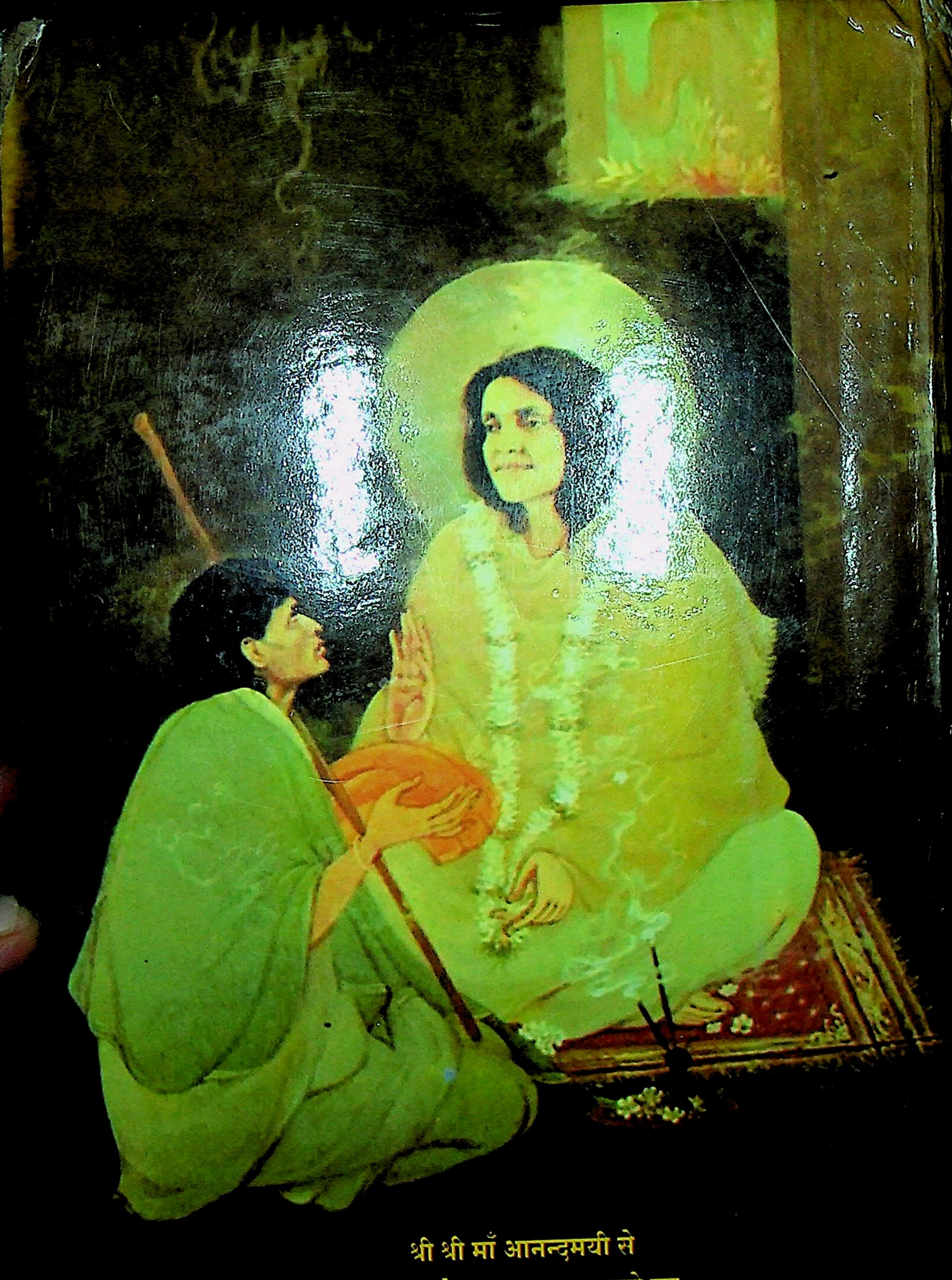

श्री श्री माँ आनन्दमयी से
दण्ड व गेरुआ वस्त्र प्राप्त करते हुए
गुरुप्रिया देवी

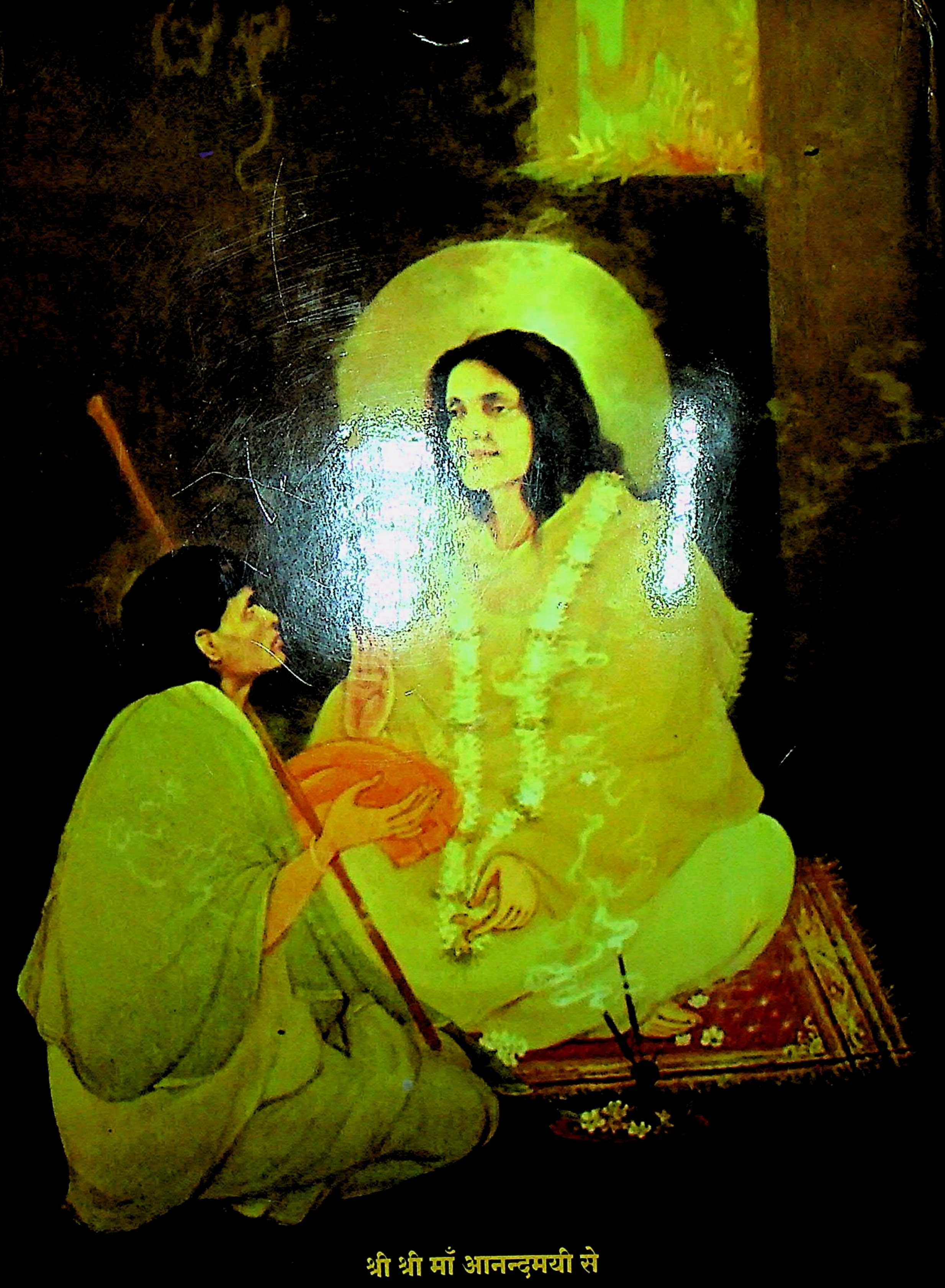

श्री श्री माँ आनन्दमयी से
दण्ड व गेरुआ वस्त्र प्राप्त करते हुए
गुरुप्रिया देवी